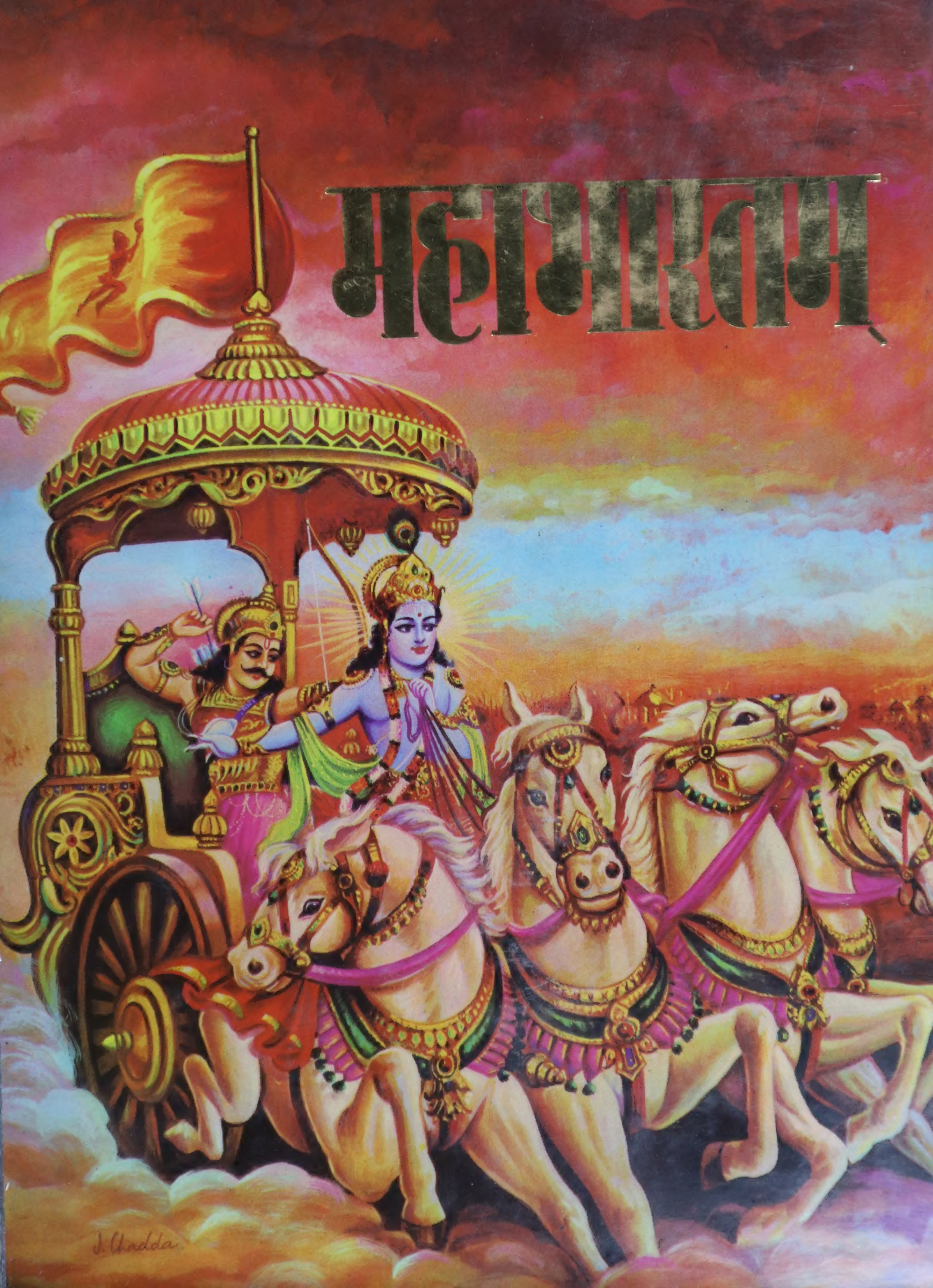
# महाभारतम्





भगवतीभाष्यसमलंकृतम्

॥ ओ३म् ॥

# महाभारतम्

[प्रथमो भागः]


अनुवादक, सम्पादक
तथा
टिप्पणीकार
**परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**



गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली

प्रकाशक :
**विजय कुमार**
**गोविन्दराम हासानन्द**
नई सड़क,
दिल्ली-११०००६



संस्करण : प्रथम
**महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी,**
**नवम्बर १९८३**

**मूल्य : तीनों भागों का : ४५०-००**

मुद्रक :
**दुर्गा मुद्रणालय**
सुभाषपार्क एक्सटेंशन,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

# स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती–एक परिचय



इस ग्रन्थ के सम्पादक, अनुवादक एवं टिप्पणीकार परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती एम० ए० वैदिक वाङ्मय के सुप्रसिद्ध विद्वान्, लेखक, चिन्तक और विचारक हैं।

आपका जन्म २० जनवरी सन् १९३१ को अलावलपुर तहसील नूह, जिला गुड़गाँव (हरियाणा) में हुआ। आपकी माताजी का नाम भगवती और पिताजी का नाम ला० ग्यासीराम था। आप छह भाई हैं। आपका परिवार एक प्रसिद्ध व्यवसायी परिवार है। भारत में सुप्रसिद्ध 'भीमसेनी काजल' का निर्माण आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री मुरारीलाल वैद्य जी ही करते हैं।

स्वामीजी की आरम्भिक शिक्षा गाँव में ही प्रारम्भ हुई। इनकी शिक्षा की कहानी लम्बी है। अनेक स्थानों पर पढ़ते हुए पाकिस्तान बनने पर ये भी अपने परिवार के साथ देहली आ गये और रामजस हायर सैकण्ड्री स्कूल नं० ५ में अध्ययन करने लगे। नवम श्रेणी तक आप उर्दू ही पढ़ते रहे। दशम श्रेणी में आपने एकदम हिन्दी ले ली। सन् १९५० में आपने दिल्ली बोर्ड से हायर सैकण्ड्री की। तत्पश्चात् आप बी० काम० में प्रविष्ट हो गये। आर्यकुमार-सभा, आर्यवीर-दल और आर्यसमाज की गतिविधियों में बहुत अधिक भाग लेने से तथा कुछ पारिवारिक परिस्थितियों के कारण आप बी० काम० में अनुत्तीर्ण हो गये। बस, आपने परीक्षाओं को तिलाञ्जलि देकर वैदिक साहित्य का गम्भीर अध्ययन, मनन और चिन्तन आरम्भ कर दिया। इसी स्वाध्याय के फलस्वरूप आपने छोटे-छोटे ट्रैक्ट लिखना आरम्भ कर दिया।

आपके एक ट्रैक्ट 'आगे बढ़ो' को पढ़कर आचार्य राजेन्द्रनाथजी शास्त्री ने आपको किसी भी प्रकार एम० ए० करने की प्रेरणा दी। उन्होंने कहा कि यदि आप आर्यसमाज का प्रचार करना चाहते हो तो उसके लिए भी कोई पूँछ (उपाधि) होना आवश्यक है। उनका एक वाक्य ही स्वामीजी के लिए प्रेरणा-प्रदीप बन गया और आपने पञ्जाब विश्वविद्यालय से 'प्रभाकर' तथा बी० ए० परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। तत्पश्चात् दिल्ली विश्वविद्यालय से १९६६ में संस्कृत में एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की।

सम्प्रति आप निरन्तर स्वाध्याय एवं वैदिक अनुसन्धान में संलग्न रहते हैं। अपने स्वाध्याय का रस औरों को भी पिलाते रहते हैं। आप अबतक सत्तर ग्रन्थ लिख चुके हैं जिनकी विद्वानों और पाठकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

आपका व्यक्तिगत पुस्तकालय बहुत विशाल है। इतना बड़ा धार्मिक पुस्तकालय देहली में शायद ही कोई हो।

लेखक होने के साथ-साथ आप प्रभावशाली वक्ता भी हैं।

आप पार्टी-बाजी से दूर हैं। वेद के विद्वान् हैं, उपनिषदों का आपने मन्थन किया है, रामायण और महाभारत के समालोचक हैं। मत-मतान्तरों पर आपका गम्भीर अध्ययन है। सिद्धान्तों के आप मर्मज्ञ हैं, वैदिक कर्मकाण्ड के विशेषज्ञ हैं। इस सबके साथ आप योगाभ्यासी भी हैं।

स्वभाव के बड़े मधुर है, सादगी के पुञ्ज हैं, सच्चरित्र और ईमानदार हैं, बड़े मिलनसार और विनोदी हैं।

आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। आपने अपना सारा जीवन वैदिकधर्म के प्रचार के लिए अर्पित किया हुआ है।

१६ फरवरी १९७५ को वसन्त पञ्चमी के ऐतिहासिक एवं पावन पर्व पर आप संन्यासाश्रम में दीक्षित हो गये। तत्पश्चात् आपने सूरिनाम, ट्रीनिडाड, हालैण्ड, फिजी, श्रीलंका आदि विदेशों में भी जाकर वैदिक धर्म की दुन्दुभि बजायी। विदेशों से अनेक छात्र और छात्रों को भारत में लाये जो यहाँ व्याकरण और वेदादि का अध्ययन कर रहे हैं।

# प्रकाशकीय

पूज्य पिताजी श्री गोविन्दराम हासानन्दजी विघ्न-बाधाओं, आपत्तियों और संकटों से जूझते हुए वैदिक साहित्य के प्रकाशन, प्रचार और प्रसार में लगे रहे। अपने जीवन में उन्होंने वैदिक साहित्य की अपने सामर्थ्य से भी अधिक अभिवृद्धि की। वैदिक साहित्य के प्रचार और प्रसार के लिए ही उन्होंने 'वेदप्रकाश' मासिक निकालना आरम्भ किया। यह पत्र ३२ वर्ष से निरन्तर निकल रहा है। अनेक छोटे और बड़े उपयोगी ग्रन्थ 'वेदप्रकाश' के माध्यम से जनता की भेंट किये जा चुके हैं।

लगभग २३ वर्ष पूर्व पिताजी का स्वर्गवास हो गया। पिताजी का उत्तरदायित्व मेरे कन्धों पर आ पड़ा। यथाशक्ति मैं उस उत्तरदायित्व का निर्वहन कर रहा हूँ।

पिताजी वेदप्रकाश के विशेषांक के रूप में 'रामायण' और 'महाभारत' दो ग्रन्थों को शुद्ध रूप में देना चाहते थे। रामायण उनके जीवन-काल में पूर्ण हो गया और पाठकों के हाथ में पहुँच गया।

पिताजी के निधन के पश्चात् 'वेदप्रकाश' के सम्पादन का भार मैंने स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती पर डाल दिया। स्वामीजी ने अनेक महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ वेदप्रकाश के विशेषांक के रूप में दिये।

एक दिन मैंने पिताजी की अपूर्ण रही आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए स्वामीजी से महाभारतांक देने की चर्चा की। स्वामीजी ने अथक परिश्रम करके महाभारत का यह संस्करण तैयार किया है। श्लोकों का तारतम्यपूर्वक चयन, अनुवाद और टिप्पणियाँ—सर्वत्र स्वामीजी की सूक्ष्म बुद्धि का परिचय पाठकों को प्राप्त होगा। स्वामीजी की इस महती कृपा के लिए मैं हार्दिक आभारी हूँ।

अब शीघ्र ही स्वामीजी द्वारा सम्पादित एवं अनूदित मनुस्मृति तथा उपनिषदें भी पाठकों को प्राप्त होंगी।

मुझे आशा और विश्वास है कि आर्य जनता अपना हार्दिक सहयोग मुझे प्रदान करेगी जिससे अपने पिताजी के पद-चिह्नों पर चलते हुए मैं भी वैदिक साहित्य की अभिवृद्धि कर सकूँ।

—**विजयकुमार**

# भूमिका

महाभारत ज्ञान का सबसे बड़ा कोश है। इसके सम्बन्ध में ठीक ही कहा है—

**धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।**
**यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥**

—महा० आदि० २।२०

हे भरतश्रेष्ठ ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्बन्ध में जो बात इस ग्रन्थ में है, वही अन्यत्र भी है, जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है।

महाभारत महर्षि व्यास द्वारा प्रज्वलित ज्ञान-प्रदीप है। यह धर्म का विश्वकोश है। इस ग्रन्थ में जहाँ आत्मा की अमरता का सन्देश [गीता] है, वहाँ राजनीति के सम्बन्ध में 'कणिकनीति', 'नारदनीति' और 'विदुरनीति' जैसे दिव्य-उपदेश हैं जिनमें राजनीति के साथ-साथ आचार और लोक-व्यवहार का भी सुन्दर निरूपण है। सभी वर्णों और आश्रमों के कर्तव्य कर्मों का इसमें विवेचन है। सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि अनेक दृष्टियों से महाभारत एक गौरवमय ग्रन्थ है। इन्हीं गुणों के कारण इसे पाँचवाँ वेद कहा जाता है।

## रचयिता

महाभारत के मूल रचयिता महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास माने जाते हैं। इनकी माता का नाम सत्यवती था। यमुना के किसी द्वीप में जन्म लेने के कारण ये द्वैपायन कहलाते थे। इनके शरीर का रंग काला होने के कारण इन्हें 'कृष्णमुनि' कहकर पुकारते थे और वेदों का व्यास=विस्तार [प्रचार] करने के कारण ये 'वेदव्यास' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्होंने तीन वर्ष के घोर परिश्रम से इस ग्रन्थ की रचना की।

## महाभारत का विस्तार और प्रक्षेप

महर्षि व्यास ने महाभारत की यह कथा अपने शिष्य वैशम्पायन को सुनाई। वैशम्पायन ने यह कथा अर्जुन के प्रपौत्र जनमेजय को 'सर्पसत्र' के अवसर पर सुनाई थी। तत्पश्चात् लोमहर्षण के पुत्र सौति ने इस कथा को शौनक आदि ऋषियों को तीसरी बार सुनाया। इस प्रकार 'महाभारत' के तीन वक्ताओं ने तीन श्रोताओं को इसे तीन बार सुनाया। इस कथा को सुनाते हुए जनमेजय और वैशम्पायन के बीच में जो प्रश्नोत्तर हुए होंगे उनके कारण मूल ग्रन्थ कुछ-न-कुछ परिवर्धित हो गया होगा। इसी प्रकार सौति और शौनक आदि ऋषियों के मध्य जो संवाद हुए होंगे, उनसे वैशम्पायन के ग्रन्थ की कलेवर-वृद्धि अवश्य हुई होगी। इतना ही नहीं, समय-समय पर इसमें अन्य लोग भी वृद्धि करते रहे हैं। इस विषय में भोजरचित 'संजीवनी' नामक ग्रन्थ का संकेत करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं—

"व्यासजी ने चार सहस्र चारसौ और उनके शिष्यों ने पाँच सहस्र छःसौ श्लोकयुक्त अर्थात् सब दश सहस्र श्लोकों के प्रमाण भारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्र, महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिताजी के समय में पच्चीस और अब मेरी आधी उमर में तीस सहस्र श्लोकयुक्त महाभारत का पुस्तक मिलता है। जो ऐसे ही बढ़ता चला तो महाभारत का पुस्तक एक ऊँट का बोझा हो जायेगा।" —सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास

महाभारत में समय-समय पर प्रक्षेप हुए हैं, इस विषय में काशीनाथ राजवाड़े लिखते हैं—

१. "The Present महाभारत is a corrupt and enlarged edition of the ancient महाभारत, this ancient work has been diluted from time to time with all sorts of additions and has grown in proportion on that account.

—Yaska's Nirukta Volume I Edited by V. K. Rajvade, M. A., Introduction. LIX

अर्थात् वर्तमान महाभारत प्राचीन महाभारत का विकृत और परिवर्द्धित संस्करण है। प्राचीन महाभारत के मूल

स्वरूप में समय-समय पर अतिरिक्त संयोजन होते रहने के कारण ही आकार की दृष्टि से उसका इतना विस्तार हो गया है।

## जय, भारत और महाभारत

महाभारत के तीन रूपान्तर हुए। आरम्भ में व्यासजी ने जिस ग्रन्थ की रचना की, उसका नाम 'जय' था।

**जयो नामेतिहासोऽयम्।**

—महा० आदि० २।१३

वैशम्पायन ने इसे बढ़ाकर 'भारत' और सौति ने पूर्ण परिवर्धन करके इसे महाभारत बना दिया। वर्तमान समय में महाभारत में लगभग एक लाख श्लोक हैं।

## महाभारत का समय

महाभारत का युद्ध कब हुआ, इस विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद हैं। पाश्चात्य अन्वेषक सृष्टि की आयु लगभग पाँच सहस्र वर्ष मानते हैं [अब इस मान्यता में बहुत अन्तर आ गया है], अतः वे सारे इतिहास को पाँच सहस्र वर्ष से पीछे नहीं ले जाना चाहते। उनके अनुसार महाभारत का काल ईसा से ३००-४०० वर्ष पूर्व है।

हमारे मत में महाभारत का समय पाँच सहस्र वर्ष पूर्व है। यह निश्चित है कि महाभारत का युद्ध कलियुग के आरम्भ में हुआ था। जब भीमसेन ने गदा के प्रहार से दुर्योधन की जाँघ तोड़ डाली तब बलरामजी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। उन्हें समझाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—

**प्राप्तं कलियुगं विद्धि।**

समझ लो कि कलियुग आरम्भ हो चुका है।

भारत के समस्त ज्योतिषियों के अनुसार कलियुग का आरम्भ ईसवी सन् से ३१०१ वर्ष पूर्व हुआ था। अतः महाभारत का युद्ध ३१०१+१९८३=५०८४ वर्ष पूर्व हुआ था।

आर्यभट्ट ने कलियुग का आरम्भ अपनी तेइस वर्ष की अवस्था में संवत् ५४६ से ३६०० वर्ष पूर्व माना है। इस मत से महाभारत का समय आज [सन् १९८३ में] से २०४०+३६००=५६४०। अब इसमें से विक्रम संवत् के ५४६ वर्ष घटाने पर ५६४०—५४६=५०९४ वर्ष पूर्व का निश्चित होता है।

नारायण शास्त्री की पुस्तक The Age of Shanker [शंकर का समय] के अनुसार भीष्म की मृत्यु माघ मास, उत्तरायण सूर्य, शुक्लपक्ष, अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र में हुई थी। यह समय ईसा से ३१३९ वर्ष पूर्व है, अतः आज [१९८३] से महाभारत का युद्ध ३१३९+१९८३=५१२२ वर्ष पूर्व हुआ था।

## महाभारत : इतिहास या कल्पना

भारतीय संस्कृति को विकृत और दूषित करनेवाले पाश्चात्य इतिहास-लेखकों का कहना है कि 'महाभारत' ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है; न श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए और न कौरव-पाण्डव। 'महाभारत' कोरी कल्पना है। पाश्चात्यों का अन्धानुकरण करनेवाले अनेक भारतीय भी महाभारत और उसके पात्र कौरव-पाण्डवों को काल्पनिक मानते हैं। डॉ० राधाकृष्णन् और गांधी भी महाभारत और उसके पात्रों को काल्पनिक मानते हैं।

गांधीजी ने 'गीता माता' के नाम से गीता पर टीका लिखी है। इसी की प्रस्तावना में वे लिखते हैं—

"यह ग्रन्थ ऐतिहासिक नहीं, वरन् इसमें भौतिक युद्ध का वर्णन करने के बहाने, प्रत्येक मनुष्य के हृदय में निरन्तर रहनेवाले द्वन्द्व युद्ध का वर्णन है।"

आइए, महाभारत की ऐतिहासिकता पर विचार करें। इतिहास क्या है? क्या केवल शुष्क घटनाओं का संकलन? भारतीय परम्परा के अनुसार इतिहास की परिभाषा है—

**धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।**
**पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥**

जिसमें पूर्ववृत्त=प्राचीनकाल में घटित घटनाओं का वर्णन धर्म, अथ, काम और मोक्ष के उपदेश-सहित कथन किया गया हो, उसे इतिहास कहते हैं।

इस दृष्टि से रामायण और महाभारत दोनों इतिहास ग्रन्थ हैं। यह सत्य है कि महाभारत में ऐसी अनेक कथाएँ हैं जो अश्लील, भारतीय संस्कृति को कलंकित करनेवाली, असत्य, असम्भव और अनैतिहासिक हैं, परन्तु इतने मात्र से सारा महाभारत अनैतिहासिक कैसे हो गया? हाँ, अनर्गल कथाओं को छोड़ा जा सकता है।

महर्षि पाणिनि का सूत्र है—

**महान् व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालभारभारतहैलिहिलरौरवप्रवृद्धेषु।**—अष्टा० ६।२।३८

अर्थात् व्रीहि इत्यादि शब्दों से पूर्व महत् शब्द प्रयुक्त होता है। इन शब्दों में एक शब्द 'भारत' भी है, अतः पाणिनि के समय में महाभारत शब्द का होना सिद्ध हुआ।

प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ के अतिरिक्त और किसी वस्तु का नाम महाभारत था, इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

पाणिनि का सूत्र है—

**गवियुधिभ्यां स्थिरः।**—अष्टा० ८।३।९५

गवि और युधि शब्द के परे 'स्थिर' शब्द के 'स्' को 'ष' होता है। जैसे—**गविष्ठिरः, युधिष्ठिरः।**

एक और सूत्र है—

**स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च।**

—अष्टा० ४।१।१७६

इस सूत्र में कुन्ती शब्द विद्यमान है।

**वासुदेवार्ज्जुनाभ्यां वुन्।**

—अष्टा० ४।३।९८

वासुदेव और अर्जुन शब्दों के परे षष्ठी अर्थ में 'वुन्' होता है।

एक और सूत्र है—

**द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्।**

—अष्टा० ४।१।१०३

द्रोण आदि से गोत्रापत्य में 'फक्' प्रत्यय विकल्प से होता है—द्रोणायनः, द्रोणिः।

द्रोणायनः से अश्वत्थामा के अतिरिक्त और किसी का बोध नहीं होता।

इस प्रकार महाभारत, वासुदेव, पाण्डवों के नाम, कुन्ती, द्रोण और अश्वत्थामा आदि के नाम पाणिनि-सूत्रों में उपलब्ध होते हैं। इससे यह सिद्ध है कि उस समय भी महाभारत पाण्डवों का इतिहास था।

अब यह देखना है कि पाणिनि का काल कौन-सा है? जर्मन विद्वान् गोलडस्ट्कर ने पाणिनि का समय ईसा से १०००-११०० वर्ष पूर्व माना है। हमारे विचार में यह समय और भी प्राचीन है।

उपनिषदों का काल पाणिनि से भी प्राचीन है। छान्दोग्य-उपनिषद् में देवकीपुत्र कृष्ण का वर्णन है। 'कौषतकी' ब्राह्मण में भी देवकीपुत्र कृष्ण का उल्लेख है। यह देवकीपुत्र कृष्ण महाभारतकालीन यादव कृष्ण ही हैं। इस प्रकार प्राचीन आर्ष साहित्य में श्रीकृष्ण का अनेक स्थानों पर उल्लेख होने से उनकी ऐतिहासिकता सिद्ध है।

## महाभारत और रामायण की तुलना

रामायण और महाभारत भारत के दो गौरवपूर्ण ग्रन्थ हैं। दोनों ग्रन्थों को तुलनात्मक रीति से देखें तो जहाँ रामायण आत्मा है वहाँ महाभारत शरीर है। दोनों ग्रन्थों में अनेक समानताएँ होने पर भी अनेक विषमताएँ हैं। रामायण के पात्र आदर्श हैं, उसमें नायक का पक्ष सर्वथा निर्दोष और खलनायक का चरित्र सदोष चित्रित किया है, परन्तु महाभारत का चरित्र-चित्रण ऐसा नहीं है। महाभारत में कौरव और पाण्डव दोनों पक्षों में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के पात्र हैं। अच्छे-से-अच्छे पात्र युधिष्ठिर में भी दोष हैं और बुरे-से-बुरे पात्र दुर्योधन एवं कर्ण में भी कुछ अच्छाइयाँ हैं। रामायण में आदर्श भ्रातृप्रेम का चित्रण है तो महाभारत की भित्ति ही भ्रातृद्रोह पर है। रामायण का अर्थ है—राम+अयन=राम का मार्ग, अतः उसमें श्रीराम के चरित्र की ही प्रधानता है परन्तु महाभारत उज्ज्वल चरित्रों का महाकानन है।

रामायण और महाभारत में सबसे बड़ा भेद संस्कृति का है। धर्म रामायणकालीन संस्कृति का प्राण था, परन्तु महाभारत का युग कर्मप्रधान था। रामायण में करुणा, भावुकता, संयम और सरलता की छाप है; महाभारत में दर्प, औद्धत्य, तेज और उग्रता का ताण्डव नृत्य है। रामायण में पद-पद पर धर्म की दुहाई दी गई है, परन्तु महाभारत में स्वाभिमान का दर्प उसके पात्रों की रग-रग में भरा है। रामायण का अध्ययन करते हुए पाठक शान्तरस में सराबोर हो जाते हैं, परन्तु महाभारत पढ़ते समय वह वीरत्व से उद्वेलित हो जाता है। यदि महाभारत में राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम, भरत जैसे आदर्श भाई, हनुमान् जैसे आदर्श सेवक तथा भक्त और सीता जैसी पतिव्रता नारी नहीं है, तो रामायण में भी भीष्म जैसे तेजस्वी और ज्ञानी, बलराम जैसे फक्कड़, विदुर जैसे नीतिज्ञ, कुन्ती और द्रौपदी जैसी तेजोदृप्त नारियाँ और श्रीकृष्ण जैसे प्रत्युत्पन्नमति, महान् कूटनीतिज्ञ और गम्भीर तत्त्वदर्शी पात्र दुर्लभ हैं।

महाभारत की संस्कृति रामायणकालीन संस्कृति के समान समुन्नत एवं समुज्ज्वल नहीं थी। कहाँ श्रीराम का परम-पावन और आदर्श आचरण और कहाँ युधिष्ठिर की द्यूत आदि कुकर्मों में प्रवृत्ति! कहाँ लक्ष्मण और भरत आदि का आदर्श भ्रातृस्नेह और कहाँ युधिष्ठिर के प्रति भीम और अर्जुन द्वारा अपमान-सूचक शब्दों का प्रयोग! कहाँ श्रीराम और भरत की राज्य के प्रति अनिच्छा और कहाँ दुर्योधन की यह राज्यलिप्सा—

**सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव।**[1]

---

१. तुलना करें—

**यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव।**
**तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति॥** —महा० उद्यो० २५।२६

इस प्रकार दोनों के सांस्कृतिक आदर्शों में महान् अन्तर है।

रामायण की प्रजा राजकार्य में अधिक रुचि लेती थी और अन्याय का विरोध करने में नहीं हिचकती थी। कैकेयी द्वारा सीता को वल्कल वस्त्र दिये जाने पर प्रजा एक साथ चिल्ला उठती है—**'धिक् त्वां दशरथम्'**; किन्तु धृतराष्ट्र की राजसभा में द्रौपदी की दुर्दशा होने पर प्रजा की तो बात ही क्या, भीष्म और द्रोण जसे वयोवृद्ध भी कुछ नहीं बोलते।

युद्ध के आदर्शों में भी परिवर्तन पाया जाता है। युद्ध-क्षेत्र में रावण के घायल और रथहीन हो जाने पर राम उसे यह कहकर छोड़ देते हैं कि 'घायल का वध करना धर्मविरुद्ध है' परन्तु महाभारत में शस्त्र छोड़े हुए भीष्म और द्रोण का वध, रथ से उतरे कर्ण का वध, अपितु सोते हुए धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को मौत के घाट उतार दिया जाता है। राम-रावण अथवा लक्ष्मण-मेघनाद के युद्ध में वह क्रोधोन्मत्त और घृणा-सूचक प्रलाप नहीं पाया जाता जो भीम-दुर्योधन तथा कर्ण और अर्जुन के मध्य होता है।

रामायण की सभ्यता अधिक शिष्ट, सुसंस्कृत, मर्यादित और आदर्श है; महाभारत में वर्णित सभ्यता अशान्तिमय और अव्यवस्थित है।

## महाभारत का परिचय

महाभारत के खण्डों को पर्व कहते हैं। महाभारत में अठारह पर्व हैं—(१) आदि, (२) सभा, (३) वन, (४) विराट्, (५) उद्योग, (६) भीष्म, (७) द्रोण, (८) कर्ण, (९) शल्य, (१०) सौप्तिक, (११) स्त्री, (१२) शान्ति, (१३) अनुशासन, (१४) अश्वमेध, (१५) आश्रमवासी, (१६) मौसल, (१७) महाप्रस्थानिक, और (१८) स्वर्गारोहण। आदिपर्व में कौरव-पाण्डवों की उत्पत्ति का वर्णन है। सभापर्व में जुआ खेलने, वनपर्व में पाण्डवों का वनवास, विराट्पर्व में पाण्डवों का अज्ञातवास=छिपकर रहने का वर्णन है। उद्योगपर्व में कौरव-पाण्डवों द्वारा सैन्य-संग्रह और श्रीकृष्ण का दूत बनकर कौरवसभा में जाने तथा शान्ति-स्थापना के लिए उद्योग का निरूपण है। भीष्मपर्व में दस दिन तक भीष्म के युद्ध करने और अन्त में शरशय्या पर पड़ने, द्रोणपर्व में अभिमन्यु तथा जयद्रथ का वध, द्रोणाचार्य के युद्ध और वध का वर्णन है। कर्णपर्व में कर्ण द्वारा अर्जुन के साथ युद्ध और वध, शल्यपर्व में शल्य और दुर्योधन के वध का सविस्तर वर्णन है। सौप्तिक पर्व में अश्वत्थामा द्वारा धृष्टद्युम्न और पाण्डवों के सोये हुए पुत्रों का वध, स्त्रीपर्व में स्त्रियों के विलाप, शान्तिपर्व में भीष्म पितामह द्वारा युधिष्ठिर को मोक्षधर्म का उपदेश, अनुशासनपर्व में धर्म तथा नीति और सदाचार का वर्णन, अश्वमेधपर्व में युधिष्ठिर का अश्वमेध-यज्ञ करना, आश्रमवासीपर्व में धृतराष्ट्र, गान्धारी आदि का वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करना, मौसलपर्व में यादवों का नाश, महाप्रस्थानिकपर्व में पाण्डवों की हिमालय-यात्रा और स्वर्गारोहणपर्व में पाण्डवों का स्वर्ग=त्रिविष्टप में जाना वर्णित है।

## महाभारत के टीकाकार

महाभारत के अनेक टीकाकार हुए हैं जिनमें सर्वप्रसिद्ध नीलकण्ठ चतुर्धर [चौधरी] हैं।

## महाभारत के उद्घोष

महाभारत धर्म और तत्त्व-ज्ञान का विश्वकोश है। व्यासजी की स्पष्ट उक्ति है कि धर्म को किसी भी अवस्था में नहीं त्यागना चाहिए—न कामना से, न भय से और न लोभ से, न जीवन के लिए। धर्म शाश्वत है—

**न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्**
**धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।**
**धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये**
**जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥**

मानव-जीवन की उत्कृष्टता के सम्बन्ध में व्यासजी का कथन है—

**गुह्यं ब्रह्म तदिदं वो ब्रवीमि**
**न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।**

हे संसार के लोगो! तुम्हें एक रहस्यपूर्ण बात बताता हूँ—इस संसार में मनुष्ययोनि से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है।

भारत कृषिप्रधान देश है, अतः व्यासजी का आग्रह है कि जो नेता अपने हाथों से कृषि नहीं करता, उसे नेता बनकर संसद् में जाने का अधिकार नहीं है—

**न नः स समितिं गच्छेद् यश्च नो निर्वपेत् कृषिम्।**

शान्ति और अनुशासन पर्व तो दिव्य रत्नों से भरे पड़े हैं, पढ़िए और आनन्द लूटिये।

## इस संस्करण की विशेषताएँ

महाभारत इतना बड़ा ग्रन्थ है कि साधारण पाठक के लिए उसका पढ़ना कठिन ही है। हमने अत्यन्त परिश्रम से यह संक्षिप्त संकलन तैयार किया है। इसमें अश्लील, असम्भव गप्पों, असत्य और अनैतिहासिक घटनाओं को छोड़ दिया है। महाभारत का सार-सर्वस्व इसमें दे दिया गया है।

यह ग्रन्थ तीन खण्डों में प्रकाशित होगा। पहले खण्ड में

आदिपर्व से उद्योगपर्व तक पाँच पर्व हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ में १५-१६ सहस्र श्लोक होंगे।

शुद्ध मुद्रण पर विशेष ध्यान दिया गया है।

इसमें पाठभेद मिलेंगे। कालक्रम से जो पाठ उलटे हो गये थे, उन्हें हमने सीधा कर दिया है। पाठों के निर्धारण में पूना के संस्करण से सहायता ली है परन्तु सर्वत्र उसका पाठ नहीं दिया है।

जो बहुत महत्त्वपूर्ण श्लोक हैं उन पर ऐसा [ □ ] चिह्न दे दिया है।

अनुवाद सरल और मुहावरेदार रखा गया है।

अनेक स्थानों पर महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ दी गई हैं, जिनसे महाभारत के सम्बन्ध में फैली हुई भ्रान्तियाँ दूर होंगी।

## एक भ्रान्ति

लोगों में एक ऐसी धारणा प्रचलित है कि जिस घर में महाभारत का पाठ होता है, वहाँ गृहकलह, लड़ाई-झगड़ा आरम्भ हो जाता है, अतः घर में महाभारत नहीं पढ़नी चाहिए। यह धारणा सर्वथा मिथ्या और भ्रान्त है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि जहाँ महाभारत का पाठ होगा, वहाँ घर के निवासियों के चरित्रों का उत्थान और मानव-जीवन का कल्याण होगा। हिचकिये नहीं, महाभारत का पाठ कीजिए और उसकी शिक्षाओं को जीवन में अपनाइए।

## धन्यवाद और आभारप्रदर्शन

आचार्य पं० रविदत्तजी गौतम शास्त्री, एम० ए० को पाण्डुलिपि को पढ़ने और अनेक स्थलों पर बहुमूल्य सुझाव देने, श्री ओम्प्रकाशजी शास्त्री और श्री सुनीलजी शर्मा को प्रूफ़-संशोधन करने तथा पं० रामसेवक मिश्र और दुर्गा मुद्रणालय सुभाषपार्क, शाहदरा, दिल्ली-३२ के कर्मचारियों को ग्रन्थ को शुद्ध मुद्रित करने तथा गोविन्दराम हासानन्द के सञ्चालक श्री विजयकुमार को इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने के लिए हार्दिक धन्यवाद एवं साधुवाद देता हूँ।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि पाठकगण इसे 'वाल्मीकि रामायण' की भाँति ही अपनाएँगे।

**वेद सदन**
एच १/२ माडल टाउन, दिल्ली-६

**जगदीश्वरानन्द**

# विषय-सूची

अध्याय विषय पृष्ठ

## आदिपर्व

## सभापर्व

## वनपर्व

## विराटपर्व

## उद्योगपर्व

॥ ओ३म् ॥

# महाभारतम्

## आदिपर्व

### प्रथमोऽध्यायः

#### अवतरणिका

**इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत् ।**
**भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिविधं कालसंज्ञितम् ॥१॥**

इस ग्रन्थ में इतिहास और पुराणों का मन्थन करके उनका प्रशस्त रूप प्रकट किया गया है। भूत, वर्तमान और भविष्य काल की तीनों संज्ञाओं का भी वर्णन हुआ है।

**जरामृत्युभयव्याधिभावाभावविनिश्चयः ।**
**विविधस्य च धर्मस्य ह्याश्रमाणां च लक्षणम् ॥२॥**

इस ग्रन्थ में बुढ़ापा, मृत्यु, भय, रोग और पदार्थों के सत्यत्व तथा मिथ्यात्व का विशेष रूप से निश्चय किया गया है और अधिकारी-भेद से विभिन्न धर्मों एवं आश्रमों का भी लक्षण बताया गया है।

**चातुर्वर्ण्यविधानं च पुराणानां च कृत्स्नशः ।**
**तपसो ब्रह्मचर्यस्य पृथिव्याश्चन्द्रसूर्ययोः ॥३॥**
**ग्रहनक्षत्रताराणां प्रमाणं च युगैः सह ।**
**ऋचो यजूंषि सामानि वेदाध्यात्म तथैव च ॥४॥**

इस ग्रन्थ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णों के कर्तव्य का विधान तथा पुराणों=ब्राह्मण-ग्रन्थों का सम्पूर्ण मूल तत्त्व भी प्रकट हुआ है। तपस्या एवं ब्रह्मचर्य के स्वरूप, अनुष्ठान एवं फलों का विवरण; पृथिवी, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा; सत्ययुग, त्रेता, द्वापुर, कलियुग—इन सबके परिमाण और प्रमाण तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद के आध्यात्मिक अभिप्राय और अध्यात्मशास्त्र का भी विस्तार से वर्णन किया गया है।

**न्यायशिक्षाचिकित्सा च दानं पाशुपतं तथा ।**
**हेतुनैव समं जन्म दिव्यमानुषसंज्ञितम् ॥५॥**

न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान तथा पाशुपत=सर्वान्तिर्यामी परमेश्वर का भी इसमें विशद वर्णन है। इसमें यह भी बताया गया है कि श्रेष्ठ और साधारण मनुष्य आदि शरीरों में जन्म का कारण क्या है।

**अज्ञानतिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टतः ।**
**ज्ञानाञ्जनशलाकाभिर्नेत्रोन्मीलनकारकम् ॥६॥**
**धर्मार्थकाममोक्षार्थैः समासव्यासकीर्तनैः ।**
**तथा भारतसूर्येण नृणां विनिहतं तमः ॥७॥**

संसार के जीव अज्ञान-अन्धकार से अन्धे होकर छटपटा रहे हैं। यह महाभारत ज्ञानाञ्जन की शलाका लगाकर उनकी आँखें खोल देता है। वह शलाका क्या है? धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थों का संक्षेप और विस्तार से वर्णन। यह न केवल अज्ञान की रतौंधी को दूर करता है, प्रत्युत सूर्य के समान उदित होकर मनुष्यों की आँखों के सामने के सम्पूर्ण अन्धकार को ही नष्ट कर देता है।

**पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्नाः प्रकाशिताः ।**
**नृबुद्धिकैरवाणां च कृतमेतत् प्रकाशनम् ॥८॥**

यह महाभारत-पुराण पूर्ण चन्द्रमा के समान है, जिससे श्रुतियों की चाँदनी छिटकती है और मनुष्यों की बुद्धिरूपी कुमुदिनी सदा के लिए खिल जाती है।

**इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना ।**
**लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत्सम्प्रकाशितम् ॥९॥**

यह भारत-इतिहास एक जाज्वल्यमान दीपक है। यह मोह-अन्धकार को मिटाकर लोगों के अन्तःकरण-रूप सम्पूर्ण अन्तरङ्ग गृह को भली-भाँति ज्ञानालोक से आलोकित कर देता है।

**सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति ।**
**पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः ॥१०॥**

संसार में जितने भी श्रेष्ठ कवि होंगे, उनके काव्य के लिए यह मूल आश्रय होगा। जैसे मेघ सम्पूर्ण प्राणियों के लिए जीवन-दाता है, वैसे ही यह अक्षय भारत-वृक्ष है।

**तस्य वृक्षस्य वक्ष्यामि शाश्वत्पुष्पफलोदयम् ।**
**स्वादुमेध्यरसोपेतमच्छेद्यममरैरपि ॥११॥**

यह महाभारत एक वृक्ष है। मैं इस वृक्ष के फलों का वर्णन करूँगा। इस वृक्ष के स्वादु, पवित्र, सरस एवं अविनाशी पुष्प तथा फल हैं—धर्म और मोक्ष। उन्हें देवता भी इस वृक्ष से अलग नहीं कर सकते।

**नवनीतं यथा दध्नो द्विपदां ब्राह्मणो यथा ।**
**आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा ॥१२॥**
**ह्रदानामुदधिःश्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ।**
**यथैतानीतिहासानां तथा भारतमुच्यते ।**
**महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते ॥१३॥**

जैसे दही में नवनीत, मनुष्यों में ब्राह्मण, वेदों में उपनिषद्, ओषधियों में अमृत, सरोवरों में समुद्र और पशुओं में गाय सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही (उन्हीं के समान) इतिहासों में यह महाभारत भी सर्वश्रेष्ठ है। महत्ता, भार अथवा गम्भीरता की विशेषता से ही इसे महाभारत कहते हैं।

**इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।**
**बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥१४॥**

इतिहास और पुराणों=ब्राह्मण-ग्रन्थों की सहायता से ही वेदों का अर्थ, विस्तार एवं समर्थन करना चाहिए। जो इतिहास एवं पुराण से अनभिज्ञ है, उससे वेद डरते हैं कि यह मुझपर प्रहार करेगा, अर्थ का अनर्थ कर देगा।

**यश्चैनं शृणुयान्नित्यमार्षं श्रद्धासमन्वितः ।**
**स दीर्घमायुः कीर्तिं च स्वर्गतिं चाप्नुयान्नरः ॥१५॥**

जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन इस आर्ष ग्रन्थ का श्रवण करता है, उसे दीर्घायु, कीर्ति और स्वर्ग=सुख की प्राप्ति होती है।

**विचित्रार्थपदाख्यानमनेकसमयान्वितम् ।**
**प्रतिपन्नं नरैः प्राज्ञैर्वैराग्यमिव मोक्षिभिः ॥१६॥**

जैसे मोक्ष के इच्छुक पुरुष पर-वैराग्य की शरण ग्रहण करते हैं, वैसे ही बुद्धिमान् मनुष्य अलौकिक अर्थ, विचित्र पद, अद्भुत आख्यान तथा भाँति-भाँति की परस्पर विलक्षण मर्यादाओं से युक्त इस महाभारत का आश्रय ग्रहण करते हैं।

**आत्मेव वेदितव्येषु प्रियेष्विव हि जीवितम् ।**
**इतिहासः प्रधानार्थः श्रेष्ठः सर्वागमेष्वयम् ॥१७॥**

जैसे जानने योग्य पदार्थों में आत्मा तथा प्रिय पदार्थों में अपना जीवन सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही सम्पूर्ण शास्त्रों में परब्रह्म परमेश्वर की प्राप्तिरूप प्रयोजन को पूर्ण करनेवाला यह इतिहास सर्वोत्तम है।

**अनाश्रित्यैतदाख्यानं कथा भुवि न विद्यते ।**
**आहारमनपाश्रित्य शरीरस्येव धारणम् ॥१८॥**

जैसे भोजन किये बिना शरीर-धारण सम्भव नहीं है, वैसे ही इस इतिहास का आश्रय लिये बिना भूमण्डल पर कोई भी कथा नहीं है।

**अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत् ।**
**कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना ॥१९॥**

असीम बुद्धिवाले महात्मा व्यास ने यह अर्थ-शास्त्र कहा है। यह महान् धर्मशास्त्र भी है, इसे कामशास्त्र भी कहा गया है [और मोक्षशास्त्र तो यह है ही]।

**श्रुत्वा त्विदमुपाख्यानं श्रव्यमन्यन्न रोचते ।**
**पुंस्कोकिलरुतं श्रुत्वा रूक्षा ध्वांक्षस्य वागिव ॥२०॥**

इस उपाख्यान को सुन लेने पर और कुछ सुनना अच्छा नहीं लगता। भला कोकिल का कलरव सुनकर कौओं की कठोर 'काँव-काँव' किसे पसन्द आएगी ?

**इति महाभारते आदिपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥१॥**

# द्वितीयोऽध्यायः

## कथा-प्रवेश, महाभारत का महत्त्व

सौतिरुवाच

**श्रुत्वा तु सर्पसत्राय दीक्षितं जनमेजयम् ।**
**अभ्यगच्छदृषिर्विद्वान् कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥१॥**

**उग्रश्रवाजी कहते हैं**—शौनक ! जब विद्वान् महर्षि कृष्णद्वैपायन ने यह सुना कि राजा जनमेजय सर्पयज्ञ की दीक्षा ले चुके हैं, तब वे वहाँ आये ।

**जनमेजयस्तु राजर्षिर्दृष्ट्वा तमृषिमागतम् ।**
**सगणोऽभ्युद्ययौ तूर्णं प्रीत्या भरतसत्तमः ॥२॥**

भरतश्रेष्ठ राजर्षि जनमेजय महर्षि व्यासजी को आया देख अति हर्ष के साथ उठकर खड़े हो गये और अपने सेवकों के साथ तुरन्त ही उनके स्वागत के लिए चल दिये ।

**काञ्चनं विष्टरं तस्मै सदस्यानुमतः प्रभुः ।**
**आसनं कल्पयामास यथा शक्रो बृहस्पतेः ॥३॥**

जैसे इन्द्र बृहस्पतिजी को आसन प्रदान करते हैं, उसी प्रकार राजा जनमेजय ने सदस्यों की अनुमति लेकर व्यासजी के लिए स्वर्ण-आसन की व्यवस्था की ।

**तत्रोपविष्टं वरदं देवर्षिगणपूजितम् ।**
**पूजयामास राजेन्द्रः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥४॥**

देवर्षियों द्वारा पूजित, वरदायक व्यासजी जब वहाँ बैठ गये, तब राजेन्द्र जनमेजय ने शास्त्रीय विधि के अनुसार उनका पूजन किया ।

**ततस्तु सहितः सर्वैः सदस्यैर्जनमेजयः ।**
**इदं पश्चात् द्विजश्रेष्ठं पर्यपृच्छत् कृताञ्जलिः ॥५॥**

उनका पाद्य, आचमनीय, अर्घ्य द्वारा विधिवत् सत्कार करके सब सदस्यों सहित राजा जनमेजय ने हाथ जोड़कर द्विजश्रेष्ठ व्यासजी से इस प्रकार प्रश्न किया—

जनमेजय उवाच

**कुरूणां पाण्डवानां च भवान् प्रत्यक्षदर्शिवान् ।**
**तेषां चरितमिच्छामि कथ्यमानं त्वया द्विज ॥६॥**

**जनमेजय ने पूछा**—ब्रह्मन् ! आप कौरवों और पाण्डवों को प्रत्यक्ष देख चुके हैं, अतः मैं आपके द्वारा वर्णित उनके चरित्र को सुनना चाहता हूँ ।

**कथं समभवद् भेदस्तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ।**
**तच्च युद्धं कथं वृत्तं भूतान्तकरणं महत् ॥७॥**

वे तो राग-द्वेष आदि दोषों से रहित सत्कर्म करनेवाले थे, उनमें भेद-बुद्धि कैसे उत्पन्न हुई ? और प्राणियों का अन्त करनेवाला उनका वह महायुद्ध किस प्रकार हुआ ?

**पितामहानां सर्वेषां दैवेनानिष्टचेतसाम् ।**
**कार्त्स्न्येनैतन्ममाचक्ष्व यथावृत्तं द्विजोत्तम ॥८॥**

हे द्विजश्रेष्ठ ! प्रतीत होता है कि प्रारब्ध ने ही प्रेरणा करके मेरे उन सब पितामहों के मन को युद्धरूपी अनिष्ट में लगा दिया था । उनके उस सम्पूर्ण वृत्तान्त का आप यथावत् रूप से वर्णन करें ।

सौतिरुवाच

**तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनस्तदा ।**
**शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके ॥९॥**

**उग्रश्रवाजी कहते हैं**—जनमेजय का यह वचन सुनकर कृष्ण द्वैपायन व्यास ने निकट में ही बैठे हुए अपने शिष्य वैशम्पायन को यह आदेश दिया—

व्यास उवाच

**कुरूणां पाण्डवानां च यथा भेदोऽभवत् पुरा ।**
**तदस्मै सर्वमाचक्ष्व यन्मत्तः श्रुतवानसि ॥१०॥**

**व्यासजी बोले**—वैशम्पायन ! पूर्वकाल में कौरव और पाण्डवों में जिस प्रकार फूट पड़ी थी, जिसे तुम मुझसे पहले सुन चुके हो, वह समस्त वृत्तान्त राजा जनमेजय को सुनाओ ।

वैशम्पायन उवाच

**क्षणं कुरु महाराज विपुलोऽयमनुक्रमः ।**
**पुण्याख्यानस्य वक्तव्यः कृष्णद्वैपायनेरितः ॥११॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—महाराज ! इसके लिए कुछ समय निर्धारित कीजिए, क्योंकि व्यासजी द्वारा क्रमानुसार वर्णित यह पवित्र आख्यान बहुत विस्तृत है और वह सब आपके समक्ष कहकर सुनाना है ।

**अस्मिन्नर्थश्च धर्मश्च निखिलेनोपदिश्यते ।**
**इतिहासे महापुण्ये बुद्धिश्च परिनैष्ठिकी ॥१२॥**

इसमें अर्थ और धर्म का पूर्णरूप से उपदेश दिया गया है। इस परम पावन इतिहास के श्रवण और अध्ययन से मोक्ष-बुद्धि प्राप्त होती है।

**जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।**
**महीं विजयते राजा शत्रूँश्चापि पराजयेत् ॥१३॥**

यह 'जय' नामक इतिहास विजय-प्राप्ति की इच्छावाले पुरुष को अवश्य सुनना चाहिए। इसका श्रवण करनेवाला राजा भूमि पर विजय पाता और शत्रुओं को परास्त करता है।

**महिषीयुवराजाभ्यां श्रोतव्यं बहुशस्तथा।**
**वीरं जनयते पुत्रं कन्यां वा राज्यभागिनीम् ॥१४॥**

युवराज तथा रानी को बारम्बार इसका श्रवण करते रहना चाहिए, इससे वह वीर पुत्र का अथवा राज्य-सिंहासन पर बैठनेवाली श्रेष्ठ कन्या को जन्म देती है।

**धर्मशास्त्रमिदं पुण्यमर्थशास्त्रमिदं परम्।**
**मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना ॥१५॥**

महा बुद्धिमान् व्यासजी ने इसे पुण्यमय धर्म-शास्त्र, उत्तम अर्थशास्त्र तथा सर्वोत्तम मोक्षशास्त्र भी कहा है।

**धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वर्ग्यं तथैव च।**
**भरतानां महज्जन्म महाभारतमुच्यते ॥१६॥**

इस ग्रन्थ का श्रवण एवं अध्ययन धन, यश, आयु, पुण्य तथा स्वर्ग=सुख की प्राप्ति करानेवाला है। इसमें भरतवंशियों के महान् जन्म-वृत्तान्त का वर्णन है, अतः इसे 'महाभारत' कहते हैं।

**नरेण धर्मकामेन सर्वः श्रोतव्य इत्यपि।**
**निखिलेनेतिहासोऽयं ततः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥१७॥**

धर्म की इच्छा रखनेवाले मनुष्य को यह सारा महाभारत इतिहास पूर्णरूप से श्रवण करने योग्य है। इसके श्रवण से मनुष्य सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

**न तां स्वर्गगतिं प्राप्य तुष्टिं प्राप्नोति मानवः।**
**यां श्रुत्वैव महापुण्यमितिहासमुपाश्नुते ॥१८॥**

इस महान् पुण्यदायक इतिहास को सुनने मात्र से ही मनुष्य को जो सन्तोष और आनन्द प्राप्त होता है, वह स्वर्गलोक प्राप्त कर लेने से भी नहीं मिलता।

**यथा समुद्रो भगवान् यथा मेरुर्महागिरिः।**
**उभौ ख्यातौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥१९॥**

जैसे ऐश्वर्यपूर्ण समुद्र और महान् पर्वत मेरु दोनों रत्नों की खान कहे गये हैं, वैसे ही महाभारत रत्न-स्वरूप कथाओं और उपदेशों का भण्डार कहा जाता है।

**त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।**
**महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमद्भुतम् ॥२०॥**

इस ग्रन्थ का निर्माण करनेवाले महामुनि कृष्णद्वैपायन ने प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर महाभारत नामक इस अद्भुत इतिहास को तीन वर्षों में पूर्ण किया है।

**धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।**
**यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥२१॥**

हे भरतश्रेष्ठ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्बन्ध में जो बात इस ग्रन्थ में है, वही अन्यत्र भी है; जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है।

**इति महाभारते आदिपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥**

# तृतीयोऽध्यायः

## महाराज दुष्यन्त का चरित्र

वैशम्पायन उवाच

**पौरवाणां वंशकरो दुष्यन्तो नाम वीर्यवान्।**
**पृथिव्याश्चतुरन्ताया गोप्ता भरतसत्तम ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—भरतकुलभूषण जनमेजय! पूरुवंश का विस्तार करनेवाले दुष्यन्त नाम के एक राजा हो गये हैं। वे महापराक्रमी तथा चारों समुद्रों से घिरे हुए समस्त भूमण्डल के पालक थे।

**नासीच्चौरभयं तात न क्षुधाभयमण्वपि।**
**नासीद् व्याधिभयं चापि तस्मिञ्जनपदेश्वरे ॥२॥**

महाराज दुष्यन्त के शासन-काल में चोरों का भय नहीं था। भूख का भय तो नाम को भी न था तथा रोग और व्याधि का डर भी नहीं रह गया था।

**कालवर्षी च पर्जन्यः सस्यानि रसवन्ति च।**
**सर्वरत्नसमृद्धा च मही पशुमती तथा ॥३॥**

उनके राज्य में समय पर वर्षा होती थी तथा अन्न रसयुक्त होते थे। पृथिवी सब प्रकार के रत्नों से सम्पन्न तथा पशुधन से परिपूर्ण थी।

**स चाद्भुतमहावीर्यो वज्रसंहननो युवा।**
**उद्यम्य मन्दरं दोर्भ्यां वहेत् सवनकाननम् ॥४॥**

राजा दुष्यन्त स्वयं भी युवक थे। उनका शरीर वज्र के समान दृढ़ था। वे अद्भुत एवं महान् पराक्रम से सम्पन्न थे। वे अपने दोनों हाथों से उपवनों और काननों सहित मन्दराचल को उठाकर ले जाने की शक्ति रखते थे।

**चतुष्पथगदायुद्धे बभूव परिनिष्ठितः।**
**बले विष्णुसमश्चासीत् तेजसा भास्करोपमः ॥५॥**

वे गदायुद्ध के प्रक्षेप, विक्षेप, परिक्षेप और अभिक्षेप—इन चारों प्रकारों में अत्यन्त कुशल थे। वे बल में विष्णु के समान और तेज में सूर्य के समान थे।

**अक्षोभ्यत्वेऽर्णवसमः सहिष्णुत्वे धरासमः।**
**सम्मतः स महीपालः प्रसन्नपुरराष्ट्रवान् ॥६॥**

वे समुद्र के समान अक्षोभ्य एवं गम्भीर और पृथिवी के समान सहनशील थे। महाराज दुष्यन्त का सर्वत्र सम्मान था। उनके नगर तथा राष्ट्र के लोग सदा प्रसन्न रहते थे।

**स कदाचिन्महाबाहुः प्रभूतबलवाहनः।**
**निर्ययौ परमप्रीत्या वनं मृगजिघांसया ॥७॥**

एक समय की बात है, महाबाहु राजा दुष्यन्त बहुत-से सैनिक और सवारियों को साथ लिये वन में हिंसक पशुओं का शिकार[1] करने के लिए अति प्रसन्नता के साथ नगर से बाहर निकले।

**तत्र मृगसहस्राणि[2] हत्वा सबलवाहनः।**
**राजा मृगप्रसङ्गेन वनमन्यद् विवेश ह ॥८॥**

उस वन में सेना और सवारियों के साथ राजा दुष्यन्त ने अनेक हिंसक पशुओं का वध करके एक मृग का पीछा करते हुए दूसरे वन में प्रवेश किया।

**प्रेक्षमाणो वनं तत् तु सुप्रहृष्टविहङ्गमम्।**
**आश्रमप्रवरं रम्यं ददर्श च मनोरमम् ॥९॥**

उस वन की शोभा देखते हुए उनकी दृष्टि एक उत्तम आश्रम पर पड़ी जो अत्यन्त रमणीय और मनोरम था। वहाँ बहुत-से पक्षी हर्षोल्लास में भरकर चहक रहे थे।

**दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं तत्र काश्यपस्य महात्मनः।**
**चकाराभिप्रवेशाय मतिं स नृपतिस्तदा ॥१०॥**

कश्यप गोत्रीय महात्मा कण्व के उस मनोहर एवं रमणीय आश्रम को देखकर राजा दुष्यन्त ने उसमें प्रवेश करने का विचार किया।

**ततोऽगच्छन्महाबाहुरेकोऽमात्यान्विसृज्य तान्।**
**नापश्यच्चाश्रमे तस्मिंस्तमृषिं संशितव्रतम् ॥११॥**

उस आश्रम में प्रवेश का निश्चय कर महाबाहु राजा दुष्यन्त साथ आये हुए अपने मन्त्रियों को भी बाहर छोड़कर अकेले ही उस आश्रम में गये, परन्तु वहाँ कठोर व्रत का पालन करनेवाले महर्षि दिखाई नहीं दिये।

**सोऽपश्यमानस्तमृषिं शून्यं दृष्ट्वा तथाऽऽश्रमम्।**
**उवाच क इहेत्युच्चैर्वनं सन्नादयन्निव ॥१२॥**

महर्षि कण्व को न देखकर तथा आश्रम को सूना पाकर राजा ने सम्पूर्ण वन को प्रतिध्वनित-सा करते हुए पूछा—"यहाँ कौन है ?"

**श्रुत्वाथ तस्य तं शब्दं कन्या श्रीरिव रूपिणी।**
**निश्चक्रामाश्रमात्तस्मात्तापसी वेषधारिणी ॥१३॥**

दुष्यन्त के उस शब्द को सुनकर एक मूर्तिमती लक्ष्मी-सी सुन्दरी कन्या तापसी का वेष धारण किये आश्रम से बाहर निकली।

---

१. मनोविनोद के लिए शिकार खेलना—निरीह पशुओं के वध को राजर्षि मनु आदि शास्त्रकारों ने व्यसनों में गिनाया है, परन्तु प्रजा के कल्याण के लिए हिंसक पशुओं और खेती को हानि पहुँचानेवाले सेही आदि जन्तुओं का शिकार करना सर्वथा उचित है।

एक बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि मारे हुए पशुओं को खाने का कहीं विधान नहीं है।

२. सहस्र शब्द का अर्थ हजार भी होता है परन्तु सर्वत्र यही अर्थ करना उचित नहीं है। निघण्टु में 'सहस्र' शब्द बहु के अर्थ में पठित है—**सहस्रं बहुनामसु पठितम्।** [निघ० ३।१], अतः हमने अर्थ किया है—'अनेक'। इस प्रसङ्ग में यही अर्थ समीचीन है।

**सा तं दृष्ट्वैव राजानं दुष्यन्तमसितेक्षणा ।**
**स्वागतं त इति क्षिप्रमुवाच प्रतिपूज्य च ॥१४॥**

कजरारे नेत्रोंवाली उस शुभलक्षणा कन्या ने राजा दुष्यन्त को देखते ही उनके प्रति सम्मान का भाव प्रदर्शित करते हुए शीघ्रतापूर्वक कहा—"अतिथि देव ! आपका स्वागत है।"

**आसनेनार्चयित्वा च पाद्येनार्घ्येण चैव हि ।**
**पप्रच्छानामयं राजन् कुशलं च नराधिपम् ॥१५॥**

फिर आसन, पाद्य और अर्घ्य अर्पण करके उनका सत्कार करने के पश्चात् उसने राजा से पूछा—"हे राजन् ! आपका शरीर तो नीरोग है ? घर पर कुशल तो है ?"

**यथावदर्चयित्वाथ पृष्ट्वा चानामयं तदा ।**
**उवाच स्मयमानेव किं कार्यं क्रियतामिति ॥१६॥**

राजा दुष्यन्त का विधिपूर्वक आदर-सत्कार करके और उनका आरोग्य एवं कुशल पूछकर वह तपस्विनी कन्या मुस्कुराती हुई-सी बोली—"कहिए, आपकी क्या सेवा की जाए ?"

दुष्यन्त उवाच

**आगतोऽहं महाभागमृषिं कण्वमुपासितुम् ।**
**क्व गतो भगवान् भद्रे तन्ममाचक्ष्व शोभने ॥१७॥**

**दुष्यन्त बोले**—भद्रे ! मैं परम भाग्यशाली महर्षि कण्व का सत्सङ्ग-लाभ करने के लिए आया हूँ। शोभने ! कृपया बताओ, भगवान् कण्व कहाँ गये हैं ?"

शकुन्तलोवाच

**गतः पिता मे भगवान् फलान्याहर्तुमाश्रमात् ।**
**मुहूर्तं सम्प्रतीक्षस्व द्रष्टास्येनमुपागतम् ॥१८॥**

**शकुन्तला बोली**—अतिथिदेव ! मेरे पूज्य पिता-जी फल लाने के लिए आश्रम से बाहर गये हैं। अतः दो घड़ी प्रतीक्षा कीजिए, लौटने पर उनसे मिलिएगा ।

वैशम्पायन उवाच

**अपश्यमानस्तमृषिं तथा चोक्तस्तया च सः ।**
**तां दृष्ट्वा च वरारोहामित्युवाच महीपतिः ॥१९॥**

**वैशम्पायन जी कहते हैं**—जनमेजय ! महर्षि कण्व को आश्रम पर न देखकर और उस तापसी कन्या के वहाँ ठहरने के लिए आग्रह करने पर, उस सर्वाङ्ग-सुन्दरी कन्या को देखकर राजा बोले ।

दुष्यन्त उवाच

**का त्वं कस्यासि सुश्रोणि किमर्थं चागता वनम् ।**
**ए ँ रूपगुणोपेता कुतस्त्वमसि शोभने ॥२०॥**

**दुष्यन्त बोले**—मनोहर कटि-प्रदेश से सुशोभित हे सुन्दरी ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? और इस वन में किस लिए आई हो ? शोभने ! तुममें ऐसे अद्भुत रूप और गुणों का विकास कैसे हुआ ?

**दर्शनादेव वै शुभे त्वया मेऽपहृतं मनः ।**
**इच्छामि त्वामहं ज्ञातुं तन्ममाचक्ष्व शोभने ॥२१॥**

शुभे ! तुमने दर्शनमात्र से ही मेरे मन को हर लिया है। कल्याणि ! मैं तुम्हारा परिचय जानना चाहता हूँ, अतः मुझे सब-कुछ ठीक-ठीक बताओ ।

शकुन्तलोवाच

**कण्वस्याहं भगवतो दुष्यन्त दुहिता मता ।**
**तपस्विनो धृतिमतो धर्मज्ञस्य महात्मनः ॥२२॥**

**शकुन्तला ने कहा**—महाराज दुष्यन्त ! मैं तपस्वी, धृतिमान्, धर्मज्ञ तथा महात्मा भगवान् कण्व की पुत्री मानी जाती हूँ ।

दुष्यन्त उवाच

**ऊर्ध्वरेता महाभागे भगवाँल्लोकपूजितः ।**
**कथं त्वं तस्य दुहिता सम्भूता वरवर्णिनी ॥२३॥**

**दुष्यन्त बोले**—महाभागे ! विश्ववन्द्य कण्व तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, ऐसी अवस्था में तुम जैसी सुन्दरी कुमारी उनकी पुत्री कैसे हो सकती है ?

शकुन्तलोवाच

**यथायमागमो मह्यं यथा चेदमभूत् पुरा ।**
**शृणु राजन् यथातत्त्वं यथास्मि दुहिता मुनेः ॥२४॥**

**शकुन्तला ने कहा**—राजन् ! ये सब बातें मुझे जिस प्रकार ज्ञात हुई हैं, मेरा यह जन्म-आदि पूर्व-काल में जिस प्रकार हुआ है तथा मैं जिस प्रकार कण्व मुनि की पुत्री हूँ, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त ठीक-ठीक बता रही हूँ, सुनिए ।

**ऋषिः कश्चिदिहागम्य मम जन्माभ्यनोदयत् ।**
**तस्मै प्रोवाच भगवान् यथा तच्छृणु पार्थिव ॥२५॥**

पृथिवीपते ! एक दिन किसी ऋषि ने यहाँ

आकर मेरे जन्म के सम्बन्ध में मुनि से पूछा। उस समय भगवान् कण्व ने जो बात बताई, वही कहती हूँ, सुनिए।

कण्व उवाच

**तप्यमानः किल पुरा विश्वामित्रो महत् तपः ।**
**सुभृशं तापयामास शक्रं सुरगणेश्वरम् ॥२६॥**

**कण्व बोले**—प्राचीन समय की बात है,[1] महर्षि विश्वामित्र बड़ी भारी तपस्या कर रहे थे। उन्होंने अपनी तपस्या से देवताओं के राजा इन्द्र को अत्यन्त सन्ताप में डाल दिया।

**तपसा दीप्तवीर्योऽयं स्थानान्मां च्यावयेदिति ।**
**भीतः पुरन्दरस्तस्मान्मेनकामिदमब्रवीत् ॥२७॥**

इन्द्र को यह भय हो गया कि तपस्या से अधिक शक्तिशाली होकर ये विश्वामित्र मुझे अपने स्थान से भ्रष्ट कर देंगे, अतः उन्होंने मेनका से इस प्रकार कहा—

**गुणैरप्सरसां दिव्यैर्मेनके त्वं विशिष्यसे ।**
**श्रेयो मे कुरु कल्याणि यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु ॥२८**

मेनके ! अप्सराओं के जो दिव्य गुण हैं, वे तुममें सबसे अधिक हैं। कल्याणि ! तुम मेरा भला करो और मैं तुमसे जो बात कहता हूँ, उसे सुनो।

**रूप-यौवन-माधुर्य-चेष्टित-स्मित-भाषणैः ।**
**लोभयित्वा वरारोहे तपसस्तं निवर्तय ॥२९॥**

वरारोहे ! तुम अपने रूप, यौवन, मधुर स्वभाव, हाव-भाव, मन्द मुस्कान और सरस वार्तालाप आदि के द्वारा मुनि विश्वामित्र को लुभाकर उन्हें तपस्या से निवृत्त (विरत) कर दो।

**सागच्छत् त्वरिता भूमिं यत्रासीन्मुनिसत्तमः ।**
**तस्या रूपगुणान् दृष्ट्वा स तु विप्रर्षभस्तदा ॥३०॥**
**चकार भावं संसर्गात् तया कामवशं गतः ।**
**न्यमन्त्रयत चाप्येनां सा चाप्यैच्छदनिन्दिता ॥३१॥**

देवराज इन्द्र का आदेश पाकर मेनका उस स्थान पर गई जहाँ मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र विराजमान थे। उसके रूप और गुणों को देखते ही मुनिवर विश्वामित्र काम के अधीन हो गये। सम्पर्क में आने के कारण मेनका में उनका अनुराग हो गया। उन्होंने मेनका को अपने निकट आने का निमन्त्रण दिया। अनिन्द्य सुन्दरी मेनका तो यह चाहती ही थी, अतः वह उनसे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए राजी हो गई।

**तौ तत्र सुचिरं कालमुभौ व्यहरतां तदा ।**
**जनयामास स मुनिर्मेनकायां शकुन्तलाम् ॥३२॥**

तत्पश्चात् वे दोनों वहाँ दीर्घकाल तक इच्छा-अनुसार विहार तथा रमण करते रहे। फिर मुनि ने मेनका के गर्भ से शकुन्तला को जन्म दिया।

**जातमुत्सृज्य तं गर्भं मेनका मालिनीमनु ।**
**कृतकार्या ततस्तूर्णमगच्छच्छक्रसंसदम् ॥३३॥**

मेनका का कार्य पूरा हो चुका था, अतः वह उस नवजात गर्भ को मालिनी के तट पर छोड़कर तुरन्त इन्द्रलोक को चली गई।

**तं वने विजने गर्भं सिंहव्याघ्रसमाकुले ।**
**दृष्ट्वा शयानं शकुनाः समन्तात् पर्यवारयन् ॥३४॥**

सिंह और व्याघ्रों से भरे हुए निर्जन वन में उस शिशु को सोते देख शकुन्तों (पक्षियों) ने उसे सब ओर से घेर लिया।

**पर्यरक्षन्त तां तत्र शकुन्ता मेनकात्मजाम् ।**
**उपस्प्रष्टुं गतश्चाहमपश्यं शयितामिमाम् ॥३५॥**
**निर्जने विपिने रम्ये शकुन्तैः परिवारिताम् ।**
**आनयित्वा ततश्चैनां दुहितृत्वे न्यवेशयम् ॥३६॥**

इस प्रकार वहाँ शकुन्त ही मेनका कुमारी की रक्षा कर रहे थे। उसी समय स्नान करने के लिए जब मैं मालिनी के तट पर गया, तो देखा—यह रमणीय निर्जन वन में पक्षियों से घिरी हुई सो रही है। इस कन्या को वहाँ से लाकर मैंने इसे अपनी पुत्री के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

**शरीरकृत् प्राणदाता यस्य चान्नानि भुञ्जते ।**
**क्रमेणैते त्रयोऽप्युक्ताः पितरो धर्मशासने ॥३७॥**

जो गर्भाधान के द्वारा शरीर का निर्माण करता है, जो अभयदान देकर प्राणों की रक्षा करता है तथा

---

१. यह इतिहास कितना सत्य है, निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। रोचकता लाने के लिए कभी-कभी कल्पना का सहारा लिया जाता है। हो सकता है, यहाँ भी कवि-कल्पना ही हो। प्रसङ्ग को दृष्टि में रखते हुए हमने इसे यहाँ समाविष्ट कर दिया है।

जिसका अन्न भोजन किया जाता है. धर्मशास्त्र में क्रमशः ये तीनों पुरुष पिता कहे गये हैं ।

**निर्जने तु वने यस्माच्छकुन्तैः परिवारिता ।**
**शकुन्तलेति नामास्याः कृतं चापि ततो मया ॥३८॥**

निर्जन वन में इसे शकुन्तों ने घेर रखा था, इसलिए 'शकुन्तान् लाति रक्षकत्वेन गृह्णाति' इस व्युत्पत्ति के अनुसार इस कन्या का नाम मैंने शकुन्तला रख दिया ।

शकुन्तलोवाच

**एतदाचष्ट पृष्टः सन् मम जन्म महर्षये ।**
**सुतां कण्वस्य मामेवं विद्धि त्वं मनुजाधिप ॥३९॥**

**शकुन्तला बोली**—राजन् ! उन महर्षि के पूछने पर पिता कण्व ने मेरे जन्म का यह वृत्तान्त उन्हें बताया था । इस प्रकार आप मुझे कण्व की ही पुत्री समझिए ।

दुष्यन्त उवाच

**सुव्यक्तं राजपुत्री त्वं यथा कल्याणि भाषसे ।**
**भार्या मे भव सुश्रोणि ब्रूहि किं करवाणि ते ॥४०॥**

**दुष्यन्त बोले**—कल्याणि ! तुमने जो कुछ कहा है, उससे भली-भाँति स्पष्ट हो गया कि तुम क्षत्रिय कन्या हो । सुश्रोणि ! तुम मेरी पत्नी बन जाओ । बोलो, मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिए क्या करूँ ?

**इच्छामि त्वां वरारोहे भजमानामनिन्दिते ।**
**त्वदर्थं मां स्थितं विद्धि त्वद्गतं हि मनो मम ॥४१॥**

वरारोहे ! तुम्हारा शील और स्वभाव प्रशंसा के योग्य है । मैं चाहता हूँ, तुम मुझे स्वेच्छा से स्वीकार करो । मैं तुम्हारे लिए ही यहाँ ठहरा हूँ । मेरा मन तुममें ही लगा हुआ है ।

**सा त्वं मम सकामस्य सकामा वरवर्णिनि ।**
**गान्धर्वेण विवाहेन भार्या भवितुमर्हसि ॥४२॥**

सुन्दरि ! मैं तुम्हें पाने के लिए इच्छुक (उत्सुक) हूँ । तुम भी मुझे पाने की इच्छा रखकर गन्धर्व विवाह के द्वारा मेरी पत्नी बन जाओ ।

**आत्मनो बन्धुरात्मैव गतिरात्मैव चात्मनः ।**
**आत्मनैवात्मनो दानं कर्तुमर्हसि धर्मतः ॥४३॥**

आत्मा ही अपना बन्धु है । आत्मा ही अपना आश्रय है, अतः तुम स्वयं ही धर्मपूर्वक आत्मसमर्पण करने योग्य हो ।

शकुन्तलोवाच

**यदि धर्मपथस्त्वेष यदि चात्मा प्रभुर्मम ।**
**प्रदाने पौरवश्रेष्ठ शृणु मे समयं प्रभो ॥४४॥**

**शकुन्तला ने कहा**—पौरवश्रेष्ठ ! यदि यह गन्धर्व विवाह धर्म का मार्ग है, यदि आत्मा स्वयं ही अपना दान करने में समर्थ है तो इसके लिए मैं तैयार हूँ, किन्तु प्रभो ! मेरी एक शर्त है, उसे सुन लीजिए ।

**मयि जायेत यः पुत्रः स भवेत् त्वदनन्तरः ।**
**यद्येतदेवं दुष्यन्त अस्तु मे सङ्गमस्त्वया ॥४५॥**

महाराज दुष्यन्त ! मेरे गर्भ से आपके द्वारा जो पुत्र उत्पन्न हो, वही आपके बाद युवराज हो । यदि आपको यह शर्त स्वीकार हो, तो आपके साथ मेरा समागम हो सकता है ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमस्त्विति तां राजा प्रत्युवाचाविचारयन् ।**
**जग्राह विधिवत् पाणावुवास च तया सह ॥४६॥**
**विश्वास्य चैनां स प्रायादब्रवीच्च पुनः पुनः ।**
**प्रेषयिष्ये तवार्थाय वाहिनीं चतुरङ्गिणीम् ॥४७॥**

**वैशम्पायन जी कहते हैं**—जनमेजय ! शकुन्तला की यह बात सुनकर राजा दुष्यन्त ने बिना कुछ सोचे-विचारे यह उत्तर दे दिया—'ऐसा ही होगा ।' ऐसा कहकर दुष्यन्त ने शकुन्तला का विधिवत् पाणि-ग्रहण किया और उसके साथ एकान्तवास किया, फिर उसे विश्वास दिलाकर विदा हुए । जाते समय उन्होंने बार-बार कहा—"तुम्हें राजमहल में लिवा ले जाने के लिए मैं चतुरङ्गिणी सेना भेजूँगा ।"

**मुहूर्तयाते तस्मिंस्तु कण्वोऽप्याश्रममागमत् ।**
**शकुन्तला च पितरं ह्रिया नोपजगाम तम् ॥४८॥**

राजा दुष्यन्त को गये दो ही घड़ी बीती थीं कि महर्षि कण्व भी आश्रम में आ गये, परन्तु शकुन्तला लज्जावश पहले के समान पिता के समीप नहीं गई ।

**विज्ञायाथ च तां कण्वो दिव्यज्ञानो महातपाः ।**
**उवाच भगवान् प्रीतः पश्यन् दिव्येन चक्षुषा ॥४९॥**

महातपस्वी भगवान् कण्व दिव्यज्ञान से सम्पन्न थे । उन्होंने दिव्य दृष्टि से देखकर शकुन्तला की तात्कालिक अवस्था को जान लिया, अतः वे प्रसन्न होकर बोले—

**त्वयाद्य भद्रे रहसि मामनादृत्य यः कृतः ।**
**पुंसा सह समायोगो न स धर्मोपघातकः ॥५०॥**

भद्रे ! आज तुमने मेरी अवहेलना करके जो एकान्त में किसी पुरुष के साथ सम्बन्ध स्थापित किया है, वह तुम्हारे धर्म का नाशक नहीं है ।

**धर्मात्मा च महात्मा च दुष्यन्तः पुरुषोत्तमः ।**
**अभ्यगच्छः पतिं यत् त्वं भजमानं शकुन्तले ॥५१॥**
**महात्मा जनिता लोके पुत्रस्तव महाबलः ।**
**य इमां सागरापाङ्गीं कृत्स्नां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥५२॥**

शकुन्तले ! महामना दुष्यन्त धर्मात्मा और श्रेष्ठ पुरुष हैं । वे तुम्हें चाहते थे । तुमने योग्य पति के साथ सम्बन्ध स्थापित किया है, अतः लोक में तुम्हारे गर्भ से एक महाबली और महात्मा पुत्र उत्पन्न होगा जो समुद्र से घिरी हुई इस सम्पूर्ण पृथिवी का उपभोग करेगा । (समुद्र-पर्यन्त पृथिवी का चक्रवर्ती शासक होगा)

**प्रतिज्ञाय तु दुष्यन्ते प्रतियाते शकुन्तलाम् ।**
**गर्भं सुषाव वामोरूः कुमारममितौजसम् ॥५३॥**

उधर राजा दुष्यन्त शकुन्तला से पूर्वोक्त प्रतिज्ञा करके चले गये (और शकुन्तला को भूल गये अथवा जान-बूझकर नहीं बुलाया) इधर आश्रम में समय आने पर शकुन्तला ने एक अमित पराक्रमी कुमार को जन्म दिया ।

**जातकर्मादिसंस्कारं कण्वः पुण्यकृतां वरः ।**
**विधिवत् कारयामास वर्धमानस्य धीमतः ॥५४॥**

पुण्यवानों में श्रेष्ठ महायशस्वी कण्व ने उस प्रतिदिन बढ़ते हुए बुद्धिमान् बालक के जातकर्म आदि सभी संस्कार विधि-विधान से कराये ।

**सिंहव्याघ्रान् वराहांश्च षड्वर्ष एव बाल सः ।**
**बबन्ध वृक्षे बलवानाश्रमस्य समीपतः ॥५५॥**

छह वर्ष की अवस्था में ही वह बलवान् बालक सिंहों, व्याघ्रों, वराहों को पकड़कर खींच लाता और आश्रम के समीपवर्ती वृक्षों से बाँध देता था ।

**आरोहन् दमयँश्चैव क्रीडंश्च परिधावति ।**
**ततोऽस्य नाम चक्रुस्ते कण्वाश्रमनिवासिनः ॥५६॥**

फिर वह सबका दमन करते हुए उनकी पीठ पर चढ़ जाता और क्रीड़ा करते हुए उन्हें सब ओर दौड़ाता हुआ दौड़ता था । यह देख कण्व-आश्रम में रहनेवाले ऋषियों ने उसका नामकरण किया—

**अस्त्वयं सर्वदमनः सर्वं हि दमयत्यसौ ।**
**स सर्वदमनो नाम कुमारः समपद्यत ॥५७॥**

"यह सब जीवों का दमन करता है, अतः यह 'सर्वदमन' नाम से प्रसिद्ध हो"—तबसे उस कुमार का नाम सर्वदमन हो गया ।

**तस्य तद्बलमाज्ञाय कण्वः शिष्यानुवाच ह ।**
**भर्तुः प्रापयतागारं सहपुत्रां शकुन्तलाम् ॥५८॥**

उस बालक के बल को समझकर कण्व ने अपने शिष्यों से कहा—"तुम लोग शकुन्तला को पुत्रसहित इसके पति के घर में पहुँचा दो—

**नारीणां चिरवासो हि बान्धवेषु न रोचते ।**
**कीर्तिचारित्रधर्मघ्नस्तस्मान्नयत मा चिरम् ॥५९॥**

"स्त्रियों का अपने भाई-बन्धुओं के यहाँ अधिक समय तक रहना अच्छा नहीं होता । वह उनकी कीर्ति, शील तथा पातिव्रत धर्म का नाश करनेवाला होता है, अतः इसे शीघ्र पति के घर में पहुँचा दो ।"

**तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे प्रातिष्ठन्त महौजसः ।**
**शकुन्तलां पुरस्कृत्य दुष्यन्तस्य पुरं प्रति ॥६०॥**

"बहुत अच्छा" कहकर वे सभी महातेजस्वी शिष्य (पुत्रसहित) शकुन्तला को आगे करके दुष्यन्त के नगर की ओर चले ।

**निवेदयित्वा ते सर्वे आश्रमं पुनरागताः ।**
**पूजयित्वा यथान्यायमब्रवीच्च शकुन्तला ॥६१॥**

सब शिष्यगण शकुन्तला को राजसभा में छोड़ और राजा को महर्षि का संदेश सुनाकर पुनः आश्रम को लौट आये । शकुन्तला न्यायपूर्वक महाराज के प्रति सम्मान का भाव प्रकट करते हुए बोली—

**अयं पुत्रस्त्वया राजन् मय्युत्पन्नः सुरोपमः ।**
**यथासमयमेतस्मिन् वर्तस्व पुरुषोत्तम ॥६२॥**

"राजन् ! यह आपका पुत्र है । यह देवोपम कुमार आपके द्वारा मेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ है । पुरुषोत्तम ! इसके लिए आपने मेरे साथ जो शर्त रखी है, उसका पालन कीजिए अर्थात् इसे युवराज-पद पर अभिषिक्त कीजिए ।

**सोऽथ श्रुत्वैव तद् वाक्यं तस्या राजा स्मरन्नपि ।**
**अब्रवीन्न स्मरामीति कस्य त्वं दुष्टतापसि ॥६३॥**

राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला का वह वचन सुनकर सब बातों का स्मरण रखते हुए भी उससे यह कहा—"दुष्ट तपस्विनि ! मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है । तुम किसकी स्त्री हो ?"

**धर्मकामार्थसम्बन्धं न स्मरामि त्वया सह ।**
**गच्छ वा तिष्ठ वा कामं यद् वापीच्छसि तत्कुरु ॥६४॥**

"तुम्हारे साथ मेरा धर्म, काम अथवा अर्थ को लेकर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुआ है, इस बात का मुझे तनिक भी स्मरण नहीं है । तुम इच्छानुसार जाओ या रहो अथवा जैसी तुम्हारी रुचि हो, वैसा करो ।"

**सैवमुक्ता वरारोहा व्रीडितेव तपस्विनी ।**
**निःसंज्ञेव दुःखेन तस्थौ स्थूणेव निश्चला ॥६५॥**

सुन्दर अङ्गोंवाली तपस्विनी शकुन्तला दुष्यन्त के ऐसा कहने पर लज्जित हो, दुःख से बेहोश-सी हो गई और खंभे की भाँति निश्चल-भाव से खड़ी रह गई ।

**सा मुहूर्तमिव ध्यात्वा क्रुद्धा वचनमब्रवीत् ।**
**जानन्नपि महाराज कस्मादेवं प्रभाषसे ॥६६॥**

दो घड़ी तक कुछ सोचकर फिर क्रुद्ध होकर वह बोली—"महाराज ! आप सब-कुछ जान-बूझकर भी ऐसी बात क्यों कहते हैं ?

**अत्र ते हृदयं वेद सत्यस्यैवानृतस्य च ।**
**कल्याणं वद साक्ष्येण माऽऽत्मानमवमन्यथाः ॥६७॥**

"इस विषय में क्या सत्य है और क्या असत्य—आपका हृदय जानता है । उसी को साक्षी बनाकर, हृदय पर हाथ रखकर सच्ची बात कहिए, जिससे आपका कल्याण हो । आप अपने आत्मा की अवहेलना मत कीजिए ।

**योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।**
**किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा ॥६८॥**

"जो अपने वास्तविक रूप को छिपाकर अपने आपको और ही कुछ दिखाता है, अपनी आत्मा का अपहरण करनेवाले उस चोर ने कौन-सा पाप नहीं किया ?

**एकोऽहमस्मीति च मन्यसे त्वं**
**न हृच्छयं वेत्सि मुनिं पुराणम् ।**
**यो वेदिता कर्मणः पापकस्य**
**तस्यान्तिके त्वं वृजिनं करोषि ॥६९॥**

"आप समझते हैं कि उस समय मैं अकेला था (कोई देखनेवाला नहीं था) परन्तु आपको पता नहीं कि वह सनातन मुनि (परमात्मा) सबके हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है । वह सबके पाप-पुण्य को जानता है और आप उसी के निकट रहकर पाप कर रहे हैं ।

**स्वयं प्राप्तेति मामेवं मावमंस्था पतिव्रताम् ।**
**अर्घार्हां नार्चयसि मां स्वयं भार्यामुपस्थिताम् ॥७०॥**

"मैं स्वयं आपके पास आई हूँ, ऐसा समझकर मुझ पतिव्रता पत्नी का अनादर मत करो । मैं आपके द्वारा आदर पाने योग्य हूँ और स्वयं आपके निकट आयी हुई आपकी पत्नी हूँ, तथापि आप मेरा आदर नहीं करते हैं ?

**किमर्थं मां प्राकृतवदुपप्रेक्षसि संसदि ।**
**न खल्वहमिदं शून्ये रौमि किं न शृणोषि मे ॥७१॥**

"आप किस लिए गँवार पुरुषों की भाँति भरी सभा में मुझे अपमानित कर रहे हैं ? मैं अरण्य-रोदन (सूने जंगल में रोना) तो नहीं कर रही हूँ ? फिर आप मेरी बात क्यों नहीं सुनते ?

**यदि मे याचमानाया वचनं न करिष्यसि ।**
**दुष्यन्त शतधा मूर्धा ततस्तेऽद्य स्फुटिष्यति ॥७२॥**

"महाराज दुष्यन्त ! यदि मेरे उचित याचना करने पर भी आप मेरी बात नहीं मानेंगे, तो आज ही आपके सिर के सैकड़ों टुकड़े हो जाएँगे ।

**भार्यां पतिः सम्प्रविश्य स यस्माज्जायते पुनः ।**
**जायायास्तद्धि जायात्वं पौराणाः कवयो विदुः ॥७३॥**

"पति ही पत्नी के भीतर गर्भरूप से प्रवेश करके पुत्र के रूप में जन्म लेता है । यही जाया (जन्म देने-वाली स्त्री) का जायात्व है, जिसे पुराणवेत्ता विद्वान् जानते हैं ।

**पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः ।**
**तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥७४॥**

"पुत्र 'पुत्'=दुःख नामक नरक से पिता का

त्राण करता है, अतः साक्षात् ब्रह्माजी ने उसे पुत्र कहा है।

**सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती।□**
**सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥७५**

"वही भार्या है, जो गृह-कार्य में कुशल हो। वही भार्या है जो सन्तानवती हो। वही भार्या है, जो अपने पति को प्राणों के समान प्रिय मानती हो और वही भार्या है, जो पतिव्रता हो।

**अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।□**
**भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥७६॥**

"भार्या पुरुष का आधा अङ्ग है। भार्या उसका सबसे उत्तम मित्र है। भार्या धर्म, अर्थ और काम का मूल है तथा संसार-सागर से पार उतरने की इच्छावाले पुरुष के लिए भार्या ही प्रमुख साधन है।

**भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्या गृहमेधिनः।□**
**भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियावन्तः ॥७७॥**

"पत्नीवाले ही यज्ञादि कर्म कर सकते हैं, सपत्नीक पुरुष ही सच्चे गृहस्थ हैं। पत्नीवाले पुरुष सुखी एवं प्रसन्न रहते हैं और जो पत्नी से युक्त हैं, वे ही लक्ष्मी से सम्पन्न हैं (क्योंकि पत्नी ही गृह-लक्ष्मी है।)

**सखायः प्रविविक्तेषु भवन्त्येताः प्रियंवदाः।**
**पितरो धर्मकार्येषु भवन्त्यार्तस्य मातरः ॥७८॥**

"पत्नी ही एकान्त में प्रिय वचन बोलनेवाली सङ्गिनी या मित्र है। धर्मकार्यों में स्त्रियाँ पिता की भाँति पति की हितैषिणी होती हैं और संकट के समय माता की भाँति दुःख में हाथ बँटातीं तथा कष्ट-निवारण करती हैं।

**कान्तारेष्वपि विश्रामो जनस्याध्वनिकस्य वै।**
**यः सदारः स विश्वास्यस्तस्माद्दाराः परा गतिः ॥७९**

"परदेश में यात्रा करनेवाले पुरुष के साथ यदि उसकी पत्नी हो तो वह घोर घने जंगल में भी विश्राम पा सकता है—सुख से रह सकता है। लोक-व्यवहार में भी जिसके साथ स्त्री है, उसी पर सब विश्वास करते हैं, अतः स्त्री ही पुरुष की श्रेष्ठ गति है।

**सुसंरब्धोऽपि रामाणां न कुर्यादप्रियं नरः।**
**रतिं प्रीतिं च धर्मं च तास्वायत्तमवेक्ष्य हि ॥८०॥**

"रति, प्रीति तथा धर्म—पत्नी के ही अधीन हैं, ऐसा सोचकर पुरुष को चाहिए कि वह कुपित होने पर भी पत्नी के साथ कोई अप्रिय व्यवहार न करे।

**आत्मनो जन्मनः क्षेत्रं पुण्यं रामाः सनातनम्।**
**ऋषीणामपि का शक्तिः स्रष्टुं रामामृते प्रजाम् ॥८१॥**

"स्त्रियाँ पति के आत्मा के जन्म लेने का सनातन पुण्यक्षेत्र हैं। ऋषियों में भी क्या शक्ति है कि बिना स्त्री के सन्तान उत्पन्न कर सकें!

**प्रतिपद्य यदा सूनुर्धरणीरेणुगुण्ठितः।□**
**पितुराश्लिष्यतेऽङ्गानि किमस्त्यभ्यधिकं ततः ॥८२॥**

"जब पुत्र धरती की धूल में सना हुआ पास आता है और पिता के अङ्गों से लिपट जाता है, उस समय जो सुख मिलता है, उससे बढ़कर और क्या सुख हो सकता है?

**स त्वं स्वयमभिप्राप्तं साभिलाषमिमं सुतम्।**
**प्रेक्षमाणं कटाक्षेण किमर्थमवमन्यसे ॥८३॥**

"आपका यह पुत्र स्वयं आपके पास आया है और प्रेमपूर्ण तिरछी चितवन से आपकी ओर देखता हुआ आपकी गोद में बैठने के लिए उत्सुक है, फिर आप इसका तिरस्कार क्यों कर रहे हैं?

**ब्राह्मणो द्विपदां श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम्।**
**गुरुर्गरीयसां श्रेष्ठः पुत्रः स्पर्शवतां वरः ॥८४॥**

"मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, चौपायों में गौ सर्वश्रेष्ठ है, गौरवशाली व्यक्तियों में गुरु श्रेष्ठ है और स्पर्श करने योग्य वस्तुओं में पुत्र ही सबसे श्रेष्ठ है।

**ननु नामाङ्कमारोप्य स्नेहाद् ग्रामान्तरं गताः।**
**मूर्ध्नि पुत्रानुपाघ्राय प्रतिनन्दन्ति मानवाः ॥८५॥**

"प्रायः देखा जाता है कि दूसरे ग्राम की यात्रा करके लौटे हुए मनुष्य घर आने पर बड़े स्नेह से पुत्रों को गोद में उठा लेते हैं तथा उनके मस्तक सूँघकर आनन्दित होते हैं।

**वेदेष्वपि वदन्तीमं मन्त्रग्रामं द्विजातयः।**
**जातकर्मणि पुत्राणां तवापि विदितं तथा ॥८६॥**

"पुत्रों के जातकर्म-संस्कार के समय वेदज्ञ ब्राह्मण जिस वैदिक मन्त्रसमूह का उच्चारण करते हैं, उसे आप भी जानते हैं। (वह मन्त्रसमुदाय निम्न है—)

**अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधिजायसे।**
**आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥८७॥**

"हे बालक ! तुम मेरे अङ्ग-अङ्ग से प्रकट हुए हो, हृदय से उत्पन्न हुए हो। तुम पुत्र नाम से प्रसिद्ध मेरे आत्मा ही हो, अतः वत्स ! तुम सौ वर्षों तक जीवित रहो।

**कामं त्वया परित्यक्ता गमिष्यामि स्वमाश्रमम्।**
**इमं तु बालं संत्यक्तुं नार्हस्यात्मजमात्मनः ॥८८॥**

"महाराज ! आपके द्वारा स्वेच्छा से त्याग दी जाने पर मैं पुनः अपने आश्रम को लौट जाऊँगी, परन्तु आपको अपने इस नन्हें-से पुत्र का त्याग नहीं करना चाहिए।"

दुष्यन्त उवाच

**न पुत्रमभिजानामि त्वयि जातं शकुन्तले।**
**असत्यवचना नार्यः कस्ते श्रद्धास्यते वचः ॥८९॥**

**दुष्यन्त बोले**—शकुन्तले ! मैं तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न इस पुत्र को नहीं जानता। स्त्रियाँ प्रायः झूठ बोलनेवाली होती हैं[1], अतः तुम्हारी बात पर कौन विश्वास करेगा ?

**सर्वमेतत् परोक्षं मे यत् त्वं वदसि तापसि।**
**नाहं त्वामभिजानामि यथेष्टं गम्यतां त्वया ॥९०॥**

तुम जो कुछ कहती हो, वह सब मेरी आँखों के सामने नहीं हुआ। हे तापसी ! मैं तुम्हें नहीं पहचानता। तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, वहाँ चली जाओ।

शकुन्तलोवाच

**राजन् सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यसि।**
**आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यसि ॥९१॥**

**शकुन्तला ने कहा**—राजन् ! आप दूसरों के सरसों के बराबर दोषों को तो देखते हैं किन्तु अपने बेल के समान बड़े-बड़े दोषों को देखकर भी नहीं देखते।

**मूर्खो हि जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः।**
**अशुभं वाक्यमादत्ते पुरीषमिव सूकरः ॥९२॥**

मूर्ख मनुष्य परस्पर वार्तालाप करनेवाले दूसरे लोगों की भली-बुरी बातें सुनकर उनमें से बुरी बातों का ही ग्रहण करता है, ठीक वैसे ही, जैसे सूअर अन्य वस्तुओं के रहते हुए भी विष्ठा को ही अपना भोजन बनाता है।

**प्राज्ञस्तु जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः।**
**गुणवद् वाक्यमादत्ते हंसः क्षीरमिवाम्भसः ॥९३॥**

परन्तु विद्वान् मनुष्य दूसरे वक्ताओं के शुभाशुभ वचनों को सुनकर उनमें से गुणयुक्त बातों को ही अपनाता है, ठीक उसी प्रकार, जैसे हंस पानी को छोड़कर केवल दूध को ग्रहण कर लेता है।

**अन्यान् परिवदन् साधुर्यथा हि परितप्यते।**
**तथा परिवदन्नन्यांस्तुष्टो भवति दुर्जनः ॥९४॥**

साधु पुरुष दूसरों की निन्दा का अवसर आने पर जैसे अत्यन्त सन्तप्त हो उठता है, ठीक उसी प्रकार दुष्ट पुरुष दूसरों की निन्दा का अवसर मिलने पर बहुत सन्तुष्ट होता है।

**सत्यधर्मच्युतात् पुंसः क्रुद्धादाशीविषादिव।**
**अनास्तिकोऽप्युद्विजते जनः किं पुनरास्तिकः ॥९५॥**

जो सत्यरूपी धर्म से भ्रष्ट है, वह पुरुष क्रोध में भरे हुए विषधर सर्प के समान भयंकर है। उससे नास्तिक भी डरता है, फिर आस्तिक की तो बात ही क्या है ?

**स्वयमुत्पाद्य वै पुत्रं सदृशं यो न मन्यते।**
**तस्य देवाः श्रियं घ्नन्ति न च लोकानुपाश्नुते ॥९६॥**

जो स्वयं हि अपने सदृश पुत्र को उत्पन्न करके उसका सम्मान नहीं करता, उसकी सम्पत्ति को देवता नष्ट कर देते हैं तथा वह उत्तम लोकों में नहीं जाता।

**स त्वं नृपतिशार्दूल पुत्रं न त्यक्तुमर्हसि।**
**आत्मानौ सत्यधर्मौ च पालयन् पृथिवीपते ॥९७॥**

नृपश्रेष्ठ ! प्रजानाथ ! आप अपने आत्मा, सत्य और धर्म का पालन करते हुए अपने सिर पर कपट का बोझ न उठाएँ और अपने पुत्र को त्यागने का (पुत्र-त्याग का) पाप न करें।

**वरं कूपशताद् वापी वरं वापीशतात् क्रतुः।**
**वरं क्रतुशतात् पुत्रः सत्यं पुत्रशताद् वरम् ॥९८॥**

सौ कुएँ खुदवाने की अपेक्षा एक बावड़ी बनवाना उत्तम है। सौ बावड़ी खुदवाने की अपेक्षा एक यज्ञ कर लेना उत्तम है। सौ यज्ञ करने की अपेक्षा एक पुत्र को जन्म देना उत्तम है और सौ पुत्रों को उत्पन्न करने की अपेक्षा भी सत्य का पालन श्रेष्ठ है।

---

१. झूठ महाराज दुष्यन्त स्वयं बोल रहे हैं और दोष नारी जाति पर लगा रहे हैं। आश्चर्य ! महान् आश्चर्य !

**अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।**
**अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥९९॥**

एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ एक ओर तथा सत्य-भाषण का पुण्य दूसरी ओर यदि तराजू पर रखा जाए तो हजार अश्वमेध यज्ञों की अपेक्षा सत्य का पलड़ा ही भारी होता है ।

**नास्ति सत्यसमो धर्मो न सत्याद् विद्यते परम् ।**
**न हि तीव्रतरं किंचिदनृतादिह विद्यते ॥१००॥**

सत्य के समान कोई धर्म नहीं है । सत्य से बढ़कर कुछ भी नहीं है और असत्य से बढ़कर तीव्रतर पाप इस संसार में और कोई नहीं है ।

**राजन् सत्यं परं ब्रह्म सत्यं च समयः परः ।**
**मा त्याक्षीः समयं राजन् सत्यं संगतमस्तु ते ॥१०१॥**

राजन् ! सत्य परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप है । सत्य सबसे बड़ा नियम है, अतः महाराज ! आप अपनी सत्य प्रतिज्ञा को न छोड़िए । सत्य आपका जीवन-सङ्गी हो ।

**त्वामृतेऽपि हि दुष्यन्त शैलराजावतंसकाम् ।**
**चतुरन्तामिमामुर्वी पुत्रो मे पालयिष्यति ॥१०२॥**

महाराज दुष्यन्त ! मैं एक बात कहे देती हूँ—आपके सहयोग के बिना भी मेरा यह पुत्र चारों समुद्रों से घिरी हुई गिरिराज हिमालयरूपी मुकुट से सुशोभित इस सम्पूर्ण वसुन्धरा का शासन करेगा !

वैशम्पायन उवाच

**एतावदुक्त्वा राजानं प्रातिष्ठत शकुन्तला ।**
**अथान्तरिक्षाद् दुष्यन्तं वागुवाचाशरीरिणी ॥१०३॥**

**वैशम्पायन जी कहते हैं**—जनमेजय! राजा दुष्यन्त से ऐसा कहकर शकुन्तला वहाँ से चलने को उद्यत हुई । इतने में ही दुष्यन्त को सम्बोधित करते हुए आकाशवाणी[1] हुई—

**भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम् ।**
**त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥१०४॥**

दुष्यन्त ! तुम अपने पुत्र का पालन करो । शकुन्तला का अनादर मत करो । तुमने ही इस गर्भ का आधान किया था । शकुन्तला सत्य कहती है ।

दुष्यन्त उवाच

**शृण्वन्त्वेतद् भवन्तोऽस्य देवदूतस्य भाषितम् ।**
**अहं चाप्येवमेवैनं जानामि स्वयमात्मजम् ॥१०५॥**
**यद्यहं वचनादस्या गृह्णीयामिममात्मजम् ।**
**भवेद्धि शंक्यो लोकस्य नैव शुद्धो भवेदयम् ॥१०६॥**

**दुष्यन्त ने कहा**—राजसभा में उपस्थित आप लोग इस देवदूत के कथन को भली भाँति सुन लें । मैं भी अपने इस पुत्र को इसी रूप में जानता हूँ । परन्तु यदि केवल शकुन्तला के कहने से मैं इसे ग्रहण कर लेता, तो सब लोग इसपर सन्देह करते और यह बालक विशुद्ध नहीं माना जाता ।"

वैशम्पायन उवाच

**तं विशोध्य तदा राजा देवदूतेन भारत ।**
**हृष्टः प्रमुदितश्चापि प्रतिजग्राह तं सुतम् ॥१०७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे भारत ! इस प्रकार देवदूत के वचन से उस बालक की शुद्धता प्रमाणित करके राजा दुष्यन्त ने हर्ष और आनन्द में मग्न हो अपने उस पुत्र को ग्रहण किया ।

**तां चैव भार्यां दुष्यन्तः पूजयामास धर्मतः ।**
**अब्रवीच्चैव तां राजा सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥१०८॥**

दुष्यन्त ने अपनी पत्नी शकुन्तला का भी धर्म-पूर्वक आदर-सत्कार किया और उसे सान्त्वना प्रदान करते हुए कहा—

**कृतो लोकपरोक्षोऽयं सम्बन्धो वै त्वया सह ।**
**तस्मादेतन्मया देवि त्वच्छुद्ध्यर्थं विचारितम् ॥१०९॥**

"देवि ! मैंने तुम्हारे साथ जो विवाह-सम्बन्ध स्थापित किया था, उसे साधारण जनता नहीं जानती थी, अतः तुम्हारी शुद्धि के लिए ही मैंने यह उपाय सोचा था ।

**यच्च कोपितयात्यर्थं त्वयोक्तोऽस्म्यप्रियं प्रिये ।**
**प्रणयिन्या विशालाक्षि तत्क्षान्तं ते मया शुभे ॥११०**

"हे प्रिये ! विशाल-लोचने ! तुमने भी क्रुद्ध होकर जो मेरे लिए अत्यन्त अप्रिय वचन कहे हैं, वे सब मेरे प्रति अत्यन्त प्रेम होने के कारण ही कहे हैं, अतः शुभे ! मैंने तुम्हारा वह सब अपराध क्षमा कर दिया है ।"

---

१. आकाशवाणी केवल कविकल्पना है । महाभारत इतिहास के साथ-साथ काव्य भी है । काव्य में रोचकता लाने के लिए कवि-कल्पना आवश्यक है । एक श्लोक आगे ही आकाशवाणी को **'देवदूतस्य भाषितम्'** कह दिया है ।

**तामेवमुक्त्वा राजर्षिर्दुष्यन्तो महिषीं प्रियाम् ।**
**वासोभिरन्नपानैश्च पूजयामास भारत ॥१११॥**

हे जनमेजय ! अपनी प्यारी रानी से ऐसी बात कहकर राजर्षि दुष्यन्त ने अन्न-पान और वस्त्र आदि द्वारा उसका आदर-सत्कार किया ।

**दुष्यन्तस्तु तदा राजा पुत्रं शाकुन्तलं तदा ।**
**भरतं नामतः कृत्वा यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥११२॥**

तत्पश्चात् महाराज दुष्यन्त ने शकुन्तला-कुमार का नाम 'भरत' रखकर उसे युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया ।

**स राजा चक्रवर्त्यासीत् सार्वभौमः प्रतापवान् ।**
**ईजे च बहुभिर्यज्ञैर्यथा शक्रो मरुत्पतिः ॥११३॥**

महाराज भरत सम्पूर्ण भूमण्डल में विख्यात, प्रतापी एवं चक्रवर्ती सम्राट् थे । उन्होंने देवराज इन्द्र की भाँति बहुत-से यज्ञों का अनुष्ठान किया ।

**भरताद् भारती कीर्तिर्येनेदं भारतं कुलम् ।**
**अपरे ये च पूर्वे वै भारता इति विश्रुताः ॥११४॥**

भरत से ही इस भूखण्ड का नाम भारत (अथवा भूमि का नाम भारती) हुआ । उन्हीं से यह कौरव-वंश भरतवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ । उनके पश्चात् उस कुल में पहले तथा आज भी जो राजा हो गये हैं, वे भारत (भरतवंशी) कहे जाते हैं ।

**इति महाभारते आदिपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥३॥**

# चतुर्थोऽध्यायः

## शान्तनु का जन्म, गङ्गा के साथ उनका विवाह और भीष्म का जन्म

वैशम्पायन उवाच

**भरतस्यान्वये जाताः सत्त्ववन्तो नराधिपाः ।**
**देवर्षिकल्पा नृपते बहवो राजसत्तमाः ॥१॥**
**येषामपरिमेयानि नामधेयानि सर्वशः ।**
**तेषां प्रतीपो राजाऽऽसीत् सर्वभूतहितः सदा ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! भरत के वंश में सभी नरेश धैर्यवान् एवं शक्तिशाली थे । उस वंश में बहुत-से श्रेष्ठ नृपति देवर्षियों के समान थे जिनके सम्पूर्ण नामों की गणना असम्भव है । उन्हीं राजाओं में एक राजा थे प्रतीप । वे सदा सम्पूर्ण प्राणियों के हित में संलग्न रहते थे ।

**तपस्तेपे सुतस्यार्थे सभार्यः कुरुनन्दन ।**
**शान्तस्य जज्ञे सन्तानस्तस्मादासीत् स शान्तनुः ॥३॥**

कुरुनन्दन ! राजा प्रतीप अपनी पत्नी को साथ लेकर पुत्र के लिए तपस्या करने लगे । तप के फल-स्वरूप उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई । शान्त पिता की सन्तान होने से वे शान्तनु कहलाए ।

**स्वे च राज्येऽभिषिच्यैनं वनं राजा विवेश ह ।**
**बभूव मृगयाशीलः शान्तनुर्वनगोचरः ॥४॥**

[युवा होने पर] महाराज प्रतीप ने शान्तनु को अपने राज्य पर अभिषिक्त कर दिया तथा स्वयं वन में प्रवेश किया । शान्तनु हिंसक पशुओं को मारने के उद्देश्य से वन में घूमते रहते थे ।

**स कदाचिन्महाराज ददर्श परमां स्त्रियम् ।**
**जाज्वल्यमानां वपुषा साक्षाच्छ्रियमिवापराम् ॥५॥**

महाराज जनमेजय ! एक दिन उन्होंने एक परम सुन्दरी नारी देखी, जो अपने तेजस्वी शरीर से ऐसे प्रकाशित हो रही थी, मानो साक्षात् लक्ष्मी ही दूसरा शरीर धारण करके आ गई हो ।

**तां दृष्ट्वा हृष्टरोमाभूद् विस्मितो रूपसम्पदा ।**
**पिबन्निव च नेत्राभ्यां नातृप्यत नराधिपः ॥६॥**

उसे देखते ही राजा शान्तनु के शरीर में रोमाञ्च हो आया । वे उसके सौन्दर्य से आश्चर्यचकित हो उठे और दोनों नेत्रों द्वारा उसकी सौन्दर्य-सुधा का पान करते हुए भी तृप्त नहीं हो रहे थे ।

**सा च दृष्ट्वैव राजानं विचरन्तं महाद्युतिम् ।**
**स्नेहादागतसौहार्दा नातृप्यत विलासिनी ॥७॥**

वह भी वहाँ विचरते उस महातेजस्वी राजा शान्तनु को देखते ही मुग्ध हो गई । स्नेहवश उसके हृदय में सौहार्द का उदय हो आया । वह विलासिनी राजा को देखते-देखते तृप्त नहीं होती थी ।

**तामुवाच ततो राजा सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया गिरा।**
**देवी[1] वा दानवी वा त्वं भार्या मे भव शोभने ॥८॥**

तब राजा शान्तनु ने उसे सान्त्वना देते हुए मधुर वाणी में कहा—"शोभने ! तुम देवी[1] हो अथवा दानवी, मैं तुमसे याचना करता हूँ कि तुम मेरी पत्नी बन जाओ।"

**उवाच चैव राज्ञः सा ह्लादयन्ती मनो गिरा।**
**भविष्यामि महीपाल महिषी ते वशानुगा ॥९॥**

[महाराज के ऐसा करने पर] वह देवी अपनी मधुर वाणी से महाराज के मन को आनन्द प्रदान करती हुई बोली—"भूपाल ! मैं आपकी महारानी बनूँगी एवं आपके अधीन रहूँगी।

**यत्तु कुर्यामहं राजञ्छुभं वा यदि वाशुभम्।**
**न तद् वारयितव्यास्मि न वक्तव्या तथाप्रियम् ॥१०॥**

"[परन्तु एक शर्त है—] राजन् ! मैं भला या बुरा जो कुछ भी करूँ, उसके लिए आप मुझे रोक नहीं सकेंगे तथा मुझसे कभी अप्रिय वचन भी नहीं कहेंगे।

**एवं हि वर्तमानेऽहं त्वयि वत्स्यामि पार्थिव।**
**वारिता विप्रियं चोक्ता त्यजेयं त्वामसंशयम् ॥११॥**

"पृथिवीपते ! ऐसा बर्ताव करने पर ही मैं आपके समीप रहूँगी। यदि आपने कभी मुझे किसी कार्य से रोका अथवा अप्रिय वचन कहे, तो मैं निश्चय ही आपका साथ छोड़ दूँगी।"

**तथेति सा यदा तूक्ता तदा भरतसत्तम।**
**प्रहर्षमतुलं लेभे प्राप्य तं पार्थिवोत्तमम् ॥१२॥**

हे भरतश्रेष्ठ ! उस समय "बहुत अच्छा" कहकर राजा ने जब उसकी शर्त स्वीकार कर ली, तब उस नृपश्रेष्ठ को पति-रूप में प्राप्त करके उस देवी को अनुपम आनन्द मिला।

**रममाणस्तया साधं यथाकामं नरेश्वरः।**
**अष्टावजनयत् पुत्रांस्तस्याममरसंनिभान् ॥१३॥**

उसके साथ इच्छानुसार रमण करते हुए महाराज शान्तनु ने उसके गर्भ से देवताओं के समान तेजस्वी आठ पुत्र उत्पन्न किये।

**जातं जातं च सा पुत्रं क्षपत्यम्भसि भारत।**
**न च तां किंचनोवाच त्यागाद् भीतो महीपतिः[2] ॥१४**

हे भारत ! जो-जो पुत्र उत्पन्न होता, उसे वह जल में डुबा देती। राजा उससे कुछ नहीं कहते थे, उन्हें यह डर था कि कहीं यह मुझे छोड़कर न चली जाए।

**अथैनामष्टमे पुत्रे जाते प्रहसन्तीमिव।**
**उवाच राजा दुःखार्तः परीप्सन् पुत्रमात्मनः ॥१५॥**

तत्पश्चात् जब आठवाँ पुत्र उत्पन्न हुआ, तब मुस्कराती हुई-सी अपनी पत्नी से राजा ने अपने पुत्र का प्राण बचाने की इच्छा से दुःखातुर होकर कहा—

**मा वधीः कस्य कासीति किं हिनत्सि सुतानिति।**
**पुत्रघ्नि सुमहत्पापं सम्प्राप्तं ते सुगर्हितम् ॥१६॥**

"अरी ! इस बालक का तो वध मत कर। तू किसकी कन्या है ? कौन है ? क्यों अपने ही पुत्रों को मारे डालती है ? पुत्रघातिनि ! तुझे पुत्रहत्या का यह अत्यन्त निन्दित और भारी पाप लगा है।

स्त्र्युवाच

**पुत्रकाम न ते हन्मि पुत्रं पुत्रवतां वर।**
**जीर्णस्तु मम वासोऽयं यथा स समयः कृतः ॥१७॥**

**स्त्री बोली**—पुत्र की इच्छा रखनेवाले नरेश ! तुम पुत्रवानों में श्रेष्ठ हो। मैं तुम्हारे इस पुत्र को नहीं मारूँगी, परन्तु मेरे यहाँ रहने का समय अब समाप्त हो गया, जैसी कि पहले ही शर्त हो चुकी है।

---

१. यह स्त्री गङ्गा थी। लोक में ऐसा प्रसिद्ध है कि गङ्गानदी स्त्री का रूप धारण करके तथा शान्तनु की पत्नी बनकर उनके घर में रही थी। यह मिथ्या भ्रान्ति और प्रमत्त प्रलाप है। नदी स्त्री नहीं बन सकती। इस देवी का नाम गङ्गा था। आज भी गङ्गा नामवाली अनेक स्त्रियाँ मिल जाएँगी।

२. मनुष्य को पत्नी का ऐसा दास नहीं बनना चहिए कि पत्नी जो चाहे करती रहे और पति विवश होकर चुपचाप देखता रहे। इतिहास में सदुपदेश भी स्थान-स्थान पर समाविष्ट रहता है। सम्भवतः पत्नी का दास न बनने की प्रेरणा देने के लिए ही व्यासजी ने इस कथानक का समावेश किया हो।

वैशम्पायन उवाच

**स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि देवी तमभ्यभाषत ।**
**आदाय च कुमारं तं जगामथ यथेप्सितम् ।।१८।।**

**वैशम्पायन जी कहते हैं**—जनमेजय ! आपका कल्याण हो, अब मैं जाऊँगी"—ऐसा कहकर गङ्गा देवी उस नवजात शिशु को साथ लेकर अपने अभीष्ट स्थान को चली गई ।

**स तु देवव्रतो नाम गाङ्गेय इति चाभवत् ।।१९।।**

उस बालक का नाम देवव्रत हुआ । कुछ लोग उसे गाङ्गेय भी कहते थे ।

**इति महाभारते आदिपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।**

# पञ्चमोऽध्यायः

## शान्तनु के गुणों का वर्णन, गङ्गा द्वारा सुशिक्षित पुत्र की प्राप्ति और देवव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा

वैशम्पायन उवाच

**स राजा शान्तनुर्धीमान् देवराजर्षि-सत्कृतः ।**
**धर्मात्मा सर्वलोकेषु सत्यवागिति विश्रुतः ।।१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! राजा शान्तनु अति बुद्धिमान् थे, देवता और राजर्षि भी उनका सत्कार करते थे । वे धर्मातमा नरेश सम्पूर्ण भूमण्डल में सत्यवादी के रूप में विख्यात थे ।

**दमो दानं क्षमा बुद्धिर्ह्रीर्धृतिस्तेज उत्तमम् ।**
**नित्यान्यासन् महासत्त्वे शान्तनौ पुरुषर्षभे ।।२।।**

उन महाबली नरश्रेष्ठ शान्तनु में इन्द्रिय-संयम, दान, क्षमा, बुद्धि, लज्जा, धैर्य तथा उत्तम तेज आदि सद्गुण सदा विद्यमान थे ।

**अरागद्वेषसंयुक्तः सोमवत् प्रियदर्शनः ।**
**तेजसा सूर्यकल्पोऽभूत् क्षमया पृथिवीसमः ।।३।।**

उनमें न राग था, न द्वेष । वे चन्द्रमा की भाँति प्रियदर्शी थे । वे तेज में सूर्य के समान और क्षमा में पृथिवी के समान थे ।

**सर्वास्त्रेषु स निष्णातः पार्थिवेष्वितरेषु च ।**
**महाबलो महासत्त्वो महावीर्यो महारथः ।।४।।**

लौकिक और अलौकिक सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की कला में वे पारङ्गत थे । उनके बल, सत्त्व=धैर्य तथा वीर्य=पराक्रम महान् थे । वे महारथी वीर थे ।

**स कदाचिन्मृगं विद्ध्वा गङ्गामनुसरन् नदीम् ।**
**भागीरथीमल्पजलां शान्तनुर्दृष्टवान् नृपः ।।५।।**

एक समय किसी हिंसक पशु को बाण से बींधकर राजा शान्तनु उसका पीछा करते हुए भागीरथी गङ्गा के तट पर आये । उन्होंने देखा कि गंगा में बहुत थोड़ा जल रह गया है ।

**तां दृष्ट्वा चिन्तयामास शान्तनुः पुरुषर्षभः ।**
**स्यन्दते किं त्वियं नाद्य सरिच्छ्रेष्ठा यथा पुरा ।।६।।**

उसे देखकर पुरुषों में श्रेष्ठ महाराज शान्तनु इस चिन्ता में पड़ गये कि नदियों में श्रेष्ठ यह गङ्गा आज पहले की भाँति क्यों नहीं बह रही है ?

**ततो निमित्तमन्विच्छन् ददर्श स महामनाः ।**
**कुमारं रूपसम्पन्नं बृहन्तं चारुदर्शनम् ।।७।।**
**दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणं यथा देवं पुरन्दरम् ।**
**कृत्स्नां गङ्गां समावृत्य शरैस्तीक्ष्णैरवस्थितम् ।।८।।**

जब उन महामना नरेश ने इसके कारण का पता लगाते हुए आगे बढ़कर देखा, तब उन्हें पता चला कि एक अत्यन्त सुन्दर, मनोहर रूप से सम्पन्न विशालकाय कुमार देवराज इन्द्र के समान दिव्यास्त्र का अभ्यास कर रहा है और अपने तीखे बाणों से सारी गङ्गा की धारा को रोककर खड़ा है ।

**स तु तं पितरं दृष्ट्वा मोहयामास मायया ।**
**सम्मोह्य तु ततः क्षिप्रं तत्रैवान्तरधीयत ।।९।।**

उधर बालक ने अपने पिता को देखकर माया से मोहित कर दिया और उन्हें मोहित करके वहीं अन्तर्धान हो (छुप) गया ।

**दर्शयामास तं गङ्गा बिभ्रती रूपमुत्तमम् ।**
**गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ तं कुमारमलंकृतम् ।।१०।।**

तब परम सुन्दर रूप धारण किये हुए तथा अपने पुत्र का दाहिना हाथ पकड़े हुए गङ्गादेवी सामने आईं और वस्त्राभूषणों से अलंकृत कुमार देवव्रत को दिखाया ।

गङ्गोवाच

**यं पुत्रमष्टमं राजंस्त्वं पुरा मय्यविन्दथाः ।**
**स चायं पुरुषव्याघ्र सर्वास्त्रविदनुत्तमः ॥११॥**

**गङ्गादेवी ने कहा**—राजन् ! पूर्वकाल में आपने अपने जिस आठवें पुत्र को मेरे गर्भ से प्राप्त किया था, यह वही है । पुरुषसिंह ! यह सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ है ।

**गृहाणेमं महाराज मया संवर्धितं सुतम् ।**
**आदाय पुरुषव्याघ्र नयस्वैनं गृहं विभो ॥१२॥**

राजन् ! मैंने इसे पाल-पोसकर बड़ा कर दिया है । अब आप अपने इस पुत्र को ग्रहण कीजिए । हे नरश्रेष्ठ ! स्वामिन् ! इसे घर ले जाइए ।

**वेदानधिजगे साङ्गान् वसिष्ठादेष वीर्यवान् ।**
**कृतास्त्रः परमेष्वासो देवराजसमो युधि ॥१३॥**

आपका यह पराक्रमी पुत्र महर्षि वसिष्ठ से छहों अङ्गों सहित समस्त वेदों का अध्ययन कर चुका है । यह अस्त्र-विद्या का पण्डित है, महान् धनुर्धर है और युद्ध में देवराज इन्द्र के समान पराक्रमी है ।

वैशम्पायन उवाच

**तथैवं समनुज्ञातः पुत्रमादाय शान्तनुः ।**
**भ्राजमानं यथादित्यमाययौ स्वपुरं प्रति ॥१४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—गङ्गादेवी के इस प्रकार आदेश देने पर महाराज शान्तनु सूर्य के समान तेजस्वी अपने पुत्र को लेकर राजधानी में आये ।

**पौरवेषु ततः पुत्रं राज्यार्थमभयप्रदम् ।**
**गुणवन्तं महात्मानं यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥१५॥**

कुछ समय पश्चात् उन्होंने सबको अभय देनेवाले महात्मा एवं गुणवान् पुत्र को राजकाज में सहयोग करने के लिए समस्त पौरवों के बीच में युवराज-पद पर अभिषिक्त कर दिया ।

**पौरवाञ्छान्तनोः पुत्रः पितरं च महायशाः ।**
**राष्ट्रं च रञ्जयामास वृत्तेन भरतर्षभ ॥१६॥**

भरतकुलभूषण जनमेजय ! शान्तनु के उस महायशस्वी पुत्र ने अपने आचार-व्यवहार से अपने पिता को, पौरव समाज को तथा समस्त राष्ट्र को प्रसन्न कर लिया ।

**स तथा सह पुत्रेण रममाणो महीपतिः ।**
**वर्तयामास वर्षाणि चत्वार्यमितविक्रमः ॥१७॥**

अमित पराक्रमशाली महाराज शान्तनु ने वैसे गुणवान् पुत्र के साथ आनन्दपूर्वक रहते हुए चार वर्ष व्यतीत किये ।

**स कदाचिद् वनं यातो यमुनामभितो नदीम् ।**
**महीपतिरनिर्देश्यामाजिघ्रद् गन्धमुत्तमम् ॥१८॥**
**तस्य प्रभवमन्विच्छन् विचचार समन्ततः ।**
**स ददर्श तदा कन्यां दाशानां देवरूपिणीम् ॥१९॥**

एक दिन वे यमुना नदी के निकटवर्ती वन में गये । वहाँ राजा को अवर्णनीय एवं परम उत्तम सुगन्ध का अनुभव हुआ । तब वे उसके उद्‌गमस्थान का पता लगाते हुए सब ओर विचरने लगे । घूमते-घूमते उन्होंने मल्लाहों की एक कन्या देखी, जो देवाङ्गनाओं के समान रूपवती थी ।

**तामपृच्छत् स दृष्ट्वैव कन्यामसितलोचनाम् ।**
**कस्य त्वमसि का चासि किं च भीरु चिकीर्षसि ॥२०॥**

श्याम नेत्रोंवाली उस कन्या को देखते ही राजा ने पूछा—"भीरु ! तू कौन है ? किसकी पुत्री है और क्या करना चाहती है ?"

**साब्रवीद् दाशकन्यास्मि धर्मार्थं वाहये तरीम् ।**
**पितुर्नियोगाद् भद्रं ते दाशराज्ञो महात्मनः ॥२१॥**

वह बोली—"राजन् ! आपका कल्याण हो । मैं निषाद-कन्या हूँ और अपने पिता महामना निषादराज की आज्ञा से धर्मार्थ नौका चलाती हूँ ।"

**समीक्ष्य राजा दाशेयीं कामयामास शान्तनुः ।**
**स गत्वा पितरं तस्या वरयामास तां तदा ॥२२॥**

[रूप और यौवन से सम्पन्न] उस निषाद-कन्या को देखकर राजा शान्तनु ने उसे प्राप्त करने की इच्छा की । फिर उसके पिता के पास जाकर उन्होंने उसका वरण किया ।

**पर्यपृच्छत् ततस्तस्याः पितरं चात्मकारणात् ।**
**स च तं प्रत्युवाचेदं दाशराजो महीपतिम् ॥२३॥**

उन्होंने उसके पिता से पूछा—"मैं अपने लिए तुम्हारी कन्या चाहता हूँ ।" यह सुनकर निषादराज ने राजा शान्तनु को यह उत्तर दिया—

दाश उवाच

**जातमात्रैव मे देया वराय वरवर्णिनी ।**
**हृदि कामस्तु मे कश्चित् तं निबोध जनेश्वर ॥२४॥**

**निषाद बोला**—जनेश्वर ! जब से इस सुन्दरी कन्या का जन्म हुआ है, तभी से मेरे मन में यह चिन्ता है कि इसका किसी श्रेष्ठ वर से विवाह करूँ, परन्तु मेरे हृदय में एक अभिलाषा है, उसे सुन लीजिए ।

**अस्यां जायेत यः पुत्रः स राजा पृथिवीपते ।**
**त्वदूर्ध्वमभिषेक्तव्यो नान्यः कश्चन पार्थिव ॥२५॥**

पृथिवीपते ! इसके गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न हो, आपके पश्चात् उसी का राजा के पद पर अभिषेक किया जाए, अन्य किसी राजकुमार का नहीं ।

वैशम्पायन उवाच

**नाकामयत तं दातं वरं दाशाय शान्तनुः ।**
**मनसिजेन तीव्रेण दह्यमानोऽपि भारत ॥२६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! राजा शान्तनु प्रचण्ड कामाग्नि से जल रहे थे, तो भी उनके मन में निषाद को वह वर देने की इच्छा नहीं हुई ।

**स चिन्तयन्नेव तदा दाशकन्यां महीपतिः ।**
**प्रत्ययाद्धास्तिनपुरं कामोपहतचेतनः ॥२७॥**

काम की वेदना से चञ्चल चित्तवाले वे उस निषाद-कन्या का ही चिन्तन करते हुए उस समय हस्तिनापुर को लौट गये ।

**ततः कदाचिच्छोचन्तं शान्तनुं ध्यानमास्थितम् ।**
**पुत्रो देवव्रतोऽभ्येत्य पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥२८॥**

तत्पश्चात् एक दिन जब राजा शान्तनु ध्यानस्थ होकर कुछ सोच रहे थे—चिन्ता में पड़े थे, तब उनके पुत्र देवव्रत अपने पिता के पास आये और इस प्रकार बोले—

**सर्वतो भवतः क्षेमं विधेयाः सर्वपार्थिवाः ।**
**तत् किमर्थमिहाभीक्ष्णं परिशोचसि दुःखितः ॥२९॥**

"पिताजी ! आपका तो सब प्रकार से कुशल-मङ्गल है । भूमण्डल के सभी नरेश आपकी आज्ञा के अधीन हैं, फिर आप दुःखी होकर शोक और चिन्ता में क्यों डूबे रहते हैं ?

**ध्यायन्निव च मां राजन्नाभिभाषसि किंचन ।**
**व्याधिमिच्छामि ते ज्ञातुं प्रतिकुर्यां हि तत्र वै ॥३०॥**

"राजन् ! आप किसी का ध्यान-सा करते हुए मुझसे कोई बात तक नहीं करते । आपको कौन-सा रोग लग गया है, यह मैं जानना चाहता हूँ, जिससे मैं उसका प्रतिकार कर सकूँ ।"

शान्तनुरुवाच

**असंशयं ध्यानपरो यथा वत्स तथा शृणु ।**
**अपत्यं नस्त्वमेवैकः कुले महति भारत ॥३१॥**

**शान्तनु बोले**—वत्स ! इसमें सन्देह नहीं कि मैं चिन्ता में डूबा रहता हूँ । वह चिन्ता कैसी है, सो बताता हूँ—सुनो ! भारत ! तुम इस विशाल वंश में मेरे एक ही पुत्र हो ।

**कथंचित् तव गाङ्गेय विपत्तौ नास्ति नः कुलम् ।**
**असंशयं त्वमेवैकः शतादपि वरः सुतः ॥३२॥**

गङ्गानन्दन ! यदि किसी प्रकार तुम पर कोई विपत्ति आई तो उस दिन हमारा यह वंश समाप्त हो जाएगा । इसमें सन्देह नहीं कि तुम अकेले ही मेरे लिए सौ पुत्रों से भी बढ़कर हो ।

**शस्त्रनित्यश्च सततं पौरुषे पर्यवस्थितः ।**
**अनित्यतां च लोकानामनुशोचामि पुत्रक ॥३३॥**

तुम भी सदा अस्त्र-शस्त्रों के अभ्यास में लगे रहते हो और सदा पुरुषार्थ=युद्ध के लिए तत्पर रहते हो । वत्स ! मैं इस जगत् की अनित्यता को लेकर निरन्तर शोकग्रस्त एवं चिन्तित रहता हूँ ।

**न चाप्यहं वृथा भूयो दारान् कर्तुमिहोत्सहे ।**
**सन्तानस्याविनाशाय कामये भद्रमस्तु ते ॥३४॥**

मैं पुनः व्यर्थ विवाह नहीं करना चाहता किन्तु हमारी वंश-परम्परा का लोप न हो, इसी के लिए मुझे पुनः पत्नी की कामना हुई है । तुम्हारा कल्याण हो ।

वैशम्पायन उवाच

**ततस्तत्कारणं राज्ञो ज्ञात्वा सर्वमशेषतः ।**
**देवव्रतो महाबुद्धिः प्रज्ञया चान्वचिन्तयत् ॥३५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! राजा के दुःख का वह सारा कारण जानकर परम बुद्धिमान

देवव्रत ने अपनी बुद्धि से भी उसपर विचार-विमर्श किया।

**अभ्यगच्छत्तदैवाशु वृद्धामात्यं पितुर्हितम्।**
**तमपृच्छत्तदाभ्येत्य पितुस्तच्छोककारणम् ।।३६।।**

फिर वे उसी समय तुरन्त अपने पिता के हितैषी वृद्ध मन्त्री के पास गये और पिता के वास्तविक शोक के कारण के विषय में उनसे पूछ-ताछ की।

**तस्मै स कुरुमुख्याय यथावत् परिपृच्छते।**
**वरं शशंस कन्यां तामुद्दिश्य भरतर्षभ ।।३७।।**

भरतभूषण ! कुरुवंश के श्रेष्ठ पुरुष देवव्रत के यथावत् पूछने पर उस गन्धवती कन्या के लिए दाशराज ने जो वर माँगा था, मन्त्री ने वह कह सुनाया।

**ततो देवव्रतो वृद्धैः क्षत्रियैः सहितस्तदा।**
**अभिगम्य दाशराजं कन्यां वव्रे पितुः स्वयम् ।।३८।।**

यह सुनकर कुमार देवव्रत ने उसी समय वृद्ध क्षत्रियों के साथ निषादराज के पास जाकर स्वयं अपने पिता के लिए उसकी कन्या माँगी।

**तं दाशः प्रतिजग्राह विधिवत् प्रतिपूज्य च।**
**अब्रवीच्चैनमासीनं राजसंसदि भारत ।।३९।।**

हे भारत ! निषाद ने उनका सम्मान और विधिवत् पूजा करके तथा आसन पर बैठने के पश्चात् साथ आये हुए क्षत्रियों की मण्डली में दाशराज ने उनसे कहा—

दाश उवाच

**अर्थितश्चापि राजर्षिः प्रत्याख्यातः पुरा मया।**
**स चाप्यासीत्सत्यवत्या भृशमर्थी महायशाः ।।४०**
**कन्यापितृत्वात्किंचित्तु वक्ष्यामि त्वां नराधिप।**
**बलवत्सपत्नतामत्र दोषं पश्यामि केवलम् ।।४१**

**दाशराज बोला**—महान् कीर्तिवाले राजर्षि शान्तनु सत्यवती को पहले भी बहुत आग्रहपूर्वक माँग चुके हैं परन्तु उनके माँगने पर भी मैंने उनकी बात अस्वीकार कर दी थी। युवराज ! मैं कन्या का पिता होने के कारण आपसे भी कुछ कहना चाहूँगा। आपके यहाँ जो सम्बन्ध हो रहा है, उसमें मुझे केवल एक ही दोष दिखाई देता है, वह है बलवान् के साथ शत्रुता।

**यस्य हि त्वं सपत्नः स्या गन्धर्वस्यासुरस्य वा।**
**न स जातु चिरं जीवेत् त्वयि क्रुद्धे परंतप ।।४२।।**

शत्रुसंतापक ! आप जिसके शत्रु होंगे, वह गन्धर्व हो या असुर, आपके क्रुद्ध होने पर कभी चिरजीवी नहीं हो सकता।

देवव्रत उवाच

**एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वमनुभाषसे।**
**योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति ।।४३**

**देवव्रत ने कहा**—लो, तुम जो कुछ चाहते या कहते हो, मैं वैसा ही करूँगा। इस सत्यवती के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही हमारा राजा बनेगा।

दाश उवाच

**यत् त्वया सत्यवत्यर्थे सत्यधर्मपरायण।**
**राजमध्ये प्रतिज्ञातमनुरूपं तवैव तत् ।।४४।।**

**दाशराज बोला**—सत्यधर्मपरायण राजकुमार ! आपने सत्यवती के हित के लिए इन राजाओं के बीच में जो प्रतिज्ञा की है, वह आपके ही योग्य है।

**नान्यथा तन्महाबाहो संशयोऽत्र न कश्चन।**
**तवापत्यं भवेद् यत्तु तत्र नः संशयो महान् ।।४५।।**

हे महाबाहो ! आपकी प्रतिज्ञा टल नहीं सकती, उसके विषय में मुझे कोई सन्देह नहीं है। परन्तु आपका जो पुत्र होगा, वह शायद इस प्रतिज्ञा पर दृढ़ न रहे, यही हमारे मन में बड़ा भारी संशय है।

वैशम्पायन उवाच

**तस्यैतन्मतमाज्ञाय सत्यधर्मपरायणः।**
**प्रत्यजानात्तदा राजन्पितुः प्रियचिकीर्षया ।।४६।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! निषादराज के अभिप्राय को जानकर सत्यधर्म में तत्पर रहनेवाले कुमार देवव्रत ने उस समय पिता का प्रिय करने की इच्छा से यह कठोर प्रतिज्ञा की—

देवव्रत उवाच

**अद्य प्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति।**
**अपुत्रस्यापि मे लोका भविष्यन्त्यक्षया दिवि ।।४७।।**

**देवव्रत ने कहा**—निषादराज ! आज से मेरा आजीवन अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत चलता रहेगा। मेरे

पुत्र न होने पर भी स्वर्ग में मुझे अक्षय लोक प्राप्त होंगे।

वैशम्पायन उवाच

**तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सम्प्रहृष्टतनूरुहः।**
**ददामीत्येव तं दाशो धर्मात्मा प्रत्यभाषत ।।४८।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—देवव्रत का यह वचन सुनकर धर्मात्मा निषादराज के रोंगटे खड़े हो गये। उसने तुरन्त उत्तर दिया—"मैं यह कन्या आपके पिता के लिए प्रदान करता हूँ।"

**ततः स पितुरर्थाय तामुवाच यशस्विनीम्।**
**अधिरोह रथं मातर्गच्छावः स्वगृहानिति ।।४९।।**

तत्पश्चात् देवव्रत पिता के मनोरथ की सिद्धि के लिए उस यशस्विनी निषाद-कन्या से बोले—"हे माता! इस रथ पर बैठिए। अब हम लोग अपने घर चलें।"

**एवमुक्त्वा तु भीष्मस्तां रथमारोप्य भामिनीम्।**
**आगम्य हास्तिनपुरं शान्तनोः संन्यवेदयत् ।।५०**

ऐसा कहकर देवव्रत ने उस भामिनी को रथ पर बैठा लिया और हस्तिनापुर आकर उसे महाराज शान्तनु को सौंप दिया।

**तस्य तद्दुष्करं कर्म प्रशशंसुर्नराधिपाः।**
**समेताश्च पृथक् चैव भीष्मोऽयमिति चाब्रुवन् ।।५१।।**

उनके उस दुष्कर कर्म की सब राजा लोग एकत्र होकर और अलग-अलग भी प्रशंसा करने लगे। सबने एकस्वर से कहा—"यह राजकुमार वास्तव में 'भीष्म' है।"

**इति महाभारते आदिपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।**

## षष्ठोऽध्यायः

### चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य की उत्पत्ति, चित्राङ्गद का निधन, भीष्म द्वारा काशिराज की कन्याओं का अपहरण, अम्बिका और अम्बालिका के साथ विचित्रवीर्य का विवाह और निधन

वैशम्पायन उवाच

**ततो विवाहे निर्वृत्ते स राजा शान्तनुर्नृपः।**
**तां कन्यां रूपसम्पन्नां स्वगृहे संन्यवेशयत् ।।१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—तत्पश्चात् विवाह सम्पन्न हो जाने पर प्रजापालक राजा शान्तनु ने उस रूपवती कन्या को अपने राजप्रासाद में रखा।

**ततः शान्तनवो धीमान् सत्यवत्यामजायत।**
**वीरश्चित्राङ्गदो नाम वीर्यवान् पुरुषेश्वरः ।।२।।**

कुछ काल के पश्चात् सत्यवती के गर्भ से शान्तनु का बुद्धिमान् पुत्र वीर चित्राङ्गद उत्पन्न हुआ, जो अत्यन्त पराक्रमी तथा समस्त पुरुषों में श्रेष्ठ था।

**अथापरं महेष्वासं सत्यवत्यां सुतं प्रभुः।**
**विचित्रवीर्यं राजानं जनयामास वीर्यवान् ।।३।।**

तत्पश्चात् महापराक्रमी और शक्तिशाली राजा शान्तनु ने दूसरे पुत्र महान् धनुर्धर राजा विचित्रवीर्य को जन्म दिया।

**अप्राप्तवति तस्मिंस्तु यौवनं पुरुषर्षभे।**
**स राजा शान्तनुर्धीमान् कालधर्ममुपेयिवान् ।।४।।**

नरश्रेष्ठ विचित्रवीर्य अभी यौवन को प्राप्त भी नहीं हुए थे कि बुद्धिमान् महाराज शान्तनु की मृत्यु हो गई।

**स्वर्गते शान्तनौ भीष्मश्चित्राङ्गदमरिंदमम्।**
**स्थापयामास वै राज्ये सत्यवत्या मते स्थितः ।।५।।**

शान्तनु के स्वर्गवासी हो जाने पर भीष्म ने सत्यवती के परामर्श से शत्रुओं का दमन करनेवाले वीर चित्राङ्गद को राजगद्दी पर बैठा दिया।

**स तु चित्राङ्गदः शौर्यात् सर्वांश्चिक्षेप पार्थिवान्।**
**मनुष्यं न हि मेने स कंचित् सदृशमात्मनः ।।६**

चित्राङ्गद अपने शौर्य के घमण्ड में आकर सब राजाओं का तिरस्कार करने लगे। वे किसी भी मनुष्य को अपने समान नहीं मानते थे।

**तं क्षिपन्तं सुरांश्चैव मनुष्यानसुरांस्तथा।**
**गन्धर्वराजो बलवांस्तुल्यनामाभ्ययात् तदा ।।७।।**

मनुष्यों पर ही नहीं वे देवताओं और असुरों पर भी आक्षेप करते थे। एक दिन उन्हीं के समान नाम-वाला गन्धर्वराज चित्राङ्गद उनके पास आया।

**तेनास्य सुमहद् युद्धं कुरुक्षेत्रे बभूव ह।**
**मायाधिकोऽवधीद् वीरं गन्धर्वः कुरुसत्तमम् ॥८॥**

उसके साथ कुरुक्षेत्र में राजा चित्राङ्गद का बड़ा भारी युद्ध हुआ। उस युद्ध में मायाविशारद गन्धर्व ने कुरुश्रेष्ठ वीर चित्राङ्गद का वध कर डाला।

**विचित्रवीर्यं च तदा बालमप्राप्तयौवनम्।**
**कुरुराज्ये महाबाहुरभ्यषिञ्चदनन्तरम् ॥९॥**

चित्राङ्गद के मारे जाने पर महाबाहु भीष्म ने विचित्रवीर्य को जो अभी बालक ही थे, युवावस्था में नहीं पहुँचे थे, कुरुदेश राज्य पर अभिषिक्त कर दिया।

**विचित्रवीर्यः स तदा भीष्मस्य वचने स्थितः।**
**अन्वशासन्महाराज पितृपैतामहं पदम् ॥१०॥**

महाराज जनमेजय! तब विचित्रवीर्य भीष्मजी की आज्ञा के अधीन रहकर अपने बाप-दादों के राज्य का शासन करने लगे।

**सम्प्राप्तयौवनं दृष्ट्वा भ्रातरं धीमतां वरः।**
**भीष्मो विचित्रवीर्यस्य विवाहायाकरोन्मतिम् ॥११**

जब विचित्रवीर्य धीरे-धीरे युवावस्था में पहुँचे, तब बुद्धिमानों में श्रेष्ठ भीष्मजी ने उनकी अवस्था देख उनके विवाह का विचार किया।

**अथ काशिपतेर्भीष्मः कन्यास्तिस्रोऽप्सरोपमाः।**
**शुश्राव सहिता राजन् वृण्वाना वै स्वयंवरम् ॥१२॥**

राजन्! उन दिनों काशिराज की अप्सराओं के समान सुन्दर तीन कन्याएँ थीं। भीष्मजी ने सुना कि वे तीनों कन्याएं एक ही साथ स्वयंवर-सभा में पति का वरण करनेवाली हैं।

**ततः स रथिनां श्रेष्ठो रथेनैकेन शत्रुजित्।**
**जगामानुमते मातुः पुरीं वाराणसीं प्रभुः ॥१३॥**

तब माता सत्यवती की आज्ञा ले रथियों में श्रेष्ठ शत्रुविजयी भीष्म एकमात्र रथ के साथ वाराणसी पुरी को गये।

**तत्र राज्ञः समुदितान् सर्वतः समुपागतान्।**
**ददर्श कन्यास्ताश्चैव भीष्मः शान्तनुनन्दनः ॥१४॥**

वहाँ शान्तनुनन्दन भीष्म ने देखा कि सब ओर से आये हुए नरेशों का समुदाय स्वयंवर सभा में उपस्थित है तथा वे कन्याएँ भी स्वयंवर-मञ्च पर विद्यमान हैं।

**कीर्त्यमानेषु राज्ञां तु तदा नामसु सर्वशः।**
**एकाकिनं तदा भीष्मं वृद्धं शान्तनुनन्दनम् ॥१५॥**
**सोद्वेगा इव तं दृष्ट्वा कन्याः परमशोभनाः।**
**अपाक्रामन्त ताः सर्वा वृद्ध इत्येव चिन्तया ॥१६॥**

उस समय सब ओर राजाओं का नाम ले-लेकर उन सबका परिचय दिया जा रहा था। इतने में ही शान्तनुनन्दन भीष्म, जो अब वृद्ध हो चले थे, वहाँ अकेले ही पहुँचे। उन्हें देखकर वे सब परम सुन्दरी कन्याएँ उद्विग्न-सी होकर तथा 'ये बूढ़े हैं'—ऐसा सोचती हुई वहाँ से दूर भाग गईं।

**वृद्धः परमधर्मात्मा वलीपलितधारणः।**
**किं कारणमिहायातो निर्लज्जो भरतर्षभः ॥१७॥**
**मिथ्याप्रतिज्ञो लोकेषु किं वदिष्यति भारत।**
**ब्रह्मचारीति भीष्मो हि वृथैव प्रथितो भुवि।**
**इत्येवं प्रब्रुवन्तस्ते हसन्ति स्म नृपाधमाः ॥१८॥**

भरतकुल-भूषण! वहाँ जो नीच स्वभाव के नरेश एकत्र थे, वे परस्पर निम्न बातें कहते हुए उनकी हँसी उड़ाने लगे—"भरतवंशियों में श्रेष्ठ भीष्म तो बड़े धर्मात्मा सुने जाते थे। ये वृद्ध हो गये हैं, शरीर में झुर्रियाँ पड़ गई हैं, सिर के बाल श्वेत हो गये हैं, फिर क्या कारण है कि ये यहाँ आये हैं? ये तो बड़े निर्लज्ज जान पड़ते हैं। अपनी प्रतिज्ञा को झूठी करके ये लोगों को क्या मुँह दिखाएँगे? भूमण्डल में व्यर्थ ही यह बात फैल गई है कि भीष्मजी ब्रह्मचारी हैं।"

**क्षत्रियाणां वचः श्रुत्वा भीष्मश्चुक्रोध भारत।**
**उवाच च महीपालान् राजञ्जलदनिःस्वनः ॥१९॥**

भरतकुलश्रेष्ठ राजन्! क्षत्रियों की ये बातें सुनकर भीष्मजी क्रुद्ध हो उठे और उन समस्त राजाओं को ललकारते हुए मेघ के समान गम्भीर वाणी में बोले—

**ता इमाः पृथिवीपाला जिहीर्षामि बलादितः।**
**ते यतध्वं परं शक्त्या विजयायेतराय वा ॥२०॥**

भूमिपालो! मैं इन कन्याओं को यहाँ से बलपूर्वक अपहरण करके ले जाना चाहता हूँ। तुम लोग अपनी सारी शक्ति लगाकर विजय अथवा पराजय के लिए मुझे रोकने का यत्न करो।

**एवमुक्त्वा महीपालान् काशिराजं च वीर्यवान् ।**
**आमन्त्र्य चैव तान्प्रायाच्छीघ्रं कन्याः प्रगृह्य ताः ॥२१**

उन सब राजाओं और काशिराज से उपर्युक्त बातें कहकर और उन सब कन्याओं को अपने रथ में बिठाकर पराक्रमी भीष्मजी सबको ललकारते हुए वहाँ से शीघ्रतापूर्वक चल दिये ।

**ततस्ते पार्थिवाः सर्वे समुत्पेतुरमर्षिताः ।**
**संस्पृशन्तः स्वकान्बाहून्दशन्तो दशनच्छदान् ॥२२**

फिर तो वे समस्त नरेश इस अपमान को न सह सके, वे अपनी भुजाओं को ठोकते और दाँतों से ओठ चबाते हुए अपने स्थान से उछल पड़े ।

**ततः समभवद् युद्धं तेषां तस्य च भारत ।**
**एकस्य च बहूनां च तुमुलं लोमहर्षणम् ॥२३॥**

हे जनमेजय ! तत्पश्चात् उन राजाओं और भीष्मजी का घोर युद्ध हुआ । भीष्मजी अकेले थे और राजा लोग बहुत । उनमें रोंगटे खड़े कर देनेवाला भयंकर संग्राम छिड़ गया ।

**तान् विनिर्जित्य तु रणे सर्वशस्त्रभृतां वरः ।**
**कन्याभिः सहितः प्रायाद् भारतो भारतान्प्रति ॥२४॥**

अन्त में, सम्पूर्ण शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भरत-कुलतिलक भीष्मजी ने उन सब योद्धाओं को जीत-कर कन्याओं को साथ ले भरतवंशियों की राजधानी हस्तिनापुर को प्रस्थान किया ।

**ताः सर्वगुणसम्पन्ना भ्राता भ्रात्रे यवीयसे ।**
**भीष्मो विचित्रवीर्याय प्रददौ विक्रमाहृताः ॥२५॥**

भाई भीष्म ने अपने पराक्रम द्वारा हर कर लाई हुई उन सर्वगुणसम्पन्न कन्याओं को अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य को सौंप दिया ।

**एवं धर्मेण धर्मज्ञः कृत्वा कर्मातिमानुषम् ।**
**भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य विवाहायोपचक्रमे ॥२६॥**
**विवाहं कारयिष्यन्तं भीष्मं काशिपतेः सुता ।**
**ज्येष्ठा तासामिदं वाक्यमब्रवीद्ध सती तदा ॥२७॥**

धर्मज्ञ भीष्मजी इस प्रकार धर्मपूर्वक अलौकिक पराक्रम करके भाई विचित्रवीर्य के विवाह की तैयारी करने लगे । काशिराज की उन कन्याओं में जो सबसे बड़ी थी, वह बड़ी सती-साध्वी थी । उसने जब सुना कि भीष्मजी मेरा विवाह अपने छोटे भाई के साथ करेंगे, तब वह उनसे इस प्रकार बोली—

**मया सौभपतिः पूर्वं मनसा हि वृतः पतिः ।**
**एतद् विज्ञाय धर्मज्ञ धर्मतत्त्वं समाचर ॥२८॥**

"धर्मात्मन् ! मैंने पहले से ही मन-ही-मन सौभ नामक विमान के अधिपति राजा शाल्व को पतिरूप में वरण कर लिया था । इस बात को सोच-समझकर जो धर्म का सार प्रतीत हो, वही कार्य कीजिए ।"

**विनिश्चित्य स धर्मज्ञो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।**
**अनुजज्ञे तदा ज्येष्ठामम्बां काशिपतेः सुताम् ॥२९॥**

[उसके ऐसा कहने पर] धर्मज्ञ भीष्म ने वेदों के पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मणों के साथ भली-भाँति विचार करके काशिराज की ज्येष्ठ पुत्री अम्बा को उसी समय शाल्व के यहाँ जाने की आज्ञा प्रदान कर दी ।

**अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद् भ्रात्रे यवीयसे ।**
**भीष्मो विचित्रवीर्याय विधिदृष्टेन कर्मणा ॥३०॥**

अम्बिका और अम्बालिका नाम की शेष दो कन्याओं को भीष्मजी ने शास्त्रोक्त विधि के अनुसार अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य को पत्नी के रूप में प्रदान कर दिया ।

**तयोः पाणी गृहीत्वा तु रूपयौवनदर्पितः ।**
**विचित्रवीर्यो धर्मात्मा कामात्मा समपद्यत ॥३१॥**

उन दोनों सुन्दरी कन्याओं का पाणिग्रहण करके रूप और यौवन के मद से भरे धर्मात्मा विचित्रवीर्य कामात्मा बन गये ।

**ताभ्यां सह समाः सप्त विहरन् पृथिवीपतिः ।**
**विचित्रवीर्यस्तरुणो यक्ष्मणा समगृह्यत ॥३२॥**

राजा विचित्रवीर्य ने उन दोनों पत्नियों के साथ सात वर्ष तक निरन्तर विहार किया, उस असंयम के परिणामस्वरूप वे यौवन में ही राजयक्ष्मा के शिकार हो गये ।

**सुहृदां यतमानानामाप्तैः सह चिकित्सकैः ।**
**जगामास्तमिवादित्यः कौरव्यो यमसादनम् ॥३३॥**

उनके हितैषी मित्रों ने नामी और विश्वसनीय चिकित्सकों द्वारा उनके रोग-निवारण की पूरी चेष्टा की, तो भी जैसे सूर्य अस्ताचल को चले जाते हैं, उसी प्रकार वे कौरव-नरेश यमलोक को चले गये ।

**इति महाभारते आदिपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥**

# सप्तमोऽध्याय।

## भीष्मजी द्वारा राज्यग्रहण की अस्वीकृति, व्यासजी द्वारा विचित्रवीर्य के क्षेत्र से धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर की उत्पत्ति

वैशम्पायन उवाच

**ततः सत्यवती दीना कृपणा पुत्रगृद्धिनी।**
**पुत्रस्य कृत्वा कार्याणि गाङ्गेयं वाक्यमब्रवीत् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! पुत्र की इच्छा रखनेवाली सत्यवती अपने पुत्र के वियोग से अत्यन्त दीन और कृपण हो गई। अपने पुत्र के प्रेतकार्य करके उसने गङ्गानन्दन भीष्म से कहा—

**यथा कर्म शुभं कृत्वा स्वर्गोपगमनं ध्रुवम् ।**
**यथा चायुर्ध्रुवं सत्ये त्वयि धर्मस्तथा ध्रुवः ॥२॥**

"जैसे शुभकर्म करके स्वर्गलोक में जाना निश्चित है, जैसे सत्य-भाषण से आयु का बढ़ना अवश्यम्भावी है, वैसे ही तुममें धर्मपालन का होना भी निश्चित है।

**वेत्थ धर्मांश्च धर्मज्ञ समासेनेतरेण च।**
**विविधास्त्वं श्रुतीर्वेत्थ वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥३॥**

"धर्मज्ञ ! तुम सब धर्मों को संक्षेप और विस्तार से जानते हो। नाना प्रकार की श्रुतियों और समस्त वेदाङ्गों का भी तुम्हें पूर्ण ज्ञान है।

**व्यवस्थानं च ते धर्मे कुलाचारं च लक्षये।**
**प्रतिपत्तिं च कृच्छ्रेषु शुक्राङ्गिरसयोरिव ॥४॥**

"मैं तुम्हारी धर्मनिष्ठा और कुलोचित सदाचार को भी देखती हूँ। संकट के समय शुक्राचार्य और बृहस्पति की भाँति तुम्हारी बुद्धि उपयुक्त कर्तव्य का निर्णय करने में समर्थ है।

**तस्मात् सुभृशमाश्वस्य त्वयि धर्मभृतां वर।**
**कार्ये त्वां विनियोक्ष्यामि तत् श्रुत्वा कर्तुमर्हसि ॥५॥**

"इसलिए धर्मात्माओं में श्रेष्ठ भीष्म ! तुमपर अत्यन्त विश्वास रखकर ही मैं तुम्हें एक आवश्यक कार्य में लगाना चाहती हूँ। तुम उसे सुनो और उसका पालन करने की चेष्टा करो।

**मम पुत्रस्तव भ्राता वीर्यवान् सुप्रियश्च ते।**
**बाल[1] एव गतः स्वर्गमपुत्रः पुरुषर्षभ ॥६॥**
**इमे महिष्यौ भ्रातुस्ते काशिराजसुते शुभे।**
**रूपयौवनसम्पन्ने पुत्रकामे च भारत ॥७॥**
**तयोरुत्पादयापत्यं सन्तानाय कुलस्य नः।**
**मन्नियोगान्महाबाहो धर्मं कर्तुमिहार्हसि ॥८॥**

"मेरा पुत्र और तुम्हारा भाई विचित्रवीर्य जो पराक्रमी होने के साथ ही तुम्हें अतिप्रिय था, छोटी अवस्था में ही स्वर्गवासी हो गया। नरश्रेष्ठ ! उसके कोई पुत्र भी उत्पन्न नहीं हुआ। तुम्हारे भाई की ये दोनों सुन्दरी रानियाँ—काशिराज की कन्याएँ—मनोहर रूप और यौवन से सम्पन्न हैं। इनके हृदय में पुत्र पाने की अभिलाषा है। हे भारत ! तुम हमारे कुल की सन्तान-परम्परा की रक्षा के लिए स्वयं ही इन दोनों के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करो। महाबाहो ! मेरी आज्ञा से यह धर्मकार्य तुम अवश्य करो !"

भीष्म उवाच

**असंशयं परो धर्मस्त्वया मातरुदाहृतः।**
**राज्यार्थे नाभिषिञ्चेयं नोपेयां जातु मैथुनम् ॥९॥**

**भीष्म ने कहा**—माता ! तुमने जो कुछ कहा है, वह धर्मयुक्त है, इसमें संशय नहीं, परन्तु मैं राज्य के लोभ से न तो अपना अभिषेक कराऊँगा और न स्त्री-सहवास ही करूँगा।

**परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः।**
**यद् वाप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं कथंचन ॥१०॥**

मैं तीनों लोकों का राज्य, देवताओं का साम्राज्य अथवा इन दोनों से भी अधिक महत्त्व की वस्तु भी एकदम त्याग सकता हूँ, परन्तु सत्य को किसी प्रकार नहीं छोड़ सकता।

**त्यजेच्च पृथिवी गन्धमापश्च रसमात्मनः।**
**ज्योतिस्तथा त्यजेद् रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत् ॥११**
**प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्मताम्।**
**त्यजेच्छब्दं तथाऽऽकाशः सोमः शीतांशुतां त्यजेत् ॥१२**

---

१. 'बाल' से तात्पर्य यहाँ थोड़ी अवस्था से है। पिछले अध्याय [६।११] में इन्हें 'सम्प्राप्तयौवनम्' कहा है।

**विक्रमं वृत्रहा जह्याद्धर्मं जह्याच्च धर्मराट् ।**
**न त्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथंचन ॥१३**

हो सकता है पृथिवी अपनी गन्ध को छोड़ दे, जल अपने रस का परित्याग कर दे, तेज रूप का और वायु स्पर्श नामक स्वाभाविक गुण का त्याग कर दे, सूर्य अपनी प्रभा और अग्नि अपनी उष्णता को छोड़ दे, आकाश अपने शब्द गुण का और चन्द्रमा अपनी शीतलता का परित्याग कर दे, इन्द्र अपने पराक्रम को छोड़ दे और धर्मराज धर्म की उपेक्षा कर दें परन्तु मैं किसी प्रकार सत्य को छोड़ने का विचार भी नहीं कर सकता।

सत्यवत्युवाच

**जानामि ते स्थितिं सत्ये परां सत्यपराक्रम ।**
**इच्छन्सृजेथास्त्रीँल्लोकानन्याँस्त्वं स्वेन तेजसा ॥१४**
**जानामि चैव सत्यं तन्मदर्थे यच्च भाषितम् ।**
**आपद्धर्मं त्वमावेक्ष्य वह पैतामहीं धुरम् ॥१५॥**

**सत्यवती बोली**—सत्यपराक्रम ! मैं जानती हूँ, सत्य में तुम्हारी दृढ़ निष्ठा है। तुम चाहो तो अपने ही तेज से नई त्रिलोकी की रचना कर सकते हो। मैं उस सत्य को भी जानती हूँ जिसकी तुमने मेरे लिए घोषणा की थी। फिर भी मेरा आग्रह है कि तुम आपद्धर्म का विचार करके बाप-दादों के दिये हुए इस राज्य-भार को वहन करो।

**यथा ते कुलतन्तुश्च धर्मश्च न पराभवेत् ।**
**सुहृदश्च प्रहृष्येरंस्तथा कुरु परन्तप ॥१६॥**

अतः परंतप ! जिस उपाय से तुम्हारे वंश की परम्परा नष्ट न हो, धर्म की भी अवहेलना न होने पाये तथा प्रेमी सुहृद् भी सन्तुष्ट हो जाएँ, तुम वही करो।

भीष्म उवाच

**राज्ञि धर्मानवेक्षस्व मा नः सर्वान् व्यनीनशः ।**
**सत्याच्च्युतिः क्षत्रियस्य न धर्मेषु प्रशस्यते ॥१७॥**

**भीष्म बोले**—राजमाता ! धर्म की ओर दृष्टि-पात करो। हम सबका नाश मत करो। क्षत्रिय का सत्य से विचलित होना किसी भी धर्म में अच्छा नहीं माना गया है।

**पुनर्भरतवंशस्य हेतुं सन्तानवृद्धये ।**
**वक्ष्यामि नियतं मातस्तन्मे निगदतः शृणु ॥१८॥**
**ब्राह्मणो गुणवान् कश्चिद् धनेनोपनिमन्त्र्यताम् ।**
**विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु यः समुत्पादयेत् प्रजाः ॥१९**

मातः ! भरतवंश की सन्तान-परम्परा को बढ़ाने और सुरक्षित रखने के लिए जो निश्चित उपाय है, उसे बताता हूँ—सुनो ! किसी गुणवान् ब्राह्मण को धन देकर बुलाओ, जो विचित्रवीर्य की स्त्रियों के गर्भ से सन्तान उत्पन्न कर सके।

सत्यवत्युवाच

**कन्यापुत्रो मम पुरा द्वैपायन इति श्रुतः ।**
**सत्यवादी शमपरस्तपस्वी दग्धकिल्बिषः ॥२०॥**

**सत्यवती ने कहा**—पहले कन्या-अवस्था में मेरे गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो द्वैपायन के नाम से विख्यात है। वे सत्यवादी, शान्त, तपस्वी तथा पाप से शून्य हैं।

**स नियुक्तो मया व्यक्तं त्वया चाप्रतिमद्युतिः ।**
**भ्रातुः क्षेत्रेषु कल्याणमपत्यं जनयिष्यति ॥२१॥**

मेरे और तुम्हारे आग्रह करने पर वे अनुपम तेजस्वी व्यास अवश्य ही अपने भाई के क्षेत्र में कल्याणकारी सन्तान उत्पन्न करेंगे।

वैशम्पायन उवाच

**महर्षेः कीर्तने तस्य भीष्मः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।**
**तदिदं धर्मयुक्तं च हितं चैव कुलस्य नः ॥२२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—महर्षि व्यास का नाम लेते ही भीष्मजी हाथ जोड़कर बोले—"माताजी ! आपने जो बात कही है, वह धर्मयुक्त तो है ही, हमारे कुल के लिए भी हितकर है।"

**ततस्तस्मिन् प्रतिज्ञाते चिन्तयामास वै मुनिम् ।**
**प्रादुर्बभूवाविदितः वचनं चेदमब्रवीत् ॥२३॥**

उस समय भीष्मजी द्वारा इस प्रकार अपनी सम्मति देने पर सत्यवती ने मुनिवर कृष्णद्वैपायन का चिन्तन किया। तब वे सहसा वहाँ आ पहुँचे और अपनी माता से इस प्रकार बोले—

**भवत्या यदभिप्रेतं तदहं कर्तुमागतः ।**
**शाधि मां धर्मतत्त्वज्ञे करवाणि प्रियं तव ॥२४॥**

"धर्म के तत्त्व को जाननेवाली माताजी ! आपकी

जो हार्दिक इच्छा हो, उसके अनुसार कार्य करने के लिए मैं आया हूँ। आज्ञा दीजिए, मैं आपकी कौन-सी प्रिय सेवा करूँ।

सत्यवत्युवाच

**यवीयसस्तव भ्रातुर्भार्ये सुरसुतोपमे।**
**रूपयौवनसम्पन्ने पुत्रकामे च धर्मतः ॥२५॥**
**तयोरुत्पादयापत्यं समर्थो ह्यसि पुत्रक।**
**अनुरूपं कुलस्यास्य संतत्याः प्रसवस्य च ॥२६॥**

**सत्यवती बोली**—तुम्हारे छोटे भाई की पत्नियाँ देवकन्याओं के समान सुन्दर, रूप और युवावस्था से सम्पन्न हैं। उनके मन में धर्मतः पुत्र पाने की अभिलाषा है। पुत्र! तुम इसके लिए समर्थ हो, अतः इन दोनों के गर्भ से ऐसी सन्तानों को जन्म दो, जो इस कुल-परम्परा की रक्षा तथा वृद्धि के लिए सर्वथा सुयोग्य हों।

व्यास उवाच

**ईप्सितं ते करिष्यामि दृष्टं ह्येतत् सनातनम्।**
**भ्रातुः पुत्रान् प्रदास्यामि मित्रावरुणयोः समान् ॥२७**

**व्यासजी ने कहा**—मैं आपकी इच्छा के अनुरूप कार्य करूँगा। नियोगरूपी सनातनमार्ग शास्त्रों में देखा गया है। मैं उसी के अनुसार अपने भाई के लिए मित्र और वरुण के समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न करूँगा।

वैशम्पायन उवाच

**ततोऽभिगम्य सा देवी स्नुषां रहसि संगताम्।**
**धर्म्यमर्थसमायुक्तमुवाच वचनं हितम् ॥२८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—तत्पश्चात् देवी सत्यवती ने एकान्त में बैठी हुई अपनी पुत्रवधू अम्बिका के पास जाकर उससे [आपद्] धर्म और अर्थ से युक्त हितकारक वचन कहा—

**नष्टं च भारतं वंशं पुनरेव समुद्धर।**
**पुत्रं जनय सुश्रोणि देवराजसमप्रभम्।**
**स हि राज्यधुरं गुर्वीमुद्वक्ष्यति कुलस्य नः ॥२९॥**

"सुश्रोणि! तुम नष्ट होते हुए भरतवंश का पुनः उद्धार करो। तुम देवराज इन्द्र के समान तेजस्वी पुत्र को जन्म दो, वही हमारे कुल के इस महान् राज्य-भार को वहन करेगा।"

**ततः सत्यवती काले वधूं स्नातामृतौ तदा।**
**संवेशयन्ती शयने शनैर्वचनमब्रवीत् ॥३०॥**

तत्पश्चात् सत्यवती ठीक समय पर अपनी ऋतु-स्नाता पुत्र-वधु को शय्या पर बैठाती हुई धीरे से बोली—

**कौसल्ये देवरस्तेऽस्ति सोऽद्य त्वानुप्रवेक्ष्यति।**
**अप्रमत्ता प्रतीक्षैनं निशीथे ह्यागमिष्यति ॥३१॥**

"कौसल्ये! तुम्हारे एक देवर हैं, वे ही आज तुम्हारे पास गर्भाधान के लिए आएँगे। तुम सावधान होकर उनकी प्रतीक्षा करो। वे ठीक आधी रात के समय यहाँ पधारेंगे।"

**श्वश्र्वास्तद् वचनं श्रुत्वा शयाना शयने शुभे।**
**सा चिन्तयत् तदा भीष्ममन्यांश्च कुरुपुङ्गवान् ॥३२**

सास की बात सुनकर कौसल्या पवित्र शय्या पर शयन करके उस समय मन-ही-मन भीष्म तथा अन्य श्रेष्ठ कुरुवंशियों का चिन्तन करने लगी।

**ततोऽम्बिकायां प्रथमं नियुक्तः सत्यवागृषिः।**
**दीप्यमानेषु दीपेषु शरणं प्रविवेश ह ॥३३॥**

उधर नियोगविधि के अनुसार [शरीर पर घी चुपड़े, संयतचित्त, कुत्सित रूप में] सत्यवादी महर्षि व्यास ने अम्बिका के महल में प्रवेश किया। उस समय बहुत-से दीपक वहाँ प्रकाशित हो रहे थे।

**तस्य कृष्णस्य कपिलां जटां दीप्ते च लोचने।**
**बभ्रूणि चैव श्मश्रूणि दृष्ट्वा देवी न्यमीलयत् ॥३४**

व्यासजी के शरीर का रंग काला था, उनकी जटाएँ पिंगल वर्ण की और आँखें चमक रही थीं तथा दाढ़ी-मूँछ भूरे रंग की दिखाई देती थीं। उन्हें देखकर देवी कौसल्या ने [भय के मारे] अपनी आँखें मूँद लीं।

**सम्बभूव तया सार्धं मातुः प्रियचिकीर्षया।**
**भयात् काशिसुता तं तु नाशक्नोदभिवीक्षितुम् ॥३५**

माता का प्रिय करने की इच्छा से व्यासजी ने उसके साथ समागम[1] किया, परन्तु काशिराज की

---

१. लोक में ऐसी भ्रान्त धारणा फैली हुई है कि विचित्रवीर्य की दोनों पत्नियाँ व्यासजी के सामने से निकल गईं और उन्हें गर्भ रह गया। ऐसा होना सर्वथा असम्भव है। वस्तुतः धृतराष्ट्र आदि सभी नियोग के द्वारा उत्पन्न हुए थे।

कन्या भय के मारे उनकी ओर अच्छी प्रकार से देख न सकी।

**ततो निष्क्रान्तमागम्य माता पुत्रमुवाच ह।**
**अप्यस्या गुणवान् पुत्र राजपुत्रो भविष्यति ॥३६॥**

जब व्यासजी अम्बिका के महल से बाहर निकले, तब माता सत्यवती ने आकर उनसे पूछा—"वत्स ! क्या अम्बिका के गर्भ से कोई गुणवान् राजकुमार उत्पन्न होगा?"

व्यास उवाच

**नागायुतसमप्राणो महाबुद्धिर्भविष्यति।**
**किं तु मातुः स वैगुण्यादन्ध एव भविष्यति ॥३७॥**

**व्यासजी बोले**—माँ! गर्भ-स्थित यह पुत्र दस सहस्र हाथियों के समान बलवान् और अत्यन्त बुद्धिमान् होगा, परन्तु माता के दोष से वह अन्धा ही होगा।

सत्यवत्युवाच

**नान्धः कुरूणां नृपतिरनुरूपस्तपोधन।**
**ज्ञातिवंशस्य गोप्तारं पितॄणां वंशवर्धनम्।**
**द्वितीयं कुरुवंशस्य राजानं दातुमर्हसि ॥३८॥**

**सत्यवती बोली**—तपोधन! कुरुवंश का राजा अन्धा हो, यह उचित नहीं है, अतः कुरुवंश के लिए दूसरा राजा दो, जो ज्ञाति-भाइयों तथा समस्त कुल का संरक्षक एवं पिता के वंश को बढ़ानेवाला हो।

वैशम्पायन उवाच

**स तथेति प्रतिज्ञाय निश्चक्राम महायशाः।**
**सापि कालेन कौसल्या सुषुवेऽन्धं तमात्मजम् ॥३९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—महायशस्वी व्यासजी 'तथाऽस्तु' कहकर वहाँ से निकल गये। प्रसव का समय आने पर कौसल्या ने उस अन्धे पुत्र को जन्म दिया।

**पुनरेव तु सा देवी परिभाष्य स्नुषां ततः।**
**ऋषिमावाहयत् सत्या यथापूर्वमरिन्दम ॥४०॥**

शत्रुदमन! तत्पश्चात् देवी सत्यवती ने अपनी दूसरी पुत्र-वधू को समझा-बुझाकर गर्भाधान के लिए तैयार किया और इसके लिए पूर्ववत् महर्षि व्यास का आवाहन किया।

**ततस्तेनैव विधिना महर्षिस्तामपद्यत।**
**अम्बालिकामथाभ्यागादृषिं दृष्ट्वा च सापि तम्।**
**विवर्णा पाण्डुसंकाशा समपद्यत भारत ॥४१॥**

महर्षि व्यास ने उसी [नियोग की संयमपूर्ण] विधि से देवी अम्बालिका के साथ समागम किया। भारत! महर्षि व्यास को देखकर वह कान्तिहीन तथा पाण्डुवर्ण की-सी हो गई।

**ततो निष्क्रान्तमालोक्य सत्या पुत्रमथाब्रवीत्।**
**शशंस स पुनर्मात्रे तस्य बालस्त पाण्डुताम् ॥४२॥**

उस महल से निकलने पर सत्यवती ने अपने पुत्र से उसके विषय में पूछा। तब व्यासजी ने भी माता से उस बालक के पाण्डुवर्ण होने की बात बता दी।

**तं माता पुनरेवान्यमेकं पुत्रमयाचत।**
**तथेति च महर्षिस्तां मातरं प्रत्यभाषत ॥४३॥**

तब फिर सत्यवती ने पुनः एक दूसरे पुत्र के लिए उनसे याचना की। महर्षि ने 'बहुत अच्छा' कहकर माता की आज्ञा स्वीकार कर ली।

**ततः कुमारं सा देवी प्राप्तकालमजीजनत्।**
**पाण्डं लक्षणसम्पन्नं दीप्यमानमिव श्रिया।**
**यस्य पुत्रा महेष्वासा जज्ञिरे पञ्च पाण्डवाः ॥४४॥**

तत्पश्चात् देवी अम्बालिका ने समय आने पर एक पाण्डुवर्ण के पुत्र को जन्म दिया, जो अपनी दिव्य कान्ति से उद्भासित हो रहा था। यह वही बालक था, जिसके पुत्र महाधनुर्धारी पाँच पाण्डव हुए।

**ऋतुकाले ततो ज्येष्ठां वधूं तस्मै न्ययोजयत्।**
**सा तु रूपं च गन्धं च महर्षेः प्रविचिन्त्य तम्।**
**नाकरोद् वचनं देव्या भयात् सुरसुतोपमा ॥४५॥**

तत्पश्चात् ऋतुकाल आने पर सत्यवती ने अपनी बड़ी बहू अम्बिका को पुनः व्यासजी से मिलने के लिए नियुक्त किया। परन्तु देवकन्या के समान सुन्दरी अम्बिका ने महर्षि के उस कुत्सित रूप और गन्ध का चिन्तन करके भय के कारण देवी सत्यवती की आज्ञा नहीं मानी।

**ततः स्वैर्भूषणैर्दासीं भूषयित्वाप्सरोपमाम्।**
**प्रेषयामास कृष्णाय ततः काशिपतेः सुता ॥४६॥**

काशिराज की पुत्री अम्बिका ने अप्सरा के समान सुन्दरी अपनी एक दासी को अपने ही वस्त्र-आभूषणों से विभूषित करके उन काले-कलूटे महर्षि व्यास के पास भेज दिया।

**कामोपभोगेन रहस्तस्यां तुष्टिमगादृषिः।**
**उत्तिष्ठन्नब्रवीदेनामभुजिष्या भविष्यसि ॥४७॥**
**अयं च ते शुभे गर्भः श्रेयानुदरमागतः।**
**धर्मात्मा भविता लोके सर्वबुद्धिमतां वरः ॥४८॥**

एकान्त में मिलकर महर्षि व्यास उसपर बहुत सन्तुष्ट हुए। जब वे सहवास करके उठे, तब उससे बोले—"शुभे ! अब तू दासी नहीं रहेगी। तेरे उदर में एक अत्यन्त श्रेष्ठ बालक आया है। वह लोक में धर्मात्मा तथा समस्त बुद्धिमानों में श्रेष्ठ होगा।

**स जज्ञे विदुरो नाम कृष्णद्वैपायनात्मजः।**
**धृतराष्ट्रस्य वै भ्राता पाण्डोश्चैव महात्मनः ॥४९॥**

वही बालक विदुर हुआ, जो कृष्णद्वैपायन व्यास का पुत्र था। एक पिता का होने के कारण वह राजा धृतराष्ट्र और महात्मा पाण्डु का भाई था।

**कृष्णद्वैपायनोऽप्येतत् सत्यवत्यै न्यवेदयत्।**
**प्रलम्भमात्मनश्चैव शूद्रायाः पुत्रजन्म च ॥५०॥**

कृष्णद्वैपायन व्यास ने सत्यवती को भी सब बातें बता दीं। उन्होंने यह रहस्य प्रकट कर दिया कि अम्बिका ने अपनी दासी भेजकर मेरे साथ छल किया है, अतः शूद्रा दासी के गर्भ से ही पुत्र उत्पन्न होगा।

**एते विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रे द्वैपायनादपि।**
**जज्ञिरे देवगर्भाभाः कुरुवंशविवर्धनाः ॥५१॥**

विचित्रवीर्य के क्षेत्र में व्यासजी से ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो देवकुमारों के समान तेजस्वी तथा कुरुवंश की वृद्धि करनेवाले थे।

**इति महाभारते आदिपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥७॥**

# अष्टमोऽध्यायः

## कुरुदेश की सर्वाङ्गीण उन्नति का दिग्दर्शन, राजा धृतराष्ट्र का विवाह

वैशम्पायन उवाच

**तेषु त्रिषु कुमारेषु जातेषु कुरुजाङ्गलम्।**
**कुरवोऽथ कुरुक्षेत्रं त्रयमेतदवर्धत ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! उन तीनों कुमारों [धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर] के जन्म से कुरुवंश, कुरुजाङ्गल देश और कुरुक्षेत्र—इन तीनों की बड़ी भारी उन्नति एवं समृद्धि हुई।

**ऊर्ध्वसस्याभवद् भूमिः सस्यानि रसवन्ति च।**
**यथर्तुवर्षी पर्जन्यो बहुपुष्पफला द्रुमाः ॥२॥**

पृथिवी पर खेती की उपज बहुत बढ़ गई, सभी अन्न रस से भरपूर होते थे, बादल ठीक समय पर वर्षा करते थे, वृक्षों में प्रभूत फल और फूल लगने लगे।

**नाभवन् दस्यवः केचिन्नाधर्मरुचयो जनाः।**
**प्रदेशेष्वपि राष्ट्राणां कृतं युगमवर्तत ॥३॥**

कोई भी मनुष्य डाकू नहीं था। पाप में रुचि रखनेवाले लोगों का सर्वथा अभाव था। राष्ट्र के विभिन्न प्रान्तों में सतयुग छा रहा था।

**मानक्रोधविहीनाश्च नरा लोभविवर्जिताः।**
**अन्योऽन्यमभ्यनन्दन्त धर्मोत्तरमवर्तत ॥४॥**

सब लोग अभिमान और क्रोध से रहित तथा लोभ से दूर रहनेवाले थे, सभी एक-दूसरे को प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे। लोगों के आचार-व्यवहार में धर्म की ही प्रधानता थी।

**नाभवत्कृपणः कश्चिन्नाभवन्विधवा स्त्रियः।**
**तस्मिञ्जनपदे रम्ये कुरुभिर्बहुलीकृते ॥५॥**

कौरवों द्वारा बढ़ाये हुए उस रमणीय जनपद में न तो कोई कंजूस था और न ही विधवा स्त्रियाँ देखी जाती थीं।

**गृहेषु कुरुमुख्यानां पौराणां च नराधिप।**
**दीयतां भुज्यतां चेति वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः ॥६॥**

हे जनमेजय ! कुरुकुल के प्रधान पुरुषों तथा अन्य नगरनिवासियों के घरों में सदा सब ओर यही बात सुनाई देती थी कि—'दान दो और अतिथियों को भोजन कराओ।'

**धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विदुरश्च महामतिः ।**
**जन्मप्रभृति भीष्मेण पुत्रवत् परिपालिताः ।।७।।**

धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा परम बुद्धिमान् विदुर—इन तीनों भाइयों का भीष्मजी ने जन्म से ही पुत्र की भाँति पालन किया ।

**संस्कारैः संस्कृतास्ते तु व्रताध्ययनसंयुताः ।**
**श्रमव्यायामकुशलाः समपद्यन्त यौवनम् ।।८।।**

उन्होंने ही सबके संस्कार कराये । तब वे ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन तथा वेदों के स्वाध्याय में तत्पर हो गये । परिश्रम और व्यायाम में भी उन्होंने विशेष कुशलता प्राप्त की । फिर धीरे-धीरे वे युवावस्था को प्राप्त हुए ।

**धनुर्वेदेऽश्वपृष्ठे च गदायुद्धेऽसिचर्मणि ।**
**तथैव गजशिक्षायां नीतिशास्त्रेषु पारगाः ।।९।।**

धनुर्वेद, घोड़े की सवारी, गदायुद्ध, ढाल-तलवार के प्रयोग, गजशिक्षा और नीतिशास्त्र में वे तीन भाई पारंगत हो गये ।

**इतिहासपुराणेषु नानाशिक्षासु बोधिताः ।**
**वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वत्र कृतनिश्चयाः ।।१०।।**

उन्हें इतिहास, पुराण=ब्राह्मणग्रन्थ तथा नाना प्रकार के शिष्टाचारों का भी ज्ञान कराया गया । वे वेद-वेदाङ्गों के तत्त्वज्ञ तथा सर्वत्र एक निश्चित सिद्धान्त के माननेवाले थे ।

**पाण्डुर्धनुषि विक्रान्तो नरेष्वभ्यधिकोऽभवत् ।**
**अन्येभ्यो बलवानासीद् धृतराष्ट्रो महीपतिः ।।११।।**

पाण्डु धनुर्विद्या में उस समय के मनुष्यों में सबसे बढ़कर पराक्रमी थे । इसी प्रकार राजा धृतराष्ट्र दूसरे लोगों की अपेक्षा शारीरिक बल में बहुत बढ़-कर थे ।

**त्रिषु लोकेषु न त्वासीत्कश्चिद्विदुरसम्मितः ।**
**धर्मनित्यस्तथा राजन् धर्मे च परमं गतः ।।१२।।**

राजन् ! तीनों लोकों में विदुरजी के समान दूसरा कोई भी मनुष्य धर्मपरायण तथा धर्म में ऊँची अवस्था को प्राप्त [आत्मद्रष्टा] नहीं था ।

**धृतराष्ट्रस्त्वचक्षुष्ट्वाद् राज्यं न प्रत्यपद्यत ।**
**पारशवत्वाद् विदुरो राजा पाण्डुर्बभूव ह ।।१३।।**

धृतराष्ट्र अन्धे होने के कारण और विदुरजी पारशव [शूद्रा के गर्भ से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न] होने से राज्य न पा सके, अतः सबसे छोटे पाण्डु ही राजा हुए ।

**कदाचिदथ गाङ्गेयः सर्वनीतिमतां वरः ।**
**विदुरं धर्मतत्त्वज्ञं वाक्यमाह यथोचितम् ।।१४।।**

एक समय की बात है, सम्पूर्ण नीतिज्ञों में श्रेष्ठ गङ्गानन्दन भीष्मजी धर्म के तत्त्व को जाननेवाले विदुरजी से यह न्यायोचित वचन बोले—

भीष्म उवाच

**गुणैः समुदितं सम्यगिदं नः प्रथितं कुलम् ।**
**अत्यन्यान्पृथिवीपालान्पृथिव्यामधिराज्यभाक् ।।१५**

**भीष्मजी बोले**—पुत्र विदुर ! हमारा यह कुल अनेक सद्गुणों से सम्पन्न होकर संसार में विख्यात हो रहा है । यह अन्य भूपालों को जीतकर इस भूमण्डल के साम्राज्य का अधिकारी हुआ है ।

**तच्चैतद् वर्धते भूयः कुलं सागरवद् तथा ।**
**तथा मया विधातव्यं त्वया चैव न संशयः ।।१६।।**

वत्स ! हमारा यह कुल भविष्य में भी समुद्र की भाँति बढ़ता रहे, निःसन्देह वही उपाय मुझे और तुम्हें भी करना चाहिए ।

**श्रूयते यादवी कन्या स्वनुरूपा कुलस्य नः ।**
**सुबलस्यात्मजा चैव तथा मद्रेश्वरस्य च ।।१७।।**

सुना जाता है कि यदुवंशी शूरसेन की कन्या पृथा [जो इस समय राजा कुन्तिभोज की गोद ली हुई पुत्री है] सर्वथा हमारे कुल के अनुरूप है । इसी प्रकार गान्धारराज सुबल और मद्रनरेश के यहाँ भी एक-एक कन्या सुनी जाती है ।

**कुलीना रूपवत्यश्च ताः कन्याः पुत्र सर्वशः ।**
**उचिताश्चैव सम्बन्धे तेऽस्माकं क्षत्रियर्षभाः ।।१८**

वत्स ! वे सब कन्याएँ बड़ी सुन्दरी तथा उत्तम कुल में उत्पन्न हैं । वे श्रेष्ठ क्षत्रियगण हमारे साथ विवाह-सम्बन्ध करने के सर्वथा योग्य हैं ।

**मन्ये वरयितव्यास्ता इत्यहं धीमतां वर ।**
**सन्तानार्थं कुलस्यास्य यद् वा विदुर मन्यसे ।।१९।।**

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विदुर ! मेरी सम्मति से इस कुल की सन्तान-परम्परा को बढ़ाने के लिए उक्त

कन्याओं का वरण करना चाहिए, अथवा जैसी तुहारी सम्मति हो, वैसा किया जाए।

विदुर उवाच

**भवान्पिता भवान्माता भवान्नः परमो गुरुः।**
**तस्मात्स्वयं कुलस्यास्य विचार्य कुरु यद्धितम् ॥२०॥**

**विदुर बोले**—प्रभो! आप हमारे पिता हैं, आप ही माता हैं और आप ही परम गुरु हैं, अतः स्वयं सोच-विचारकर जिस बात में इस कुल का हित हो, वही कीजिए।

वैशम्पायन उवाच

**दूतं गान्धारराजस्य प्रेषयामास भारत।**
**अचक्षुरिति तत्रासीत् सुबलस्य विचारणा ॥२१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! विदुर से विचार-विमर्श कर भीष्मजी ने गान्धारराज के पास अपना दूत भेजा। धृतराष्ट्र अन्धे हैं, इस बात को लेकर सुबल के मन में बड़ी उथल-पुथल हुई।

**कुलं ख्यातिं च वृत्तं च बुद्धचा तु प्रसमीक्ष्य सः।**
**ददौ तां धृतराष्ट्राय गान्धारीं धर्मचारिणीम् ॥२२॥**

परन्तु उनके कुल, प्रसिद्धि और आचार आदि के विषय में बुद्धिपूर्वक विचार करके उसने धर्म-परायणा गान्धारी धृतराष्ट्र के लिए प्रदान कर दी।

**तस्याः सहोदराः कन्याः पुनरेव ददौ दश।**
**गान्धारराजः सुबलो भीष्मेण वरितस्तदा ॥२३॥**
**सत्यव्रतां सत्यसेनां सुदेष्णां च सुसंहिताम्।**
**तेजःश्रवां सुश्रवां च तथैव निकृतिं शुभाम् ॥२४॥**
**शंभुवां च दशार्णां च गान्धारीर्दश विश्रुताः।**
**एकाह्नां प्रतिजग्राह धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ॥२५॥**

गान्धारराज सुबल ने भीष्मजी द्वारा वरण करने पर गान्धारी की दस सहोदरा बहिनें भी धृतराष्ट्र को विवाह दीं। उनके नाम इस प्रकार हैं—सत्यव्रता, सत्यसेना, सुदेष्णा, सुसंहिता, तेजःश्रवा, सुश्रवा, निकृति, शुभा, शंभुवा, दशार्णा और विश्वप्रसिद्ध गान्धारी। महाराज धृतराष्ट्र ने इन सबके साथ एक ही दिन विवाह किया।[1]

**गान्धारी त्वथ शुश्राव धृतराष्ट्रमचक्षुषम्।**
**ततः सा पट्टमादाय कृत्वा बहुगुणं तदा ॥२६॥**
**बबन्ध नेत्रे स्वे राजन् पतिव्रतपरायणा।**
**नाभ्यसूयां पतिमहमित्येवं कृतनिश्चया ॥२७॥**

उधर जब गान्धारी ने सुना कि धृतराष्ट्र अन्धे हैं तब उन्होंने रेशमी वस्त्र लेकर और उसकी कई तह करके उससे अपनी आँखें बाँध लीं। राजन्! गान्धारी बड़ी पतिव्रता थी। उन्होंने निश्चय कर लिया कि मैं [सदा पति के अनुकूल रहूँगी] उनके दोष नहीं देखूँगी।

**गान्धारी तु वरारोहाः शीलाचारविचेष्टितैः।**
**तुष्टिं कुरूणां सर्वेषां जनयामास भारत ॥२८॥**

हे भारत! सुन्दर शरीरवाली गान्धारी ने अपने उत्तम स्वभाव, सदाचार तथा सद्व्यवहारों से समस्त कौरवों को प्रसन्न कर लिया।

**इति महाभारते आदिपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥८॥**

# नवमोऽध्यायः

## पाण्डु और विदुर का विवाह

वैशम्पायन उवाच

**शूरो नाम यदुश्रेष्ठो वसुदेवपिताऽभवत्।**
**तस्य कन्या पृथा नाम रूपेणाऽप्रतिमा भुवि ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन्! यदुवंशियों में श्रेष्ठ शूरसेन हो गये हैं, जो वसुदेवजी के पिता थे। उनके एक पुत्री उत्पन्न हुई जिसका नाम पृथा रखा

---

१. धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे। यह संख्या असम्भव-सी लगती है। परन्तु पाठक इस स्थल को ध्यानपूर्वक पढ़ें। गान्धारी की दस बहिनों का विवाह भी धृतराष्ट्र के साथ एक ही दिन हुआ है। ग्यारह पत्नियों से सौ सन्तानों का उत्पन्न होना असम्भव नहीं है। इन ग्यारह के अतिरिक्त एक वैश्य कन्या से भी इनका विवाह हुआ था।

गान्धारी के पेट-से तूंबी का उत्पन्न होना, उस तूंबी में से छोटे-छोटे बच्चों का निकलना, उन्हें घी के बर्तनों में रखना आदि असम्भव गप्प है जो तर्क की तुला पर खरी नहीं उतरती।

गया। इस भूमण्डल में उसके रूप की तुलना में कोई अन्य कुमारी नहीं थी।

**पितृष्वस्रीयाय स तामनपत्याय भारत।**
**अग्र्यमग्रे प्रतिज्ञाय स्वस्यापत्यं स सत्यवाक् ॥२॥**

हे भारत! सत्यवादी शूरसेन ने अपने फुफेरे भाई सन्तानहीन कुन्तिभोज से पहले ही यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि मैं तुम्हें अपनी प्रथम सन्तान भेंट कर दूँगा।

**अग्रजामथ तां कन्यां शूरोऽनुग्रहकांक्षिणे।**
**प्रददौ कुन्तिभोजाय सखा सख्ये महात्मने ॥३॥**

उन्हें पहले कन्या ही उत्पन्न हुई, अतः कृपाकांक्षी महात्मा सखा राजा कुन्तिभोज को उनके मित्र शूरसेन ने वह कन्या दे दी।

**सत्त्वरूपगुणोपेता धर्मारामा महाव्रता।**
**दुहिता कुन्तिभोजस्य पृथा पृथुललोचना ॥४॥**

हे जनमेजय! महाराज कुन्तिभोज की वह पुत्री विशाल नेत्रोंवाली पृथा धर्म, सुन्दर रूप तथा उत्तम गुणों से सम्पन्न थी। वह एकमात्र धर्म में ही रत रहनेवाली तथा महान् व्रतों का पालन करनेवाली थी।

**तां तु तेजस्विनीं कन्यां रूपयौवनशालिनीम्।**
**व्यवृण्वन् पार्थिवाः केचिदतीव स्त्रीगुणैर्युताम् ॥५॥**

स्त्रीजनोचित्त सर्वोत्तम गुण प्रभूत मात्रा में प्रकट होकर उस कन्या की शोभा बढ़ा रहे थे, फलतः सुन्दर रूप और युवावस्था से सुशोभित उस तेजस्विनी राजकन्या के लिए कई राजाओं ने महाराज कुन्तिभोज से याचना की।

**ततः सा कुन्तिभोजेन राज्ञाऽऽहूय नराधिपान्।**
**पित्रा स्वयंवरे दत्ता दुहिता राजसत्तम ॥६॥**

राजेन्द्र! तब कन्या के पिता कुन्तिभोज ने उन सब राजाओं को बुलाकर अपनी पुत्री पृथा को स्वयंवर में उपस्थित किया।

**ततः सा रङ्गमध्यस्थं तेषां राज्ञां मनस्विनी।**
**ददर्श राजशार्दूलं पाण्डुं भरतसत्तमम् ॥७॥**

उस स्वयंवर में मनस्विनी कुन्ती ने सब राजाओं के बीच में रङ्गमञ्च पर बैठे हुए भरतवंशशिरोमणि नृपश्रेष्ठ पाण्डु को देखा।

**सिंहदर्पं महोरस्कं वृषभाक्षं महाबलम्।**
**आदित्यमिव सर्वेषां राज्ञां प्रच्छाद्य वै प्रभाः ॥८॥**

उनमें सिंह के समान बल-दर्प जाग रहा था। उनकी छाती बहुत चौड़ी थी। उनके नेत्र बैल की आँखों के समान बड़े-बड़े थे। वे महाबली थे। वे सब राजाओं की प्रभा को अपने तेज से आच्छादित करके सूर्य की भाँति प्रदीप्त हो रहे थे।

**तं दृष्ट्वा सानवद्याङ्गी कुन्तिभोजसुता शुभा।**
**पाण्डुं नरवरं रङ्गे हृदयेनाकुलाभवत् ॥९॥**

निर्दोष अङ्गोंवाली कुन्तिभोजकुमारी शुभलक्षणा कुन्ती स्वयंवर की रङ्गभूमि में नरश्रेष्ठ पाण्डु को देख कर मन-ही-मन उन्हें पाने के लिए व्याकुल हो उठी।

**व्रीडमाना स्रजं कुन्ती राज्ञः स्कन्धे समासजत्।**
**ततस्तस्याः पिता राजन् विवाहमकरोत् प्रभुः ॥१०**

फिर कुन्ती ने लजाते-लजाते राजा पाण्डु के गले में जयमाला डाल दी। तब उसके पिता कुन्तिभोज ने [शास्त्रविधि के अनुसार पाण्डु के साथ] कुन्ती का विवाह कर दिया।

**कृत्वोद्वाहं तदा तं तु नानावसुभिरर्चितम्।**
**स्वपुरं प्रेषयामास स राजा कुरुसत्तम ॥११॥**

हे राजेन्द्र! महाराज कुन्तिभोज ने विवाह-संस्कार सम्पन्न करके उस समय उन्हें नाना प्रकार के धन और रत्नों से सम्मानित किया। फिर पाण्डु को उनकी राजधानी में भेज दिया।

**सम्प्राप्य नगरं राजा पाण्डुः कौरवनन्दनः।**
**न्यवेशयत तां भार्यां कुन्तीं स्वभवने प्रभुः ॥१२॥**

हस्तिनापुर में पहुँचकर शक्तिशाली कौरवनन्दन राजा पाण्डु ने अपनी प्रिय पत्नी कुन्ती को राजमहल में पहुँचा दिया।

**ततः शान्तनवो भीष्मो राज्ञः पाण्डोर्यशस्विनः।**
**विवाहस्यापरस्यार्थे चकार मतिमान् मतिम् ॥१३॥**

तत्पश्चात् शान्तनुनन्दन परम बुद्धिमान् भीष्मजी ने यशस्वी राजा पाण्डु के द्वितीय विवाह के लिए विचार किया।

**सोऽमात्यैः स्थविरैः सार्धं ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः।**
**बलेन चतुरङ्गेण ययौ मद्रपतेः पुरम् ॥१४॥**

वे वृद्ध मन्त्रियों, ब्राह्मणों, महर्षियों और चतु-

रङ्गिणी [रथ, हाथी, घोड़े और पैदल] सेना के साथ मद्रराज की राजधानी में गये।

**तमागतमभिश्रुत्य भीष्मं वाह्लीकपुङ्गवः।**
**प्रत्युद्गम्यार्चयित्वा च पुरं प्रावेशयन्नृपः ॥१५॥**

वाह्लीकशिरोमणि राजा शल्य भीष्मजी का आगमन सुनकर उनकी अगवानी के लिए नगर से बाहर आये तथा उनका यथोचित स्वागत-सत्कार करके उन्हें राजधानी में ले गये।

**दत्त्वा तस्यासनं शुभ्रं पाद्यमर्घ्यं तथैव च।**
**मधुपर्कं च मद्रेशः पप्रच्छागमनेऽर्थिताम् ॥१६॥**

वहाँ उनके लिए सुन्दर आसन, पाद्य, अर्घ्य तथा मधुपर्क अर्पित करके मद्रराज शल्य ने भीष्मजी से उनके आने का प्रयोजन पूछा।

**तं भीष्मः प्रत्युवाचेदं मद्रराजं कुरूद्वहः।**
**आगतं मां विजानीहि कन्यार्थिनमरिन्दम ॥१७॥**

तब कुरुकुल का भार वहन करनेवाले भीष्मजी ने मद्रराज से इस प्रकार कहा—"शत्रुदमन! तुम मुझे कन्या के लिए आया हुआ समझो।"

**श्रूयते भवतः साध्वी स्वसा माद्री यशस्विनी।**
**तामहं वरयिष्यामि पाण्डोरर्थे यशस्विनीम् ॥१८॥**

सुना है, तुम्हारी माद्री नामवाली एक यशस्विनी बहिन है, जो बड़े साधु स्वभाव की है। मैं उस यशस्विनी माद्री का अपने पाण्डु के लिए वरण करता हूँ।

**तमेवंवादिनं भीष्मं शल्यः सम्प्रीतमानसः।**
**ददौ तां समलंकृत्य स्वसारं कौरवर्षभे ॥१९॥**

भीष्म के ऐसा कहने पर शल्य का चित्त प्रसन्न हो गया। उन्होंने अपनी बहिन को वस्त्राभूषणों से समलंकृत करके राजा पाण्डु के लिए कुरुश्रेष्ठ भीष्मजी को सौंप दिया।

**स तां माद्रीमुपादाय प्रविष्टो गजसाह्वयम्।**
**जग्राह विधिवत् पाणिं माद्र्याः पाण्डुर्नराधिपः ॥२०**

भीष्मजी माद्री को लेकर हस्तिनापुर में आये। वहाँ पहुँचने पर राजा पाण्डु ने माद्री का विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया।

**स ताभ्यां व्यहरत् सार्धं भार्याभ्यां राजसत्तमः।**
**कुन्त्या माद्र्या च राजेन्द्रो यथाकामं यथासुखम् ॥२१**

राजाओं में श्रेष्ठ महाराज पाण्डु अपनी दोनों पत्नियों—कुन्ती और माद्री—के साथ आनन्दपूर्वक यथेष्ट विहार करने लगे।

**ततः स कौरवो राजा विहृत्य त्रिदशा निशाः।**
**जिगीषया महीं पाण्डुर्निरक्रामत् पुरात् प्रभो ॥२२**

हे जनमेजय! कुरुवंशी राजा पाण्डु तीस रात्रियों तक विहार करके समस्त भूमण्डल पर विजय प्राप्त करने की इच्छा लेकर राजधानी से बाहर निकले।

**स राजा देवगर्भाभो विजिगीषुर्वसुन्धराम्।**
**हृष्टपुष्टबलैः प्रायात् पाण्डुः शत्रूननेकशः ॥२३॥**

राजा पाण्डु देवकुमार के समान तेजस्वी थे। उन्होंने इस भूमण्डल पर विजय पाने की इच्छा से हृष्ट-पुष्ट सैनिकों के साथ अनेक शत्रुओं पर आक्रमण किया।

**तं कृताञ्जलयः सर्वे प्रणता वसुधाधिपाः।**
**उपाजग्मुर्धनं गृह्य रत्नानि विविधानि च ॥२४॥**

भूमण्डल के समस्त राजाओं ने उनके सामने हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिये तथा अनेक प्रकार के रत्न एवं धन लेकर उनके पास आये।

**तेन ते निर्जिताः सर्वे पृथिव्यां शूरपार्थिवाः।**
**तमेकं मेनिरे शूरं देवेष्विव पुरन्दरम् ॥२५॥**

पाण्डु के द्वारा परास्त हुए सभी शूरवीर नरेश देवताओं में इन्द्र की भाँति इस पृथिवी पर सब मनुष्यों में एकमात्र उन्हीं को अद्वितीय शूरवीर मानने लगे।

**तदादाय ययौ पाण्डुः पुनर्मुदितवाहनः।**
**हर्षयिष्यन् स्वराष्ट्राणि पुरं च गजसाह्वयम् ॥२६॥**

उधर उन सब रत्नों और उस धन को लेकर महाराजा पाण्डु अपने राष्ट्र के लोगों का हर्ष बढ़ाते हुए पुनः हस्तिनापुर की ओर चले आये। उस समय उनकी सवारी के अश्व आदि भी बहुत प्रसन्न थे।

**शान्तनो राजसिंहस्य भरतस्य च धीमतः।**
**प्रणष्टः कीर्तिजः शब्दः पाण्डुना पुनराहृतः ॥२७॥**

भूपालों में सिंह के समान पराक्रमी शान्तनु तथा परम बुद्धिमान् भरत की कीर्ति-कथा, जो नष्ट-सी हो गई थी, उसे महाराज पाण्डु ने पुनर्जीवित कर दिया।

**ये पुरा कुरुराष्ट्राणि जह्रुः कुरुधनानि च।**
**ते नागपुरसिंहेन पाण्डुना करदीकृताः ॥२८॥**

जिन राजाओं ने पहले कुरुदेश के धन तथा कुरुराष्ट्र का अपहरण किया था, उनको हस्तिनापुर के सिंह पाण्डु ने अपना करद बना लिया।

**तस्य वीरस्य विक्रान्तैः सहस्रशतदक्षिणैः।**
**अश्वमेधशतैरीजे धृतराष्ट्रो महामखैः ॥२९॥**

वीरवर पाण्डु के पराक्रम से धृतराष्ट्र ने बड़े-बड़े सौ अश्वमेध यज्ञ किये तथा प्रत्येक यज्ञ में एक-एक लाख स्वर्णमुद्राओं की दक्षिणा दी।

**अथ पारशवीं कन्यां देवकस्य महीपतेः।**
**रूपयौवनसम्पन्नां स शुश्रावापगासुतः ॥३०॥**

एक समय गङ्गानन्दन भीष्म ने सुना कि राजा देवक के यहाँ एक कन्या है, जो शूद्रजातीय स्त्री के गर्भ से एक ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न की गई है। वह मनोहर रूप और युवावस्था से सम्पन्न है।

**ततस्तु वरयित्वा तामानीय भरतर्षभः।**
**विवाहं कारयामास विदुरस्य महामतेः ॥३१॥**

तब भरतकुलतिलक भीष्म ने उसका वरण किया और उसे अपने यहाँ लाकर उसके साथ परम बुद्धिमान् विदुरजी का विवाह कर दिया।

**तस्यां चोत्पादयामास विदुरः कुरुनन्दनः।**
**पुत्रान् विनयसम्पन्नानात्मनः सदृशान् गुणैः ॥३२॥**

कुरुनन्दन विदुर ने उसके गर्भ से अपने ही समान गुणवान् और विनयशील अनेक पुत्र उत्पन्न किये।

**इति महाभारते आदिपर्वणि नवमोऽध्यायः ॥**

# दशमोऽध्यायः

## धृतराष्ट्र के पुत्रों का जन्म

वैशम्पायन उवाच

**ततः पुत्रशतं जज्ञे धृतराष्ट्रस्य पार्थिव।**
**महारथानां वीराणां कन्या चैका शताधिका ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! महाराज धृतराष्ट्र की दस स्त्रियाँ थीं। उनसे धृतराष्ट्र के एक सौ वीर महारथी पुत्र उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् एक कन्या हुई जो सौ पुत्रों के अतिरिक्त थी।

**धृतराष्ट्रस्य वैश्यायामेकश्चापि शतात् परः।**
**जन्मतस्तु प्रमाणेन ज्येष्ठो राजा युधिष्ठिरः ॥२॥**

दस क्षत्राणी पत्नियों के अतिरिक्त धृतराष्ट्र की एक पत्नी वैश्या जाति की कन्या थी। उससे भी एक पुत्र का जन्म हुआ [इसका नाम युयुत्सु था]। यह पूर्वोक्त सौ पुत्रों से अतिरिक्त था। जन्मकाल के प्रमाण से राजा युधिष्ठिर सबसे बड़े थे।

**स जातमात्र एवाथ धृतराष्ट्रसुतो नृप।**
**रासभारावसदृशं रुराव च ननाद च ॥३॥**

राजन्! धृतराष्ट्र का पुत्र दुर्योधन जन्म लेते ही गधे के रेंकने की-सी आवाज में रोने-चिल्लाने लगा। [उस समय—]

विदुर उवाच

**राजन् कुलान्तकरणो भवितैष सुतस्तव।**
**त्यजैनमेकं शान्तिं चेत् कुलस्येच्छसि भारत ॥४॥**

**विदुर ने कहा**—राजन्! आपका यह पुत्र समस्त कुल का नाश करनेवाला होगा। भारत! यदि आप अपने कुल का कल्याण चाहते हैं तो इस एक पुत्र को त्याग दें।

**त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।□**
**ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥५॥**

नीति का वचन है कि सम्पूर्ण कुल के हित के लिए एक व्यक्ति को त्याग दे, गाँव के हित के लिए एक कुल को छोड़ दे, देश के कल्याण के लिए एक गाँव का परित्याग कर दे और आत्मा के कल्याण के लिए सम्पूर्ण भूमण्डल को भी त्याग दे।

**न चकार तथा राजा पुत्रस्नेहसमन्वितः ॥६॥**

परन्तु पुत्रस्नेह के बन्धन में बँधे हुए राजा धृतराष्ट्र ने वैसा नहीं किया।

जनमेजय उवाच

**ज्येष्ठानुज्येष्ठतां तेषां नामानि च पृथक् पृथक् ।**
**धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामानुपूर्व्यात् प्रकीर्तय ॥७॥**

**जनमेजय ने पूछा**—हे ब्रह्मन् ! धृतराष्ट्र के पुत्रों में सबसे बड़ा कौन था ? फिर उससे छोटा और उससे भी छोटा कौन था ? उन सबके अलग-अलग नाम क्या थे ? सब बातों का क्रमशः वर्णन कीजिए ।

वैशम्पायन उवाच

**दुर्योधनो युयुत्सुश्च राजन् दुःशासनस्तथा ।**
**दुःसहो दुःशलश्चैव जलसन्धः समः सहः ॥८॥**
**विन्दानुविन्दौ दुर्धर्षः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ।**
**दुर्मर्षणो दुर्मुखश्च दुष्कर्णः कर्ण एव च ॥९॥**
**विविंशतिर्विकर्णश्च शलः सत्त्वः सुलोचनः ।**
**चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः ॥१०॥**
**दुर्मदो दुर्विगाहश्च विवित्सुर्विकटाननः ।**
**ऊर्णनाभः सुनाभश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ॥११॥**
**चित्रबाणश्चित्रवर्मा सुवर्मा दुर्विरोचनः ।**
**अयोबाहुर्महाबाहुश्चित्राङ्गश्चित्रकुण्डलः ॥१२॥**
**भीमवेगो भीमबलो बलाकी बलवर्धनः ।**
**उग्रायुधः सुषेणश्च कुण्डोदरमहोदरौ ॥१३॥**
**चित्रायुधो निषङ्गी च पाशी वृन्दारकस्तथा ।**
**दृढवर्मा दृढक्षत्रः सोमकीर्तिरनूदरः ॥१४॥**
**दृढसन्धो जरासन्धः सत्यसन्धः सदःसुवाक् ।**
**उग्रश्रवा उग्रसेनः सेनानीर्दुष्पराजयः ॥१५॥**
**अपराजितः पण्डितको विशालाक्षो दुराधरः ।**
**दृढहस्तः सुहस्तश्च वातवेगसुवर्चसौ ॥१६॥**
**आदित्यकेतुर्बह्वाशी नागदत्तोऽग्रयाय्यपि ।**
**कवची क्रथनः दण्डी दण्डधारो धनुर्ग्रहः ॥१७॥**
**उग्रभीमरथौ वीरौ वीरबाहुरलोलुपः ।**
**अभयो रौद्रकर्मा च तथा दृढरथाश्रयः ॥१८॥**
**अनाधृष्यः कुण्डभेदी विरावी चित्रकुण्डलः ।**
**प्रमथश्च प्रमाथी च दीर्घरोमश्च वीर्यवान् ॥१९॥**
**दीर्घबाहुर्महाबाहुर्व्यूढोरुः कनकध्वजः ।**
**कुण्डाशी विरजाश्चैव दुःशला च शताधिका ॥२०॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—[जनमेजय ! धृतराष्ट के पुत्रों के नाम क्रमशः ये हैं—] १. दुर्योधन, २. युयुत्सु, ३. दुश्शासन, ४. दुस्सह, ५. दुश्शल, ६. जलसन्ध, ७. सम, ८. सह, ९. विन्द, १०. अनुविन्द, ११. दुर्धर्ष, १२. सुबाहु, १३. दुष्प्रधर्षण, १४. दुर्मर्षण, १५. दुर्मुख, १६. दुष्कर्ण, १७. कर्ण, १८. विविंशति, १९. विकर्ण, २०. शल, २१. सत्त्व, २२. सुलोचन, २३. चित्र, २४. उपचित्र, २५. चित्राक्ष, २६. चारुचित्र शरासन, २७. दुर्मद, २८. दुर्विगाह, २९. विवित्सु, ३०. विकटानन, ३१. ऊर्णनाभ, ३२. सुनाम, ३३. नन्द, ३४. उपनन्द, ३५. चित्रबाण, ३६. चित्रवर्मा, ३७. सुवर्मा, ३८. दुर्विरोचन, ३९. अयोबाहु, ४०. महाबाहु चित्राङ्ग, ४१. चित्रकुण्डल, ४२. भीमवेग, ४३. भीमबल, ४४. बलाकी, ४५. बलवर्धन, ४६. उग्रायुध, ४७. सुषेण, ४८. कुण्डोदर, ४९. महोदर, ५०. चित्रायुध, ५१. निषङ्गी, ५२. पाशी, ५३. वृन्दारक, ५४. दृढवर्मा, ५५. दृढक्षत्र, ५६. सोमकीर्ति, ५७. अनूदर, ५८. दृढसन्ध, ५९. जरासन्ध, ६०. सत्यसन्ध ६१. सदःसुवाक्, ६२. उग्रश्रवा, ६३. उग्रसेन, ६४. सेनानी, ६५. दुष्पराजय, ६६. अपराजित ६७. पण्डितक, ६८. विशालाक्ष, ६९. दुराधर, ७०. दृढहस्त, ७१. सुहस्त, ७२. वातवेग, ७३. सुवर्चा, ७४. आदित्यकेतु, ७५. बह्वाशी, ७६. नागदत्त, ७७. अग्रयायी, ७८. कवची, ७९. क्रथन, ८०. दण्डी, ८१. दण्डधार, ८२, धनुर्ग्रह, ८३. उग्र, ८४. भीमरथ, ८५. वीरबाहु, ८६. अलोलुप, ८७. अभय, ८८. रौद्रकर्मा, ८९. दृढरथाश्रय, ९०. अनाधृष्य, ९१. कुण्डभेदी, ९२. विरावी, ९३. विचित्र कुण्डलों से सुशोभित प्रमथ, ९४. प्रमाथी, ९५. शक्तिशाली दीर्घरोमा, ९६. दीर्घबाहु, ९७. महाबाहु व्यूढोरु, ९८. कनकध्वज, ९९. कुण्डाशी तथा १००. विरजा—धृतराष्ट्र के ये सौ पुत्र थे । इनके अतिरिक्त दुःशला नाम की एक कन्या थी, जो सौ पुत्रों से अतिरिक्त थी ।

**सर्वे त्वतिरथाः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः ।**
**सर्वे वेदविदश्चैव सर्वे सर्वास्त्रकोविदाः ॥२१॥**

ये सभी अतिरथी शूरवीर थे । इन सबने युद्धविद्या में निपुणता प्राप्त कर ली थी । ये सभी वेदों के विद्वान् तथा सम्पूर्ण अस्त्रविद्या के मर्मज्ञ थे ।

**सर्वेषामनुरूपाश्च कृता दारा महीपते ।**
**धृतराष्ट्रेण समये परीक्ष्य विधिवन्नृप ॥२२॥**

**दुःशलां चापि समये धृतराष्ट्रो नराधिपः ।**
**जयद्रथाय प्रददौ विधिना भरतर्षभ ॥२३॥**

जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र ने समय पर भलीभाँति जाँच-पड़ताल करके अपने सभी पुत्रों का उनके योग्य कुमारियों के साथ विवाह कर दिया । भरतश्रेष्ठ ! महाराज धृतराष्ट्र ने विवाह के योग्य समय आने पर अपनी पुत्री दुःशला का भी राजा जयद्रथ के साथ विधिपूर्वक विवाह रचाया ।

**इति महाभारते आदिपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥१०॥**

# एकादशोऽध्यायः

## युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डवों का जन्म

वैशम्पायन उवाच

**सम्प्रयुक्तस्तु कुन्त्या च माद्रया च भरतर्षभ ।**
**जिततन्द्रस्तदा पाण्डुर्बभूव वनगोचरः ॥१॥**
**हित्वा प्रासादनिलयं शुभानि शयनानि च ।**
**अरण्यनित्यः सततं बभूव मृगयापरः ॥२॥**

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! राजा पाण्डु ने आलस्य को जीत लिया था । वे कुन्ती और माद्री की प्रेरणा से राजमहलों का निवास तथा सुन्दर शय्याएँ छोड़कर वन में रहने लगे । पाण्डु सदा वन में रहकर शिकार खेला करते थे ।

**सोऽब्रवीद् विजने कुन्तीं धर्मपत्नीं यशस्विनीम् ।**
**अपत्योत्पादने यत्नमापदि त्वं समर्थय ॥३॥**

एक दिन वे यशस्विनी धर्मपत्नी कुन्ती से एकान्त में इस प्रकार बोले—"हे देवि ! यह हमारे लिए आपत्ति-काल है, इस समय सन्तानोत्पत्ति के लिए जो आवश्यक प्रयत्न हो, उसका तुम समर्थन करो ।

**मन्नियोगात् सुकेशान्ते द्विजातेस्तपसाधिकात् ।**
**पुत्रान् गुणसमायुक्तानुत्पादयितुमर्हसि ॥४॥**

"हे सुन्दर केशोंवाली प्रिये ! तुम मेरे आदेश से तपस्या में बढ़े-चढ़े किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण के साथ समागम करके गुणवान् पुत्र उत्पन्न करो ।

**अद्यैव त्वं वरारोहे प्रयतस्व यथाविधि ।**
**धर्ममावाहय शुभे स हि लोकेषु पुण्यभाक् ॥५॥**

"वरारोहे ! तुम आज ही विधिपूर्वक इसके लिए प्रयत्न करो । शुभे ! तुम सबसे पहले धर्म का आवाहन करो, क्योंकि वे ही सम्पूर्ण लोकों में धर्मात्मा हैं ।"

**सा तथोक्ता तथेत्युक्त्वा तेन भर्त्रा वराङ्गना ।**
**अभिवाद्याभ्यनुज्ञाता प्रदक्षिणमवर्तत ॥६॥**

हे राजन् ! अपने पतिदेव पाण्डु के ऐसा कहने पर नारियों में श्रेष्ठ कुन्ती ने 'तथास्तु' कहकर उन्हें प्रणाम किया और आज्ञा लेकर उनकी परिक्रमा की ।

**संयुक्ता सा हि धर्मेण योगमूर्तिधरेण ह ।**
**लेभे पुत्रं वरारोहा सर्वप्राणभृतां हितम् ॥७॥**

तत्पश्चात् योगमूर्ति धारण किये हुए धर्म के साथ समागम करके सुन्दराङ्गी कुन्ती ने एक ऐसा पुत्र प्राप्त किया जो समस्त प्राणियों का हित करनेवाला था ।

**धार्मिकं तं सुतं लब्ध्वा पाण्डुस्तां पुनरब्रवीत् ।**
**प्राहुः क्षत्रं बलज्येष्ठं बलज्येष्ठं सुतं वृणु ॥८॥**

उस धर्मात्मा पुत्र [युधिष्ठिर] को पाकर राजा पाण्डु ने पुनः कुन्ती से कहा—"हे प्रिये ! क्षत्रिय को बल से ही बड़ा कहा गया है, अतः तुम एक ऐसा पुत्र प्राप्त करो, जो बल में सबसे श्रेष्ठ हो ।

**ततस्तथोक्ता भर्त्रा तु वायुमेवाजुहाव सा ।**
**तस्माज्जज्ञे महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥९॥**

पतिदेव के इस प्रकार कहने पर कुन्ती ने वायुदेव का आवाहन किया । वायुदेव से संसर्ग करने पर महापराक्रमी महाबाहु भीम का जन्म हुआ ।

**इदमत्यद्भुतं चासीज्जातमात्रे वृकोदरे ।**
**यदङ्कात् पतितो मातुः शिलां गात्रैर्व्यचूर्णयत् ॥१०॥**

भीमसेन के जन्म लेते ही एक अद्भुत घटना यह हुई कि अपनी माता की गोद से गिरने पर उन्होंने अपने अङ्गों से एक शिला को चूर-चूर कर दिया ।

**यस्मिन्नहनि भीमस्तु जज्ञे भरतसत्तम ।**
**दुर्योधनोऽपि तत्रैव प्रजज्ञे वसुधाधिप ॥११॥**

हे भरतश्रेष्ठ भूपाल ! जिस दिन भीमसेन का

जन्म हुआ था, उसी दिन हस्तिनापुर में दुर्योधन का भी जन्म हुआ था।

**जाते वृकोदरे पाण्डुः कुन्तीमाह महाबलः।**
**पुत्रं जनय सुश्रोणि धाम क्षत्रियतेजसाम् ॥१२॥**

भीमसेन के उत्पन्न होने पर महाबली पाण्डु ने कुन्ती से कहा—"सुश्रोणि ! अब तुम एक ऐसे पुत्र को जन्म दो, जो क्षत्रियोचित तेज का भण्डार हो।"

**एवमुक्ता ततः शक्रमाजुहाव यशस्विनी।**
**अथाजगाम देवेन्द्रो जनयामास चार्जुनम् ॥१३॥**

महाराजा पाण्डु के ऐसा कहने पर यशस्विनी कुन्ती ने इन्द्र का आवाहन किया। तब देवराज इन्द्र आये तथा उन्होंने अर्जुन को उत्पन्न किया।

**कुन्तीपुत्रेषु जातेषु धृतराष्ट्रात्मजेषु च।**
**मद्रराजसुता पाण्डुं रहो वचनमब्रवीत् ॥१४॥**

जनमेजय ! जब कुन्ती के तीन पुत्र उत्पन्न हो गये तथा धृतराष्ट्र के भी सौ पुत्र हो गये, तब माद्री ने पाण्डु से एकान्त में कहा—

**यदि त्वपत्यसन्तानं कुन्तिराजसुता मयि।**
**कुर्यादनुग्रहो मे स्यात् तव चापि हितं भवेत् ॥१५॥**

"यदि कुन्ती देवी मेरे गर्भ से भी कोई सन्तान उत्पन्न करा सकें, तो यह उनका मेरे ऊपर महान् अनुग्रह होगा तथा इससे आपका भी हित होगा।

**संरम्भो हि सपत्नीत्वाद् वक्तुं कुन्तिसुतां प्रति।**
**यदि तु त्वं प्रसन्नो मे स्वयमेनां प्रचोदय ॥१६॥**

"सौत होने के नाते मेरे मन में एक अभिमान है जो कुन्ती देवी से निवेदन करने में बाधक हो रहा है, अतः यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो आप स्वयं ही कुन्ती देवी को प्रेरित कीजिए।"

पाण्डुरुवाच

**ममाप्येष सदा माद्रि हृद्यर्थः परिवर्तते।**
**न तु त्वां प्रसहे वक्तुमिष्टानिष्टविवक्षया ॥१७॥**

पाण्डु बोले—माद्रि ! यह बात मेरे मन में भी निरन्तर घूमती रहती थी, परन्तु इस विषय में तुमसे कुछ कहने का साहस नहीं होता था, क्योंकि पता नहीं, तुम इस प्रस्ताव को सुनकर प्रसन्न होओगी वा बुरा मनोगी, यह सन्देह निरन्तर बना रहता था।

**तव त्विदं मतं मत्वा प्रयतिष्याम्यतः परम्।**
**मन्ये ध्रुवं मयोक्ता सा वचनं प्रतिपत्स्यते ॥१८॥**

परन्तु आज इस विषय में तुम्हारी सम्मति जानकर अब मैं इसके लिए प्रयत्न करूँगा। मुझे विश्वास है, मेरे कहने पर कुन्ती देवी निश्चय ही मेरी बात मान लेंगी।

वैशम्पायन उवाच

**ततः कुन्तीं पुनः पाण्डुर्विविक्त इदमब्रवीत्।**
**मत्प्रियार्थं च कल्याणि कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥१९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! एक दिन राजा पाण्डु ने कुन्ती से यह बात कही—'कल्याणि ! मेरा प्रिय करने के लिए तुम एक और परमोत्तम कल्याणमय कार्य करो।

**सा त्वं माद्रीं प्लवेनैव तारयैनामनिन्दिते।**
**अपत्यसंविभागेन परां कीर्तिमवाप्नुहि ॥२०॥**

"अनिन्दिते ! तुम अपनी ही भाँति इस माद्री को भी नौका पर बिठाकर पार लगा दो, इसे भी सन्तति प्रदान कर उत्तम यश प्राप्त करो।"

**एवमुक्त्वाब्रवीन्माद्रीं सकृच्चिन्तय दैवतम्।**
**तस्मात्ते भवितापत्यमनुरूपमसंशयम् ॥२१॥**

हे जनमेजय ! महाराज पाण्डु के ऐसा कहने पर कुन्ती ने माद्री से कहा—"तुम एक बार किसी दिव्य पुरुष का चिन्तन करो, उससे तुम्हें निश्चय ही योग्य सन्तान की प्राप्ति होगी।"

**ततो माद्री विचार्यैवं जगाम मनसाश्विनौ।**
**तावागम्य सुतौ तस्यां जनयामासतुर्यमौ ॥२२॥**

तब माद्री ने मन-ही-मन कुछ विचार करके अश्विनीकुमारों[1] का स्मरण किया। तब उन महात्मा

---

१. संस्कृत भाषा की अपनी विशेषताएँ हैं। संस्कृत में सभी शब्दों के लिङ्ग और वचन निश्चित हैं। कुछ शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हुए भी पुल्लिग अथवा नपुंसकलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं—जैसे दाराः और कलत्रम्। इनके वचन भी निश्चित हैं—जैसे 'दाराः' शब्द एक स्त्री का वाचक होने पर भी सदा बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है। 'राम की पत्नी सीता को देखो' इस वाक्य का संस्कृत अनुवाद होगा **'रामस्य दारान् सीतां पश्य'**।

संस्कृत में **'अश्विनौ'** सदा द्विवचन में प्रयुक्त होगा, न एकवचन में और न बहुवचन में। एक साथ दो पुरुषों से नियोग होना सम्भव नहीं। माद्री को एक ही पुरुष के साथ नियोग से जुड़वाँ पुत्र प्राप्त हुए थे।

ने आकर माद्री के गर्भ से दो जुड़वाँ पुत्र उत्पन्न किये।

**नामानि चक्रिरे तेषां शतशृङ्गनिवासिनः।**
**भक्त्या च कर्मणा चैव तथाशीर्भिर्विशाम्पते ॥२३॥**

तत्पश्चात् शतशृङ्गनिवासी ऋषियों ने उन सबके नामकरण-संस्कार किये। उन्हें आशीर्वाद देते हुए उनकी भक्ति और कर्म के अनुसार उनके नाम रखे।

**ज्येष्ठं युधिष्ठिरेत्येवं भीमसेनेति मध्यमम्।**
**अर्जुनेति तृतीयं च कुन्तीपुत्रानकल्पयन् ॥२४॥**

कुन्ती के ज्येष्ठ पुत्र का नाम युधिष्ठिर, मँझले का नाम भीमसेन तथा तीसरे का नाम अर्जुन रखा गया।

**पूर्वजं नकुलेत्येवं सहदेवेति चापरम्।**
**माद्रीपुत्रावकथयंस्ते विप्राः प्रीतमानसाः ॥२५॥**

उन प्रसन्नचित्त ब्राह्मणों ने माद्री-पुत्रों में से जो पहले उत्पन्न हुआ, उसका नाम नकुल तथा दूसरे का नाम सहदेव निश्चित किया।

**पाण्डुर्दृष्ट्वा सुतांस्तांस्तु देवरूपान् महौजसः।**
**मुदं परमिकां लेभे ननन्द च नराधिपः ॥२६॥**

उन देवस्वरूप महान् तेजस्वी पुत्रों को देखकर महाराज पाण्डु को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे आनन्द में मग्न हो गये।

**सिंहदर्पा महेष्वासाः सिंहविक्रान्तगामिनः।**
**सिंहग्रीवा मनुष्येन्द्रा ववृधुर्देवविक्रमाः ॥२७॥**

उन बालकों का बल-दर्प सिंह के समान था, वे बड़े-बड़े धनुष धारण करते थे। उनकी चाल-ढाल भी सिंह के ही समान थी। देवताओं के समान पराक्रमी तथा सिंह की-सी गर्दनवाले वे नरश्रेष्ठ चन्द्र-किरणों के समान बढ़ने लगे।

**ते च पञ्च शतं चैव कुरुवंशविवर्धनाः।**
**सर्वे ववृधुरल्पेन कालेनाप्स्विव नीरजाः ॥२८॥**

जैसे जल में कमल बढ़ते हैं, उस प्रकार कुरुवंश की वृद्धि करनेवाले जो एक सौ पाँच बालक हुए थे, वे सब थोड़े ही समय में बढ़कर सयाने हो गये।

**इति महाभारते आदिपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥११॥**

## द्वादशोऽध्यायः

### राजा पाण्डु की मृत्यु, माद्री का उनके साथ चितारोहण, ऋषियों का कुन्ती और पाण्डवों को हस्तिनापुर ले जाकर भीष्म को सौंपना

वैशम्पायन उवाच

**सुपुष्पितवने काले कदाचिन्मधुमाधवे।**
**भूतसम्मोहने पाण्डुः सभार्यो व्यचरद् वनम् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—एक दिन की बात है, चैत्र और वैशाख के महीनों की सन्धि के समय में सम्पूर्ण वन अनेक प्रकार के सुन्दर पुष्पों से अलंकृत हो अपनी अनुपम शोभा से समस्त प्राणियों को मोहित कर रहा था, उस समय राजा पाण्डु अपनी छोटी रानी के साथ वन में विचरने लगे।

**जलस्थानैश्च विविधैः पद्मिनीभिश्च शोभितम्।**
**पाण्डोर्वनं तत् सम्प्रेक्ष्य प्रजज्ञे हृदि मन्मथः ॥२॥**

नाना प्रकार के जलाशयों तथा कमलों से सुशोभित उस वन की मनोहर छटा देखकर राजा पाण्डु के मन में काम का संचार हो गया।

**प्रहृष्टमानसं तत्र विचरन्तं यथामरम्।**
**तं माद्र्यनुजगामैका वसनं बिभ्रती शुभम् ॥३॥**

वे मन में अत्यन्त हर्षित होकर देवता की भाँति वहाँ विचर रहे थे। उस समय माद्री सुन्दर वस्त्र पहिने अकेली उनके पीछे-पीछे जा रही थी।

**तत एनां बलाद् राजा निजग्राह रहो गताम्।**
**वार्यमाणस्तया देव्या विस्फुरन्त्या यथाबलम् ॥४॥**

तब एकान्त में मिली हुई माद्री को महाराज पाण्डु ने बलपूर्वक पकड़ लिया। देवी माद्री राजा की पकड़ से छूटने के लिए यथाशक्ति चेष्टा करती हुई उन्हें बार-बार रोक रही थी।

**स तया सह संगम्य भार्यया कुरुनन्दनः।**
**पाण्डुः परमधर्मात्मा युयुजे कालधर्मणा ॥५॥**

कुरुकुल को आनन्दित करनेवाले परम धर्मात्मा महाराज पाण्डु इस प्रकार अपनी धर्मपत्नी माद्री से समागम करके काल के ग्रास बन गये।

**ततो माद्री समालिङ्ग्य राजानं गतचेतनम् ।**
**मुमोच दुःखजं शब्दं पुनः पुनरतीव हि ।।६।।**

तब माद्री राजा के शव से लिपटकर बार-बार अत्यन्त करुणाजनक शब्दों में विलाप करने लगी ।

**सह पुत्रैस्ततः कुन्ती माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।**
**आजग्मुः सहितास्तत्र यत्र राजा तथागतः ।।७।।**

इतने में ही पुत्रों-सहित कुन्ती और दोनों पाण्डु-नन्दन माद्रीकुमार एक साथ उस स्थान पर आ पहुँचे, जहाँ राजा पाण्डु मृत-अवस्था में पड़े थे ।

**दृष्ट्वा पाण्डुं च माद्रीं च शयानौ धरणीतले ।**
**कुन्ती शोकपरीताङ्गी विललाप सुदुःखिता ।।८।।**

पाण्डु और माद्री को धरती पर पड़े हुए देख कुन्ती के सम्पूर्ण शरीर में शोकाग्नि व्याप्त हो गई और वह अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगी ।

कुन्त्युवाच

**अन्विष्यामीह भर्तारमहं प्रेतवशं गतम् ।**
**उत्तिष्ठ त्वं विसृज्यैनमिमान् पालय दारकान् ।।९।।**

**कुन्ती बोली**—मैं मृत्यु के पाश में पड़े हुए अपने स्वामी का अनुगमन करूँगी । अब तुम इन्हें छोड़कर उठो तथा इन बच्चों का पालन करो ।

माद्र्युवाच

**न चाप्यहं वर्तयन्ती निर्विशेषं सुतेषु ते ।**
**वृत्तिमार्ये चरिष्यामि स्पृशेदेनस्तथा च माम् ।।१०।।**

**माद्री ने कहा**—आर्ये ! मैं आपके पुत्रों के साथ अपने सगे पुत्रों की भाँति व्यवहार नहीं कर सकूँगी । उस अवस्था में मुझे पाप लगेगा ।

**तस्मान्मे सुतयोः कुन्ति वर्तितव्यं स्वपुत्रवत् ।**
**मां च कामयमानोऽयं राजा प्रेतवशं गतः ।।११।।**

अतः आप ही जीवित रहकर मेरे पुत्रों का भी अपने पुत्रों के समान ही पालन कीजिएगा । इसके सिवा, ये महाराज मेरी ही कामना रखकर मृत्यु के अधीन हुए हैं ।

**राज्ञः शरीरेण सह ममापीदं कलेवरम् ।**
**दग्धव्यं सुप्रतिच्छन्नमेतदार्ये प्रियं कुरु ।।१२।।**

मेरे इस शरीर को महाराज के शरीर के साथ ही भली-भाँति ढँककर दग्ध कर दें । आर्ये ! आप मेरा यह प्रिय कार्य कर ।

**दारकेष्वप्रमत्ता च भवेथाश्च हिता मम ।**
**अतोऽन्यन्न प्रपश्यामि संदेष्टव्यं हि किञ्चन ।।१३।।**

मेरे पुत्रों का हित चाहती हुई आप सावधान रहकर उनका पालन-पोषण करती रहें । इसके सिवा दूसरी कोई बात मुझे आपसे कहने योग्य नहीं जान पड़ती ।

वैशम्पायन उवाच

**इत्युक्त्वा तं चिताग्निस्थं धर्मपत्नी नरर्षभम् ।**
**मद्रराजसुता तूर्णमन्वारोहद् यशस्विनी ।।१४।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! कुन्ती से यह कहकर पाण्डु की यशस्विनी धर्मपत्नी माद्री चिता-अग्नि पर रखे हुए अपने पति नरश्रेष्ठ पाण्डु के शव के साथ स्वयं भी चिता पर जा बैठी ।[1]

**पाण्डुमुपरतं दृष्ट्वा देवकल्पा महर्षयः ।**
**ततो मन्त्रविदः सर्वे मन्त्रयाञ्चक्रिरे मिथः ।।१५।।**

उधर राजा पाण्डु की मृत्यु हुई देख, वहाँ रहने-वाले देवताओं के समान तेजस्वी सभी मन्त्रज्ञ महर्षियों ने आपस में विचार-विमर्श किया ।

तापसा ऊचुः

**हित्वा राज्यं च राष्ट्रं च स महात्मा महायशाः ।**
**अस्मिन् स्थाने तपस्तप्त्वा तापसाञ्शरणं गतः ।।१६।।**

**तपस्वी बोले**—महान् यशस्वी महात्मा राजा पाण्डु अपना राज्य तथा राष्ट्र छोड़कर इस स्थान पर तपस्या करते हुए तपस्वी मुनियों की शरण में रहते थे ।

**स जातमात्रान् पुत्राँश्च दाराँश्च भवतामिह ।**
**प्रादायोपनिधिं राजा पाण्डुः स्वर्गमितो गतः ।।१७।।**

वे राजा पाण्डु अपनी पत्नी और नवजात पुत्रों को आप लोगों के पास धरोहर रखकर यहाँ से स्वर्ग-लोक चले गये ।

**तस्येमानात्मजान् देहं भार्यां च सुमहात्मनः ।**
**स्वराष्ट्रं गृह्य गच्छामो धर्म एष हि नः स्मृतः ।।१८।।**

उनके इन पुत्रों को, पाण्डु एवं माद्री के शरीर की अस्थियों को तथा उन महामना नरेश की महारानी

---

१. सती-प्रथा वेद-विरुद्ध है । चारों वेदों में एक भी मन्त्र सती-प्रथा का समर्थक नहीं है ।

कुन्ती को लेकर हम लोग उनकी राजधानी में चलें। इस समय हमारे लिए यही धर्म प्रतीत होता है।

वैशम्पायन उवाच

**ते परस्परमामन्त्र्य देवकल्पा महर्षयः।**
**तस्मिन्नेव क्षणे सर्वे तानादाय प्रतस्थिरे ॥१९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन्! इस प्रकार परस्पर विचार-विमर्श करके उन देवतुल्य महर्षियों ने उन सबको [कुन्ती, पाँचों पाण्डवों तथा पाण्डु और माद्री के शरीर की अस्थियों] साथ लेकर उसी क्षण वहाँ से प्रस्थान कर दिया।

**द्वारिणं तापसा ऊचू राजानं च प्रकाशय।**
**ते तु गत्वा क्षणेनैव सभायां विनिवेदिताः ॥२०॥**

नगर में पहुँचकर तपस्वी मुनियों ने द्वारपाल से कहा—"राजा को हमारे आने की सूचना दो!" द्वारपाल ने सभा में जाकर क्षणभर में उनके आगमन का समाचार दे दिया।

**पूजयित्वा यथान्यायं पाद्येनार्घ्येण च प्रभो।**
**भीष्मो राज्यं च राष्ट्रं च महर्षिभ्यो न्यवेदयत् ॥२१॥**
**तेषामथो वृद्धतमः प्रत्युत्थाय जटाजिनी।**
**ऋषीणां मतमाज्ञाय महर्षिरिदमब्रवीत् ॥२२॥**

राजन्! भीष्मजी ने पाद्य-अर्घ्यादि द्वारा उन सब महर्षियों का यथोचित आदर-सत्कार करके उन्हें अपने राज्य तथा राष्ट्र का कुशल-समाचार निवेदन किया। तब उन महर्षियों में जो सबसे अधिक वृद्ध थे, वे जटा और मृगचर्म धारण करनेवाले मुनि अन्य सब ऋषियों की अनुमति लेकर इस प्रकार बोले—

**यः स कौरव्य दायादः पाण्डुर्नाम नराधिपः।**
**कामभोगान् परित्यज्य शतशृङ्गमितो गतः ॥२३॥**
**वर्तमानः सतां वृत्ते पुत्रलाभमवाप्य च।**
**पितृलोकं गतः पाण्डुरितः सप्तदशेऽहनि ॥२४॥**

"हे कुरुनन्दन भीष्म! जो आपके पुत्र महाराज पाण्डु विषय-भोगों का परित्याग करके यहाँ से शतशृङ्ग पर्वत पर चले गये थे, साधु पुरुषों के आचार-व्यवहार का पालन करते हुए वे ही राजा पाण्डु उत्तम पुत्रों की उपलब्धि करके आज से सत्रह दिन पूर्व स्वर्गवासी हो गये।

**तं चितागतमाज्ञाय वैश्वानरमुखे हुतम्।**
**प्रविष्टा पावकं माद्री हित्वा जीवितमात्मनः ॥२५॥**

"जब वे चिता पर सुलाये गये तथा उन्हें अग्नि के मुख में होम दिया गया, उस समय देवी माद्री अपने जीवन का मोह छोड़कर उसी अग्नि में प्रविष्ट हो गईं।

**इमे तयोः शरीरे द्वे पुत्राश्चेमे तयोर्वराः।**
**यथावदनुगृह्णन्तु धर्मो ह्येष सनातनः ॥२६॥**

"ये पाण्डु व माद्री दोनों के शरीरों की अस्थियाँ हैं तथा ये उनके श्रेष्ठ पुत्र हैं। आप लोग इन्हें यथोचित रूप से अपनाकर अनुगृहीत करें, क्योंकि यही सनातन धर्म है।"

**एवमुक्त्वा कुरून् सर्वान् कुरूणामेव पश्यताम्।**
**क्षणेनान्तर्हिताः सर्वे तापसा गुह्यकैः सह ॥२७॥**

हे जनमेजय! समस्त कौरवों से ऐसी बात कहकर उनके देखते-देखते वे सभी तपस्वी मुनि गुह्यकों (यक्षों) के साथ क्षणभर में वहाँ से अन्तर्धान [आँखों से ओझल] हो गये।

**इति महाभारते आदिपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥**

# त्रयोदशोऽध्यायः

## पाण्डवों तथा धृतराष्ट्र-पुत्रों की बाल-क्रीड़ा, दुर्योधन का भीम को विष खिलाकर जल में धकेलना, भीम का वापस से लौटना

वैशम्पायन उवाच

**अथाप्तवन्तो वेदोक्तान् संस्कारान् पाण्डवास्तदा।**
**संव्यवर्धन्त भोगांस्ते भुञ्जानाः पितुर्वेश्मनि ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन्! उस समय पाँचों पाण्डवों के वेदोक्त [वेदारम्भ आदि] संस्कार हुए। वे पिता के घर में नाना प्रकार के भोग भोगते हुए पलने और पुष्ट होने लगे।

**धार्तराष्ट्रैश्च सहिताः क्रीडन्तो मुदिताः सुखम् ।**
**बालक्रीडासु सर्वासु विशिष्टास्तेजसाभवन् ॥२॥**

धृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ सुखपूर्वक खेलते हुए वे सदा प्रसन्न रहते थे। सब प्रकार की बाल-क्रीड़ाओं में अपने तेज से वे बढ़-चढ़कर सिद्ध होते थे।

**जवे लक्ष्याभिहरणे भोज्ये पांसुविकर्षणे ।**
**धार्तराष्ट्रान् भीमसेनः सर्वान् स परिमर्दति ॥३॥**

दौड़ने में, दूर रखी हुई किसी प्रत्यक्ष वस्तु को सबसे पहले पहुँचकर उठा लेने में, खान-पान में तथा धूल उछालने के खेल में भीमसेन धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों का मान-मर्दन कर देते थे।

**हर्षात् प्रक्रीडमानांस्तान् गृह्य राजन् निलीयते ।**
**शिरःसु विनिगृह्यैतान् योधयामास पाण्डवैः ॥४॥**

राजन्! हर्ष से खेल-कूद में लगे हुए कौरवों को पकड़कर भीमसेन कहीं छिप जाते थे और कभी उनके सिर पकड़कर पाण्डवों से लड़ा देते थे।

**शतमेकोत्तरं तेषां कुमाराणां महौजसाम् ।**
**एक एव निगृह्णाति नातिकृच्छ्राद् वृकोदरः ॥५॥**

धृतराष्ट्र के एक सौ एक कुमार बड़े बलवान् थे, किन्तु भीमसेन बिना अधिक कष्ट उठाये अकेले ही उन सबको अपने वश में कर लेते थे।

**दश बालाञ्जले क्रीडन् भुजाभ्यां परिगृह्य सः ।**
**आस्ते स्म सलिले मग्नो मृतकल्पान् विमुञ्चति ॥६॥**

वे (भीम) जल में क्रीड़ा करते समय अपनी दोनों भुजाओं से धृतराष्ट्र के दस बालकों को पकड़ लेते तथा देर तक पानी में डुबकी लगाये रहते थे। जब वे अधमरे-से हो जाते थे, तब उन्हें छोड़ते थे।

**फलानि वृक्षमारुह्य विचिन्वन्ति च ते यदा ।**
**तदा पादप्रहारेण भीमः कम्पयते द्रुमान् ॥७॥**

जब कौरव वृक्ष पर चढ़कर फल तोड़ने लगते, तब भीमसेन पैर से ठोकर मारकर उन वृक्षों को हिला देते थे।

**प्रहारवेगाभिहता द्रुमा व्याघूर्णितास्ततः ।**
**सफला प्रपतन्ति स्म द्रुतं त्रस्ताः कुमारकाः ॥८॥**

उनके वेगपूर्वक प्रहार से आहत हो वे वृक्ष हिलने लगते और उनपर चढ़े हुए धृतराष्ट्र के पुत्र भयभीत हो फलों के सहित नीचे गिर पड़ते थे।

**न ते नियुद्धे न जवे न योग्यासु कदाचन ।**
**कुमारा उत्तरं चक्रुः स्पर्धमाना वृकोदरम् ॥९॥**

मल्लयुद्ध [कुश्ती] में, दौड़ लगाने में तथा शिक्षा के अभ्यास में धृतराष्ट्र के पुत्र सदा स्पर्धा करते हुए भी (लाग-डाँट रखते हुए भी) कभी भीमसेन की बराबरी नहीं कर पाते थे।

**एवं स धार्तराष्ट्रांश्च स्पर्धमानो वृकोदरः ।**
**अप्रियेऽतिष्ठदत्यन्तं बाल्यान्न द्रोहचेतसा ॥१०॥**

इस प्रकार भीमसेन धृतराष्ट्र-पुत्रों से स्पर्धा रखते हुए उनके अत्यन्त अप्रीतिपात्र बन गये। परन्तु उनके मन में कौरवों के प्रति द्वेष नहीं था, वे केवल बाल-स्वभाव के कारण ही वैसा करते थे।

**ततो बलमतिख्यातं धार्तराष्ट्रः प्रतापवान् ।**
**भीमसेनस्य तज्ज्ञात्वा दुष्टभावमदर्शयत् ॥११॥**

उधर धृतराष्ट्र का प्रतापी पुत्र दुर्योधन यह जानकर कि भीमसेन में अत्यन्त विख्यात बल है, उनके प्रति दुष्टभाव प्रदर्शित करने लगा।

**अयं बलवतां श्रेष्ठः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ।**
**मध्यमः पाण्डुपुत्राणां निकृत्या संनिगृह्यताम् ॥१२॥**

वह अपने भाइयों के साथ विचार करने लगा कि "यह मध्यम पाण्डुपुत्र कुन्तीनन्दन भीम बलवानों में सबसे बढ़कर है। इसे धोखा देकर बन्दी बना लेना चाहिए।

**प्राणवान् विक्रमी चैव शौर्येण महतान्वितः ।**
**तं तु सुप्तं पुरोद्याने गङ्गायां प्रक्षिपामहे ॥१३॥**
**अथ तस्मादवरजं श्रेष्ठं चैव युधिष्ठिरम् ।**
**प्रसह्य बन्धने बद्ध्वा प्रशासिष्ये वसुन्धराम् ॥१४॥**

"यह बलवान् और पराक्रमी तो है ही, महान् शौर्य से भी सम्पन्न है, अतः जब यह नगरोद्यान में सो जाए, तब इसे उठाकर हम लोग गङ्गा नदी में फेंक दें। तत्पश्चात् उसके छोटे भाई अर्जुन और बड़े भाई युधिष्ठिर को बलपूर्वक बन्दी बनाकर मैं अकेला ही पृथिवी का शासन करूँगा।"

**एवं स निश्चयं कृत्वा पापः दुर्योधनस्तदा ।**
**नित्यमेवान्तरप्रेक्षी भीमस्यासीन्महात्मनः ॥१५॥**

ऐसा निश्चय करके पापी दुर्योधन महात्मा भीम-

सेन का अनिष्ट करने के लिए सदा अवसर ढूँढ़ता रहता था।

**ततो जलविहारार्थं कारयामास भारत।**
**चैलकम्बलवेश्मानि विचित्राणि महान्ति च ॥१६॥**

हे जनमेजय! तदनन्तर दुर्योधन ने गङ्गा-तट पर जल-विहार के लिए ऊनी और सूती कपड़ों के विचित्र एवं विशाल गृह तैयार कराये।

**भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च चोष्यं लेह्यमथापि च।**
**उपपादितं नरैस्तत्र कुशलैः सूदकर्मणि ॥१७॥**

वहाँ रसोई के काम में कुशल कितने ही मनुष्यों ने जुटकर खाने-पीने के बहुत-से भक्ष्य, भोज्य, पेय, चोष्य और लेह्य पदार्थ तैयार किये।

**न्यवेदयँस्तत् पुरुषा धार्तराष्ट्राय वै तदा।**
**ततो दुर्योधनस्तत्र पाण्डवानाह दुर्मतिः ॥१८॥**

तत्पश्चात् राजपुरुषों ने दुर्योधन को सूचना दी कि—'सब तैयारी पूर्ण हो गई है।' तब दुष्ट-बुद्धि दुर्योधन ने पाण्डवों से कहा—

**गङ्गां चैवानुयास्याम उद्यानवनशोभिताम्।**
**सहिता भ्रातरः सर्वे जलक्रीडामवाप्नुमः ॥१९॥**

"आज हम लोग भाँति-भाँति के उद्यान[1] और वनों[2] से सुशोभित गङ्गा के तट पर चलें। वहाँ हम सब भाई एक साथ जल-विहार करेंगे।"

**एवमस्त्विति तं चापि प्रत्युवाच युधिष्ठिरः।**
**निर्ययुर्नगराच्छूराः कौरवाः पाण्डवैः सह ॥२०॥**

'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर युधिष्ठिर ने दुर्योधन की बात मान ली। फिर वे सभी शूरवीर कौरव पाण्डवों के साथ नगर से बाहर निकले।

**तत्रोपविष्टास्ते सर्वे पाण्डवाः कौरवाश्च ह।**
**उपपन्नान् बहून् कामाँस्ते भुञ्जन्ति ततस्ततः ॥२१॥**

वहाँ पहुँचकर समस्त कौरव और पाण्डव यथा-योग्य स्थानों पर बैठ गये और स्वतः प्राप्त हुए नाना प्रकार के भोगों को भोगने लगे।

**अथोद्यानवरे तस्मिंस्तथा क्रीडागताश्च ते।**
**परस्परस्य वक्त्रेभ्यो ददुर्भक्ष्याँस्ततस्ततः ॥२२॥**
**ततो दुर्योधनः पापस्तद्भक्ष्ये कालकूटकम्।**
**विषं प्रक्षेपयामास भीमसेनजिघांसया ॥२३॥**

उस सुन्दर उद्यान में क्रीड़ा के लिए आये हुए कौरव और पाण्डव एक-दूसरे के मुख में खाने की वस्तुएँ डालने लगे। उस समय पापी दुर्योधन ने भीमसेन को मार डालने की इच्छा से उनके भोजन में कालकूट नामक विष मिला दिया।

**स्वयमुत्थाय चैवाथ हृदयेन क्षुरोपमः।**
**स वाचामृतकल्पश्च भ्रातृवच्च सुहृद् यथा ॥२४॥**
**स्वयं प्रक्षिपते भक्ष्यं बहु भीमस्य पापकृत्।**
**प्रतीच्छितं स्म भीमेन तं वै दोषमजानता ॥२५॥**
**ततो दुर्योधनस्तत्र हृदयेन हसन्निव।**
**कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यते पुरुषाधमः ॥२६॥**

पापात्मा दुर्योधन का हृदय छुरे के समान तीखा था, परन्तु बातें वह ऐसी करता था, मानो उनसे अमृत झर रहा हो। वह सगे भाई और हितैषी सुहृद् की भाँति स्वयं भीमसेन के लिए अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थ परोसने लगा। भीमसेन भोजन के दोष से अपरिचित थे, अतः दुर्योधन ने जितना परोसा, वह सब-का-सब खा गये। यह देख नीच दुर्योधन मन-ही-मन हँसता हुआ-सा अपने आपको कृतार्थ मानने लगा।

**ततस्ते सहिताः सर्वे जलक्रीडामकुर्वत।**
**पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च तदा मुदितमानसाः ॥२७॥**

भोजन के पश्चात् पाण्डव तथा धृतराष्ट्र के पुत्र सभी प्रसन्नचित्त हो एक साथ जल-क्रीड़ा करने लगे।

**दिवसान्ते परिश्रान्ता विहृत्य च कुरूद्वहाः।**
**विहारावसथेष्वेव वीरा वासमरोचयन् ॥२८॥**
**खिन्नस्तु बलवान् भीमो व्यायम्याभ्यधिकं तदा।**
**प्रमाणकोट्यां वासार्थी सुष्वापावाप्य तत्स्थलम् ॥२९**

दिन के अन्त में विहार से थके हुए वे समस्त कौरवश्रेष्ठ वीर उन क्रीड़ाभवनों में ही रात बिताने का विचार करने लगे। बलवान् भीम उस समय अधिक परिश्रम करने के कारण बहुत थक गये थे, अतः विश्राम करने की इच्छा से वे प्रमाणकोटि के एक गृह में आये और वहीं एक स्थान में सो गये।

**शीतं वातं समासाद्य श्रान्तो मदविमोहितः।**
**विषेण च परीताङ्गो निश्चेष्टः पाण्डुनन्दनः ॥३०॥**

---

१. उद्यान=फल-प्रधान बाग।

२. वन=पुष्प-प्रधान वाटिका।

पाण्डु-पुत्र भीम थके तो थे ही, विष के मद से भी अचेत हो रहे थे। उनके अङ्ग-अङ्ग में विष का प्रभाव फैल गया था, अतः वहाँ ठण्डी हवा पाकर वे ऐसे सोये कि जड़ के समान निश्चेष्ट प्रतीत होने लगे।

**ततो बद्ध्वा लतापाशैर्भीमं दुर्योधनः स्वयम् ।**
**मृतकल्पं तदा वीरं स्थलाज्जलमपातयत् ॥३१॥**

तब दुर्योधन ने स्वयं वीरवर भीमसेन को लताओं के पाश में कसकर बाँधा। वे मुर्दे के समान हो रहे थे। ऐसी अवस्था में दुर्योधन ने उन्हें गङ्गा के ऊँचे तट से जल में धकेल दिया।

**ततस्ते कौरवाः सर्वे विना भीमं च पाण्डवाः ।**
**वृत्तक्रीडाविहारास्तु प्रतस्थुर्गजसाह्वयम् ॥३२॥**

हे जनमेजय! उधर समस्त कौरव और पाण्डव क्रीड़ा और विहार समाप्त करके भीमसेन के बिना हो हस्तिनापुर की ओर चल पड़े।

**रथैर्गजैस्तथा चाश्वैर्यानैश्चान्यैरनेकशः ।**
**ब्रुवन्तो भीमसेनस्तु यातो ह्यग्रत एव नः ॥३३॥**
**ततो दुर्योधनः पापस्तत्रापश्यन् वृकोदरम् ।**
**भ्रातृभिः सहितो हृष्टो नगरं प्रविवेश ह ॥३४॥**

रथ, हाथी, घोड़े तथा अन्य अनेक प्रकार की सवारियों द्वारा वे वहाँ से चले। भीम को वहाँ न देखकर वे आपस में कह रहे थे कि भीमसेन तो हम लोगों से आगे ही चले गये हैं। पापी दुर्योधन ने भीमसेन को वहाँ न देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो भाइयों के साथ नगर में प्रवेश किया।

**युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा ह्यविदन् पापमात्मनि ।**
**स्वेनानुमानेन परं साधुं समनुपश्यति ॥३५॥**

राजा युधिष्ठिर धर्मात्मा थे, उनके पवित्र हृदय में दुर्योधन के पापपूर्ण विचार का भान तक न हुआ। वे अपने ही अनुमान से दूसरे को भी साधु ही देखते और समझते थे।

**सोऽभ्युपेत्य तदा पार्थो मातरं भ्रातृवत्सलः ।**
**अभिवाद्याब्रवीत् कुन्तीमम्ब भीम इहागतः ॥३६॥**

भाई पर असीम स्नेह रखनेवाले कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर माता के पास पहुँचकर और उन्हें प्रणाम करके बोले—"माँ! भीमसेन यहाँ आया है क्या?"

**क्व गतो भविता मातर्नेह पश्यामि तं शुभे ।**
**उद्यानानि वनं चैव विचितानि समन्ततः ॥३७॥**
**तदर्थं न च तं वीरं दृष्टवन्तो वृकोदरम् ।**
**मन्यमानास्ततः सर्वे यातो न पूर्वमेव सः ॥३८॥**

"मातः! वह कहाँ गया होगा? शुभे! मैं उसे यहाँ भी नहीं देख रहा हूँ। वहाँ हम लोगों ने भीमसेन के लिए उद्यान और वन का कोना-कोना छान डाला। फिर भी जब हमें वीरवर भीम दिखाई नहीं दिये, तब हमने यही समझा कि वह हम लोगों से पहले चले आये होंगे?

**आगताः स्म महाभागे व्याकुलेनान्तरात्मना ।**
**इहागम्य क्व नु गतस्त्वया वा प्रेषितः क्व नु ॥३९॥**

"महाभागे! हम उसके लिए अत्यन्त व्याकुल हृदय से यहाँ आये हैं। यहाँ आकर वह कहीं चला गया है? अथवा तुमने उसे कहीं भेजा है?

**कथयस्व महाबाहुं भीमसेनं यशस्विनि ।**
**न हि मे शुध्यते भावस्तं वीरं प्रति शोभने ॥४०॥**

"यशस्विनि! महाबाहु भीमसेन का पता बताओ। शोभने! वीर भीमसेन के विषय में मेरा हृदय शंकित हो गया है।"

**इत्युक्ता च ततः कुन्ती धर्मराजेन धीमता ।**
**हा-हेति कृत्वा सम्भ्रान्ता प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥४१**

बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिर के इस प्रकार पूछने पर कुन्ती देवी 'हाय-हाय' करके घबरा उठीं और युधिष्ठिर से बोलीं—

**न पुत्र भीमं पश्यामि न मामभ्येत्यसाविति ।**
**शीघ्रमन्वेषणे यत्नं कुरु तस्यानुजैः सह ॥४२॥**

"वत्स! मैंने भीम को नहीं देखा है। वह मेरे पास आया ही नहीं। तुम अपने छोटे भाइयों के साथ शीघ्र उसे ढूँढ़ने का प्रयत्न करो।"

**इत्युक्त्वा तनयं ज्येष्ठं हृदयेन विदूयता ।**
**क्षत्तारमानाय्य तदा कुन्ती वचनमब्रवीत् ॥४३॥**

कुन्ती का हृदय पुत्र की चिन्ता से व्यथित हो रहा था, उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर से उपर्युक्त बात कहकर विदुरजी को बुलवाया और उनसे इस प्रकार कहा—

**क्व गतो भगवन् क्षत्तर्भीमसेनो न दृश्यते ।**
**उद्यानान्निर्गताः सर्वे भीमो नाभ्येति मामिह ॥४४॥**

"भगवन् ! भीमसेन कहीं दिखाई नहीं देता, वहाँ से कहाँ चला गया ? उद्यान से सब लोग लौट आये, परन्तु भीम अभी तक लौटकर मेरे पास नहीं आया ।

**न च प्रणीयते चक्षुः सदा दुर्योधनस्य सः ।**
**क्रूरोऽसौ दुर्मतिः क्षुद्रो राज्यलुब्धोऽनपत्रपः ॥४५॥**

"वह सदा दुर्योधन की आँखों में खटकता रहता है । दुर्योधन क्रूर, दुर्बुद्धि, क्षुद्र, राज्य का लोभी तथा निर्लज्ज है ।

**निहन्यादपि तं वीरं जातमन्युः सुयोधनः ।**
**तेन मे व्याकुलं चित्तं हृदयं दह्यतीव च ॥४६॥**

"अतः सम्भव है, वह क्रोध में वीर भीमसेन को धोखा देकर मार भी डाले । इसी चिन्ता से मेरा चित्त व्याकुल हो उठा है और हृदय दग्ध-सा हो रहा है ।"

विदुर उवाच

**मैवं वदस्व कल्याणि शेषसंरक्षणं कुरु ।**
**प्रत्यादिष्टो हि दुष्टात्मा शेषेऽपि प्रहरेत् तव ॥४७॥**

**विदुरजी बोले**—कल्याणि ! ऐसी बात मुँह से न निकालो । अपने शेष पुत्रों की रक्षा करो । यदि दुर्योधन को उलाहना देकर इस विषय में पूछ-ताछ की जाएगी तो वह दुष्टात्मा तुम्हारे शेष पुत्रों पर भी प्रहार कर सकता है ।

**दीर्घायुषस्तव सुता यथोवाच महामुनिः ।**
**आगमिष्यति ते पुत्रः प्रीतिं चोत्पादयिष्यति ॥४८॥**

महामुनि व्यासजी के कथनानुसार तुम्हारे सभी पुत्र दीर्घजीवी हैं, अतः तुम्हारा पुत्र भीमसेन कहीं भी क्यों न गया हो, अवश्य लौटेगा और तुम्हें आनन्द प्रदान करेगा ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वा ययौ विद्वान् विदुरः स्वं निवेशनम् ।**
**कुन्ती चिन्तापरा भूत्वा सहासीना सुतैर्गृहे ॥४९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! विद्वान् विदुर ऐसा कहकर अपने घर चले गये । इधर कुन्ती चिन्तामग्न होकर अपने चारों पुत्रों के साथ चुप-चाप घर में बैठ रही ।

**स निःसञ्ज्ञो जलस्यान्तमथ वै पाण्डवोऽविशत् ।**
**तत्रादश्यत नागैः स महादंष्ट्रैर्विषोल्बणैः ॥५०॥**

भीमसेन बेहोशी की अवस्था में जल के भीतर डूबकर धीरे-ही-धीरे नीचे जा पहुँचे । वहाँ नागों ने अपनी भयंकर विषवाली बड़ी-बड़ी दाढ़ों से भीमसेन को खूब डँसा ।

**ततोऽस्य दश्यमानस्य तद् विषं कालकूटकम् ।**
**हतं सर्पविषेणैव स्थावरं जङ्गमेन तु ॥५१॥**

उनके द्वारा डँसे जाने से कालकूट विष का प्रभाव नष्ट हो गया । सर्पों के जंगम विष ने खाये हुए स्थावर विष को हर लिया ।

**ततः प्रबुद्धः कौन्तेयः सर्वं संछिद्य बन्धनम् ।**
**आगजाम महाबाहुर्मातुरन्तिकमञ्जसा ॥५२॥**

तत्पश्चात् कुन्तीनन्दन जाग उठे और अपने सारे बन्धनों को तोड़कर महाबाहु भीमसेन शीघ्र ही अपनी माता के पास आ गये ।

**ततोऽभिवाद्य जननीं ज्येष्ठं भ्रातरमेव च ।**
**कनीयसः समाघ्राय शिरःस्वरिविमर्दनः ॥५३॥**

तदनन्तर शत्रुमर्दन भीमसेन ने माता और बड़े भाई को प्रणाम करके छोटे भाइयों का स्नेहपूर्वक सिर सूँघा ।

**तैश्चापि सम्परिष्वक्तः सह मात्रा नरर्षभैः ।**
**अन्योन्यगतसौहार्दाद् दिष्टया दिष्ट्येति चाब्रुवन् ॥५४**

माता तथा उन नरश्रेष्ठ भाइयों ने भी उन्हें हृदय से लगाया तथा एक-दूसरे के प्रति स्नेहाधिक्य के कारण सबने भीम के आगमन से अपने सौभाग्य की सराहना करते हुए—"अहोभाग्य ! अहोभाग्य !" ऐसा कहा ।

**ततस्तत् सर्वमाचष्ट दुर्योधनविचेष्टितम् ।**
**भ्रातृणां भीमसेनश्च महाबलपराक्रमः ॥५५॥**

पत्पश्चात् महान् बल और पराक्रम से सम्पन्न भीमसेन ने दुर्योधन की वे सारी कुचेष्टाएँ अपने भाइयों को बतायीं ।

**ततो युधिष्ठिरो राजा भीममाह वचोऽर्थवत् ।**
**तूष्णीं भव न ते जल्प्यमिदं कार्यं कथंचन ॥५६॥**

तब राजा युधिष्ठिर ने भीमसेन से यह अर्थयुक्त बात कही—"भैया भीम ! तुम अभी सर्वथा चुप हो

जाओ। तुम्हारे साथ जो कुछ हुआ, उसे कहीं किसी प्रकार भी न कहना।"

**एवमुक्त्वा महाबाहुर्धर्मराजो युधिष्ठिरः।**
**भ्रातृभिः सहितः सर्वैरप्रमत्तोऽभवत् तदा ॥५७॥**

यों कहकर महाबाहु धर्मराज युधिष्ठिर अपने सब भाइयों के साथ उस समय से अति सावधान रहने लगे।

**कुमारान् क्रीडमानाँस्तान् दृष्ट्वा राजातिदुर्मदान्।**
**गुरुं शिक्षार्थमन्विष्य गौतमं तान् न्यवेदयत् ॥५८॥**

उधर राजा धृतराष्ट्र ने उन कुमारों को खेल-कूद में लगे रहने से अत्यन्त उद्दण्ड होते देख उन्हें शिक्षा देने के लिए गौतमगोत्रीय कृपाचार्य की खोज कराकर तथा उन्हें गुरु बनाकर कुरुकुल के उन सभी कुमारों को उन्हें सौंप दिया।

**इति महाभारते आदिपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥**

# चतुर्दशोऽध्यायः

## द्रोणाचार्य का जीवन-वृत्तान्त, द्रोण की कौरव-पाण्डवों को पढ़ाने के लिए नियुक्ति

वैशम्पायन उवाच

**विशेषार्थी ततो भीष्मो भारद्वाजाय धीमते।**
**पाण्डवान् कौरवाँश्चैव ददौ शिष्यान् नरर्षभ ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—नरश्रेष्ठ जनमेजय! कृपाचार्य के द्वारा पूर्ण शिक्षा मिल जाने पर पितामह भीष्म ने अपने पौत्रों में विशिष्ट योग्यता लाने के लिए वेदवेत्ता तथा बुद्धिमान् द्रोणाचार्य को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करके समस्त कौरव और पाण्डवों को शिष्यरूप में उन्हें समर्पित कर दिया।

**प्रतिजग्राह तान् सर्वान् शिष्यत्वेन महायशाः।**
**शिक्षयामास च द्रोणो धनुर्वेदमशेषतः ॥२॥**

महायशस्वी आचार्य द्रोण ने भी उन सबको शिष्य-रूप में स्वीकार किया तथा उन्हें सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा प्रदान की।

**तेऽचिरेणैव कालेन सर्वशस्त्रविशारदाः।**
**बभूव कौरवा राजन् पाण्डवाश्चामितौजसः ॥३॥**

राजन्! अमित तेजस्वी पाण्डव और कौरव—सभी थोड़े ही समय में सम्पूर्ण शस्त्र-विद्या में अत्यन्त प्रवीण हो गये।

जनमेजय उवाच

**कथं चागात् कुरून् द्रोणः कस्य पुत्रः स वीर्यवान्।**
**एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण प्रकीर्तय ॥४॥**

**जनमेजय ने पूछा**—ब्रह्मन्! द्रोणाचार्य कुरुदेश में कैसे आये? वे महापराक्रमी द्रोण किसके पुत्र थे? यह सब मैं सुनना चाहता हूँ। आप विस्तारपूर्वक बताइए।

वैशम्पायन उवाच

**गङ्गाद्वारं प्रति महान् बभूव भगवानृषिः।**
**भरद्वाज इति ख्यातो द्रोणस्तस्य सुतोऽभवत्।**
**अध्यगीष्ट स वेदाँश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! गङ्गाद्वार में भगवान् भरद्वाज नाम से प्रसिद्ध एक महर्षि रहते थे। द्रोण उन्हीं के पुत्र थे। उन्होंने सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्गों का अध्ययन किया था।

**भरद्वाजसखा चासीत् पृषतो नाम पार्थिवः।**
**तस्यापि द्रुपदो नाम तदा समभवत् सुतः ॥६॥**

उन दिनों पृषत नाम से प्रसिद्ध एक नरेश महर्षि भरद्वाज के मित्र थे। उन्हें भी उसी समय एक पुत्र हुआ, जिसका नाम द्रुपद था।

**स नित्यमाश्रमं गत्वा द्रोणेन सह पार्थिवः।**
**चिक्रीडाध्ययनं चैव चकार क्षत्रियर्षभः ॥७॥**

वह राजकुमार क्षत्रियों में श्रेष्ठ था। वह प्रति-दिन भरद्वाज मुनि के आश्रम में जाकर द्रोण के साथ खेलता और अध्ययन करता था।

**ततो व्यतीते पृषते स राजा द्रुपदोऽभवत्।**
**पाञ्चालेषु महाबाहुरुत्तरेषु नरेश्वर ॥८॥**

नरेश्वर जनमेजय! पृषत की मृत्यु हो जाने पर महाबाहु द्रुपद उत्तर-पाञ्चाल देश का राजा हुआ।

**भरद्वाजोऽपि भगवानारुरोह दिवं तदा।**
**तत्रैव च वसन् द्रोणः धनुर्वेदपरोऽभवत् ॥९॥**

कुछ दिन पश्चात् भगवान् भरद्वाज भी परलोकवासी हो गये और बुद्धिमान् द्रोण उसी आश्रम में रहकर धनुर्वेद का अभ्यास करने लगे।

**स शुश्राव महात्मानं जामदग्न्यं परंतपम्।**
**ब्राह्मणेभ्यस्तदा राजन् दित्सन्तं वसु सर्वशः ॥१०॥**

राजन्! किसी समय उन्होंने सुना कि 'शत्रुओं को सन्ताप देनेवाले महात्मा जमदग्निनन्दन परशुरामजी ब्राह्मणों को अपना सर्वस्व दान करना चाहते हैं।

**स रामस्य धनुर्वेदं दिव्यान्यस्त्राणि चैव ह।**
**श्रुत्वा तेषु मनश्चक्रे नीतिशास्त्रे तथैव च ॥११॥**

द्रोण ने यह सुनकर कि परशुरामजी के पास सम्पूर्ण धनुर्वेद तथा दिव्यास्त्रों का ज्ञान है, उन्हें प्राप्त करने की इच्छा और साथ ही उनसे नीति-शास्त्र पढ़ने का भी विचार किया।

**ततः स व्रतिभिः शिष्यैस्तपोयुक्तैर्महातपाः।**
**वृतः प्रायान् महाबाहुर्महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥१२॥**

तब ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करनेवाले तपस्वी शिष्यों से घिरे हुए महातपस्वी महाबाहु द्रोण परम उत्तम महेन्द्र पर्वत पर गये।'

**निवेद्य शिरसा भूमौ भारद्वाजोऽब्रवीद् वचः।**
**अहं धनमनन्तं हि प्रार्थये विपुलव्रत ॥१३॥**

पृथिवी पर मस्तक टेक [परशुरामजी के चरणों में प्रणाम कर] भरद्वाजकुमार द्रोण ने परशुरामजी से कहा—"महान् व्रत का पालन करनेवाले महर्षे! मैं आपसे ऐसे धन की याचना करता हूँ, जिसका कभी अन्त न हो।"

राम उवाच

**हिरण्यं मम यच्चान्यद्वसु किञ्चिदिह स्थितम्।**
**ब्राह्मणेभ्यो मया दत्तं सर्वमेतत् तपोधन ॥१४॥**

**परशुरामजी बोले**—हे तपोधन! मेरे पास जो कुछ सुवर्ण तथा अन्य प्रकार का धन था, वह सब मैंने ब्राह्मणों को प्रदान कर दिया।

**शरीरमात्रमेवाद्य ममेदमवशेषितम्।**
**अस्त्राणि च महार्हाणि शस्त्राणि विविधानि च ॥१५**

अब तो केवल मेरा यह शरीर ही बचा है, साथ ही नाना प्रकार के बहुमूल्य अस्त्र-शस्त्रों का कोष अवशिष्ट है।

**अस्त्राणि वा शरीरं वा वरयैतन्मयोद्यतम्।**
**वृणीष्व किं प्रयच्छामि तुभ्यं द्रोण वदाशु तत् ॥१६॥**

अतः हे द्रोण! तुम अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान या मेरा शरीर माँग लो। इन्हें देने के लिए मैं उद्यत हूँ। शीघ्र बोलो, मैं तुम्हें क्या दूँ?

द्रोण उवाच

**अस्त्राणि मे समग्राणि ससंहाराणि भार्गव।**
**सप्रयोगरहस्यानि दातुमर्हस्यशेषतः ॥१७॥**

**द्रोण ने कहा**—हे भृगुनन्दन! आप मुझे प्रयोग, रहस्य तथा संहार-विधि सहित सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान प्रदान करें।

**तथेत्युक्त्वा ततस्तस्मै प्रादादस्त्राणि भार्गवः।**
**सरहस्यव्रतं चैव धनुर्वेदमशेषतः ॥१८॥**

तब 'तथाऽस्तु' कहकर भृगुवंशी परशुरामजी ने द्रोण को सम्पूर्ण अस्त्र प्रदान किये तथा रहस्य और व्रतसहित सम्पूर्ण धनुर्वेद का भी उपदेश किया।

वैशम्पायन उवाच

**प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं कृतास्त्रो द्विजसत्तमः।**
**प्रियं सखायं सुप्रीतो जगाम द्रुपदं प्रति ॥१९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर द्विजश्रेष्ठ द्रोण अस्त्र-विद्या के पूरे पण्डित हो गये। फिर वे अत्यन्त प्रसन्न हो अपने प्रिय सखा राजा द्रुपद के पास गये।

**ततो द्रुपदमासाद्य भारद्वाजः प्रतापवान्।**
**अब्रवीत् पार्थिवं राजन् सखायं विद्धि मामिह ॥२०॥**

जनमेजय! प्रतापी द्रोण राजा द्रुपद के यहाँ पहुँचकर उनसे इस प्रकार बोले—"राजन्! तुम्हें ज्ञात होना चहिए कि मैं तुम्हारा मित्र द्रोण तुमसे मिलने के लिए यहाँ आया हूँ।"

**इत्येवमुक्तः सख्या स सक्रोधामर्षलोचनः।**
**ऐश्वर्यमदसम्पन्नो द्रोणं राजाब्रवीदिदम् ॥२१॥**

मित्र द्रोण के ऐसा कहने पर क्रोध और अमर्ष से उसकी आँखें लाल हो गयीं। धन और ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त वह राजा द्रुपद द्रोण से यों बोला—

द्रुपद उवाच

**न हि राज्ञामुदीर्णानामेवम्भूतैर्नरैः क्वचित्।**
**सख्यं भवति मन्दात्मन् श्रियाहीनैर्धनच्युतैः ॥२२॥**

**द्रुपद बोला**—अरे मूढ़ ! बड़े-बड़े राजाओं की तुम्हारे जैसे श्रीहीन और निर्धन मनुष्यों के साथ कभी मित्रता नहीं हो सकती ।

**न दरिद्रो वसुमतो नाविद्वान् विदुषः सखा ।**
**न शूरस्य सखा क्लीबः सखिपूर्वं किमिष्यते ॥२३॥**

सच्ची बात यह है कि दरिद्र मनुष्य धनवान् का, मूर्ख विद्वान् का और कायर शूरवीर का मित्र नहीं हो सकता, अतः तुम पहले की मित्रता का क्या भरोसा करते हो ?

**ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम् ।**
**तयोर्विवाहः सख्यं च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥२४॥**

जिनका धन समान है, जिनकी विद्या एक-सी है, उन्हीं में विवाह और मैत्री का सम्बन्ध हो सकता है। हृष्ट-पुष्ट और दुर्बल में [धनवान् और निर्धन में] कभी मित्रता नहीं हो सकती ।

**नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा ।**
**नाराजा पार्थिवस्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते ॥२५॥**

अश्रोत्रिय श्रोत्रिय [वेदज्ञ] का मित्र नहीं हो सकता । इसी प्रकार जो रथी नहीं है, वह रथी का, जो राजा नहीं है, वह किसी राजा का मित्र कदापि नहीं हो सकता । फिर तुम पुरानी मित्रता का स्मरण क्यों करते हो ?

वैशम्पायन उवाच

**द्रुपदेनैवमुक्तस्तु भारद्वाजः प्रतापवान् ।**
**मुहूर्तं चिन्तयित्वा तु मन्युनाभिपरिप्लुतः ॥२६॥**
**स विनिश्चित्य मनसा पाञ्चालं प्रति बुद्धिमान् ।**
**जगाम कुरुमुख्यानां नगरं नागसाह्वयम् ॥२७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! राजा द्रुपद के यों कहने पर प्रतापी द्रोण क्रोध से जल उठे और दो घड़ी तक गहरी चिन्ता में डूबे रहे। फिर वे बुद्धिमान् पाञ्चाल नरेश से बदला लेने के विषय में मन-ही-मन कुछ निश्चय करके कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर नगर में चले गये ।

**स नागपुरमागम्य गौतमस्य निवेशने ।**
**भारद्वाजोऽवसत् तत्र प्रच्छन्नं द्विजसत्तमः ॥२८॥**

हस्तिनापुर में पहुँचकर द्विजश्रेष्ठ द्रोण गौतम-गोत्रीय कृपाचार्य के घर में गुप्तरूप से निवास करने लगे ।

**एवं स तत्र गूढात्मा कञ्चित् कालमुवास ह ।**
**कुमारास्त्वथ निष्क्रम्य समेता गजसाह्वयात् ॥२९॥**
**क्रीडन्तो वीटया तत्र वीराः पर्यचरन् मुदा ।**
**पपात कूपे सा वीटा तेषां वै क्रीडतां तदा ॥३०॥**

इस प्रकार द्रोण ने वहाँ अपने आपको छिपाये रखकर कुछ समय तक निवास किया । तदनन्तर एक दिन कौरव-पाण्डव सभी वीर कुमार हस्तिनापुर से बाहर निकलकर बड़ी प्रसन्नता के साथ मिल-जुलकर वहाँ गुल्ली-डंडा खेलने लगे । उस समय खेल में लगे हुए उन कुमारों की वह बीटा [गुल्ली] कुएँ में गिर पड़ी ।

**ततस्ते यत्नमातिष्ठन् वीटामुद्धर्तुमादृताः ।**
**न च ते प्रत्यपद्यन्त कर्म वीटोपलब्धये ॥३१॥**

तब वे उस वीटा (गुल्ली) को निकालने के लिए बड़ी तत्परता के साथ प्रयत्न में लग गये, परन्तु उसे प्राप्त करने का कोई भी उपाय उनके ध्यान में नहीं आया ।

**तेऽपश्यन् ब्राह्मणं श्याममापन्नं पलितं कृशम् ।**
**कृत्यवन्तमदूरस्थमग्निहोत्रपुरस्कृतम् ॥३२॥**

उस समय उन्होंने एक श्याम वर्ण के ब्राह्मण को थोड़ी ही दूर पर बैठे देखा, जो यज्ञ करके किसी प्रयोजन से वहाँ ठहरे हुए थे । वे आपत्तिग्रस्त प्रतीत होते थे । उनके सिर के बाल श्वेत हो गये थे तथा शरीर अत्यन्त दुर्बल था ।

**ते तं दृष्ट्वा महात्मानमुपगम्य कुमारकाः ।**
**भग्नोत्साहक्रियात्मानो ब्राह्मणं पर्यवारयन् ॥३३॥**

उन महात्मा ब्राह्मण को देखकर वे सभी कुमार उनके पास पहुँच, उन्हें घेरकर खड़े हो गये । उनका उत्साह भंग हो गया था, कोई कार्य करने की इच्छा नहीं होती थी तथा मन में भारी निराशा भर गई थी ।

**अथ द्रोणः कुमारांस्तान्दृष्ट्वा कृत्यवतस्तदा ।**
**प्रहस्य मन्दं पैशल्यादभ्यभाषत वीर्यवान् ॥३४॥**

तब पराक्रमी द्रोण यह देखकर कि इन कुमारों का अभीष्ट कार्य पूर्ण नहीं हुआ है—ये उसी प्रयोजन से मेरे पास आये हैं, उस समय मन्द मुस्कराहट के साथ बड़े कौशल से बोले—

**अहो वो धिग्बलं क्षात्रं धिगेतां वः कृतास्त्रताम् ।**
**भरतस्यान्वये जाता ये वीटां नाधिगच्छत ॥३५॥**

"अहो ! तुम लोगों के क्षात्रबल को धिक्कार है, तुम्हारी अस्त्र-विद्या विषयक निपुणता को भी धिक्कार है, क्योंकि तुम लोग भरतवंश में उत्पन्न होकर भी कुएँ में गिरी हुई गुल्ली को न निकाल सके ।

**वीटां च मुद्रिकां चैव ह्यहमेतदपि द्वयम् ।**
**उद्धरेयमिषीकाभिर्भोजनं मे प्रदीयताम् ॥३६॥**

"देखो ! मैं तुम्हारी गुल्ली और अपनी इस अँगूठी दोनों को सींकों से निकाल सकता हूँ । तुम लोग मेरे भोजन की व्यवस्था करो ।"

**एवमुक्त्वा कुमारांस्तान् द्रोणः स्वाङ्गुलिवेष्टनम् ।**
**कूपे निरुदके तस्मिन्नपातयदरिन्दमः ॥३७**

उन कुमारों से ऐसा कहकर शत्रुओं का दमन करनेवाले द्रोण ने उस निर्जल कुएँ में अपनी अँगूठी डाल दी ।

**ततोऽब्रवीत् तदा द्रोणः प्रहस्य भरतानिदम् ।**
**एषा मुष्टिरिषीकाणां मयास्त्रेणाभिमन्त्रिता ॥३८॥**

उस मुद्रिका को कुएँ में डालकर द्रोण ने हँसकर उन भरतवंशी राजकुमारों से कहा—"ये मुट्ठी-भर सींकें हैं, जिन्हें मैंने अस्त्र-मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित किया है ।

**अस्या वीर्यं निरीक्षध्वं यदन्यस्य न विद्यते ।**
**भेत्स्यामीषीकया वीटां तामिषीकां तथान्यया ॥३९॥**

"तुम लोग इसका बल देखो, जो दूसरे में नहीं है । मैं पहले एक सींक से उस गुल्ली को बींध दूँगा, फिर दूसरी सींक से उस पहली सींक को बींधूँगा ।

**तामन्या समायोगे वीटाया ग्रहणं मम ।**
**ततो यथोक्तं द्रोणेन तत् सर्वं कृतमञ्जसा ॥४०॥**

"इसी प्रकार दूसरी सींक को तीसरी से बींधते हुए अनेक सींकों का संयोग होने पर मुझे गुल्ली मिल जाएगी ।" तत्पश्चात् द्रोण ने जैसा कहा था, वह सब-कुछ अनायास ही कर दिखाया ।

**तदवेक्ष्य कुमारास्ते विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ।**
**आश्चर्यमिदमत्यन्तमिति मत्वा वचोऽब्रुवन् ।**
**मुद्रिकामपि विप्रर्षे शीघ्रमेतां समुद्धर ॥४१॥**

यह अद्भुत कार्य देखकर उन कुमारों के नेत्र आश्चर्य से खिल उठे । इसे अत्यन्त आश्चर्य मानकर वे इस प्रकार बोले—"ब्रह्मर्षे ! अब आप शीघ्र ही इस अँगूठी को भी निकाल दीजिए ।"

**ततः शरं समादाय धनुर्द्रोणो महायशाः ।**
**शरेण विद्ध्वा मुद्रां तामूर्ध्वमावाहयत् प्रभुः ॥४२॥**
**सशरं समुपादाय कूपादङ्गुलिवेष्टनम् ।**
**ददौ ततः कुमाराणां विस्मितानामविस्मितः ॥४३॥**

तब महायशस्वी द्रोण ने धनुष-बाण लेकर बाण से उस अँगूठी को बींध दिया और उसे ऊपर निकाल लिया । शक्तिशाली द्रोण ने इस प्रकार कुएँ से बाण सहित वह अँगूठी निकालकर उन आश्चर्यचकित कुमारों के हाथ में दे दी, परन्तु वे स्वयं तनिक भी विस्मित नहीं थे ।

कुमारा ऊचुः

**अभिवादयामहे ब्रह्मन् नैतदन्येषु विद्यते ।**
**कोऽसि कस्यासि जानीमो वयं किं करवामहे ॥४४॥**

**कुमार बोले**—हे ब्रह्मन् ! हम सब आपको प्रणाम करते हैं । यह अद्भुत अस्त्र-कौशल आपके सिवा और किसी में नहीं है । आप कौन हैं, किसके पुत्र हैं, यह हम जानना चाहते हैं । बताइए, हम लोग आपकी क्या सेवा करें ?

द्रोण उवाच

**आचक्षध्वं च भीष्माय रूपेण च गुणैश्च माम् ।**
**स एव सुमहातेजाः साम्प्रतं प्रतिपत्स्यते ॥४५॥**

**द्रोण बोले**—तुम सब लोग भीष्मजी के पास जाकर मेरे रूप और गुणों का परिचय दो । वे महातेजस्वी भीष्मजी ही मुझे इस समय पहचान सकते हैं ।

वैशम्पायन उवाच

**तथेत्युक्त्वा च गत्वा च भीष्ममूचुः कुमारकाः ।**
**भीष्मः श्रुत्वा कुमाराणां द्रोणं तं प्रत्यजानत ॥४६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—वे कुमार 'बहुत अच्छा' कहकर भीष्मजी के पास गये और उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया । कुमारों की बातें सुनकर भीष्मजी समझ गये कि वे आचार्य द्रोण हैं ।

**युक्तरूपः स हि गुरुरित्येवमनुचिन्त्य च ।**
**अथैनमानीय तदा स्वयमेव सुसत्कृतम् ॥४७॥**

**परिपप्रच्छ निपुणं भीष्मः शस्त्रभृतां वरः।**
**हेतुमागमने तच्च द्रोणः सर्वं न्यवेदयत् ॥४८॥**

फिर यह सोचकर कि द्रोणाचार्य ही इन कुमारों के उपयुक्त गुरु हो सकते हैं, भीष्मजी स्वयं ही आकर उन्हें सत्कारपूर्वक घर ले गये। वहाँ शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भीष्म ने बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ द्रोणाचार्य से उनके आगमन का कारण पूछा और द्रोण ने सब-कुछ बतला दिया।

भीष्म उवाच

**अपज्यं क्रियतां चापं साध्वस्त्रं प्रतिपादय।**
**भङ्क्ष्व भोगान् भृशं प्रीतः पूज्यमानः कुरुक्षये ॥४९॥**

**भीष्मजी बोले**—हे विप्रवर! अब आप अपने धनुष की डोरी उतार दीजिए तथा यहाँ रहकर राजकुमारों को धनुर्वेद एवं अस्त्र-शस्त्रों की अच्छी शिक्षा दीजिए। कौरवों के घर में सदा सम्मानित रहकर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ मनोवाञ्छित भोगों का उपभोग कीजिए।

**कुरूणामस्ति यद्वित्तं राज्यं चेदं सराष्ट्रकम्।**
**त्वमेव परमो राजा सर्वे च कुरवस्तव ॥५०॥**

कौरवों के पास जो धन, राज्य-वैभव तथा राष्ट्र है, उसके आप ही सबसे बड़े राजा हैं। समस्त कौरव आपके अधीन हैं।

**इति महाभारते आदिपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥**

# पञ्चदशोऽध्यायः

## द्रोणाचार्य द्वारा राजकुमारों की शिक्षा और परीक्षा

वैशम्पायन उवाच

**ततः सम्पूजितो द्रोणो भीष्मेण द्विपदां वरः।**
**विशश्राम महातेजाः पूजितः कुरुवेश्मनि ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! तब मनुष्यों में श्रेष्ठ महातेजस्वी द्रोणाचार्य ने भीष्मजी के द्वारा सम्मानित हो कौरवों के महलों में निवास किया। वहाँ उनका बहुत आदर-सम्मान किया गया।

**विश्रान्तेऽथ गुरौ तस्मिन्पौत्रानादाय कौरवान्।**
**शिष्यत्वेन ददौ भीष्मो वसूनि विविधानि च ॥२॥**
**गृहं च सुपरिच्छन्नं धनधान्यसमाकुलम्।**
**भारद्वाजाय सुप्रीतः प्रत्यपादयत प्रभुः ॥३॥**

गुरु द्रोणाचार्य जब विश्राम कर चुके तब सामर्थ्य-शाली भीष्मजी ने अपने कुरु-वंशी पौत्रों को लाकर उन्हें शिष्यरूप में समर्पित किया। साथ ही अत्यन्त प्रसन्न होकर भरद्वाजनन्दन द्रोण को नाना प्रकार के धन-रत्न तथा सुन्दर सामग्रियों से सुसज्जित एवं धन-धान्य से सम्पन्न भवन प्रदान किया।

**स तान् शिष्यान् महेष्वासः प्रतिजग्राह कौरवान्।**
**पाण्डवान् धार्तराष्ट्रांश्च द्रोणो मुदितमानसः ॥४॥**

महाधनुर्धर आचार्य द्रोण ने प्रसन्नचित्त होकर उन धृतराष्ट्र के पुत्रों तथा पाण्डवों को शिष्य रूप में ग्रहण किया।

**प्रतिगृह्य च तान् सर्वान् द्रोणो वचनमब्रवीत्।**
**रहस्येकः प्रतीतात्मा कृतोपसदनाँस्तथा ॥५॥**

उन सबको शिष्यरूप में ग्रहण कर लेने पर एक दिन एकान्त में जब द्रोणाचार्य पूर्ण विश्वासयुक्त मन से अकेले बैठे थे, तब उन्होंने अपने पास बैठे हुए सब शिष्यों से यह बात कही—

द्रोण उवाच

**कार्यं मे कांक्षितं किंचिद्धृदि सम्परिवर्तते।**
**कृतास्त्रैस्तत् प्रदेयं मे तदेतद् वदतानघाः ॥६॥**

**द्रोणाचार्य ने कहा**—निष्पाप राजकुमारो! मेरे मन में एक कार्य करने की इच्छा है। अस्त्र-विद्या प्राप्त कर लेने के पश्चात् तुम लोगों को मेरी वह इच्छा पूर्ण करनी होगी। इस विषय में तुम्हारे क्या विचार हैं, बताओ।

वैशम्पायन उवाच

**तत् श्रुत्वा कौरवेयास्ते तूष्णीमासन् विशाम्पते।**
**अर्जुनस्तु ततः सर्वं प्रतिजज्ञे परंतप ॥७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—शत्रुसंतापक जनमेजय! आचार्य की वह बात सुनकर सब कौरव चुप रह गये,

परन्तु अर्जुन ने वह सब कार्य पूर्ण करने की प्रतिज्ञा कर ली।

**ततोऽर्जुनं तदा मूर्ध्नि समाघ्राय पुनः पुनः।**
**प्रीतिपूर्वं परिष्वज्य प्ररुरोद मुदा तदा ॥८॥**

तब आचार्य ने बारम्बार अर्जुन का मस्तक सूंघा तथा उन्हें प्रेमपूर्वक हृदय से लगाकर वे हर्ष के आवेश में रो पड़े।

**ततो द्रोणः पाण्डुपुत्रानस्त्राणि विविधानि च।**
**ग्राहयामास दिव्यानि मानुषाणि च वीर्यवान् ॥९॥**

तत्पश्चात् पराक्रमी द्रोणाचार्य पाण्डवों [तथा अन्य शिष्यों] को और भी अधिक उत्साह से नाना प्रकार के दिव्य एवं मानवीय अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा देने लगे।[1]

**राजपुत्रास्तथा चान्ये समेत्य भरतर्षभ।**
**अभिजग्मुस्ततो द्रोणमस्त्रार्थे द्विजसत्तमम् ॥१०॥**

हे भरतश्रेष्ठ! उस समय दूसरे-दूसरे राजकुमार भी अस्त्र-विद्या की शिक्षा लेने के लिए द्विजश्रेष्ठ द्रोण के पास आने लगे।

**वृष्णयश्चान्धकाश्चैव नानादेश्याश्च पार्थिवाः।**
**सूतपुत्रश्च राधेयो गुरुं द्रोणमियात् तदा ॥११॥**

वृष्णिवंशी तथा अन्धकवंशी क्षत्रिय, नानादेशीय राजकुमार तथा राधानन्दन सूतपुत्र कर्ण[2]—ये सभी आचार्य द्रोण के पास [अस्त्रविद्या प्राप्ति के लिए] आये।

**अस्त्रविद्यानुरागात् स लाघवे सौष्ठवेषु च।**
**सर्वेषामेव शिष्याणां बभूवाभ्याधिकोऽर्जुनः ॥१२॥**

अस्त्र-विद्या में अत्यन्त अनुराग होने के कारण अर्जुन फुर्ती और सफाई में सभी शिष्यों से बढ़-चढ़ कर निकले।

**ऐन्द्रिमप्रतिमं द्रोण उपदेशेष्वमन्यत।**
**एवं सर्वकुमाराणामिष्वस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥१३॥**

आचार्य द्रोण उपदेश ग्रहण करने में अर्जुन को अनुपम प्रतिभाशाली मानते थे। इस प्रकार आचार्य सब कुमारों को अस्त्रविद्या की शिक्षा देते रहे।

**कमण्डलुं च सर्वेषां प्रायच्छच्चिरकारणात्।**
**पुत्राय च ददौ कुम्भमविलम्बनकारणात् ॥१४॥**
**यावत् ते नोपगच्छन्ति तावदस्मै परां क्रियाम्।**
**द्रोण आचष्ट पुत्राय तत् कर्म जिष्णुरौहत ॥१५॥**

वे अन्य सब शिष्यों को तो पानी लाने के कमण्डलु देते, जिससे उन्हें लौटने में कुछ विलम्ब हो जाए

---

१. लोक में ऐसा प्रसिद्ध है कि एक दिन आचार्य द्रोण ने **'सत्यं वद, क्रोधं मा कुरु'** (सत्य बोलो, क्रोध मत करो) ऐसा उपदेश किया। अगले दिन युधिष्ठिर को छोड़कर सभी कौरव-पाण्डवों ने पाठ सुना दिया। युधिष्ठिर कई दिन तक कहते रहे कि मुझे पाठ याद नहीं हुआ। तब गुरुजी ने उनकी पिटाई कर दी। मार खाकर वे बोले— "अब मुझे पाठ याद हो गया" इत्यादि। यह सारी कहानी महाभारत में कहीं भी नहीं है।

२. इस वर्णन से, जैसा यहाँ दिया गया है, यह स्पष्ट है कि शूद्र-कुलोत्पन्न बालक भी द्रोणाचार्य से शिक्षा ग्रहण करने के लिए उनके पास आये और आचार्य ने उन्हें शिष्यरूप में स्वीकार किया, तब एकलव्य को निषाद-कुलोत्पन्न जानकर उसे शिक्षा न देने की बात असत्य हो गई। यदि यह कहा जाए कि कर्ण सूतपुत्र नहीं था [हम भी इससे सहमत हैं] वह सूत द्वारा केवल पालित हुआ था तो हम कहेंगे कि एकलव्य भी निषाद नहीं था वह निषादों द्वारा पालित था। ब्रह्मपुराण [१४।२८] में कहा है—**निषादैः परिवर्द्धितः।** पुराणों के अवलोकन से यह सिद्ध होता है कि जिस यदुवंश में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था, उसी वंश में एकलव्य भी जन्मा था। वृष्णिवंशीय शूर के दश पुत्र और पाँच कन्याएँ थी। वसुदेव नामक उनके पुत्र से जैसे वासुदेव (कृष्ण) पैदा हुए वैसे ही देवश्रवा से शत्रुघ्न [एकलव्य] उत्पन्न हुआ। इस प्रकार वह कृष्ण का चचेरा भाई था। अर्जुन की माता शूर की कन्या थी और देवश्रवा उसका भाई था, अतः एकलव्य अर्जुन की बुआ का पुत्र हुआ। [द्रष्टव्य ब्रह्मपुराण १४।१४-२८] हमारा ऐसा दृढ़ विश्वास और निश्चित मत है कि एकलव्य का सारा आख्यान ब्राह्मणों को बदनाम करने, उनकी अमानुषिक क्रूरता दिखाने के लिए महाभारत में प्रक्षिप्त किया गया है। यह भी सम्भव है कि मूर्तिपूजकों ने इस कथानक का प्रक्षेप किया हो। कोई गुरु अपने शिष्य को न तो कोई हानि पहुँचा सकता है और न ही उसका अँगूठा कटवा सकता है।

परन्तु अपने पुत्र अश्वत्थामा को बड़े मुंह का घड़ा देते, जिससे वह शीघ्र लौट आये। जबतक दूसरे शिष्य लौटकर आते, तबतक द्रोणाचार्य अपने पुत्र को अस्त्र-संचालन की कोई उत्तम विधि बता देते। अर्जुन ने उनके इस रहस्य को जान लिया।

**ततः स वारुणास्त्रेण पूरयित्वा कमण्डलुम्।**
**सममाचार्यपुत्रेण गुरुमभ्येति फाल्गुनः ॥१६॥**
**आचार्यपुत्रात् तस्मात् तु विशेषोपचयेऽपृथक्।**
**न व्यहीयत मेधावी पार्थोऽप्यस्त्रविदां वरः ॥१७॥**
**अर्जुनः परमं यत्नमातिष्ठद् गुरुपूजने।**
**अस्त्रे च परमं योगं प्रियो द्रोणस्य चाभवत् ॥१८॥**

तब वे वारुणास्त्र से तुरन्त ही अपना कमण्डलु भरकर आचार्य-पुत्र के साथ ही गुरु के समीप आ जाते थे, अतः वे आचार्य-पुत्र से किसी भी गुण की वृद्धि में अलग या पीछे नहीं रहे। यही कारण था कि मेधावी अर्जुन अश्वत्थामा से किसी बात में कम न रहे। वे अस्त्रवेत्ताओं में सबसे श्रेष्ठ थे। अर्जुन अपने गुरु की सेवा-शुश्रूषा के लिए भी प्रभूत प्रयत्न करते थे। अस्त्रों के अभ्यास में भी उनकी अच्छी लगन थी, अतः वे द्रोणाचार्य के अत्यन्त प्रिय हो गये।

**तं दृष्ट्वा नित्यमुद्युक्तमिष्वस्त्रं प्रतिफाल्गुनम्।**
**आहूय वचनं द्रोणो रहः सूदमभाषत ॥१९॥**
**अन्धकारेऽर्जुनायान्नं न देयं ते कदाचन।**
**न चाख्येयमिदं चापि मद्वाक्यं विजये त्वया ॥२०॥**

अर्जुन को धनुष-वाण के अभ्यास में निरन्तर लगा हुआ देखकर एक दिन द्रोणाचार्य ने रसोइये को एकान्त में बुलाकर कहा—"तुम अर्जुन को कभी अँधेरे में भोजन न परोसना और मेरी यह बात भी अर्जुन से कभी न कहना।"

**ततः कदाचिद् भुञ्जाने प्रववौ वायुरर्जुने।**
**तेन तत्र प्रदीपः स दीप्यमानो विलोपितः ॥२१॥**

तत्पश्चात् एक दिन जब अर्जुन भोजन कर रहे थे, उस समय अति वेग से हवा चलने लगी, जिससे वहाँ प्रज्वलित दीपक बुझ गया।

**भुङ्क्त एव तु कौन्तेयो नास्यादन्यत्र वर्तते।**
**हस्तस्तेजस्विनस्तस्य अनुग्रहणकारणात् ॥२२॥**

उस समय भी कुन्तीनन्दन भोजन करते ही रहे। उन तेजस्वी अर्जुन का हाथ अभ्यासवश उस अँधेरे में भी मुँह से अन्यत्र कहीं नहीं जाता था।

**तदभ्यासकृतं मत्वा रात्रावपि स पाण्डवः।**
**योग्यां चक्रे महाबाहुर्धनुषा पाण्डुनन्दनः ॥२३॥**

उसे अभ्यास का ही चमत्कार मानकर महाबाहु पाण्डुनन्दन अर्जुन रात्रि में भी धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगे।

**तस्य ज्यातलनिर्घोषं द्रोणः शुश्राव भारत।**
**उपेत्य चैनमुत्थाय परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥२४॥**

भरतकुलभूषण! उनके धनुष की प्रत्यञ्चा की टंकार द्रोणाचार्य ने सोते समय सुनी। तब वे उठकर उनके पास गये और उन्हें हृदय से लगाकर बोले—

द्रोण उवाच

**प्रयतिष्ये तथा कर्तुं यथा नान्यो धनुर्धरः।**
**त्वत्समो भविता लोके सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥२५॥**

**द्रोणाचार्य बोले**—अर्जुन! मैं ऐसा करने का प्रयत्न करूँगा, जिससे इस संसार में दूसरा कोई धनुर्धर तुम्हारे समान न हो। यह मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**ततो द्रोणोऽर्जुनं भूयो हयेषु च गजेषु च।**
**भूमावपि रथेषु च रणशिक्षामशिक्षयत् ॥२६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन्! तदनन्तर द्रोणाचार्य अर्जुन को पुनः घोड़ों, हाथियों, रथों तथा भूमि पर रहकर युद्ध करने की शिक्षा देने लगे।

**गदायुद्धेऽसिचर्यायां तोमरप्रासशक्तिषु।**
**द्रोणः संकीर्णयुद्धे च शिक्षयामास कौरवान् ॥२७॥**

उन्होंने कौरवों को गदायुद्ध, खड्ग चलाने तथा तोमर, प्रास और शक्तियों के प्रयोग की कला और एक ही साथ अनेक शस्त्रों का प्रयोग अथवा अकेले ही अनेक शत्रुओं से युद्ध करने की शिक्षा प्रदान की।

**द्रोणस्य तु तदा शिष्यौ गदायोग्यौ बभूवतुः।**
**दुर्योधनश्च भीमश्च सदा संरब्धमानसौ ॥२८॥**

उस समय द्रोणाचार्य के दो शिष्य—दुर्योधन और भीम—गदायुद्ध में सुयोग्य निकले। वे दोनों सदा एक-दूसरे के प्रति मन में क्रोध (स्पर्धा) से भरे रहते थे।

**अश्वत्थामा रहस्येषु सर्वेष्वभ्यधिकोऽभवत् ।**
**तथाति पुरुषानन्यान्त्सारुकौ यमजावुभौ ॥२९॥**

अश्वत्थामा धनुर्वेद के रहस्यों की जानकारी में सबसे बढ़-चढ़कर हुआ । नकुल और सहदेव दोनों भाई तलवार की मूठ पकड़कर युद्ध करने में अत्यन्त कुशल हुए । वे इस कला में अन्य सब मनुष्यों से बढ़े-चढ़े थे ।

**युधिष्ठिरो रथश्रेष्ठः सर्वत्र तु धनञ्जयः ।**
**प्रथितः सागरान्तायां रथयूथपयूथपः ॥३०॥**

युधिष्ठिर रथ पर बैठकर युद्ध करने में श्रेष्ठ थे, परन्तु अर्जुन सभी प्रकार की युद्ध-कलाओं में सबसे बढ़कर थे । वे समुद्रपर्यन्त सारी पृथिवी में रथयूथ-पतियों के भी यूथपति के रूप में प्रसिद्ध थे ।

**बुद्धियोगबलोत्साहैः सर्वास्त्रेषु च निष्ठितः ।**
**अस्त्रे गुर्वनुरागे च विशिष्टोऽभवदर्जुनः ॥३१॥**

बुद्धि [मन] की एकाग्रता, बल और उत्साह के कारण वे (अर्जुन) सम्पूर्ण अस्त्रविद्या में प्रवीण हुए । अस्त्रों के अभ्यास तथा गुरु के प्रति अनुराग में भी अर्जुन का स्थान सबसे ऊँचा था ।

**तांस्तु सर्वान् समानीय सर्वविद्यास्त्रशिक्षितान् ।**
**द्रोणः प्रहरणज्ञाने जिज्ञासुः पुरुषर्षभः ॥३२॥**

जब सभी कुमार सम्पूर्ण धनुर्विद्या तथा अस्त्र-संचालन की कला में सुशिक्षित हो गये, तब नरश्रेष्ठ द्रोण ने उन सबको एकत्र करके उनके अस्त्रज्ञान की परीक्षा लेने का विचार किया ।

**कृत्रिमं भासमारोप्य वृक्षाग्रे शिल्पिभिः कृतम् ।**
**अविज्ञातं कुमाराणां लक्ष्यभूतमुपादिशत् ॥३३॥**

उन्होंने कारीगरों से एक नकली गीध बनवाकर वृक्ष के अग्र भाग पर रखवा दिया । राजकुमारों को इसका पता नहीं था । आचार्य ने उसी गीध को बींधने के योग्य लक्ष्य बताया ।

द्रोण उवाच

**शीघ्रं भवन्तः सर्वेऽपि धनूंष्यादाय सर्वशः ।**
**भासमेतं समुद्दिश्य तिष्ठन्तां संधितेषवः ॥३४॥**

**द्रोण बोले**—तुम सब लोग इस गीध को बींधने के लिए शीघ्र ही धनुष लेकर तथा उसपर बाण चढ़ाकर तैयार हो जाओ !

**मद्वाक्यसमकालं तु शिरोऽस्य विनिपात्यताम् ।**
**एकैकशो नियोक्ष्यामि तथा कुरुत पुत्रकाः ॥३५॥**

फिर मेरी आज्ञा मिलने के साथ ही इसका सिर काट गिराओ । पुत्रो ! मैं एक-एक को क्रमशः इस कार्य में नियुक्त करूँगा, तुम लोग मेरे बताये अनुसार कार्य करो ।

वैशम्पायन उवाच

**ततो युधिष्ठिरं पूर्वमुवाचाङ्गिरसां वरः ।**
**संधत्स्व बाणं दुर्धर्ष मद्वाक्यान्ते विमुञ्च तम् ॥३६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तत्पश्चात् अङ्गिरागोत्रवाले ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ आचार्य द्रोण ने सबसे पहले युधिष्ठिर से कहा—"दुर्धर्ष वीर ! तुम धनुष पर बाण चढ़ाओ और मेरी आज्ञा मिलते ही छोड़ दो ।"

**ततो युधिष्ठिरः पूर्वं धनुर्गृह्य परंतपः ।**
**तस्थौ भासं समुद्दिश्य गुरुवाक्यप्रचोदितः ॥३७॥**

तब शत्रुओं को सन्ताप देनेवाले युधिष्ठिर गुरु की आज्ञा से प्रेरित हो सबसे पूर्व धनुष लेकर गीध को बींधने के लिए लक्ष्य बनाकर खड़े हो गये ।

**ततो विततधन्वानं द्रोणस्तं कुरुनन्दनम् ।**
**स मुहूर्तादुवाचेदं वचनं भरतर्षभ ॥३८॥**

भरतश्रेष्ठ ! तब धनुष तानकर खड़े हुए कुरु-नन्दन युधिष्ठिर से थोड़ी देर पश्चात् आचार्य द्रोण ने इस प्रकार कहा—

**पश्यैनं तं द्रुमाग्रस्थं भासं नरवरात्मज ।**
**पश्यामीत्येवमाचार्यं प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ॥३९॥**

"राजकुमार ! तुम वृक्ष की शिखा पर बैठे हुए इस गीध को देखो ?" तब युधिष्ठिर ने आचार्य को उत्तर दिया—"भगवन् ! मैं देख रहा हूँ ।"

**स मुहूर्तादिव पुनर्द्रोणस्तं प्रत्यभाषत ।**
**अथ वृक्षमिमं मां वा भ्रातॄन् वापि प्रपश्यसि ॥४०॥**

थोड़ा समय व्यतीत होने पर द्रोणाचार्य फिर उनसे बोले—"क्या तुम इस वृक्ष को, मुझे अथवा अपने भाइयों को भी देखते हो ?"

**तमुवाच स कौन्तेयः पश्याम्येनं वनस्पतिम् ।**
**भवन्तं च तथा भ्रातॄन् भासं चेति पुनः पुनः ॥४१॥**

यह सुनकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर उनसे इस

प्रकार बोले—"हाँ, मैं इस वृक्ष को, आपको, अपने भाइयों को तथा गीध को भी बारम्बार देख रहा हूँ।"

**तमुवाचापसर्पेति द्रोणोऽप्रीतमना इव।**
**नैतच्छक्यं त्वया वेद्धुं लक्ष्यमित्येव कुत्सयन् ॥४२॥**

उनका उत्तर सुनकर द्रोणाचार्य मन-ही-मन कुछ अप्रसन्न-से हो गये और उन्हें झिड़कते हुए बोले—"हटो यहाँ से, तुम इस लक्ष्य को नहीं बींध सकते।"

**ततो दुर्योधनादींस्तान् धार्तराष्ट्रान् महायशाः।**
**तेनैव क्रमयोगेन जिज्ञासुः पर्यपृच्छत ॥४३॥**

तत्पश्चात् महायशस्वी आचार्य ने उसी क्रम से दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र-पुत्रों को भी उनकी परीक्षा लेने के लिए बुलाया तथा उन सबसे भी उपर्युक्त बातें पूछीं।

**अन्यांश्च शिष्यान्भीमादीन् राज्ञश्चैवान्यदेशजान्।**
**तथा च सर्वे तत् सर्वं पश्याम इति कुत्सिताः ॥४४॥**

फिर उन्होंने भीम आदि अन्य शिष्यों तथा अन्य देश के राजाओं से भी, जो वहाँ शिक्षा पा रहे थे, वैसा ही प्रश्न किया। प्रश्न के उत्तर में सभी ने [युधिष्ठिर की भाँति ही] कहा—"हम सब-कुछ देख रहे हैं।" यह सुनकर आचार्य ने उन सबको झिड़ककर हटा दिया।

**ततो धनंजयं द्रोणः स्मयमानोऽभ्यभाषत।**
**त्वयेदानीं प्रहर्तव्यमेतल्लक्ष्यं विलोक्यताम् ॥४५॥**

तत्पश्चात् द्रोणाचार्य ने अर्जुन से मुस्कराते हुए कहा—"अब तुम्हें इस लक्ष्य का वेध करना है, इसे अच्छी प्रकार देख लो।

**मद्वाक्यसमकालं ते मोक्तव्योऽत्र भवेच्छरः।**
**वितत्य कार्मुकं पुत्र तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम् ॥४६॥**

मेरी आज्ञा मिलते ही तुम्हें इसपर बाण छोड़ना होगा। वत्स! धनुष तानकर खड़े हो जाओ और थोड़ी देर मेरे आदेश की प्रतीक्षा करो।"

**एवमुक्तः सव्यसाची मण्डलीकृतकार्मुकः।**
**तस्थौ भासं समुद्दिश्य गुरुवाक्यप्रचोदितः ॥४७॥**

उनके ऐसा कहने पर अर्जुन ने अपने धनुष को इस प्रकार खींचा कि वह मण्डलाकार [गोल] प्रतीत होने लगा। तत्पश्चात् वे गुरु की आज्ञा से प्रेरित हो गीध को लक्ष्य करके खड़े हो गये।

**मुहूर्तादिव तं द्रोणस्तथैव समभाषत।**
**पश्यस्येनं स्थितं भासं द्रुमं मामपि चार्जुनः ॥४८॥**

थोड़ी देर पश्चात् द्रोणाचार्य ने उनसे भी उसी प्रकार प्रश्न किया—"अर्जुन! क्या तुम उस वृक्ष पर बैठे हुए गीध को, वृक्ष को और मुझे भी देखते हो?"

**पश्याम्येकं भासमिति द्रोणं पार्थोऽभ्यभाषत।**
**न तु वृक्षं भवन्तं वा पश्यामीति च भारत ॥४९॥**

जनमेजय! यह प्रश्न सुनकर अर्जुन ने द्रोणाचार्य से कहा—"मैं केवल गीध को देखता हूँ, वृक्ष को अथवा आपको नहीं देखता।"

**ततः प्रीतमना द्रोणो मुहूर्तादिव तं पुनः।**
**प्रत्यभाषत दुर्धर्षः पाण्डवानां महारथम् ॥५०॥**

इस उत्तर से द्रोणाचार्य का मन प्रसन्न हो गया। थोड़ी देर पश्चात् दुर्धर्ष द्रोणाचार्य ने पाण्डव महारथी अर्जुन से फिर पूछा—

**भासं पश्यसि यद्येनं तथा ब्रूहि पुनर्वचः।**
**शिरः पश्यामि भासस्य न गात्रमिति सोऽब्रवीत् ॥५१**

"वत्स! यदि तुम इस गीध को देखते हो तो बताओ, इसके अङ्ग कैसे हैं?" अर्जुन बोले—"मैं केवल गीध का मस्तक देख रहा हूँ, उसके सम्पूर्ण शरीर को नहीं।"

**अर्जुनेनैवमुक्तस्तु द्रोणो हृष्टतनूरुहः।**
**मुञ्चस्वेत्यब्रवीत् पार्थं स मुमोचाविचारयन् ॥५२॥**

अर्जुन के ऐसा कहने पर हर्षातिरेक से द्रोणाचार्य के शरीर में रोमांच हो आया और वे अर्जुन से बोले—"चलाओ बाण!" अर्जुन ने भी बिना सोचे-विचारे बाण छोड़ दिया।

**ततस्तस्य नगस्थस्य क्षुरेण निशितेन च।**
**शिर उत्कृत्य तरसा पातयामास पाण्डवः ॥५३॥**

फिर तो पाण्डुनन्दन अर्जुन ने अपने चलाये हुए तीखे क्षुर नामक बाण से वृक्ष पर बैठे हुए उस गीध का मस्तक वेगपूर्वक काट गिराया।

**तस्मिन् कर्मणि संसिद्धे पर्यष्वजत पाण्डवम्।**
**मेने च द्रुपदं संख्ये सानुबन्धं पराजितम् ॥५४॥**

इस कार्य में सफल होने पर आचार्य ने अर्जुन को हृदय से लगा लिया तथा उन्हें यह विश्वास हो

गया कि राजा द्रुपद युद्ध में अर्जुन द्वारा अपने बन्धु-बान्धवों सहित अवश्य पराजित हो जाएँगे।

**कस्यचित् त्वथ कालस्य स शिष्योऽङ्गिरसां वरः।**
**जगाम गङ्गामभितो मज्जितुं भरतर्षभ ॥५५॥**

भरतकुलभूषण! तत्पश्चात् किसी समय अङ्गिरसवंशियों में श्रेष्ठ आचार्य द्रोण अपने शिष्यों के साथ गङ्गा में स्नान करने के लिए गये।

**अवगाढमथो द्रोणं सलिले सलिलेचरः।**
**ग्राहो जग्राह बलवाञ्जङ्घान्ते कालप्रेरितः ॥५६॥**

वहाँ जल में डुबकी लगाते समय काल से प्रेरित हो एक बलवान् जलजन्तु ग्राह ने द्रोणाचार्य की पिंडली पकड़ ली।

**स समर्थोऽपि मोक्षाय शिष्यान् सर्वानचोदयत्।**
**ग्राहं हत्वा मोक्षयध्वं मामिति त्वरयन्निव ॥५७॥**

वे अपने को छुड़ाने में समर्थ होते हुए भी मानो हड़बड़ाये हुए अपने सभी शिष्यों से बोले—"इस ग्राह को मारकर मुझे बचाओ!"

**तद्वाक्यसमकालं तु बीभत्सुर्निशितैः शरैः।**
**अवार्यैः पञ्चभिर्ग्राहं मग्नमम्भस्यताडयत् ॥५८॥**

उनके इस आदेश के साथ ही बीभत्सु [अर्जुन] ने पाँच अमोघ एवं तीखे बाणों द्वारा पानी में डूबे हुए उस ग्राह पर प्रहार किया।

**इतरे त्वथ सम्मूढास्तत्र तत्र प्रपेदिरे।**
**तं तु दृष्ट्वा क्रियोपेतं द्रोणोऽमन्यत पाण्डवम् ॥५९॥**
**विशिष्टं सर्वशिष्येभ्यः प्रीतिमाँश्चाभवत् तदा।**
**स पार्थबाणैर्बहुधा खण्डशः परिकल्पितः ॥६०॥**
**ग्राहः पञ्चत्वमापेदे जङ्घां त्यक्त्वा महात्मनः।**
**अथाब्रवीन्महात्मानं भारद्वाजो महारथम् ॥६१॥**

दूसरे राजकुमार किंकर्तव्य-विमूढ से होकर अपने-अपने स्थान पर ही खड़े रह गये। अर्जुन को तत्काल कार्य में तत्पर देख द्रोणाचार्य ने उन्हें अपने सब शिष्यों से बढ़कर माना और उस समय वे उनपर बहुत प्रसन्न हुए। अर्जुन के बाणों से ग्राह के टुकड़े-टुकड़े हो गये और वह महात्मा द्रोण की पिंडली छोड़कर मर गया। तब द्रोणाचार्य ने महारथी महात्मा अर्जुन से कहा—

**गृहाणेदं महाबाहो विशिष्टमतिदुर्धरम्।**
**अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम सप्रयोगनिवर्तनम् ॥६२॥**

"महाबाहो! यह ब्रह्मशिर नामक अस्त्र मैं तुम्हें प्रयोग और उपसंहार के साथ बता रहा हूँ। यह सब अस्त्रों से बढ़कर है, तथा इसे धारण करना भी अत्यन्त कठिन है। तुम इसे ग्रहण करो।

**न च ते मानुषेष्वेतत् प्रयोक्तव्यं कथञ्चन।**
**जगद् विनिर्दहेदेतदल्पतेजसि पातितम् ॥६३॥**

"मनुष्यों पर तुम्हें इस अस्त्र का प्रयोग किसी भी अवस्था में नहीं करना चाहिए। यदि किसी अल्प तेजवाले पुरुष पर इसे चलाया गया, तो यह उसके साथ ही समस्त संसार को भस्म कर सकता है।

**असामान्यमिदं तात लोकेष्वस्त्रं निगद्यते।**
**तद् धारयेथाः प्रयतः शृणु चेदं वचो मम ॥६४॥**

"तात! यह अस्त्र तीनों लोकों में असाधारण बताया गया है। तुम मन और इन्द्रियों को संयम में रखकर इस अस्त्र को धारण करो और मेरी यह बात सुनो!

**बाधेतामानुषः शत्रुर्यदि त्वां वीर कश्चन।**
**तद्वधाय प्रयुञ्जीथास्तदस्त्रमिदमाहवे ॥६५॥**

'वीर! यदि कोई अमानव शत्रु तुम्हें युद्ध में पीड़ा देने लगे तो तुम उसका वध करने के लिए इस अस्त्र का प्रयोग कर सकते हो।"

**तथेति सम्प्रतिश्रुत्य बीभत्सुः स कृताञ्जलिः।**
**जग्राह परमास्त्रं तदाह चैनं पुनर्गुरुः।**
**भविता त्वत्समो नान्यः पुमाँल्लोके धनुर्धरः ॥६६॥**

तब अर्जुन ने 'बहुत अच्छा' कहकर जैसा ही करने की प्रतिज्ञा की और हाथ जोड़कर उस उत्तम अस्त्र को ग्रहण किया। उस समय गुरु द्रोणाचार्य ने अर्जुन से पुनः यह बात कही—"संसार में दूसरा कोई पुरुष तुम्हारे समान धनुर्धर नहीं होगा।"

**इति महाभारते आदिपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥**

# षोडशोऽध्यायः

## राजकुमारों का रङ्गभूमि में अस्त्र-कौशल दिखलाना

वैशम्पायन उवाच

**कृतास्त्रान् धार्तराष्ट्रांश्च पाण्डुपुत्रांश्च भारत ।**
**दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद् राजन् धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।।१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—भरतकुलभूषण राजन् ! जब द्रोण ने देखा कि धृतराष्ट्र के पुत्र तथा पाण्डव अस्त्र-विद्या की शिक्षा समाप्त कर चुके, तब उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा—

**राजन् सम्प्राप्तविद्यास्ते कुमाराः कुरुसत्तम ।**
**ते दर्शयेयुः स्वां शिक्षां राजन्ननुमते तव ।।२।।**

"राजन् ! आपके कुमार अस्त्र-विद्या की शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं, कुरुश्रेष्ठ ! यदि आपकी अनुमति हो तो वे अपनी सीखी हुई अस्त्र-संचालन की कला का प्रदर्शन करें।"

**ततोऽब्रवीन्महाराजः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।**
**भारद्वाज महत् कर्म कृतं ते द्विजसत्तम ।।३।।**

यह सुनकर महाराज धृतराष्ट्र अत्यन्त प्रसन्न-चित्त से बोले—"द्विजश्रेष्ठ भरद्वाजनन्दन ! आपने [राजकुमारों को शिक्षा प्रदान कर] बहुत बड़ा कार्य किया है।

**यदानुमन्यसे कालं यस्मिन् देशे यथा यथा ।**
**तथा तथा विधानाय स्वयमाज्ञापयस्व माम् ।।४।।**

"आप कुमारों की अस्त्र-शिक्षा प्रदर्शन के लिए जब जो समय ठीक समझें, जिस स्थान पर और जिस प्रकार का प्रबन्ध आवश्यक मानें, वैसी ही तैयारी करने के लिए स्वयं ही मुझे आज्ञा दें।

**स्पृहयाम्यद्य निर्वेदात् पुरुषाणां सचक्षुषाम् ।**
**अस्त्रहेतोः पराक्रान्तान् ये मे द्रक्ष्यन्ति पुत्रकान् ।।५।।**

"आज मैं नेत्रहीन होने के कारण दुःखी होकर उन मनुष्यों का सुख और सौभाग्य पाने के लिए तरस रहा हूँ, जिनके पास आँखें हैं, क्योंकि वे अस्त्र-कौशल का प्रदर्शन करने के लिए भाँति-भाँति के पराक्रम करनेवाले मेरे पुत्रों को देखेंगे।

**क्षत्तर्यद् गुरुराचार्यो ब्रवीति कुरु तत् तथा ।**
**न हीदृशं प्रियं मन्ये भविता धर्मवत्सल ।।६।।**

[आचार्य से ऐसा कहकर उन्होंने विदुरजी से कहा—] "धर्मवत्सल ! विदुर ! गुरु द्रोणाचार्य जो काम जैसे कहते हैं, उसे उसी प्रकार करो। मेरी सम्मति में इसके समान प्रिय कार्य दूसरा नहीं होगा।"

**ततो राजानमामन्त्र्य निर्गतो विदुरो बहिः ।**
**भारद्वाजो महाप्राज्ञो मापयामास मेदिनीम् ।।७।।**

तब राजा की आज्ञा लेकर विदुरजी [द्रोणाचार्य के साथ] बाहर आये। महाबुद्धिमान् भरद्वाजनन्दन द्रोण ने रङ्गमण्डप के लिए एक भूमि पसन्द की और उसे नपवाया।

**मञ्चांश्च कारयामासुस्तत्र जानपदा जनाः ।**
**विपुलानुच्छ्रयोपेतान् शिबिकाश्च महाधनाः ।।८।।**

जनपद के लोगों ने अपने बैठने के लिए वहाँ ऊँचे और विशाल मञ्च बनवाये तथा [स्त्रियों को लाने के लिए] बहुमूल्य शिबिकाएँ तैयार कराईं।

**तस्मिंस्ततोऽहनि प्राप्ते राजा ससचिवस्तदा ।**
**भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रेक्षागारमुपागमत् ।।९।।**

तदनन्तर जब निश्चित दिन आया तब मन्त्रियों-सहित राजा धृतराष्ट्र भीष्मजी को आगे करके उस प्रेक्षागह[1] [रङ्गभूमि] में आये।

**गान्धारी च महाभागा कुन्ती च जयतां वर ।**
**स्त्रियश्च राज्ञः सर्वास्ताः सप्रेष्याः सपरिच्छदाः ।।१०**
**ब्राह्मणक्षत्रियाद्यं च चातुर्वर्ण्यं पुराद्द्रुतम् ।**
**दर्शनेप्सु समभ्यागात् कुमाराणां कृतास्त्रताम् ।।११।।**

विजयी वीरों में श्रेष्ठ जनमेजय ! परम सौभाग्य-शालिनी गान्धारी, कुन्ती तथा राजभवन की सभी स्त्रियाँ वस्त्राभूषणों से विभूषित होकर दास-दासियों और आवश्यक सामग्रियों के साथ उस रङ्गभूमि में आईं। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों वर्णों के लोग भी कुमारों का अस्त्र-कौशल देखने की इच्छा से तुरन्त नगर से निकलकर आ गये।

---

१. उत्सव अथवा नाटक आदि को सुविधापूर्वक देखने के उद्देश्य से बनाये गये स्थान को प्रेक्षागृह कहते हैं।

**प्रवादितैश्च वादित्रैर्जनकौतूहलेन च।**
**महार्णव इव क्षुब्धः समाजः सोऽभवत् तदा ॥१२॥**

अनेक प्रकार के बाजों के बजने से तथा मनुष्यों के बढ़ते हुए कौतूहल से वह जनसमूह उस समय क्षुब्ध महासागर के समान जान पड़ता था।

**ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लयज्ञोपवीतवान्।**
**शुक्लकेशः सितश्मश्रुः शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥१३॥**
**रङ्गमध्यं तदाचार्यः सपुत्रः प्रविवेश ह।**
**नभो जलधरैर्हीनं साङ्गारक इवांशुमान् ॥१४॥**

तत्पश्चात् श्वेतवस्त्र और श्वेत यज्ञोपवीत धारण किये आचार्य द्रोण ने अपने पुत्र अश्वत्थामा के साथ रङ्गभूमि में प्रवेश किया, मानो मेघ-रहित आकाश में चन्द्रमा ने मङ्गल के साथ पदार्पण किया हो। आचार्य के सिर और दाढ़ी-मूँछ के बाल सफेद हो गये थे। वे श्वेत पुष्पों की माला और श्वेत चन्दन से सुशोभित हो रहे थे।

**ततो बद्धाङ्गुलित्राणा बद्धकक्षा महारथाः।**
**बद्धतूणाः सधनुषो विविशुर्भरतर्षभाः ॥१५॥**

द्रोणाचार्य के आगमन के पश्चात् भरतवंशियों में श्रेष्ठ वे वीर राजकुमार बड़े-बड़े रथों के साथ दस्ताने पहने, कमर कसे, पीठ पर तूणीर बाँधे और धनुष लिये हुए उस रङ्गभूमि में आये।

**अनुज्येष्ठं तु ते तत्र युधिष्ठिरपुरोगमाः।**
**चक्रुरस्त्रं महावीर्याः कुमाराः परमाद्भुतम् ॥१६॥**

नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर आदि वे राजकुमार बड़े-छोटे के क्रम से स्थित हो गये। तत्पश्चात् वे महापराक्रमी राजकुमार वहाँ परम अद्भुत अस्त्र-कौशल प्रकट करने लगे।

**केचिच्छराक्षेपभयाच्छिरांस्यवननामिरे।**
**मनुजा धृष्टमपरे वीक्षाञ्चक्रुः सुविस्मताः ॥१७॥**

कितने ही मनुष्य बाण लग जाने के भय से अपना मस्तक झुका देते थे। दूसरे लोग अत्यन्त विस्मित होकर बिना किसी घबराहट के सब-कुछ देखते थे।

**ते स्म लक्ष्याणि बिभिदुर्बाणैर्नामाङ्कशोभितैः।**
**विविधैर्लाघवोत्सृष्टैरुह्यन्तो वाजिभिर्द्रुतम् ॥१८॥**

वे राजकुमार घोड़ों पर सवार हो अपने नाम के अक्षरों से सुशोभित और बड़ी फुर्ती के साथ छोड़े हुए नाना प्रकार के बाणों द्वारा शीघ्रतापूर्वक लक्ष्य-वेध करने लगे।

**तत् कुमारबलं तत्र गृहीतशरकार्मुकम्।**
**गन्धर्वनगराकारं प्रेक्ष्य ते विस्मिताभवन् ॥१९॥**

धनुष-बाण लिये हुए राजकुमारों के उस समुदाय को गन्धर्वनगर के समान उपस्थित देख वहाँ आये हुए समस्त दर्शक आश्चर्यचकित हो गये।

**सहसा चुक्रुशुश्चान्ये नराः शतसहस्रशः।**
**विस्मयोत्फुल्लनयनाः साधु साध्विति भारत ॥२०॥**

हे जनमेजय! सैकड़ों और सहस्रों की संख्या में एक-एक स्थान पर बैठे हुए लोग आश्चर्यचकित नेत्रों से देखते हुए सहसा 'साधु-साधु' [वाह-वाह] कहकर कोलाहल मचा देते थे।

**कृत्वा धनुषि ते मार्गान् रथचर्यासु चासकृत्।**
**गजपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च नियुद्धे च महाबलाः ॥२१॥**

उन महाबली राजकुमारों ने पहले धनुष-बाण के पैंतरे दिखाये। तत्पश्चात् रथ-संचालन के विविध मार्गों [शीघ्र ले जाना, लौटा लाना, दाएँ, बाएँ और मण्डलाकार चलाना आदि] का अवलोकन कराया। फिर कुश्ती लड़ने तथा हाथी और घोड़े की पीठ पर बैठकर युद्ध करने की चातुरी का परिचय दिया।

**गृहीतखड्गचर्माणस्ततो भूयः प्रहारिणः।**
**त्सरुमार्गान् यथोद्दिष्टांश्चेरुः सर्वासु भूमिषु ॥२२॥**

तदनन्तर वे ढाल और तलवार लेकर एक-दूसरे पर प्रहार करते हुए खड्ग चलाने के शास्त्रोक्त मार्ग [ऊपर-नीचे और अगल-बगल में घुमाने की कला] का प्रदर्शन करने लगे। उन्होंने रथ, हाथी, घोड़े और भूमि—इन सभी आधार-भूमियों पर यह युद्ध-कौशल दिखाया।

**अथ तौ नित्यसंहृष्टौ सुयोधनवृकोदरौ।**
**अवतीर्णौ गदाहस्तावेकशृङ्गाविवाचलौ ॥२३॥**

तत्पश्चात् एक-दूसरे को जीतने का उत्साह रखनेवाले दुर्योधन और भीम हाथ में गदा लिये रङ्गभूमि में उतरे। उस समय वे एक-एक शिखरवाले दो पर्वतों की भाँति शोभा पा रहे थे।

**तौ प्रदक्षिणसव्यानि मण्डलानि महाबलौ।**
**चेरतुर्मण्डलगतौ समदाविव कुञ्जरौ ॥२४॥**

वे दोनों महाबली योद्धा अपनी-अपनी गदाओं को दाएँ-बाएँ मण्डलाकार घुमाते हुए दो मदोन्मत्त हाथियों की भाँति मण्डल के भीतर विचरने लगे।

**विदुरो धृतराष्ट्राय गान्धार्यैः पाण्डवारणिः ।**
**न्यवेदयेतां तत् सर्वं कुमाराणां विचेष्टितम् ॥२५॥**

विदुर धृतराष्ट्र को और पाण्डव-जननी कुन्ती गान्धारी को उन राजकुमारों की सारी चेष्टाएँ बताते जाते थे।

**कुरुराजे हि रङ्गस्थे भीमे च बलिनां वरे ।**
**पक्षपातकृतस्नेहः स द्विधेवाभवज्जनः ॥२६॥**

जब कुरुराज दुर्योधन और बलवानों में श्रेष्ठ भीमसेन रङ्गभूमि में उतरकर गदा-युद्ध कर रहे थे, उस समय दर्शक जनता उनके प्रति पक्षपातपूर्ण स्नेह करने के कारण मानो दो दलों में बँट गई।

**ही वीर कुरुराजेति ही भीम इति जल्पताम ।**
**पुरुषाणां सुविपुलाः प्रणादाः सहसोत्थिताः ॥२७॥**

कुछ कहते—"अहो! वीर कुरुराज कैसा अद्भुत पराक्रम दिखा रहे हैं।" तभी दूसरे चिल्ला पड़ते—"वाह! भीमसेन तो गजब का हाथ मारते हैं।" इस प्रकार की बातें करनेवाले लोगों की भारी आवाजें वहाँ सहसा सब ओर गूँजने लगीं।

**ततः क्षुब्धार्णवनिभं रङ्गमालोक्य बुद्धिमान् ।**
**भारद्वाजः प्रियं पुत्रमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥२८॥**

फिर तो सारी रङ्गभूमि में क्षुब्ध महासागर के समान हलचल मच गई। यह देख बुद्धिमान् द्रोणाचार्य ने अपने प्रिय पुत्र अश्वत्थामा से कहा—

द्रोण उवाच

**वारयैतौ महावीर्यौ कृतयोग्यावुभावपि ।**
**माभूद् रङ्गप्रकोपोऽयं भीमदुर्योधनोद्भवः ॥२९॥**

**द्रोणाचार्य बोले**—वत्स! ये दोनों पराक्रमी वीर अस्त्र-विद्या में अत्यन्त अभ्यस्त हैं। तुम इन दोनों को युद्ध से रोको, जिससे भीमसेन और दुर्योधन को लेकर रङ्गभूमि में सर्वत्र क्रोध न फैल जाए।

वैशम्पायन उवाच

**ततस्तावुद्यतगदौ गुरुपुत्रेण वारितौ ।**
**युगान्तानिलसंक्षुब्धौ महावेलाविवार्णवौ ॥३०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—तब गुरु-पुत्र अश्वत्थामा ने प्रलयकालीन वायु से विक्षुब्ध उत्ताल तरङ्गोंवाले दो समुद्रों की भाँति गदा उठाये हुए दुर्योधन और भीम को युद्ध करने से रोक दिया।

**ततो रङ्गाङ्गणगतो द्रोणो वचनमब्रवीत् ।**
**निवार्य वादित्रगणं महामेघनिभस्वनम् ॥३१॥**

उनका युद्ध बन्द होने पर दोणाचार्य ने महान् मेघों के समान कोलाहल करनेवाले बाजों को बन्द कराकर रङ्गभूमि में उपस्थित होकर यह बात कही—

**यो मे पुत्रात् प्रियतरः सर्वशस्त्रविशारदः ।**
**ऐन्द्रिरिन्द्रानुजसमः स पार्थो दृश्यतामिति ॥३२॥**

"दर्शकगण! जो मुझे पुत्र से भी अधिक प्रिय है, जिसने सम्पूर्ण शस्त्रों में निपुणता प्राप्त की है, जो विष्णु के समान पराक्रमी है, उस इन्द्रकुमार कुन्तीपुत्र अर्जुन का कौशल अब आप लोग देखें।"

**आचार्यवचनेनाथ कृतस्वस्त्ययनो युवा ।**
**बद्धगोधाङ्गुलित्राणः प्रत्यदृश्यत फाल्गुनः ॥३३॥**

तब आचार्य के आदेश से स्वस्तिवाचन कराकर तरुण वीर अर्जुन हाथों में गोह के चमड़े के बने दस्ताने पहने हुए [धनुष हाथ में लिये] रङ्गभूमि में दिखाई दिये।

**ततः सर्वस्य रङ्गस्य समुत्पिञ्जलकोऽभवत् ।**
**प्रावाद्यन्त च वाद्यानि सशंखानि समन्ततः ॥३४॥**

फिर तो सम्पूर्ण रङ्गमण्डप में हर्षोल्लास छा गया और सब ओर भाँति-भाँति के बाजे और शंख बजने लगे।

**तस्मिन् प्रमुदिते रङ्गे कथंचित् प्रत्युपस्थिते ।**
**दर्शयामास बीभत्सुराचार्यायास्त्रलाघवम् ॥३५॥**
**आग्नेयेनासृजद् वह्निं वारुणेनासृजत् पयः ।**
**वायव्येनासृजद्वायुं पार्जन्येनासृजद् घनान् ॥३६॥**

आनन्दातिरेक से मुखरित हुआ वह रङ्गमण्डप जब किसी प्रकार कुछ शान्त हुआ, तब अर्जुन ने आचार्य को अपनी अस्त्र-संचालन की फुर्ती दिखानी आरम्भ की। उन्होंने पहले आग्नेयास्त्र से अग्नि उत्पन्न की, फिर वारुणास्त्र से जल उत्पन्न करके उसे बुझा दिया। वायव्यास्त्र से आँधी चला दी और पर्जन्यास्त्र से बादल प्रकट कर दिये।

**भौमेन प्राविशद् भूमिं पार्वतेनासृजद् गिरीन् ।**
**अन्तर्धानेन चास्त्रेण पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥३७॥**

उन्होंने भौमास्त्र से पृथिवी में प्रवेश किया। और पर्वतास्त्र से पर्वतों को उत्पन्न कर दिया, फिर अन्तर्धानास्त्र द्वारा वे स्वयं अदृश्य हो गये।

**क्षणात्प्रांशुः क्षणाद्ध्रस्वः क्षणाच्च रथधूर्गतः ।**
**क्षणेन रथमध्यस्थः क्षणेनावतरन्महीम् ॥३८॥**

वे क्षणभर में बहुत लम्बे हो जाते तथा क्षणभर में ही बहुत छोटे बन जाते थे। एक क्षण में रथ के धुरे पर खड़े होते तो दूसरे ही क्षण रथ के बीच में दिखाई देते थे। फिर पलक मारते-मारते पृथिवी पर उतर कर अस्त्र-कौशल दिखाने लगते थे।

**भ्रमतश्च वराहस्य लोहस्य प्रमुखे समम् ।**
**पञ्च बाणानसंयुक्तान् सम्मुमोचैकबाणवत् ॥३९॥**

तत्पश्चात् वीर अर्जुन ने चक्कर लगाते हुए लोहनिर्मित सूअर के मुख में एक ही साथ एक बाण की भाँति मिलाकर पांच बाण मारे। किन्तु वे पाँचों बाण एक-दूसरे से सटे हुए नहीं थे।

**गव्ये विषाणकोषे च चले रज्ज्ववलम्बिनि ।**
**निचखान महावीर्यः सायकानेकविंशतिम् ॥४०॥**

एक स्थान पर गाय का एक सींग रस्सी में लटकाया गया था, जो हिल रहा था। महापराक्रमी अर्जुन ने उस सींग के छेद में लगातार इक्कीस बाण गड़ा दिये।

**इत्येवमादि सुमहत् खड्गे धनुषि चानघ ।**
**गदायां शस्त्रकुशलो मण्डलानि ह्यदर्शयत् ॥४१॥**

निष्पाप जनमेजय! इस प्रकार उन्होंने बड़ा भारी अस्त्र-कौशल दिखलाया। खड्ग, धनुष और गदा आदि के भी शस्त्र-कुशल अर्जुन ने अनेक पैंतरे और हाथ दिखलाये।

**इति महाभारते आदिपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥१६॥**

## सप्तदशोऽध्यायः

### कर्ण का रङ्गभूमि में प्रवेश, दुर्योधन द्वारा उसका राज्याभिषेक, भीम द्वारा कर्ण का तिरस्कार और दुर्योधन द्वारा उसका सम्मान

वैशम्पायन उवाच

**ततः समाप्तभूयिष्ठे तस्मिन् कर्मणि भारत ।**
**मन्दीभूते समाजे च वादित्रस्य च निःस्वने ॥१॥**
**द्वारदेशात् समुद्भूतो माहात्म्यबलसूचकः ।**
**वज्रनिष्पेषसदृशः शुश्रुवे भुजनिःस्वनः ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! इस प्रकार अस्त्र-कौशल दिखाने का अधिकांश कार्य जब समाप्त हो चला, मनुष्यों का कोलाहल और बाजे-गाजे का शब्द भी जब शान्त होने लगा, उसी समय द्वार की ओर से किसी का अपनी भुजाओं पर ताल ठोंकने का भारी शब्द सुनाई पड़ा, मानो वज्र आकाश में टकरा रहे हों। यह शब्द किसी वीर के माहात्म्य तथा बल का सूचक था।

**दीर्यन्ते किं नु गिरयः किंस्विद् भूमिर्विदीर्यते ।**
**किंस्विदापूर्यते व्योम जलधाराघनैर्घनैः ॥३॥**

[उस शब्द को सुनकर लोग कहने लगे—] "कहीं पहाड़ तो नहीं फट गये, पृथिवी तो विदीर्ण नहीं हो गई? अथवा जल की धारा से परिपूर्ण घनीभूत बादलों की गम्भीर गर्जना से आकाशमण्डल तो नहीं गूँज रहा है?"

**रङ्गस्यैवं मतिरभूत् क्षणेन वसुधाधिप ।**
**द्वारं चाभिमुखाः सर्वे बभूवुः प्रेक्षकास्तदा ॥४॥**

हे राजन्! उस रङ्गमण्डप में बैठे हुए लोगों के मन में क्षणभर में उपर्युक्त विचार आने लगे। उस समय सभी दर्शक द्वार की ओर मुँह घुमाकर देखने लगे।

**दत्तावकाशे पुरुषैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।**
**विवेश रङ्गं विस्तीर्णं कर्णः परपुरंजयः ॥५॥**

आश्चर्य से आँखें फाड़-फाड़कर देखनेवाले दर्शकों ने जब भीतर जाने का मार्ग दे दिया, तब शत्रुओं की

राजधानी पर विजय पानेवाले कर्ण[1] ने उस विशाल रङ्गमण्डप में प्रवेश किया ।

**सहजं कवचं बिभ्रत् कुण्डलोद्द्योतिताननः ।**
**सधनुर्बद्धनिस्त्रिंशः पादचारीव पर्वतः ॥६॥**

उसने सहज स्वभाव से कवच धारण किया हुआ था । दोनों कानों के कुण्डल उसके मुख को उद्भासित कर रहे थे । हाथ में धनुष लिये और कमर में तलवार बाँधे वह वीर पैरों से चलनेवाले पर्वत की भाँति सुशोभित हो रहा था ।

**सिंहर्षभगजेन्द्राणां बलवीर्यपराक्रमः ।**
**दीप्तिकान्तिद्युतिगुणैः सूर्येन्दुज्वलनोपमः ॥७॥**

उसमें सिंह के समाज बल, साँड के समान वीर्य और गजराज के समान पराक्रम था, वह दीप्ति से सूर्य, कान्ति से चन्द्रमा तथा तेजरूपी गुण से अग्नि के समान जान पड़ता था ।

**स निरीक्ष्य महाबाहुः सर्वतो रङ्गमण्डलम् ।**
**प्रणामं द्रोणकृपयोर्नात्यादृतमिवाकरोत् ॥८॥**

उस समय महाबाहु कर्ण ने रङ्गमण्डप में सब ओर दृष्टि दौड़ाकर द्रोणाचार्य और कृपाचार्य को इस प्रकार प्रणाम किया, मानो उनके प्रति उसके मन में अधिक आदर का भाव न हो ।

**स समाजजनः सर्वो निश्चलः स्थिरलोचनः ।**
**कोऽयमित्यागतक्षोभः कौतूहलपरोऽभवत् ॥९॥**

रङ्गभूमि में जितने लोग थे, वे सब निश्चल होकर एकटक दृष्टि से देखने लगे । यह कौन है, यह जानने के लिए उनका चित्त चञ्चल हो उठा । वे सब-के-सब उत्कण्ठित हो गये ।

कर्ण उवाच

**पार्थ यत् ते कृतं कर्म विशेषवदहं ततः ।**
**करिष्ये पश्यतां नृणां माऽऽत्मना विस्मयं गमः ॥१०॥**

**कर्ण बोला**—कुन्तीनन्दन ! तुमने इन दर्शकों के समक्ष जो कार्य किया है, मैं उससे भी अधिक आश्चर्यजनक कर्म कर दिखाऊँगा, अतः तुम अपने पराक्रम पर गर्व मत करो ।

वैशम्पायन उवाच

**प्रीतिश्च मनुजव्याघ्र दुर्योधनमुपाविशत् ।**
**ह्रीश्च क्रोधश्च बीभत्सुं क्षणेनान्वाविवेश ह ॥११॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे नरश्रेष्ठ ! उस समय [कर्ण की बात सुनकर] दुर्योधन के मन में बड़ी प्रसन्नता हुई और अर्जुन के चित्त में क्षणभर में लज्जा तथा क्रोध का संचार हो आया ।

**ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः कर्णः प्रियरणः सदा ।**
**यत् कृतं तत्र पार्थेन तच्चकार महाबलः ॥१२॥**

तब सदा युद्ध से ही प्रेम करनेवाले महाबली कर्ण ने द्रोणाचार्य की आज्ञा लेकर, अर्जुन ने वहाँ जो-जो अस्त्र-कौशल प्रकट किया था, वह सब कर दिखाया ।

**अथ दुर्योधनस्तत्र भ्रातृभिः सह भारत ।**
**कर्णं परिष्वज्य मुदा ततो वचनमब्रवीत् ॥१३॥**

भरतश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् भाइयों के सहित दुर्योधन ने वहाँ अत्यन्त प्रसन्नता के साथ कर्ण को हृदय से लगाकर कहा—

---

१. महाभारत में अनेक स्थानों पर कर्ण का कुमारी-अवस्था में कुन्ती से उत्पन्न होने का उल्लेख मिलता है। यह सब महाभारत में समय-समय पर हुए प्रक्षेपों के कारण है। हमारे विचार में कर्ण कुन्ती का पुत्र नहीं था। श्रीकृष्णजी द्वारा कर्ण को कुन्ती का पुत्र बनाया गया था। पीछे यह धारणा बद्धमूल हो गई कि कर्ण कुन्ती का पुत्र था। महाभारत में इतने प्रक्षेप हुए हैं कि वास्तविक तथ्यों को खोज निकालना कठिन है। वायुपुराण में चन्द्रवंशी राजा अनु की वंशावली का वर्णन करते हुए कहा गया है—

**आसीद्दृढरथस्यापि विश्वजिज्जनमेजयः ।**
**दायादस्तस्य चाङ्गेभ्यो यस्मात्कर्णोऽभवन्नृपः ॥**

—वायु पु० ९९।१११, ११२

राजा दृढरथ का पुत्र विश्वविजयी राजा जनमेजय हुआ। उसके अङ्गों से राजा कर्ण हुआ, जो उसका उत्तराधिकारी था।

यह अधिरथ के पास कैसे पहुँच गया, इस सब की कड़ी जोड़ना कठिन है। इतना तो निश्चित ही है कि यह सूतपुत्र नहीं था। हाँ, हो सकता है, एकलव्य की भाँति सूत द्वारा इसका भी लालन-पालन किया गया हो।

दुर्योधन उवाच

**स्वागतं ते महाबाहो दिष्टया प्राप्तोऽसि मानद ।**
**मामपि कुरुराज्यं च यथेष्टमुपभुज्यताम् ॥१४॥**

**दुर्योधन बोला**—हे महाबाहो ! आपका स्वागत है । मानद ! तुम यहाँ पधारे, यह हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात है । मैं तथा कौरवों का यह राज्य सब तुम्हारे हैं । तुम इनका यथेष्ट उपभोग करो ।

कर्ण उवाच

**कृतं सर्वमहं मन्ये सखित्वं च त्वया वृणे ।**
**द्वन्द्वयुद्धं च पार्थेन कर्तुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥१५॥**

**कर्ण ने कहा**—प्रभो ! आपने जो कुछ कहा है, वह सब पूरा कर दिया, ऐसा मेरा विश्वास है । मैं आपके साथ मित्रता चाहता हूँ और अर्जुन के साथ मेरी द्वन्द्वयुद्ध करने की इच्छा है ।

दुर्योधन उवाच

**भुंक्ष्व भोगान् मया सार्धं बन्धूनां प्रियकृद् भव ।**
**दुर्हृदां कुरु सर्वेषां मूर्ध्नि पादमरिन्दम ॥१६॥**

**दुर्योधन बोला**—शत्रुदमन ! तुम मेरे साथ उत्तम भोग भोगो । अपने भाई-बन्धुओं का प्रिय करो और समस्त शत्रुओं के मस्तक पर पैर रखो ।

वैशम्पायन उवाच

**ततः क्षिप्तमिवात्मानं मत्वा पार्थोऽभ्यभाषत ।**
**कर्णं भ्रातृसमूहस्य मध्येऽचलमिव स्थितम् ॥१७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! उस समय अर्जुन ने अपने आपको कर्ण द्वारा तिरस्कृत-सा मानकर दुर्योधन आदि सौ भाइयों के बीच में अचल (पर्वत) से खड़े हुए कर्ण को सम्बोधित करके कहा—

अर्जुन उवाच

**अनाहूतोपसृष्टानामनाहूतोपजल्पिनाम् ।**
**ये लोकास्तान् हतः कर्ण मया त्वं प्रतिपत्स्यसे ॥१८॥**

**अर्जुन ने कहा**—कर्ण ! बिना बुलाये आनेवालों और बिना बुलाये बोलनेवालों को जो [निन्दनीय] लोक प्राप्त होते हैं, मेरे द्वारा मारे जाने पर तुम उन्हीं लोकों में जाओगे ।

कर्ण उवाच

**रङ्गोऽयं सर्वसामान्यः किमत्र तव फाल्गुन ।**
**वीर्यश्रेष्ठाश्च राजानो बलं धर्मोऽनुवर्तते ॥१९॥**

**कर्ण बोला**—अर्जुन ! यह रङ्गमण्डप तो सबके लिए सामान्य है, इसमें तुम्हारा क्या लगा है ? जो बल और पराक्रम में श्रेष्ठ होते हैं, वे ही राजा कहलाने योग्य हैं । धर्म भी बल का ही अनुसरण करता है ।

**किं क्षेपैर्दुर्बलायासैः शरैः कथय भारत ।**
**गुरोः समक्षं यावत् ते हराम्यद्य शिरः शरैः ॥२०॥**

भारत ! आक्षेप करना तो दुर्बलों का कार्य है । इससे क्या लाभ है ? साहस हो तो बाणों से बातचीत करो । मैं आज तुम्हारे गुरु के सामने ही बाणों द्वारा तुम्हारे सिर को धड़ से अलग किये देता हूँ ।

वैशम्पायन उवाच

**ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः पार्थः परपुरञ्जयः ।**
**भ्रातृभिस्त्वरयाऽऽश्लिष्टो रणायोपजगाम तम् ॥२१**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! तब शत्रुओं के नगर को जीतनेवाले कुन्तीनन्दन अर्जुन आचार्य द्रोण की आज्ञा ले तुरन्त अपने भाइयों से गले मिलकर युद्ध के लिए कर्ण की ओर बढ़े ।

**ततो दुर्योधनेनापि सभ्रात्रा समरोद्यतः ।**
**परिष्वक्तः स्थितः कर्णः प्रगृह्य सशरं धनुः ॥२२॥**

तब भाइयों-सहित दुर्योधन ने भी धनुष-बाण ले युद्ध के लिए तैयार खड़े हुए कर्ण का आलिङ्गन किया ।

**धार्तराष्ट्रा यतः कर्णस्तस्मिन् देशे व्यवस्थिताः ।**
**भारद्वाजः कृपो भीष्मो यतः पार्थस्ततोऽभवन् ॥२३॥**

धृतराष्ट्र के पुत्र जिस ओर कर्ण था, उसी ओर खड़े हुए तथा द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और भीष्म जिधर अर्जुन थे, उस ओर खड़े थे ।

**तावुद्यतमहाचापौ कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।**
**द्वन्द्वयुद्धसमाचारे कुशलः सर्वधर्मवित् ॥२४॥**

उन दोनों को विशाल धनुष उठाये देख द्वन्द्वयुद्ध की नीति-रीति में कुशल और समस्त धर्मों के ज्ञाता शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य ने इस प्रकार कहा—

कृप उवाच

**अयं पृथायास्तनयः कनीयान् पाण्डुनन्दनः ।**
**कौरवो भवता सार्धं द्वन्द्वयुद्धं करिष्यति ॥२५॥**
**त्वमप्येवं महाबाहो मातरं पितरं कुलम् ।**
**कथयस्व नरेन्द्राणां येषां त्वं कुलभूषणम् ॥२६॥**

**कृपाचार्य बोले**—हे कर्ण ! ये कुन्तदेवी के सबसे छोटे पुत्र पाण्डुनन्दन अर्जुन कुरुवंश के रत्न हैं, जो तुम्हारे साथ द्वन्द्वयुद्ध करेंगे। महाबाहो ! इसी प्रकार तुम भी अपने माता-पिता तथा कुल का परिचय दो और उस नरेश का नाम बताओ, जिनका वंश तुमसे विभूषित हुआ है।

**ततो विदित्वा पार्थस्त्वां प्रतियोत्स्यति वा न वा।**
**वृथाकुलसमाचारैर्न युध्यन्ते नृपात्मजाः ॥२७॥**

यह जान लेने के पश्चात् यह निश्चय होगा कि अर्जुन तुम्हारे साथ युद्ध करेंगे अथवा नहीं, क्योंकि राजकुमार नीच कुल और हीन आचार-विचारवाले लोगों के साथ युद्ध नहीं करते।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तस्य कर्णस्य व्रीडावनतमाननम्।**
**बभौ वर्षाम्बुविक्लिन्नं पद्ममागलितं यथा ॥२८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! कृपाचार्य के ऐसा कहने पर कर्ण का मुख लज्जा से नीचे झुक गया। जैसे वर्षा के पानी से भीगकर कमल मुर्झा जाता है, वैसे ही कर्ण का मुख कान्तिहीन हो गया। तब—

दुर्योधन उवाच

**आचार्य त्रिविधा योनी राज्ञां शास्त्रविनिश्चये।**
**सत्कुलीनश्च शूरश्च यश्च सेनां प्रकर्षति ॥२९॥**

**दुर्योधन बोला**—आचार्य ! शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार राजाओं की तीन योनियाँ हैं—उत्तम कुल में उत्पन्न पुरुष, शूरवीर तथा सेनापति [अतः शूरवीर होने के कारण कर्ण भी राजा ही हैं]।

**यद्ययं फाल्गुनो युद्धे नाराज्ञा योद्धुमिच्छति।**
**तस्मादेषोऽङ्गविषये मया राज्येऽभिषिच्यते ॥३०॥**

यदि ये अर्जुन राजा से भिन्न पुरुष के साथ रणभूमि में लड़ना नहीं चाहते, तो मैं कर्ण को इसी समय अङ्गदेश के राज्य पर अभिषिक्त करता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**ततस्तस्मिन् क्षणे कर्णः सलाजकुसुमैर्घटैः।**
**काञ्चनैः काञ्चने पीठे मन्त्रविद्भिर्महारथः ॥३१॥**
**अभिषिक्तोऽङ्गराज्ये स श्रिया युक्तो महाबलः।**
**सच्छत्रबालव्यजनो जयशब्दोत्तरेण च ॥३२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तब दुर्योधन की आज्ञा से उसी समय महाबली एवं महारथी कर्ण को सोने के सिंहासन पर बिठाकर मन्त्रवेत्ता ब्राह्मणों ने लाजाओं [धान की खीलों] और फूलों से युक्त सुवर्णमय कलशों के जल से अङ्गदेश के राज-पद पर अभिषिक्त किया। तब वह छत्र, चँवर तथा जय-जयकार के साथ राज्यश्री से सुशोभित होने लगा।

**उवाच कौरवं राजन् वचनं स वृषस्तदा।**
**अस्य राज्यप्रदानस्य सदृशं किं ददानि ते ॥३३॥**
**प्रब्रूहि राजशार्दूल कर्ता ह्यस्मि तथा नृप।**
**अत्यन्तं सख्यमिच्छामीत्याह तं स सुयोधनः ॥३४॥**

राजन् ! उस समय कर्ण ने कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन से कहा—"नृपतिशिरोमणे ! आपने मुझे जो यह राज्य प्रदान किया है, इसके अनुरूप मैं आपको क्या भेंट दूँ ? बताइए, आप जैसा कहेंगे मैं वैसा ही करूँगा।" यह सुनकर दुर्योधन ने कहा—"अङ्गराज ! मैं तुम्हारे साथ ऐसी मित्रता चाहता हूँ जिसका कभी अन्त न हो।"

**एवमुक्तस्ततः कर्णस्तथेति प्रत्युवाच तम्।**
**हर्षाच्चोभौ समाश्लिष्य परां मुदमवापतुः ॥३५॥**

दुर्योधन के ऐसा कहने पर कर्ण ने 'बहुत अच्छा' कहकर उसके साथ मित्रता कर ली। फिर वे दोनों अति हर्ष के साथ एक-दूसरे को हृदय से लगाकर आनन्द-मग्न हो गये।

**ततः स्रस्तोत्तरपटः सप्रस्वेदः सवेपथुः।**
**विवेशाधिरथो रङ्गं यष्टिप्राणो ह्वयन्निव ॥३६॥**

उधर लाठी का सहारा लिये अधिरथ कर्ण को पुकारता हुआ-सा काँपता-काँपता रङ्गभूमि में आया। उसकी चादर खिसककर गिर पड़ी थी और वह पसीने से लथपथ हो रहा था।

**तमालोक्य धनुस्त्यक्त्वा पितृगौरवयन्त्रितः।**
**कर्णोऽभिषेकार्द्रशिराः शिरसा समवन्दत ॥३७॥**

पिता के गौरव से प्रेरित हुआ कर्ण अधिरथ को देखते ही धनुष त्यागकर सिंहासन से नीचे उतर आया। उसका मस्तक अभिषेक के जल से भीगा हुआ था। उसी अवस्था में उसने अधिरथ के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया।

**ततः पादाववच्छाद्य पटान्तेन ससम्भ्रमः।**
**पुत्रेति परिपूर्णार्थमब्रवीद् रथसारथिः ॥३८॥**

घबराये हुए अधिरथ ने अपने दोनों पैरों को कपड़े के छोर से छिपा लिया और 'बेटा! बेटा!' पुकारते हुए अपने को कृतार्थ माना।

**परिष्वज्य च तस्याथ मूर्धानं स्नेहविक्लवः।**
**अङ्गराज्याभिषेकार्द्रमश्रुभिः सिषिचे पुनः ॥३९॥**

उसने स्नेह से विह्वल होकर कर्ण को हृदय से लगा लिया और अङ्गदेश के राज्य पर अभिषिक्त होने से भीगे हुए उसके मस्तक को अपने आँसुओं से पुनः अभिषिक्त कर दिया।

**तं दृष्ट्वा सूतपुत्रोऽयमिति संचिन्त्य पाण्डवः।**
**भीमसेनस्तदा वाक्यमब्रवीत् प्रहसन्निव ॥४०॥**

अधिरथ को देखकर पाण्डुकुमार भीमसेन यह समझ गये कि कर्ण सूतपुत्र है। फिर तो वे हँसते हुए-से बोले—

भीम उवाच

**न त्वमर्हसि पार्थेन सूतपुत्र रणे वधम्।**
**कुलस्य सदृशस्तूर्णं प्रतोदो गृह्यतां त्वया ॥४१॥**

**भीमसेन बोले**—अरे ओ सूतपुत्र! तू तो अर्जुन के हाथ से मरने योग्य भी नहीं है। तुझे तो शीघ्र ही चाबुक हाथ में लेना चाहिए, क्योंकि यही कर्म तेरे कुल के अनुरूप है।

**अङ्गराज्यं च नार्हस्त्वमुपभोक्तुं नराधम।**
**श्वा हुताशसमीपस्थं पुरोडाशमिवाध्वरे ॥४२॥**

नराधम! जैसे यज्ञ में अग्नि के समीप रखे हुए पुरोडाश को कुत्ता नहीं पा सकता, उसी प्रकार तू भी अङ्गदेश का राज्य भोगने योग्य नहीं है।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तस्ततः कर्णः किंचित्प्रस्फुरिताधरः।**
**गगनस्थं विनिश्वस्य दिवाकरमुदैक्षत ॥४३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—भीमसेन के ऐसा कहने पर क्रोध के मारे कर्ण के होठ कुछ काँपने लगे और उसने लम्बी साँस लेकर आकाशमण्डल में स्थित सूर्य की ओर देखा।

**ततो दुर्योधनो कोपादुत्पपात महाबलः।**
**भ्रातृपद्मवनात् तस्मान्मदोत्कट इव द्विपः ॥४४॥**

इसी समय महाबली दुर्योधन क्रुद्ध हो मदोन्मत्त गजराज की भाँति भ्रातृ-समूहरूपी कमलवन से उछलकर बाहर निकल आया।

**सोऽब्रवीद् भीमकर्माणं भीमसेनमवस्थितम्।**
**वृकोदर न युक्तं ते वचनं वक्तुमीदृशम् ॥४५॥**

उसने वहाँ खड़े हुए भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेन से कहा—"वृकोदर! तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए—

**क्षत्रियाणां बलं ज्येष्ठं योद्धव्यं क्षत्रबन्धुना।**
**शूराणां च नदीनां च दुर्विदाः प्रभवाः किल ॥४६॥**

"क्षत्रियों में बल की ही प्रधानता है। बलवान् होने पर क्षत्रबन्धु=हीनक्षत्रिय से भी युद्ध करना चाहिए। शूरवीरों और नदियों की उत्पत्ति के वास्तविक कारण को जान लेना बहुत कठिन है।

**पृथिवीराज्यमर्होऽयं नाङ्गराज्यं नरेश्वरः।**
**अनेन बाहुवीर्येण मया चाज्ञानुवर्तिना ॥४७॥**

"राजा कर्ण अपने बाहुबल से तथा मुझ जैसे आज्ञापालक मित्र की सहायता से अङ्गदेश का ही नहीं समस्त भूमण्डल का राज्य पाने के अधिकारी हैं।

**यस्य वा मनुजस्येदं न क्षान्तं मद्विचेष्टितम्।**
**रथमारुह्य पद्भ्यां स विनामयतु कार्मुकम् ॥४८॥**

"जिस मनुष्य से मेरा यह व्यवहार नहीं सहा जाता हो, वह रथ पर चढ़कर पैरों से अपने धनुष को झुकाए (हमारे सामने युद्ध के लिए तैयार हो जाए)।"

**ततः सर्वस्य रङ्गस्य हाहाकारो महानभूत्।**
**साधुवादानुसम्बद्धः सूर्यश्चास्तमुपागमत् ॥४९॥**

यह सुनकर समस्त रङ्गमण्डप में दुर्योधन को मिलनेवाले साधुवाद के साथ ही [युद्ध की सम्भावना से] महान् हाहाकार मच गया। उधर सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये।

**ततो दुर्योधनः कर्णमालम्ब्याग्रकरे नृपः।**
**दीपिकाग्निकृतालोकस्तस्माद् रङ्गाद्विनिर्ययौ ॥५०॥**

तब दुर्योधन कर्ण के हाथ की अँगुलियाँ पकड़कर मशाल का प्रकाश करा उस रङ्गभूमि से बाहर निकल गया।

**पाण्डवाश्च सहद्रोणाः सकृपाश्च विशाम्पते ।**
**भीष्मेण सहिताः सर्वे ययुः स्वं स्वं निवेशनम् ॥५१॥**

प्रजानाथ ! समस्त पाण्डव भी द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और पितामह भीष्मजी के साथ अपने-अपने निवासस्थान को चल दिये ।

**अर्जुनेति जनः कश्चित् कश्चित् कर्णेति भारत ।**
**कश्चित् दुर्योधनेत्येवं ब्रुवन्तः प्रस्थितास्तदा ॥५२॥**

हे भारत ! उस समय दर्शकों में कोई अर्जुन की, कोई कर्ण की और कोई दुर्योधन की प्रशंसा करते हुए चले गये ।

**दुर्योधनस्यापि तदा कर्णमासाद्य पार्थिव ।**
**भयमर्जुनसंजातं क्षिप्रमन्तरधीयत ॥५३॥**

हे जनमेजय ! उस समय कर्ण को मित्र के रूप में पाकर अर्जुन से प्राप्त होनेवाला दुर्योधन का भय भी शीघ्र दूर हो गया ।

**इति महाभारते आदिपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥**

# अष्टादशोऽध्यायः

**द्रोण का शिष्यों द्वारा द्रुपद पर आक्रमण करवाना, अर्जुन का उसे बन्दी बनाकर लाना और द्रोण का उसे आधा राज्य देकर मुक्त कर देना**

वैशम्पायन उवाच

**पाण्डवान्धार्तराष्ट्रांश्च कृतास्त्रान्प्रसमीक्ष्य सः ।**
**गुर्वर्थं दक्षिणाकाले प्राप्तेऽमन्यत वै गुरुः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! पाण्डवों तथा धृतराष्ट्र के पुत्रों को अस्त्र-विद्या में निपुण देख द्रोणाचार्य ने गुरु-दक्षिणा लेने का समय आया जान मन-ही-मन कुछ निश्चय किया ।

**ततः शिष्यान् समानीय आचार्योऽर्थमचोदयत् ।**
**द्रोणः सर्वानशेषेण दक्षिणार्थं महीपते ॥२॥**

जनमेजय ! तब आचार्य द्रोण ने अपने शिष्यों को बुलाकर उन सबसे गुरु-दक्षिणा के लिए इस प्रकार कहा—

**पाञ्चालराजं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि ।**
**पर्यानयत भद्रं वः सा स्यात् परमदक्षिणा ॥३॥**

"शिष्यो ! पाञ्चालराज द्रुपद को युद्ध में कैद करके मेरे पास ले आओ । तुम्हारा कल्याण हो । यही मेरे लिए सर्वोत्तम गुरुदक्षिणा होगी ।"

**तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे रथैस्तूर्णं प्रहारिणः ।**
**आचार्यधनदानार्थं द्रोणेन सहिता ययुः ॥४॥**

तब 'बहुत अच्छा' कहकर, शीघ्रतापूर्वक प्रहार करनेवाले वे सब राजकुमार [युद्ध के लिए उद्यत हो] रथों में बैठकर गुरुदक्षिणा चुकाने के लिए आचार्य द्रोण के साथ ही वहाँ से प्रस्थित हुए ।

**ततोऽभिजग्मुः पाञ्चालान् निघ्नन्तस्ते नरर्षभाः ।**
**ममृदुस्तस्य नगरं द्रुपदस्य महौजसः ॥५॥**

फिर वे महापराक्रमी नरश्रेष्ठ राजकुमार पाञ्चाल देश में जा पहुँचे और वहाँ के निवासियों को मारते-पीटते हुए महाबली राजा द्रुपद की राजधानी को भी रौंदने लगे ।

**तस्मिन्काले तु पाञ्चालः श्रुत्वा दृष्ट्वा महद् बलम् ।**
**भ्रातृभिः सहितो राजंस्त्वरया निर्ययौ गृहात् ॥६॥**

हे जनमेजय ! उस समय पाञ्चालराज द्रुपद कौरवों का आक्रमण सुनकर और उनकी विशाल सेना को अपनी आँखों से देखकर बड़ी उतावली के साथ भाइयों के सहित राजभवन से बाहर निकला ।

**ततो रथेन शुभ्रेण समासाद्य तु कौरवान् ।**
**यज्ञसेनः शरान् घोरान् ववर्ष युधि दुर्जयः ॥७॥**

महाराज यज्ञसेन [द्रुपद] को युद्ध में जीतना बहुत कठिन था । वे एक देदीप्यमान रथ पर आरुढ़ हो कौरवों के सामने जा पहुँचे और भीषण बाण-वृष्टि करने लगे ।

**पूर्वमेव तु सम्मन्त्र्य पार्थो द्रोणमथाब्रवीत् ।**
**दर्पोद्रेकात् कुमाराणामाचार्यं द्विजसत्तमम् ॥८॥**

उधर कौरवों तथा अन्य राजकुमारों को अपने पराक्रम का बड़ा अभिमान था, अतः अर्जुन ने पहले ही विचार-विमर्श करके विप्रवर द्रोणाचार्य से कहा—

**एषां पराक्रमस्यान्ते वयं कुर्याम साहसम् ।**
**एतैरशक्यः पाञ्चालो गृहीतुं रणमूर्धनि ॥९॥**

"गुरुदेव ! इनके पराक्रम दिखाने के पश्चात् हम लोग युद्ध करेंगे । हमारा विश्वास है ये लोग युद्ध में पाञ्चालराज को बन्दी नहीं बना सकते ।"

**एवमुक्त्वा तु कौन्तेयो भ्रातृभिः सहितोऽनघः ।**
**अर्धक्रोशे तु नगरादतिष्ठद् बहिरेव सः ॥१०॥**

ऐसा कहकर निष्पाप कुन्तीनन्दन अर्जुन अपने भाइयों के साथ नगर से बाहर ही आधे कोस की दूरी पर ठहर गये ।

**द्रुपदः कौरवान् दृष्ट्वा प्राधावत समन्ततः ।**
**शरजालेन महता मोहयन् कौरवीं चमूम् ॥११॥**
**तमुद्यतं रथेनैकमाशुकारिणमाहवे ।**
**अनेकमिव संत्रासान्मेनिरे तत्र कौरवाः ॥१२॥**

उधर राजा द्रुपद ने कौरवों को देखकर उनपर सब ओर से आक्रमण किया तथा बाणों का बड़ा भारी जाल-सा बिछाकर कौरव-सेना को मूर्च्छित कर दिया । युद्ध में फुर्ती दिखानेवाले राजा द्रुपद रथ पर बैठकर यद्यपि अकेले ही बाणवर्षा कर रहे थे, तो भी अत्यन्त भय के कारण कौरव उन्हें अनेक-सा मानने लगे ।

**श्रुत्वा सुतुमुलं युद्धं कौरवा नेव भारत ।**
**द्रवन्ति स्म नदन्ति स्म क्रोशन्तः पाण्डवान् प्रति ॥१३**
**पाण्डवास्तु स्वनं श्रुत्वा आर्तानां लोमहर्षणम् ।**
**अभिवाद्य ततो द्रोणं रथानारुरुहुस्तदा ॥१४॥**

हे जनमेजय ! इधर गुप्तचरों के मुख से यह समाचार सुनकर कि वहाँ तुमुल युद्ध हो रहा है और कौरव वहाँ नहीं के बराबर हो गये हैं तथा कौरव सैनिक चीखते-चिल्लाते और कराहते हुए हम पाण्डवों की ओर भागते आ रहे हैं, पाण्डव लोग उन पीड़ित सैनिकों का रोमाञ्चकारी आर्तनाद कान में पड़ते ही आचार्य द्रोण को प्रणाम करके रथों पर जा बैठे और शीघ्र वहाँ से चल दिये ।

**भीमसेनो महाबाहुर्दण्डपाणिरिवान्तकः ।**
**प्रविवेश महासेनां मकरः सागरं यथा ॥१५॥**

[वहाँ पहुँचकर] महाबाहु भीमसेन दण्डपाणि यमराज की भाँति पाञ्चालों की उस विशाल सेना में घुस गये, ठीक उसी प्रकार, जैसे समुद्र में मगर प्रवेश करता है ।

**स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चातुलः ।**
**अहनत् कुञ्जरानीकं गदया कालरूपधृत् ॥१६॥**

कुन्तीकुमार भीम युद्ध में कुशल तो थे ही, बाहु-बल में भी उनकी समानता करनेवाला कोई नहीं था । उन्होंने कालरूप धारण कर गदा की मार से गजसेना का संहार आरम्भ किया ।

**गजानश्वान् रथाँश्चैव पातयामास पाण्डवः ।**
**पदातींश्च रथाँश्चैव न्यवधीदर्जुनाग्रजः ॥१७॥**

अर्जुन के बड़े भाई पाण्डुनन्दन भीम ने हाथियों, घोड़ों एवं रथों को धराशायी कर दिया, पैदलों तथा रथियों का संहार कर डाला ।

**गोपाल इव दण्डेन यथा पशुगणान् वने ।**
**चालयन् रथनागाँश्च संचचाल वृकोदरः ॥१८॥**

जैसे ग्वाला वन में दण्ड से पशुओं को हाँकता है, उसी प्रकार भीमसेन रथियों और हाथियों को खदेड़ते हुए उनका पीछा करने लगे ।

**भारद्वाजप्रियं कर्तुमुद्यतः फाल्गुनस्तदा ।**
**पार्षतं शरजालेन क्षिपन्नागात् स पाण्डवः ॥१९॥**
**हयौघाँश्च रथौघाँश्च गजौघाँश्च समन्ततः ।**
**पातयन् समरे राजन् युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥२०॥**

राजन् ! उसी समय द्रोणाचार्य का प्रिय करने के लिए उद्यत हुए पाण्डुनन्दन अर्जुन बाणसमूहों की वर्षा करते हुए द्रुपद पर चढ़ आये । वे रणभूमि में घोड़ों, रथों और हाथियों के झुण्डों का सब ओर से संहार करते हुए प्रलयकालीन अग्नि के समान प्रकाशित हो रहे थे ।

**तद् युद्धमभवद् घोरं सुमहाद्भुतदर्शनम् ।**
**सिंहनादश्च संजज्ञे साधुशब्देन मिश्रितः ॥२१॥**

वह युद्ध अत्यन्त भयानक और देखने में बड़ा ही अद्भुत था । उस समय पाण्डव-दल में साधुवाद के साथ-साथ सिंहनाद हो रहा था ।

**ततो हलहलाशब्द आसीत् पाञ्चालके बले ।**
**जिघृक्षति महासिंहो गजानामिव यूथपम् ॥२२॥**

जैसे महासिंह हाथियों के यूथपति को पकड़ने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार अर्जुन द्रुपद को पकड़ना

ही चाहते थे कि पाञ्चालों की सेना में हाहाकार मच गया।

**दृष्ट्वा पार्थं तदाऽऽयान्तं सत्यजित् सत्यविक्रमः।**
**पाञ्चालं वै परिप्रेप्सुर्धनञ्जयमुपाद्रवत् ॥२३॥**
**ततस्त्वर्जुनपाञ्चालौ युद्धाय समुपागतौ।**
**व्यक्षोभयेतां तौ सैन्यमिन्द्रवैरोचनाविव ॥२४॥**

जब [द्रुपद के भाई] सत्यपराक्रमी सत्यजित् ने देखा कि कुन्तीपुत्र धनंजय पाञ्चाल नरेश को पकड़ने के लिए आगे बढ़े आ रहे हैं, तब वे उनकी रक्षा के लिए अर्जुन पर टूट पड़े। फिर तो इन्द्र और बलि की भाँति अर्जुन और पाञ्चाल सत्यजित् ने युद्ध के लिए आमने-सामने आकर सारी सेनाओं को क्षोभ में डाल दिया।

**ततः सत्यजितं पार्थो दशभिर्मर्मभेदिभिः।**
**विव्याध बलवद् गाढं तदद्भुतमिवाभवत् ॥२५॥**

तब अर्जुन ने दस मर्मभेदी बाणों द्वारा सत्यजित् पर बलपूर्वक गहरा आघात करके उन्हें घायल कर दिया। यह अद्भुत-सी बात हुई।

**ततस्तस्य विनाशार्थं सत्वरं व्यसृजच्छरान्।**
**हयान् ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ तौ पार्ष्णिसारथी।**
**स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ॥२६॥**
**हयेषु विनियुक्तेषु विमुखोऽभवदाहवे।**
**स सत्यजितमालोक्य तथा विमुखमाहवे ॥२७॥**
**वेगेन महता राजन्नभ्यवर्षत पाण्डवम्।**
**तदा चक्रे महद् युद्धमर्जुनो जयतां वरः ॥२८॥**

फिर उनके विनाश के लिए उन्होंने शीघ्र ही बाणों की झड़ी लगा दी। सत्यजित् के घोड़े, ध्वजा, धनुष, मुट्ठी तथा पार्श्वरक्षक एवं सारथि दोनों को अर्जुन ने क्षतविक्षत कर दिया। इस प्रकार बार-बार धनुष के छिन्न-भिन्न होने और घोड़ों के मारे जाने पर सत्यजित् युद्धभूमि से भाग गये। राजन्! उन्हें इस प्रकार युद्ध से विमुख हुआ देख पाञ्चाल-नरेश द्रुपद ने पाण्डुनन्दन अर्जुन पर बड़े वेग से बाण-वृष्टि आरम्भ की। तब विजयी वीरों में श्रेष्ठ अर्जुन ने उनसे बड़ा भारी युद्ध आरम्भ किया।

**तस्य पार्थो धनुश्छित्वा ध्वजं चोर्व्यामपातयत्।**
**पञ्चभिस्तस्य विव्याध हयान् सूतं च सायकैः ॥२९॥**

उन्होंने पाञ्चालराज के धनुष को काट उनकी ध्वजा को भी काटकर धरती पर गिरा दिया। फिर पाँच बाणों से उनके घोड़ों और सारथि को भी घायल कर दिया।

**तत उत्सृज्य तच्चापमाददानं शरावरम्।**
**खड्गमुद्धृत्य कौन्तेयः सिंहनादमथाकरोत् ॥३०॥**

तत्पश्चात् उस कटे हुए धनुष को त्यागकर जब राजा द्रुपद दूसरा धनुष और तूणीर लेने लगे, उस समय अर्जुन ने म्यान से तलवार निकालकर सिंह के समान गर्जना करते हुए—

**पाञ्चालस्य रथस्येषामाप्लुत्य सहसापतत्।**
**पाञ्चालरथमास्थाय अवित्रस्तो धनंजयः ॥३१॥**
**विक्षोभ्याम्भोनिधिं पार्थस्तं नागमिव सोऽग्रहीत्।**
**ततस्तु सर्वपाञ्चाला विद्रवन्ति दिशो दश ॥३२॥**

वे सहसा पाञ्चाल-नरेश के रथ के जुए पर ही कूद पड़े। इस प्रकार द्रुपद के रथ पर चढ़कर निर्भीक अर्जुन ने जैसे गरुड़ समुद्र को क्षुब्ध करके सर्प को पकड़ लेता है, उसी प्रकार उन्हें अपने काबू में कर लिया। तब समस्त पाञ्चाल सैनिक [भयभीत हो] दशों दिशाओं में भागने लगे।

**दर्शयन् सर्वसैन्यानां स बाह्वोर्बलमात्मनः।**
**सिंहनादस्वनं कृत्वा निर्जगाम धनञ्जयः ॥३३॥**

समस्त सैनिकों को अपना बाहु-बल दिखाते हुए अर्जुन सिंहनाद करके वहाँ से लौटे।

**ते यज्ञसेनं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि।**
**उपाजह्रुः सहामात्यं द्रोणाय भरतर्षभ ॥३४॥**

भरतश्रेष्ठ जनमेजय! उन पाण्डवों ने यज्ञसेन द्रुपद को मन्त्रियों सहित युद्धभूमि में बन्दी बनाकर द्रोणाचार्य को उपहार के रूप में दे दिया।

**भग्नदर्पं हृतधनं तं तथा वशमागतम्।**
**स वैरं मनसा ध्यात्वा द्रोणो द्रुपदमब्रवीत् ॥३५॥**

उनका अभिमान चूर्ण हो गया था, धन छीन लिया गया था और वे पूर्णरूप से वश में आ चुके थे, उस समय द्रोणाचार्य ने मन-ही-मन पिछले वैर का स्मरण करके राजा द्रुपद से कहा—

**विमृद्य तरसा राष्ट्रं पुरं ते मृदितं मया।**
**प्राप्य जीवं रिपुवशं सखिपूर्वं किमिष्यते ॥३६॥**

"राजन् ! मैंने बलपूर्वक तुम्हारे राष्ट्र को रौंद डाला। तुम्हारी राजधानी मिट्टी में मिला दी। अब तुम शत्रु के वश में पड़े हुए जीवन को लेकर यहाँ आये हो। बोलो, तुम अब भी पुरानी मित्रता चाहते हो क्या ?"

**एवमुक्त्वा प्रहस्यैनं किञ्चित् स पुनरब्रवीत्।**
**मा भैः प्राणभयाद् वीर क्षमिणो ब्राह्मणा वयम् ॥३७**

ऐसा कहकर द्रोणाचार्य कुछ हँसे। फिर उनसे इस प्रकार बोले—"वीर ! प्राणों पर संकट आया जानकर भयभीत मत होओ। हम ब्राह्मण क्षमाशील होते हैं।"

**आश्रमे क्रीडितं यत्तु त्वया बाल्ये मया सह।**
**तेन संवर्द्धितः स्नेहः प्रीतिश्च क्षत्रियर्षभ ॥३८॥**

"क्षत्रियशिरोमणे ! तुम बाल्यकाल में मेरे साथ आश्रम में जो खेले-कूदे हो, उससे तुम्हारे ऊपर मेरा प्रेम बहुत बढ़ गया है।

**प्रार्थयेयं त्वया सख्यं पुनरेव जनाधिप।**
**वरं ददामि ते राजन् राज्यस्यार्धमवाप्नुहि ॥३९॥**

"नरेश्वर ! मैं पुनः तुमसे मैत्री के लिए प्रार्थना करता हूँ। राजन् ! मैं तुम्हें वर देता हूँ, तुम इस राज्य का आधा भाग मुझसे ले लो।

**अराजा किल नो राज्ञः सखा भवितुमर्हति।**
**अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन मया तव ॥४०॥**

"यज्ञसेन ! तुमने कहा था—जो राजा नहीं है, वह राजा का मित्र नहीं हो सकता, इसीलिए मैंने तुम्हारा राज्य लेने का प्रयत्न किया है।

**राजासि दक्षिणे कूले भागीरथ्याहमुत्तरे।**
**सखायं मां विजानीहि पाञ्चाल यदि मन्यसे ॥४१॥**

"गङ्गा के दक्षिण प्रदेश के तुम राजा बनो और उत्तर के भूभाग का मैं राजा बनूं। पाञ्चाल ! अब यदि उचित समझो, तो मुझे अपना मित्र मान लो।"

द्रुपद उवाच

**अनाश्चर्यमिदं ब्रह्मन् विक्रान्तेषु महात्मसु।**
**प्रीये त्वयाहं त्वत्तश्च प्रीतिमिच्छामि शाश्वतीम् ॥४२**

**द्रुपद बोला**—हे ब्रह्मन् ! आप जैसे पराक्रमी महात्माओं में ऐसी उदारता का होना आश्चर्य की बात नहीं है। मैं आपसे अति प्रसन्न हूँ तथा आपके साथ सदा बनी रहनेवाली मैत्री एवं प्रेम चाहता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तः स तं द्रोणो मोक्षयामास भारत।**
**सत्कृत्य चैनं प्रीतात्मा राज्यार्धं प्रत्यपादयत् ॥४३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे भारत ! द्रुपदराज के ऐसा कहने पर द्रोणाचार्य ने उन्हें बन्धन-मुक्त कर दिया और प्रसन्नचित्त हो उनका आदर-सत्कार करके उन्हें आधा राज्य दे दिया।

**इति महाभारते आदिपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥**

# एकोनविंशोऽध्यायः

## युधिष्ठिर का युवराजपद पर अभिषेक, पाण्डवों के शौर्य और कीर्ति से धृतराष्ट्र की चिन्ता

वैशम्पायन उवाच

**ततः संवत्सरस्यान्ते यौवराज्याय पार्थिव।**
**स्थापितो धृतराष्ट्रेण पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ॥१॥**
**धृतिस्थैर्यसहिष्णुत्वादानृशंस्यात् तथार्जवात्।**
**भृत्यानामनुकम्पार्थं तथैव स्थिरसौहृदात् ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन्, तत्पश्चात् एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर धृतराष्ट्र ने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर को धृति, स्थिरता, सहिष्णुता, दयालुता, सरलता और अविचल सौहार्द आदि गुणों के कारण पालन करने योग्य प्रजा पर अनुग्रह करने के लिए युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया।

**ततोऽदीर्घेण कालेन कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।**
**पितुरन्तर्दधे कीर्तिं शीलवृत्तसमाधिभिः ॥३॥**

तब थोड़े ही दिनों में कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने अपने शील=उत्तम स्वभाव, वृत्त=सदाचार एवं सद्व्यवहार तथा समाधि [मनोयोगपूर्वक प्रजा-पालन की प्रवृत्ति] के द्वारा अपने पिता महाराज पाण्डु की कीर्ति को भी ढक दिया।

**असियुद्धे गदायुद्धे रथयुद्धे च पाण्डवः।**
**संकर्षणादशिक्षद् वै शश्वच्छिक्षां वृकोदरः ॥४॥**

पाण्डुनन्दन भीमसेन बलरामजी से नित्य-प्रति खड्गयुद्ध, गदायुद्ध और रथयुद्ध की शिक्षा लेने लगे।

**समाप्तशिक्षो भीमस्तु द्युमत्सेनसमो बले।**
**पराक्रमेण सम्पन्नो भ्रातॄणामचरद् वशे ॥५॥**

शिक्षा समाप्त होने पर भीमसेन बल में राजा द्युमत्सेन के समान हो गये। इस प्रकार पराक्रम से सम्पन्न हो वे अपने भाइयों के अनुकूल रहने लगे।

**प्रगाढदृढमुष्टित्वे लाघवे वेधने तथा।**
**क्षुरनाराचभल्लानां प्रयोक्ता फाल्गुनोऽभवत् ॥६॥**

अर्जुन अत्यन्त दृढ़तापूर्वक मुट्ठी से धनुष को पकड़ने में, हाथों की फुर्ती में और लक्ष्य बींधने में अतिचतुर निकले। वे क्षुर, नाराच और भल्ल आदि अस्त्रों का सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकते थे।

**लाघवे सौष्ठवे चैव नान्यः कश्चन विद्यते।**
**बीभत्सुसदृशो लोके इति द्रोणो व्यवस्थितः ॥७॥**

इसलिए द्रोणाचार्य का यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि फुर्ती और सफाई में अर्जुन के समान दूसरा कोई योद्धा इस संसार में नहीं है।

**ततोऽब्रवीत् गुडाकेशं द्रोणः कौरवसंसदि।**
**आचार्यदक्षिणां देहि ज्ञातिग्रामस्य पश्यतः ॥८॥**

तब एक दिन द्रोणाचार्य ने कौरवों की भरी सभा में निद्रा-विजेता अर्जुन से कहा—"तुम भाई-बन्धुओं के सामने ही मुझे एक गुरु-दक्षिणा दो।"

**दास्यामीति प्रतिज्ञाते फाल्गुनेनाब्रवीत् गुरुः।**
**युद्धेऽहं प्रतियोद्धव्यो युध्यमानस्त्वयानघ ॥९॥**

"अवश्य दूंगा।" अर्जुन द्वारा ऐसी प्रतिज्ञा करने पर गुरु द्रोण बोले—"निष्पाप अर्जुन! यदि युद्ध-भूमि में मैं भी तुम्हारे विरुद्ध लड़ने को आऊँ तो तुम मेरा भी सामना करना।"

**तथेति च प्रतिज्ञाय द्रोणाय कुरुपुङ्गवः।**
**उपसंगृह्य चरणौ स प्रायादुत्तरां दिशम् ॥१०॥**

यह सुनकर कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ने 'बहुत अच्छा' कहते हुए उनकी इस आज्ञा का पालन करने की प्रतिज्ञा की तथा गुरु के दोनों चरण पकड़कर उन्होंने सर्वोत्तम उपदेश प्राप्त कर लिया।

**स्वभावादगमच्छब्दो महीं सागरमेखलाम्।**
**अर्जुनस्य समो लोके नास्ति कश्चिद् धनुर्धरः ॥११॥**

कुछ ही समय में समुद्र-पर्यन्त पृथिवी पर सब ओर अपने-आप ही यह बात फैल गई कि संसार में अर्जुन के समान दूसरा कोई योद्धा नहीं है।

**नीतिमान् सकलां नीतिं विबुधाधिपतेस्तदा।**
**अवाप्य सहदेवोऽपि भ्रातॄणां ववृते वशे ॥१२॥**
**द्रोणेनैव विनीतश्च भ्रातॄणां नकुलः प्रियः।**
**चित्रयोधी समाख्यातो बभूवातिरथोदितः ॥१३॥**

सहदेव भी उस समय द्रोण के रूप में अवतीर्ण देवताओं के आचार्य बृहस्पति से सम्पूर्ण नीतिशास्त्र की शिक्षा पाकर नीतिमान् हो अपने भाइयों के अनुकूल होकर रहते थे। नकुल ने भी द्रोणाचार्य से ही अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा पायी थी। वे अपने भाइयों को अति प्रिय थे और विचित्र प्रकार से युद्ध करने में उनकी बड़ी ख्याति थी। वे अतिरथी वीर कहे जाते थे।

**न शशाक वशे कर्तुं यं पाण्डुरपि वीर्यवान्।**
**सोऽर्जुनेन वशं नीतो राजाऽऽसीद् यवनाधिपः ॥१४॥**

पराक्रमी राजा पाण्डु भी जिसे वश में नहीं ला सके थे, उस यवनदेश [यूनान] के राजा को भी जीतकर अर्जुन ने अपने वश में कर लिया।

**भीमसेनसहायश्च रथानामयुतं च सः।**
**अर्जुनः समरे प्राच्यान् सर्वानेकरथोऽजयत् ॥१५॥**

इतना ही नहीं, अर्जुन ने केवल भीमसेन की सहायता से एकमात्र रथ पर आरूढ हो युद्ध में पूर्व दिशा के सम्पूर्ण योद्धाओं तथा दस सहस्र रथियों को जीत लिया।

**तथैवैकरथो गत्वा दक्षिणमजयद् दिशम्।**
**धनौघं प्रापयामास कुरुराष्ट्रं धनञ्जयः ॥१६॥**

इसी प्रकार केवल एक रथ से यात्रा करके धनंजय ने दक्षिण दिशा पर भी विजय पायी और अपने 'धनंजय' नाम को सार्थक करते हुए कुरुदेश की राजधानी में धन की राशि पहुँचायी।

**ततो बलमतिख्यातं विज्ञाय दृढधन्विनाम्।**
**दूषितः सहसा भावो धृतराष्ट्रस्य पाण्डुषु।**
**स चिन्तापरमो राजा न निद्रामलभन्निशि ॥१७॥**

तब दृढ़तापूर्वक धनुष धारण करनेवाले पाण्डवों के अत्यन्त विख्यात बल-पराक्रम की बात जानकर उनके प्रति राजा धृतराष्ट्र का भाव मानो सहसा ही दूषित हो गया। अत्यन्त चिन्ता में निमग्न हो जाने के कारण उन्हें रात में नींद भी नहीं आती थी।

**इति महाभारते आदिपर्वणि एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥**

# विंशोऽध्यायः

## कणिक-नीति—कणिक का धृतराष्ट्र को कूटनीति का उपदेश

वैशम्पायन उवाच

**श्रुत्वा पाण्डुसुतान्वीरान्बलोद्रिक्तान्महौजसः।**
**धृतराष्ट्रो महीपालश्चिन्तामगमदातुरः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! पाण्डु के वीर पुत्रों को महान् तेजस्वी और बल में बढ़े-चढ़े सुनकर महाराज धृतराष्ट्र व्याकुल हो बड़ी चिन्ता में पड़ गये।

**तत आहूय मन्त्रज्ञं राजशास्त्रार्थवित्तमम्।**
**कणिकं मन्त्रिणां श्रेष्ठं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद् वचः ॥२॥**

तब राजनीति और अर्थ-शास्त्र के पण्डित एवं उत्तम मन्त्र के ज्ञाता मन्त्रिप्रवर कणिक को बुलाकर धृतराष्ट्र ने इस प्रकार कहा—

धृतराष्ट्र उवाच

**उत्सिक्ताः पाण्डवा नित्यं तेभ्योऽसूये द्विजोत्तम।**
**तत्र मे निश्चितं यत्तु सन्धिविग्रहकारणम् ॥**
**कणिक त्वं ममाचक्ष्व करिष्ये वचनं तव ॥३॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—द्विजश्रेष्ठ! पाण्डवों की दिनों-दिन उन्नति और सर्वत्र ख्याति हो रही है, अतः मैं उनसे डाह रखने लगा हूँ। कणिक! तुम भली-भाँति निश्चय करके बतलाओ कि मुझे उनके साथ सन्धि करनी चाहिए या विग्रह? मैं तुम्हारी बात मानूंगा।

कणिक उवाच

**नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः।**
**अच्छिद्रश्छिद्रदर्शी स्यात् परेषां विवरानुगः ॥४॥**

**कणिक बोले**—राजा को सर्वदा दण्ड देने के लिए उद्यत रहना चाहिए तथा सदा ही पुरुषार्थ प्रकट करते रहना चाहिए। राजा अपना छिद्र=दुर्बलता प्रकट न होने दे, परन्तु दूसरों के छिद्र या दुर्बलता पर सदा दृष्टि रखे। और यदि शत्रुओं की निर्बलता का पता लग जाए, तो उन पर आक्रमण कर दे।

**नित्यमुद्यतदण्डाद्धि भृशमुद्विजते जनः।**
**तस्मात् सर्वाणि कार्याणि दण्डेनैव विधारयेत् ॥५॥**

जो सदा दण्ड देने के लिए उद्यत रहता है, उससे प्रजाजन बहुत डरते हैं, अतः सब कार्य दण्ड के द्वारा ही सिद्ध करे।

**नास्यच्छिद्रं परः पश्येच्छिद्रेण परमन्वियात्।**
**गूहेत् कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद् विवरमात्मनः ॥६॥**
**नासम्यक्कृतकारी स्यादुपक्रम्य कदाचन।**
**कण्टको ह्यपि दुश्छिन्न आस्रावं जनयेच्चिरम् ॥७॥**

राजा को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि शत्रु उसकी दुर्बलता को न जान सके और यदि शत्रु की दुर्बलता प्रकट हो जाए तो उसपर आक्रमण कर दे। जैसे कछुआ अपने अङ्गों की रक्षा करता है, वैसे ही राजा अपने सब अङ्गों—राजा, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, बल और सुहृत्—की रक्षा करे तथा अपनी दुर्बलता को छिपाये रखे। यदि कोई कार्य आरम्भ कर दे तो उसे पूर्ण किये बिना कभी न छोड़े, क्योंकि शरीर में गड़ा हुआ काँटा यदि आधा टूटकर भीतर रह जाए, तो वह बहुत दिनों तक मवाद देता रहता है।

**वधमेव प्रशंसन्ति शत्रूणामपकारिणाम्।**
**सुविदीर्णं सुविक्रान्तं सुयुद्धं सुपलायितम् ॥८॥**
**आपद्यापदि काले च कुर्वीत न विचारयेत्।**
**नाविज्ञेयो रिपुस्तात दुर्बलोऽपि कथञ्चन ॥९॥**

'अपना अनिष्ट करनेवाले शत्रुओं का वध कर दिया जाए'—इसी की नीतिज्ञ पुरुष प्रशंसा करते हैं। अत्यन्त पराक्रमी पुरुष को भी आपत्ति में पड़ा देख उसे सुगमतापूर्वक नष्ट कर दे। इसी प्रकार जो

अच्छी प्रकार युद्ध करनेवाला शत्रु है, उसे भी आपत्ति काल में ही अनायास मार भगाये। आपत्ति के समय शत्रु का संहार अवश्य ही करे। उस समय उसके सम्बन्ध या सौहार्द आदि का विचार कदापि न करे। तात ! शत्रु दुर्बल हो, तो भी किसी प्रकार उसकी उपेक्षा न करे।

**अल्पोऽप्यग्निर्वनं कृत्स्नं दहत्याश्रयसंश्रयात् ।**
**अन्धः स्यादन्धवेलायां बाधिर्यमपि चाश्रयेत् ॥१०॥**

क्योंकि जैसे थोड़ी-सी भी आग ईंधन का सहारा पाकर समस्त वन को जला डालती है, वैसे ही छोटा-सा शत्रु भी दुर्गादि प्रबल आश्रय का सहारा लेकर विनाशकारी बन जाता है। अन्धा बनने का अवसर आने पर अन्धा बन जाए—अर्थात् अपने असामर्थ्य के समय शत्रु के दोषों को न देखे। उस समय सब ओर से धिक्कार और निन्दा मिलने पर भी उसे अनसुनी कर दे अर्थात् उसकी ओर से कान बन्द करके बहरा बन जाए।

**कुर्यात् तृणमयं चापं शयीत मृगशायिकाम् ।**
**सामादिभिरुपायैस्तु हन्याच्छत्रुं वशे स्थितम् ॥११॥**

ऐसे समय में अपने धनुष को तिनके के समान बना दे अर्थात् शत्रु की दृष्टि में सर्वथा दीन-हीन एवं असमर्थ बन जाए, परन्तु व्याध की भाँति सोये अर्थात् जैसे व्याध झूठे ही नींद का बहाना करके सो जाता है और जब मृग आश्वस्त होकर उसके आस-पास चरने लगते हैं, तब उठकर उन्हें बाण से बींध देता है। इसी प्रकार शत्रु को मारने का अवसर देखते हुए ही अपने स्वरूप और मनोभाव को छिपाकर असमर्थों का-सा व्यवहार करे। इस प्रकार कपटपूर्ण व्यवहार से वश में आये हुए शत्रु को साम आदि उपायों से विश्वास उत्पन्न करके मार डाले।

**दया न तस्मिन् कर्तव्या शरणागत इत्युत ।**
**निरुद्विग्नो हि भवति नहताज्जायते भयम् ॥१२॥**

'यह मेरी शरण में आया है' ऐसा सोचकर उसके प्रति दया नहीं दिखानी चाहिए। शत्रु को मार देने से ही राजा निर्भय हो सकता है। यदि शत्रु मारा न गया तो उससे सदा ही भय बना रहता है।

**हन्यादमित्रं दानेन तथा पूर्वापकारिणम् ।**
**हन्यात् त्रीन् पञ्च सप्तेति परपक्षस्य सर्वशः ॥१३॥**

जो सहज शत्रु है, उसको मुँहमाँगी वस्तु देकर—दान द्वारा विश्वास उत्पन्न करके मार डाले। इसी प्रकार जो पहले का अपकारी शत्रु हो तथा पीछे सेवक बन गया हो, उसे भी जीवित न छोड़े। शत्रु के त्रिवर्ग[1], पञ्चवर्ग[2] और सप्तवर्ग[3] का सर्वथा नाश कर डाले।

**मूलमेवादितश्छिन्द्यात् परपक्षस्य नित्यशः ।**
**ततः सहायाँस्तत्पक्षान् सर्वांश्च तदनन्तरम् ॥१४॥**

पहले तो सदा शत्रुपक्ष के मूल का ही उच्छेद कर डाले। तत्पश्चात् उसके सहायकों और शत्रुपक्ष से सम्बन्ध रखनेवाले सभी लोगों का संहार कर दे।

**छिन्नमूले ह्यधिष्ठाने सर्वे तज्जीविनो हताः ।**
**कथं नु शाखास्तिष्ठेरँश्छिन्नमूले वनस्पतौ ॥१५॥**

यदि मूल आधार नष्ट हो जाए तो उसके आश्रय से जीवन धारण करनेवाले सभी शत्रु स्वतः नष्ट हो जाते हैं। यदि वृक्ष की जड़ काट दी जाए तो उसकी शाखाएँ कैसे रह सकती हैं ?

**एकाग्रः स्यादविवृतो नित्यं विवरदर्शकः ।**
**राजन् नित्यं सपत्नेषु नित्योद्विग्नः समाचरेत् ॥१६॥**

राजा सदा शत्रु की गतिविधि को जानने के लिए एकाग्र रहे। अपने राज्य के सभी अङ्गों को गुप्त रखे।

---

१. यहाँ त्रिवर्ग का तात्पर्य है तीन प्रकार की शक्तियाँ—(१) ऐश्वर्यशक्ति (२) उत्साहशक्ति और (३) मन्त्रशक्ति। दुर्गादि पर आक्रमण करके शत्रु की ऐश्वर्यशक्ति नष्ट करनी चाहिए। विश्वसनीय व्यक्तियों द्वारा अपने उत्कर्ष का बखान कराकर शत्रु को तेजहीन करते हुए उसके उत्साह को मन्द करना उत्साहशक्ति का नाश करना है। गुप्तचरों द्वारा उसकी गुप्तमन्त्रणा को प्रकट कर देना ही मन्त्रशक्ति का नाश करना है।

२. अमात्य=मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग (किला), कोष और सेना—ये पाँच प्रकृतियाँ ही पञ्चवर्ग हैं।

३. साम, दान, भेद, दण्ड, उद्बन्धन, विशेषयोग और आग लगाना—शत्रु को दबाने या वश में करने के ये सात साधन ही सप्तवर्ग हैं।

राजन् ! सदा अपने शत्रुओं की दुर्बलता पर दृष्टि रखो और उनसे सदा सावधान रखो ।

**अग्न्याधानेन यज्ञेन काषायेण जराजिनैः ।**
**लोकान्विश्वासयित्वैव ततो लुम्पेद्यथा वृकः ।।१७।।**

अग्निहोत्र और यज्ञ करके, गेरुए वस्त्र, जटा और मृगचर्म धारण करके पहले लोगों में विश्वास उत्पन्न करे, फिर अवसर देखकर भेड़िये की भाँति शत्रु पर टूट पड़े और उसे नष्ट कर दे।

**वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत् कालविपर्ययः ।**
**ततः प्रत्यागते काले भिन्द्याद् घटमिवाश्मनि ।।१८।।**

जबतक समय बदलकर अपने अनुकूल न हो जाए, तबतक शत्रु को कन्धे पर बिठाकर ढोना पड़े तो ढोये । परन्तु जब अपने अनुकूल समय आ जाए तब उसे उसी प्रकार नष्ट कर दे जैसे घड़े को पत्थर पर पटककर फोड़ डालते हैं।

**अमित्रो न विमोक्तव्यः कृपणं बह्वपि ब्रुवन् ।**
**कृपा न तस्मिन् कर्तव्या हन्यादेवापकारिणम् ।।१९।।**

शत्रु बहुत दीनतापूर्वक वचन बोले, तो भी उसे जीवित नहीं छोड़ना चाहिए। उसपर दया नहीं करनी चाहिए। अपकारी शत्रु को मार ही डालना चाहिए।

**हन्यादमित्रं सान्त्वेन तथा दानेन वा पुनः ।**
**तथैव भेददण्डाभ्यां सर्वोपायैः प्रशान्तयेत् ।।२०।।**

साम अथवा दान तथा भेद एवं दण्ड—सभी उपायों द्वारा शत्रु को मार डाले—उसे मिटा दे ।

**भयेन भेदयेद् भीरुं शूरमञ्जलिकर्मणा ।**
**लुब्धमर्थप्रदानेन समं न्यूनं तथौजसा ।।२१।।**

कायर को भय दिखाकर फोड़ ले । जो शूरवीर हो, उसे हाथ जोड़कर वश में करे। लोभी को धन देकर तथा बराबर और निर्बल को पराक्रम से वश में करे ।

**पुत्रः सखा वा भ्राता वा पिता वा यदि वा गुरुः ।**
**रिपुस्थानेषु वर्तन्तो हन्तव्या भूतिमिच्छता ।।२२।।**

पुत्र, मित्र, भाई, पिता अथवा गुरु कोई भी क्यों न हो, जो शत्रु के स्थान पर आए—शत्रुवत् व्यवहार करने लगे—तो उसे ऐश्वर्य चाहनेवाला राजा अवश्य मार डाले ।

**शपथेनाप्यरिं हन्यादर्थदानेन वा पुनः ।**
**विषेण मायया वापि नोपेक्षेत कथञ्चन ।।२३।।**

सौगन्ध खाकर, धन अथवा विष देकर या धोखे से भी शत्रु को मार डाले । किसी प्रकार भी उसकी उपेक्षा न करे ।

**गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।**
**उत्पथप्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनम् ।।२४।।**

यदि गुरु भी अभिमान के वशीभूत होकर कर्तव्य और अकर्तव्य को न जानता हो तथा कुमार्ग पर चलता हो तो उसे भी दण्ड देना उचित माना जाता है।

**क्रुद्धोऽप्यक्रुद्धरूपः स्यात् स्मितपूर्वाभिभाषिता ।**
**न चाप्यन्यमपध्वंसेत् कदाचित् कोपसंयुतः ।।२५।।**
**प्रहरिष्यन् प्रियं ब्रूयात् प्रहरन्नपि भारत ।**
**प्रहृत्य च कृपायीत शोचेत च रुदेत च ।।२६।।**

मन में क्रोध भरा हो, तो भी ऊपर से क्रोधशून्य बना रहे और मुस्कराकर बात-चीत करे। कभी क्रोध में आकर किसी दूसरे का तिरस्कार न करे । भारत ! शत्रु पर प्रहार करने से पूर्व और प्रहार करते समय भी उससे मीठे वचन ही बोले। शत्रु को मारकर भी उसके प्रति दया दिखाये । उसके लिए शोक करे रोये तथा आँसू बहाये ।

**आश्वासयेच्चापि परं सान्त्वधर्मार्थवृत्तिभिः ।**
**अथास्य प्रहरेत् काले यदा विचलिते पथि ।।२७।।**

शत्रु को समझा-बुझाकर, धर्म बताकर, धन देकर और सद्व्यवहार करके आश्वासन दे—अपने प्रति उसके मन में विश्वास उत्पन्न करे, फिर समय आने पर ज्यों ही वह मार्ग से विचलित हो, त्यों ही उसपर प्रहार करे ।

**अपि घोरापराधस्य धर्ममाश्रित्य तिष्ठतः ।**
**स हि प्रच्छाद्यते दोषः शैलो मेघैरिवासितैः ।।२८।।**

धर्म के आचरण का ढोंग करने से घोर अपराध करनेवाले का दोष भी उसी प्रकार ढक जाता है, जैसे काले मेघों की घटा से पर्वत ढक जाता है ।

**यः स्यादनुप्राप्तवधस्तस्यागारं प्रदीपयेत् ।**
**अधनान् नास्तिकांश्चौरान् विषये स्वे न वासयेत् ।।२९**

जिसे शीघ्र ही मार डालने की इच्छा हो, उसके

घर में आग लगा दे। धनहीनों, नास्तिकों और चोरों को अपने राज्य में न बसने दे।

**प्रत्युत्थानासनाद्येन सम्प्रदानेन केनचित्।**
**प्रतिविश्रब्धघाती स्यात् तीक्ष्णदंष्ट्रो निमग्नकः ॥३०॥**

शत्रु के आने पर उठकर उसका स्वागत करे, आसन और भोजन दे तथा कोई प्रिय वस्तु भेंट करे। ऐसे व्यवहार से जिसका अपने प्रति पूर्ण विश्वास हो गया हो, उसे भी [अपने लाभ के लिए] मारने में संकोच न करे। सर्प की भाँति तीखे दाँतों से काटे, जिससे शत्रु फिर उठकर न बैठ सके।

**अशंकितेभ्यः शङ्केत शंकितेभ्यश्च सर्वशः।**
**अशङ्क्याद् भयमुत्पन्नमपि मूलं निकृन्तति ॥३१॥**

जिनसे भय प्राप्त होने का सन्देह न हो, उनसे भी सशंक (सावधान) रहे तथा जिनसे भय की आशंका हो उनसे तो सब प्रकार से सतर्क रहे ही। जिनसे भय की शंका नहीं है, ऐसे लोगों से यदि भय उत्पन्न होता है तो वह मूलोच्छेद कर डालता है।

**न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।**
**विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥३२॥**

जो विश्वासपात्र नहीं हैं, उसपर कभी विश्वास न करे; परन्तु जो विश्वासपात्र है, उसपर भी अति विश्वास न करे, क्योंकि अतिविश्वास से उत्पन्न होने-वाला भय राजा का समूलोच्छेद कर डालता है।

**चारः सुविहितः कार्य आत्मनश्च परस्य वा।**
**पाषण्डाँस्तापसादींश्च परराष्ट्रेषु योजयेत् ॥३३॥**

अच्छी प्रकार से परीक्षा करके अपने तथा शत्रु के राज्य में गुप्तचर नियुक्त करे। शत्रु के राज्य में ऐसे गुप्तचर रखे जो पाखण्ड-वेशधारी अथवा तपस्वी आदि हों।

**उद्यानेषु विहारेषु पानागारेषु चाप्यथ।**
**चत्वरेषु च कूपेषु पर्वतेषु वनेषु च।**
**समवायेषु सर्वेषु सरित्सु च विचारयेत् ॥३४॥**

उद्यान, घूमने-फिरने के स्थान, मद्यपान के अड्डे, चौराहे, कुएं, पर्वत, वन तथा जहाँ मनुष्यों की भीड़ इकट्ठी होती हो, उन सभी स्थानों में अपने गुप्तचरों को घुमाता रहे।

**वाचा भृशं विनीतः स्याद् हृदयेन तथा क्षुरः।**
**स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात् सृष्टो रौद्राय कर्मणे ॥३५॥**

राजा वार्तालाप में अत्यन्त विनयशील हो, परन्तु हृदय को छुरे के समान तीखा बनाये रखे। अत्यन्त भयानक कर्म करने के लिए उद्यत हो तो भी मुस्करा कर ही वार्तालाप करे।

**अञ्जलिः शपथः सान्त्वं शिरसा पादवन्दनम्।**
**आशाकरणमित्येवं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥३६॥**

अवसर देखकर हाथ जोड़ना, शपथ खाना, आश्वासन देना, पैरों पर मस्तक रखकर प्रणाम करना और आशा बँधाना—ये सब ऐश्वर्य-प्राप्ति के इच्छुक राजा के कर्त्तव्य हैं।

**सुपुष्पितः स्यादफलः फलवान् स्याद् दुरारुहः।**
**आमः स्यात्पक्वसङ्काशो न च जीर्येत कर्हिचित् ॥३७॥**

नीतिज्ञ राजा ऐसे वृक्ष के समान रहे, जिसमें फूल तो खूब लगे हों परन्तु फल न हों [वह बातों से लोगों को फल की आशा दिलाये, परन्तु उसकी पूर्ति न करे], फल लगने पर भी उसपर चढ़ना अतिकठिन हो [लोगों की स्वार्थ-सिद्धि में वह विघ्न डाले] वह रहे तो कच्चा, पर दीखे पके के समान [स्वार्थ-साधकों की दुराशा को पूर्ण न होने दे]। कभी स्वयं जीर्ण न हो अर्थात् अपना धन व्यय करके शत्रुओं का पोषण करते हुए अपने-आपको निर्धन न बना दे।

**अगर्वितात्मा युक्तश्च सान्त्वयुक्तोऽनसूयिता।**
**अवेक्षितार्थः शुद्धात्मा मन्त्रयीत द्विजैः सह ॥३८॥**

राजा अपने हृदय से अहंकार को निकाल दे। चित्त को एकाग्र रखे। सबसे मधुर बोले। दूसरों के दोष प्रकाशित न करे। सब विषयों पर दृष्टि रखे और शुद्धचित्त हो द्विजों के साथ बैठकर मन्त्रणा करे।

**कर्मणा येन केनैव मृदुना दारुणेन च।**
**उद्धरेद् दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ॥३९॥**

राजा यदि संकट में हो तो कोमल या कठोर—जिस किसी भी कर्म द्वारा उस दुरवस्था से अपना उद्धार करे, समर्थ हो जाने पर पुनः धर्म का आचरण करे।

**न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।**
**संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति ॥४०॥**

कष्ट सहे बिना मनुष्य कल्याण का दर्शन नहीं करता। प्राण-संकट में पड़कर भी यदि वह जीवित रह जाता है तो अपना कल्याण (भला) देखता है।

**योऽरिणा सह संधाय शयीत कृतकृत्यवत्।**
**स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते ॥४१॥**

जैसे वृक्ष के ऊपर की शाखा पर सोया हुआ मनुष्य जब गिरता है, तब होश में आता है। उसी प्रकार जो अपने शत्रु के साथ सन्धि करके निश्चिंत हो जाता है, वह शत्रु से धोखा खाने पर सचेत होता है।

**नाच्छित्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दारुणम्।**
**नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम् ॥४२॥**

राजा मछलीमारों की भाँति दूसरों के मर्म विदीर्ण किये बिना—अत्यन्त क्रूर कर्म किये बिना—और बहुतों के प्राण लिये बिना बड़ी भारी सम्पत्ति नहीं प्राप्त कर पाता।

**कर्शितं व्याधितं क्लिन्नमपानीयमघासकम्।**
**परिविश्वस्तमन्दं च प्रहर्तव्यमरेर्बलम् ॥४३॥**

जब शत्रु की सेना दुर्बल, रोगग्रस्त, जल या कीचड़ में फँसी, भूख-प्यास से पीड़ित और सब ओर से विश्वस्त होकर निश्चेष्ट पड़ी हो, उस समय उस पर आक्रमण करना चाहिए।

**नास्य कृत्यानि बुध्येरन् मित्राणि रिपवस्तथा।**
**आरब्धान्येव पश्येरन् सुपर्यवसितान्यपि ॥४४॥**

मित्र और शत्रु—किसी को भी यह पता न चले कि राजा कब क्या कर्म करना चाहता है। कार्य के आरम्भ या समाप्त हो जाने पर ही सब लोग उसे देखें (जानें)।

**भीतवत् संविधातव्यं यावद् भयमनागतम्।**
**आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत् ॥४५॥**

जबतक अपने ऊपर भय आया न हो, तबतक डरे हुए की भाँति उसे टालने का प्रयत्न करना चाहिए, परन्तु जब भय को सामने उपस्थित देखे, तब निडर होकर शत्रु पर प्रहार करना चाहिए।

**दण्डेनोपनतं शत्रुमनुगृह्णाति यो नरः।**
**स मृत्युमुपगृह्णीयाद् गर्भमश्वतरी यथा ॥४६॥**

जो मनुष्य दण्ड के द्वारा वश में किये हुए शत्रु पर दया करता है, वह मृत्यु को ही अपनाता है, ठीक वैसे ही जैसे खच्चरी गर्भ के रूप में अपनी मृत्यु को ही उदर में धारण करती है।

**अनागतं हि बुध्येत यच्च कार्यं पुरःस्थितम्।**
**न तु बुद्धिक्षयात्किञ्चिदतिक्रामेत्प्रयोजनम् ॥४७॥**

जो कार्य भविष्य में करना हो, उसपर बुद्धिपूर्वक विचारे और सम्यक् विचारकर तदनुकूल व्यवस्था करे। इसी प्रकार जो कार्य सामने उपस्थित हो, उसे भी बुद्धि से विचारकर ही करे। बुद्धि से निश्चय किये बिना किसी भी कार्य या प्रयोजन का परित्याग न करे।

**आशां कालवतीं कुर्यात्कालं विघ्नेन योजयेत्।**
**विघ्नं निमित्ततो ब्रूयान्निमित्तं वापि हेतुतः ॥४८॥**

यदि किसी को किसी बात की आशा दे तो उसे शीघ्र पूरी न करके दीर्घकाल तक लटकाये रखे। जब उसे पूर्ण करने का समय आये, तब उसमें कोई विघ्न डाल दे और इस प्रकार समय की अवधि को बढ़ा दे। उस विघ्न के पड़ने में कोई कारण बता दे तथा उस कारण को युक्तियों से सिद्ध कर दे।

**तालवत् कुरुते मूलं बालः शत्रुरुपेक्षितः।**
**गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः क्षिप्रं संजायते महान् ॥४९॥**

छोटे शत्रु की भी उपेक्षा कर दी जाए, तो वह ताड़ के वृक्ष की भाँति जड़ जमा लेता है तथा घने वन में छोड़ी हुई अग्नि की भाँति शीघ्र ही महान् विनाशकारी बन जाता है।

**भ्रातृव्या बलिनो यस्मात् पाण्डुपुत्रा नराधिप।**
**पश्चात्तापो यथा न स्यात्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥५०॥**

राजन्! आपके भतीजे पाण्डव बहुत बलवान् हैं, अतः आप ऐसी नीति काम में लाइए, जिससे आगे चलकर आपको पछताना न पड़े।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वा सम्प्रतस्थे कणिकः स्वगृहं ततः।**
**धृतराष्ट्रोऽपि कौरव्यः शोकार्तः समपद्यत ॥५१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन्! ऐसा कहकर कणिक अपने घर को चले गये। इधर कुरुवंशी धृतराष्ट्र शोक से व्याकुल हो गये।

**इति महाभारते आदिपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥२०॥**

# एकविंशोऽध्यायः

## पाण्डवों की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखकर दुर्योधन की चिन्ता और धृतराष्ट्र से उन्हें वारणावत भेज देने का प्रस्ताव

वैशम्पायन उवाच

**गुणैः समुदितान् दृष्ट्वा पौराः पाण्डुसुतांस्तदा ।**
**कथयाञ्चक्रिरे तेषां गुणान् संसत्सु भारत ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे भारत ! उन दिनों पाण्डवों को सर्वगुण-सम्पन्न देख नगर-निवासी भरी सभाओं में उनके सद्‌गुणों की प्रशंसा करते थे।

**राज्यप्राप्तिं च सम्प्राप्तं ज्येष्ठं पाण्डुसुतं तदा ।**
**कथयन्ति स्म सम्भूय चत्वरेषु सभासु च ॥२॥**

वे जहाँ कहीं चौराहों पर और सभाओं में इकट्ठे होते, वहीं पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को राज्य-प्राप्ति के योग्य बताते थे।

**प्रज्ञाचक्षुरचक्षुष्ट्वाद् धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।**
**राज्यं न प्राप्तवान् पूर्वं स कथं नृपतिर्भवेत् ॥३॥**

वे कहते—"प्रज्ञाचक्षु महाराज धृतराष्ट्र नेत्रहीन होने के कारण जब पहले ही राज्य न पा सके तो अब वे राजा कैसे हो सकते हैं ?

**तथा शान्तनवो भीष्मः सत्यसन्धो महाव्रतः ।**
**प्रत्याख्याय पुरा राज्यं न स जातु ग्रहीष्यति ॥४॥**

"महान् व्रत का पालन करनेवाले शान्तनुनन्दन भीष्म तो सत्यप्रतिज्ञ हैं। वे पहले ही राज्य ठुकरा चुके हैं, अतः अब उसे कदापि ग्रहण नहीं करेंगे।

**ते वयं पाण्डवज्येष्ठं तरुणं वृद्धशीलिनम् ।**
**अभिषिञ्चाम साध्वद्य सत्यकारुण्यवेदिनम् ॥५॥**

"पाण्डवों के बड़े भाई युधिष्ठिर यद्यपि अभी तरुण हैं तो भी शील-स्वभाव में वृद्धों के समान हैं। वे सत्यवादी, दयालु और वेदवेत्ता हैं, अतः हम लोग उन्हीं का विधिपूर्वक राज्याभिषेक करें।

**स हि भीष्मं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च धर्मवित् ।**
**सपुत्रं विविधैर्भोगैर्योजयिष्यति पूजयन् ॥६॥**

"महाराजा युधिष्ठर बड़े धर्मज्ञ हैं। वे शान्तनुनन्दन भीष्म और पुत्रोंसहित धृतराष्ट्र का आदर करते हुए उन्हें नाना प्रकार के भोगों से सम्पन्न रखेंगे।"

**तेषां दुर्योधनः श्रुत्वा तानि वाक्यानि जल्पताम् ।**
**युधिष्ठिरानुरक्तानां पर्यतप्यत दुर्मतिः ॥७॥**

युधिष्ठिर में अनुरक्त उन लोगों की वैसी बातें सुनकर खोटी बुद्धिवाला दुर्योधन भीतर-ही-भीतर जलने लगा।

**स तप्यमानो दुष्टात्मा धृतराष्ट्रमुपागमत् ।**
**ततो विरहितं दृष्ट्वा पितरमब्रवीद् वचः ॥८॥**

ईर्ष्या की अग्नि से जलता हुआ वह दुष्टात्मा धृतराष्ट्र के पास आया और वहाँ अपने पिता को अकेला पाकर उनसे इस प्रकार बोला—

दुर्योधन उवाच

**श्रुता मे जल्पतां तात पौराणामशिवा गिरः ।**
**त्वामनादृत्य भीष्मं च पतिमिच्छन्ति पाण्डवम् ॥९॥**

**दुर्योधन बोला**—पिताजी ! मैंने परस्पर वार्तालाप करते हुए नगर-निवासियों के मुख से बड़ी अशुभ बातें सुनी हैं। वे आपका और भीष्मजी का अनादर करके पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर को राजा बनाना चाहते हैं।

**मतमेतच्च भीष्मस्य न स राज्यं बुभुक्षति ।**
**अस्माकं तु परां पीडां चिकीर्षन्ति पुरे जनाः ॥१०॥**

भीष्मजी तो इस बात को मान लेंगे, क्योंकि वे स्वयं राज्य भोगना नहीं चाहते, परन्तु नगर के लोग हमारे लिए बहुत बड़े कष्ट का आयोजन करना चाहते हैं।

**पितृतः प्राप्तवान् राज्यं पाण्डुरात्मगुणैः पुरा ।**
**त्वमन्धगुणसंयोगात् प्राप्तं राज्यं न लब्धवान् ॥११॥**

पाण्डु ने अपने सद्‌गुणों के कारण पिता से राज्य प्राप्त कर लिया, परन्तु आप अन्धे होने के कारण अधिकार-प्राप्त राज्य को भी नहीं पा सके।

**स एष पाण्डोर्दायाद्यं यदि प्राप्नोति पाण्डवः ।**
**तस्य पुत्रो ध्रुवं प्राप्तस्तस्य तस्यापि चापरः ॥१२॥**

यदि ये पाण्डुकुमार युधिष्ठिर पाण्डु के राज्य को, जिसका उत्तराधिकारी पुत्र ही होता है, प्राप्त

कर लेते हैं तो निश्चय ही उनके पश्चात् उनका पुत्र ही इस राज्य का अधिकारी होगा, फिर उसी की पुत्र-परम्परा में दूसरे-दूसरे लोग इसके अधिकारी होते जाएँगे ।

**ते वयं राजवंशेन हीनाः सह सुतैरपि ।**
**अवज्ञाता भविष्यामो लोकस्य जगतीपते ॥१३॥**

महाराज ! ऐसी अवस्था में हम लोग अपने पुत्रों-सहित राजपरम्परा से वञ्चित होने के कारण सब लोगों की अवहेलना के पात्र बन जाएँगे ।

**सततं निरयं प्राप्ताः [1]परपिण्डोपजीविनः ।**
**न भवेम यथा राजंस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥१४॥**

राजन् ! आप कोई ऐसी नीति काम में लाइए जिससे हमें दूसरों के दिये हुए अन्न से निर्वाह करके सदा नरक-तुल्य कष्ट न भोगना पड़े ।

**पाण्डवेभ्यो भयं न स्यात्तान्विवासयतां भवान् ।**
**निपुणेनाभ्युपायेन नगरं वारणावतम् ॥१५॥**

पिताजी ! हमें पाण्डवों से भय न हो, अतः आप किसी उत्तम उपाय से उन्हें यहाँ से हटाकर वारणावत नगर में भेज दीजिए ।

धृतराष्ट्र उवाच

**धर्मनित्यः सदा पाण्डुस्तथा धर्मपरायणः ।**
**सर्वेषु ज्ञातिषु तथा मयि त्वासीद् विशेषतः ॥१६॥**

**धृतराष्ट्र ने कहा**—वत्स ! पाण्डु अपने जीवन-भर धर्म को नित्य मानकर सम्पूर्ण ज्ञातिजनों के साथ धर्मानुकूल व्यवहार करते थे, मेरे प्रति तो और भी विशेषरूप से धर्मशील थे ।

**तस्य पुत्रो यथा पाण्डुस्तथा धर्मपरायणः ।**
**गुणवाँल्लोकविख्यातः पौरवाणां सुसम्मतः ॥१७॥**

उनके पुत्र युधिष्ठिर भी वैसे ही धर्मपरायण हैं, जैसे स्वयं पाण्डु थे । वे उत्तम गुणों से सम्पन्न, सारे संसार में विख्यात तथा पुरुवंशियों के अत्यन्त प्रिय हैं ।

**स कथं शक्यतेऽस्माभिरपाकर्तुं बलादितः ।**
**पितृपैतामहाद् राज्यात् ससहायो विशेषतः ॥१८॥**

फिर उन्हें उनके बाप-दादों के राज्य से बलपूर्वक कैसे हटाया जा सकता है ? विशेषतः ऐसे समय में, जबकि उनके सहायक अधिक हैं ।

**भृता हि पाण्डुनामात्या बलं च सततं भृतम् ।**
**भृताः पुत्राश्च पौत्राश्च तेषामपि विशेषतः ॥१९॥**

पाण्डु ने सभी मन्त्रियों तथा सैनिकों का सदा पालन-पोषण किया था । उनका ही नहीं, उनके पुत्र-पौत्रों के भी भरण-पोषण का विशेष ध्यान रखा था ।

**ते पुरा सत्कृतास्तात पाण्डुना नागरा जनाः ।**
**कथं युधिष्ठिरस्यार्थे न नो हन्युः सबान्धवान् ॥२०॥**

तात ! पाण्डु ने पहले नागरिकों के साथ भी अत्यन्त सद्भावनापूर्ण व्यवहार किया है । अब वे विद्रोही होकर युधिष्ठिर के हित के लिए भाई-बन्धुओं के साथ हम सब लोगों की हत्या क्यों न कर डालेंगे ?

दुर्योधन उवाच

**एवमेतन्मया तात भावित दोषमात्मनि ।**
**दृष्ट्वा प्रकृतयः सर्वा अर्थमानेन पूजिताः ॥२१॥**

**दुर्योधन बोला**—पिताजी ! मैंने भी अपने हृदय में इस दोष [प्रजा के विरोधी होने] की सम्भावना की थी तथा इसी पर दृष्टि रखकर पहले ही अर्थ और सम्मान के द्वारा समस्त प्रजा का आदर-सत्कार किया है ।

**ध्रुवमस्मत्सहायास्ते भविष्यन्ति प्रधानतः ।**
**अर्थवर्गः सहामात्यो मत्संस्थोऽद्य महीपते ॥२२॥**

अब निश्चय ही वे लोग मुख्यरूप से हमारे सहायक होंगे । राजन् ! इस समय मन्त्रिमण्डल और कोष भी हमारे ही अधीन हैं ।

**स भवान् पाण्डवानाशु विवासयितुमर्हति ।**
**मृदुनैवाभ्युपायेन नगरं वारणावतम् ॥२३॥**

अतः आप किसी मृदु (सरल) उपाय से जितना शीघ्र सम्भव हो सके, पाण्डवों को वारणावत नगर में भेज दें ।

धृतराष्ट्र उवाच

**दुर्योधन ममाप्येतद् हृदि सम्परिवर्तते ।**
**अभिप्रायस्य पापत्वान्नैवं तु विवृणोम्यहम् ॥२४॥**

---

१. पौराणिक लोग 'पिण्ड' का अर्थ करते हैं, श्राद्ध में ब्राह्मणों को खिलाया जानेवाला भोजन अथवा पितरों को दिया जानेवाला चावलों का पिण्ड । ऐसे लोग इस स्थल को ध्यानपूर्वक पढ़ें । यहाँ पिण्ड का अर्थ है अन्न या भोजन । इसका मृतक के साथ निश्चित रूप से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है ।

**धृतराष्ट्र बोले**—दुर्योधन ! मेरे हृदय में भी यही बात घूम रही है, परन्तु हम लोगों का यह अभिप्राय पापपूर्ण है, अतः मैं इसे खोलकर कह नहीं पाता।

**न च भीष्मो न च द्रोणो न च क्षत्ता न गौतमः ।**
**विवास्यमानन् कौन्तेयाननुमंस्यन्ति कर्हिचित् ॥२५॥**

मुझे यह भी विश्वास है कि भीष्म, द्रोण, विदुर और कृपाचार्य—इनमें से कोई भी कुन्तीपुत्रों को यहाँ से अन्यत्र भेजे जाने की कदापि अनुमति नहीं देंगे।

**समा हि कौरवेयाणां वयं ते चैव पुत्रक ।**
**नैते विषममिच्छेयुर्धर्मयुक्ता मनस्विनः ॥२६॥**

पुत्र ! इन सभी कुरुवंशियों के लिए हम लोग और पाण्डव समान हैं। ये धर्मपरायण मनस्वी महा-पुरुष उनके प्रति विषम व्यवहार करना नहीं चाहेंगे।

दुर्योधन उवाच

**मध्यस्थः सततं भीष्मो द्रोणपुत्रो मयि स्थितः ।**
**यतः पुत्रस्ततो द्रोणो भविता नात्र संशयः ॥२७॥**

**दुर्योधन बोला**—पिताजी ! भीष्म तो सदा ही मध्यस्थ हैं, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा मेरे पक्ष में हैं, अतः द्रोणाचार्य भी उधर ही रहेंगे, जिधर उनका पुत्र होगा—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

**कृपः शारद्वतश्चैव यत एतौ ततो भवेत् ।**
**द्रोणं च भागिनेयं च न स त्यक्ष्यति कर्हिचित् ॥२८॥**

जिस पक्ष में ये दोनों रहेंगे, उसी ओर शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य भी रहेंगे। वे अपने बहनोई द्रोण और भानजे अश्वत्थामा को कभी नहीं त्याग सकेंगे।

**क्षत्तार्थबद्धस्त्वस्माकं प्रच्छन्नं संयतः परैः ।**
**न चैकः स समर्थोऽस्मान्पाण्डवार्थेऽधिबाधितुम् ॥२९॥**

विदुर भी हमारे आर्थिक बन्धन में हैं, यद्यपि वे छिपे-छिपे हमारे शत्रुओं के स्नेहपाश में बँधे हैं परन्तु वे अकेले पाण्डवों के हित के लिए हमें बाधा पहुँचाने में समर्थ नहीं हो सकेंगे।

**स विस्रब्धः पाण्डुपुत्रान् सह मात्रा प्रवासय ।**
**वारणावतमद्यैव यथा यान्ति तथा कुरु ॥३०॥**

अतः आप पूर्ण निश्चिन्त होकर पाण्डवों को उनकी माता के साथ वारणावत भेज दीजिए और ऐसी व्यवस्था कीजिए जिससे वे आज ही चले जाएँ।

**विनिद्रकरणं घोरं हृदि शल्यमिवार्पितम् ।**
**शोकपावकमुद्भूतं कर्मणैतेन शामय ॥३१॥**

मेरे हृदय में भयंकर काँटा-सा चुभ रहा है, जो मुझे नींद नहीं लेने देता। शोक की अग्नि प्रज्वलित हो उठी है, आप [मेरे प्रस्तावित] इस कार्य को पूर्ण करके मेरे हृदय की शोकाग्नि को बुझा दीजिए।

**इति महाभारते आदिपर्वणि एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥**

## द्वाविंशोऽध्यायः

### धृतराष्ट्र के आदेश से पाण्डवों की वारणावत-यात्रा, दुर्योधन के आदेश से पुरोचन का वहाँ लाक्षागृह बनाना, विदुर का उन्हें गुप्त उपदेश

वैशम्पायन उवाच

**ततो दुर्योधनो राजा सर्वास्ताः प्रकृतीः शनैः ।**
**अर्थमानप्रदानाभ्यां संजहार सहानुजः ॥१॥**
**धृतराष्ट्रप्रयुक्तास्ते केचित् कुशलमन्त्रिणः ।**
**कथयाञ्चक्रिरे रम्यं नगरं वारणावतम् ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तत्पश्चात् राजा दुर्योधन और उसके छोटे भाइयों ने धन देकर तथा आदर-सत्कार करके सम्पूर्ण अमात्यादि प्रकृतियों को धीरे-धीरे अपने वश में कर लिया। कुछ चतुर मन्त्री धृतराष्ट्र की आज्ञा से [चारों ओर] इस बात की चर्चा करने लगे कि "वारणावत नगर बहुत सुन्दर है।"

**सर्वरत्नसमाकीर्णे पुंसां देशे मनोरमे ।**
**इत्येवं धृतराष्ट्रस्य वचनाच्चक्रिरे कथाः ॥३॥**

"वह पवित्र नगर समस्त रत्नों से भरा-पूरा तथा मनुष्यों के मन को मोहित करनेवाला है।" धृतराष्ट्र के कहने से वे इस प्रकार की बातें कहने लगे।

**कथ्यमाने तथा रम्ये नगरे वारणावते ।**
**गमने पाण्डुपुत्राणां जज्ञे तत्र मतिर्नृप ॥४॥**

राजन् ! वारणावत नगर की रमणीयता का जब

इस प्रकार [यत्र-तत्र-सर्वत्र] वर्णन होने लगा, तब पाण्डवों के मन में वहाँ जाने का विचार उत्पन्न हुआ ।

**यदा त्वमन्यत नृपो जातकौतूहला इति ।**
**उवाचैतानेत्य तदा पाण्डवानम्बिकासुतः ॥५॥**

जब अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र को यह विश्वास हो गया कि पाण्डव वहाँ जाने के लिए उत्सुक हैं, तब वे उनके पास जाकर इस प्रकार बोले—

**ते तात यदि मन्यध्वमुत्सवं वारणावते ।**
**सगणाः सान्वयाश्चैव विहरध्वं यथामराः ॥६॥**

"पुत्रो ! यदि तुम लोग वारणावत नगर में उत्सव देखने के लिए जाना चाहो तो अपने कुटुम्बियों और सेवकवर्ग के साथ वहाँ जाकर देवताओं की भाँति विहार करो ।"

**धृतराष्ट्रस्य तं काममनुबुध्य युधिष्ठिरः ।**
**आत्मनश्चासहायत्वं तथेति प्रत्युवाच तम् ॥७॥**

जनमेजय ! युधिष्ठिर धृतराष्ट्र की उस इच्छा का रहस्य जान गये, परन्तु अपने को असहाय जानकर उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी बात मान ली ।

**ततो भीष्मं कृपाचार्यं विदुरं च महामतिम् ।**
**द्रोणं च बाह्लिकं चैव ब्राह्मणांश्च तपोधनान् ॥८॥**
**पुरोहितांश्च पौरांश्च गान्धारीं च यशस्विनीम् ।**
**युधिष्ठिरः शनैर्दीन उवाचेदं वचस्तदा ॥९॥**

तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने भीष्म, कृपाचार्य, परम बुद्धिमान् विदुर, द्रोण, बाह्लिक, तपस्वी ब्राह्मणों, पुरोहितों, पुरवासियों तथा यशस्विनी गान्धारी देवी से मिलकर धीरे-धीरे दीनभाव से इस प्रकार कहा—

**रमणीये जनाकीर्णे नगरे वारणावते ।**
**सगणास्तत्र यास्यामो धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥१०॥**

"हम महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से रमणीय वारणावत नगर में, जहाँ बड़ा भारी मेला लग रहा है, परिवार-सहित जानेवाले हैं ।

**प्रसन्नमनसा सर्वे पुण्या वाचो विमुञ्चत ।**
**आशीर्भिर्बृंहितानस्मान् न पापं प्रसहिष्यते ॥११॥**

"आप सब लोग प्रसन्नचित्त होकर हमें अपने पुण्यमय आशीर्वाद दीजिए । आपके आशीर्वाद से हमारी वृद्धि होगी तथा पाप का हमपर वश नहीं चल सकेगा ।"

**एवमुक्तास्तु ते सर्वे पाण्डुपुत्रेण कौरवाः ।**
**प्रसन्नवदना भूत्वा तेऽन्ववर्तन्त पाण्डवान् ॥१२॥**
**स्वस्त्यस्तु वः पथि सदा भूतेभ्यश्चैव सर्वशः ।**
**मा च वोऽस्त्वशुभं किंचित्सर्वशः पाण्डुनन्दनाः ॥१३॥**

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर के इस प्रकार कहने पर वे समस्त कुरुवंशी प्रसन्नवदन होकर पाण्डवों के अनुकूल हो कहने लगे—"पाण्डुकुमारो ! मार्ग में सदा सब प्राणियों से तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हें कहीं से किसी प्रकार का अशुभ प्राप्त न हो ।"

**एवमुक्तेषु राज्ञा तु पाण्डुपुत्रेषु भारत ।**
**दुर्योधनः परं हर्षमगच्छत् स दुरात्मवान् ॥१४॥**

भारत ! जब राजा धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को इस प्रकार जाने की आज्ञा दे दी, तब दुरात्मा दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई ।

**स पुरोचनमेकान्तमानीय भरतर्षभ ।**
**गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ सचिवं वाक्यमब्रवीत् ॥१५॥**

भरतकुलतिलक ! उसने अपने मन्त्री पुरोचन को एकान्त में बुलाया और उसका दाहिना हाथ पकड़कर कहा—

दुर्योधन उवाच

**संरक्ष तात मन्त्रं च सपत्नांश्च ममोद्धर ।**
**निपुणेनाभ्युपायेन यद् ब्रवीमि तथा कुरु ॥१६॥**

**दुर्योधन बोला**—तात ! तुम मेरी इस गुप्त मन्त्रणा की रक्षा करो—इसे दूसरों पर प्रकट न होने दो और अच्छे उपायों द्वारा मेरे शत्रुओं को उखाड़ फेंको । मैं तुमसे जो कहता हूँ, वही करो ।

**पाण्डवा धृतराष्ट्रेण प्रेषिता वारणावतम् ।**
**उत्सवे विहरिष्यन्ति धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥१७॥**

पिताजी ने पाण्डवों को वारणावत जाने की आज्ञा दी है । वे उनके आदेश से [कुछ दिनों तक] वहाँ रहकर उत्सव में भाग लेंगे, घूमेंगे, फिरेंगे ।

**स त्वं रासभयुक्तेन स्यन्दनेनाशुगामिना ।**
**वारणावतमद्यैव यथा यासि तथा कुरु ॥१८॥**

अतः तुम खच्चर जुते हुए शीघ्रगामी रथ पर बैठकर आज ही वहाँ पहुँच जाओ, ऐसी चेष्टा करो ।

**तत्र गत्वा चतुःशालं गृहं परमसंवृतम् ।**
**नगरोपान्तमाश्रित्य कारयेथा महाधनम् ॥१९॥**

वहाँ जाकर नगर के निकट ही एक ऐसा भवन तैयार कराओ, जिसमें चारों ओर कमरे हों तथा जो सब ओर से सुरक्षित हो। वह भवन बहुत धन व्यय करके सुन्दर-से-सुन्दर बनवाना चाहिए।

**शणसर्जरसादीनि यानि द्रव्याणि कानिचित्।**
**आग्नेयान्युत सन्तीह तानि तत्र प्रदापय ॥२०॥**

सन तथा राल आदि, जो कोई भी आग भड़कानेवाले द्रव्य संसार में हैं, उन सबको उस भवन की दीवारों में लगवाना।

**सर्पिस्तैलवसाभिश्च लाक्षया चाप्यनल्पया।**
**मृत्तिकां मिश्रयित्वा त्वं लेपं कुड्येषु दापय ॥२१॥**

घी, तेल, चर्बी तथा बहुत-सी लाख मिट्टी में मिलवाकर उसी से दीवारों को लिपवाना।

**शणं तैलं घृतं चैव जतु दारूणि चैव हि।**
**तस्मिन् वेश्मनि सर्वाणि निक्षिपेथाः समन्ततः ॥२२॥**
**यथा च त्वां न शंकेरन् परीक्षन्तोऽपि पाण्डवाः।**
**आग्नेयमिति तत्कार्यमपि चान्येऽपि मानवाः ॥२३॥**
**वेश्मन्येवं कृते तत्र गत्वा तान् परमार्चितान्।**
**वासयेथाः पाण्डवेयान् कुन्तीं च ससुहृज्जनाम् ॥२४॥**

उस घर के चारों ओर सन, तेल, घी, लाख और लकड़ी आदि सब वस्तुएँ संग्रह करके रखना। अच्छी प्रकार देख-भाल करने पर भी पाण्डवों तथा दूसरे लोगों को तुम्हारे इस कार्य पर शंका न हो कि यह भवन आग भड़कानेवाले पदर्थों से बना है। इस प्रकार पूर्ण सावधानी के साथ उस राजभवन का निर्माण कराना चाहिए। इस प्रकार महल बन जाने पर जब पाण्डव वहाँ जाएँ, तब उन्हें तथा सुहृदोंसहित कुन्तीदेवी को भी बड़े आदर-सत्कार के साथ वहीं ठहराना।

**आसनानि च दिव्यानि यानानि शयनानि च।**
**विधातव्यानि पाण्डूनां यथा तुष्येत वै पिता ॥२५॥**
**यथा च तन्न जानन्ति नगरे वारणावते।**
**तथा सर्वं विधातव्यं यावत् कालस्य पर्ययः ॥२६॥**

वहाँ पाण्डवों के लिए दिव्य आसन, सवारी और शय्या आदि की ऐसी [सुन्दर] व्यवस्था कर देना, जिसे सुनकर मेरे पिताजी सन्तुष्ट हों। जबतक समय बदलने के साथ ही अपने अभीष्ट कार्य की सिद्धि न हो जाए, तबतक सब काम इस प्रकार करना चाहिए कि वारणावत नगर के लोगों को इसके विषय में कुछ भी ज्ञात न हो सके।

**ज्ञात्वा च तान् सुविश्वस्ताञ्शयानानकुतोभयान्।**
**अग्निस्त्वया ततो देयो द्वारतस्तस्य वेश्मनः ॥२७॥**

जब तुम्हें यह भली-भाँति ज्ञात हो जाए कि पाण्डव लोग यहाँ आश्वस्त होकर रहने लगे हैं, इनके मन में कहीं से कोई भय नहीं है, तब उनके सो जाने पर घर के द्वार की ओर से आग लगा देना।

**दह्यमाने स्वके गेहे दग्धा इति ततो जनाः।**
**न गर्हयेयुरस्मान् वै पाण्डवार्थाय कर्हिचित् ॥२८॥**

उस समय लोग यही समझेंगे कि अपने आप ही घर में आग लगी थी, उसी में पाण्डव जल गये, अतः वे पाण्डवों की मृत्यु के लिए कभी हमारी निन्दा नहीं करेंगे।

वैशम्पायन उवाच

**स तथेति प्रतिज्ञाय कौरवाय पुरोचनः।**
**प्रायाद् रासभयुक्तेन स्यन्दनेनाशुगामिना ॥२९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—पुरोचन ने दुर्योधन के सामने वैसा ही करने की प्रतिज्ञा की और खच्चर जुते हुए शीघ्रगामी रथ पर सवार हो वहाँ से वारणावत नगर को चल दिया।

**स गत्वा त्वरितं राजन् दुर्योधनमते स्थितः।**
**यथोक्तं राजपुत्रेण सर्वं चक्रे पुरोचनः ॥३०॥**

राजन्! पुरोचन दुर्योधन की सम्मति के अनुसार चलता था। उसने शीघ्र ही वारणावत में पहुँचकर राजकुमार दुर्योधन के मतानुसार सब काम पूरा कर लिया।

**पाण्डवास्तु रथान् युक्तान् सदश्वैरनिलोपमैः।**
**आरोहमाणा भीष्मस्य पदौ जगृहुरार्तवत् ॥३१॥**
**राज्ञश्च धृतराष्ट्रस्य द्रोणस्य च महात्मनः।**
**अन्येषां चैव वृद्धानां कृपस्य विदुरस्य च ॥३२॥**

उधर वायु के समान वेगवाले उत्तम घोड़ों से जुते हुए रथों पर चढ़ने के लिए उद्यत हो पाण्डवों ने अत्यन्त दुःखी-से होकर पितामह भीष्म के दोनों चरणों का स्पर्श किया। तत्पश्चात् राजा धृतराष्ट्र, महात्मा द्रोण, कृपाचार्य, विदुर तथा अन्य बड़े-बूढ़ों को प्रणाम किया।

**सर्वा मातृस्तथाऽऽपृच्छ्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ।**
**सर्वाः प्रकृतयश्चैव प्रययुर्वारणावतम् ।।३३।।**

तत्पश्चात् सब माताओं से आज्ञा लेकर उनकी प्रदक्षिणा=परिक्रमा करके तथा समस्त प्रजाओं से भी विदा लेकर वे वारणावत नगर की ओर चले ।

**विदुरश्च महाप्राज्ञस्तथान्ये कुरुपुङ्गवाः ।**
**पौराश्च पुरुषव्याघ्रानन्वयुः शोककर्षिताः ।।३४।।**
**तत्र केचिद् ब्रुवन्ति स्म ब्राह्मणा निर्भयास्तदा ।**
**दीनान् दृष्ट्वा पाण्डुसुतानतीव भृशदुःखिताः ।।३५।।**

उस समय महाज्ञानी विदुर तथा कुरुकुल के अन्य श्रेष्ठपुरुष एवं पुरवासी मनुष्य शोक से कातर हो नर-सिंह पाण्डवों के पीछे-पीछे चलने लगे । उस समय कुछ निर्भय ब्राह्मण पाण्डवों को अत्यन्त दीन दशा में देखकर बहुत दुःखी हो इस प्रकार कहने लगे—

**विषमं पश्यते राजा सर्वथा स सुमन्दधीः ।**
**कौरव्यो धतराष्ट्रस्तु न च धर्मं प्रपश्यति ।।३६।।**

"अत्यन्त मन्दबुद्धि कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र पाण्डवों को सदा विषम दृष्टि से देखते हैं । उनकी दृष्टि धर्म की ओर नहीं है ।

**स पाण्डौ पुरुषव्याघ्रे देवभावं गते सति ।**
**राजपुत्रानिमान् बालान् धृतराष्ट्रो न मृष्यते ।।३७।।**

"नरश्रेष्ठ पाण्डु के देवभाव [मृत्यु] को प्राप्त हो जाने पर ये धृतराष्ट्र उनके छोटे-छोटे राजकुमारों का भार सहन नहीं कर पा रहे हैं ।

**वयमेतदनिच्छन्तः सर्व एव पुरोत्तमात् ।**
**गृहान् विहाय गच्छामो यत्र गन्ता युधिष्ठिरः ।।३८।।**

"हम लोग यह नहीं चाहते, अतः हम सब घर-द्वार छोड़कर इस उत्तम नगरी से वहीं चलेंगे, जहाँ युधिष्ठिर जा रहे हैं ।"

**ताँस्तथावादिनः पौरान् दुःखितान् दुःखकर्षितः ।**
**उवाच मनसा ध्यात्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।।३९।।**

शोक से दुर्बल धर्मराज युधिष्ठिर अपने लिए दुःखी उन नगर-वासियों को ऐसी बातें करते देख मन-ही-मन कुछ सोचकर उनसे बोले—

**पिता मान्यो गुरुः श्रेष्ठो यदाह पृथिवीपतिः ।**
**अशङ्कमानैस्तत् कार्यमस्माभिरिति नो व्रतम् ।।४०।।**

"बन्धुओ ! राजा धृतराष्ट्र मेरे माननीय पिता, गुरु एवं श्रेष्ठ पुरुष हैं । वे जो आज्ञा दें, उसका हमें निःशङ्क होकर पालन करना चाहिए, यही हमारा व्रत है ।

**भवन्तः सुहृदोऽस्माकमस्मान् कृत्वा प्रदक्षिणम् ।**
**प्रतिनन्द्य तथाशीर्भिर्निवर्तध्वं यथागृहम् ।।४१।।**

"आप सब लोग हमारे हितचिन्तक हैं, अतः हमें अपने आशीर्वादों से सन्तुष्ट करें तथा हमें दाहिने करते हुए जैसे आये थे, वैसे ही अपने घरों को लौट जाएँ ।"

**एवमुक्तास्तदा पौराः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।**
**आशीर्भिश्चाभिनन्द्यैतान्जग्मुर्नगरमेव हि ।।४२।।**

उनके ऐसा कहने पर पुरवासी उन्हें आशीर्वाद से प्रसन्न करते हुए तथा उन्हें दाहिने करके नगर को लौट गये ।

**पौरेषु विनिवृत्तेषु विदुरः सत्यधर्मवित् ।**
**बोधयन् पाण्डवश्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत् ।।४३।।**

नगर-निवासियों के लौट जाने पर सत्यधर्म के ज्ञाता विदुरजी पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर को दुर्योधन के कपट का बोध कराते हुए इस प्रकार बोले—

**प्राज्ञः प्राज्ञप्रलापज्ञः प्रलापज्ञमिदं वचः ।**
**प्राज्ञं प्राज्ञः प्रलापज्ञः प्रलापज्ञं वचोऽब्रवीत् ।।४४।।**

विदुरजी बुद्धिमान् तथा मूढ़ म्लेच्छों की निरर्थक-सी प्रतीत होनेवाली भाषा के भी ज्ञाता थे । इसी प्रकार युधिष्ठिर भी उस म्लेच्छ भाषा को समझने-वाले और बुद्धिमान् थे, अतः उन्होंने युधिष्ठिर से ऐसी कहने योग्य बात कही, जो म्लेच्छ भाषा के जानकार एवं बुद्धिमान् पुरुष को उस भाषा में कहे हुए रहस्य का ज्ञान करा देनेवाली थी, परन्तु उस भाषा से अनभिज्ञ पुरुष को वास्तविक अर्थ का बोध नहीं कराती थी ।

**यो जानाति परप्रज्ञां नीतिशास्त्रानुसारिणीम् ।**
**विज्ञायेह तथा कुर्यादापदं निस्तरेद् यथा ।।४५।।**

"जो नीति-शास्त्र का अनुसरण करनेवाली शत्रु की बुद्धि को समझ लेता है, वह उसे समझ लेने पर कोई ऐसा उपाय करे, जिससे वह शत्रुजनित संकट से बच सके ।

**अलोहं निशितं शस्त्रं शरीरपरिकर्तनम् ।**
**यो वेत्ति न तु तं घ्नन्ति प्रतिघातविदं द्विषः ॥४६॥**

"एक ऐसा तीखा अस्त्र है, जो लोहे का बना तो नहीं है, परन्तु शरीर को नष्ट कर देता है । जो उसे जानता है, ऐसे उस शस्त्र के आघात से बचने का उपाय जाननेवाले पुरुष को शत्रु नहीं मार सकते ।

**कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः ।**
**न दहेदिति चात्मानं यो रक्षति स जीवति ॥४७॥**

"घास-फूस तथा सूखे वृक्षोंवाले जंगल को जलाने और सरदी को नष्ट कर देनेवाली आग विशाल वन में फैल जाने पर भी बिल में रहनेवाले चूहे आदि जीव-जन्तुओं को नहीं जला सकती—जो ऐसा समझकर अपनी रक्षा का उपाय करता है, वही जीवित रहता है ।

**नाचक्षुर्वेत्ति पन्थानं नाचक्षुर्विन्दते दिशः ।**
**नाधृतिर्बुद्धिमाप्नोति बुध्यस्वैवं प्रबोधितः ॥४८॥**

"जिसकी आँखें नहीं है, वह मार्ग नहीं देख पाता, अन्धे को दिशाओं का ज्ञान नहीं होता और जो धैर्य खो देता है, उसे सद्बुद्धि प्राप्त नहीं होती । इस प्रकार मेरे समझाने पर तुम मेरी बात को भली भाँति समझ लो ।

**अनाप्तैर्दत्तमादत्ते नरः शास्त्रमलोहजम् ।**
**श्वाविच्छरणमासाद्य प्रमुच्येत हुताशनात् ॥४६॥**

"शत्रु के दिये हुए बिना लोहे के बने शस्त्र को जो मनुष्य ग्रहण कर लेता है, वह साही के बिल में घुसकर आग से बच जाता है ।

**चरन् मार्गान् विजानाति नक्षत्रैर्विन्दते दिशः ।**
**आत्मना चात्मनः पञ्च पीडयन् नानुपीड्यते ॥५०॥**

"मनुष्य घूम-फिर कर मार्ग का पता लगा लेता है, नक्षत्रों से दिशाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेता है और जो अपनी पाँचों इन्द्रियों को वश में रखता है, वह शत्रुओं से पीड़ित नहीं होता ।"

**एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजो युधिष्ठिरः ।**
**विदुरं विदुषां श्रेष्ठं ज्ञातमित्येव पाण्डवः ॥५१॥**

इस प्रकार कहे जाने पर पाण्डुनन्दन धर्मराज युधिष्ठिर ने विद्वानों में श्रेष्ठ विदुरजी से कहा—"मैंने आपकी बात अच्छी प्रकार समझ ली है ।"

**अनुशिक्ष्यानुगम्यैतान् कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ।**
**पाण्डवानभ्यनुज्ञाय विदुरः प्रययौ गृहान् ॥५२॥**

इस प्रकार पाण्डवों को वारम्बार कर्तव्य की शिक्षा देते हुए कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे जाकर विदुरजी उनको जाने की आज्ञा दे उन्हें अपने दाहिने करके अपने घर को लौट गये ।

**निवृत्ते विदुरे चापि भीष्मे पौरजने तथा ।**
**अजातशत्रुमासाद्य कुन्ती वचनमब्रवीत् ॥५३॥**

विदुर, भीष्मजी और नगर-वासियों के लौट जाने पर कुन्ती अजातशत्रु युधिष्ठिर के पास जाकर यह वचन बोली—

**क्षत्ता यदब्रवीद् वाक्यं जनमध्येऽब्रुवन्निव ।**
**त्वया च स तथेत्युक्तो जानीमो न च तद्वयम् ॥५४॥**

"पुत्र ! विदुरजी ने सब लोगों के मध्य में जो अस्पष्ट-सी बात कही थी, उसे सुनकर तुमने 'बहुत अच्छा' कहकर स्वीकार किया था, परन्तु हम लोग वह बात अबतक नहीं समझ पा रहे हैं ।

**यदीदं शक्यमस्माभिर्ज्ञातं न च सदोषवत् ।**
**श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं संवादं तव तस्य च ॥५५॥**

"यदि उसे हम भी समझ सकें और हमारे जानने से कोई दोष न आता हो, तो तुम्हारी और उनकी सारी बात-चीत का रहस्य मैं जानना चाहती हूँ ।

युधिष्ठिर उवाच

**गृहादग्निश्च बोद्धव्य इति मां विदुरोऽब्रवीत् ।**
**पन्थाश्च वो नाविदितः कश्चित्स्यादिति धर्मधीः ॥५६**

**युधिष्ठिर बोले**—माँ ! जिनकी बुद्धि सदा धर्म में लगी रहती है, उन विदुरजी ने [सांकेतिक भाषा में] मुझसे कहा था, "तुम जिस घर में ठहरोगे, वहाँ आग का भय है, यह बात अच्छी प्रकार जान लेनी चाहिए । साथ ही वहाँ का कोई भी मार्ग ऐसा न हो, जो तुमसे अपरिचित रहे ।

**जितेन्द्रियश्च वसुधां प्राप्स्यतीति च मेऽब्रवीत् ।**
**विज्ञातमिति तत्सर्वं प्रत्युक्तो विदुरो मया ॥५७॥**

"यदि तुम अपनी इन्द्रियों को वश में रखोगे तो सारी पृथिवी का राज्य प्राप्त कर लोगे, यह बात भी उन्होंने मुझे बताई थी और इन्हीं बातों के लिए मैंने विदुरजी को उत्तर दिया था कि "मैं सब समझ गया !"

वैशम्पायन उवाच

**अष्टमेऽहनि रोहिण्यां प्रयाताः फाल्गुनस्य ते ।**
**वारणावतमासाद्य ददृशुर्नगरं जनम् ॥५८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! पाण्डवों ने फाल्गुन शुक्ल अष्टमी के दिन रोहिणी में यात्रा की थी। वे यथासमय वारणावत में पहुँचकर वहाँ के निवासियों से मिले।

**इति महाभारते आदिपर्वणि द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥**

# त्रयोविंशोऽध्यायः

## पाण्डवों का लाक्षागृह में निवास, लाक्षागृह का दाह और पाण्डवों का सुरंग से बच निकलना, धृतराष्ट्र आदि द्वारा पाण्डवों के लिए शोक-प्रकाश

वैशम्पायन उवाच

**ततः सर्वाः प्रकृतयो नगराद् वारणावतात् ।**
**सर्वमङ्गलसंयुक्ता यथाशास्त्रमतन्द्रिताः ॥१॥**
**श्रुत्वाऽऽगतान् पाण्डुपुत्रान् नानायानैः सहस्रशः ।**
**अभिजग्मुर्नरश्रेष्ठान् श्रुत्वैव परया मुदा ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! नरश्रेष्ठ पाण्डवों के आगमन का समाचार सुनकर वारणावत नगर से वहाँ के सभी नागरिक अत्यन्त प्रसन्न हो आलस्य छोड़कर शास्त्रविधि के अनुसार सब प्रकार की माङ्गलिक वस्तुओं की भेंट ले-लेकर सहस्रों की संख्या में नाना प्रकार की सवारियों द्वारा उनके स्वागत के लिए आये।

**अर्चिताश्च नरैः पौरैः पाण्डवा भरतर्षभ ।**
**जग्मुरावस्थं पश्चात् पुरोचनपुरस्सराः ॥३॥**

भरतश्रेष्ठ ! नगर-निवासी मनुष्यों द्वारा पूजित एवं सम्मानित हो पाण्डव लोग पुरोचन को आगे करके डेरे पर गये।

**तेभ्यो भक्ष्याणि पानानि शयनानि शुभानि च ।**
**आसनानि च मुख्यानि प्रददौ स पुरोचनः ॥४॥**

वहाँ पुरोचन ने उनके लिए खाने-पीने की उत्तम वस्तुएँ, सुन्दर शय्याएँ तथा श्रेष्ठ आसन प्रस्तुत किये।

**तत्र ते सत्कृतास्तेन सुमहार्हपरिच्छदाः ।**
**उपास्यमानाः पुरुषैरूषुः पुरनिवासिभिः ॥५॥**

उस भवन में पुरोचन द्वारा उनका बड़ा सत्कार हुआ। वे बहुमूल्य सामग्रियों का उपभोग करते थे और बहुत-से नगर-निवासी उनकी सेवा में उपस्थित रहते थे। इस प्रकार वे [अत्यन्त आनन्द] से वहाँ रहने लगे।

**दशरात्रोषितानां तु तत्र तेषां पुरोचनः ।**
**निवेदयामास गृहं शिवाख्यमशिवं तदा ॥६॥**

दस दिन तक वहाँ रहने के पश्चात् पुरोचन ने पाण्डवों से उस नूतन गृह के सम्बन्ध में चर्चा की, जो कहने को तो 'शिवभवन' था, परन्तु वास्तव में अशिव [अमङ्गलकारी] था।

**तत्र ते पुरुषव्याघ्रा विविशुः सपरिच्छदाः ।**
**पुरोचनस्य वचनात् कैलासमिव गुह्यकाः ॥७॥**

पुरोचन के कहने से पुरुषसिंह पाण्डव अपनी सभी सामग्रियों और सेवकों के साथ उस नये भवन में गये, मानो गुह्यकगण (यक्ष-गण) कैलास पर्वत पर जा रहे हों।

**उच्चागारमभिप्रेक्ष्य सवधर्मभृतां वरः ।**
**उवाचाग्नेयमित्येवं भीमसेनं युधिष्ठिरः ॥८॥**

उस भवन को अच्छी प्रकार देखकर समस्त धर्मात्माओं में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा—"भाई ! यह गृह तो आग भड़कानेवाली वस्तुओं से बना जान पड़ता है।

**जिघ्राणोऽस्य वसागन्धं सर्पिर्जतुविमिश्रितम् ।**
**कृतं हि व्यक्तमाग्नेयमिदं वेश्म परन्तप ॥९॥**

"शत्रुसन्तापक भीमसेन ! मुझे इस घर की दीवारों से घी और लाख मिली हुई चर्बी की गन्ध आ रही है, अतः स्पष्ट जान पड़ता है कि इस घर का निर्माण अग्निदीपक पदार्थों से ही हुआ है।"

भीमसेन उवाच

**यदीदं गृहमाग्नेयं विहितं मन्यते भवान् ।**
**तथैव साधु गच्छामो यत्र पूर्वोषिता वयम् ॥१०॥**

**भीमसेन ने कहा**—भैया ! यदि आप यह मानते हैं कि इस भवन का निर्माण ज्वलनशील वस्तुओं से हुआ है तो हम लोग जहाँ पहले रहते थे, कुशलपूर्वक पुनः उसी घर में क्यों न लौट चलें ?

युधिष्ठिर उवाच

**इह यत्तैर्निराकारैर्वस्तव्यमिति रोचये ।**
**अप्रमत्तैर्विचिन्वद्भिर्गतिमिष्टां ध्रुवामितः ॥११॥**

**युधिष्ठिर बोले**—भाई ! हम लोगों को यहाँ अपनी बाह्य चेष्टाओं से मन की बात प्रकट न करते हुए तथा यहाँ से बच निकलने के लिए मनोऽनुकूल निश्चित मार्ग का पता लगाते हुए पूरी सावधानी के साथ यहीं रहना चाहिए । मुझे ऐसा करना ही उचित प्रतीत होता है ।

**वयं तु यदि दाहस्य बिभ्यतः प्रद्रवेमहि ।**
**स्पशैर्निर्घातयेत् सर्वान् राज्यलुब्धः सुयोधनः ॥१२॥**

यदि हम भस्म होने के भय से भाग निकलें तो भी राज्यलोभी दुर्योधन हम सबको अपने गुप्तचरों द्वारा मरवा सकता है ।

**अपदस्थान् पदे तिष्ठन्नपक्षान् पक्षसंस्थितः ।**
**हीनकोशान् महाकोशः प्रयोगैर्घातयेद् ध्रुवम् ॥१३॥**

इस समय वह अधिकार-पद पर प्रतिष्ठित है और हम उससे वञ्चित हैं । वह सहायकों के साथ है और हम असहाय हैं । उसके पास बहुत बड़ा कोष है और हमारे पास उसका सर्वथा अभाव है, अतः निश्चय ही वह अनेक प्रकार के उपायों द्वारा हमारी हत्या करा सकता है ।

**तदस्माभिरिमं पापं तं च पापं सुयोधनम् ।**
**वञ्चयद्भिर्निवस्तव्यं छन्नावासं क्वचित्क्वचित् ॥१४**

अतः इस पापात्मा पुरोचन तथा पापी दुर्योधन को भी धोखे में रखते हुए हमें यहीं कहीं किसी गुप्त स्थान में निवास करना चाहिए ।

**ते वयं मृगयाशीलाश्चराम वसुधामिमाम् ।**
**यथा नो विदिता मार्गा भविष्यन्ति पलायताम् ॥१५॥**

हम सब शिकार खेलने में रत रहकर यहाँ की भूमि पर सब ओर विचरें, इससे भाग निकलने के लिए हमें बहुत-से मार्ग ज्ञात हो जाएँगे ।

**भौमं च बिलमद्यैव करवाम सुसंवृतम् ।**
**गूढश्वासान्न नस्तत्र हुताशः सम्प्रधक्ष्यति ॥१६॥**

इसके अतिरिक्त हम आज ही से भूमि में एक सुरंग तैयार करें जो ऊपर से अच्छी प्रकार ढकी हो । वहाँ हमारी साँस तक छिपी रहेगी [हमारे अन्य कार्यों की तो बात ही क्या है] उस सुरंग में घुस जाने पर आग हमें नहीं जला सकेगी ।

**वसतोऽत्र यथा चास्मान्न बुध्येत पुरोचनः ।**
**पौरो वापि जनः कश्चित् तथा कार्यमतन्द्रितैः ॥१७॥**

हमें आलस्य छोड़कर इस प्रकार कार्य करना चाहिए, जिससे यहाँ रहते हुए भी पुरोचन को हमारे सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात न हो सके और किसी पुरवासी को भी हमारी कानों-कान खबर न हो ।

वैशम्पायन उवाच

**विदुरस्य सुहृत् कश्चित् खनकः कुशलो नरः ।**
**विविक्ते पाण्डवान् राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥१८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! इधर ऐसा निश्चय हुआ, उधर एक सुरंग खोदनेवाला मनुष्य जो विदुरजी का हितैषी और विश्वासपात्र तथा अपने कार्य में अति चतुर था, एक दिन एकान्त में पाण्डवों से मिला और इस प्रकार कहने लगा—

**प्रहितो विदुरेणास्मि खनकः कुशलो ह्यहम् ।**
**पाण्डवानां प्रियं कार्यमिति किं करवाणि वः ॥१९॥**
**प्रच्छन्नं विदुरेणोक्तः श्रेयस्त्वमिति पाण्डवान् ।**
**प्रतिपादय विश्वासादिति किं करवाणि वः ॥२०॥**

"मुझे विदुरजी ने भेजा है । मैं सुरंग खोदने की कला में निपुण हूँ । मुझे आप पाण्डवों का प्रिय कार्य करना है, अतः आप लोग बताएँ, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? विदुरजी ने गुप्त रूप से मुझसे यह कहा है कि तुम वारणावत में जाकर विश्वासपूर्वक पाण्डवों का हित सम्पादन करो, अतः आप आज्ञा दीजिए, मैं क्या करूँ ?

**किञ्चिच्च विदुरेणोक्तो म्लेच्छवाचासि पाण्डव ।**
**त्वया च तत् तथेत्युक्तमेतद् विश्वासकारणम् ॥२१॥**

"पाण्डुनन्दन ! विदुरजी ने म्लेच्छ भाषा में

आपको कुछ संकेत किया था और आपने 'तथास्तु' कहकर उसे स्वीकार किया था। यह बात मैं विश्वास दिलाने के लिए कहता हूँ।"

युधिष्ठिर उवाच

**अभिजानामि सौम्य त्वां सुहृदं विदुरस्य व।**
**शुचिमाप्तं प्रियं चैव सदा च दृढभक्तिकम् ॥२२॥**

**युधिष्ठिर बोले**—सौम्य! मैं तुम्हें पहचानता हूँ। तुम विदुरजी के हितैषी, ईमानदार, विश्वसनीय, प्रिय तथा उनके प्रति सदा अविचल भक्ति रखनेवाले हो।

**इदं शरणमाग्नेयं मदर्थमिति मे मतिः।**
**पुरोचनेन विहितं धार्तराष्ट्रस्य शासनात् ॥२३॥**

यह घर अग्नि-दीपक पदार्थों से बना है। हमारा विश्वास है कि दुर्योधन के आदेश से पुरोचन ने हमारे लिए ही इसे बनवाया है।

**स भवान्मोक्षयत्वस्मान्यत्नेनास्माद्धुताशनात्।**
**अस्मास्विह हि दग्धेषु सकामः स्यात् सुयोधनः ॥२४॥**

तुम प्रयत्न करके हम लोगों को इस आग से बचा लो, अन्यथा हम लोगों के यहाँ दग्ध हो जाने पर दुर्योधन का मनोरथ सफल हो जाएगा।

वैशम्पायन उवाच

**स तथेति प्रतिश्रुत्य खनको यत्नमास्थितः।**
**परिखामुत्किरन्नाम चकार च महाबिलम् ॥२५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—तब उस सुरंग खोदनेवाले ने 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा'—यह प्रतिज्ञा की और कार्य-सिद्धि के प्रयत्न में लग गया। खाई की सफाई करने के बहाने से उसने एक बहुत बड़ी सुरंग तैयार कर दी।

**चक्रे स वेश्मनस्तस्य मध्येनातिमहद् बिलम्।**
**कपाटयुक्तमज्ञातं समं भूम्याश्च भारत ॥२६॥**

हे भारत! उसने उस भवन के ठीक मध्य से वह महान् सुरंग निकाली। उसके मुहाने पर किवाड़ लगे थे। वह भूमि के समान स्तर पर ही बनी थी, अतः किसी को भी ज्ञात नहीं होती थी।

**पुरोचनभयादेव व्यदधात् संवृतं मुखम्।**
**स तस्य तु गृहद्वारि वसत्यशुभधीः सदा ॥२७॥**
**तत्र ते सायुधाः सर्वे वसन्ति स्म क्षपां नृप।**
**दिवा चरन्ति मृगयां पाण्डवेया वनाद् वनम् ॥२८॥**
**विश्वसन्तोऽप्यविश्वस्ता वञ्चयन्तः पुरोचनम्।**
**अतुष्टास्तुष्टवद् राजन्नूषुः परमविस्मिताः ॥२९॥**

पुरोचन के भय से उस सुरंग खोदनेवाले ने उसके मुख को बन्द कर दिया था, क्योंकि दुष्टबुद्धि पुरोचन सदा भवन के द्वार पर ही निवास करता था तथा पाण्डवगण भी रात्रि के समय शस्त्र सँभाले अति सावधानी के साथ उस द्वार पर ही रहा करते थे। [अतः पुरोचन को आग लगाने का अवसर नहीं मिलता था।] वे दिन में शिकार के बहाने एक वन से दूसरे वन में घूमते रहते थे। पाण्डव भीतर से तो विश्वास न करने के कारण सदा चौकन्ने रहते थे, परन्तु ऊपर से पुरोचन को ठगने के लिए विश्वस्त की भाँति व्यवहार करते थे। राजन्! वे असन्तुष्ट होते हुए भी सन्तुष्ट की भाँति निवास करते एवं अत्यन्त विस्मययुक्त-से रहते थे।

**तांस्तु दृष्ट्वा सुमनसः परिसंवत्सरोषितान्।**
**विश्वस्तानिव संलक्ष्य हर्षं चक्रे पुरोचनः ॥३०॥**
**पुरोचने तथा हृष्टे कौन्तेयोऽथ युधिष्ठिरः।**
**भीमसेनार्जुनौ चोभौ यमौ प्रोवाच धर्मवित् ॥३१॥**

हे जनमेजय! पाण्डवों को एक वर्ष से वहाँ प्रसन्नचित्त हो विश्वस्त की भाँति रहते हुए देख पुरोचन अति हर्षित हुआ। उसके इस प्रकार प्रसन्न होने पर धर्म के ज्ञाता कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव से इस प्रकार कहा—

**अस्मानयं सुविश्वस्तान् वेत्ति पापः पुरोचनः।**
**वञ्चितोऽयं नृशंसात्मा कालं मन्ये पलायने ॥३२॥**

"पापी पुरोचन हम लोगों को पूर्ण विश्वस्त समझ रहा है। इस निर्दयी को अबतक हम लोगों ने धोखा दिया है। अब मेरे विचार में हमारे भाग निकलने का उपयुक्त अवसर आ गया है।"

**चक्रे दानापदेशेन कुन्ती ब्राह्मणभोजनम्।**
**निषादी पञ्चपुत्रा तु तस्मिन्भोज्ये यदृच्छया ॥३३॥**
**अन्नार्थिनी समभ्यागात् सपुत्रा कालचोदिता।**
**भुक्त्वा सर्वैः सुतैः राजँस्तस्मिन्नेव निवेशने।**
**सुष्वाप विगतज्ञाना मृतकल्पा नराधिप ॥३४॥**

महाराज! एक दिन [रात्रि के समय] कुन्ती

ने दान देने के निमित्त ब्राह्मणों को भोजन कराया। दैवेच्छा से उस भोजन के समय एक भीलनी भी अपने पाँच पुत्रों के साथ उस भोज में आई, मानो काल ने ही उसे प्रेरित करके वहाँ भेजा था। भोजन करके वह अपने सभी पुत्रों के साथ उसी घर में सो गई। उस समय वह अपनी सुध-बुध खोकर मृतक-सी हो रही थी।

**अथ प्रवाते तुमुले निशि सुप्ते जने तदा।**
**तदुपादीपयद् भीमः शेते यत्र पुरोचनः ॥३५॥**

रात्रि में जब सब सो गये, उस समय सहसा बड़े जोर की आँधी चली। तब भीमसेन ने उस जगह आग लगा दी, जहाँ पुरोचन सो रहा था।

**समन्ततो ददौ पश्चादग्निं तत्र निवेशने।**
**ज्ञात्वा तु तद् गृहं सर्वमादीप्तं पाण्डुनन्दनाः ॥३६॥**
**सुरङ्गां विविशुस्तूर्णं मात्रा सार्धमरिन्दमाः।**
**ततः प्रतापः सुमहाञ्छब्दश्चैव विभावसोः ॥३७॥**
**प्रादुरासीत् तदा तेन बुबुधे स जनव्रजः।**
**तदवेक्ष्य गृहं दीप्तमाहुः पौराः कृशाननाः ॥३८॥**

तत्पश्चात् पाण्डवों ने उस भवन के चारों ओर आग लगा दी। जब वह सारा घर आग की लपेट में आ गया, तब शत्रुओं का दमन करनेवाले पाण्डव अपनी माता के साथ सुरंग में घुस गये। उधर वहाँ आग की भीषण ज्वालाएँ उठने लगीं, महान् ताप फैल गया। घर को जलानेवाली उस अग्नि का महान् चट-चट शब्द सुनाई देने लगा। इससे उस नगर का जन-समूह जाग उठा। उस घर को जलता देखकर पुरवासियों के मुख पर दीनता छा गई। वे व्याकुल होकर कहने लगे—

पौरा ऊचुः

**दुर्योधनप्रयुक्तेन पापेनाकृतबुद्धिना।**
**गृहमात्मविनाशाय कारितं दाहितं च तत् ॥३९॥**
**अहो धिक् धृतराष्ट्रस्य बुद्धिर्नातिसमञ्जसा।**
**यः शुचीन् पाण्डुदायादान् दाहयामास शत्रुवत् ॥४०॥**

**पुरवासी बोले**—अहो! पुरोचन का अन्तःकरण उसके वश में नहीं था। उस पापी ने दुर्योधन की आज्ञा से अपने ही विनाश के लिए इस घर को बनवाया और जला भी दिया! अहो! धिक्कार है, धृतराष्ट्र की बुद्धि बहुत बिगड़ गई है, जिसने शुद्ध हृदयवाले पाण्डुपुत्रों को शत्रुओं की भाँति आग में जलवा दिया।

**दिष्टया त्विदानीं पापात्मा दग्धोऽयमतिदुर्मतिः।**
**अनागसः सुविश्वस्तान् यो ददाह नरोत्तमान् ॥४१॥**

यह सौभाग्य की बात है कि दुर्बुद्धि पापी पुरोचन स्वयं भी इसी अग्नि में दग्ध हो गया है, जिसने निरपराध और अपने ऊपर पूर्ण विश्वास करनेवाले नरश्रेष्ठ पाण्डवों को जला दिया है।

वैशम्पायन उवाच

**एवं ते विलपन्ति स्म वारणावतका जनाः।**
**परिवार्य गृहं तच्च तस्थू रात्रौ समन्ततः ॥४२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! इस प्रकार वारणावत के लोग विलाप करने लगे। वे रात-भर उस घर को चारों ओर से घेरकर खड़े रहे।

**पाण्डवाश्चापि ते सर्वे सह मात्रा सुदुःखिताः।**
**बिलेन तेन निर्गत्य जग्मुर्द्रुतमलक्षिताः ॥४३॥**

उधर समस्त पाण्डव भी अत्यन्त दुःखी हो अपनी माता के साथ सुरंग के मार्ग से निकलकर तुरन्त ही दूर चले गये। उन्हें कोई भी देख न सका।

**तेन निद्रोपरोधेन साध्वसेन च पाण्डवाः।**
**न शेकुः सहसा गन्तुं सह मात्रा परन्तपाः ॥४४॥**

नींद न ले सकने के कारण आलस्य और भय से युक्त परन्तप पाण्डव अपनी माता के साथ जल्दी-जल्दी चल नहीं पाते थे।

**भीमसेनस्तु राजेन्द्र भीमवेगपराक्रमः।**
**जगाम भ्रातॄनादाय सर्वान् मातरमेव च ॥४५॥**
**स्कन्धमारोप्य जननीं यमावङ्केन वीर्यवान्।**
**पार्थौ गृहीत्वा पाणिभ्यां भ्रातरौ सुमहाबलः ॥४६॥**

हे राजेन्द्र! प्रबल वेग और पराक्रमवाले भीमसेन अपने सब भाइयों तथा माता को भी साथ लिये चल रहे थे। वे महान् बल और पराक्रम से सम्पन्न थे। उन्होंने माता को तो कंधे पर चढ़ा लिया, नकुल और सहदेव को गोद में उठा लिया तथा शेष दोनों भाइयों को दोनों हाथों से पकड़कर उन्हें सहारा देते हुए चलने लगे।

**उरसा पादपान् भञ्जन् महीं पद्भ्यां विदारयन् ।**
**स जगामाशु तेजस्वी वातरंहा वृकोदरः ।।४७।।**

तेजस्वी भीम वायु के समान वेगशाली थे । वे अपनी छाती के धक्के से वृक्षों को तोड़ते और पैरों की ठोकर से पृथिवी को विदीर्ण करते हुए तीव्र गति से आगे बढ़े जा रहे थे ।

**एतस्मिन्नेव काले तु यथासम्प्रत्ययं कविः ।**
**विदुरः प्रेषयामास तद् वनं पुरुषं शुचिम् ।।४८।।**

जनमेजय ! इसी समय परम ज्ञानी विदुरजी ने अपने विश्वास के अनुसार एक शुद्ध विचारवाले पुरुष को उस वन में भेजा ।

**स गत्वा तु यथोद्देशं पाण्डवान् ददृशे वने ।**
**जनन्या सह कौरव्य मापयानान् नदीजलम् ।।४६।।**

हे कुरुनन्दन ! उसने विदुरजी के बताये अनुसार ठीक स्थान पर पहुँचकर वन में मातासहित जाते हुए पाण्डवों को देखा, जो नदी के जल की गहराई माप रहे थे ।

**विदितं तन्महाबुद्धेर्विदुरस्य महात्मनः ।**
**ततस्तस्यापि चारेण चेष्टितं पापचेतसः ।।५०।।**
**ततः प्रवासितो विद्वान् विदुरेण नरस्तदा ।**
**पार्थानां दर्शयामास मनोमारुतगामिनीम् ।**
**सर्ववातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम् ।।५१।।**

परम बुद्धिमान् महात्मा विदुर को गुप्तचर द्वारा उस पापासक्त पुरोचन की चेष्टाओं का पता चल गया था, इसलिए उन्होंने उस समय उस बुद्धिमान् मनुष्य को वहाँ भेजा था । उसने मन और वायु के समान वेग से चलनेवाली एक नौका पाण्डवों को दिखाई, जो सब प्रकार से वायु का वेग सहने में समर्थ तथा ध्वजा-पताकाओं से सुशोभित थी । उस नौका को चलाने के लिए यन्त्र लगाया गया था ।

**ततः पुनरथोवाच ज्ञापकं पूर्वचोदितम् ।**
**युधिष्ठिर निबोधेदं संज्ञार्थं वचनं कवेः ।।५२।।**

तत्पश्चात् उस मनुष्य ने कहा—"युधिष्ठिर-जी ! ज्ञानी विदुरजी द्वारा पहले कही हुई यह बात, जो मेरी विश्वसनीयता को सूचित करनेवाली है, पुनः सुनिए ! मैं आपको संकेत के रूप में स्मरण कराने के लिए इसे कहता हूँ ।

**कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः ।**
**न हन्तीत्येवमात्मानं यो रक्षति स जीवति ।।५३।।**

"[आपसे विदुर ने कहा था—]घास-फूंस तथा सूखे वृक्षों के जंगल को जलानेवाली तथा सरदी को नष्ट कर देनेवाली आग विशाल वन में फैल जाने पर भी बिल में रहनेवाले चूहे आदि जन्तुओं को नहीं जला सकती । ऐसा समझकर जो अपनी रक्षा का उपाय करता है, वही जीवित रहता है ।"

**तेन मां प्रेषितं विद्धि विश्वस्तं संज्ञयानया ।**
**भूयश्चैवाह मां क्षत्ता विदुरः सर्वतोऽर्थवित् ।।५४।।**
**कर्णं दुर्योधनं चैव भ्रातृभिः सहितं रणे ।**
**शकुनिं चैव कौन्तेय विजेतासि न संशयः ।।५५।।**

"इस संकेत से आप यह जान लें कि "मैं विश्वास-पात्र हूँ तथा विदुरजी ने ही मुझे भेजा है ।" इसके सिवा, सब प्रकार से अर्थसिद्धि का ज्ञान रखनेवाले विदुरजी ने पुनः मुझे आपके लिए यह सन्देश दिया है कि—"कुन्तीनन्दन ! तुम युद्ध में भाइयों सहित दुर्योधन, कर्ण और शकुनि को अवश्य परास्त करोगे, इसमें संशय नहीं है ।"

**इयं वारिपथे युक्ता नौरप्सु सुखगामिनी ।**
**मोचयिष्यति वः सर्वानस्माद् देशान्न संशयः ।।५६।।**

"यह नौका जलमार्ग के लिए पूर्ण उपयुक्त है । जल में यह अति सुगमता से चलनेवाली है । यह नौका आप सब लोगों को इस देश से दूर छोड़ देगी, इसमें सन्देह नहीं है ।"

**अथ तान्व्यथितान्दृष्ट्वा सह मात्रा नरोत्तमान् ।**
**नावमारोप्य गङ्गायां प्रस्थितानब्रवीत् पुनः ।।५७।।**

तत्पश्चात् माता-सहित नरश्रेष्ठ पाण्डवों को अत्यन्त दुःखी देख नाविक ने उन सबको नाव पर चढ़ाया और जब वे गङ्गा के मार्ग से प्रस्थान करने लगे, तब पुनः इस प्रकार कहा—

**विदुरो मूर्ध्न्युपाघ्राय परिष्वज्य वचो मुहुः ।**
**अरिष्टं गच्छताव्यग्राः पन्थानमिति चाब्रवीत् ।।५८।।**

विदुरजी ने आप सभी पाण्डुपुत्रों को भावना द्वारा हृदय से लगाकर और मस्तक सूंघकर यह आशीर्वाद फिर कहलाया है कि—"तुम शान्तचित्त रहकर कुशलपूर्वक मार्ग पर बढ़ते जाओ !"

**इत्युक्त्वा स तु तान्वीरान्पुमान्विदुरप्रेरितः ।**
**तारयामास राजेन्द्र गङ्गां नावा नरर्षभान् ॥५६॥**

हे राजेन्द्र ! विदुरजी के भेजे हुए उस नाविक ने उन शूरवीर नरश्रेष्ठ पाण्डवों से ऐसी बात कहकर उसी नाव से उन्हें गङ्गा के पार उतार दिया ।

**अथ रात्र्यां व्यतीतायामशेषो नागरो जनः ।**
**तत्राजगाम त्वरितो दिदृक्षुः पाण्डुनन्दनान् ॥६०॥**

हे जनमेजय ! उधर रात्रि के व्यतीत होने पर वारणावत के समस्त नागरिक बड़ी उतावली के साथ पाण्डुकुमारों की दशा देखने के लिए उस लाक्षागृह के समीप आये ।

**निर्वापयन्तो ज्वलनं ते जना ददृशुस्ततः ।**
**जातुषं तद् गृहं दग्धममात्यं च पुरोचनम् ॥६१॥**

आते ही वे सब लोग आग बुझाने में लग गये । उस समय उन्होंने देखा कि सारा घर लाख का बना था, जो जलकर भस्म हो गया है और उसी में मन्त्री पुरोचन भी जल गया है ।

**नूनं दुर्योधनेनेदं विहितं पापकर्मणा ।**
**पाण्डवानां विनाशायेत्येवं ते चुक्रुशुर्जनाः ॥६२॥**

यह देख वे सभी नागरिक चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे कि—"निश्चय ही पापाचारी दुर्योधन ने पाण्डवों का विनाश करने के लिए इस भवन का निर्माण करवाया था ।

**ते वयं धृतराष्ट्रस्य प्रेषयामो दुरात्मनः ।**
**संवृत्तस्ते परः कामः पाण्डवान् दग्धवानसि ॥६३॥**

"अब हम लोग दुरात्मा धृतराष्ट्र के पास यह सन्देश भेज दें कि तुम्हारी सबसे बड़ी कामना पूर्ण हो गई । तुम पाण्डवों के जलाने में सफल हो गये ।"

**ततो व्यपोहमानास्ते पाण्डवार्थे हुताशनम् ।**
**निषादीं ददृशुर्दग्धां पञ्चपुत्रामनागसाम् ॥६४॥**

तत्पश्चात् जब उन्होंने पाण्डवों को ढूँढ़ने के लिए आग को इधर-उधर हटाया, तब पाँच पुत्रों के साथ भीलनी की जली हुई लाश देखी ।

**खनकेन तु तेनैव वेश्म शोधयता बिलम् ।**
**पांसुभिः पिहितं तच्च पुरुषैस्तैर्न लक्षितम् ॥६५॥**

उधर उसी सुरंग खोदनेवाले पुरुष ने घर को साफ करते समय सुरंग के छेद को धूल से ढक दिया था, अतः दूसरे लोगों की दृष्टि उसपर नहीं पड़ी ।

**ततस्ते ज्ञापयामासुर्धृतराष्ट्रस्य नागराः ।**
**पाण्डवानग्निना दग्धानमात्यं च पुरोचनम् ॥६६॥**

तदनन्तर वारणावत के नागरिकों ने धृतराष्ट्र को यह सूचित कर दिया कि पाण्डव तथा मन्त्री पुरोचन अग्नि में जल गये ।

**श्रुत्वा तु धृतराष्ट्रस्तद् राजा सुमहदप्रियम् ।**
**विनाशं पाण्डुपुत्राणां विललाप सुदुःखितः ॥६७॥**

महाराज धृतराष्ट्र ने पाण्डुपुत्रों के विनाश का यह अत्यन्त अप्रिय समाचार सुनकर अत्यन्त दुःखी हो विलाप किया ।

**इति महाभारते आदिपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥**

# चतुर्विंशोऽध्यायः

## भीम का विषाद और दुर्योधन के प्रति उनका क्रोध

वैशम्पायन उवाच

**ततो नावं परित्यज्य प्रययुर्दक्षिणां दिशम् ।**
**विज्ञाय निशि पन्थानं नक्षत्रगणसूचितम् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! उधर पाण्डव उस नौका को छोड़ रात्रि में नक्षत्रों द्वारा सूचित मार्ग को पहचानकर दक्षिण दिशा की ओर चल दिये ।

**अगमच्च वनोद्देशमल्पमूलफलोदकम् ।**
**क्रूरपक्षिमृगं घोरं सायाह्ने भरतर्षभ ॥२॥**

भरतश्रेष्ठ ! सायंकाल होते-होते वे वन के एक ऐसे भयंकर प्रदेश में जा पहुँचे, जहाँ फल-मूल और जल की बहुत कमी थी और वहाँ क्रूर स्वभाववाले पक्षी और हिंसक पशु रहते थे ।

**ते श्रमेण च कौरव्यास्तृष्णया च प्रपीडिताः ।**
**नाशक्नुवंस्तदा गन्तुं निद्रया च प्रवृद्धया ॥३॥**

वे कुरुकुल-भूषण पाण्डव उस समय अधिक परि-श्रम एवं प्यास के कारण अति कष्ट पा रहे थे ।

थकावट से उनकी नींद भी बढ़ गई थी, जिससे पीड़ित होकर वे आगे जाने में असमर्थ हो गये।

**न्यविशन्त हि ते सर्वे निरास्वादे महावने।**
**ततस्तृषापरिक्लान्ता कुन्ती पुत्रानथाब्रवीत् ॥४॥**

तब उन सबने उस उजाड़ महावन में डेरा डाल दिया। तदनन्तर प्यास से व्याकुल कुन्तीदेवी अपने पुत्रों से बोली—

**माता सती पाण्डवानां पञ्चानां मध्यतः स्थिता।**
**तृष्णया हि परीतास्मि पुत्रान् भृशमथाब्रवीत् ॥५॥**

"मैं पाँच पाण्डुपुत्रों की माता हूँ तथा उन्हीं के बीच में बैठी हुई हूँ तो भी प्यास से व्याकुल हूँ"—इस प्रकार कुन्ती देवी ने अपने पुत्रों के समक्ष यह बात बार-बार दुहराई।

**तत् श्रुत्वा भीमसेनस्य मातृस्नेहात् प्रजल्पितम्।**
**कारुण्येन मनस्तप्तं गमनायोपचक्रमे ॥६॥**

माता का वात्सल्य से कहा हुआ वह वचन सुनकर भीमसेन का हृदय करुणा से भर आया। वे मन-ही-मन सन्तप्त हो उठे और स्वयं ही [पानी लाने के लिए] जाने की तैयारी करने लगे।

**ततो भीमो वनं घोरं प्रविश्य विजनं महत्।**
**न्यग्रोधं विपुलच्छायं रमणीयं ददर्श ह ॥७॥**

उस समय भीम ने उस विशाल, निर्जन एवं भयंकर वन में प्रवेश करके एक अति सुन्दर तथा विस्तृत छायावाला बरगद का वृक्ष देखा।

**तत्र निक्षिप्य तान् सर्वानुवाच भरतर्षभः।**
**पानीयं मृगयामीह विश्रमध्वमिति प्रभो ॥८॥**

राजन्! भरत-कुलभूषण भीमसेन ने उन सबको वहीं बिठाकर कहा—"आप सब लोग यहीं विश्राम करें, तबतक मैं पानी का पता लगाता हूँ।

**एते रुवन्ति मधुरं सारसा जलचारिणः।**
**ध्रुवमत्र जलस्थानं महच्चेति मतिर्मम ॥९॥**

"ये जलचर सारस पक्षी बहुत मीठी बोली बोल रहे हैं, अतः यहाँ निकट ही अवश्य कोई महान् जलाशय होगा—ऐसा मेरा विश्वास है।"

**अनुज्ञातः स गच्छेति भ्रात्रा ज्येष्ठेन भारत।**
**जगाम तत्र यत्र स्म सारसा जलचारिणः ॥१०॥**

हे भारत! जब बड़े भाई युधिष्ठिर ने 'जाओ' ऐसा कहकर उन्हें आज्ञा प्रदान कर दी, तब भीमसेन वहीं गये, जहाँ वे जलचर सारस पक्षी कलरव कर रहे थे।

**स तत्र पीत्वा पानीयं स्नात्वा च भरतर्षभ।**
**तेषामर्थे च जग्राह भ्रातॄणां भ्रातृवत्सलः।**
**उत्तरीयेण पानीयमानयामास भारत ॥११॥**

भरतश्रेष्ठ! वहाँ पानी पीकर तथा स्नान करके भाइयों पर स्नेह रखनेवाले भीमसेन उनके लिए भी चादर में पानी ले आये।

**स सुप्तां मातरं दृष्ट्वा भ्रातॄंश्च वसुधातले।**
**भृशं शोकपरीतात्मा विललाप वृकोदरः ॥१२॥**

वहाँ अपनी माता और भाइयों को भूमि पर सोया देख भीमसेन मन-ही-मन शोक से सन्तप्त हो उठे और इस प्रकार विलाप करने लगे—

**अतः कष्टतरं किं नु द्रष्टव्यं हि भविष्यति।**
**यत् पश्यामि महीसुप्तान् भ्रातॄनद्य सुमन्दभाक् ॥१३॥**

"हाय! मैं कितना भाग्यहीन हूँ कि आज अपने भाइयों को भूमि पर सोया हुआ देख रहा हूँ। इससे महान् कष्ट की और क्या बात देखने में आएगी!

**शयनेषु पराध्र्येषु ये पुरा वारणावते।**
**नाधिजग्मुस्तदा निद्रां तेऽद्य सुप्ता महीतले ॥१४॥**

"आज से पहले जब हम लोग वारणावत में थे, उस समय जिन्हें बहुमूल्य शय्याओं पर भी नींद नहीं आती थी, वे ही आज धरती पर सो रहे हैं।

**त्रिषु लोकेषु यो राज्यं धर्मनित्योऽर्हते नृपः।**
**सोऽयं भूमौ परिश्रान्तः शेते प्राकृतवत् कथम् ॥१५॥**

"जो नित्यधर्मपरायण नरेश तीनों लोकों का राज्य पाने के अधिकारी हैं, वे ही आज साधारण मनुष्यों की भाँति थके-माँदे पृथिवी पर कैसे पड़े हैं!

**ज्ञातयो यस्य नैव स्युर्विषमाः कुलपांसनाः।**
**स जीवेत्ससुखं लोके ग्रामद्रुम इवैकजः ॥१६॥**

"जिसके कुटुम्बी पक्षपातयुक्त और कुल को कलंक लगानेवाले नहीं होते, वह पुरुष ग्राम के अकेले वृक्ष की भाँति संसार में सुखपूर्वक जीवन धारण करता है।

**येषां च बहवः शूरा ज्ञातयो धर्ममाश्रिताः।**
**ते जीवन्ति सुखं लोके भवन्ति च निरामयाः ॥१७॥**

"जिनके पक्ष में बहुत-से शूरवीर होते हैं और जिनके भाई-बन्धु धर्मपरायण होते हैं, वे संसार में सुख से जीते और नीरोग रहते हैं।

**बलवन्तः समृद्धार्था मित्रबान्धवनन्दनाः।**
**जीवन्त्यन्योन्यमाश्रित्य द्रुमाः काननजा इव ॥१८॥**

"जो बलवान् हैं, धनसम्पन्न तथा मित्रों और भाई-बन्धुओं को आनन्दित करनेवाले हैं, वे जंगल के वृक्षों की भाँति एक-दूसरे के सहारे जीवन धारण करते हैं।

**वयं तु धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण दुरात्मना।**
**विवासिता न दग्धाश्च कथञ्चिद् दैवसंश्रयात् ॥१९॥**

"दुरात्मा धृतराष्ट्र और उसके पुत्र ने तो हमें घर से निकाल दिया तथा जलाने की भी चेष्टा की, परन्तु किसी प्रकार भाग्य के भरोसे हम बच गये हैं।

**सकामो भव दुर्बुद्धे नानुज्ञां मे युधिष्ठिरः।**
**प्रयच्छति वधे तुभ्यं तेन जीवसि दुर्मते ॥२०॥**
**नन्वद्य त्वां सहामात्यं सकर्णानुजसौबलम्।**
**गत्वा क्रोधसमाविष्टः प्रेषयिष्ये यमक्षयम् ॥२१॥**

"ओ दुर्बुद्धि दुर्योधन ! आज तेरी कामना पूरी हुई। क्या करूँ ! राजा युधिष्ठिर मुझे तेरा वध करने की आज्ञा नहीं दे रहे हैं, दुर्मते ! इसीलिए तू अबतक जी रहा है। अन्यथा ओ पापाचारी ! मैं आज ही जाकर कुपित हो मन्त्रियों, कर्ण, छोटे भाई और शकुनिसहित तुझे यमलोक भेज सकता हूँ।"

**एवमुक्त्वा महाबाहुर्निश्वसन् दीनमानसः।**
**भ्रातॄन् महीतले सुप्तानवैक्षत वृकोदरः ॥२२॥**

ऐसा कहकर महाबाहु भीमसेन लम्बी साँस खींचते हुए भूमि पर सोये हुए भाइयों की ओर देखने लगे।

**पास्यन्तीमे जलं पश्चात् प्रतिबुद्धा जितक्लमाः।**
**इति भीमो व्यवस्यैव जजागार स्वयं तदा ॥२३॥**

"ये मेरे भाई जब नींद से उठेंगे, तभी जल पीएँगे"—ऐसा निश्चय करके भीमसेन उस समय स्वयं जागरण करने लगे।

**इति महाभारते आदिपर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥**

# पञ्चविंशोऽध्यायः

## हिडिम्बा राक्षसी का पाण्डवों के पास आगमन और भीम से वार्तालाप, हिडिम्ब का आना, भीम के साथ उसका युद्ध और भीम द्वारा उसका वध

वैशम्पायन उवाच

**तत्र तेषु शयानेषु हिडिम्बो नाम राक्षसः।**
**अविदूरे वनात् तस्माच्छालवृक्षं समाश्रितः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! जहाँ पाण्डव कुन्ती-सहित सो रहे थे, उस वन से थोड़ी ही दूर पर एक शालवृक्ष का आश्रय ले हिडिम्ब नाम का राक्षस रहता था।

**क्रूरो मानुषमांसादो महावीर्यपराक्रमः।**
**यदृच्छया तानपश्यत् पाण्डुपुत्रान् महारथान् ॥२॥**

वह अत्यन्त क्रूर और मनुष्य-मांसभक्षी था। उसका बल और पराक्रम महान् था। दैवयोग से उसकी दृष्टि उन महारथी पाण्डवों पर पड़ी।

**हृष्टो मानुषमांसस्य महाकायो महाबलः।**
**आघ्राय मानुषं गन्धं भगिनीमिदमब्रवीत् ॥३॥**

मनुष्य का मांस मिलने की सम्भावना से वह बहुत प्रसन्न हुआ। उस महाबली, विशालकाय राक्षस ने मनुष्य की गन्ध पाकर अपनी बहिन से कहा—

**उपपन्नश्चिरस्याद्य भक्ष्योऽयं मम सुप्रियः।**
**स्नेहस्रवान् प्रस्रवति जिह्वा पर्येति मे सुखम् ॥४॥**

"आज बहुत समय पश्चात् ऐसा भोजन मिला है, जो मुझे बहुत प्रिय है। इस समय मांस खाने के आनन्द से मेरी जीभ लार टपका रही है, और मुख में चारों ओर घूम रही है।

**गच्छ जानीहि के त्वेते शेरते वनमाश्रिताः।**
**मानुषो बलवान् गन्धो घ्राणं तर्पयतीव मे ॥५॥**

"अतः बहिन ! तुम जाओ, और पता लगाओ कि ये कौन हैं जो इस वन में आकर सो रहे हैं।

मनुष्य की तीव्र गन्ध आज मेरी नासिका को मानो तृप्त कर रही है।

**हत्वैतान् मानुषान् सर्वानानयस्व ममान्तिकम्।**
**अस्मद्विषयसुप्तेभ्यो नैतेभ्यो भयमस्ति ते ।।६।।**

"तुम इन सब मनुष्यों को मारकर मेरे पास ले आओ। ये हमारी सीमा में सो रहे हैं, अतः इनसे तुम्हें तनिक भी भय नहीं होना चाहिए।

**एषामुत्कृत्य मांसानि मानुषाणां यथेष्टतः।**
**भक्षयिष्याव सहितौ कुरु तूर्णं वचो मम ।।७।।**

"फिर हम दोनों एक साथ बैठकर इन मनुष्यों के मांस को नोच-नोचकर जी-भरकर खाएँगे। तुम मेरी इस आज्ञा का तुरन्त पालन करो।"

**एवमुक्ता हिडिम्बा तु हिडिम्बेन तदा वने।**
**जगाम तत्र यत्र स्म पाण्डवा भरतर्षभ ।।८।।**
**ददर्श तत्र सा गत्वा पाण्डवान् पृथया सह।**
**शयानान् भीमसेनं च जाग्रतं त्वपराजितम् ।।९।।**

भरतश्रेष्ठ ! उस समय वन में हिडिम्ब के ऐसा कहने पर हिडिम्बा उस स्थान पर गई, जहाँ पाण्डव सो रहे थे। वहाँ पहुँचकर उसने कुन्ती के साथ पाण्डवों को सोते और किसी से परास्त न होनेवाले भीमसेन को जागते हुए देखा।

**दृष्ट्वैव भीमसेनं सा शालपोतमिवोद्गतम्।**
**राक्षसी कामयामास रूपेणाप्रतिमं भुवि ।।१०।।**

धरती पर उगे हुए शाल वृक्ष की भाँति मनोहर तथा पृथिवी पर अनुपम रूपवान् भीमसेन को देखते ही वह राक्षसी [मुग्ध हो] उन्हें चाहने लगी।

**अयं श्यामो महाबाहुः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः।**
**कम्बुग्रीवः पुष्कराक्षो भर्ता युक्तो भवेन्मम ।।११।।**

[उसने मन-ही-मन सोचा—] इस श्यामसुन्दर तरुण वीर की भुजाएँ विशाल हैं, कन्धे सिंह के-से हैं। ये महान् तेजस्वी हैं। इनकी गर्दन शंख के समान सुन्दर और नेत्र कमल के सदृश विशाल हैं। ये मेरे लिए उपयुक्त पति हो सकते हैं।

**नाहं भ्रातृवचो जातु कुर्यां क्रूरोपसंहितम्।**
**पतिस्नेहोऽतिबलवान् न तथा भ्रातृसौहृदम् ।।१२।।**
**मुहूर्तमेव तृप्तिश्च भवेद् भ्रातुर्ममैव च।**
**हतैरेतैरहत्वा तु मोदिष्ये शाश्वतीः समाः ।।१३।।**

"मेरे भाई की आज्ञा क्रूरता से भरी है, अतः मैं कदापि उसका पालन नहीं करूँगी। [नारी के हृदय में] पति का प्रेम जितना प्रबल होता है, भाई का सौहार्द उतना नहीं। इन सबको मार देने पर इनके मांस से मुझे और मेरे भाई को केवल दो घड़ी के लिए तृप्ति मिल सकती है और यदि इन्हें न मारूँ तो बहुत वर्षों तक इनके साथ आनन्द भोगूँगी।"

**उपतस्थे महाबाहुं भीमसेनं शनैः शनैः।**
**लज्जमानेव ललना दिव्याभरणभूषिता ।।१४।।**

[ऐसा सोचकर] दिव्य आभूषणों से विभूषित वह राक्षसी लजीली ललना की भाँति धीरे-धीरे महाबाहु भीमसेन के पास गई। [भीमसेन के पास पहुँचकर—]

राक्षस्युवाच

**कुतस्त्वमसि सम्प्राप्तः कश्चासि पुरुषर्षभ।**
**क इमे शेरते चेह पुरुषा देवरूपिणः ।।१५।।**

**राक्षसी ने पूछा**—हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप कौन हैं और कहाँ से आये हैं ? ये देवताओं के समान सुन्दर रूपवाले पुरुष कौन हैं, जो यहाँ सो रहे हैं ?

**केयं वै बृहती श्यामा सुकुमारी तवानघ।**
**शेते वनमिदं प्राप्य विश्वस्ता स्वे गृहे यथा ।।१६।।**

निष्पाप ! ये सबसे अधिक अवस्थावाली, श्यामा[1], सुकुमारी देवी आपकी कौन लगती हैं, जो इस वन में आकर भी ऐसी निःशङ्क होकर सो रही हैं, मानो अपने घर में ही हों।

**नेदं जानाति गहनं वनं राक्षससेवितम्।**
**वसति ह्यत्र पापात्मा हिडिम्बो नाम राक्षसः ।।१७।।**

आपको यह पता नहीं है कि यह गहन वन राक्षसों का निवास-स्थान है। यहाँ हिडिम्ब नामक पापात्मा राक्षस रहता है।

---

१. श्यामा का अर्थ प्रायः काली स्त्री समझा जाता है। परन्तु इसका केवल यही अर्थ नहीं है। मल्लिनाथ ने 'शिशुपाल-वध' और 'मेघदूत' की टीका में श्यामा का अर्थ 'यौवन-मध्यस्था' किया है। भट्टिकाव्य के एक टीकाकार के अनुसार—

**तप्तकाञ्चनवर्णाभा स्त्री श्यामेति कथ्यते।**

तपाये हुए सोने के समान वर्णवाली स्त्री को श्यामा कहते हैं।

**तेनाहं प्रेषिता भ्रात्रा दुष्टभावेन रक्षसा।**
**बिभक्षयिषता मांसं युष्माकममरोपम ॥१८॥**

वह मेरा भाई है। उस राक्षस ने दुष्टभाव से मुझे यहाँ भेजा है। देवोपम वीर! वह आप लोगों का मांस खाना चाहता है।

**साहं त्वामभिसम्प्रेक्ष्य देवगर्भसमप्रभम्।**
**नान्यं भर्तारमिच्छामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥१९॥**

आपका तेज देवकुमारों जैसा है, मैं आपको देखकर अब किसी अन्य को अपना पति नहीं बनाना चाहती। मैं यह सच्ची बात आपसे कह रही हूँ।

**एतद् विज्ञाय धर्मज्ञ युक्तं मयि समाचर।**
**कामोपहतचित्ताङ्गीं भजमानां भजस्व माम् ॥२०॥**

हे धर्मज्ञ! इस बात को समझकर आप मेरे साथ उचित बर्ताव कीजिए। मेरे तन-मन को काम ने मथ डाला है। मैं आपकी सेविका हूँ, आप मुझे स्वीकार कीजिए।

**त्रास्यामि त्वां महाबाहो राक्षसात्पुरुषादकात्।**
**वत्स्यावो गिरिदुर्गेषु भर्ता भव ममानघ ॥२१॥**

हे महाबाहो! मैं इस नरभक्षी राक्षस से आपकी रक्षा करूँगी। हम दोनों पर्वतों की दुर्गम कन्दराओं में निवास करेंगे। अनघ! आप मेरे पति हो जाइए।

**अन्तरिक्षचरी ह्यस्मि कामतो विचरामि च।**
**अतुलामाप्नुहि प्रीतिं तत्र तत्र मया सह ॥२२॥**

मैं आकाश में विचरनेवाली हूँ तथा जहाँ इच्छा हो वहाँ भी विचरण कर सकती हूँ। आप मेरे साथ विभिन्न लोकों और प्रदेशों में विहार करके अनुपम प्रसन्नता प्राप्त कीजिए।

भीमसेन उवाच

**मातरं भ्रातरं ज्येष्ठं सुखसुप्तान् कथं त्विमान्।**
**परित्यजेत को न्वद्य प्रभवन्निह राक्षसि ॥२३॥**

**भीमसेन बोले**—राक्षसी! कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो इस जगत् में सामर्थ्यवान् होते हुए भी, सुखपूर्वक सोते हुए इन बन्धुओं को, माता को तथा ज्येष्ठ भ्राता को किसी प्रकार अरक्षित छोड़कर जा सके?

**को हि सुप्तानिमान्भ्रातॄन्दत्त्वा राक्षसभोजनम्।**
**मातरं च नरो गच्छेत् कामार्त इव मद्विधः ॥२४॥**

मुझ जैसा कौन पुरुष कामपीड़ित की भाँति इन सोये हुए भाइयों और माता को राक्षस का भोजन बनाकर [अन्यत्र] जा सकता है?

राक्षस्युवाच

**यत्ते प्रियं तत् करिष्ये सर्वानेतान् प्रबोधय।**
**मोक्षयिष्याम्यहं कामं राक्षसात् पुरुषादकात् ॥२५॥**

**राक्षसी बोली**—आपको जो प्रिय लगे मैं वहीं करूँगी। आप इन सब लोगों को जगा दीजिए। मैं इच्छानुसार उस नर-भक्षी राक्षस से इन सबको छुड़ा लूँगी।

भीमसेन उवाच

**सुखसुप्तान् वने भ्रातॄन् मातरं चैव राक्षसि।**
**न भयाद् बोधयिष्यामि भ्रातुस्तव दुरात्मनः ॥२६॥**

**भीमसेन ने कहा**—राक्षसी! मेरे भाई और माता इस वन में सुखपूर्वक सो रहे हैं, तुम्हारे दुरात्मा भाई के भय से मैं इन्हें नहीं जगाऊँगा।

**न हि मे राक्षसा भीरु सोढुं शक्ताः पराक्रमम्।**
**न मनुष्या न गन्धर्वा न यक्षाश्चारुलोचने ॥२७॥**

हे भीरु! सुलोचने! मेरे पराक्रम को राक्षस, मनुष्य, गन्धर्व तथा यक्ष—कोई भी नहीं सह सकता।

**गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे यद्वापीच्छसि तत्कुरु।**
**तं वा प्रेषय तन्वङ्गि भ्रातरं पुरुषादकम् ॥२८॥**

अतः भद्रे! तुम जाओ या रहो, अथवा जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वही करो। तन्वङ्गि! यदि तुम चाहो तो अपने नरमांसभक्षी भाई को ही भेज दो।

वैशम्पायन उवाच

**तां विदित्वा चिरगतां हिडिम्बो राक्षसेश्वरः।**
**अवतीर्य द्रुमात् तस्मादाजगामाशु पाण्डवान् ॥२९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! उधर राक्षसराज हिडिम्ब यह सोचकर कि मेरी बहन को गये बहुत देर हो गई, उस वृक्ष से नीचे उतरा और शीघ्र ही पाण्डवों के पास आ गया।

**तमापतन्तं दृष्ट्वैव तथा विकृतदर्शनम्।**
**हिडिम्बोवाच वित्रस्ता भीमसेनमिदं वचः ॥३०॥**

देखने में विकराल उस राक्षस हिडिम्ब को आते देखकर ही हिडिम्बा भय से थर्रा उठी और भीमसेन से इस प्रकार बोली—

**अहं कामगमा वीर रक्षोबलसमन्विता ।**
**आरोहेमां मम श्रोणिं नेष्यामि त्वां विहायसा ॥३१॥**

"हे वीर ! मैं इच्छानुसार चल सकती हूँ, मुझमें राक्षसों का सम्पूर्ण बल है । आप मेरी पीठ पर बैठ जाइए । मैं आपको आकाश-मार्ग से ले चलूँगी ।

**प्रबोधयैतान् संसुप्तान् मातरं च परन्तप ।**
**सर्वानिव गमिष्यामि गृहीत्वा वो विहायसा ॥३२॥**

"हे परन्तप ! आप इन सोये हुए भाइयों और माताजी को भी जगा दीजिए । मैं आप सब लोगों को लेकर आकाश-मार्ग से उड़ चलूँगी ।"

भीम उवाच

**मा भैस्त्वं पृथुसुश्रोणि नैष कश्चिन्मयि स्थिते ।**
**अहमेनं हनिष्यामि प्रेक्षन्त्यास्ते सुमध्यमे ॥३३॥**

**भीमसेन ने कहा**—सुन्दरी ! तुम डरो मत । मेरे सामने यह राक्षस कुछ भी नहीं है । सुमध्यमे ! मैं तुम्हारे देखते-देखते इसे मार डालूँगा ।

**नायं प्रतिबलो भीरु राक्षसापसदो मम ।**
**सोढुं युधि परिस्पन्दमथवा सर्वराक्षसाः ॥३४॥**

भीरु ! यह नीच राक्षस युद्ध में मेरे आक्रमण का वेग सह सके, ऐसा बलवान् नहीं है । यह अथवा सम्पूर्ण राक्षस भी मेरा सामना नहीं कर सकते ।

हिडिम्बोवाच

**नावमन्ये नरव्याघ्र त्वामहं देवरूपिणम् ।**
**दृष्टप्रभावस्तु मया मानुषेष्वेव राक्षसः ॥३५॥**

**हिडिम्बा बोली**—नरश्रेष्ठ ! आपका स्वरूप तो देवताओं के समान है । मैं आपका तिरस्कार नहीं करती । मैं तो इसलिए कहती थी कि मनुष्यों पर ही इस राक्षस का प्रभाव मैं [कई बार] देख चुकी हूँ ।

वैशम्पायन उवाच

**तथा संजल्पतस्तस्य भीमसेनस्य भारत ।**
**वाचः शुश्राव ताः क्रुद्धो राक्षसः पुरुषादकः ॥३६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! उस नर-भक्षी राक्षस हिडिम्ब ने क्रोधपूर्वक वहाँ आकर भीमसेन की कही हुई उपर्युक्त बातें सुनीं ।

**तां तथा मानुषं रूपं बिभ्रतीं सुमनोहरम् ।**
**पुंस्कामां शङ्कमानश्च चुक्रोध पुरुषादकः ॥३७॥**

उधर अपनी बहिन को सुन्दर एवं मनोहर मानव-रूप धारण किये देखकर राक्षस के मन में यह सन्देह हुआ कि हो-न-हो, यह पतिरूप में किसी पुरुष का वरण करना चाहती है । यह विचार मन में आते ही वह कुपित हो उठा ।

**संक्रुद्धो राक्षसस्तस्या भगिन्याः कुरुसत्तम ।**
**उत्फाल्य विपुले नेत्रे ततस्तामिदमब्रवीत् ॥३८॥**

हे कुरुश्रेष्ठ ! अपनी बहिन पर उस राक्षस का क्रोध बहुत बढ़ गया था । फिर तो उसने बड़ी-बड़ी आँखें फाड़कर उसकी ओर देखते हुए कहा—

**को हि मे भोक्तुकामस्य विघ्नं चरति दुर्मतिः ।**
**न बिभेषि हिडिम्बे किं मत्कोपाद्विप्रमोहिता ॥३९॥**

"हिडिम्बे ! मैं [भूखा हूँ और] भोजन चाहता हूँ । कौन मूर्ख मनुष्य मेरे इस अभीष्ट की सिद्धि में विघ्न डाल रहा है ? तू अत्यन्त मोह के वशीभूत होकर क्या मेरे क्रोध से नहीं डरती है ?

**धिक् त्वामसति पुंस्कामे मम विप्रियकारिणि ।**
**पूर्वेषां राक्षसेन्द्राणां सर्वेषामयशस्करि ॥४०॥**

"मनुष्य को पति बनाने की इच्छा रखकर मेरा अप्रिय करनेवाली दुराचारिणि ! तुझे धिक्कार है । तू पूर्ववर्ती सम्पूर्ण राक्षसराजों के कुल में कलंक लगानेवाली है ।

**यानिमानाश्रिताकार्षीर्विप्रियं सुमहन्मम ।**
**एष तानद्य वै सर्वान् हनिष्यामि त्वया सह ॥४१॥**

"जिन लोगों का आश्रय लेकर तूने मेरा महान् अप्रिय कार्य किया है, यह देख, मैं उन सबको आज तेरे साथ ही मार डालता हूँ ।"

**एवमुक्त्वा हिडिम्बां स हिडिम्बो लोहितेक्षणः ।**
**वधायाभिपपातैतान् दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन् ॥४२॥**

हिडिम्बा से ऐसा कहकर लाल-लाल आँखें किये हिडिम्ब दाँत-से-दाँत पीसता हुआ हिडिम्बा और पाण्डवों का वध करने की इच्छा से उनकी ओर झपटा ।

**भीमसेनस्तु तं दृष्ट्वा राक्षसं प्रहसन्निव ।**
**भगिनीं प्रति संक्रुद्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥४३॥**

अपनी बहिन पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए [और उसपर झपटते हुए] राक्षस की ओर देखकर भीमसेन हँसते हुए से इस प्रकार बोले—

**मयि तिष्ठति दुष्टात्मन् न स्त्रियं हन्तुमर्हसि ।**
**अहमेकश्च नेष्यामि त्वामद्य यमसादनम् ।।४४।।**

"दुष्टात्मन् ! तू मेरे रहते [किसी] स्त्री को नहीं मार सकता । आज मैं अकेला ही [तुझसे लड़कर] तुझे यमलोक पठा दूंगा ।

**निराबाधास्त्वयि हते मया राक्षसपांसन ।**
**वनमेतच्चरिष्यन्ति पुरुषा वनचारिणः ।।४५।।**

"राक्षसकुलाङ्गार ! मेरे हाथों से तेरे मारे जाने पर वनवासी लोग बिना किसी विघ्न-बाधा के इस वन में विचरण करेंगे ।"

हिडिम्ब उवाच

**गर्जितेन वृथा किं ते कत्थितेन च मानुष ।**
**कृत्वैतत् कर्मणा सर्वं कत्थेथा मा चिरं कृथाः ।।४६।।**

**हिडिम्ब बोला**—अरे ओ मनुष्य ! व्यर्थ गर्जना करने और बढ़-बढ़कर बातें बनाने से क्या लाभ ? यह सब-कुछ पहले करके दिखा, फिर डींग हाँकना, अब देर न कर ।"

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वा ततो बाहुं प्रगृह्य पुरुषादकः ।**
**अभ्यद्रवत संक्रुद्धो भीमसेनमरिन्दमम् ।।४७।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! ऐसा कहकर क्रोध में भरा हुआ वह नरभक्षी राक्षस अपनी एक बाँह ऊपर को उठाये शत्रुदमन भीमसेन पर टूट पड़ा ।

**अन्योन्यं तौ समासाद्य विचकर्षतुरोजसा ।**
**हिडिम्बो भीमसेनश्च विक्रमं चक्रतुः परम् ।।४८।।**

फिर तो वे दोनों एक-दूसरे से गुंथ गये, और बलपूर्वक एक-दूसरे को अपनी-अपनी ओर खींचने लगे । हिडिम्ब और भीमसेन दोनों ने बड़ा भारी पराक्रम प्रकट किया ।

**तयोः शब्देन महता विबुद्धास्ते नरर्षभाः ।**
**सह मात्रा च ददृशुर्हिडिम्बामग्रतः स्थिताम् ।।४९।।**

उन दोनों की भारी गर्जना से वे नरश्रेष्ठ पाण्डव माता-सहित जाग उठे और उन्होंने अपने सामने खड़ी हुई हिडिम्बा को देखा ।

**प्रबुद्धास्ते हिडिम्बाया रूपं दृष्ट्वातिमानुषम् ।**
**विस्मिताः पुरुषव्याघ्रा बभूवुः पृथया सह ।।५०।।**

जागने पर हिडिम्बा का अलौकिक रूप देख वे पुरुषसिंह पाण्डव माता कुन्ती-सहित अति विस्मित हो गये । तब—

कुन्त्युवाच

**कस्य त्वं सुरगर्भाभे का वासि वरवर्णिनि ।**
**केन कार्येण सम्प्राप्ता कुतश्चागमनं तव ।।५१।।**

**कुन्ती ने पूछा**—देवकन्याओं की-सी कान्तिवाली सुन्दरि ! तुम कौन हो और किसकी कन्या हो ? तुम किस कार्य के लिए आई हो और कहाँ से आई हो ?

हिडिम्बोवाच

**यदेतत् पश्यसि वनं नीलमेघनिभं महत् ।**
**निवासो राक्षसस्यैष हिडिम्बस्य ममैव च ।।५२।।**

**हिडिम्बा बोली**—देवि ! यह जो नील मेघ के समान विशाल वन आप देख रही हैं, यही राक्षस हिडिम्ब का और मेरा निवास-स्थान है ।

**तस्य मां राक्षसेन्द्रस्य भगिनीं विद्धि भामिनि ।**
**भ्रात्रा सम्प्रेषितामार्ये त्वां सपुत्रां जिघांसता ।।५३।।**

महाभागे ! आप मुझे उस राक्षसराज हिडिम्ब की बहिन समझें । आर्ये ! मेरे भाई ने मुझे आपकी और आपके पुत्रों की हत्या करने की इच्छा से भेजा था ।

**क्रूरबुद्धेरहं तस्य वचनादागता त्विह ।**
**अद्राक्षं नवहेमाभं तव पुत्रं महाबलम् ।।५४।।**

उस क्रूरबुद्धि के कहने से मैं यहाँ आई । यहाँ नूतन स्वर्ण की-सी आभावाले आपके महाबली पुत्र पर मेरी दृष्टि पड़ी ।

**ततोऽहं सर्वभूतानां भावे विचरता शुभे ।**
**प्रेरिता तव पुत्रस्य मन्मथेन वशानुगा ।।५५।।**

शुभे ! उन्हें देखते ही समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में विचरनेवाले कामदेव से प्रेरित होकर मैं आपके पुत्र की वशवर्तिनी हो गई ।

**ततो वृतो मया भर्ता तव पुत्रो महाबलः ।**
**अपनेतुं च यतितो न चैव शकितो मया ।।५६।।**

तब मैंने आपके महाबली पुत्र को पति-रूप में वरण कर लिया और इस बात के लिए प्रयत्न किया कि उन्हें [और आप सबको] लेकर यहाँ से अन्यत्र

भाग चलूं, परन्तु आपके पुत्र की स्वीकृति न मिलने से मैं इस कार्य में सफल न हो सकी।

**चिरायमाणां मां ज्ञात्वा ततः स पुरुषादकः।**
**स्वयमेवागतो हन्तुमिमान् सर्वांस्तवात्मजान् ॥५७॥**

मेरे लौटने में देर होती जान वह नरभक्षी राक्षस स्वयं ही आपके इन सब पुत्रों को मार डालने के लिए यहाँ आया।

**स तेन मम कान्तेन तव पुत्रेण धीमता।**
**बलादितो विनिष्पिष्य व्यपनीतो महात्मना ॥५८॥**

परन्तु मेरे प्राणवल्लभ तथा आपके बुद्धिमान् पुत्र महात्मा भीम उसे बलपूर्वक यहाँ से रगड़ते हुए हटा ले गये हैं।

**विकर्षन्तौ महावेगौ गर्जमानौ परस्परम्।**
**पश्यैवं युधि विक्रान्तावेतौ च नरराक्षसौ ॥५९॥**

देखिए, युद्ध में पराक्रम दिखानेवाले वे दोनों मनुष्य और राक्षस जोर-जोर से गर्ज रहे हैं तथा बड़े वेग से गुत्थमगुत्था होकर एक-दूसरे को अपनी ओर खींच रहे हैं।

वैशम्पायन उवाच

**तस्याः श्रुत्वैव वचनमुत्पपात युधिष्ठिरः।**
**अर्जुनो नकुलश्चैव सहदेवश्च वीर्यवान् ॥६०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! हिडिम्बा की यह बात सुनते ही युधिष्ठिर उछलकर खड़े हो गये। तब अर्जुन, नकुल और पराक्रमी सहदेव ने भी ऐसा ही किया।

**तौ ते ददृशुरासक्तौ विकर्षन्तौ परस्परम्।**
**काङ्क्षमाणौ जयं चैव सिंहाविव बलोत्कटौ ॥६१॥**

तदनन्तर उन्होंने देखा कि वे दोनों प्रचण्ड बलशाली सिंहों की भाँति आपस में गुँथे हुए हैं तथा अपनी-अपनी विजय चाहते हुए एक-दूसरे को घसीट रहे हैं।

**राक्षसेन तदा भीमं क्लिश्यमानं निरीक्ष्य च।**
**उवाचेदं वचः पार्थः प्रहसञ्छनकैरिव ॥६२॥**

उस समय भीमसेन को राक्षस द्वारा पीड़ित होते देख अर्जुन धीरे-धीरे हँसते हुए-से बोले—

**भीम मा भैर्महाबाहो न त्वां बुध्यामहे वयम्।**
**समेतं भीमरूपेण रक्षसा श्रमकर्शितम् ॥६३॥**

महाबाहु भैया भीम! डरना मत। अबतक हम लोग नहीं जानते थे कि तुम भयंकर राक्षस से भिड़कर अत्यन्त परिश्रम के कारण कष्ट पा रहे हो।

**साहाय्येऽस्मि स्थितः पार्थ पातयिष्यामि राक्षसम्।**
**नकुलः सहदेवश्च मातरं गोपयिष्यतः ॥६४॥**

कुन्तीनन्दन! अब मैं तुम्हारी सहायता के लिए उपस्थित हूँ। नकुल और सहदेव माताजी की रक्षा करेंगे।

भीम उवाच

**उदासीनो निरीक्षस्व न कार्यः सम्भ्रमस्त्वया।**
**न जात्वयं पुनर्जीवेन्मद्बाह्वन्तरमागतः ॥६५॥**

**भीम बोले**—अर्जुन! तुम तटस्थ होकर चुपचाप देखते रहो। तुम्हें घबराने की आवश्यकता नहीं। मेरी दोनों भुजाओं के बीच में आकर अब यह राक्षस कदापि जीवित नहीं रह सकता।

अर्जुन उवाच

**किमनेन चिरं भीम जीवता पापरक्षसा।**
**गन्तव्यं न चिरं स्थातुमिह शक्यमरिन्दम ॥६६॥**

**अर्जुन ने कहा**—हे शत्रुदमन भीम! इस पापी राक्षस को देर तक जीवित रखने से क्या लाभ? हम लोगों को आगे चलना है, अतः यहाँ अधिक समय तक ठहरना सम्भव नहीं है।

वैशम्पायन उवाच

**अर्जुनेनैवमुक्तस्तु भीमो रोषात् तु रक्षसः।**
**उत्क्षिप्याभ्रामयद् देहं तूर्णं शतगुणं तदा।**
**निष्पिष्यैनं बलाद् भूमौ पशुमारममारयत् ॥६७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—अर्जुन के ऐसा कहने पर भीम ने क्रोधपूर्वक उस राक्षस को तुरन्त ऊपर उठा लिया और उसे सौ बार घुमाया। फिर उसे बलपूर्वक भूमि पर दे मारा तथा उसे रगड़ते हुए पशु को मारने की भाँति मारना आरम्भ किया।

**स मार्यमाणो भीमेन ननाद विपुलं स्वनम्।**
**पूरयँस्तद् वनं सर्वं जलार्द्र इव दुन्दुभिः ॥६८॥**

इस प्रकार भीमसेन की मार पड़ने पर वह राक्षस जल से भीगे हुए नगारे की-सी ध्वनि से सम्पूर्ण वन को गुँजाता हुआ जोर-जोर से चीखने लगा।

**बाहुभ्यां योक्त्रयित्वा तं बलवान् पाण्डुनन्दनः ।**
**मध्ये भङ्क्त्वा महाबाहुर्हर्षयामास पाण्डवान् ॥६९॥**

तब महाबाहु बलवान् पाण्डुनन्दन भीमसेन ने उसे दोनों भुजाओं से बाँधकर उलटा मोड़ दिया और उसकी कमर तोड़कर पाण्डवों का हर्ष बढ़ाया।

**हिडिम्बं निहतं दृष्ट्वा संहृष्टास्ते तरस्विनः ।**
**अपूजयन् नरव्याघ्रं भीमसेनमरिन्दमम् ॥७०॥**

हिडिम्ब को मारा गया देख वे महान् वेगशाली पाण्डव अत्यन्त हर्ष से उल्लसित हो उठे और उन्होंने शत्रुओं का दमन करनेवाले नरश्रेष्ठ भीमसेन की भूरि-भूरि प्रशंसा की ।

**अभिपूज्य महात्मानं भीमं भीमपराक्रमम् ।**
**पुनरेवार्जुनो वाक्यमुवाचेदं वृकोदरम् ॥७१॥**

इस प्रकार भयंकर पराक्रमी महात्मा भीम की प्रशंसा करके अर्जुन ने पुनः उनसे यह बात कही—

**न दूरं नगरं मन्ये वनादस्मादहं विभो ।**
**शीघ्रं गच्छाम भद्रं ते न नो विद्यात् सुयोधनः ॥७२॥**

"प्रभो ! मैं समझता हूँ, इस वन से नगर बहुत दूर नहीं है । तुम्हारा कल्याण हो । अब हम लोग शीघ्र चलें, जिससे दुर्योधन को हमारा पता न लग सके ।"

**ततः सर्वे तथेत्युक्त्वा सह मात्रा महारथाः ।**
**प्रययुः पुरुषव्याघ्रा हिडिम्बा चैव राक्षसी ॥७३॥**

तब वे सभी पुरुषसिंह महारथी पाण्डव 'बहुत अच्छा, ऐसा ही करें' यों कहकर माता के साथ वहाँ से चल दिये । हिडिम्बा राक्षसी भी उनके साथ हो ली ।

**इति महाभारते आदिपर्वणि पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥**

# षड्विंशोऽध्यायः

## भीमसेन और हिडिम्बा का मिलन तथा घटोत्कच की उत्पत्ति, पाण्डवों की व्यासजी से भेंट और उनका एकचक्रा नगरी में प्रवेश

भीमसेन उवाच

**स्मरन्ति वैरं रक्षांसि मायामाश्रित्य मोहिनीम् ।**
**हिडिम्बे व्रज पन्थानं त्वमिमं भ्रातृसेवितम् ॥१॥**

[हिडिम्बा को अपने पीछे-पीछे आते देखकर] **भीमसेन बोले**—हिडिम्बे ! राक्षस मोहिनी माया का आश्रय लेकर बहुत दिनों तक वैर का स्मरण रखते हैं, अतः तू भी अपने भाई के ही मार्ग पर चली जा।

युधिष्ठिर उवाच

**क्रुद्धोऽपि पुरुषव्याघ्र भीम मा स्म स्त्रियं वधीः ।**
**शरीरगुप्त्याभ्यधिकं धर्मं गोपाय पाण्डव ॥२॥**

[यह सुनकर] **युधिष्ठिर बोले**—हे पुरुषसिंह भीम ! यद्यपि तुम क्रोध से भरे हुए हो तो भी स्त्री का वध मत करो। पाण्डुनन्दन ! शरीर की रक्षा की अपेक्षा भी अधिक तत्परता से धर्म की रक्षा करो ।

वैशम्पायन उवाच

**हिडिम्बा तु ततः कुन्तीमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।**
**युधिष्ठिरं तु कौन्तेयमिदं वचनमब्रवीत् ॥३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तत्पश्चात् हिडिम्बा ने हाथ जोड़कर कुन्तीदेवी तथा उनके पुत्र युधिष्ठिर को प्रणाम करके इस प्रकार कहा—

**आर्ये जानासि यद् दुःखमिह स्त्रीणामनङ्गजम् ।**
**तदिदं मामनुप्राप्तं भीमसेनकृतं शुभे ॥४॥**

"आर्ये ! संसार में स्त्रियों को जो कामजनित पीड़ा होती है, उसे आप जानती ही हैं । शुभे ! आपके पुत्र भीमसेन की ओर से मुझे वही कामदेव-जनित कष्ट प्राप्त हुआ है ।

**मया ह्युत्सृज्य सुहृदः स्वधर्मं स्वजनं तथा ।**
**वृतोऽयं पुरुषव्याघ्रस्तव पुत्रः पतिः शुभे ॥५॥**

"शुभे ! मैंने अपने हितैषी सुहृदों, स्वजनों तथा स्वधर्म का परित्याग करके आपके पुत्र पुरुषसिंह भीमसेन को अपना पति चुना है ।

**वीरेणाहं तथानेन त्वया चापि यशस्विनि ।**
**प्रत्याख्याता न जीवामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥६॥**

"यशस्विनि ! यदि ये वीरवर भीमसेन अथवा आप मेरी इस प्रार्थना को ठुकरा देंगे, तो मैं जीवित नहीं रह सकूँगी । यह मैं आपसे सत्य कहती हूँ ।

**तदर्हसि कृपां कर्तुं मयि त्वं वरवर्णिनि ।**
**मत्वा मूढेति तन्मां त्वं भक्ता वानुगतेति वा ॥७॥**

"अतएव हे वरवर्णिनि ! आपको मुझे एक मूढ स्वभाव की स्त्री मानकर अथवा अपनी भक्ता जानकर या सेविका समझकर मुझपर कृपादृष्टि करनी चाहिए ।

**भर्त्रानेन महाभागे संयोजय सुतेन ह ।**
**तमुपादाय गच्छेयं यथेष्टं देवरूपिणम् ।**
**पुनश्चैवानयिष्यामि विस्रम्भं कुरु मे शुभे ॥८॥**

"हे महाभागे ! मुझे अपने इस पुत्र से, जो मेरे मनोनीत पति हैं, मिलने का अवसर प्रदान कीजिए । मैं इन देवस्वरूप स्वामी को लेकर अपने अभीष्ट स्थान पर जाऊँगी और पुनः निश्चित समय पर इन्हें आपके पास वापस ले आऊँगी । हे शुभे ! आप मेरा विश्वास कीजिए ।

युधिष्ठिर उवाच

**एवमेतद् यथाऽऽत्थ त्वं हिडिम्बे नात्र संशयः ।**
**स्थातव्यं तु त्वया सत्ये यथा ब्रूयां सुमध्यमे ॥९॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हिडिम्बे ! तुम जैसा कह रही हो, वह सब ठीक है, इसमें संशय नहीं है । परन्तु सुमध्यमे ! मैं जैसे कहूँ, तुम्हें उसी प्रकार सत्य पर स्थित रहना चाहिए ।

**स्नातं कृताह्निकं भद्रे कृतकौतुकमङ्गलम् ।**
**भीमसेनं भजेथास्त्वं प्रागस्तगमनाद् रवेः ॥१०॥**

भद्रे ! जब भीमसेन स्नान और नित्यकर्म करके माङ्गलिक वेश-भूषा आदि धारण कर लें, तब तुम प्रतिदिन उनके साथ रहकर सूर्यास्त होने से पहले तक ही उनकी सेवा कर सकती हो ।

**अहस्सु विहरानेन यथाकामं मनोजवा ।**
**अयं त्वानयितव्यस्ते भीमसेनः सदा निशि ॥११॥**

तुम मन के समान वेग से चलने-फिरनेवाली हो, अतः दिनभर तो तुम इनके साथ अपनी इच्छा के अनुसार विहार करो, परन्तु रात्रि में भीमसेन को सदा ही हमारे पास पहुँचा देना होगा ।

वैशम्पायन उवाच

**तथेति तत् प्रतिज्ञाय हिडिम्बा राक्षसी तदा ।**
**भीमसेनमुपादाय सोर्ध्वमाचक्रमे ततः ॥१२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तब 'ऐसा ही होगा' यह प्रतिज्ञा करके हिडिम्बा राक्षसी भीमसेन को साथ ले, वहाँ से ऊपर आकाश में उड़ गई ।

**प्रजज्ञे राक्षसी पुत्रं भीमसेनान्महाबलम् ।**
**विरूपाक्षं महावक्त्रं शङ्कुकर्णं विभीषणम् ॥१३॥**

कुछ काल के पश्चात् उस राक्षसी ने भीमसेन से एक महान् बलवान् पुत्र उत्पन्न किया, जिसकी आँखें विकराल, मुख विशाल और कान शंकु के समान थे । वह देखने में भयंकर लगता था ।

**घटो हास्योत्कच इति माता तं प्रत्यभाषत ।**
**अब्रवीत् तेन नामास्य घटोत्कच इति स्म ह ॥१४॥**

बालक की माता ने भीमसेन से कहा—"इसका घट [सिर] उत्कच=केश-रहित है ।" उनके इस कथन से ही उसका नाम घटोत्कच हो गया ।

**संवाससमयो जीर्ण इत्याभाष्य ततस्तु तान् ।**
**हिडिम्बा समयं कृत्वा स्वां गतिं प्रत्यपद्यत ॥१५॥**

उधर हिडिम्बा पाण्डवों से यह कहकर कि भीमसेन के साथ रहने का मेरा समय समाप्त हो गया तथा आवश्यकता के समय पुनः मिलने की प्रतिज्ञा करके अपने अभीष्ट स्थान को चली गई ।

**ते वनेन वनं गत्वा घ्नन्तो मृगगणान् बहून् ।**
**अपक्रम्य ययू राजँस्त्वरमाणा महारथाः ॥१६॥**

जनमेजय ! वे महारथी पाण्डव एक वन से दूसरे वन में घूमते हुए तथा अनेक हिंसक पशुओं का आखेट करते हुए बड़ी उतावली के साथ आगे बढ़े ।

**जटाः कृत्वाऽऽत्मनः सर्वे वल्कलाजिनवाससः ।**
**सह कुन्त्या महात्मानो बिभ्रतस्तापसं वपुः ॥१७॥**
**क्वचिद् वहन्तो जननीं त्वरमाणा महारथाः ।**
**क्वचिच्छन्देन गच्छन्तस्ते जग्मुः प्रसभं पुनः ॥१८॥**

उन सबने अपने सिर पर जटाएँ रख ली थीं । उन्होंने वल्कल और मृगचर्म से अपने शरीर को ढँक लिया था तथा तपस्वी का-सा वेष धारण कर रखा था । इस प्रकार वे महारथी महात्मा पाण्डव माता कुन्तीदेवी के साथ कहीं तो उन्हें पीठ पर ढोते हुए तीव्र गति से चलते थे, कहीं इच्छानुसार शनैः-शनैः पग बढ़ाते थे और कहीं पुनः अपनी चाल तेज़ कर देते थे ।

**ब्राह्मं वेदमधीयाना वेदाङ्गानि च सर्वशः।**
**नीतिशास्त्रं च सर्वज्ञा ददृशुस्ते पितामहम् ॥१९॥**

पाण्डव लोग सब शास्त्रों के ज्ञाता तथा प्रतिदिन उपनिषद्, वेद-वेदाङ्ग तथा नीतिशास्त्र का स्वाध्याय किया करते थे। एक दिन जब वे स्वाध्याय में संलग्न थे, उन्हें पितामह व्यासजी का दर्शन हुआ।

**तेऽभिवाद्य महात्मानं कृष्णद्वैपायनं तदा।**
**तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे सह मात्रा परन्तपाः ॥२०॥**

शत्रुसंतापक पाण्डवों ने उस समय उन महात्मा श्रीकृष्णद्वैपायन को प्रणाम किया तथा अपनी माता के साथ वे सब लोग उनके आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब—

व्यास उवाच

**मयेदं व्यसनं पूर्वं विदितं भरतर्षभाः।**
**तद्विदित्वास्मि सम्प्राप्तश्चिकीर्षुः परमं हितम्।**
**न विषादोऽत्र कर्तव्यः सर्वमेतत् सुखाय वः ॥२०**

**व्यासजी बोले**—भरतश्रेष्ठ पाण्डुकुमारो! मैंने पहले ही तुम लोगों पर आये हुए इस संकट को जान लिया था। वह सब-कुछ जानकर तुम्हारा परम हित करने के लिए मैं यहाँ आया हूँ। तुम्हें दुःखी नहीं होना चाहिए, यह सब-कुछ तुम्हारे भावी कल्याण के लिए हो रहा है।

**समास्ते चैव मे सर्वे यूयं चैव न संशयः।**
**दीनतो बालतश्चैव स्नेहं कुर्वन्ति मानवाः ॥२२॥**
**तस्मादभ्यधिकः स्नेहो युष्मासु मम साम्प्रतम्।**
**स्नेहपूर्वं चिकीर्षामि हितं वस्तन्निबोधत ॥२३॥**

इसमें सन्देह नहीं कि मेरे लिए तुम लोग और धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि सब समान ही हैं फिर भी जहाँ विनम्रता एवं बचपन है, वहीं मनुष्य अधिक स्नेह करते हैं, इसी कारण इस समय तुम लोगों पर मेरा अधिक स्नेह है। मैं स्नेहपूर्वक तुम लोगों का हित करना चाहता हूँ, अतः मेरी बात सुनो!

**इदं नगरमभ्याशे रमणीयं निरामयम्।**
**वसतेह प्रतिच्छन्ना ममागमनकाङ्क्षिणः ॥२४॥**

यहाँ पास ही जो यह रमणीय नगर है, इसमें रोग-व्याधि का भय नहीं है, अतः तुम सब लोग यहीं छिपकर रहो तथा मेरे पुनः आने की प्रतीक्षा करो।

वैशम्पायन उवाच

**एवं स तान्समाश्वास्य व्यासः सत्यवतीसुतः।**
**एकचक्रामभिगतः कुन्तीमाश्वासयत् प्रभुः ॥२५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! इस प्रकार पाण्डवों को भली-भाँति आश्वासन देकर सत्यवती-नन्दन व्यास उन सबके साथ एकचक्रा नगरी के निकट गये। वहाँ उन्होंने कुन्ती को इस प्रकार सान्त्वना दी।

व्यास उवाच

**जीवत्पुत्रि सुतस्तेऽयं धर्मनित्यो युधिष्ठिरः।**
**धर्मेण पृथिवीं जित्वा प्रशासिष्यति धर्मराट् ॥२६॥**

**व्यासजी बोले**—जीवित पुत्रोंवाली बहू! तुम्हारे ये पुत्र धर्मराज युधिष्ठिर सदा धर्मपरायण हैं, अतः ये धर्म से ही सारी पृथिवी को जीतकर उसपर शासन करेंगे।

**अनुगृह्य सुहृद्वर्गं भोगैश्वर्यसुखैः सह।**
**पितृपैतामहं राज्यमिमे भोक्ष्यन्ति ते सुताः ॥२७॥**

तुम्हारे ये पुत्र अपने सुहृदों के समुदाय को उत्तम भोग एवं ऐश्वर्य-सुख के द्वारा अनुगृहीत करके बाप-दादों के राज्य का पालन एवं उपभोग करेंगे।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वा निवेश्यैतान् ब्राह्मणस्य निवेशने।**
**अब्रवीत् पाण्डवश्रेष्ठमृषिर्द्वैपायनस्तदा ॥२८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! ऐसा कह-कर महर्षि कृष्णद्वैपायन ने इन सबको एक ब्राह्मण के घर में ठहरा दिया और पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर से कहा—

**इह मासं प्रतीक्षध्वमागमिष्याम्यहं पुनः।**
**देशकालौ विदित्वैव लप्स्यध्वं परमां मुदम् ॥२९॥**

तुम लोग यहाँ एक मास तक मेरी प्रतीक्षा करो। मैं पुनः आऊँगा। देश और काल का विचार करके ही कोई कार्य करना चाहिए, इससे तुम्हें अनुपम सुख मिलेगा।

**स तैः प्राञ्जलिभिः सर्वैस्तथेत्युक्तो नराधिप।**
**जगाम भगवान् व्यासो यथागतमृषिः प्रभुः ॥३०॥**

राजन्! उस समय सबने हाथ जोड़कर उनकी आज्ञा स्वीकार की। तब शक्तिशाली महर्षि भगवान् व्यास जैसे आये थे, वैसे ही चले गये।

**इति महाभारते आदिपर्वणि षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥**

# सप्तविंशोऽध्यायः

## ब्राह्मण परिवार का कष्ट और कुन्ती का उन्हें आश्वासन देना

जनमेजय उवाच

**एकचक्रां गतास्ते तु कुन्तीपुत्रा महारथाः ।**
**उत ऊर्ध्वं द्विजश्रेष्ठ किमकुर्वत पाण्डवाः ॥१॥**

**जनमेजय ने पूछा**—द्विजश्रेष्ठ ! कुन्ती के महारथी पुत्र पाण्डव जब एकचक्रा नगरी में पहुँच गये, उसके पश्चात् उन्होंने क्या किया ?

वैशम्पायन उवाच

**एकचक्रां गतास्ते तु कुन्तीपुत्रा महारथाः ।**
**ऊषुर्नातिचिरं कालं ब्राह्मणस्य निवेशने ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन् ! एकचक्रा नगरी में जाकर महारथी कुन्तीपुत्र थोड़े दिनों तक एक ब्राह्मण के घर में रहे ।

**रमणीयानि पश्यन्तो वनानि विविधानि च ।**
**पार्थिवानपि चोद्देशान् सरितश्च सरांसि च ॥३॥**
**चेरुर्भैक्ष्यं तदा ते तु सर्व एव विशाम्पते ।**
**बभूवुर्नागराणां च स्वैर्गुणैः प्रियदर्शनाः ॥४॥**

प्रजानाथ ! उस समय वे सभी पाण्डव भाँति-भाँति के रमणीय वनों, सुन्दर भूभागों, सरिताओं और सरोवरों का दर्शन करते हुए भिक्षा के द्वारा जीवन-निर्वाह करते थे । अपने उत्तम गुणों के कारण वे सभी नागरिकों के प्रीति-पात्र हो गये थे ।

**निवेदयन्ति स्म तदा कुन्त्या भैक्ष्यं सदा निशि ।**
**तया विभक्तान्भागांस्ते भुञ्जते स्म पृथक्पृथक् ॥५॥**

प्रतिदिन रात्रि के आरम्भ में भिक्षा लाकर वे माता कुन्ती को सौंप देते और वे बाँटकर जिसके लिए जितना भाग देतीं, उतना ही पृथक्-पृथक् लेकर पाण्डव भोजन करते थे ।

**अर्धं ते भुञ्जते वीराः सह मात्रा परन्तपाः ।**
**अर्धं सर्वस्य भैक्ष्यस्य भीमो भुङ्क्ते महाबलः ॥६॥**

वे चारों वीर परन्तप पाण्डव अपनी माता के साथ आधी भिक्षा का उपभोग करते थे और सम्पूर्ण भिक्षा का आधा भाग अकेले महाबली भीम खाते थे ।

**ततः कदाचिद् भैक्ष्याय गतास्ते पुरुषर्षभाः ।**
**संगत्या भीमसेनस्तु तत्रास्ते पृथया सह ॥७॥**

एक दिन नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर आदि चार भाई भिक्षा के लिए गये, किन्तु भीमसेन किसी कार्य-विशेष के सम्बन्ध से माता कुन्ती के साथ घर पर ही रह गये थे ।

**अथार्तिजं महाशब्दं ब्राह्मणस्य निवेशने ।**
**भृशमुत्पतितं घोरं कुन्ती शुश्राव भारत ॥८॥**

हे भारत ! उस दिन ब्राह्मण के घर में सहसा बड़े जोर का भयानक आर्तनाद होने लगा, जिसे कुन्ती ने सुना ।

**रोरूयमाणांस्तान् दृष्ट्वा परिदेवयतश्च सा ।**
**कारुण्यात्साधुभावाच्च कुन्ती राजन्न चक्षमे ॥९॥**

हे राजन् ! उस ब्राह्मण परिवार के लोगों को बहुत रोते और विलाप करते देख कुन्तीदेवी अत्यन्त दयालुता और साधुस्वभाव के कारण सहन न कर सकीं ।

**मथ्यमानेन दुःखेन हृदयेन पृथा तदा ।**
**उवाच भीमं कल्याणी कृपान्वितमिदं वचः ॥१०॥**

उस समय उनका दुःख मानो कुन्तीदेवी के हृदय को मथे डालता था, अतः कल्याणमयी कुन्ती भीमसेन से इस प्रकार करुणायुक्त वचन बोलीं ।

कुन्त्युवाच

**वसाम सुसुखं पुत्र ब्राह्मणस्य निवेशने ।**
**अज्ञाता धार्तराष्ट्रस्य सत्कृता वीतमन्यवः ॥११॥**

**कुन्ती बोली**—पुत्र ! हम लोग इस ब्राह्मण के घर में दुर्योधन से अज्ञात रहकर बड़े सुख से निवास करते हैं । यहाँ हमारा इतना सत्कार हुआ है कि हम अपने दुःख और दैन्य को भूल गये हैं ।

**सा चिन्तये सदा पुत्र ब्राह्मणस्यास्य किं न्वहम् ।**
**प्रियं कुर्यामिति गृहे यत् कुर्युरुषिताः सुखम् ॥१२॥**

अतः वत्स ! मैं सदा यही सोचती रहती हूँ कि इस ब्राह्मण का मैं कौन-सा प्रिय कार्य करूँ, जिसे किसी के घर में सुखपूर्वक रहनेवाले लोग किया करते हैं ।

**एतावान् पुरुषस्तात कृतं यस्मिन्न नश्यति ।**
**यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्यादभ्यधिकं ततः ॥१३॥**

तात ! मनुष्य वही है, जिसके प्रति किया हुआ उपकार नष्ट नहीं होता [जो उपकार का बदला चुकाता है, वही मनुष्य है] और यही उसकी मानवता है कि दूसरा पुरुष उसके प्रति जितना उपकार करे, वह उससे भी अधिक उस मनुष्य का प्रत्युपकार कर दे।

**तदिदं ब्राह्मणस्यास्य दुःखमापतितं ध्रुवम्।**
**तत्रास्य यदि साहाय्यं कुर्यामुपकृतं भवेत् ॥१४॥**

इस समय निश्चय ही इस ब्राह्मण पर कोई भारी दुःख आ पड़ा है। यदि उसमें मैं इसकी सहायता करूँ तो वास्तविक उपकार हो सकता है।

भीमसेन उवाच

**ज्ञायतामस्य यद् दुःखं यतश्चैव समुत्थितम्।**
**विदित्वा व्यवसिष्यामि यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥१५॥**

**भीमसेन बोले**—माँ ! पहले यह पता लगाओ कि इस ब्राह्मण को क्या दुःख है और वह किस कारण से प्राप्त हुआ है। यह जान लेने पर अत्यन्त दुष्कर होने पर भी मैं इसका कष्ट दूर करने के लिए पूरा उद्योग करूँगा।

वैशम्पायन उवाच

**एवं तौ कथयन्तौ च भूयः शुश्रुवतुः स्वनम्।**
**आर्तिजं तस्य विप्रस्य सभार्यस्य विशाम्पते ॥१६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! वे माँ-बेटे इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि पुनः पत्नी-सहित ब्राह्मण का आर्तनाद उनके कानों में पड़ा।

**अन्तःपुरं ततस्तस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः।**
**विवेश त्वरिता कुन्ती बद्धवत्सेव सौरभी ॥१७॥**

तब कुन्ती तुरन्त ही उस महात्मा ब्राह्मण के घर में घुस गईं, ठीक उसी प्रकार जैसे घर के भीतर बँधे हुए बछड़ेवाली गाय स्वयं ही उसके पास पहुँच जाती है।

**ततस्तं ब्राह्मणं तत्र भार्यया च सुतेन च।**
**दुहित्रा चैव सहितं ददर्शावनताननम् ॥१८॥**

भीतर जाकर कुन्ती ने ब्राह्मण को वहाँ अपनी पत्नी, पुत्र और कन्या के साथ मुंह लटकाये हुए बैठे देखा।

ब्राह्मण उवाच

**धिगिदं जीवितं लोके गतसारमनर्थकम्।**
**दुःखमूलं पराधीनं भृशमप्रियभागि च ॥१९॥**

**ब्राह्मण कह रहा था**—जगत् के इस जीवन को धिक्कार है, क्योंकि यह सारहीन, निरर्थक, दुःख की जड़, पराधीन तथा अत्यन्त अप्रिय भावों का भागी है।

**जीविते परमं दुःखं जीविते परमो ज्वरः।**
**जीविते वर्तमानस्य दुःखानामागमो ध्रुवः ॥२०॥**

जीने में महान् दुःख है। जीवनकाल में बड़ी भारी चिन्ता का सामना करना पड़ता है। जिसने जीवन धारण कर रखा है, उसे दुःखों की प्राप्ति अवश्य होती है।

**न हि योगं प्रपश्यामि येन मुच्येयमापदः।**
**पुत्रदारेण वा सार्धं प्राद्रवेयमनामयम् ॥२१॥**

मुझे ऐसा कोई उपाय दिखाई नहीं देता, जिससे इस विपत्ति से छुटकारा पा सकूँ अथवा पुत्र और स्त्री के साथ किसी सुरक्षित स्थान में भाग चलूँ।

**यतितं वै मया पूर्वं वेत्थ ब्राह्मणि तत् तथा।**
**क्षेमं यतस्ततो गन्तुं त्वया तु मम न श्रुतम् ॥२२॥**

ब्राह्मणी ! तुम इस बात को ठीक-ठीक जानती हो कि पहले तुम्हारे साथ किसी ऐसे स्थान में चलने के लिए, जहाँ सब प्रकार से अपना कल्याण हो, मैंने प्रयत्न किया था, परन्तु उस समय तुमने मेरी बात नहीं सुनी।

**अहो धिक्कां गतिं त्वद्य गमिष्यामि सबान्धवः।**
**सर्वैः सह मृतं श्रेयो न च मे जीवितं क्षमम् ॥२३॥**

अहो ! धिक्कार है इस जीवन को। हाय ! मैं बन्धु-बान्धवों के साथ आज किस गति को प्राप्त होऊँगा ? सबके साथ मर जाना ही श्रेष्ठ है। मेरा जीवित रहना कदापि उचित नहीं है।

ब्राह्मण्युवाच

**न सन्तापस्त्वया कार्यः प्राकृतेनेव कर्हिचित्।**
**न हि सन्तापकालोऽयं वैद्यस्य तव विद्यते ॥२४॥**

**ब्राह्मणी बोली**—प्राणनाथ ! आपको साधारण मनुष्यों की भाँति कभी सन्ताप नहीं करना चाहिए। आप विद्वान् हैं, आपके लिए यह सन्ताप का अवसर नहीं है।

**अवश्यं निधनं सर्वैर्गन्तव्यमिह मानवैः। □**
**अवश्यम्भाविन्यर्थे वै सन्तापो नेह विद्यते ॥२५॥**

एक-न-एक दिन इस संसार में सभी मनुष्यों को अवश्य मरना पड़ेगा, अतः जो बात अवश्य होनेवाली है, उसके लिए शोक करने की आवश्यकता नहीं है।

**भार्या पुत्रोऽथ दुहिता सर्वमात्मार्थमिष्यते।**
**व्यथां जहि सुबुद्धया त्वं स्वयं यास्यामि तत्र च ॥२६॥**
**एतद्धि परमं नार्याः कार्यं लोके सनातनम्।**
**प्राणानपि परित्यज्य यद् भर्तृहितमाचरेत् ॥२७॥**

पत्नी, पुत्र और पुत्री—ये सब अपने लिए ही अभीष्ट होते हैं, आप विवेक का आश्रय लेकर शोक-सन्ताप छोड़िए। मैं स्वयं राक्षस के पास चली जाऊँगी। पत्नी के लिए लोक में सबसे बढ़कर यही सनातन कर्तव्य है कि वह अपने प्रिय प्राणों को भी न्यौछावर करके पति की भलाई करे।

**यदर्थमिष्यते भार्या प्राप्तः सोऽर्थस्त्वया मयि।**
**कन्या चैका कुमारश्च कृताहमनृणा त्वया ॥२८॥**

जिस उद्देश्य से पत्नी की अभिलाषा की जाती है, आपने वह उद्देश्य मुझसे सिद्ध कर लिया है। एक पुत्री और एक पुत्र आपके द्वारा मेरे गर्भ से उत्पन्न हो चुके हैं। इस प्रकार आपने मुझे भी उऋण कर दिया है।

**समर्थः पोषणे चासि सुतयो रक्षणे तथा।**
**न त्वहं सुतयोः शक्ता तथा रक्षणपोषणे ॥२९॥**

इन दोनों सन्तानों का पालन-पोषण और रक्षण करने में आप समर्थ हैं। आपकी भाँति मैं इन दोनों के पालन-पोषण तथा रक्षा की उत्तम व्यवस्था नहीं कर सकूँगी।

**कथं तव कुलस्यैकामिमां बालामनागसाम्।**
**पितृपैतामहे मार्गे नियोक्तुमहमुत्सहे ॥३०॥**

आपके कुल की एकमात्र निरपराध बालिका को मैं बाप-दादों द्वारा पालित धर्म-मार्ग पर लगाये रखने में कैसे समर्थ होऊँगी?

**कथं शक्ष्यामि बालेऽस्मिन् गुणानाधातुमीप्सितान्।**
**अनाथे सर्वतो लुप्ते यथा त्वं धर्मदर्शिवान् ॥३१॥**

आपके धर्म के ज्ञाता हैं, आप जैसे अपने बालक को सद्‌गुणी बना सकते हैं, उस प्रकार मैं आपके न रहने पर सब ओर से आश्रयहीन हुए इस अनाथ बालक में वाञ्छनीय उत्तम गुणों का आधान कैसे कर सकूँगी?

**त्रितयं सर्वथाप्येवं विनंक्ष्यतीत्यसंशयम्।**
**त्वया विहीनं तस्मात् त्वं मां परित्यक्तुमर्हसि ॥३२॥**

नाथ! आपके विना मैं और ये दोनों बच्चे—तीनों ही सर्वथा नष्ट हो जाएँगे—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, अतः आप केवल मुझे त्याग दीजिए।

**व्युष्टिरेषा परा स्त्रीणां पूर्वं भर्तुः परां गतिम्।**
**गन्तुं ब्रह्मन् सपुत्राणामिति धर्मविदो विदुः ॥३३॥**

हे ब्रह्मन्! पुत्रवती स्त्रियाँ यदि अपने पति से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो जाएँ तो यह उनके लिए परम सौभाग्य की बात है। धर्मज्ञ विद्वान् ऐसा ही मानते हैं।

**परित्यक्तः सुतश्चायं दुहितेयं तथा मया।**
**बान्धवाश्च परित्यक्तास्त्वदर्थं जीवितं च मे ॥३४॥**

आर्यपुत्र! आपके लिए मैंने यह पुत्र और पुत्री भी छोड़ दी, समस्त बन्धु-बान्धवों को भी छोड़ दिया और अब अपना यह जीवन त्यागने को भी मैं तैयार हूँ।

**यज्ञैस्तपोभिर्नियमैर्दानैश्च विविधैस्तथा।**
**विशिष्यते स्त्रिया भर्तुर्नित्यं प्रियहिते स्थितिः ॥३५॥**

स्त्री यदि सदा अपने स्वामी के प्रिय और हित में लगी रहे तो यह उसके लिए बड़े-बड़े यज्ञों, तपस्याओं, नियमों और नाना प्रकार के दानों से भी बढ़कर है।

**आपदर्थं धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि। □**
**आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥३६॥**

आपत्ति के लिए धन की रक्षा करे, धन के द्वारा स्त्री की रक्षा करे और स्त्री तथा धन—दोनों के द्वारा सदा अपनी रक्षा करे।

**स कुरुष्व मया कार्यं तारयात्मानमात्मना।**
**अनुजानीहि मामार्य सुतौ मे परिपालय ॥३७॥**

आर्य! आप मेरे द्वारा अभीष्ट कार्य की सिद्धि कीजिए और स्वयं प्रयत्न करके अपने को इस संकट से बचाइए। मुझे राक्षस के पास जाने की आज्ञा दीजिए तथा मेरे दोनों बच्चों का पालन कीजिए।

**अवध्यां स्त्रियमित्याहुर्धर्मज्ञा धर्मनिश्चये।**
**धर्मज्ञान् राक्षसानाहुर्न हन्यात् स च मामपि ॥३८॥**

धर्मज्ञ विद्वानों ने धर्म-निर्णय के प्रसङ्ग में नारी को अवध्य बताया है। राक्षसों को भी लोग धर्मज्ञ कहते हैं, अतः सम्भव है, वह राक्षस भी मुझे स्त्री समझकर न मारे।

**निस्संशयो वधः पुंसां स्त्रीणां संशयितो वधः ।**
**अतो मामेव धर्मज्ञ प्रस्थापयितुमर्हसि ॥३९॥**

पुरुष वहाँ जाएँ, तो वह राक्षस उनका वध कर ही डालेगा, इसमें संशय नहीं है, परन्तु स्त्रियों के वध में सन्देह है [यदि राक्षस ने धर्म का विचार किया तो बचने की सम्भावना है] अतः धर्मज्ञ आर्यपुत्र ! आप मुझे ही वहाँ भेजें।

**एतत् सर्वं समीक्ष्य त्वमात्मत्यागं च गर्हितम् ।**
**आत्मानं तारयाद्याशु कुलं चेमौ च दारकौ ॥४०॥**

इन सब बातों को विचार करके तथा अपने शरीर-त्याग को निन्दित कर्म मानकर आप अब शीघ्र ही अपने को, अपने कुल को और इन दोनों बच्चों को संकट से बचा लीजिए।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तस्तया भर्ता तां समालिङ्ग्य भारत ।**
**मुमोच बाष्पं शनकैः सभार्यो भृशदुःखितः ॥४१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे भारत ! ब्राह्मणी के ऐसा कहने पर उसके पति ब्राह्मण देवता अत्यन्त दुःखी हो उसे हृदय से लगाकर उसके साथ ही धीरे-धीरे आँसू बहाने लगे।

**तयोर्दुःखितयोर्वाक्यमतिमात्रं निशम्य तु ।**
**ततो दुःखपरीताङ्गी कन्या तावभ्यभाषत ॥४२॥**

दुःख में डूबे हुए माता-पिता के उन शोकपूर्ण वचनों को सुनकर कन्या के सम्पूर्ण अङ्गों में दुःख व्याप्त हो गया, अतः वह अपने माता-पिता से बोली—

कन्योवाच

**किमेवं भृशदुःखार्तौ रोरूयेतामनाथवत् ।**
**ममापि श्रूयतां वाक्यं श्रुत्वा च क्रियतां क्षमम् ॥४३॥**

**कन्या बोली**—आप दोनों इस प्रकार अत्यन्त दुःख से आतुर हो अनाथ की भाँति क्यों बार-बार रो रहे हैं ? मेरी बात भी सुनिए और उसे सुनकर जो उचित लगे, वह कीजिए।

**धर्मतोऽहं परित्याज्या युवयोर्नात्र संशयः ।**
**त्यक्तव्यां मां परित्यज्य त्राहि सर्वं मयैकया ॥४४॥**

एक-न-एक दिन आप दोनों को धर्मतः मेरा त्याग करना पड़ेगा, यह निश्चित है। जब मैं त्याज्य ही हूँ, तब आज ही मुझे त्यागकर मुझ अकेली के द्वारा सारे कुल की रक्षा कर लीजिए।

**इत्यर्थमिष्यतेऽपत्यं तारयिष्यति मामिति ।**
**अस्मिन्नुपस्थिते काले तरध्वं प्लववन्मया ॥४५॥**

सन्तान की इच्छा इसीलिए की जाती है कि यह मुझे संकट से उबारेगी, अतः इस समय जो संकट उपस्थित हुआ है, उसमें नौका की भाँति मेरा उपयोग करके आप लोग शोकसागर से पार हो जाइए।

**भ्राता च मम बालोऽयं गते लोकममुं त्वयि ।**
**अचिरेणैव कालेन विनश्येत न संशयः ॥४६॥**

यदि आप परलोकवासी हो गये तो मेरा यह नन्हा-सा भाई थोड़े ही समय में नष्ट हो जाएगा, इसमें सन्देह नहीं है।

**पित्रा त्यक्ता तथा मात्रा भ्रात्रा चाहमसंशयम् ।**
**दुःखाद् दुःखतरं प्राप्य म्रियेयमतथोचिता ॥४८॥**

पिता, माता और भाई—तीनों से परित्यक्त होकर मैं एक दुःख से दूसरे महान् दुःख में पड़कर निश्चय ही मर जाऊँगी।

**तदस्मदर्थं धर्मार्थं प्रसवार्थं च सत्तम ।**
**आत्मानं परिरक्षस्व त्यक्तव्यां मां च संत्यज ॥४८॥**

अतः हे साधुशिरोमणे ! आप मेरे लिए तथा धर्म और सन्तान की रक्षा के लिए भी अपनी रक्षा कीजिए और मुझे, जिसे एक दिन त्यागना ही है, आज ही त्याग दीजिए।

**किं न्वतः परमं दुःखं यद् वयं स्वर्गते त्वयि ।**
**याचमानाः परादन्नं परिधावेमहि श्ववत् ॥४९॥**

हम लोगों के लिए इससे बढ़कर महान् दुःख और क्या होगा कि आपके परलोकवासी हो जाने पर हम दूसरों से अन्न की भीख माँगते हुए कुत्तों की भाँति इधर-उधर दौड़ते फिरें।

वैशम्पायन उवाच

**एवं बहुविधं तस्या निशम्य परिदेवितम् ।**
**पिता माता च सा चैव कन्या प्ररुरुदुस्त्रयः ॥५०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! इस प्रकार उस कन्या के मुख से नाना प्रकार का विलाप सुनकर पिता, माता और वह कन्या तीनों फूट-फूटकर रोने लगे ।

**ततः प्ररुदितान् सर्वान् निशम्याथ सुतस्तदा ।**
**उत्फुल्लनयनो बालः कलमव्यक्तमब्रवीत् ॥५१॥**

तब उन सबको रोते देख ब्राह्मण का नन्हा-सा बालक उन सबकी ओर प्रफुल्ल नेत्रों से देखता हुआ तोतली भाषा में अस्पष्ट एवं मधुर वचन बोला—

**मा पिता रुद मा मातर्मा स्वसस्त्विति चाब्रवीत् ।**
**प्रहसन्निव सर्वांस्तानेकैकमनुसर्पति ॥५२॥**
**ततः स तृणमादाय प्रहृष्टः पुनरब्रवीत् ।**
**अनेनाहं हनिष्यामि राक्षसं पुरुषादकम् ॥५३॥**

"पिताजी ! न रोओ, माँ ! मत आँसू बहाओ, बहिन ! मत रो। वह हँसता हुआ-सा प्रत्येक के पास जाता और सबसे यही बात कहता था। तत्पश्चात् उसने एक तिनका उठा लिया और अत्यन्त हर्ष में भरकर कहा—"मैं इसी से उस नरभक्षी राक्षस को मार डालूँगा।"

**तथापि तेषां दुःखेन परीतानां निशम्य तत् ।**
**बालस्य वाक्यमव्यक्तं हर्षः समभवन्महान् ॥५४॥**

यद्यपि वे सब लोग दुःख में डूबे हुए थे, तथापि उस बालक की अस्पष्ट तोतली बोली सुनकर उनके हृदय में सहसा अत्यन्त प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

**अयं काल इति ज्ञात्वा कुन्ती समुपसृत्य तान् ।**
**गतासूनमृतेनेव जीवयन्तीदमब्रवीत् ॥५५॥**

'यही अपने को प्रकट करने का अवसर है' ऐसा सोच कुन्तीदेवी उन सबके निकट गईं तथा अपनी अमृतमयी वाणी से उन मृतक-से मानवों को जीवन-प्रदान करती हुई-सी बोलीं—

कुन्त्युवाच

**कुतोमूलमिदं दुःखं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ।**
**विदित्वाप्यपकर्षेयं शक्यं चेदपकर्षितुम् ॥५६॥**

**कुन्ती ने पूछा**—ब्रह्मन् ! आप लोगों के इस दुःख का कारण क्या है ? मैं यह ठीक-ठीक जानना चाहती हूँ । उसे जानकर यदि मिटाया जा सकेगा तो मिटाने की चेष्टा करूँगी ।

ब्राह्मण उवाच

**उपपन्नं सतामेतद् यद् ब्रवीषि तपोधने ।**
**न तु दुःखमिदं शक्यं मानुषेण व्यपोहितुम् ॥५७॥**

**ब्राह्मण ने कहा**—तपोधने ! आप जो कुछ कह रही हैं, वह आप-जैसे सज्जनों के अनुरूप ही है, परन्तु हमारे इस दुःख को कोई मनुष्य नहीं मिटा सकता ।

**समीपे नगरस्यास्य बको वसति राक्षसः ।**
**ईशो जनपदस्यास्य पुरस्य च महाबलः ॥५८॥**

इस नगर के समीप ही बक नामक एक राक्षस रहता है । वह राक्षस अत्यन्त बलवान् है । वही इस जनपद और नगर का स्वामी है ।

**रक्षत्यसुरराट् नित्यमिमं जनपदं बली ।**
**तत्कृते परचक्राच्च भूतेभ्यश्च न नो भयम् ॥५९॥**

वह शक्तिशाली असुरराज सदा इस जनपद की रक्षा करता है । उसके कारण हमें शत्रुराज्यों तथा हिंसक प्राणियों से कभी भय नहीं होता ।

**वेतनं तस्य विहितं शालिवाहस्य भोजनम् ।**
**महिषौ पुरुषश्चैको यस्तदादाय गच्छति ॥६०॥**

उसके लिए वेतन=कर निश्चित किया गया है—एक गाड़ी शालि चावल का भात, दो भैंसे और एक मनुष्य, जो यह सब सामान लेकर उसके पास जाता है ।

**एकैकश्चापि पुरुषस्तत् प्रयच्छति भोजनम् ।**
**स वारो बहुभिर्वर्षैर्भवत्यसुकरो नरैः ॥६१॥**

प्रत्येक गृहस्थ अपनी बारी आने पर उसे भोजन देता है । यद्यपि यह बारी बहुत वर्षों के बाद आती है, तथापि लोगों के लिए उसकी पूर्ति बहुत कठिन होती है ।

**सोऽयमस्माननुप्राप्तो वारः कुलविनाशनः ।**
**भोजनं पुरुषश्चैकः प्रदेयं वेतनं मया ॥६२॥**

आज हमारे सारे कुल का नाश करनेवाली वह बारी आई है । मुझे उस राक्षस को कर के रूप में नियत भोजन और एक पुरुष की बलि देनी पड़ेगी ।

**न च मे विद्यते वित्तं संक्रेतुं पुरुषं क्वचित् ।**
**सुहृज्जनं प्रदातुं च न शक्ष्यामि कदाचन ॥६३॥**

मेरे पास धन नहीं है, जिससे कहीं से किसी पुरुष को क्रय कर लूं। अपने सुहृदों और सगे-

सम्बन्धियों को तो मैं कदापि उस राक्षस के हाथ में नहीं दे सकूँगा।

**गतिं चैव न पश्यामि तस्मान्मोक्षाय रक्षसः ।**
**सोऽहं दुःखार्णवे मग्नो महत्यसुकरे भृशम् ॥६४॥**

उस राक्षस से छूटने का कोई उपाय मुझे दिखाई नहीं देता, अतः मैं दुस्तर दुःख के महासागर में डूबा हुआ हूँ।

**सहैवैतैर्गमिष्यामि बान्धवैरद्य राक्षसम् ।**
**ततो नः सहितान् क्षुद्रः सर्वानेवोपभोक्ष्यति ॥६५॥**

अब इन बन्धु-बान्धवों के साथ ही मैं उस राक्षस के पास जाऊँगा, जिससे वह नीच निशाचर एक ही साथ हम सबको खा ले।

कुन्त्युवाच

**न विषादस्त्वया कार्यो भयादस्मात् कथंचन ।**
**उपायः परिदृष्टोऽत्र तस्मान्मोक्षाय रक्षसः ॥६६॥**

**कुन्ती बोली**—ब्रह्मन् ! आपको अपने ऊपर आये हुए भय से किसी प्रकार भी विषाद नहीं करना चाहिए। इस परिस्थिति में उस राक्षस से छूटने का उपाय मेरी समझ में आ गया।

**एकस्तव सुतो बालः कन्या चैका तपस्विनी ।**
**न चैतयोस्तथा पत्न्या गमनं तव रोचये ॥६७॥**

आपके तो एक ही नन्हा-सा पुत्र तथा एक ही तपस्विनी कन्या है, अतः इन दोनों का तथा आपकी पत्नी का भी वहाँ जाना मुझे अच्छा नहीं लगता।

**मम पञ्च सुता ब्रह्मंस्तेषामेको गमिष्यति ।**
**त्वदर्थं बलिमादाय तस्य पापस्य रक्षसः ॥६८॥**

विप्रवर ! मेरे पाँच पुत्र हैं, उनमें से एक आपके लिए उस पापी राक्षस की बलि-सामग्री लेकर चला जाएगा।

ब्राह्मण उवाच

**नाहमेतत् करिष्यामि जीवितार्थी कथंचन ।**
**ब्राह्मणस्यातिथेश्चैव स्वार्थे प्राणवियोजनम् ॥६९॥**

**ब्राह्मण बोला**—मैं अपने जीवन की रक्षा के लिए ऐसा कभी नहीं करूँगा। एक तो ब्राह्मण, दूसरे अतिथि के प्राणों का नाश मैं अपने तुच्छ स्वार्थों के लिए कराऊँ, यह कदापि सम्भव नहीं।

**आगतस्य गृहे त्यागस्तथैव शरणार्थिनः ।**
**याचमानस्य च वधो नृशंसो गर्हितो बुधैः ॥७०॥**

घर पर आये हुए तथा शरणार्थी का त्याग और अपनी रक्षा के लिए याचना करनेवाले का वध—यह विद्वानों की सम्मति में अत्यन्त क्रूर और निन्दित कर्म है।

**श्रेयाँस्तु सहदारस्य विनाशोऽद्य मम स्वयम् ।**
**ब्राह्मणस्य वधं नाहमनुमंस्ये कदाचन ॥७१॥**

अतः आज चाहे अपनी पत्नी के साथ स्वयं मेरा विनाश हो जाए, यह श्रेष्ठ है, किन्तु ब्राह्मण-वध की अनुमति मैं कदापि नहीं दे सकता।

कुन्त्युवाच

**ममाप्येषा मतिर्ब्रह्मन् विप्रा रक्ष्या इति स्थिरा ।**
**न चाप्यनिष्टः पुत्रो मे यदि पुत्रशतं भवेत् ॥७२**
**न चासौ राक्षसः शक्तो मम पुत्रविनाशने ।**
**वीर्यवान् मन्त्रसिद्धश्च तेजस्वी च सुतो मम ॥७३॥**

**कुन्ती बोली**—ब्रह्मन् ! मेरा भी यह निश्चित विचार है कि ब्राह्मणों की रक्षा करनी चाहिए। यों तो मुझे भी अपना कोई पुत्र अप्रिय नहीं है, चाहे मेरे सौ पुत्र ही क्यों न हों, किन्तु वह राक्षस मेरे पुत्र का विनाश करने में समर्थ नहीं है, क्योंकि मेरा पुत्र पराक्रमी, मन्त्रसिद्ध और तेजस्वी है।

**राक्षसाय च तत् सर्वं प्रापयिष्यति भोजनम् ।**
**मोक्षयिष्यति चात्मानमिति मे निश्चिता मतिः ॥७४**

मेरा यह निश्चित विश्वास है कि मेरा पुत्र वह सारा भोजन राक्षस के पास पहुँचा देगा और उससे अपने आपको भी छुड़ा लेगा।

**समागताश्च वीरेण दृष्टपूर्वाश्च राक्षसाः ।**
**बलवन्तो महाकाया निहताश्चाप्यनेकशः ॥७५॥**

मैंने पहले भी बहुत से बलवान् और विशालकाय राक्षस देखे हैं, जो मेरे वीर पुत्र से भिड़कर अपने जीवन से हाथ धो बैठे हैं।

**न त्विदं केषुचिद् ब्रह्मन् व्याहर्तव्यं कथंचन ।**
**विद्यार्थिनो हि मे पुत्रान् विप्रकुर्युः कुतूहलात् ॥७६॥**

परन्तु हे ब्रह्मन् ! आपको किसी से भी किसी प्रकार यह बात नहीं कहनी चाहिए, अन्यथा लोग मन्त्र सीखने के लोभ से कौतूहलवश मेरे पुत्रों को तंग करेंगे।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तस्तु पृथया स विप्रो भार्यया सह ।**
**हृष्टः सम्पूजयामास तद्वाक्यममृतोपमम् ॥७६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—कुन्तीदेवी के ऐसा कहने पर पत्नी-सहित वह ब्राह्मण अति प्रसन्न हुआ और उसने कुन्ती के अमृत-तुल्य जीवनदायक मधुर वचनों को बड़ा सम्मान दिया ।

**ततः कुन्ती च विप्रश्च सहितावनिलात्मजम् ।**
**तमब्रूतां कुरुष्वेति स तथेत्यब्रवीच्च तौ ॥७८॥**

तत्पश्चात् कुन्ती और ब्राह्मण ने मिलकर वायुनन्दन भीमसेन से कहा—"तुम यह कठोर कार्य करो।" तब भीमसेन ने भी उन दोनों से "बहुत अच्छा" कह दिया ।

**इति महाभारते आदिपर्वणि सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥**

# अष्टाविंशोऽध्यायः

**भीम को राक्षस के पास भेजने के विषय में युधिष्ठिर और कुन्ती की बातचीत, भीम द्वारा बकासुर का वध, राक्षसों का पलायन और नगरवासियों की प्रसन्नता**

वैशम्पायन उवाच

**करिष्य इति भीमेन प्रतिज्ञातेऽथ भारत ।**
**आजग्मुस्ते ततः सर्वे भैक्ष्यमादाय पाण्डवाः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! जब भीमसेन ने यह प्रतिज्ञा कर ली कि "मैं इस कार्य को पूरा करूँगा" उसी समय अन्य चारों पाण्डव भिक्षा लेकर वहाँ आये ।

**आकारेणैव तं ज्ञात्वा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ।**
**रहः समुपविश्यैकस्ततः पप्रच्छ मातरम् ॥२॥**

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर ने भीमसेन की आकृति से ही समझ लिया कि आज ये कुछ करनेवाले हैं, फिर उन्होंने एकान्त में अकेले बैठकर माता से पूछा ।

युधिष्ठिर उवाच

**किं चिकीर्षत्ययं कर्म भीमो भीमपराक्रमः ।**
**भवत्यनुमते कच्चित् स्वयं वा कर्तुमिच्छति ॥३॥**

**युधिष्ठिर बोले**—माँ ! ये भयंकर पराक्रमी भीमसेन कौन-सा कार्य करना चाहते हैं ? वे आपकी अनुमति से अथवा स्वयं ही कुछ करने के लिए उतारू हो रहे हैं ।

कुन्त्युवाच

**ममैव वचनादेष करिष्यति परन्तपः ।**
**ब्राह्मणार्थे महत् कृत्यं मोक्षाय नगरस्य च ॥४॥**

**कुन्ती ने कहा**—पुत्र ! शत्रुसंतापक भीम मेरी ही आज्ञा से ब्राह्मण के हितार्थ तथा समस्त नगर को संकट से छुड़ाने के लिए आज एक महान् कार्य करेगा ।

युधिष्ठिर उवाच

**किमिदं साहसं तीक्ष्णं भवत्या दुष्करं कृतम् ।**
**परित्यागं हि पुत्रस्य न प्रशंसन्ति साधवः ॥५॥**

**युधिष्ठिर बोले**—माँ ! आपने यह भीषण और दुष्कर साहस क्यों किया ? सज्जन पुरुष अपने पुत्र के परित्याग को अच्छा नहीं बताते ।

**कथं परसुतस्यार्थे स्वसुतं त्यक्तुमिच्छसि ।**
**लोकवेदविरुद्धं हि पुत्रत्यागात् कृतं त्वया ॥६॥**

दूसरे के पुत्र के लिए आप अपने पुत्र को क्यों त्याग देना चाहती हैं ? पुत्र का त्याग करके आपने लोक और वेद दोनों के विरुद्ध कार्य किया है ।

**यस्य बाहू समाश्रित्य सुखं सर्वे शयामहे ।**
**राज्यं चापहृतं क्षुद्रैराजिहीर्षामहे पुनः ॥७॥**

जिसके बाहुबल का भरोसा करके हम सब लोग सुख से सोते हैं और नीच शत्रुओं ने जिस राज्य को हड़प लिया है, उसे वापस लेना चाहते हैं [उस पुत्र के त्याग का निश्चय आपने कैसे किया है ?]

**यस्य दुर्योधनो वीर्यं चिन्तयन्नमितौजसः ।**
**न शेते रजनीः सर्वा दुःखाच्छकुनिना सह ॥८॥**
**यस्य वीरस्य वीर्येण मुक्ता जतुगृहाद् वयम् ।**
**अन्येभ्यश्चैव पापेभ्यो निहतश्च पुरोचनः ॥९॥**
**यस्य वीर्यं समाश्रित्य वसुपूर्णां वसुन्धराम् ।**
**इमां मन्यामहे प्राप्तां निहत्य धृतराष्ट्रजान् ॥१०॥**

**तस्य व्यवसितस्त्यागो बुद्धिमास्थाय कां त्वया ।**
**कच्चिन्नु दुःखैर्बुद्धिस्ते विलुप्ता गतचेतसः ॥११॥**

जिस अमित तेजस्वी वीर के पराक्रम का चिन्तन करके शकुनिसहित दुर्योधन को दुःख के मारे सारी रातें नींद नहीं आती, जिस वीर के बल से हम लोग लाक्षागृह तथा दूसरे पापपूर्ण अत्याचारों से बच पाये और दुष्ट पुरोचन भी मारा गया, जिसके बल-पराक्रम का आश्रय लेकर हम लोग धृतराष्ट्र-पुत्रों को मारकर धन-धान्य से सम्पन्न इस सम्पूर्ण पृथिवी को अपने अधिकार में आई हुई ही समझते हैं, उस बलवान् पुत्र के त्याग का निश्चय आपने किस बुद्धि से किया है ? क्या आप अनेक दुःखों के कारण अपनी चेतना खो बैठी हैं ? आपकी बुद्धि लुप्त हो गई है ?

कुन्त्युवाच

**युधिष्ठिर न सन्तापस्त्वया कार्यो वृकोदरे ।**
**न चायं बुद्धिदौर्बल्याद् व्यवसायः कृतो मया ॥१२॥**

**कुन्ती ने कहा**—हे युधिष्ठिर ! तुम्हें भीमसेन के लिए कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए । मैंने जो यह निश्चय किया है, वह बुद्धि की किसी दुर्बलता से नहीं किया है ।

**इह विप्रस्य भवने वयं पुत्र सुखोषिताः ।**
**तस्य प्रतिक्रिया पार्थ मयेयं प्रसमीक्षिता ॥१३॥**

वत्स ! हम लोग इस ब्राह्मण के घर में सुखपूर्वक रहे हैं । ब्राह्मण के इस उपकार से उऋण होने का यही एक उपाय मुझे दिखाई दिया ।

**एतावानेव पुरुषः कृतं यस्मिन् न नश्यति ।□**
**यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्याद् बहुगुणं ततः ॥१४॥**

मनुष्य वही है, जिसके प्रति किया हुआ उपकार नष्ट न हो अर्थात् जो किये हुए उपकार को भुला न दे। दूसरा मनुष्य उसके लिए जितना उपकार करे, उससे कई गुना प्रत्युपकार स्वयं उसके प्रति करना चाहिए ।

**दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्तं तदा जतुगृहे महत् ।**
**हिडिम्बस्य वधाच्चैवं विश्वासो मे वृकोदरे ॥१५॥**

मैंने उस दिन लाक्षागृह में भीमसेन का महान् पराक्रम देखा था तथा हिडिम्बवध की घटना भी मेरी आँखों के समक्ष घटित हुई, अतः भीमसेन पर मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है ।

**बाह्वोर्बलं हि भीमस्य नागायुतसमं महत् ।**
**येन यूयं गजप्रख्या निर्व्यूढा वारणावतात् ॥१६॥**

भीम का महान् बाहुबल दस सहस्र हाथियों के समान है, जिससे वह हाथी के समान बलशाली तुम सब भाइयों को वारणावत नगर से ढोकर लाया है ।

**वृकोदरेण सदृशो बलेनान्यो न विद्यते ।**
**योऽभ्युदीयाद् युधि श्रेष्ठमपि वज्रधरं स्वयम् ॥१७॥**

भीमसेन के समान बलवान् दूसरा कोई नहीं है । वह युद्ध में सर्वश्रेष्ठ वज्रपाणि इन्द्र का भी सामना कर सकता है ।

**जातमात्रः पुरा चैष ममाङ्कात् पतितो गिरौ ।**
**शरीरगौरवादस्य शिला गात्रैर्विचूर्णिता ॥१८॥**

पहले की बात है, जब यह उत्पन्न ही हुआ था, उसी समय मेरी गोद से छूटकर पर्वत के शिखर पर गिर पड़ा था । जिस चट्टान पर यह गिरा, वह इसके शरीर की गुरुता=भार के कारण चूर-चूर हो गई थी।

**तदहं प्रज्ञया ज्ञात्वा बलं भीमस्य पाण्डव ।**
**प्रतिकार्ये च विप्रस्य ततः कृतवती मतिम् ॥१९॥**

पाण्डुनन्दन ! मैंने भीमसेन के बल को अपनी बुद्धि से भली-भाँति समझकर तब ब्राह्मण के शत्रु राक्षस से बदला लेने का निश्चय किया है ।

**नेदं लोभान्न चाज्ञानान्न च मोहाद्विनिश्चितम् ।**
**बुद्धिपूर्वं तु धर्मस्य व्यवसायः कृतो मया ॥२०॥**

मैंने न लोभ से, न अज्ञान से और न मोह से ऐसा विचार किया है, अपितु बुद्धि के द्वारा खूब सोच-समझकर विशुद्ध धर्मानुकूल निश्चय किया है।

**अर्थौ द्वावपि निष्पन्नौ युधिष्ठिर भविष्यतः ।**
**प्रतीकारश्च वासस्य धर्मश्च चरितो महान् ॥२१॥**

युधिष्ठिर ! मेरे इस निश्चय से दो प्रयोजन सिद्ध हो जाएँगे । एक तो ब्राह्मण के यहाँ निवास करने का ऋण चुक जाएगा और दूसरा लाभ यह होगा कि ब्राह्मण और पुरवासियों की रक्षा होने के कारण महान् धर्म का पालन हो जाएगा ।

युधिष्ठिर उवाच

**उपपन्नमिदं मातस्त्वया यद् बुद्धिपूर्वकम् ।**
**आर्तस्य ब्राह्मणस्यैतदनुक्रोशादिदं कृतम् ॥२२॥**

**युधिष्ठिर बोले**—माँ ! आपने समझ-बूझकर

जो कुछ निश्चय किया है, वह सब उचित है। आपने संकट में पड़े हुए ब्राह्मण पर दया करके ही ऐसा विचार किया है।

वैशम्पायन उवाच

**ततो रात्र्यां व्यतीतायामन्नमादाय पाण्डवः।**
**भीमसेनो ययौ तत्र यत्रासौ पुरुषादकः॥२३॥**
**आसाद्य तु वनं तस्य रक्षसः पाण्डवो बली।**
**आजुहाव ततो नाम्ना तदन्नमुपयोजयन्॥२४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—तदनन्तर रात बीतने पर पाण्डुनन्दन भीमसेन भोजन-सामग्री लेकर उस स्थान पर गये, जहाँ वह नरभक्षी राक्षस रहता था। बक राक्षस के वन में पहुँचकर महाबली पाण्डुकुमार भीमसेन उसके लिए लाये हुए अन्न को स्वयं खाते हुए उस राक्षस का नाम ले-लेकर उसे पुकारने लगे।

**ततः स राक्षसः क्रुद्धो भीमस्य वचनात् तदा।**
**आजगाम सुसंक्रुद्धो यत्र भीमो व्यवस्थितः॥२५॥**

भीमसेन के इस प्रकार पुकारने से वह राक्षस कुपित हो उठा और अत्यन्त क्रोध में भरकर उस स्थान पर आया, जहाँ बैठकर भीम भोजन कर रहे थे।

**भुञ्जानमन्नं तं दृष्ट्वा भीमसेनं स राक्षसः।**
**विवृत्य नयने क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत्॥२६॥**

भीमसेन को उस अन्न को खाते देख राक्षस का क्रोध बहुत बढ़ गया और उसने आँखें तरेर कर कहा—

**कोऽयमन्नमिदं भुङ्क्ते मदर्थमुपकल्पितम्।**
**पश्यतो मम दुर्बुद्धिर्यियासुर्यमसादनम्॥२७॥**

"यमलोक में जाने की इच्छा रखनेवाला यह कौन दुर्बुद्धि मनुष्य है, जो मेरी आँखों के सामने मेरे लिए तैयार करके लाये हुए इस अन्न को स्वयं ही खा रहा है?"

**भीमसेनस्तु तत् श्रुत्वा प्रहसन्निव भारत।**
**राक्षसं तमनादृत्य भुङ्क्त एव पराङ्मुखः॥२८॥**

हे भारत! उसकी बात सुनकर भीमसेन मानो जोर-जोर से हँसते हुए-से उस राक्षस की अवहेलना करते हुए मुँह फेरकर खाते रहे।

**अमर्षेण तु सम्पूर्णः कुन्तीपुत्रं वृकोदरम्।**
**जघान पृष्ठे पाणिभ्यामुभाभ्यां पृष्ठतः स्थितः॥२९॥**

फिर तो उसने अत्यन्त अमर्ष (क्रोध) में भरकर कुन्तीनन्दन भीमसेन के पीछे खड़े हो अपने दोनों हाथों से उनकी पीठ पर प्रहार किया।

**तथा बलवता भीमः पाणिभ्यां भृशमाहतः।**
**नैवावलोकयामास राक्षसं भुंक्त एव सः॥३०॥**

इस प्रकार बलवान् राक्षस के दोनों हाथों से भयानक चोट खाकर भी भीमसेन ने उसकी ओर देखा तक नहीं, वे भोजन करने में ही संलग्न रहे।

**ततः स भूयः संक्रुद्धो वृक्षमादाय राक्षसः।**
**ताडयिष्यंस्तदा भीमं पुनरभ्यद्रवद् बली॥३१॥**

तब तो उस बलवान् राक्षस ने पुनः अत्यन्त कुपित हो एक वृक्ष उखाड़कर भीमसेन को मारने के लिए उनपर धावा बोल दिया।

**ततो भीमः शनैर्भुक्त्वा तदन्नं पुरुषर्षभः।**
**वार्युपस्पृश्य संहृष्टस्तस्थौ युधि महाबलः॥३२॥**

उधर नरश्रेष्ठ महाबली भीमसेन धीरे-धीरे उस सब अन्न को खाकर, तथा मुँह-हाथ धोकर अत्यन्त प्रसन्न हो युद्ध के लिए डट गये।

**क्षिप्तं क्रुद्धेन तं वृक्षं प्रतिजग्राह वीर्यवान्।**
**सव्येन पाणिना भीमः प्रहसन्निव भारत॥३३॥**

जनमेजय! क्रुद्ध हुए राक्षस के द्वारा फेंके हुए उस वृक्ष को पराक्रमी भीमसेन ने बाएँ हाथ से हँसते हुए ही पकड़ लिया।

**नाम विश्राव्य तु बकः समभिद्रुत्य पाण्डवम्।**
**भुजाभ्यां परिजग्राह भीमसेनं महाबलम्॥३४॥**

तब तो बकासुर ने अपना नाम सुनाकर महाबली पाण्डुनन्दन भीमसेन की ओर दौड़कर दोनों भुजाओं से उन्हें पकड़ लिया।

**भीमसेनोऽपि तद् रक्षः परिरभ्य महाभुजः।**
**विस्फुरन्तं महाबाहुं विचकर्ष बलाद् बली॥३५॥**

महाबाहु बलवान् भीमसेन ने भी उस विशाल भुजाओंवाले राक्षस को दोनों भुजाओं से कसकर छाती से सटा लिया और बलपूर्वक उसे इधर-उधर खींचने लगे। उस समय बकासुर उनके बाहुपाश से छूटने के लिए छटपटा रहा था।

**हीयमानं तु तद् रक्षः समीक्ष्य पुरुषादकम्।**
**निष्पिष्य भूमौ जानुभ्यां समाजघ्ने वृकोदरः॥३६॥**

उस नरभक्षी राक्षस को निर्बल होते देख भीमसेन उसे पृथिवी पर पटककर रगड़ने लगे और दोनों घुटनों से मारने लगे।

**ततोऽस्य जानुना पृष्ठमवपीड्य बलादिव।**
**बाहुना परिजग्राह दक्षिणेन शिरोधराम् ॥३७॥**
**सव्येन च कटीदेशे गृह्य वाससि पाण्डवः।**
**तद् रक्षो द्विगुणं चक्रे रुवन्तं भैरवं रवम् ॥३८॥**

तत्पश्चात् उन्होंने अपने एक घुटने से बलपूर्वक राक्षस की पीठ दबाकर दाहिने हाथ से उसकी गर्दन पकड़ ली तथा बाएँ हाथ से कमर का लंगोट पकड़कर उस राक्षस को दुहरा मोड़ दिया। उस समय वह भयानक चीत्कार कर रहा था।

**ततोऽस्य रुधिरं वक्त्रात् प्रादुरासीद् विशाम्पते।**
**भज्यमानस्य भीमेन तस्य घोरस्य रक्षसः ॥३९**

राजन्! भीमसेन के द्वारा जब उस भयानक राक्षस की कमर तोड़ी जा रही थी, उस समय उसके मुख से [बहुत-सा] रक्त गिरा।

**ततः स भग्नपार्श्वाङ्गो नदित्वा भैरवं रवम्।**
**शैलराजप्रतीकाशो गतासुरभवद् बकः ॥४०॥**

पसलियों की हड्डियों के टूट जाने पर पर्वत के समान विशालकाय बकासुर भयंकर चीत्कार करके निष्प्राण हो गया।

**तेन शब्देन वित्रस्तो जनस्तस्याथ रक्षसः।**
**निष्पपात गृहाद् राजन् सहैव परिचारिभिः ॥४१॥**
**तान् भीतान् विगतज्ञानान् भीमः प्रहरतां वरः।**
**सान्त्वयामास बलवान् समये च न्यवेशयत् ॥४२॥**
**न हिंस्या मानुषा भूयो युष्माभिरिति कर्हिचित्।**
**हिंसतां हि वधः शीघ्रमेवमेव भवेदिति ॥४३**

राजन्! उस चीत्कार से भयभीत हो उस राक्षस के परिवार के लोग अपने सेवकों के साथ घर से बाहर निकल आये। योद्धाओं में श्रेष्ठ बलशाली भीम ने उन्हें भय से अचेत देखकर सान्त्वना प्रदान की और उनसे यह शर्त करा ली कि 'भविष्य में तुम लोग मनुष्यों की हिंसा न करना। जो हिंसा करेंगे, उनका शीघ्र ही इसी प्रकार वध कर दिया जाएगा।'

**तस्य तद् वचनं श्रुत्वा तानि रक्षांसि भारत।**
**एवमस्त्विति तं प्राहुर्जगृहुः समयं च तम् ॥४४॥**

हे भारत! भीम की बात सुनकर उन राक्षसों ने 'ऐसा ही होगा' कहकर वह शर्त स्वीकार कर ली।

**ततः प्रभृति रक्षांसि तत्र सौम्यानि भारत।**
**नगरे प्रत्यदृश्यन्त नरैर्नगरवासिभिः ॥४५॥**

भरतकुलभूषण! तब से नगर-निवासी मनुष्यों ने अपने नगर में राक्षसों को बड़े सौम्य स्वभाव से व्यवहार करते देखा।

**ततो भीमस्तमादाय गतासुं पुरुषादकम्।**
**द्वारदेशे विनिक्षिप्य जगामानुपलक्षितः ॥४६॥**

उधर भीमसेन ने उस राक्षस की लाश उठाकर नगर के दरवाजे पर गिरा दी और स्वयं दूसरों की दृष्टि से अपने को बचाते हुए चले गये।

**दृष्ट्वा भीमबलोद्भूतं बकं विनिहतं तदा।**
**ज्ञातयोऽस्य भयोद्विग्नाः प्रतिजग्मुरितस्ततः ॥४७॥**

भीमसेन के बल से बकासुर को पछाड़ा एवं मारा गया देख उस राक्षस के कुटुम्बीजन भय से व्याकुल हो इधर-उधर भाग गये।

**ततः स भीमस्तं हत्वा गत्वा ब्राह्मणवेश्म तत्।**
**आचचक्षे यथावृत्तं राज्ञः सर्वमशेषतः ॥४८॥**

उस राक्षस को मारने के पश्चात् भीमसेन ब्राह्मण के उसी घर में गये और वहाँ उन्होंने राजा युधिष्ठिर को सारा वृत्तान्त ठीक-ठीक कह सुनाया।

**ततो नरा विनिष्क्रान्ता नगरात् काल्यमेव तु।**
**ददृशुर्निहतं भूमौ राक्षसं रुधिरोक्षितम् ॥४९॥**

तत्पश्चात् प्रातःकाल होने पर जब लोग नगर से बाहर निकले, तब उन्होंने देखा कि बकासुर खून से लथपथ हो पृथिवी पर पड़ा है।

**एकचक्रां ततो गत्वा प्रवृत्तिं प्रददुः पुरे।**
**ततः सहस्रशो राजन् नरा नगरवासिनः ॥५०॥**
**तत्राजग्मुर्बकं द्रष्टुं सस्त्रीवृद्धकुमारकाः।**
**ततस्ते विस्मिताः सर्वे कर्म दृष्ट्वातिमानुषम् ॥५१॥**

हे राजन्! उन लोगों ने एकचक्रा नगरी में जाकर नगरभर में यह समाचार फैला दिया, फिर सहस्रों नगर-निवासी मनुष्य स्त्री, बच्चों और बूढ़ों के साथ बकासुर को देखने के लिए वहाँ आये। उस समय वह अमानुषिक कृत्य देखकर सबको महान् आश्चर्य हुआ।

**इति महाभारते आदिपर्वणि अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥**

# एकोनत्रिंशोऽध्यायः

## पाण्डवों का एक ब्राह्मण से विचित्र कथाएँ सुनना, पाण्डवों की पाञ्चाल यात्रा, मार्ग में अर्जुन द्वारा चित्ररथ गन्धर्व की पराजय और दोनों की मित्रता

जनमेजय उवाच

**ते तथा पुरुषव्याघ्रा निहत्य बकराक्षसम् ।**
**अत ऊर्ध्वं ततो ब्रह्मन् किमकुर्वत पाण्डवाः ॥१॥**

**जनमेजय ने पूछा**—ब्रह्मन् ! पुरुषसिंह पाण्डवों ने उस प्रकार बकासुर का वध करने के पश्चात् कौन-सा कार्य किया ?

वैशम्पायन उवाच

**तत्रैव न्यवसन् राजन् निहत्य बकराक्षसम् ।**
**अधीयानाः परं ब्रह्म ब्राह्मणस्य निवेशने ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! बकासुर का वध करने के पश्चात् पाण्डव लोग वेदों का स्वाध्याय करते हुए वहीं ब्राह्मण के घर में रहने लगे ।

**ततः कतिपयाहस्य ब्राह्मणः संशितव्रतः ।**
**प्रतिश्रयार्थी तद् वेश्म ब्राह्मणस्य जगाम ह ॥३॥**

तदनन्तर कुछ दिनों के पश्चात् कठोर नियमों का पालन करनेवाला एक ब्राह्मण ठहरने के लिए उस ब्राह्मण के घर पर आया ।

**स सम्यक् पूजयित्वा तं विप्रं विप्रर्षभस्तदा ।**
**ददौ प्रतिश्रयं तस्मै सदा सर्वातिथिव्रतः ॥४॥**

उस ब्राह्मण का सदा घर पर आये हुए सभी अतिथियों की सेवा करने का व्रत था। उसने आगन्तुक ब्राह्मण का भली-भाँति सत्कार करके उसे ठहरने के लिए स्थान दे दिया ।

**ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सह कुन्त्या नरर्षभाः ।**
**उपासांचक्रिरे विप्रं कथयन्तं कथाः शुभाः ॥५॥**

वह ब्राह्मण बड़ी सुन्दर-सुन्दर एवं कल्याणमयी कथाएँ कह रहा था, [उन्हें सुनने के लिए] सभी नरश्रेष्ठ पाण्डव कुन्ती के साथ उसके पास जा बैठे ।

**कथयामास देशांश्च तीर्थानि सरितस्तथा ।**
**राज्ञश्च विविधाश्चर्यान् पुराणि विविधानि च ॥६॥**

उसने अनेक देशों, तीर्थों, नदियों, राजाओं, नाना प्रकार के आश्चर्यजनक स्थानों तथा नगरों का वर्णन किया ।

**स तत्राकथयद् विप्रः कथान्ते जनमेजय ।**
**पाञ्चालेष्वद्भुताकारं याज्ञसेन्याः स्वयंवरम् ॥७॥**

जनमेजय ! कथा के अन्त में उस ब्राह्मण ने यह भी बताया कि पाञ्चाल देश में यज्ञसेनकुमारी द्रौपदी का अद्भुत स्वयंवर होने जा रहा है ।

**एतत् श्रुत्वा तु कौन्तेया ब्राह्मणात् संशितव्रतात् ।**
**सर्वे चास्वस्थमनसो बभूवुस्ते महाबलाः ॥८॥**

कठोर व्रत का पालन करनेवाले उस ब्राह्मण से यह वृत्तान्त सुनकर उन सब महाबली कुन्तीपुत्रों का मन विचलित हो गया ।

**ततः कुन्ती सुतान् दृष्ट्वा सर्वांस्तद्गतचेतसः ।**
**युधिष्ठिरमुवाचेदं वचनं सत्यवादिनी ॥९॥**

अपने सभी पुत्रों के मन को उस स्वयंवर की ओर आकृष्ट हुआ देख उस समय सत्यवादिनी कुन्ती ने युधिष्ठिर से कहा—

कुन्त्युवाच

**चिररात्रोषिताः स्मेह ब्राह्मणस्य निवेशने ।**
**रममाणाः पुरे रम्ये लब्धभैक्षा महात्मनः ॥१०॥**

**कुन्ती बोली**—पुत्र ! हम लोग यहाँ इन महात्मा ब्राह्मण के घर में बहुत दिनों तक सुखपूर्वक रहे हैं । इस रमणीय नगर में हम आनन्दपूर्वक घूमे-फिरे और यहाँ हमें भिक्षा भी पर्याप्त मिली है ।

**यानीह रमणीयानि वनान्युपवनानि च ।**
**सर्वाणि तानि दृष्टानि पुनः पुनररिन्दम ॥११॥**

शत्रुदमन ! यहाँ जो रमणीय वन और उपवन हैं, उन सबको भी हमने बार-बार देख लिया ।

**पुनर्द्रष्टुं हि तानीह प्रीणयन्ति न नस्तथा ।**
**भैक्षं च न तथा वीर लभ्यते कुरुनन्दन ॥१२॥**

वीर ! यदि उन देखे हुए स्थानों को हम पुनः देखने जाएँ तो वे हमें पहले जैसी प्रसन्नता नहीं दे सकते । कुरुनन्दन ! अब हमें यहाँ भिक्षा भी पहले जैसी नहीं मिल रही है ।

**ते वयं साधु पाञ्चालान् गच्छाम यदि मन्यसे ।**
**अपूर्वदर्शनं वीर रमणीयं भविष्यति ॥१३॥**

यदि तुम्हारी इच्छा हो तो अब हम सुखपूर्वक पाञ्चाल देश में चलें । हे वीर ! उस देश को हमने पहले कभी नहीं देखा है, अतः वह अतीव रमणीय प्रतीत होगा ।

**एकत्र चिरवासश्च क्षमो न च मतो मम ।**
**ते तत्र साधु गच्छामो यदि त्वं पुत्र मन्यसे ॥१४॥**

वत्स ! एक स्थान पर बहुत समय तक रहना मुझे न उचित जान पड़ता है, न ही सम्भव, अतः यदि तुम ठीक समझो, तो हम लोग सुखपूर्वक वहाँ चलें ।

युधिष्ठिर उवाच

**भवत्या यन्मतं कार्यं तदस्माकं परं हितम् ।**
**अनुजाँस्तु न जानामि गच्छेयुर्नेति वा पुनः ॥१५॥**

**युधिष्ठिर बोले**—माँ ! आप जिस कार्य को ठीक समझती हैं, वह हमारे लिए परम हितकर है, परन्तु अपने छोटे भाइयों के सम्बन्ध में मैं नहीं जानता कि वे जाने के लिए उद्यत हैं या नहीं ।

वैशम्पायन उवाच

**ततः कुन्ती भीमसेनमर्जुनं यमजौ तथा ।**
**उवाच गमनं ते च तथेत्येवाब्रुवँस्तदा ॥१६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तब कुन्ती ने भीमसेन, अर्जुन और नकुल-सहदेव से भी चलने के विषय में पूछा । उन सबने भी 'तथास्तु' कहकर स्वीकृति दे दी ।

**तत आमन्त्र्य तं विप्रं कुन्ती राजन् सुतैः सह ।**
**प्रतस्थे नगरीं रम्यां द्रुपदस्य महात्मनः ॥१७॥**

हे राजन् ! तब कुन्ती ने उस ब्राह्मण से विदा लेकर अपने पुत्रों के साथ महात्मा द्रुपद की रमणीय नगरी की ओर जाने की तैयारी की ।

**वसत्सु तेषु प्रच्छन्नं पाण्डवेषु महात्मसु ।**
**आजगामथ तान् द्रष्टुं व्यासः सत्यवतीसुतः ॥१८॥**

हे जनमेजय ! महात्मा पाण्डव जब गुप्तरूप से वहाँ निवास कर रहे थे [और जाने की तैयारी में संलग्न थे] उसी समय सत्यवतीनन्दन व्यासजी उनसे मिलने के लिए वहाँ आये ।

**अथ धर्मार्थविद् वाक्यमुक्त्वा स भगवानृषिः ।**
**विचित्राश्च कथास्तास्ताः पुनरेवेदमब्रवीत् ॥१९॥**

उस समय महर्षि भगवान् व्यास ने उनसे धर्म और अर्थयुक्त बातें कहीं । फिर विचित्र-विचित्र कथाएँ सुनाकर वे पुनः उनसे इस प्रकार बोले—

**पाञ्चालनगरे गत्वा निवसध्वं महाबलाः ।**
**सुखिनो द्रौपदीं प्राप्य भविष्यथ न संशयः ॥२०॥**

हे महाबली वीरो ! अब तुम पाञ्चालनगर में जाकर रहो । द्रौपदी को पाकर तुम सब लोग सुखी होओगे, इसमें संशय नहीं है ।

**एवमुक्त्वा महाभागः पाण्डवान् स पितामहः ।**
**पार्थानामन्त्र्य कुन्तीं च प्रातिष्ठत महातपाः ॥२१॥**

महान् सौभाग्यशाली और महातपस्वी पितामह व्यासजी पाण्डवों से ऐसा कहकर, उन सबसे और कुन्ती से विदा लेकर वहाँ से चल दिये ।

**गते भगवति व्यासे पाण्डवा हृष्टमानसाः ।**
**ते प्रतस्थुः पुरस्कृत्य मातरं पुरुषर्षभाः ॥२२॥**

भगवान् व्यास के चले जाने पर पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव प्रसन्नचित्त हो अपनी माता को आगे करके वहाँ से पाञ्चाल देश की ओर चल दिये ।

**ते त्वगच्छन्नहोरात्रात् तीर्थं सोमाश्रयायणम् ।**
**आसेदुः पुरुषव्याघ्रा गङ्गायां पाण्डुनन्दनाः ॥२३॥**

एक दिन और एक रात चलकर वे नरश्रेष्ठ पाण्डव गङ्गा के तट पर सोमाश्रयण नामक तीर्थ पर जा पहुँचे ।

**उल्मुकं तु समुद्यम्य तेषामग्रे धनञ्जयः ।**
**प्रकाशार्थं ययौ तत्र रक्षार्थं च महारथः ॥२४॥**

उस समय उनके आगे-आगे महारथी अर्जुन उजाला तथा रक्षा करने के लिए जलती हुई मशाल उठाये चल रहे थे ।

**तत्र गङ्गाजले रम्ये विविक्ते क्रीडयन् स्त्रियः ।**
**ईर्ष्युर्गन्धर्वराजो वै जलक्रीडामुपागतः ॥२५॥**

उस एकान्त और गङ्गा के रमणीय जल में गन्धर्वराज चित्ररथ अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहा था । वह ईर्ष्यालु जल-क्रीड़ा करने के लिए ही वहाँ आया था ।

**शब्दं तेषां स शुश्राव नदीं समुपसर्पताम् ।**
**तेन शब्देन चाविष्टश्चुक्रोध बलवद्बली ।।२६।।**

उसने गङ्गा की ओर बढ़ते हुए पाण्डवों के पैरों की पदचाप [की ध्वनि] सुनी। उस शब्द को सुनते ही वह बलवान् गन्धर्व क्रोध के आवेश में आकार अत्यन्त बौखला उठा।

**स दृष्ट्वा पाण्डवाँस्तत्र सह मात्रा परन्तपान् ।**
**विस्फारयन् धनुर्घोरमिदं वचनमब्रवीत् ।।२७।।**

परन्तप पाण्डवों को अपनी माता के साथ वहाँ देख वह अपने भयानक धनुष को टंकारता हुआ इस प्रकार बोला—

**आरात् तिष्ठत मा मह्यं समीपमुपसर्पत ।**
**कस्मान्मां न विजानीत प्राप्तं भागीरथं जलम् ।।२८।।**
**अङ्गारपर्णं गन्धर्वं वित्त मां स्वबलाश्रयम् ।**
**अहं हि मानी चेर्ष्युश्च कुबेरस्य प्रियः सखा ।।२९।।**

अरे, ओ मनुष्यो! दूर ही खड़े रहो। मेरे समीप मत आना। तुम्हें कैसे ज्ञात नहीं हुआ कि मैं गन्धर्वराज अङ्गारपर्ण गङ्गा के जल में उतरा हुआ हूँ। तुम लोग मुझे अच्छी प्रकार जान लो। मैं अपने ही बल का भरोसा रखनेवाला स्वाभिमानी तथा ईर्ष्यालु व्यक्ति हूँ और कुबेर का प्रिय मित्र हूँ।

**न कौणपाः शृङ्गिणो वा न देवा न च मानुषाः ।**
**इदं समुपसर्पन्ति तत् किं समनुसर्पथ ।।३०।।**

मेरी उपस्थिति में यहाँ राक्षस, यक्ष, देवता अथवा मनुष्य कोई भी नहीं आने पाता, फिर तुम लोग कैसे आ रहे हो?

अर्जुन उवाच

**समुद्रे हिमवत्पार्श्वे नद्यामस्यां च दुर्मते ।**
**रात्रावहनि सन्ध्यायां कस्य गुप्तः परिग्रहः ।।३१।।**

**अर्जुन बोले**—दुर्मते! समुद्र, हिमालय की तराई और गङ्गा नदी के तट पर रात, दिन अथवा सन्ध्या के समय किसका अधिकार सुरक्षित है?

**भुक्तो वाप्यथवाभुक्तो रात्रावहनि खेचर ।**
**न कालनियमो ह्यस्ति गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम् ।।३२।।**

आकाशचारी गन्धर्व! सरिताओं में श्रेष्ठ गङ्गा के तट पर आने के लिए यह नियम नहीं है कि यहाँ कोई खाकर आये अथवा बिना खाये, रात्रि में आये या दिन में। इसी प्रकार काल आदि का भी कोई नियम नहीं है।

**वयं च शक्तिसम्पन्ना अकाले त्वामधृष्णुमः ।**
**अशक्ता हि रणे क्रूर युष्मानर्चन्ति मानवाः ।।३३।।**

अरे ओ क्रूर! हम लोग तो शक्ति-सम्पन्न हैं। हम असमय में भी आकर तुम्हें कुचल सकते हैं। जो युद्ध करने में असमर्थ हैं वे दुर्बल मनुष्य ही तुम लोगों की पूजा करते हैं।

वैशम्पायन उवाच

**अङ्गारपर्णस्तत् श्रुत्वा क्रुद्ध आनम्य कार्मुकम् ।**
**मुमोच बाणान् निशितानहीनाशीविषानिव ।।३४।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! अर्जुन की वह बात सुनकर अङ्गारपर्ण क्रुद्ध हो गया और धनुष तानकर विषैले साँपों की भाँति तीखे बाण छोड़ने लगा।

अर्जुन उवाच

**विभीषिका वै गन्धर्व नास्त्रज्ञेषु प्रयुज्यते ।**
**अस्त्रज्ञेषु प्रयुक्तेयं फेनवत् प्रविलीयते ।।३५।।**

**अर्जुन बोले**—गन्धर्व! जो अस्त्रविद्या के वेत्ता हैं, उनपर तुम्हारी यह घुड़की नहीं चल सकती। अस्त्रविद्या के मर्मज्ञों पर फैलाई हुई तुम्हारी यह माया फेन [झाग] की भाँति विलीन हो जाएगी।

**मानुषानति गन्धर्वान् सर्वान् गन्धर्व लक्षये ।**
**तस्मादस्त्रेण दिव्येन योत्स्येऽहं न तु मायया ।।३६।।**

गन्धर्व! मैं जानता हूँ कि सम्पूर्ण गन्धर्व मनुष्यों से अधिक शक्तिशाली होते हैं, अतः मैं तुम्हारे साथ माया से नहीं, दिव्यास्त्र से युद्ध करूँगा।

वैशम्पायन उवाच

**इत्युक्त्वा पाण्डवः क्रुद्धो गन्धर्वाय मुमोच ह ।**
**प्रदीप्तमस्त्रमाग्नेयं ददाहास्य रथं तु तत् ।।३७।।**
**विरथं विप्लुतं तं तु स गन्धर्वं महाबलः ।**
**अस्त्रतेजःप्रमूढं च प्रपतन्तमवाङ्मुखम् ।।३८।।**
**शिरोरुहेषु जग्राह माल्यवत्सु धनंजयः ।**
**भ्रातॄन् प्रति चकर्षाथ सोऽस्त्रपातादचेतसम् ।।३९।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! ऐसा कहकर पाण्डुनन्दन अर्जुन ने कुपित हो गन्धर्वराज पर प्रज्वलित आग्नेयास्त्र चला दिया। उस अस्त्र ने

गन्धर्व के रथ को जलाकर भस्म कर दिया। वह रथ-विहीन गन्धर्व व्याकुल हो उठा तथा अस्त्र के तेज से मूढ़ होकर नीचे मुँह किये गिरने लगा। तब महाबली अर्जुन ने उसके फूलों की मालाओं से सुशोभित केश पकड़ लिये और उसे घसीटकर अपने भाइयों के पास ले आये। दिव्य अस्त्र के आघात से वह गन्धर्व अचेत हो गया था।

**युधिष्ठिरं तस्य भार्या प्रपेदे शरणार्थिनी ।**
**नाम्ना कुम्भीनसी नाम पतित्राणमभीप्सती ॥४०॥**

उस गन्धर्व की पत्नी का नाम कुम्भीनसी था। उसने अपने पति के जीवन की रक्षा के लिए महाराज युधिष्ठिर की शरण ली।

गन्धर्व्युवाच

**त्रायस्व मां महाभाग पतिं चेमं विमुञ्च मे ।**
**गन्धर्वी शरणं प्राप्ता नाम्ना कुम्भीनसी प्रभो ॥४१॥**

**गन्धर्वी बोली**—महाभाग ! मेरी रक्षा कीजिए तथा मेरे इन पतिदेव को आप छोड़ दीजिए। प्रभो ! मैं गन्धर्वपत्नी कुंभीनसी आपकी शरण में आयी हूँ।

युधिष्ठिर उवाच

**युद्धे जितं यशोहीनं स्त्रीनाथमपराक्रमम् ।**
**को निहन्याद् रिपुं तात मुञ्चेमं रिपुसूदन ॥४२॥**

**युधिष्ठिर बोले**—तात ! शत्रुसूदन अर्जुन ! यह गन्धर्व युद्ध में हारकर अपना यश खो चुका। अब स्त्री इसकी रक्षिका बनकर आयी है। यह स्वयं पराक्रम नहीं कर सकता। ऐसे दीन-हीन शत्रु को कौन मारता है ? इसे जीवित छोड़ दो !

अर्जुन उवाच

**जीवितं प्रतिपद्यस्व गच्छ गन्धर्व मा शुचः ।**
**प्रदिशत्यभयं तेऽद्य कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥४३॥**

**अर्जुन बोले**—गन्धर्व ! जीवन धारण करो। जाओ, अब शोक न करो। इस समय कुरुराज युधिष्ठिर तुम्हें अभय-दान दे रहे हैं।

गन्धर्व उवाच

**जितोऽहं पूर्वकं नाम मुञ्चाम्यङ्गारपर्णताम् ।**
**न च श्लाघे बलेनाङ्ग न नाम्ना जनसंसदि ॥४४॥**

**गन्धर्व ने कहा**—हे अर्जुन ! मैं परास्त हो गया, अतः अपने पहले नाम अङ्गारपर्ण[1] को त्याग देता हूँ। अब मैं जनसमुदाय में अपने बल की श्लाघा नहीं करूँगा और न इस नाम से अपना परिचय ही दूँगा।

**अस्त्राग्निना विचित्रोऽयं दग्धो मे रथ उत्तमः ।**
**सोऽहं चित्ररथो भूत्वा नाम्ना दग्धरथोऽभवम् ॥४५॥**

आपके दिव्यास्त्र की अग्नि से मेरा यह विचित्र और उत्तम रथ दग्ध हो गया है। पहले मैं विचित्र रथ के कारण 'चित्ररथ' कहलाता था, परन्तु अब मेरा नाम 'दग्धरथ' हो गया।

**साधितं लब्धवाँल्लाभं योऽहं दिव्यास्त्रधारिणम् ।**
**गान्धर्व्या माययेच्छामि संयोजयितुमर्जुनम् ॥४६॥**

[आज की पराजय से] मुझे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि मैंने दिव्यास्त्रधारी अर्जुन को मित्र-रूप में प्राप्त किया है और अब मैं इन्हें गन्धर्वों की माया से संयुक्त करना चाहता हूँ।

**सम्भृता चैव विद्येयं तपसेह मया पुरा ।**
**निवेदयिष्ये तामद्य प्राणदाय महात्मने ॥४७॥**

मैंने पूर्वकाल में तपस्या द्वारा जो विद्या प्राप्त की है, उसे मैं आज अपने प्राणदाता महान् आत्मा मित्र को अर्पित करूँगा।

**चाक्षुषी नाम विद्येयं यां सोमाय ददौ मनुः ।**
**ददौ स विश्वावसवे मह्यं विश्वावसुर्ददौ ॥४८॥**

यह चाक्षुषी नामक विद्या है, जिसे मनु ने सोम को दिया, सोम ने विश्वावसु को दिया और विश्वावसु ने मुझे प्रदान किया है।

**सेयं कापुरुषं प्राप्ता गुरुदत्ता प्रणश्यति ।**
**आगमोऽस्य मया प्रोक्तो वीर्यं प्रतिनिबोध मे ॥४९॥**

यह गुरु-प्रदत्त विद्या यदि किसी कायर को मिल जाए तो नष्ट हो जाती है। [इस प्रकार] मैंने इसकी उपदेश-परम्परा का वर्णन किया है। अब इसका बल भी सुन लीजिए।

**यच्चक्षुषा द्रष्टुमिच्छेत् त्रिषु लोकेषु किंचन ।**
**तत् पश्येद् यादृशं चेच्छेत्तादृशं द्रष्टुमर्हति ॥५०॥**

तीनों लोकों में जो कोई भी वस्तु है, उनमें से

1. गन्धर्वराज का पर्ण=वाहन प्रज्वलित अङ्गार की भाँति, दूसरों के छूने के अयोग्य था, अतः यह गन्धर्व अङ्गारपर्ण के नाम से विख्यात था।

जिस वस्तु को आँख से देखने की इच्छा हो, उसे इस विद्या के प्रभाव से कोई भी देख सकता है, और जिस रूप में देखना चाहे, उसी रूप में देख सकता है।

**गन्धर्वजानामश्वानामहं पुरुषसत्तम ।**
**भ्रातृभ्यस्तव तुभ्यं च पृथग्दाता शतं शतम् ।।५१।।**

पुरुषशिरोमणे ! [इस विद्या के अतिरिक्त] मैं आपको और आपके भाइयों को अलग-अलग गन्धर्व-लोक के सौ-सौ उत्तम अश्व भेंट करता हूँ।

अर्जुन उवाच

**यदि प्रीतेन मे दत्तं संशये जीवितस्य वा ।**
**विद्या धनं श्रुतं वापि न तद् गन्धर्व रोचये ।।५२।।**

**अर्जुन बोले**—गन्धर्व ! यदि तुमने प्रसन्न होकर अथवा प्राण-संकट से बचाने के कारण मुझे विद्या, धन अथवा शास्त्र प्रदान किया है, तो मैं इस प्रकार का दान लेना पसन्द नहीं करता।

गन्धर्व उवाच

**संयोगो वै प्रीतिकरो महत्सु प्रतिदृश्यते ।**
**जीवितस्य प्रदानेन प्रीतो विद्यां ददामि ते ।।५३।।**

**गन्धर्व ने कहा**—महापुरुषों के साथ जो समागम होता है, वह प्रीति बढ़ानेवाला होता है—ऐसा देखने में आता है। आपने मुझे जीवन-दान दिया है, इससे प्रसन्न होकर मैं आपको चाक्षुषी विद्या भेंट करता हूँ।

**त्वत्तोऽप्यहं ग्रहीष्यामि अस्त्रमाग्नेयमुत्तमम् ।**
**तथैव सख्यं बीभत्सो चिराय भरतर्षभ ।।५४।।**

साथ ही आपसे भी मैं उत्तम आग्नेयास्त्र ग्रहण करूँगा। भरतकुलभूषण अर्जुन ! ऐसा करने से ही हम दोनों में दीर्घकाल तक मित्रता बनी रहेगी।

अर्जुन उवाच

**त्वत्तोऽस्त्रेण वृणोम्यश्वान् संयोगः शाश्वतोऽस्तु नौ ।**
**कारणं ब्रूहि गन्धर्व किं तद् येन स्म धर्षिताः ।।५५।।**

**अर्जुन बोला**—ठीक है, मैं यह अस्त्र-विद्या देकर तुमसे घोड़े ले लूंगा। हम दोनों की मैत्री सदा बनी रहे। मित्र गन्धर्वराज ! तुमने हम लोगों पर आक्रमण किया है, इसका क्या कारण है ? इस पर भी प्रकाश डालो।

गन्धर्व उवाच

**अनग्नयोऽनाहुतयो न च विप्रपुरस्कृताः ।**
**यूयं ततो धर्षिताः स्थ मया वै पाण्डुनन्दनाः ।।५६।।**

**गन्धर्व ने कहा**—हे पाण्डुकुमारो ! आप लोग [विवाहित न होने के कारण] त्रिविध अग्नियों की सेवा नहीं करते। प्रतिदिन अग्नि को आहुति भी नहीं देते। आपके आगे कोई ब्राह्मण पुरोहित भी नहीं चल रहा था, इन्हीं सब कारणों से मैंने आपपर आक्रमण किया था।

**स्त्रीसकाशे च कौरव्य न पुमान् क्षन्तुमर्हति ।**
**धर्षणामात्मनः पश्यन् बाहुद्रविणमाश्रितः ।।५७।।**

हे कुरुनन्दन ! [एक और भी कारण है] अपने बाहुबल का भरोसा रखनेवाला कोई भी पुरुष जब स्त्री के समक्ष अपना तिरस्कार होता देखता है, तब उसे सहन नहीं कर सकता।

**नक्तं च बलमस्माकं भूय एवाभिवर्धते ।**
**यतस्ततो मां कौन्तेय सादरं मन्युराविशत् ।।५८।।**

कुन्तीनन्दन ! इसके सिवा एक बात यह भी है कि रात्रि के समय हम लोगों का बल बहुत बढ़ जाता है। इसी से स्त्री के साथ रहने के कारण मुझमें क्रोध का आवेश हो गया था।

**ब्रह्मचर्यं परो धर्मः स चापि नियतस्त्वयि ।**
**यस्मात्तस्मादहं पार्थ रणेऽस्मि विजितस्त्वया ।।५९।।**

[तुम्हारी विजय क्यों हुई, उसका कारण भी सुनो] ब्रह्मचर्य सबसे बड़ा धर्म है और वह तुममें निश्चितरूप से विद्यमान है। कुन्तीनन्दन ! इसीलिए युद्ध में मैं तुमसे हार गया हूँ।

**यस्तु स्यात् क्षत्रियः कश्चित् कामवृत्तः परन्तप ।**
**नक्तं च युधि युध्येत न स जीवेत् कथंचन ।।६०।।**

शत्रु-संतापक वीर ! यदि कोई दूसरा कामासक्त क्षत्रिय रात में मुझसे युद्ध करने आता तो फिर किसी प्रकार जीवित नहीं बच सकता था।

**वेदे षडङ्गे निरताः शुचयः सत्यवादिनः ।**
**धर्मात्मानः कृतात्मानः स्युर्नृपाणां पुरोहिताः ।।६१।।**

[तुम्हारा कोई पुरोहित नहीं है अतः किसी पुरोहित का वरण करो] जो छहों अङ्गोंसहित वेद के स्वाध्याय में तत्पर, विश्वस्त (ईमानदार), सत्यवादी,

धर्मात्मा और मन को वश में रखनेवाले हों, ऐसे ही ब्राह्मण राजाओं के पुरोहित होने चाहिएँ।

**लाभं लब्धुमलब्धं वा लब्धं वा परिरक्षितुम्।**
**पुरोहितं प्रकुर्वीत राजा गुणसमन्वितम् ॥६२॥**

राजा को किसी अप्राप्त वस्तु या धन को प्राप्त करने अथवा उपलब्ध धनादि की रक्षा करने के लिए गुणवान् ब्राह्मण को पुरोहित बनाना चाहिए।

**पुरोहितमते तिष्ठेद् य इच्छेद् भूतिमात्मनः।**
**प्राप्तुं वसुमतीं सर्वा सर्वशः सागराम्बराम् ॥६३॥**

जो समुद्र से घिरी हुई समस्त पृथिवी पर अपना अधिकार चाहे, अथवा अपने लिए ऐश्वर्य पाना चाहे, उसे पुरोहित की आज्ञा के अधीन रहना चाहिए।

अर्जुन उवाच

**अस्माकमनुरूपो वै यः स्याद् गन्धर्व वेदवित्।**
**पुरोहितं तमाचक्ष्व सर्वं हि विदितं तव ॥६४॥**

**अर्जुन बोला**—गन्धर्वराज ! हमारे अनुरूप जो कोई वेदवेत्ता पुरोहित हों, आप उनका नाम बताइए, क्योंकि आपको सब-कुछ ज्ञात है।

गन्धर्व उवाच

**यवीयान् देवलस्यैष वने भ्राता तपस्यति।**
**धौम्य उत्कोचके तीर्थे तं वृणुध्वं यदीच्छथ ॥६५॥**

**गन्धर्व ने कहा**—कुन्तीनन्दन ! इसी वन के उत्कोचक तीर्थ में महर्षि देवल के छोटे भाई धौम्य मुनि तपस्या करते हैं। यदि आप सब भ्राता चाहें, तो उन्हीं को पुरोहितपद पर वरण करें।

वैशम्पायन उवाच

**ततोऽर्जुनोऽस्त्रमाग्नेयं प्रददौ तद् यथाविधि।**
**गन्धर्वाय तदा प्रीतो वचनं चेदमब्रवीत् ॥६६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—तब अर्जुन ने अत्यन्त प्रसन्न होकर गन्धर्वराज को विधिपूर्वक आग्नेयास्त्र प्रदान किया और यह बात कही—

**त्वय्येव तावत्तिष्ठन्तु हया गन्धर्वसत्तम।**
**कार्यकाले ग्रहीष्यामः स्वस्ति तेऽस्त्विति चाब्रवीत् ।६७**
**तेऽन्योन्यमभिसम्पूज्य गन्धर्वः पाण्डवाश्च ह।**
**रम्याद् भागीरथीतीराद् यथाकामं प्रतस्थिरे ॥६८॥**

"गन्धर्वप्रवर ! तुमने जो घोड़े दिये हैं, वे अभी तुम्हारे पास ही रहें। आवश्यकता के समय हम तुमसे ले लेंगे। तुम्हारा कल्याण हो।" अर्जुन की यह बात पूरी होने पर गन्धर्वराज और पाण्डवों ने एक-दूसरे का बहुत सत्कार किया। फिर पाण्डवगण गङ्गा के रमणीय तट से अपनी इच्छा के अनुसार चल दिये।

**तत उत्कोचकं तीर्थं गत्वा धौम्याश्रमं तु ते।**
**तं वव्रुः पाण्डवा धौम्यं पौरोहित्याय भारत ॥६९॥**

जनमेजय ! तत्पश्चात् उत्कोचक तीर्थ में धौम्य के आश्रम पर जाकर पाण्डवों ने महामुनि धौम्य को पौरोहित्य-कर्म के लिए वरण किया।

**तान् धौम्यः प्रतिजग्राह सर्ववेदविदां वरः।**
**वन्येन फलमूलेन पौरोहित्येन चैव ह ॥७०॥**

सम्पूर्ण वेदों के विद्वानों में श्रेष्ठ महर्षि धौम्य ने जंगली फल-मूल अर्पण करके तथा पौरोहित्य के लिए स्वीकृति देकर उन सबका सत्कार किया।

**ते समाशंसिरे लब्धां श्रियं राज्यं च पाण्डवाः।**
**ब्राह्मणं तं पुरस्कृत्य पाञ्चालीं च स्वयंवरे ॥७१॥**

पाण्डवों ने उस ब्राह्मण देवता को पुरोहित बनाकर यह भली-भाँति विश्वास कर लिया कि 'अब हमें अपना राज्य और धन मिले हुए के ही समान हैं।' साथ ही उन्हें यह भी आशा हो गई कि 'स्वयंवर में द्रौपदी भी हमें मिल जाएगी।'

**पुरोहितेन तेनाथ गुरुणा संगतस्तदा।**
**नाथवन्तमिवात्मनं मेनिरे भरतर्षभाः ॥७२॥**

उन गुरु एवं पुरोहित के साथ हो जाने से उस समय भरतवंशियों में श्रेष्ठ पाण्डवों ने अपने आपको सनाथ-सा समझा।

**स हि वेदार्थतत्त्वज्ञस्तेषां गुरुरुदारधीः।**
**तेन धर्मविदा पार्था याज्या धर्मविदः कृताः ॥७३॥**

उदारबुद्धि धौम्य वेदार्थ के तत्त्वज्ञ थे, वे पाण्डवों के गुरु हुए। उन धर्मज्ञ मुनि ने कुन्तीकुमारों को अपना यजमान बना लिया।

**वीरांस्तु स हितान्मेने प्राप्तराज्यान्स्वधर्मतः।**
**बुद्धिवीर्यबलोत्साहैर्युक्तान् देवानिव द्विजः ॥७४॥**

धौम्य को भी यह विश्वास हो गया कि बुद्धि, वीर्य, बल और उत्साह से युक्त ये देवोपम वीर संगठित होकर स्वधर्म के अनुसार अपना राज्य अवश्य प्राप्त कर लेंगे।

**कृतस्वस्त्ययनास्तेन ततस्ते मनुजाधिपाः ।**
**मेनिरे सहिता गन्तुं पाञ्चाल्यास्तं स्वयंवरम् ॥७५॥**

धौम्य ने पाण्डवों के लिए स्वस्तिवाचन किया। तत्पश्चात् उन नरश्रेष्ठ पाण्डवों ने एक साथ द्रौपदी के स्वयंवर में जाने का निश्चय किया।

**इति महाभारते आदिपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥**

# त्रिंशोऽध्यायः

**पाण्डवों का द्रुपद की राजधानी में जाकर कुम्हार के यहाँ ठहरना, स्वयंवर-सभा का वर्णन, धृष्टद्युम्न की घोषणा और अर्जुन का लक्ष्यवेध करके द्रौपदी को प्राप्त करना**

वैशम्पायन उवाच

**ततस्ते नरशार्दूला भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ।**
**प्रययुर्द्रौपदीं द्रष्टुं तं च देशं महोत्सवम् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! तब वे नरश्रेष्ठ पाँचों पाण्डव भाई राजकुमारी द्रौपदी, उसके पाञ्चाल देश और वहाँ के महान् उत्सव को देखने के लिए वहाँ से चल दिये।

**पश्यन्तो रमणीयानि वनानि च सरांसि च ।**
**तत्र तत्र वसन्तश्च शनैर्जग्मुर्महारथाः ॥२॥**

महारथी पाण्डव मार्ग में अनेकानेक रमणीय वनों और सरोवरों को देखते तथा उन-उन स्थानों में डेरा डालते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ते गये।

**स्वाध्यायवन्तः शुचयो मधुराः प्रियवादिनः ।**
**आनुपूर्व्येणसंप्राप्ताः पाञ्चालान् पाण्डुनन्दनाः ॥३॥**

नित्य स्वाध्याय में तत्पर रहनेवाले, पवित्र, मधुर प्रकृतिवाले तथा प्रियवादी पाण्डुकुमार इस प्रकार चलकर क्रमशः पाञ्चाल देश में जा पहुँचे।

**ते तु दृष्ट्वा पुरं तच्च स्कन्धावारं च पाण्डवाः ।**
**कुम्भकारस्य शालायां निवासं चक्रिरे तदा ॥४॥**

द्रुपद के उस नगर और उसके परकोटे [चहारदीवारी] को देखकर पाण्डवों ने उस समय एक कुम्हार के घर में अपने रहने की व्यवस्था की।

**तत्र भैक्ष्यं समाजह्रुर्ब्राह्मणीं वृत्तिमाश्रिताः ।**
**तान्सम्प्राप्ताँस्तथा वीराञ्जज्ञिरे न नराः क्वचित् ॥५**

वहाँ ब्राह्मणवृत्ति का आश्रय ले वे भिक्षा माँगकर लाते [और उसी से निर्वाह करते] थे। इस प्रकार वहाँ पहुँचे हुए पाण्डव वीरों को कहीं कोई भी मनुष्य नहीं पहचान सका।

**यज्ञसेनस्य कामस्तु पाण्डवाय किरीटिने ।**
**कृष्णां दद्यामिति सदा न चैतद् विवृणोति सः ॥६॥**

राजा द्रुपद के मन में सदा यही इच्छा रहती थी कि मैं पाण्डुनन्दन अर्जुन के साथ द्रौपदी का विवाह करूँ, परन्तु वे अपने इस मनोरथ को किसी पर प्रकट नहीं करते थे।

**सोऽन्वेषमाणः कौन्तेयं पाञ्चाल्यो जनमेजय ।**
**दृढं धनुरनानम्यं कारयामास भारत ॥७॥**

भरतवंशी जनमेजय! पाञ्चाल नरेश ने कुन्तीपुत्र अर्जुन को खोज निकालने की इच्छा से एक ऐसा दृढ़ धनुष बनवाया, जिसे दूसरा कोई झुका ही न सके।

**यन्त्रं वैहायसं चापि कारयामास कृत्रिमम् ।**
**तेन यन्त्रेण समितं राजा लक्ष्यं चकार सः ॥८॥**

राजा द्रुपद ने एक कृत्रिम आकाश-यन्त्र भी बनाया, [जो तीव्रवेग से आकाश में घूमता रहता था]। उस यन्त्र के छिद्र के ऊपर उन्होंने उसी के बराबर का लक्ष्य तैयार कराकर रखवा दिया। [फिर उन्होंने यह घोषणा करा दी—]

द्रुपद उवाच

**इदं सज्यं धनुः कृत्वा सज्जैरेभिश्च सायकैः ।**
**अतीत्य लक्ष्यं यो वेद्धा स लब्धा मत्सुतामिति ॥९॥**

**द्रुपद ने घोषणा की**—जो वीर इस धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर इन प्रस्तुत बाणों द्वारा ही यन्त्र के छेद के भीतर से इसे लाँघकर लक्ष्यवेध करेगा, वही मेरी पुत्री को प्राप्त कर सकेगा।

वैशम्पायन उवाच

**इति स द्रुपदो राजा स्वयंवरमघोषयत् ।**
**तत् श्रुत्वा पार्थिवाः सर्वे समीयुस्तत्र भारत ॥१०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! इस प्रकार राजा द्रुपद ने जब स्वयंवर की घोषणा करा दी, तब उसे सुनकर सब राजा उनकी राजधानी में एकत्र होने लगे ।

**ऋषयश्च महात्मानः स्वयंवरदिदृक्षवः ।**
**दुर्योधनपुरोगाश्च सकर्णाः कुरवो नृप ॥११॥**

बहुत-से महात्मा ऋषि-मुनि भी स्वयंवर देखने के लिए आये । राजन् ! दुर्योधन आदि कुरुवंशी भी कर्ण के साथ वहाँ आये ।

**प्रागुत्तरेण नगराद् भूमिभागे समे शुभे ।**
**समाजवाटः शुशुभे भवनैः सर्वतो वृतः ॥१२॥**

नगर से ईशानकोण में सुन्दर एवं समतल भूमि पर स्वयंवर सभा का रङ्गमण्डप सजाया गया था, जो सब ओर से सुन्दर भवनों द्वारा घिरा होने के कारण बड़ी शोभा पा रहा था ।

**तत्र नानाप्रकारेषु विमानेषु स्वलंकृताः ।**
**स्पर्धमानास्तदान्योन्यं निषेदुः सर्वपार्थिवाः ॥१३॥**

उन्हीं सतमहले मकानों या विमानों में, जो अनेक प्रकार के बने हुए थे, सभी नृप परस्पर एक-दूसरे से होड़ रखते हुए सुन्दर श्रृङ्गार करके ठहरे थे ।

**ब्राह्मणैस्ते च सहिताः पाण्डवाः समुपाविशन् ।**
**ऋद्धिं पाञ्चालराजस्य पश्यन्तस्तामनुत्तमाम् ॥१४॥**

वे पाण्डव भी पाञ्चालनरेश की उस सर्वोत्तम समृद्धि का अवलोकन करते हुए ब्राह्मणों के साथ उन्हीं की पंक्ति में बैठे थे ।

**वर्तमाने समाजे तु द्रौपदी भरतर्षभ ।**
**अवतीर्णा ततो रङ्गं मालामादाय काञ्चनीम् ॥१५॥**

भरतश्रेष्ठ ! सब राजा-महाराजाओं के एकत्र हो जाने पर द्रौपदी स्वर्ण-माला [सोने की बनी हुई माला] को हाथ में लेकर उस रंगभूमि में पधारी ।

**रङ्गमध्ये गतस्तत्र धृष्टद्युम्नो विशाम्पते ।**
**वाक्यमुच्चैर्जगादेदं श्लक्ष्णमर्थवदुत्तमम् ॥१६॥**

हे महाराज ! उस समय द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने रङ्गमण्डप के बीच में खड़े होकर उच्च स्वर से यह अर्थयुक्त उत्तम एवं मधुर वचन कहा—

**इदं धनुर्लक्ष्यमिमे च बाणाः**
**शृण्वन्तु मे भूपतयः समेताः ।**
**छिद्रेण यन्त्रस्य समर्पयध्वं**
**शरैः शितैर्व्योमचरैर्दशार्धैः ॥१७॥**

"यहाँ एकत्र नरेशवृन्द ! आप लोग [ध्यानपूर्वक] मेरी बात सुनें । यह धनुष है, ये बाण हैं और यह लक्ष्य (निशाना) है । आप लोग आकाश में छोड़े हुए पाँच पैने बाणों द्वारा उस यन्त्र के छेद के भीतर से लक्ष्य को वेध कर गिरा दें ।

**एतन्महत्कर्म करोति यो वै**
**कुलेन रूपेण बलेन युक्तः ।**
**तस्याद्य भार्या भगिनी ममेयं**
**कृष्णा भवित्री न मृषा ब्रवीमि ॥१८॥**

"मैं सत्य कहता हूँ, झूठ नहीं बोलता—जो उत्तम कुल, सुन्दर रूप और श्रेष्ठ बल से सम्पन्न वीर यह महान् कर्म कर दिखाएगा, आज यह मेरी बहिन कृष्णा उसी की धर्मपत्नी हो जाएगी ।

**ततस्तु ते राजगणाः क्रमेण**
**कृष्णानिमित्तं कृतविक्रमाश्च ।**
**तत्कार्मुकं संहननोपपन्नं**
**सज्यं न शेकुर्मनसापि कर्तुम् ॥१९॥**
**ते विक्रमन्तः स्फुरता दृढेन**
**विक्षिप्यमाना धनुषा नरेन्द्राः ।**
**विचेष्टमाना धरणीतलस्था**
**विनिःश्वसन्तः शमयाम्बभूवुः ॥२०॥**

इस घोषणा के पश्चात् वे भूपालगण द्रौपदी को प्राप्त करने के लिए क्रमशः अपना पराक्रम प्रकट करने लगे, परन्तु वे उस सुदृढ़ धनुष पर हाथ से कौन कहे, मन से भी प्रत्यञ्चा नहीं चढ़ा सके । उसपर जोर लगाते समय वे सभी नरेन्द्र उस सुदृढ़ एवं प्रकाशमान धनुष के झटके से दूर फेंक दिये जाते और लड़खड़ाकर पृथिवी पर जा गिरते थे । फिर तो लम्बी साँसें खींचते हुए वे शान्त होकर बैठ जाते थे ।

**एवं तेषु निवृत्तेषु क्षत्रियेषु समन्ततः ।**
**चेदीनामधिपो वीरो बलवानन्तकोपमः ॥२१॥**
**दमघोषसुतो धीरः शिशुपालो महामतिः ।**
**धनुरादायमानस्तु जानुभ्यामगमन्महीम् ॥२२॥**

इस प्रकार जब वे सभी क्षत्रिय सब ओर से हट गये, तब यमराज के समान बलवान्, धीर, वीर,

चेदिराज दमघोषपुत्र महाबुद्धिमान् शिशुपाल धनुष उठाने के लिए आगे बढ़ा, परन्तु उसपर हाथ लगाते ही वह घुटनों के बल पृथिवी पर गिर पड़ा।

**ततः शल्यो महावीरो मद्रराजो महाबलः।**
**तदप्यारोप्यमाणस्तु जानुभ्यामगमन्महीम् ॥२३॥**

तत्पश्चात् महावीर एवं महाबली मद्रराज शल्य आगे आये, परन्तु उन्होंने भी उस धनुष को चढ़ाते समय धरती पर घुटने टेक दिये।

**यदा निवृत्ता राजानो धनुषः सज्यकर्मणः।**
**अथोदतिष्ठद् विप्राणां मध्याज्जिष्णुरुदारधीः ॥२४॥**

जब सब राजाओं ने उस धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने के कार्य से मुँह मोड़ लिया, तब उदारधी (उदारबुद्धि) अर्जुन ब्राह्मण-मण्डली के बीच से उठकर खड़े हुए।

**उदक्रोशन् विप्रमुख्या विधुन्वन्तोऽजिनानि च।**
**दृष्ट्वा सम्प्रस्थितं पार्थमिन्द्रकेतुसमप्रभम् ॥२५॥**

इन्द्र की ध्वजा के समान तेजस्वी तथा ऊँचे अर्जुन को उठकर धनुष की ओर जाते देख बड़े-बड़े ब्राह्मण अपने-अपने मृगचर्म हिलाते हुए जोर-जोर से कोलाहल करने लगे।

**केचिदासन् विमनसः केचिदासन् मुदान्विताः।**
**आहुः परस्परं केचिन्निपुणा बुद्धिजीविनः ॥२६॥**

कुछ ब्राह्मण उदास हो गये और कुछ हर्ष के मारे फूल उठे तथा कुछ चतुर एवं बुद्धिजीवी ब्राह्मण आपस में इस प्रकार कहने लगे—

**यत्कर्णशल्यप्रमुखैः क्षत्रियैर्लोकविश्रुतैः।**
**नानतं बलवद्भिर्हि धनुर्वेदपरायणैः ॥२७॥**
**तत्कथं त्वकृतास्त्रेण प्राणतो दुर्बलीयसा।**
**बटुमात्रेण शक्यं हि सज्यं कर्तुं धनुर्द्विजाः ॥२८॥**

"ब्राह्मणो! कर्ण और शल्य आदि बलवान्, धनुर्वेदपरायण तथा लोकविख्यात क्षत्रिय जिसे झुका तक न सके, उसी धनुष पर अस्त्र-ज्ञान से शून्य और शारीरिक बल की दृष्टि से अत्यन्त दुर्बल-सा यह निरीह ब्राह्मण-बालक प्रत्यञ्चा कैसे चढ़ा सकेगा?

**यद्येष दर्पाद्धर्षाद् वाप्यथ ब्राह्मणचापलात्।**
**प्रस्थितो धनुरायन्तुं वार्यतां साधु मा गमत् ॥२९॥**

"यदि यह अभिमान, हर्ष अथवा ब्राह्मणसुलभ चञ्चलता के कारण धनुष पर डोरी चढ़ाने के लिए आगे बढ़ा है, तो इसे रोक देना चाहिए, अच्छा तो यही होगा कि यह जाए ही नहीं।"

**केचिदाहुर्युवा श्रीमान् नागराजकरोपमः।**
**पीनस्कन्धोरुबाहुश्च धैर्येण हिमवानिव ॥३०॥**

कुछ ब्राह्मण बोले—"यह सुन्दर युवक नागराज ऐरावत के शुण्ड-दण्ड के समान हृष्ट-पुष्ट दिखाई देता है। इसके कन्धे सुपुष्ट और भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं। यह धैर्य में हिमालय के समान जान पड़ता है।

**सिंहखेलगतिः श्रीमान् मत्तनागेन्द्रविक्रमः।**
**सम्भाव्यमस्मिन् कर्मेदमुत्साहाच्चानुमीयते ॥३१॥**

"इसकी चाल सिंह के समान मस्तानी है। यह शोभायुक्त तरुण मदमस्त हाथी के समान पराक्रमी प्रतीत होता है। इस वीर के लिए यह कार्य करना सम्भव है। इसका उत्साह देखकर भी ऐसा ही अनुमान होता है।"

**एवं तेषां विलपतां विप्राणां विविधा गिरः।**
**अर्जुनो धनुषोऽभ्याशे तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥३२॥**

इस प्रकार जब ब्राह्मण लोग भाँति-भाँति की बातें कर रहे थे, उसी समय महावीर अर्जुन धनुष के पास जाकर पर्वत के समान अविचल भाव से खड़े हो गये। फिर—

**यत् पार्थिवै रुक्मसुनीथवक्रैः**
**राधेय - दुर्योधन - शल्यशाल्वैः।**
**तदा धनुर्वेदपरैर्नृसिंहैः**
**कृतं न सज्यं महतोऽपि यत्नात् ॥३३॥**
**तदर्जुनो वीर्यवतां सदर्प-**
**स्तदैन्द्रिरिन्द्रावरजप्रभावः।**
**सज्यं च चक्रे निमिषान्तरेण**
**शरश्च जग्राह दशार्धसंख्यान् ॥३४॥**

रुक्म, सुनीथ, वक्र, कर्ण, दुर्योधन, शल्य तथा शाल्व आदि धनुर्वेद के पारङ्गत विद्वान् पुरुषसिंह राजा लोग महान् प्रयत्न करके भी जिस धनुष पर डोरी न चढ़ा सके थे, उसी धनुष पर विष्णु के समान प्रभावशाली एवं पराक्रमी, वीरों में श्रेष्ठता का अभिमान रखनेवाले, इन्द्रकुमार अर्जुन ने पलक

मारते-मारते डोरी चढ़ा दी। तत्पश्चात् उन्होंने वे पाँच बाण भी हाथ में ले लिये।

**विव्याध लक्ष्यं निपपात तच्च**
**छिद्रेण भूमौ सहसातिविद्धम्।**
**ततोऽन्तरिक्षे च बभूव नादः**
**समाजमध्ये च महान् निनादः ॥३५॥**

और उन्हें चलाकर बात-की-बात में [लक्ष्य को] वेध दिया। वह बिंधा हुआ लक्ष्य अत्यन्त छिन्न-भिन्न हो यन्त्र के छेद से सहसा पृथिवी पर गिर पड़ा। उस समय आकाश में बड़ा भारी धमाका हुआ और सभा-मण्डप में उससे भी महान् आनन्द-भरा कोलाहल छा गया।

**तस्मिंस्तु शब्दे महति प्रवृद्धे**
**युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः।**
**आवासमेवोपजगाम शीघ्रं**
**सार्धं यमाभ्यां पुरुषोत्तमाभ्याम् ॥३६॥**

उस समय जब महान् कोलाहल बढ़ने लगा, तब धर्मात्माओं में श्रेष्ठ युधिष्ठिर पुरुषोत्तम नकुल और सहदेव को साथ लेकर डेरे पर चले गये।

**विद्धं तु लक्ष्यं प्रसमीक्ष्य कृष्णा**
**पार्थं च शक्रप्रतिमं निरीक्ष्य।**
**आदाय शुक्लं वरमाल्यदाम**
**जगाम कुन्तीसुतमुत्स्मयन्ती ॥३७॥**

लक्ष्य को बिंधकर धरती पर गिरा देख इन्द्र-तुल्य पराक्रमी अर्जुन पर दृष्टि डालकर हाथों में सुन्दर श्वेत फूलों की जयमाला लिये द्रौपदी मन्द-मन्द मुस्कराती हुई कुन्तीपुत्र के समीप गई।

**इति महाभारते आदिपर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥**

# एकत्रिंशोऽध्यायः

**भीम और अर्जुन का द्रुपद को मारने के लिए उद्यत हुए राजाओं का सामना करना, उनके द्वारा कर्ण और शल्य की पराजय तथा द्रौपदी-सहित डेरे पर आना**

**वैशम्पायन उवाच**

**तस्मै दित्सति कन्यां तु ब्राह्मणाय तदा नृपे।**
**कोप आसीन्महीपानामालोक्यान्योन्यमन्तिकात् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! राजा द्रुपद उस ब्राह्मण को कन्या देना चाहते हैं, यह जानकर उस समय वे राजा लोग बहुत क्रुद्ध हुए और वे एक-दूसरे को देखकर तथा समीप आकर इस प्रकार कहने लगे—

**अस्मानयमतिक्रम्य तृणीकृत्य च संगतान्।**
**दातुमिच्छति विप्राय द्रौपदीं योषितां वराम् ॥२॥**

"[अहो! देखो तो सही] यह राजा द्रुपद यहाँ एकत्र हुए हम सब लोगों को तिनके के समान तुच्छ समझकर और हमारा तिरस्कार करके युवतियों में श्रेष्ठ अपनी कन्या का विवाह एक ब्राह्मण के साथ करना चाहता है!

**अवरोप्येह वृक्षं तु फलकाले निपात्यते।**
**निहन्मैनं दुरात्मानं योऽयमस्मान् न मन्यते ॥३॥**

"यह वृक्ष लगाकर अब फल लगने के समय उसे काटकर गिरा रहा है, अतः हम लोग इस दुरात्मा को मार डालें, क्योंकि यह हमें कुछ नहीं समझ रहा है।"

**इत्युक्त्वा राजशार्दूला हृष्टाः परिघबाहवः।**
**द्रुपदं तु जिघांसन्तः सायुधाः समुपाद्रवन् ॥४॥**

ऐसा कहकर परिघ-जैसी मोटी भुजाओंवाले वे श्रेष्ठ भूपाल हर्ष और उत्साह में भरकर हाथों में अस्त्र-शस्त्र लिये द्रुपद को मारने की इच्छा से उनकी ओर वेग से दौड़े।

**वेगेनापततस्तांस्तु प्रभिन्नानिव वारणान्।**
**पाण्डुपुत्रौ महेष्वासौ प्रतियातावरिन्दमौ ॥५॥**

मद की धारा बहानेवाले मदोन्मत्त गजराजों की भाँति उन नृपों को वेग से आते देखकर शत्रुदमन महाधनुर्धर पाण्डुनन्दन भीम और अर्जुन उनका सामना करने के लिए आ गये।

**ततः समुत्पेतुरुदायुधास्ते**
**महीक्षितो बद्धतलांगुलित्राः।**
**जिघांसमानाः कुरुराजपुत्रा-**
**वमर्षयन्तोऽर्जुनभीमसेनौ ॥६॥**

तब हाथों में गोह के चमड़े के दस्ताने पहने और आयुधों को ऊपर उठाये अमर्ष में भरे हुए वे सभी नरेश राजकुमार भीम और अर्जुन को मारने के लिए उनपर टूट पड़े।

**ततस्तु भीमोऽद्भुतभीमकर्मा**
**महाबलो वज्रसमानसारः।**
**उत्पाटच दोर्भ्यां द्रुममेकवीरो**
**निष्पत्रयामास यथा गजेन्द्रः ॥७॥**

तब तो वज्र के समान शक्तिशाली तथा अद्भुत एवं भयानक कर्म करनेवाले अद्वितीय वीर महाबली भीमसेन ने गजराज की भाँति अपने दोनों हाथों से एक वृक्ष को उखाड़ लिया एवं उसके पत्ते झाड़ दिये।

**तं वृक्षमादाय रिपुप्रमाथी**
**दण्डीव दण्डं पितृराज उग्रम्।**
**तस्थौ समीपे पुरुषर्षभस्य**
**पार्थस्य पार्थः पृथुदीर्घबाहुः ॥८॥**

फिर मोटी और विशाल भुजाओंवाले शत्रुनाशक कुन्तीपुत्र भीमसेन उसी वृक्ष को हाथ में लेकर भयंकर दण्ड उठाये हुए दण्डधारी यमराज की भाँति पुरुषोत्तम अर्जुन के समीप खड़े हो गये।

**तत् प्रेक्ष्य कर्मातिमनुष्यबुद्धि-**
**र्जिष्णुः स हि भ्रातुरचिन्त्यकर्मा।**
**विसिष्मिये चापि भयं विहाय**
**तस्थौ धनुर्गृह्य महेन्द्रकर्मा ॥९॥**

असाधारण बुद्धिवाले तथा देवराज इन्द्र के समान महापराक्रमी, अचिन्त्यकर्मा अर्जुन अपने भाई भीमसेन के उस अद्भुत कार्य को देखकर चकित हो उठे और भय छोड़कर धनुष हाथ में लिये हुए युद्ध के लिए डट गये।

**अजनानि विधुन्वन्तः करकाँश्च द्विजर्षभाः।**
**ऊचुस्ते भीर्न कर्तव्या वयं योत्स्यामहे परान् ॥१०॥**

उस समय अपने मृगचर्म और कमण्डलुओं को हिलाते और उछालते हुए वे श्रेष्ठ ब्राह्मण अर्जुन से कहने लगे—"तुम डरना मत, हम सब लोग तुम्हारी ओर से शत्रुओं से युद्ध करेंगे।"

**ततः कर्णमुखान् दृष्ट्वा क्षत्रियान् युद्धदुर्मदान्।**
**सम्पेततुरभीतौ तौ गजौ प्रतिगजानिव ॥११॥**

तब कर्ण आदि रणोन्मत्त क्षत्रियों को आते देख वे दोनों भाई निर्भय हो उनपर उसी प्रकार टूट पड़े, जैसे दो मतवाले हाथी अपने विपक्षी हाथियों की ओर बढ़े जा रहे हों।

**ततः कर्णो महातेजा जिष्णुं प्रति ययौ रणे।**
**भीमसेनं ययौ शल्यो मद्राणामीश्वरो बली ॥१२॥**

उस समय महातेजस्वी कर्ण युद्ध के लिए अर्जुन की ओर बढ़ा और महाबली मद्रराज शल्य भीम से जा भिड़े।

**ततोऽर्जुनः प्रत्यविध्यदापतन्तं शितैः शरैः।**
**कर्णं वैकर्तनं श्रीमान् विकृष्य बलवद् धनुः ॥१३॥**

तब तेजस्वी अर्जुन ने अपने धनुष को जोर से खींचकर अपनी ओर वेग से आते हुए सूर्यपुत्र कर्ण को कई बाण मारे।

**तेषां शराणां वेगेन शितानां तिग्मतेजसाम्।**
**विमुह्यमानो राधेयो यत्नात् तमनुधावति ॥१४॥**

उन दुःसह तेजवाले तीखे बाणों के वेगपूर्ण आघात से राधानन्दन कर्ण को मूर्च्छा आने लगी। वह बड़ी कठिनाई से अर्जुन की ओर बढ़ा।

**तावुभावप्यनिर्देश्यौ लाघवाज्जयतां वरौ।**
**अयुध्येतां सुसंरब्धावन्योन्यविजिगीषिणौ ॥१५॥**

विजयी वीरों में श्रेष्ठ वे दोनों योद्धा हाथों की फुर्ती दिखाने में बेजोड़ थे। उनमें कौन बड़ा है और कौन छोटा—यह बताना असम्भव था। दोनों ही एक-दूसरे को जीतने की इच्छा रखकर बड़े क्रोध से लड़ रहे थे।

**ततोऽर्जुनस्य भुजयोर्वीर्यमप्रतिमं भुवि।**
**ज्ञात्वा वैकर्तनः कर्णो हृष्टोऽब्रवीदिदं वचः ॥१६॥**

तदनन्तर अर्जुन के बाहुबल की इस पृथिवी पर कहीं समानता नहीं है, यह जानकर सूर्यपुत्र कर्ण ने हर्षित होकर यह वचन कहा—

कर्ण उवाच

**तुष्यामि ते विप्रमुख्य भुजवीर्यस्य संयुगे।**
**अविषादस्य चैवास्य शस्त्रास्त्रविजयस्य च ॥१७॥**

**कर्ण बोला**—विप्रवर! युद्ध में आपके बाहुबल से मैं अति सन्तुष्ट हूँ। आपमें थकावट अथवा विषाद का कोई चिह्न दिखाई नहीं देता और आपने सभी

अस्त्र-शस्त्रों को जीतकर मानो अपने वश में कर लिया है।

**किं त्वं साक्षाद् धनुर्वेदो रामो वा विप्रसत्तम।**
**अथ साक्षाद्धरिहयः साक्षाद्वा विष्णुरच्युतः ॥१८॥**

विप्रशिरोमणे! आप मूर्तिमान् धनुर्वेद हैं या परशुराम? अथवा आप स्वयं इन्द्र हैं या अपनी महिमा से कभी च्युत न होनेवाले विष्णु हैं?

**न हि मामाहवे क्रुद्धमन्यः साक्षाच्छचीपतेः।**
**पुमान् योधयितुं शक्तः पाण्डवाद्वा किरीटिनः ॥१९॥**

क्योंकि युद्ध में मेरे कुपित होने पर साक्षात् शचीपति इन्द्र अथवा किरीटधारी पाण्डुनन्दन अर्जुन के अतिरिक्त दूसरा कोई मेरा सामना नहीं कर सकता।

अर्जुन उवाच

**नास्मि कर्ण धनुर्वेदो नास्मि रामः प्रतापवान्।**
**ब्राह्मणोऽस्मि युधां श्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥२०॥**

**अर्जुन ने कहा**—कर्ण! न तो मैं धनुर्वेद हूँ और न ही प्रतापी परशुराम। मैं तो सम्पूर्ण शस्त्रधारियों में उत्तम और योद्धाओं में श्रेष्ठ एक ब्राह्मण हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तस्तु राधेयो युद्धात् कर्णो न्यवर्तत।**
**ब्राह्मं तेजस्तदाजय्यं मन्यमानो महारथः ॥२१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! अर्जुन का यह कथन सुनकर महारथी कर्ण ब्रह्मतेज को अजेय मानता हुआ उस समय युद्ध छोड़कर हट गया।

**अपरस्मिन् वनोद्देशे वीरौ शल्यवृकोदरौ।**
**अन्योन्यमाह्वयन्तौ तु मत्ताविव महागजौ ॥२२॥**

इसी समय दूसरे स्थान को अपना युद्धक्षेत्र बनाकर वीर शल्य और भीमसेन एक-दूसरे को ललकारते हुए दो मतवाले गजराजों की भाँति युद्ध कर रहे थे।

**मुष्टिभिर्जानुभिश्चैव निघ्नन्तावितरेतरम्।**
**प्रकर्षणाकर्षणयोरभ्यकर्ष विकर्षणैः ॥२३॥**

वे घूँसों और घुटनों से एक-दूसरे को मारने लगे। दोनों एक-दूसरे को दूर तक ठेल ले जाते, नीचे गिराने का प्रयत्न करते, कभी अपनी ओर खींचते और कभी अगल-बगल से पैंतरा देकर गिराने की चेष्टा करते थे।

**ततश्चटचटाशब्दः सुघोरो ह्यभवत् तयोः।**
**पाषाणसम्पातनिभैः प्रहारैरभिजघ्नतुः ॥२४॥**

उस समय घूँसों की मार से उन दोनों के शरीरों पर अत्यन्त भयंकर 'चट-चट' शब्द हो रहा था। वे परस्पर इस प्रकार प्रहार कर रहे थे, मानो पत्थर टकरा रहे हों।

**ततो भीमः समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां शल्यमाहवे।**
**अपातयत् कुरुश्रेष्ठो ब्राह्मणा जहसुस्तदा ॥२५॥**

तत्पश्चात् कुरुश्रेष्ठ भीमसेन ने दोनों हाथों से शल्य को ऊपर उठाकर युद्धभूमि में दे पटका। यह देख ब्राह्मण लोग हँसने लगे।

**तत्राश्चर्यं भीमसेनश्चकार पुरुषर्षभः।**
**यच्छल्यं पातितं भूमौ नावधीद् बलिनं बली ॥२६॥**

कुरुश्रेष्ठ! बलवान् भीमसेन ने एक आश्चर्य की बात यह की कि महाबली शल्य को पृथिवी पर पटक कर भी मार नहीं डाला।

**पातिते भीमसेनेन शल्ये कर्णे च शङ्किते।**
**शङ्किताः सर्वराजानः परिवव्रुर्वृकोदरम् ॥२७॥**

भीमसेन द्वारा शल्य को पछाड़ दिये जाने और अर्जुन से कर्ण के डर जाने पर सभी राजा [युद्ध का विचार छोड़] शंकित हो भीमसेन को चारों ओर से घेरकर खड़े हो गये।

**ऊचुश्च सहितास्तत्र साध्विमौ ब्राह्मणर्षभौ।**
**विज्ञायेतां क्वजन्मानौ क्वनिवासौ तथैव च ॥२८॥**

और एक साथ ही बोल उठे—"अहो! ये दोनों श्रेष्ठ ब्राह्मण धन्य हैं। पता तो लगाओ, इनकी जन्म-भूमि कहाँ है तथा ये रहनेवाले कहाँ के हैं?

**को हि राधासुतं कर्णं शक्तो योधयितुं रणे।**
**अन्यत्र रामाद् द्रोणाद्वा पाण्डवाद्वा किरीटिनः ॥२९॥**

"परशुराम, द्रोणाचार्य अथवा पाण्डुनन्दन अर्जुन के सिवा दूसरा ऐसा कौन है, जो युद्ध में राधानन्दन कर्ण का सामना कर सके?

**तथैव मद्राधिपतिं शल्यं बलवतां वरम्।**
**बलदेवादृते वीरात् पाण्डवाद्वा वृकोदरात् ॥३०॥**
**वीराद् दुर्योधनाद् वान्यः शक्तः पातयितुं रणे।**
**क्रियतामवहारोऽस्माद् युद्धाद् ब्राह्मणसंवृतात् ॥३१॥**

"बलवानों में श्रेष्ठ मद्रराज शल्य को भी वीर-वर बलदेव, पाण्डुनन्दन भीमसेन अथवा वीर दुर्योधन को छोड़कर दूसरा कौन रणभूमि में गिरा सकता है ? अतः ब्राह्मणों से घिरे हुए इस युद्ध-क्षेत्र से हम लोगों को हट जाना चाहिए ।"

**तत्कर्म भीमस्य समीक्ष्य कृष्णः**
**कुन्तीसुतौ तौ परिशङ्कमानः ।**
**निवारयामास महीपतींस्तान्**
**धर्मेण लब्धेत्यनुनीय सर्वान् ॥३२॥**

जनमेजय ! उधर भीमसेन का वह अद्भुत कार्य देख श्रीकृष्ण ने यह सोचते हुए कि ये दोनों भाई कुन्ती-कुमार भीमसेन और अर्जुन ही हैं, उन सब राजाओं को यह समझाकर कि "इन्होंने धर्मपूर्वक द्रौपदी को प्राप्त किया है" अनुनयपूर्वक युद्ध से रोक दिया ।

**एवं ते विनिवृत्तास्तु युद्धाद् युद्धविशारदाः ।**
**यथावासं ययुः सर्वे विस्मिता राजसत्तमाः ॥३३॥**

इस प्रकार श्रीकृष्ण के समझाने से वे सभी युद्ध-कुशल श्रेष्ठ भूपाल युद्ध से निवृत्त हो गये और विस्मित होकर अपने-अपने डेरों को चले गये ।

**तेषां माता बहुविधं विनाशं पर्यचिन्तयत् ।**
**अनागच्छत्सु पुत्रेषु भैक्ष्यकालेऽभिगच्छति ॥३४॥**
**धार्तराष्ट्रैर्हता न स्युर्विज्ञाय कुरुपुङ्गवाः ।**
**मायान्वितैर्वा रक्षोभिः सुघोरैर्दृढवैरिभिः ॥३५॥**

इधर भिक्षा से लौटने का समय बीत जाने पर भी जब पुत्र नहीं लौटे, तब उनकी माता कुन्तीदेवी स्नेहवश अनेक प्रकार की चिन्ताओं में डूबकर उनके विनाश की आशंका करने लगीं—'कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने कुरुश्रेष्ठ पाण्डवों को पहचानकर उनकी हत्या कर डाली हो ? अथवा दृढ़तापूर्वक वैरभाव को मन में रखनेवाले महाभयंकर मायावी राक्षसों ने तो मेरे पुत्रों को नहीं मार डाला?"[1]

**इत्येवं चिन्तयामास सुतस्नेहावृता पृथा ।**
**ब्राह्मणैः प्राविशत् ततो जिष्णुर्भार्गववेश्म तत् ॥३६॥**

इस प्रकार पुत्र-प्रेम में पगी कुन्तीदेवी जब चिता-मग्न हो रही थी, उसी समय ब्राह्मणमण्डली से घिरे हुए अर्जुन [और भीम] ने उस कुम्हार के घर में प्रवेश किया ।

**वृष्णिप्रवीरस्तु कुरुप्रवीरा-**
**नाशंसमानः सहरौहिणेयः ।**
**जगाम तां भार्गवकर्मशालां**
**यत्रासते ते पुरुषप्रवीराः ॥३७॥**

इधर वृष्णिवंशियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण रोहिणी-नन्दन बलरामजी के साथ कुरुकुल के प्रमुख वीर पाण्डवों को पहिचानकर कुम्हार के घर में, जहाँ वे नरश्रेष्ठ निवास करते थे, मिलने के लिए गये ।

**ततोऽब्रवीद् वासुदेवोऽभिगम्य**
**कुन्तीसुतं धर्मभृतां वरिष्ठम् ।**
**कृष्णोऽहमस्मीति निपीड्य पादौ**
**युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः ॥३८॥**

वहाँ जाकर वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण ने धर्मात्माओं में श्रेष्ठ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से "मैं कृष्ण हूँ" ऐसा

---

१. जो लोग द्रौपदी के पाँच पति मानते हैं, वे इस स्थल को ध्यानपूर्वक पढ़ें। यहाँ माता चिन्तित हो रही है कि मेरे पुत्र अभी तक क्यों नहीं लौटे ? उन्हें पहचान तो नहीं लिया गया है ?

इसके अतिरिक्त एकचक्रा नगरी में ब्राह्मण से द्रौपदी के स्वयंवर की बात सुनकर जब पाँचों पाण्डव उद्विग्न-से हो गये थे, तब माता ने स्वयं ही वहाँ जाने का प्रस्ताव रखा था। मार्ग में व्यासजी ने भी पांचाल-नगर में जाने की सम्मति दी थी। स्वयं माता को यह पता है कि मेरे पुत्र स्वयंवर में गये हैं। स्वयंवर की शर्त पूर्ण होते ही युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव माता को सूचना देने के लिए तुरन्त घर पर आ गये हैं। [द्र० **तस्मिंस्तु शब्दे** ३०।३६] भीम और अर्जुन द्रौपदी को लेकर अनेक ब्राह्मणों के साथ घर पर आये हैं। इन सब प्रसङ्गों के ध्यानपूर्वक अवलोकन से यह स्पष्ट है कि न तो पाण्डवों ने यह कहा था कि हम भिक्षा लाये हैं और न कुन्ती ने यह कहा कि पाँचों बाँट लो। द्रौपदी को पाँचों की पत्नी बनानेवाला सारा प्रकरण महाभारत में पीछे से मिलाया गया है। द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की पत्नी नहीं थी। यद्यपि स्वयंवर की शर्त अर्जुन ने पूर्ण की थी, परन्तु द्रौपदी का विवाह युधिष्ठिर के साथ हुआ था। वह युधिष्ठिर और केवल युधिष्ठिर की पत्नी थी।

कहकर अजमीढवंशी राजा युधिष्ठिर के दोनों चरणों का स्पर्श किया।

**तथैव तस्याप्यनु रौहिणेय-**
**स्तौ चापि हृष्टाः कुरवोऽभ्यनन्दन्।**
**पितृष्वसुश्चापि यदुप्रवीरा-**
**वगृह्णतां भारतमुख्य पादौ ॥३९॥**

उन्हीं के साथ उसी प्रकार [अपना नाम बताकर] बलरामजी ने भी उनके चरण छूए। पाण्डव भी उन दोनों को देखकर अति प्रसन्न हुए। जनमेजय! फिर उन यदुवीरों ने अपनी बूआ कुन्ती के चरणों का भी स्पर्श किया।

**अजातशत्रुश्च कुरुप्रवीरः**
**पप्रच्छ कृष्णं कुशलं विलोक्य।**
**कथं वयं वासुदेव त्वयेह**
**गूढा वसन्तो विदिताश्च सर्वे ॥४०॥**

कुरुकुल के श्रेष्ठ वीर अजातशत्रु युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को देखकर कुशल-समाचार पूछा और कहा—"वसुदेवनन्दन! हम तो यहाँ छिपकर रहते हैं, फिर आपने हम सब लोगों को कैसे पहचान लिया?"

**तमब्रवीद् वासुदेवः प्रहस्य**
**गूढोऽप्यग्निर्ज्ञायत एव राजन्।**
**तं विक्रमं पाण्डवेयानतीत्य**
**कोऽन्यः कर्ता विद्यते मानुषेषु ॥४१॥**

तब श्रीकृष्ण ने हँसकर उत्तर दिया—"राजन्! आग कितनी ही छिपी क्यों न हो, वह पहचान में आ ही जाती है। भला, पाण्डवों को छोड़कर मनुष्यों में ऐसा कौन है, जो वैसा अद्भुत कर्म कर दिखाता?

**दिष्ट्या सर्वे पावकाद् विप्रमुक्ता**
**यूयं घोरात् पाण्डवाः शत्रुसाहाः।**
**दिष्ट्या पापो धृतराष्ट्रस्य पुत्रः**
**सहामात्यो न सकामोऽभविष्यत् ॥४२॥**

बड़े सौभाग्य की बात है कि शत्रुओं का सामना करने की शक्ति रखनेवाले आप सभी पाण्डव उस भयंकर अग्नि-काण्ड से जीवित बच गये। धृतराष्ट्र-पुत्र पापी दुर्योधन अपने मन्त्रियोंसहित इस षड्यन्त्र में सफल न हो सका, यह भी सौभाग्य की बात है।

**इति महाभारते आदिपर्वणि एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥**

## द्वात्रिंशोऽध्यायः

**धृष्टद्युम्न का गुप्तरूप से पाण्डवों का हाल जानना, द्रुपद द्वारा उनके शील की परीक्षा और युधिष्ठिर के साथ द्रौपदी का विवाह**

वैशम्पायन उवाच

**धृष्टद्युम्नस्तु पाञ्चाल्यः पृष्ठतः कुरुनन्दनौ।**
**अन्वगच्छत् तदा यान्तौ भार्गवस्य निवेशने ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! जब कुरुनन्दन भीमसेन और अर्जुन कुम्हार के घर जा रहे थे, उसी समय पाञ्चालकुमार धृष्टद्युम्न गुप्तरूप से उनके पीछे हो लिये।

**सोऽज्ञायमानः पुरुषानवधाय समन्ततः।**
**स्वयमारान्निलीनोऽभूद् भार्गवस्य निवेशने ॥२॥**

[वहाँ पहुँचकर] उन्होंने चारों ओर अपने सेवकों को बिठा दिया और स्वयं भी अज्ञातरूप से कुम्हार के घर के पास ही छिपे रहे।

**सायं च भीमस्तु रिपुप्रमाथी**
**जिष्णुर्यमौ चापि महानुभावौ।**
**भैक्ष्यं चरित्वा तु युधिष्ठिराय**
**निवेदयाञ्चक्रुरदीनसत्त्वाः ॥३॥**

सायंकाल होने पर शत्रुओं का मानमर्दन करनेवाले भीमसेन, अर्जुन और महानुभाव नकुल-सहदेव ने भिक्षा लाकर युधिष्ठिर को निवेदन की। इन सबका अन्तःकरण उदार था।

**ततस्तु कुन्ती द्रुपदात्मजां ता-**
**मुवाच काले वचनं वदान्या।**
**त्वमग्रमादाय कुरुष्व भद्रे**
**बलिं च विप्राय च देहि भिक्षाम् ॥४॥**

उस समय उदार-हृदया कुन्ती माँ ने द्रौपदी से कहा—"भद्रे! तुम भोजन का प्रथम भाग लेकर उससे बलिवैश्वदेव यज्ञ करो तथा ब्राह्मणों को भिक्षा दो।

ये चान्नमिच्छन्ति ददस्व तेभ्यः
परिश्रिता ये परितो मनुष्याः ।
यतश्च शेषं प्रविभज्य शीघ्र-
मर्धं चतुर्धा मम चात्मनश्च ॥५॥

"तथा अपने आस-पास जो दूसरे मनुष्य आश्रित-भाव से रहते और भोजन चाहते हैं, उन्हें भी अन्न परोसो। फिर जो शेष बचे, उसका शीघ्र ही इस प्रकार विभाग करो—अन्न का आधा भाग एक के लिए रखो, पुनः शेष के छह भाग करके चार भाइयों के लिए चार भाग पृथक्-पृथक् रख दो, तत्पश्चात् मेरे और अपने लिए भी एक-एक भाग अलग-अलग परोस दो।

अर्धं च भीमाय च देहि भद्रे
य एष नागर्षभतुल्यरूपः ।
गौरो युवा संहननोपपन्न
एषो ह वीरो बहुभुक् सदैव ॥६॥

"कल्याणि ! ये जो गजराज के समान शरीर-वाले, हृष्ट-पुष्ट, गोरे युवक बैठे हैं, इनका नाम भीम है, इन्हें अन्न का आधा भाग दे दो, क्योंकि यह वीर सदा से ही बहुत खानेवाले हैं।"

सा हृष्टरूपेव तु राजपुत्री
तस्या वचः साधु विशङ्कमाना ।
यथावदुक्तं प्रचकार साध्वी
ते चापि सर्वे बुभुजुस्तदन्नम् ॥७॥

सास की आज्ञा-पालन में ही अपना कल्याण मानती हुई साध्वी राजकुमारी द्रौपदी ने अति प्रसन्न चित्त से कुन्ती ने जैसा कहा, ठीक वैसा ही किया। उन सबने भी उस अन्न को ग्रहण किया।

ते तत्र शूराः कथयाम्बभूवुः
कथा विचित्राः पृतनाधिकाराः ।
अस्त्राणि दिव्यानि रथाँश्च नागान्
खड्गान् गदाश्चापि परश्वधाँश्च ॥८॥

फिर वे शूरवीर पाण्डव सेनापतियों के योग्य अद्‌भुत कथाएँ कहने लगे। उन्होंने नाना प्रकार के दिव्यास्त्रों, रथों, हाथियों, तलवारों, गदाओं और फरसों के विषय में भी वार्तालाप किया।

धृष्टद्युम्नो राजपुत्रस्तु सर्वं
वृत्तं तेषां कथितं चैव रात्रौ ।
सर्वं राज्ञे द्रुपदायाखिलेन
निवेदयिष्यँस्त्वरितो जगाम ॥९॥

तब राजकुमार धृष्टद्युम्न रात में पाण्डवों का इतिहास तथा उनकी कही हुई सभी बातें राजा द्रुपद को पूर्णरूप से सुनाने के लिए बड़ी उतावली के साथ राजभवन में गये।

पाञ्चालराजस्तु विषण्णरूप-
स्तान् पाण्डवानप्रतिविन्दमानः ।
धृष्टद्युम्नं पर्यपृच्छन्महात्मा
क्व सा गता केन नीता च कृष्णा ॥१०॥

पाञ्चालराज द्रुपद पाण्डवों का पता न पाने के कारण अत्यन्त दुःखी थे। धृष्टद्युम्न के लौटने पर महात्मा द्रुपद ने उससे पूछा—"पुत्र ! मेरी पुत्री कृष्णा कहाँ गई ? उसे कौन ले गया ?"

ततस्तथोक्तः परिहृष्टरूपः
पित्रे शशंसाथ स राजपुत्रः ।
धृष्टद्युम्नः सोमकानां प्रबर्हो
वृत्तं यथा येन हृता च कृष्णा ॥११॥

राजा द्रुपद के ऐसा कहने पर सोमकशिरोमणि राजकुमार धृष्टद्युम्न अत्यन्त हर्ष में भरकर, वहाँ जो वृत्तान्त हुआ था और जो कृष्णा को ले गया था, वह सब समाचार सुनाने लगे।

धृष्टद्युम्न उवाच

निःसंशयं क्षत्रियपुङ्गवास्ते
यथा हि युद्धं कथयन्ति राजन् ।
आशा हि नो व्यक्तमियं समृद्धा
मुक्तान् हि पार्थाञ्छृणुमोऽग्निदाहात् ॥१२॥

**धृष्टद्युम्न बोले**—जिस प्रकार वे युद्ध का वर्णन करते थे, उससे यह मान लेने में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि वे लोग क्षत्रियशिरोमणि हैं। हमने सुना है कि कुन्तीकुमार लाक्षागृह की अग्नि में जलने से बच गये थे, अतः हमारे मन में जो पाण्डवों से सम्बन्ध करने की अभिलाषा थी, निश्चय ही वह सफल हुई जान पड़ती है।

**यथा हि लक्ष्यं निहतं धनुश्च**
**सज्यं कृतं तेन तथा प्रसह्य।**
**यथा हि भाषन्ति परस्परं ते**
**छन्ना ध्रुवं ते प्रचरन्ति पार्थाः ॥१३॥**

जिस प्रकार उन्होंने धनुष पर बलपूर्वक प्रत्यञ्चा चढ़ाई, जिस प्रकार दुर्भेद्य लक्ष्य को मार गिराया तथा जिस प्रकार वे सभी भाई परस्पर वार्तालाप करते थे, उससे यह निश्चय हो जाता है कि कुन्ती-पुत्र ही ब्राह्मण-वेश में छिपे हुए विचर रहे हैं।

वैशम्पायन उवाच

**ततः स राजा द्रुपदः प्रहृष्टः**
**पुरोहितं प्रेषयामास तेषाम्।**
**विद्याम युष्मानिति भाषमाणो**
**महात्मानः पाण्डुसुतास्तु कच्चित् ॥१४**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! इस समाचार से राजा द्रुपद को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उसी समय उनके पास अपने पुरोहित को भेजते हुए कहा—"आप उन लोगों से कहना कि मैं आप लोगों का परिचय जानना चाहता हूँ। क्या आप लोग महात्मा पाण्डु के पुत्र हैं?"

**गृहीतवाक्यो नृपतेः पुरोधा**
**गत्वा प्रशंसामभिधाय तेषाम्।**
**वाक्यं समग्रं नृपतेर्यथावत्**
**उवाच चानुक्रमविक्रमेण ॥१५॥**

राजा का अनुरोध मानकर पुरोहितजी गये तथा उन सबकी प्रशंसा करके राजा द्रुपद के वचनों को ठीक-ठीक एक के बाद एक करके क्रमशः कहने लगे—

**विज्ञातुमिच्छत्यवनीश्वरो वः**
**पाञ्चालराजो वरदो वरार्हाः।**
**लक्ष्यस्य वेद्धारमिमं हि दृष्ट्वा**
**हर्षस्य नान्तं प्रतिपद्यते सः ॥१६॥**

"वरदान पाने के योग्य वीरपुरुषो! वर देने में समर्थ पाञ्चालदेश के राजा द्रुपद आप लोगों का परिचय जानना चाहते हैं। इस वीर पुरुष को लक्ष्य-वेध करते देखकर उनके [द्रुपद] हर्ष की सीमा नहीं रह गई है।

**आख्यात च जातिकुलानुपूर्वी**
**पदं शिरस्सु द्विषतां कुरुध्वम्।**
**प्रह्लादयध्वं हृदयं ममेदं**
**पाञ्चालराजस्य च सानुगस्य ॥१७॥**

"आप लोग अपने वर्ण और कुल आदि का यथार्थरूप से वर्णन करें, शत्रुओं के मस्तक पर पैर रखें तथा मेरे और अनुचरोंसहित पाञ्चालराज के हृदय को आनन्द प्रदान करें।

**पाण्डुर्हि राजा द्रुपदस्य राज्ञः**
**प्रियः सखा चात्मसमो बभूव।**
**तस्यैष कामो दुहिता ममेयं**
**स्नुषां प्रदास्यामि हि कौरवाय ॥१८॥**

"महाराज पाण्डु राजा द्रुपद के आत्मानुरूप प्रिय मित्र थे, अतः उनकी यह अभिलाषा थी कि मैं अपनी इस पुत्री का विवाह पाण्डुकुमार से करूँ। इसे राजा पाण्डु को पुत्रवधू के रूप में समर्पित करूँ।

**कृतं हि तत् स्यात् सुकृतं ममेदं**
**यशश्च पुण्यं च हितं तदेतत् ॥१९॥**

"उनका कहना है कि यदि मेरा यह मनोरथ पूरा हो जाए, तो मैं समझूँगा कि यह मेरे शुभकर्मों का फल प्राप्त हुआ है। यही मेरे लिए यश, पुण्य और हित की बात होगी।"

युधिष्ठिर उवाच

**पाञ्चालराजेन सुता निसृष्टा**
**स्वधर्मदृष्टेन यथा न कामात्।**
**प्रदिष्टशुल्का द्रुपदेन राज्ञा**
**सा तेन वीरेण तथानुवृत्ता ॥२०॥**

**युधिष्ठिर बोले**—ब्रह्मन्! पाञ्चालराज द्रुपद ने यह कन्या अपनी इच्छा से नहीं दी है, उन्होंने अपने धर्म के अनुसार लक्ष्य-वेध की शर्त रखकर अपनी पुत्री देने का निश्चय किया था। उस वीर पुरुष ने उसी शर्त को पूर्ण करके यह कन्या प्राप्त की है।

**न तत्र वर्णेषु कृता विवक्षा**
**न चापि शीले न कुले न गोत्रे।**
**कृतेन सज्येन हि कार्मुकेण**
**विद्धेन लक्ष्येण हि सा विसृष्टा ॥२१॥**

राजा ने वहाँ वर्ण, शील, कुल तथा गोत्र के विषय में कोई अभिप्राय व्यक्त नहीं किया था। धनुष पर डोरी चढ़ाकर लक्ष्यवेध कर देने पर ही कन्या-दान की घोषणा की थी।

**कामश्च योऽसौ द्रुपदस्य राज्ञः**
**स चापि सम्पत्स्यति पार्थिवस्य।**
**सम्प्राप्यरूपां हि नरेन्द्रकन्या-**
**मिमामहं ब्राह्मण साधु मन्ये ॥२२॥**

ब्राह्मण ! राजा द्रुपद की जो पहले की अभिलाषा है, वह भी पूर्ण होगी। इस राजकन्या को मैं सर्वथा ग्रहण करने योग्य एवं उत्तम मानता हूँ।

**न तद्धनुर्मन्दबलेन शक्यं**
**मौर्व्या समायोजयितुं तथा हि।**
**न चाकृतास्त्रेण न हीनजेन**
**लक्ष्यं तथा पातयितुं हि शक्यम् ॥२३॥**

कोई बलहीन मनुष्य उस विशाल धनुष पर प्रत्यञ्चा नहीं चढ़ा सकता था। जिसने अस्त्रविद्या की पूर्ण शिक्षा न पाई हो, ऐसे पुरुष के अथवा किसी नीच कुल के मनुष्य के लिए भी उस लक्ष्य का वेधना असम्भव था।

**तस्मान्न तापं दुहितुर्निमित्तं**
**पाञ्चालराजोऽर्हति कर्तुमद्य।**
**न चापि तत्पातनमन्यथेह**
**कर्तुं हि शक्यं भुवि मानवेन ॥२४॥**

अतः पाञ्चालराज को अब अपनी पुत्री के लिए पश्चात्ताप करना उचित नहीं है। इस भूमण्डल पर उस वीर के अतिरिक्त ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जो उस लक्ष्य को वेध सके।

वैशम्पायन उवाच

**एवं ब्रुवत्येव युधिष्ठिरे तु**
**पाञ्चालराजस्य समीपतोऽन्यः।**
**तत्राजगामाशु नरो द्वितीयो**
**निवेदयिष्यन्निह सिद्धमन्नम् ॥२५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजा युधिष्ठिर ऐसा कह ही रहे थे कि पाञ्चालराज द्रुपद के पास से एक दूसरा मनुष्य यह समाचार देने के लिए शीघ्रतापूर्वक आया कि "राजभवन में आप लोगों के लिए भोजन तैयार है।"

दूत उवाच

**इमे रथाः काञ्चनपद्मचित्राः**
**सदश्वयुक्ता वसुधाधिपार्हाः।**
**एतान् समारुह्य समेत सर्वे**
**पाञ्चालराजस्य निवेशनं तत् ॥२६॥**

**दूत बोला**—ये सुवर्णमय कमलों से सुशोभित तथा राजाओं की सवारी के योग्य विचित्र रथ खड़े हैं। इनमें उत्तम घोड़े जुते हैं। इनपर सवार हो आप सब लोग महाराज द्रुपद के महल में पधारें।

वैशम्पायन उवाच

**ततः प्रयाताः कुरुपुङ्गवास्ते**
**पुरोहितं तं परियाप्य सर्वे।**
**आस्थाय यानानि महान्ति तानि**
**कुन्ती च कृष्णा च सहैकयाने ॥२७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तब वे सभी कुरुश्रेष्ठ पाण्डव पुरोहितजी को विदा करके उन विशाल रथों पर आरूढ़ हो [राजमहलों की ओर] चले। उस समय कुन्ती और कृष्णा एक साथ एक ही रथ पर बैठी हुई थीं।

**श्रुत्वा तु वाक्यानि पुरोहितस्य**
**यान्युक्तवान् भारत धर्मराजः।**
**जिज्ञासयैवाथ कुरूत्तमानां**
**द्रव्याण्यनेकान्युपसंजहार ॥२८॥**

भरतकुलभूषण ! उस समय धर्मराज युधिष्ठिर ने जो बातें कही थीं, उन्हें पुरोहित के मुख से सुनकर उन कुरुश्रेष्ठ वीरों के शील-स्वभाव की परीक्षा के लिए राजा द्रुपद ने अनेक प्रकार की वस्तुओं का संग्रह किया।

**तान् सिंहविक्रान्तगतीन् निरीक्ष्य**
**राजा च राज्ञः सचिवाश्च पुत्राः।**
**प्रेष्याश्च सर्वे सुहृदस्तथैव**
**हर्षं समापेतुरतीव तत्र ॥२९॥**

सिंह के समान पराक्रम-सूचक चाल-ढालवाले पाण्डवों को [राजभवन में पधारे हुए] देखकर राजा द्रुपद, उनके सभी मन्त्री, पुत्र, इष्ट-मित्र और सभी नौकर-चाकर—सब-के-सब अति प्रसन्न हुए।

ते तत्र वीराः परमासनेषु
सपादपीठेष्वविशङ्कमानाः ।
यथानुपूर्वं विविशुर्नराग्र्याः
तथा महार्हेषु न विस्मयन्तः ॥३०॥

वे नरश्रेष्ठ वीर पाण्डव वहाँ लगे हुए पादपीठ-सहित बहुमूल्य श्रेष्ठ सिंहासनों पर बिना किसी हिचक या संकोच के मन में तनिक भी विस्मय न करते हुए बड़े-छोटे के क्रम से जा बैठे।

उच्चावचं पार्थिवभोजनीयं
पात्रीषु जाम्बूनदराजतीषु ।
दासाश्च दास्यश्च सुमृष्टवेशाः
सम्भोजकाश्चाप्युपजह्रुरन्नम् ॥३१॥

तब स्वच्छ और सुन्दर वेश-भूषा धारण किये हुए दास-दासी और रसोइयों ने सोने-चाँदी के बर्तनों में राजाओं के भोजन करने योग्य अनेक प्रकार की सामान्य और विशेष भोजन-सामग्री लाकर परोसी।

ते तत्र भुक्त्वा पुरुषप्रवीरा
यथाऽऽत्मकामं सुभृशं प्रतीताः ।
उत्क्रम्य सर्वाणि वसूनि राजन्
सांग्रामिकं ते विविशुर्नृवीराः ॥३२॥

मनुष्यों में श्रेष्ठ पाण्डव वहाँ अपनी रुचि के अनुसार उन सब वस्तुओं को खाकर अत्यधिक प्रसन्न हुए। राजन्! [तत्पश्चात् वहाँ संगृहीत अन्य] सब भोग-विलास की सामग्रियों को छोड़कर वे वीर पहले उसी स्थान पर गये, जहाँ युद्ध की सामग्रियाँ रखी गई थीं।

तल्लक्षयित्वा द्रुपदस्य पुत्रो
राजा च सर्वैः सहमन्त्रिमुख्यैः ।
समर्थयामासुरुपेत्य हृष्टाः
कुन्तीसुतान् पार्थिव राजपुत्रान् ॥३३॥

जनमेजय! यह सब देखकर राजा द्रुपद, राजकुमार और सभी प्रधान मन्त्री अति प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने मन में यही निश्चय किया कि ये राजकुमार कुन्तीदेवी के ही पुत्र हैं।

तत आहूय पाञ्चाल्यो राजपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
पर्यपृच्छददीनात्मा कुन्तीपुत्रं सुवर्चसम् ॥३४॥
कथं जानीम भवतः क्षत्रियान् ब्राह्मणानुत ।
वैश्यान् वा गुणसम्पन्नानथवा शूद्रयोनिजान् ॥३५॥

तत्पश्चात् महामना पाञ्चालराज द्रुपद ने अत्यन्त कान्तिमान् कुन्तीपुत्र राजकुमार युधिष्ठिर को [अपने पास] बुलाकर पूछा—"हमें किस प्रकार ज्ञात हो कि आप लोग किस वर्ण के हैं? हम आपको क्षत्रिय, ब्राह्मण, गुणसम्पन्न वैश्य अथवा शूद्र क्या समझें?

इच्छया ब्रूहि तत्वं सत्यं सत्यं राजसु शोभते ।
इष्टापूर्तेन च तथा वक्तव्यमनृतं न तु ॥३६॥

"आप स्वेच्छा से ही सच्ची बात बताएँ। राजाओं में इष्ट और पूर्त[1] की अपेक्षा सत्य की ही अधिक महिमा है, अतः असत्य नहीं बोलना चाहिए।"

युधिष्ठिर उवाच

मा राजन् विमना भूस्त्वं पाञ्चाल्य प्रीतिरस्तु ते ।
ईप्सितस्ते ध्रुवः कामः संवृत्तोऽयमसंशयम् ॥३७

युधिष्ठिर ने कहा—पाञ्चालराज! आप उदास न हों, आपको प्रसन्न होना चाहिए। आपके मन में जो अभीष्ट कामना थी, वह निश्चय ही पूर्ण हुई है, इसमें संशय नहीं है।

वयं हि क्षत्रिया राजन् पाण्डोः पुत्रा महात्मनः ।
ज्येष्ठं मां विद्धि कौन्तेयं भीमसेनार्जुनाविमौ ॥३८॥

राजन्! हम लोग क्षत्रिय ही हैं और महात्मा पाण्डु के पुत्र हैं। मुझे कुन्ती का ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर समझिए तथा ये दोनों भीम एवं अर्जुन हैं।

आभ्यां तव सुता राजन् निर्जिता राजसंसदि ।
यमौ च तत्र कुन्ती च यत्र कृष्णा व्यवस्थिता ॥३९॥

---

१. अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥
—अत्रिस्मृति, १।४४

अग्निहोत्र, तप-अनुष्ठान, सत्य-भाषण, वेदों की आज्ञा का पालन, अतिथियों का सत्कार और बलिवैश्वदेव—इनका नाम 'इष्ट' है।

वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च ।
अन्नप्रदानमारामाः पूर्तमित्यभिधीयते ॥—वही, १।४५

बावड़ी, कुआँ, तालाब इत्यादि जलाशयों का निर्माण, यज्ञशालाओं की प्रतिष्ठा, अन्नदान और बगीचों का लगाना—इसका नाम 'पूर्त' है।

राजन् ! इन्हीं दोनों ने समस्त राजाओं के समूह में आपकी पुत्री को जीता है। उधर वे दोनों नकुल तथा सहदेव हैं। माता कुन्ती वहीं गई हैं, जहाँ राजकुमारी कृष्णा हैं।

**व्येतु ते मानसं दुःखं क्षत्रियाः स्मो नरर्षभ।**
**पद्मिनीव सुतेयं ते ह्रदादन्यह्रदं गता ॥४०॥**

नरश्रेष्ठ ! अब आपकी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिए। हम सब क्षत्रिय हैं। आपकी यह पुत्री कृष्णा कमलिनी की भाँति एक सरोवर से दूसरे सरोवर को प्राप्त हुई है।

वैशम्पायन उवाच

**ततः स द्रुपदो राजा हर्षव्याकुललोचनः।**
**प्रतिवक्तुं मुदा युक्तो नाशकत् तं युधिष्ठिरम् ॥४१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! राजा युधिष्ठिर की ये बातें सुनकर महाराज द्रुपद की आँखों में हर्ष के आँसू छलक आये। वे आनन्द में मग्न हो गये और [गला भर आने के कारण] युधिष्ठिर को तुरन्त [कुछ] उत्तर न दे सके।

**यत्नेन तु स तं हर्षं संनिगृह्य परन्तपः।**
**अनुरूपं तदा वाचा प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥४२॥**

शत्रुसंतापक द्रुपद ने बड़े यत्न से अपने हर्ष के आवेग को रोका; फिर युधिष्ठिर को उनके कथन के अनुरूप ही उत्तर दिया।

**पप्रच्छ चैनं धर्मात्मा यथा ते प्रद्रुताः पुरात्।**
**स तस्मै सर्वमाचख्यावानुपूर्व्येण पाण्डवः ॥४३॥**

फिर उन धर्मात्मा पाञ्चाल-नरेश ने यह पूछा कि "आप लोग वारणावत नगर से किस प्रकार भाग निकले ?" तब पाण्डवनन्दन युधिष्ठिर ने वह सारा वृत्तान्त उन्हें क्रमपूर्वक कह सुनाया।

**तत् श्रुत्वा द्रुपदो राजा कुन्तीपुत्रस्य भाषितम्।**
**विगर्हयामास तदा धृतराष्ट्रं नरेश्वरम् ॥४४॥**
**आश्वासयामास च तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।**
**प्रतिजज्ञे च राज्याय द्रुपदो वदतां वरः ॥४५॥**

कुन्तीकुमार के मुख से वह सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर वक्ताओं में श्रेष्ठ महाराज द्रुपद ने उस समय राजा धृतराष्ट्र की बड़ी निन्दा की और कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर को आश्वासन दिया। साथ ही उन्होंने यह प्रतिज्ञा भी की "हम तुम्हें तुम्हारा राज्य वापस दिलाएँगे।"

**ततः कुन्ती च कृष्णा च भीमसेनार्जुनावपि।**
**यमौ च राज्ञा संदिष्टं विविशुर्भवनं महत् ॥४६॥**
**तत्र ते न्यवसन् राजन् यज्ञसेनेन पूजिताः।**
**प्रत्याश्वस्तास्ततो राजा सह पुत्रैरुवाच तम् ॥४७॥**

राजन् ! तत्पश्चात् कुन्ती, कृष्णा, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव राजा द्रुपद के द्वारा निर्दिष्ट किये हुए विशाल भवन में गये तथा यज्ञसेन [द्रुपद] से सम्मानित हो वहीं रहने लगे। विश्वास जम जाने पर महाराज द्रुपद ने अपने पुत्रों के साथ जाकर युधिष्ठिर से कहा—

**गृह्णातु विधिवत् पाणिमद्यायं कुरुनन्दनः।**
**पुण्येऽहनि महाबाहुरर्जुनः कुरुतां क्षणम् ॥४८॥**

"कुरुकुल को आनन्दित करनेवाले ये महाबाहु अर्जुन आज के पुण्यमय दिवस में मेरी पुत्री का विधिपूर्वक पाणिग्रहण करें तथा [अपने कुलोचित] मङ्गलाचार का पालन करना आरम्भ कर दें।"

**तमब्रवीत् ततो राजा धर्मात्मा च युधिष्ठिरः।**
**ममापि दारसम्बन्धः कार्यस्तावद् विशाम्पते ॥४९॥**

तब धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर ने उनसे कहा—"राजन् ! विवाह तो मेरा भी करना होगा।"

द्रुपद उवाच

**भवान् वा विधिवत् पाणिं गृह्णातु दुहितुर्मम।**
**यस्य वा मन्यसे वीर तस्य कृष्णामुपादिश ॥५०॥**

**द्रुपद बोले**—हे वीर ! तब आप ही विधिपूर्वक मेरी पुत्री का पाणिग्रहण करें अथवा आप अपने भाइयों में से जिसके साथ चाहें, उसी के साथ कृष्णा को विवाह की आज्ञा दे दें।

वैशम्पायन उवाच

**ततः समाधाय स वेदपारगो**
**जुहाव मन्त्रैर्ज्वलितं हुताशनम्।**
**युधिष्ठिरं चाप्युपनीय मन्त्रविद्-**
**नियोजयामास सहैव कृष्णया ॥५१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—द्रुपद के ऐसा कहने पर वेद के पारंगत विद्वान् मन्त्रज्ञ पुरोहित धौम्य ने वेदी पर प्रज्वलित अग्नि की स्थापना करके उसमें मन्त्रों

द्वारा आहुति दी और युधिष्ठिर को बुलाकर कृष्णा के साथ उनका गँठबन्धन कर दिया।

**प्रदक्षिणं तौ प्रगृहीतपाणिकौ**
**समानयामास स वेदपारगः।**
**ततोऽभ्यनुज्ञाय तमाजिशोभिनं**
**पुरोहितो राजगृहाद् विनिर्ययौ ॥५२॥**

वेदों के पारङ्गत विद्वान् पुरोहित ने उन दोनों दम्पती का पाणिग्रहण कराकर उनसे अग्नि की प्रदक्षिणा करवाई, फिर [अन्य शास्त्रोक्त विधियों का अनुष्ठान कराके] उनका विवाह-कार्य सम्पन्न कर दिया। तत्पश्चात् संग्राम में शोभा पानेवाले युधिष्ठिर को छुट्टी देकर पुरोहितजी भी उस राज-भवन से बाहर चले गये।

**कृष्णा च क्षौमसंवीता कृतकौतुकमङ्गला।**
**कृताभिवादना श्वश्र्वास्तस्थौ प्रह्वा कृताञ्जलिः ॥५३**

माङ्गलिक कार्य सम्पन्न हो जाने के पश्चात् रेशमी साड़ी पहने हुए कृष्णा सास के चरणों में प्रणाम करके उनके सामने हाथ जोड़ विनीत भाव से खड़ी हो गई।

**रूपलक्षणसम्पन्नां शीलाचारसमन्विताम्।**
**द्रौपदीमवदत् प्रेम्णा पृथाऽऽशीर्वचनं स्नुषाम् ॥५४॥**

सुन्दर रूप तथा उत्तम लक्षणों से सम्पन्न, शील और सदाचार से सुशोभित अपनी बहू द्रौपदी को समक्ष देख कुन्तीदेवी उसे प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देती हुई बोलीं—

**यथेन्द्राणी हरिहये स्वाहा चैव विभावसौ।**
**रोहिणी च यथा सोमे दमयन्ती यथा नले ॥५५॥**
**यथा वैश्रवणे भद्रा वसिष्ठे चाप्यरुन्धती।**
**यथा नारायणे लक्ष्मीस्तथा त्वं भव भर्तरि ॥५६॥**

"पुत्री! जैसे इन्द्राणी इन्द्र में, स्वाहा अग्नि में रोहिणी चन्द्रमा में, दमयन्ती नल में, भद्रा कुबेर में, अरुन्धती वसिष्ठ में तथा लक्ष्मी नारायण में भक्ति-भाव एवं प्रेम रखती थीं, उसी प्रकार तुम भी अपने पति में अनुरक्त रहो।

**जीवसूर्वीरसूर्भद्रे बहुसौख्यसमन्विता।**
**सुभगा भोगसम्पन्ना यज्ञपत्नी पतिव्रता ॥५७॥**

"भद्रे! तुम अनन्त सौख्य से सम्पन्न होकर दीर्घजीवी तथा वीरपुत्रों की जननी बनो। तुम सौभाग्यशालिनी, भोग्य सामग्री से सम्पन्न, पति के साथ यज्ञ में बैठनेवाली तथा पतिव्रता होओ।

**अतिथीनागतान्साधून्वृद्धान् बालांस्तथा गुरून्।**
**पूजयन्त्या यथान्यायं शश्वद् गच्छन्तु ते समाः ॥५८॥**

"अपने घर पर आये हुए अतिथियों, साधु पुरुषों, बड़े-बूढ़ों, बालकों तथा गुरुजनों का यथायोग्य सत्कार करने में ही तुम्हारे जीवन के सम्पूर्ण वर्ष व्यतीत हों।

**यथा त्वामभिनन्दामि वध्वद्य क्षौमसंवृताम्।**
**तथा भूयोऽभिनन्दिष्ये जातपुत्रां गुणान्विताम् ॥५९॥**

"बहू! आज तुम्हें वैवाहिक रेशमी वस्त्रों से सुशोभित देखकर जैसे मैं तुम्हारा अभिनन्दन कर रही हूँ, उसी प्रकार जब तुम पुत्रवती बनोगी, उस समय भी मैं सद्गुणों से सम्पन्न तुम्हारा इसी प्रकार अभिनन्दन करूँगी।

**कृते विवाहे द्रुपदो धनं ददौ**
**महारथेभ्यो बहुरूपमुत्तमम्।**
**शतं रथानां वरहेममालिनां**
**चतुर्युजां हेमखलीनमालिनाम् ॥६०॥**

विवाह-कार्य सम्पन्न हो जाने पर द्रुपद ने महा-रथी पाण्डवों को दहेज में बहुत-सा धन और नाना प्रकार की उत्तम वस्तुएँ समर्पित कीं। सुन्दर सुवर्ण की मालाओं और सुवर्ण-जटित जूओं से सुशोभित सौ रथ प्रदान किये, जिनमें चार-चार घोड़े जुते हुए थे।

**कृते विवाहे च ततस्तु पाण्डवाः**
**प्रभूतरत्नामुपलभ्य तां श्रियम्।**
**विजह्रुरिन्द्रप्रतिमा महाबलाः**
**पुरे तु पाञ्चालनृपस्य तस्य ह ॥६१॥**

विवाह हो जाने पर इन्द्र के समान महाबली पाण्डव प्रचुर रत्नराशि के साथ लक्ष्मीरूपा द्रौपदी को पाकर पाञ्चालराज द्रुपद के ही नगर में सुखपूर्वक विहार करने लगे।

**इति महाभारते आदिपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥**

# त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

**धृतराष्ट्र का पाण्डवों के प्रति प्रेम का दिखावा, दुर्योधन की कुमन्त्रणा, पाण्डवों को पराक्रम से दबाने के लिए कर्ण की सम्मति, भीष्म और द्रोणाचार्य द्वारा पाण्डवों को आधा राज्य देने की सम्मति और विदुर द्वारा उनके वचनों का समर्थन**

वैशम्पायन उवाच

**विदुरस्त्वथ तां श्रुत्वा द्रौपदीं पाण्डवैर्वृताम् ।**
**व्रीडितान् धार्तराष्ट्रांश्च भग्नदर्पानुपागतान् ॥१॥**
**ततः प्रीतमनः क्षत्ता धृतराष्ट्रं विशाम्पते ।**
**उवाच दिष्ट्या कुरवो वर्धन्त इति विस्मितः ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—विदुरजी ने जब यह सुना कि पाण्डवों ने द्रौपदी को प्राप्त कर लिया है तथा धृतराष्ट्र के पुत्र अपना अभिमानचूर्ण हो जाने से लज्जित होकर वापस आये हैं, तब वे मन-ही-मन अति प्रसन्न हुए। जनमेजय ! उस समय वे धृतराष्ट्र के पास जाकर विस्मयसूचक वाणी में बोले—"महाराज ! हमारा अहोभाग्य है जो कौरववंश की वृद्धि हो रही है ।"

**वैचित्रवीर्यस्तु वचो निशम्य विदुरस्य तत् ।**
**अब्रवीत् परमप्रीतो दिष्ट्या दिष्ट्येति भारत ॥३॥**

हे भारत ! विचित्रवीर्यनन्दन राजा धृतराष्ट्र विदुर की यह बात सुनकर अत्यन्त हर्ष में भरकर सहसा बोल उठे—"अहोभाग्य, अहोभाग्य !"

**मन्यते स वृतं पुत्रं ज्येष्ठं द्रुपदकन्यया ।**
**दुर्योधनमविज्ञानात् प्रज्ञाचक्षुर्नरेश्वरः ॥४॥**

उस अन्धे नरेश ने अज्ञानवश यह समझ लिया कि 'द्रुपद-कन्या ने मेरे ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन का वरण किया है ।'

**अथ त्वाज्ञापयामास द्रौपद्या भूषणं बहु ।**
**आनीयतां वै कृष्णेति पुत्रं दुर्योधनं तदा ॥५॥**

अतः उन्होंने आज्ञा दी—"द्रौपदी के लिए बहुत-से आभूषण मँगाओ तथा मेरे पुत्र दुर्योधन और द्रौपदी को अति सम्मानपूर्वक नगर में ले आओ ।"

**अथास्य पश्चाद्विदुर आचख्यौ पाण्डवान्वृतान् ।**
**सर्वान् कुशलिनो वीरान् पूजितान् द्रुपदेन ह ॥६॥**

तब पीछे से विदुर ने उन्हें बताया कि—"द्रौपदी ने पाण्डवों का वरण किया है। वे सभी वीर राजा द्रुपद के द्वारा सम्माननित होकर अब वहाँ कुशलपूर्वक रह रहे हैं ।"

**एतत् श्रुत्वा तु वचनं विदुरस्य नराधिपः ।**
**आकारच्छादनार्थं स इदं वचनमब्रवीत् ॥७॥**

विदुरजी का यह कथन सुनकर राजा धृतराष्ट्र ने अपनी बदली हुई आकृति को छिपाने के लिए यह वचन बोला—

**यथैव पाण्डोः पुत्रास्तु तथैवाभ्यधिका मम ।**
**यथा चाभ्यधिका बुद्धिर्मम तान् प्रति तत् श्रृणु ॥८॥**

"विदुर ! युधिष्ठिर आदि जैसे पाण्डु के पुत्र हैं, वैसे ही अथवा उससे अधिक मेरे हैं। उनके प्रति मेरे मन में अधिक अपनेपन का भाव क्यों है ? यह बताता हूँ, सुनो !

**यत्ते कुशलिनो वीरा मित्रवन्तश्च पाण्डवाः ।**
**तेषां सम्बन्धिनश्चान्ये बहवश्च महाबलाः ॥९॥**

"वे वीर पाण्डव कुशलपूर्वक जीवित बच गये हैं तथा उन्हें मित्रों का सहयोग भी प्राप्त हो गया है। इतना ही नहीं, और भी बहुत सारे महाबली नरेश उनके सम्बन्धी होते जा रहे हैं।

**को हि द्रुपदमासाद्य मित्रं क्षत्तः सबान्धवम् ।**
**न बुभूषेद् भवेनार्थी गतश्रीरपि पार्थिवः ॥१०॥**

"विदुर ! कौन ऐसा राजा है, जिसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर भी बन्धु-बान्धवोंसहित द्रुपद को मित्र के रूप में पाकर जीना नहीं चाहेगा ?"

**तं तथा भाषमाणं तु विदुरः प्रत्यभाषत ।**
**नित्यं भवतु ते बुद्धिरेषा राजञ्छतं समाः ॥११॥**

जनमेजय ! ऐसी बातें कहनेवाले राजा धृतराष्ट्र से विदुर इस प्रकार बोले—"महाराज ! सौ वर्षों तक आपकी बुद्धि ऐसी ही बनी रहे ।"

**ततो दुर्योधनश्चापि राधेयश्च विशाम्पते ।**
**धृतराष्ट्रमुपागम्य वचोऽब्रूतामिदं तदा ॥१२॥**

राजन् ! विदुर के चले जाने पर दुर्योधन और कर्ण ने धृतराष्ट्र के पास आकर यह बात कही—

**सन्निधौ विदुरस्य त्वां दोषं वक्तुं न शक्नुवः ।**
**विविक्तमिति वक्ष्यावः किं तवेदं चिकीर्षितम् ॥१३॥**
**सपत्नवृद्धिं यत् तात मन्यसे वृद्धिमात्मनः ।**
**अभिष्टौषि च यत् क्षत्तुः समीपे द्विषतां वरः ॥१४॥**

"महाराज ! विदुर के समक्ष हम आपसे आपका कोई दोष नहीं बता सकते । इस समय एकान्त है, इसलिए कहते हैं । आप यह क्या करना चाहते हैं ? पूज्य पिताजी ! आप तो शत्रुओं की उन्नति को ही अपनी उन्नति मानने लगे हैं तथा विदुरजी के सामने हमारे शत्रुओं की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं ।

**अन्यस्मिन् नृप कर्तव्ये त्वमन्यत् कुरुषेऽनघ ।**
**तेषां बलविघातो हि कर्तव्यस्तात नित्यशः ॥१५॥**

"निष्पाप नरेश ! हमें करना तो कुछ और चाहिए परन्तु आप करते कुछ और ही हैं । हे तात ! हमारे लिए तो यही उचित है कि हम सदा पाण्डवों की शक्ति का विनाश करते रहें ।

**ते वयं प्राप्तकालस्य चिकीर्षां मन्त्रयामहे ।**
**यथा नो न ग्रसेयुस्ते सपुत्रबलबान्धवान् ॥१६॥**

इस समय जैसा अवसर उपस्थित है, इसमें हमें क्या करना चाहिए—यही सोच-विचारकर निश्चय करना है, जिससे वे पाण्डुपुत्र बान्धव तथा सेनासहित हमारा सर्वनाश न कर बैठें ।"

धृतराष्ट्र उवाच

**अहमप्येवमेवैतच्चिकीर्षामि यथा युवाम् ।**
**विवेक्तुं नाहमिच्छामि त्वाकारं विदुरं प्रति ॥१७॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—पुत्र ! मैं भी तो वही करना चाहता हूँ, जो तुम चाहते हो, परन्तु मैं अपनी आकृति से भी विदुर पर अपने मन का भाव प्रकट नहीं होने देना चाहता ।

**अतस्तेषां गुणानेव कीर्तयामि विशेषतः ।**
**नावबुध्येत विदुरो ममाभिप्रायमिङ्गितैः ॥१८॥**

अतः विदुर के समक्ष मैं विशेषतः पाण्डवों के गुणों का ही वर्णन करता हूँ, जिससे वह संकेत से भी मेरे मनोभाव को न ताड़ सके ।

**यच्च त्वं मन्यसे प्राप्तं तच्च ब्रूहि सुयोधन ।**
**राधेय मन्यसे यच्च प्राप्तकालं वदाशु मे ॥१९॥**

सुयोधन और कर्ण ! तुम दोनों समय के अनुसार जो कार्य करना आवश्यक समझते हो, वह शीघ्र मुझे बताओ ।

दुर्योधन उवाच

**अद्य तान् कुशलैर्विप्रैः सुगुप्तैराप्तकारिभिः ।**
**कुन्तीपुत्रान् भेदयामो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥२०॥**

**दुर्योधन ने कहा**—हे पिताजी ! आज अत्यन्त गुप्तरूप से कुछ ऐसे चतुर ब्राह्मणों को नियत करना चाहिए, जिनके कार्यों पर हमारा पूर्ण विश्वास हो । हमें उनके द्वारा पाण्डवों में से कुन्ती और माद्री के पुत्रों में फूट डालने की चेष्टा करनी चाहिए ।

**भीमसेनस्य वा राजन्नुपायकुशलैर्नरैः ।**
**मृत्युर्विधीयतां छन्नैः स हि तेषां बलाधिकः ॥२१॥**

अथवा राजन् ! उपाय-कुशल मनुष्य छिपे रहकर भीमसेन का ही वध कर डालें, क्योंकि वही पाण्डवों में सबसे अधिक बलवान् है ।

**तमाश्रित्य हि कौन्तेयः पुरा चास्मान्न मन्यते ।**
**स हि तीक्ष्णश्च शूरश्च तेषां चैव परायणः ॥२२॥**

उसी का आश्रय लेकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर पहले से ही हमें कुछ नहीं समझते । वह बहुत तीखे स्वभाव का और शूरवीर है । वही पाण्डवों का सबसे बड़ा सहारा है

**अजेयो ह्यर्जुनः संख्ये पृष्ठगोपे वृकोदरे ।**
**तमृते फाल्गुनो युद्धे राधेयस्य न पादभाक् ॥२३॥**

भीमसेन को पृष्ठरक्षक पाकर ही अर्जुन युद्ध में अजेय बने हुए हैं । यदि भीम न हों तो वे रणभूमि में कर्ण की एक-चौथाई के बराबर भी न हो सकेंगे ।

**इहागतेषु वा तेषु निदेशवशवर्तिषु ।**
**प्रवर्तिष्यावहे राजन् यथाशास्त्रं निबर्हणम् ॥२४॥**

राजन् ! अथवा यदि वे यहाँ आकर हमारी आज्ञा के अधीन होकर रहेंगे, तब हम नीतिशास्त्र के अनुसार उनके विनाश के कार्य में लग जाएँगे ।

**अथवा दर्शनीयाभिः प्रमदाभिर्विलोभ्यताम् ।**
**एकैकस्तत्र कौन्तेयस्ततः कृष्णा विरज्यताम् ॥२५॥**

अथवा देखने में सुन्दर युवती स्त्रियों द्वारा एक-

एक पाण्डव को लुभाया जाए और इस प्रकार कृष्णा का मन उनकी ओर से फेर दिया जाए।

**प्रेष्यतां चैव राधेयस्तेषामागमनाय वै।**
**तैस्तैः प्रकारैः संनीय पात्यन्तामाप्तकारिभिः ॥२६॥**

अथवा पाण्डवों को यहाँ बुला लाने के लिए राधानन्दन कर्ण को भेजा जाए और यहाँ लाकर विश्वसनीय कार्यकर्ताओं द्वारा विभिन्न उपायों से उन सबको मार गिराया जाए।

**एषा मम मतिस्तात निग्रहाय प्रवर्तते।**
**साध्वी वा यदि वासाध्वी किं वा राधेय मन्यसे ॥२७॥**

पिताजी! शत्रुओं को वश में करने के लिए ये ही उपाय मेरी बुद्धि में आते हैं। मेरा यह विचार भला है या बुरा, यह आप जानें। अथवा कर्ण! तुम्हारी क्या सम्मति है?

कर्ण उवाच

**दुर्योधन तव प्रज्ञा न सम्यगिति मे मतिः।**
**न ह्युपायेन ते शक्या पाण्डवाः कुरुवर्धन ॥२८॥**

**कर्ण बोला**—दुर्योधन! मेरे विचार से तुम्हारी यह सलाह ठीक नहीं है। कुरुवर्धन! ऐसे किसी भी उपाय से पाण्डवों को वश में नहीं किया जा सकता।

**यावन्न कृतमूलास्ते पाण्डवेया विशाम्पते।**
**तावत् प्रहरणीयास्ते तत् तुभ्यं तात रोचताम् ॥२९॥**
**अस्मत्पक्षो महान्यावद्यावत्पाञ्चालको लघुः।**
**तावत् प्रहरणं तेषां क्रियतां मा विचारय ॥३०॥**

हे राजन्! [मेरे विचार में] वे नरश्रेष्ठ पाण्डव जबतक अपनी जड़ें नहीं जमा लेते तभी तक उनपर प्रहार करना चाहिए। इसी से वे वश में आ सकते हैं। तात! मैं समझता हूँ, तुम्हें भी यह सम्मति रुचेगी। जबतक हमारा पक्ष बढ़ा-चढ़ा है और जबतक पाञ्चालराज द्रुपद का बल हमसे कम है, तभी तक उनपर आक्रमण कर दिया जाए। इसमें दूसरा कुछ विचार न करो।

**वाहनानि प्रभूतानि मित्राणि च कुलानि च।**
**यावन्न तेषां गान्धारे तावद् विक्रम पार्थिव ॥३१॥**

राजन्! गान्धारीनन्दन! जबतक पाण्डवों के पास बहुत-से वाहन, मित्र और कुटुम्बी नहीं हो जाते, तभी तक तुम उनपर आक्रमण कर लो।

**यावच्च राजा पाञ्चाल्यो नोद्यमे कुरुते मनः।**
**सह पुत्रैर्महावीर्यैस्तावद् विक्रम पार्थिव ॥३२॥**

पृथिवीपते! जबतक पाञ्चालनरेश अपने महापराक्रमी पुत्रों के साथ हमारे ऊपर चढ़ाई करने का विचार नहीं कर रहे हैं, तभी तक तुम अपना पराक्रम प्रकट कर लो।

**विक्रमेण मही प्राप्ता भरतेन महात्मना।**
**विक्रमेण च लोकाँस्त्रीञ्जितवान् पाकशासनः ॥३३॥**

महात्मा भरत ने पराक्रम से ही यह पृथिवी प्राप्त की और इन्द्र ने भी पराक्रम से ही तीनों लोकों पर विजय पायी।

**विक्रमं च प्रशंसन्ति क्षत्रियस्य विशाम्पते।**
**स्वको हि धर्मः शूराणां विक्रमः पार्थिवर्षभ ॥३४॥**

राजन्! क्षत्रिय के पराक्रम की ही प्रशंसा की जाती है। नृपश्रेष्ठ! पराक्रम करना ही शूरवीरों का स्वधर्म है।

**न हि साम्ना न दानेन न भेदेन च पाण्डवाः।**
**शक्याः साधयितुं तस्माद् विक्रमेणैव ताञ्जहि ॥३५॥**

पाण्डवों को साम, दाम=दान और भेद की नीति से वश में नहीं किया जा सकता, अतः उन्हें पराक्रम से ही नष्ट करो।

**तान् विक्रमेण जित्वेमामखिलां भुंक्ष्व मेदिनीम्।**
**अतो नान्यं प्रपश्यामि कार्योपायं जनाधिप ॥३६॥**

नरेश्वर! तुम पराक्रम से ही पाण्डवों को जीतकर इस सारी पृथिवी का राज्य भोगो। इसके अतिरिक्त कार्यसिद्धि का मैं और कोई मार्ग नहीं देखता।

धृतराष्ट्र उवाच

**उपपन्नं महाप्राज्ञे कृतास्त्रे सूतनन्दने।**
**त्वयि विक्रमसम्पन्नमिदं वचनमीदृशम् ॥३७॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—कर्ण! तुम परम बुद्धिमान्, अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता तथा सूत-कुल को आनन्दित करनेवाले हो। ऐसा पराक्रमयुक्त वचन तुम्हारे ही योग्य है।

**भूय एव तु भीष्मश्च द्रोणो विदुर एव च।**
**युवां च कुरुतं बुद्धिं भवेद् या नः सुखोदया ॥३८॥**

परन्तु मेरा विचार है कि भीष्म, द्रोण, विदुर और तुम दोनों एक साथ बैठकर पुनः विचार कर

लो तथा कोई ऐसी बात सोच निकालो, जो भविष्य में भी सुख देनेवाली हो ।

वैशम्पायन उवाच

**तत आनाय्य तान् सर्वान् मन्त्रिणः सुमहायशाः ।**
**धृतराष्ट्रो महाराज मन्त्रयामास वै तदा ॥३९॥**

महाराज ! तत्पश्चात् महायशस्वी धृतराष्ट्र ने भीष्म, द्रोण आदि एवं सम्पूर्ण मन्त्रियों को बुलवाकर उनके साथ विचार-विमर्श आरम्भ किया ।

भीष्म उवाच

**न रोचते विग्रहो मे पाण्डुपुत्रैः कथञ्चन ।**
**यथैव धृतराष्ट्रो मे तथा पाण्डुरसंशयम् ॥४०॥**

**भीष्मजी बोले**—मुझे पाण्डवों के साथ विरोध या युद्ध किसी प्रकार भी पसन्द नहीं है । मेरे लिए जैसे धृतराष्ट्र हैं, वैसे ही पाण्डु—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।

**गान्धार्याश्च यथा पुत्रास्तथा कुन्तीसुता मम ।**
**यथा च मम ते रक्ष्या धृतराष्ट्र तथा तव ॥४१॥**

हे धृतराष्ट्र ! जैसे गान्धारी के पुत्र मेरे अपने हैं, उसी प्रकार कुन्ती के पुत्र भी अपने ही हैं, अतः जैसे मुझे पाण्डवों की रक्षा करनी चाहिए, वैसे तुम्हें भी ।

**दुर्योधन यथा राज्यं त्वमिदं तात पश्यसि ।**
**मम पैतृकमित्येवं तेऽपि पश्यन्ति पाण्डवाः ॥४२॥**

तात दुर्योधन ! जैसे तुम इस राज्य को अपनी पैतृक सम्पत्ति के रूप में देखते हो, उसी प्रकार पाण्डव भी देखते हैं ।

**अधर्मेण च राज्यं त्वं प्राप्तवान् भरतर्षभ ।**
**तेऽपि राज्यमनुप्राप्ताः पूर्वमेवेति मे मतिः ॥४३॥**

भरतश्रेष्ठ ! तुमने अधर्मपूर्वक इस राज्य को हथिया लिया है, परन्तु मेरा विचार यह है कि तुमसे पूर्व ही वे भी इस राज्य को पा चुके थे ।

**मधुरेणैव राज्यस्य तेषामर्धं प्रदीयताम् ।**
**एतद्धि पुरुषव्याघ्र हितं सर्वजनस्य च ॥४४॥**

पुरुषसिंह ! तुम प्रेमपूर्वक ही उन्हें आधा राज्य दे दो, इसी में सब लोगों का हित है ।

**अतोऽन्यथा क्रियते चेत् न हितं नो भविष्यति ।**
**तवाप्यकीर्तिः सकला भविष्यति न संशयः ॥४५॥**

यदि इसके विपरीत कुछ किया जाएगा, तो हमारी भलाई नहीं हो सकती और तुम्हें भी पूरा-पूरा अपयश मिलेगा—इसमें संशय नहीं है ।

**कीर्तिरक्षणमातिष्ठ कीर्तिर्हि परमं बलम् ।□**
**नष्टकीर्तेर्मनुष्यस्य जीवितं ह्यफलं स्मृतम् ॥४६॥**

अपनी कीर्ति की रक्षा करो, कीर्ति ही श्रेष्ठ बल है । जिसकी कीर्ति नष्ट हो जाती है, उस मनुष्य का जीवन निष्फल माना गया है ।

**यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य न प्रणश्यति कौरव ।□**
**तावज्जीवति गान्धारे नष्टकीर्तिस्तु नश्यति ॥४७॥**

गान्धारीनन्दन ! कुरुश्रेष्ठ ! जबतक मनुष्य की कीर्ति नष्ट नहीं होती, तभी तक वह जीवित है । जिसकी कीर्ति नष्ट हो गई, उसका तो जीवन ही नष्ट हो जाता है ।

**तमिमं समुपातिष्ठ धर्मं कुरुकुलोचितम् ।**
**अनुरूपं महाबाहो पूर्वेषामात्मनः कुरु ॥४८॥**

महाबाहो ! कुरुकुल के लिए उचित इस उत्तम धर्म का पालन करो और अपने पूर्वजों के अनुरूप कार्य करते रहो ।

**दिष्ट्या ध्रियन्ते पार्था हि दिष्ट्या जीवति सा पृथा ।**
**दिष्ट्या पुरोचनः पापो न सकामोऽत्ययं गतः ॥४९॥**

सौभाग्य की बात है कि कुन्ती के पुत्र जीवित हैं और यह भी सौभाग्य की बात है कि कुन्ती भी जीवित है तथा सबसे बड़े सौभाग्य का विषय यह है कि पापी पुरोचन अपने दूषित मनोरथ में सफल न होकर स्वयं नष्ट हो गया ।

**तदिदं जीवितं तेषां तव किल्बिषनाशनम् ।**
**सम्मन्तव्यं महाराज पाण्डवानां च दर्शनम् ॥५०॥**

महाराज ! पाण्डवों का यह जीवित रहना और उनका दर्शन होना वास्तव में तुमपर लगे हुए कलंक का नाश करनेवाला है, ऐसा मानना चाहिए ।

**न चापि तेषां वीराणां जीवतां कुरुनन्दन ।**
**पित्र्योंऽशः शक्य आदातुमपि वज्रभृता स्वयम् ॥५१॥**

हे कुरुनन्दन ! पाण्डव वीरों के जीते-जी उनका पैतृक अंश साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी नहीं ले सकते ।

**ते सर्वेऽवस्थिता धर्मे सर्वे चैवैकचेतसः ।**
**अधर्मेण निरस्ताश्च तुल्ये राज्ये विशेषतः ॥५२॥**

वे सब धर्म में स्थित हैं, उन सबका चित्त=

विचार एक है। इस राज्य पर तुम्हारा और उनका समान अधिकार है, तो भी उनके साथ विशेष अधर्मपूर्ण व्यवहार करके उन्हें यहाँ से हटाया गया है।

**यदि धर्मस्त्वया कार्यो यदि कार्यं प्रियं च मे।**
**क्षेमं च यदि कर्तव्यं तेषामर्धं प्रदीयताम् ॥५३॥**

यदि तुम धर्मानुसार चलना चाहते हो, यदि मेरा प्रिय करना है और यदि संसार में भलाई करनी है तो उन्हें आधा राज्य प्रदान कर दो।

द्रोण उवाच

**ममाप्येषा मतिस्तात या भीष्मस्य महात्मनः।**
**संविभज्यास्तु कौन्तेया धर्म एष सनातनः ॥५४॥**

**द्रोणाचार्य बोले**—तात ! मेरी भी वही सम्मति है, जो महात्मा भीष्मजी की है। कुन्ती के पुत्रों को आधा राज्य बाँट देना चाहिए, यही परम्परा से चला आनेवाला धर्म है।

**प्रेष्यतां द्रुपदायाशु नरः कश्चित् प्रियंवदः।**
**बहुलं रत्नमादाय तेषामर्थाय भारत ॥५५॥**

महाराज ! द्रुपद के पास शीघ्र ही कोई प्रिय वचन बोलनेवाला मनुष्य भेजा जाए और वह पाण्डवों के लिए बहुत-से रत्नों की भेंट लेकर जाए।

**एवं सान्त्वसमायुक्तं द्रुपदं पाण्डवैः सह।**
**उक्त्वा सोऽनन्तरं ब्रूयात् तेषामागमनं प्रति ॥५६॥**

इस प्रकार [उपहार देने के पश्चात्] पाण्डवों-सहित द्रुपद से सान्त्वनापूर्ण वचन कहकर अन्त में वह पाण्डवों के हस्तिनापुर में आने के विषय में प्रस्ताव करे।

**एतत् तव महाराज पुत्रेषु तेषु चैव हि।**
**वृत्तमौपायिकं मन्ये भीष्मेण सह भारत ॥५७॥**

भरतवंशी महाराज ! आपको अपने पुत्रों और पाण्डवों के प्रति उपर्युक्त व्यवहार ही करना चाहिए—भीष्मजी के साथ मैं भी यही उचित समझता हूँ।

**अतोऽन्यथा क्रियते चेत् यद् ब्रवीमि परं हितम्।**
**कुरवो वै विनङ्क्ष्यन्ति नचिरेणैव मे मतिः ॥५८॥**

मैं यह अत्यन्त हित की बात कह रहा हूँ। यदि इसके विपरीत कुछ किया जाएगा, तो कौरवों का शीघ्र ही नाश हो जाएगा—ऐसा मेरा मत है।

विदुर उवाच

**इमौ हि वृद्धौ वयसा प्रज्ञया च श्रुतेन च।**
**समौ च त्वयि राजेन्द्र तथा पाण्डुसुतेषु च ॥५९॥**

**विदुरजी ने कहा**—हे राजेन्द्र ! अवस्था, बुद्धि और शास्त्र-ज्ञान—सभी बातों में ये [भीष्म और द्रोण] दोनों बढ़े-चढ़े हैं और आपमें तथा पाण्डवों में समान स्नेहभाव रखते हैं।

**यच्चाप्यजेयतां तेषामाहतुः पुरुषर्षभौ।**
**तत् तथा पुरुषव्याघ्र तव तद् भद्रमस्तु ते ॥६०॥**

इन पुरुष-शिरोमणियों ने जो पाण्डवों के अजेय होने की बात बताई है, वह वस्तुतः सत्य है। पुरुष-सिंह, आपका कल्याण हो।

**कथं हि पाण्डवः श्रीमान् सव्यसाची धनञ्जयः।**
**शक्यो विजेतुं संग्रामे राजन् मघवतापि हि ॥६१॥**

राजन् ! दाहिने और बाएँ दोनों हाथों से बाण चलानेवाले श्रीमान् पाण्डुकुमार धनंजय को साक्षात् इन्द्र भी संग्राम में कैसे जीत सकते हैं ?

**भीमसेनो महाबाहुर्नागायुतबलो महान्।**
**कथं स्म युधि शक्येत विजेतुममरैरपि ॥६२॥**

दस सहस्र हाथियों के समान महान् बलवान् महाबाहु भीमसेन को युद्ध में देवता भी कैसे जीत सकते हैं ?

**यस्मिन् धृतिरनुक्रोशः क्षमा सत्यं पराक्रमः।**
**नित्यानि पाण्डवे ज्येष्ठे स जीयेत रणे कथम् ॥६३॥**

जिन ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर में धैर्य, दया, क्षमा सत्य और पराक्रम आदि गुण सदा निवास करते हैं, उन्हें युद्धभूमि में कैसे परास्त किया जा सकता है ?

**येषां पक्षधरो रामो येषां मन्त्री जनार्दनः।**
**किं तु तैरजितं संख्ये येषां पक्षे च सात्यकिः ॥६४॥**

बलरामजी जिनके पक्ष में हैं, श्रीकृष्ण जिनके परामर्शदाता हैं तथा जिनके पक्ष में सात्यकि-जैसा वीर है, वे पाण्डव युद्ध में किसे परास्त नहीं कर देंगे ?

**इदं निर्दिष्टमयशः पुरोचनकृतं महत्।**
**तेषामनुग्रहेणाद्य राजन् प्रक्षालयात्मनः ॥६५॥**

राजन् ! पुरोचन के हाथों जो कुछ कराया गया, उससे आपका महान् अपयश सब ओर फैल गया है।

अपने उस कलंक को आज आप पाण्डवों पर अनुग्रह करके धो डालिए।

**तेषामनुग्रहश्चायं सर्वेषां चैव नः कुले।**
**जीवितं च परं श्रेयः क्षत्रस्य च विवर्धनम् ॥६६॥**

पाण्डवों पर किया हुआ यह अनुग्रह हमारे कुल के सभी लोगों के जीवन का रक्षक, परम हितकारक और सम्पूर्ण क्षत्रियजाति का अभ्युदय करनेवाला होगा।

**द्रुपदोऽपि महान् राजा कृतवैरश्च नः पुरा।**
**तस्य संग्रहणं राजन् स्वपक्षस्य विवर्धनम् ॥६७॥**

राजन्! द्रुपद भी बहुत बड़े राजा हैं और पहले हमारे साथ उनका वैर भी हो चुका है, अतः मित्र के रूप में उनका संग्रह हमारे अपने पक्ष की वृद्धि का कारण होगा।

**बलवन्तश्च दाशार्हा बहवश्च विशाम्पते।**
**यतः कृष्णस्ततः सर्वे यतः कृष्णस्ततो जयः ॥६८॥**

प्रजेश्वर! यदुवंशियों की संख्या बहुत है और वे बलवान् भी हैं। जिधर श्रीकृष्ण रहेंगे, उधर ही वे सब भी रहेंगे, अतः जिस पक्ष में श्रीकृष्ण होंगे, उस पक्ष की विजय निश्चित है।

**यच्च साम्नैव शक्यते कार्यं साधयितुं नृप।**
**को दैवशप्तस्तत् कार्यं विग्रहेण समाचरेत् ॥६९॥**

महाराज! जिस कार्य को शान्तिपूर्वक समझाने-बुझाने से ही सिद्ध किया जा सकता है, उसी को कौन दैव=भाग्य का मारा हुआ मनुष्य युद्ध के द्वारा सिद्ध करेगा?

**श्रुत्वा च जीवतः पार्थान् पौरजानपदा जनाः।**
**बलवद् दर्शने हृष्टास्तेषां राजन् प्रियं कुरु ॥७०॥**

कुन्ती के पुत्रों को जीवित सुनकर नगर और जनपद के सभी लोग उन्हें देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो रहे हैं। हे राजन्! आप उन सबका प्रिय कीजिए।

**दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः।**
**अधर्मयुक्ता दुष्प्रज्ञा बाला मैषां वचः कृथाः ॥७१॥**

दुर्योधन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि—ये अधर्म-परायण, खोटी बुद्धिवाले और मूर्ख हैं, अतः इनका कहना मत मानिए।

इति महाभारते आदिपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

# चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

**धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर का द्रुपद के यहाँ जाना, पाण्डवों का हस्तिनापुर में आना और आधा राज्य पाकर इन्द्रप्रस्थ नगर का निर्माण करना**

धृतराष्ट्र उवाच

**भीष्मः शान्तनवो विद्वान् द्रोणश्च भगवानृषिः।**
**हितं च परमं वाक्यं त्वं च सत्यं ब्रवीषि माम् ॥१॥**

**धृतराष्ट्र ने कहा**—विदुर! शान्तनुनन्दन भीष्म ज्ञानी हैं और भगवान् द्रोणाचार्य तो ऋषि ही हैं, अतः इनका वचन परम-हितकारक है। तुम भी मुझसे जो कुछ कहते हो, वह सत्य ही है।

**यथैव पाण्डोस्ते वीराः कुन्तीपुत्रा महारथाः।**
**तथैव धर्मतः सर्वे मम पुत्रा न संशयः ॥२॥**

कुन्ती के वीर महारथी पुत्र जैसे पाण्डु के लड़के हैं, उसी प्रकार धर्म की दृष्टि से वे सब मेरे भी पुत्र हैं—इसमें संशय नहीं है।

**यथैव मम पुत्राणामिदं राज्यं विधीयते।**
**तथैव पाण्डुपुत्राणामिदं राज्यं न संशयः ॥३॥**

जैसे मेरे पुत्रों का यह राज्य कहा जाता है, उसी प्रकार पाण्डु-पुत्रों का भी यह राज्य है—इसमें भी सन्देह नहीं है।

**क्षत्तरानय गच्छैतान् सह मात्रा सुसत्कृतान्।**
**तया च देवरूपिण्या कृष्णया सह भारत ॥४॥**

भरतवंशी विदुर! अब तुम्हीं जाओ और उनकी माता कुन्ती एवं देवरूपिणी वधू कृष्णा के साथ इन पाण्डवों को सत्कारपूर्वक ले आओ।

वैशम्पायन उवाच

**ततो जगाम विदुरो धृतराष्ट्रस्य शासनात्।**
**सकाशं यज्ञसेनस्य पाण्डवानां च भारत ॥५॥**

**समुपादाय रत्नानि वसूनि विविधानि च ।**
**द्रौपद्याः पाण्डवानां च यज्ञसेनस्य चैव हि ॥६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तब धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुरजी द्रौपदी, पाण्डव तथा महाराज यज्ञसेन=द्रुपद के लिए नाना प्रकार के धन-रत्नों की भेंट लेकर राजा द्रुपद और पाण्डवों के पास गये ।

**तत्र गत्वा स धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ।**
**द्रुपदं न्यायतो राजन् संयुक्तमुपतस्थिवान् ॥७॥**

राजन् ! वहाँ पहुँचकर सम्पूर्ण शास्त्रों के विद्वान् एवं धर्मज्ञ विदुर न्याय के अनुसार बड़े-छोटे के क्रम से द्रुपद तथा अन्य लोगों के साथ हृदय से लगकर प्रेमपूर्वक मिले ।

**स चापि प्रतिजग्राह धर्मेण विदुरं ततः ।**
**चक्रतुश्च यथान्यायं कुशलप्रश्नसंविदम् ॥८॥**

राजा द्रुपद ने भी धर्म के अनुसार विदुरजी का आदर-सम्मान किया । फिर वे दोनों यथोचित रीति से एक-दूसरे के कुशल-समाचार पूछने और कहने लगे ।

**ददर्श पाण्डवाँस्तत्र वासुदेवं च भारत ।**
**परिष्वज्य स तान् स्नेहात् पप्रच्छानामयं ततः ॥९॥**

हे भरतश्रेष्ठ ! विदुरजी ने वहाँ पाण्डवों और वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्णजी को भी देखा । उन्होंने सबको स्नेह-पूर्वक हृदय से लगाकर उनकी कुशल पूछी ।

**पप्रच्छानामयं राजँस्ततस्तान् पाण्डुनन्दनान् ।**
**प्रददौ चापि रत्नानि विविधानि वसूनि च ॥१०॥**

राजन् ! विदुरजी ने पाण्डवों से कुशल-मङ्गल पूछकर कौरवों की ओर से दिये गये रत्न और धन उन्हें भेंट कर दिये । [फिर उनसे बोले—]

विदुर उवाच

**राजञ्छृणु सहामात्यः सपुत्रश्च वचो मम ।**
**धृतराष्ट्रः सपुत्रस्त्वां सहामात्यः सबान्धवः ॥११॥**
**अब्रवीत् कुशलं राजन् प्रीयमाणः पुनः पुनः ।**
**प्रीतिमाँस्ते दृढं चापि सम्बन्धेन नराधिप ॥१२॥**

**विदुरजी बोले**—राजन् ! आप अपने मन्त्रियों तथा पुत्रों के साथ मेरी बात सुनें । महाराज धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र, मन्त्री और बन्धुओं के साथ अत्यन्त प्रसन्न होकर बारम्बार आपकी कुशल पूछी है । राजेन्द्र ! आपके साथ यह जो सम्बन्ध हुआ है, इससे उनको महती प्रसन्नता हुई है ।

**न तथा राज्यसम्प्राप्तिस्तेषां प्रीतिकरी मता ।**
**यथा सम्बन्धकं प्राप्य यज्ञसेन त्वया सह ॥१३॥**

हे यज्ञसेन ! उन्हें राज्य की प्राप्ति भी उतनी प्रसन्नता देनेवाली नहीं जान पड़ी, जितनी प्रसन्नता आपके साथ सम्बन्ध का सौभाग्य पाकर हुई है ।

**विदित्वा तु भवानेतद् प्रस्थापयतु पाण्डवान् ।**
**द्रष्टुं हि पाण्डुपुत्राँश्च त्वरन्ति कुरवो भृशम् ॥१४॥**

यह जानकर आप पाण्डवों को हस्तिनापुर भेज दें । समस्त कुरुवंशी पाण्डवों को देखने और उनसे मिलने के लिए अत्यन्त उतावले हो रहे हैं ।

**स भवान् पाण्डुपुत्राणामाज्ञापयतु मा चिरम् ।**
**गमनं सहदाराणामेतदत्र मतं मम ॥१५॥**

अतः आप द्रौपदीसहित पाण्डवों को हस्तिनापुर चलने के लिए शीघ्र ही आज्ञा दीजिए । इस विषय में मेरी सम्मति यही है ।

द्रुपद उवाच

**एवमेतन् महाप्राज्ञ यथाऽऽत्थ विदुराद्य माम् ।**
**ममापि परमो हर्षः सम्बन्धेऽस्मिन् कृते प्रभो ॥१६॥**

**द्रुपद ने कहा**—महाप्राज्ञ विदुरजी ! इस समय आपने जो कुछ मुझसे कहा है, वह सब ठीक है । प्रभो ! [कौरवों के साथ] यह सम्बन्ध हो जाने से मुझे भी अपार हर्ष हुआ है ।

**गमनं चापि युक्तं स्याद् दृढमेषां महात्मनाम् ।**
**न तु तावन्मया युक्तमेतद् वक्तुं स्वयं गिरा ॥१७॥**
**यदा तु मन्यते वीरः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।**
**रामकृष्णौ च धर्मज्ञौ तदा गच्छन्तु पाण्डवाः ॥१८॥**

महात्मा पाण्डवों का अपने नगर में जाना भी उचित ही है, तथापि मेरे लिए अपने मुख से उन्हें जाने के लिए कहना उचित नहीं है । यदि कुन्ती-कुमार वीरवर युधिष्ठिर तथा धर्मज्ञ बलराम और कृष्ण पाण्डवों का वहाँ जाना उचित समझते हों, तो ये अवश्य वहाँ जाएँ ।

युधिष्ठिर उवाच

**परवन्तो वयं राजँस्त्वयि सर्वे सहानुगाः ।**
**यथा वक्ष्यसि नः प्रीत्या तत् करिष्यामहे वयम् ॥१९॥**

**युधिष्ठिर बोले**—राजन् ! हम सब लोग अपने सेवकोंसहित सदा आपके अधीन हैं। आप स्वयं प्रसन्नतापूर्वक हमसे जैसा कहेंगे, वही हम करेंगे।

वैशम्पायन उवाच

**ततोऽब्रवीद् वासुदेवो गमनं मम रोचते।**
**यथा वा मन्यते राजा द्रुपदः सर्वधर्मवित् ॥२०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तब श्रीकृष्ण ने कहा—"मुझे तो इनका जाना ही उचित जान पड़ता है। अथवा सब धर्मों के ज्ञाता महाराज द्रुपद जैसा उचित समझें, वैसा किया जाए।"

द्रुपद उवाच

**यथैव मन्यते वीरो दाशार्हः पुरुषोत्तमः।**
**प्राप्तकालं महाबाहुः सा बुद्धिर्निश्चिता मम ॥२१॥**

**द्रुपद बोले**—दशार्हकुल के रत्न वीरवर पुरुषोत्तम महाबाहु श्रीकृष्ण इस समय जो कर्तव्य उचित समझते हों, निश्चय ही मेरी भी वही सम्मति है।

वैशम्पायन उवाच

**ततस्ते समनुज्ञाता द्रुपदेन महात्मना।**
**पाण्डवाश्चैव कृष्णश्च विदुरश्च महीपते ॥२२॥**
**आदाय द्रौपदीं कृष्णां कुन्तीं चैव यशस्विनीम्।**
**सविहारं सुखं जग्मुर्नगरं नागसाह्वयम् ॥२३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजेन्द्र ! तब द्रुपद की आज्ञा पाकर पाण्डव, श्रीकृष्ण और विदुर द्रुपदकुमारी कृष्णा और यशस्विनी कुन्ती को साथ ले आमोद-प्रमोद करते हुए हस्तिनापुर की ओर चले।

**श्रुत्वा चाप्यागतान् वीरान् धृतराष्ट्रो जनेश्वरः।**
**प्रतिग्रहाय पाण्डूनां प्रेषयामास कौरवान् ॥२४॥**

राजा धृतराष्ट्र ने पाण्डुवीरों का आगमन सुनकर उनके स्वागत के लिए कौरवों को भेजा।

**विकर्णं च महेष्वासं चित्रसेनं च भारत।**
**द्रोणं च परमेष्वासं गौतमं कृपमेव च ॥२५॥**
**तैस्ते परिवृता वीराः शोभमाना महाबलाः।**
**नगरं हास्तिनपुरं शनैः प्रविविशुस्तदा ॥२६॥**

हे भारत ! विकर्ण, महाधनुर्धर चित्रसेन, विशाल धनुषवाले द्रोणाचार्य, गौतमवंशी कृपाचार्य आदि—इन सभी से घिरे हुए शोभाशाली महाबली वीर पाण्डवों ने धीरे-धीरे हस्तिनापुर नगर में प्रवेश किया। [उस समय—]

नागरिका ऊचुः

**किं नु नाद्य कृतं तात सर्वेषां नः परं प्रियम्।**
**यन्नः कुन्तीसुता वीरा नगरं पुनरागताः ॥२७॥**

**पुरवासी कह रहे थे**—तात ! कुन्ती के वीर पुत्र यदि पुनः इस नगर में चले आये तो आज हम सब लोगों का कौन-सा परमप्रिय कार्य सम्पन्न नहीं हो गया ? अर्थात् आज हमारे सभी परमप्रिय कार्य सम्पन्न हो गये।

वैशम्पायन उवाच

**ततस्ते धृतराष्ट्रस्य भीष्मस्य च महात्मनः।**
**अन्येषां च तदर्हाणां चक्रुः पादाभिवन्दनम् ॥२८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—[उन वचनों को सुनते हुए थोड़ी ही देर में] पाण्डवों ने धृतराष्ट्र, महात्मा भीष्म तथा अन्य वन्दनीय पुरुषों के पास जाकर उन सबके चरणों में प्रणाम किया।

**कृत्वा तु कुशलप्रश्नं सर्वेण नगरेण च।**
**समाविशन्त वेश्मानि धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥२९॥**

फिर समस्त नगरवासियों से कुशलप्रश्न करके वे राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा से राजमहलों में गये।

**विश्रान्तास्ते महात्मानः कंचित् कालं महाबलाः।**
**आहूता धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च ॥३०॥**

कुछ समय तक विश्राम कर लेने पर उन महाबली महात्मा पाण्डवों को राजा धृतराष्ट्र तथा भीष्मजी ने बुलवाया।

धृतराष्ट्र उवाच

**भ्रातृभिः सह कौन्तेय निबोध गदतो मम।**
**अर्धं राज्यस्य सम्प्राप्य खाण्डवप्रस्थमाविश ॥३१॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ! मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे अपने भाइयोंसहित ध्यान देकर सुनो—तुम आधा राज्य लेकर खाण्डवप्रस्थ में जाकर रहो।

वैशम्पायन उवाच

**प्रतिगृह्य तु तद् वाक्यं नृपं सर्वे प्रणम्य च।**
**प्रतस्थिरे ततो घोरं वनं तन्मनुजर्षभाः ॥३२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र की बात मानकर पाण्डवों ने उन्हें प्रणाम

किया और उस खाण्डवप्रस्थ की ओर चल दिये, जो भयंकर वन के रूप में था ।

**ततस्ते पाण्डवास्तत्र गत्वा कृष्णपुरोगमाः ।**
**मण्डयाञ्चक्रिरे तद् वै परं स्वर्गवदच्युताः ॥३३॥**

तत्पश्चात् अपनी मर्यादा से कभी न डिगनेवाले पाण्डवों ने श्रीकृष्ण-सहित वहाँ पहुँचकर उस स्थान को उत्तम स्वर्गलोक की भाँति शोभायमान बना दिया ।

**ततः पुण्ये शिवे देशे शान्तिं कृत्वा महारथाः ।**
**नगरं मापयामासुर्द्वैपायनपुरोगमाः ॥३४॥**

तत्पश्चात् पवित्र एवं कल्याणमय प्रदेश में शान्ति कर्म कराके महारथी पाण्डवों ने वेदव्याजी को अगुआ बनाकर नगर बसाने के लिए भूमि का नाप करवाया ।

**सागरप्रतिरूपाभिः परिखाभिरलंकृतम् ।**
**प्राकारेण च सम्पन्नं दिवमावृत्य तिष्ठता ॥३५॥**
**पाण्डुराभ्रप्रकाशेन हिमरश्मिनिभेन च ।**
**शुशुभे तत् पुरश्रेष्ठं नागैर्भोगवती यथा ॥३६॥**

उसके चारों ओर समुद्र की भाँति विस्तृत एवं अगाध जल से भरी हुई खाइयाँ बनी थीं, जो उस समय नगर की शोभा बढ़ा रही थीं । श्वेत बादलों और चन्द्रमा के समान धवल तथा अपनी ऊँचाई से आकाशमण्डल को व्याप्त करनेवाली चहारदीवारी भी अति सुशोभित हो रही थी । जैसे नागों से भोगवती नगरी सुशोभित होती है, उसी प्रकार उस चहारदीवारी से खाई-सहित वह श्रेष्ठ नगर सुशोभित हो रहा था ।

**द्विपक्षगरुडप्रख्यैर्द्वारैः सौधैश्च शोभितम् ।**
**गुप्तमभ्रचयप्रख्यैर्गोपुरैर्मन्दरोपमैः ॥३७॥**

उस नगर के द्वार ऐसे जान पड़ते थे, मानो गरुड़ ने अपने दोनों पंख फैला रखे हों । ऐसे अनेक बड़े-बड़े फाटक और अट्टालिकाएँ उस नगर की श्रीवृद्धि कर रही थीं । मेघों की घटा के समान सुशोभित तथा मन्दराचल के समान ऊँचे गोपुरों द्वारा वह नगर सब ओर से सुरक्षित था ।

**विविधैरपि निर्विद्धैः शस्त्रोपेतैः सुसंवृतैः ।**
**शक्तिभिश्चावृतं तद्धि द्विजिह्वैरिव पन्नगैः ॥३८॥**

नाना प्रकार के अभेद्य तथा सब ओर से घिरे हुए शस्त्रागारों में शस्त्र-संग्रह करके रखे गये थे । नगर के चारों ओर हाथ से चलाई जानेवाली लोहे की शक्तियाँ निर्माण करके रखी गई थीं, जो दो जीभ-वाले साँपों के समान जान पड़ती थीं । इन सबके द्वारा उस नगर की सुरक्षा की गई थी ।

**तल्पैश्चाभ्यासिकैर्युक्तं शुशुभे योधरक्षितम् ।**
**तीक्ष्णांकुशशतघ्नीभिर्यन्त्रजालैश्च शोभितम् ॥३९॥**

जिनमें अस्त्र-शस्त्रों का अभ्यास किया जाता था, ऐसी अनेक अट्टालिकाओं से युक्त और योद्धाओं से सुरक्षित उस नगर की शोभा देखते ही बनती थी । तीखे अंकुशों=बर्छों, शतघ्नियों=तोपों और दूसरे युद्ध-सम्बन्धी यन्त्रों के जाल से वह नगर शोभा पा रहा था ।

**आयसैश्च महाचक्रैः शुशुभे तत् पुरोत्तमम् ।**
**सुविभक्तमहारथ्यं देवताबाधवर्जितम् ॥४०॥**

लोह-निर्मित महान् चक्रों द्वारा उस उत्तम नगरी की अवर्णनीय शोभा हो रही थी । वहाँ विभागपूर्वक विभिन्न स्थानों में जाने के लिए विशाल एवं चौड़ी सड़कें बनी हुई थी । उस नगर में दैवी आपत्ति का नाम तक नहीं था ।

**विरोचमानं विविधैः पाण्डुरैर्भवनोत्तमैः ।**
**तत् त्रिविष्टपसंकाशमिन्द्रप्रस्थं व्यरोचत ॥४१॥**

अनेक प्रकार के श्रेष्ठ एवं शुभ सदनों से सुशोभित वह नगर स्वर्गलोक के समान प्रकाशित हो रहा था । उसका नाम था इन्द्रप्रस्थ ।

**मेघवृन्दमिवाकाशे विद्धं विद्युत्समावृतम् ।**
**तत्र रम्ये शिवे देशे कौरव्यस्य निवेशनम् ॥४२॥**

इन्द्रप्रस्थ के रमणीय एवं शुभ प्रदेश में कुरुराज युधिष्ठिर का सुन्दर राजभवन बना हुआ था, जो आकाश में विद्युत् की प्रभा से व्याप्त मेघमण्डल की भाँति देदीप्यमान था ।

**शुशुभे धनसम्पूर्णं धनाध्यक्षक्षयोपमम् ।**
**तत्रागच्छन् द्विजा राजन् सर्ववेदविदां वराः ॥४३॥**
**निवासं रोचयन्ति स्म सर्वभाषाविदस्तथा ।**
**वणिजश्चाभ्ययुस्तत्र नानादिग्भ्यो धनार्थिनः ।**
**सर्वशिल्पविदस्तत्र वासायाभ्यागमँस्तदा ॥४४॥**

अनन्त धन-राशि से परिपूर्ण होने के कारण वह

भवन धनाध्यक्ष कुबेर के निवास-स्थान के तुल्य था। राजन् ! सम्पूर्ण वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्राह्मण उस नगर में निवास करने के लिए आये, जो सम्पूर्ण भाषाओं के जानकार थे। उन्हें वहाँ का निवास बहुत भाया। अनेक दिशाओं से धनोपार्जन की इच्छावाले वणिक् भी उस नगर में आये। सब प्रकार की शिल्पकलाओं के जानकार मनुष्य भी उन दिनों इन्द्रप्रस्थ में निवास करने के लिए आ गये थे।

**उद्यानानि च रम्याणि नगरस्य समन्ततः।**
**मत्तबर्हिणसंघुष्टकोकिलैश्च सदामदैः।**
**गृहैरादर्शविमलैर्विविधैश्च लतागृहैः ॥४५॥**

नगर के चारों ओर रमणीय उद्यान थे। मतवाले मयूरों के केकारव तथा सदा उन्मत्त रहनेवाली कोकिलाओं की काकली वहाँ गूँजती रहती थी। उन उद्यानों में दर्पण के समान स्वच्छ क्रीड़ा-भवन तथा नाना प्रकार के लता-मण्डप बनाये गये थे।

**रम्याश्च विविधास्तत्र पुष्करिण्यो वनावृताः।**
**तडागानि च रम्याणि बृहन्ति सुबहूनि च ॥४६॥**

वहाँ वन से घिरी हुई भाँति-भाँति की रमणीय पुष्करिणियाँ [बावड़ियाँ] और सुरम्य एवं विशाल बहुसंख्यक तड़ाग बड़े सुन्दर जान पड़ते थे।

**तेषां पुण्यजनोपेतं राष्ट्रमाविशतां महत्।**
**पाण्डवानां महाराज शश्वत् प्रीतिरवर्धत ॥४७॥**

महाराज ! पुण्यात्मा मनुष्यों से भरे हुए उस महान् प्रदेश में प्रवेश करने के पश्चात् पाण्डवों की प्रसन्नता निरन्तर बढ़ती गई।

**तां निवेश्य ततो वीरो रामेण सह केशवः।**
**ययौ द्वारवतीं राजन् पाण्डवानुमते तदा ॥४८॥**

हे राजन् ! इस प्रकार उस पुरी को बसाकर बलरामजी के साथ वीरवर श्रीकृष्ण पाण्डवों की अनुमति ले उस समय द्वारकापुरी को चले गये।

**प्राप्य राज्यं महातेजाः सत्यसन्धो युधिष्ठिरः।**
**पालयामास धर्मेण पृथिवीं भ्रातृभिः सह ॥४९॥**

इधर सत्यप्रतिज्ञ, महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर उस राज्य को पाकर अपने भाइयों के साथ धर्मपूर्वक पृथिवी का पालन करने लगे।

**इति महाभारते आदिपर्वणि चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥**

# पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

## सुभद्रा-हरण, अर्जुन और सुभद्रा का विवाह, अभिमन्यु का जन्म

वैशम्पायन उवाच

**अथ दीर्घेण कालेन रम्ये रैवतके गिरौ।**
**वृष्ण्यन्धकानामभवदुत्सवो नृपसत्तम ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर दीर्घकाल के पश्चात् रमणीय रैवतक पर्वत पर वृष्णि और अन्धकवंश के लोगों का एक बहुत बड़ा उत्सव हुआ।

**पौराश्च पादचारेण यानैरुच्चावचैस्तथा।**
**सदाराः सानुयात्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥२॥**
**ततो हलधरः क्षीबो रेवतीसहितः प्रभुः।**
**अनुगम्यमानो गन्धर्वैरचरत् तत्र भारत ॥३॥**

द्वारकापुरी के निवासी सैकड़ों और हजारों मनुष्य अपनी स्त्रियों और सेवकों के साथ पैदल चलकर अथवा छोटी-बड़ी सवारियों के द्वारा आकर उस उत्सव में सम्मिलित हुए थे। भारत ! महाबली बलरामजी हर्षोन्मत्त होकर वहाँ रेवती के साथ विचर रहे थे। उनके पीछे-पीछे गन्धर्व=गायक चल रहे थे।

**चित्रकौतूहले तस्मिन् वर्तमाने महाद्भुते।**
**वासुदेवश्च पार्थश्च सहितौ परिजग्मतुः ॥४॥**

उस अत्यन्त अद्भुत और विचित्र कौतूहलपूर्ण उत्सव में श्रीकृष्ण और अर्जुन साथ-साथ घूम रहे थे।

**तत्र चङ्क्रममाणौ तौ वसुदेवसुतां शुभाम्।**
**अलंकृतां सखीमध्ये भद्रां ददृशतुस्तदा ॥५॥**

इसी समय वसुदेवजी की सुन्दरी पुत्री सुभद्रा शृङ्गार से सुसज्जित हो, सखियों से घिरी हुई उधर आ निकली। वहाँ भ्रमण करते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन ने उसे देखा।

**दृष्ट्वैव तामर्जुनस्य कन्दर्पः समजायत ।**
**तं तदकाग्रमनसं कृष्णः पार्थमलक्षयत् ॥६॥**

उसे देखते ही अर्जुन के हृदय में कामाग्नि प्रज्वलित हो उठी । उनका चित्त उसी के चिन्तन में एकाग्र हो गया । श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन की उस मनोदशा को भाँप लिया ।

कृष्ण उवाच

**ममैषा भगिनी पार्थ पितुर्मे दयिता सुता ।**
**यदि ते वर्तते बुद्धिर्वक्ष्यामि पितरं स्वयम् ॥७॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—कुन्तीनन्दन ! यह मेरी सगी बहिन है । यह मेरे पिता की बड़ी लाड़ली पुत्री है । यदि तुम्हारा विचार इससे विवाह करने का हो, तो मैं स्वयं पिताजी से कहूँगा ।

अर्जुन उवाच

**दुहिता वसुदेवस्य वासुदेवस्य च स्वसा ।**
**रूपेण चैषा सम्पन्ना कमिवैषा न मोहयेत् ॥८॥**

**अर्जुन ने कहा**—यह वसुदेवजी की पुत्री तथा वासुदेव की बहिन अनुपम रूप से सम्पन्न है । फिर यह किसका मन न मोह लेगी ?

**कृतमेव तु कल्याणं सर्वं मम भवेद् ध्रुवम् ।**
**यदि स्यान्मम वार्ष्णेयी महिषीयं स्वसा तव ॥९॥**

हे सखे ! यदि यह वृष्णिकुल की कुमारी और आपकी बहिन सुभद्रा मेरी रानी हो सके तो निश्चय ही मेरा समस्त कल्याणमय मनोरथ पूर्ण हो जाए ।

**प्राप्तौ तु क उपायः स्यात् तं च ब्रूहि जनार्दन ।**
**आस्थास्यामि तदा सर्वं यदि शक्यं नरेण तत् ॥१०॥**

हे जनार्दन ! बताइए, इसे प्राप्त करने का क्या उपाय हो सकता है ? यदि मनुष्य के द्वारा कर सकने योग्य होगा तो वह सारा प्रयत्न मैं अवश्य करूँगा ।

कृष्ण उवाच

**स्वयंवरः क्षत्रियाणां विवाहः पुरुषर्षभ ।**
**स च संशयितः पार्थ स्वभावस्यानिमित्ततः ॥११॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—नरश्रेष्ठ पार्थ ! क्षत्रियों के विवाह का स्वयंवर ही एक प्रकार है, परन्तु उसका परिणाम सन्दिग्ध होता है, क्योंकि स्त्रियों का स्वभाव अस्थिर होता है [पता नहीं, वे स्वयंवर में किसका वरण करें] ।

**प्रसह्य हरणं चापि क्षत्रियाणां प्रशस्यते ।**
**विवाहहेतुः शूराणामिति धर्मविदो विदुः ॥१२॥**

बलपूर्वक कन्या का हरण भी शूरवीर क्षत्रियों के लिए विवाह का उत्तम हेतु कहा गया है, ऐसा धर्मज्ञ पुरुषों का मत है ।

**स त्वमर्जुन कल्याणीं प्रसह्य भगिनीं मम ।**
**हर स्वयंवरे ह्यस्याः को वै वेद चिकीर्षितम् ॥१३॥**

अर्जुन ! मेरी सम्मति तो यही है कि तुम मेरी कल्याणमयी बहिन का बलपूर्वक हरण कर लो । कौन जानता है, स्वयंवर में उसकी क्या चेष्टा होगी—वह किसका वरण करना चाहेगी ?

वैशम्पायन उवाच

**ततोऽर्जुनश्च कृष्णश्च विनिश्चित्येतिकृत्यताम् ।**
**शीघ्रगान् पुरुषानन्यान् प्रेषयामासतुस्तदा ॥१४॥**
**धर्मराजाय तत् सर्वमिन्द्रप्रस्थगताय वै ।**
**श्रुत्वैव च महाबाहुरनुजज्ञे स पाण्डवः ॥१५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—तब अर्जुन और श्रीकृष्ण ने कर्तव्य का निश्चय करके कुछ दूसरे शीघ्रगामी पुरुषों को इन्द्रप्रस्थ में धर्मराज युधिष्ठिर के पास भेजा और सब बातें उन्हें सूचित करके उनकी सम्मति जानने की इच्छा प्रकट की । महाबाहु युधिष्ठिर ने यह सुनते ही अपनी ओर से आज्ञा दे दी ।

**ततः संवादिते तस्मिन्ननुज्ञातो धनञ्जयः ।**
**गतां रैवतके कन्यां विदित्वा जनमेजय ॥१६॥**
**रथेन काञ्चनाङ्गेन सन्नद्धः कवची तदा ।**
**मृगयाव्यपदेशेन प्रययौ पुरुषर्षभः ॥१७॥**

जनमेजय ! उस विवाह-सम्बन्धी संदेश पर युधिष्ठिर की आज्ञा मिल जाने के पश्चात् धनंजय को जब यह ज्ञात हुआ कि सुभद्रा रैवतक पर्वत पर गई हुई है तब नरश्रेष्ठ धनंजय धनुष-बाण और कवच-आदि से सुसज्जित होकर सुवर्णमय रथ पर आरूढ़ हो शिकार खेलने के बहाने रैवतक पर्वत पर जा पहुँचे ।

**सुभद्रा त्वथ शैलेन्द्रात् प्रययौ द्वारकां प्रति ।**
**तामभिद्रुत्य कौन्तेयः प्रसह्यारोपयद् रथम् ॥१८॥**

उधर सुभद्रा उस गिरिराज रैवतक पर्वत से द्वारका की ओर लौट रही थी । अर्जुन ने दौड़कर

सर्वाङ्ग-सुन्दरी सुभद्रा को बलपूर्वक पकड़कर अपने रथ पर बैठा लिया।

**ततः स पुरुषव्याघ्रस्तामादाय शुचिस्मिताम्।**
**रथेन काञ्चनाङ्गेन प्रययौ स्वपुरं प्रति ॥१९॥**

फिर तो पुरुषसिंह धनंजय मधुर मुस्कानवाली सुभद्रा को साथ ले उस सुवर्णमय रथ द्वारा अपने नगर की ओर चल दिये।

**ह्रियमाणां तु तां दृष्ट्वा सुभद्रां सैनिका जनाः।**
**विक्रोशन्तोऽद्रवन् सर्वे द्वारकामभितः पुरीम् ॥२०॥**

सुभद्रा का अपहरण होता देख समस्त सैनिकगण हल्ला मचाते हुए द्वारकापुरी की ओर दौड़ पड़े।

**तत् श्रुत्वा वृष्णिवीरास्ते मदसंरक्तलोचनाः।**
**अमृष्यमाणाः पार्थस्य समुत्पेतुरहंकृताः ॥२१॥**

सुभद्रा-हरण की बात सुनते ही युद्धोन्माद से लाल नेत्रोंवाले वृष्णिवंशी वीर अर्जुन के प्रति अमर्ष से भर गये तथा गर्व से उछल पड़े।

**योजयध्वं रथानाशु प्रासानाहरतेति च।**
**धनूंषि च महार्हाणि कवचानि बृहन्ति च ॥२२॥**

[वे सब बड़ी उतावली से कहने लगे—]"जल्दी रथ जोतो, तुरन्त प्रास=प्रक्षेपणास्त्र ले आओ, धनुष तथा बहुमूल्य एवं विशाल कवच ले आओ।"

**सूतानुच्चुक्रुशुः केचिद् रथान् योजयतेति च।**
**स्वयं च तुरगान् केचिदयुञ्जन् हेमभूषितान् ॥२३॥**

कोई सारथियों को पुकार कर कहने लगे—"अरे! जल्दी रथ जोतो।" कुछ लोग स्वयं ही सोने के आभूषणों से विभूषित घोड़ों को रथों में जोतने लगे।

**रथेष्वानीयमानेषु कवचेषु ध्वजेषु च।**
**अभिक्रन्दे नृवीराणां तदासीत् तुमुलं महत् ॥२४॥**

रथ, कवच और ध्वजाओं के लाये जाते समय चारों ओर उन नरवीरों के कोलाहल से वहाँ बड़ी भारी तुमुल ध्वनि व्याप्त हो गई।

**वनमाली ततः क्षीबः कैलासशिखरोपमः।**
**नीलवासा मदोत्सिक्त इदं वचनमब्रवीत् ॥२५॥**

तदनन्तर कैलास-शिखर के समान गौरवर्णवाले, नीलवस्त्र और वनमाला धारण करनेवाले मदमस्त बलरामजी उन यादवों से इस प्रकार बोले—

**किमिदं कुरुथाप्रज्ञास्तूष्णीं भूते जनार्दने।**
**अस्य भावमविज्ञाय संक्रुद्धा मोघगर्जिताः ॥२६॥**

"मूर्खो! श्रीकृष्ण तो चुपचाप बैठे हैं, तुम यह क्या कर रहे हो? इनका अभिप्राय जाने बिना ही तुम इतने कुपित हो उठे। तुम लोगों की यह गर्जना व्यर्थ ही है।

**एष तावदभिप्रायमाख्यातु स्वं महामतिः।**
**यदस्य रुचिरं कर्तुं तत् कुरुध्वमतन्द्रिताः ॥२७॥**

"पहले परम बुद्धिमान् श्रीकृष्ण अपना अभिप्राय बताएँ। तब जो कर्तव्य इन्हें उचित जान पड़े, उसी का आलस्य छोड़कर पालन करो।"

**ततोऽब्रवीद् वासुदेवं वचो रामः परन्तपः।**
**किमवागुपविष्टोऽसि प्रेक्षमाणो जनार्दन ॥२८॥**

तत्पश्चात् शत्रुदमन बलरामजी श्रीकृष्ण से बोले—हे जनार्दन! यह सब-कुछ देखते हुए भी तुम मौन होकर क्यों बैठे हो?

**सत्कृतस्त्वत्कृते पार्थः सर्वैरस्माभिरच्युत।**
**न च सोऽर्हति तां पूजां दुर्बुद्धिः कुलपांसनः ॥२९॥**

"अच्युत! तुम्हारे सन्तोष के लिए ही हम सब लोगों ने अर्जुन का इतना आदर-सत्कार किया, परन्तु वह खोटी बुद्धिवाला कुलाङ्गार उस सत्कार के योग्य कदापि नहीं था।

**को हि तत्रैव भुक्त्वान्नं भाजनं भेत्तुमर्हति।□**
**मन्यमानः कुले जातमात्मानं पुरुषः क्वचित् ॥३०॥**

"अपने आपको कुलीन माननेवाला कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो जिस हाँडी में खाये, उसी में छेद करे?

**सोऽवमन्य च नामास्माननादृत्य च केशवम्।**
**प्रसह्य हृतवानद्य सुभद्रां मृत्युमात्मनः ॥३१॥**

"उसने हम लोगों का अपमान और केशव का अनादर करके आज बलपूर्वक सुभद्रा का अपहरण किया है, जो उसके लिए अपनी मृत्यु का कारण है।

**कथं हि शिरसो मध्ये पदं तेन कृतं मम।**
**मर्षयिष्यामि गोविन्द पादस्पर्शमिवोरगः ॥३२॥**

"गोविन्द! जैसे सर्प पैर की ठोकर नहीं सह सकता, उसी प्रकार उसने मेरे सिर पर जो पैर रख दिया है, उसे मैं कैसे सह सकता हूँ?

**अद्य निष्कौरवामेकः करिष्यामि वसुन्धराम् ।**
**न हि मे मर्षणीयोऽयमर्जुनस्य व्यतिक्रमः ॥३३॥**

"अर्जुन का यह अन्याय मेरे लिए असह्य है। आज मैं अकेला ही इस वसुन्धरा को कुरुवंशियों से विहीन कर दूँगा।"

कृष्ण उवाच

**नावमानं कुलस्यास्य गुडाकेशः प्रयुक्तवान् ।**
**सम्मानोऽभ्यधिकस्तेन प्रयुक्तोऽयं न संशयः ॥३४॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—बलदेव! निद्राजित् अर्जुन ने इस कुल का अपमान नहीं किया है, अपितु ऐसा करके उन्होंने इस कुल के प्रति अधिक सम्मान का भाव ही प्रकट किया है, इसमें संशय नहीं है।

**अर्थलुब्धान् न वः पार्थो मन्यते सात्वतान् सदा ।**
**स्वयंवरमनाधृष्यं मन्यते चापि पाण्डवः ॥३५॥**

पृथापुत्र अर्जुन यह जानते हैं कि सात्वतवंशी कभी धन के लोभी नहीं रहे, अतः धन देकर कन्या नहीं ली जा सकती। साथ ही पाण्डुपुत्र अर्जुन को यह भी ज्ञात है कि स्वयंवर में कन्या के मिल जाने का पूर्ण निश्चय नहीं रहता, अतः वह भी अग्राह्य ही है।

**प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत् कः प्रतीक्षते ।**
**विक्रयं चाप्यपत्यस्य कः कुर्यात् पुरुषो भुवि ॥३६॥**

भला कौन ऐसा वीर पुरुष होगा, जो पशु की भाँति पराक्रम-शून्य होकर कन्या-दान की प्रतीक्षा में बैठा रहेगा और इस पृथिवी पर ऐसा अधम पुरुष कौन होगा, जो धन लेकर अपनी सन्तान को बेचेगा?

**एतान् दोषाँस्तु कौन्तेयो दृष्टवानिति मे मतिः ।**
**अतः प्रसह्य हृतवान् कन्यां धर्मेण पाण्डवः ॥३७॥**

मेरा विश्वास है कि कुन्तीपुत्र अर्जुन ने इन सभी दोषों की ओर दृष्टिपात किया है और फिर क्षत्रिय-धर्म के अनुसार बलपूर्वक कन्या का अपहरण किया है।

**उचितश्चैव सम्बन्धः सुभद्रा च यशस्विनी ।**
**एष चापीदृशः पार्थः प्रसह्य हृतवानिति ॥३८॥**

मेरे विचार में तो यह सम्बन्ध अति उचित है। सुभद्रा यशस्विनी है तथा ये कुन्तीपुत्र अर्जुन भी ऐसे ही यशस्वी हैं, अतः इन्होंने बलपूर्वक सुभद्रा का अपहरण किया है।

**भरतस्यान्वये जातं शान्तनोश्च यशस्विनः ।**
**कुन्तिभोजात्मजापुत्रं को बुभूषेत नार्जुनम् ॥३९॥**

महाराज भरत तथा यशस्वी शान्तनु के कुल में जिनका जन्म हुआ है, जो कुन्तीभोजकुमारी कुन्ती के पुत्र हैं, ऐसे वीरवर अर्जुन को कौन अपना सम्बन्धी न बनाना चाहेगा?

**न च पश्यामि यः पार्थं विजयेत रणे बलात् ।**
**अपि सर्वेषु लोकेषु सेन्द्ररुद्रेषु मारिष ॥४०॥**

आर्य! इन्द्रलोक और रुद्रलोक-सहित सम्पूर्ण लोकों में मैं किसी ऐसे वीर को नहीं देखता, जो संग्राम में बलपूर्वक पार्थ को परास्त कर सके।

**तमभिद्रुत्य सान्त्वेन परमेण धनञ्जयम् ।**
**न्यवर्तयत संहृष्टा ममैषा परमा मतिः ॥४१॥**

अतः आप लोग प्रसन्नतापूर्वक दौड़ जाइए और सान्त्वना प्रदान कर वीरवर अर्जुन को लौटा लाइए। मेरी तो यही परम सम्मति है।

वैशम्पायन उवाच

**तत् श्रुत्वा वासुदेवस्य तथा चक्रुर्जनाधिप ।**
**निवृत्तश्चार्जुनस्तत्र विवाहं कृतवान् प्रभुः ॥४२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! श्रीकृष्ण का वह परामर्श सुनकर यादवों ने वैसा ही किया। शक्तिशाली अर्जुन द्वारका में लौट आये और वहाँ उन्होंने सुभद्रा से विवाह किया।

**उषित्वा तत्र कौन्तेयः संवत्सरपराः क्षपाः ।**
**विहृत्य च यथाकामं खाण्डवप्रस्थमागतः ॥४३॥**

एक वर्ष से भी कुछ अधिक दिन तक वहाँ रहकर और इच्छानुसार विहार करके अर्जुन खाण्डवप्रस्थ में लौट आये।

**ततः सुभद्रा सौभद्रं केशवस्य प्रिया स्वसा ।**
**जयन्तमिव पौलोमी ख्यातिमन्तमजीजनत् ॥४४॥**

तदनन्तर कुछ काल के पश्चात् कृष्ण की प्यारी बहिन सुभद्रा ने यशस्वी सौभद्र को जन्म दिया, ठीक उसी प्रकार, जैसे शची ने जयन्त को उत्पन्न किया था।

**दीर्घबाहुं महोरस्कं वृषभाक्षमरिन्दमम् ।**
**सुभद्रा सुषुवे वीरमभिमन्युं नरर्षभम् ॥४५॥**

सुभद्रा ने वीरवर नरश्रेष्ठ अभिमन्यु को जन्म दिया जिसकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं। उसका वक्षःस्थल विशाल और नेत्र बैल की आँखों के समान बड़े-बड़े थे। वह शत्रुओं का दमन करनेवाला था।

**अभीश्च मन्युमाँश्चैव ततस्तमरिमर्दनम्।**
**अभिमन्युमिति प्राहुरार्जुनिं पुरुषर्षभम् ॥४६॥**

वह अभीः=निर्भय तथा मन्युमान् [क्रुद्ध होकर लड़नेवाला] था, अतः पुरुषोत्तम अर्जुनकुमार को सब लोग 'अभिमन्यु' कहने लगे।

**जन्मप्रभृति कृष्णश्च चक्रे तस्य क्रियाः शुभाः।**
**स चापि ववृधे बालः शुक्लपक्षे यथा शशी ॥४७॥**

श्रीकृष्ण ने जन्म से ही उसके लालन-पालन की सुन्दर व्यवस्थाएँ की थीं। बालक अभिमन्यु भी शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति बढ़ने लगा।

**चतुष्पादं दशविधं धनुर्वेदमरिन्दमः।**
**अर्जुनाद् वेद वेदज्ञः सकलं दिव्यमानुषम् ॥४८॥**

उस शत्रुदमन बालक ने वेदों का ज्ञान प्राप्त करके अपने पिता अर्जुन से चार पदों[1] और दशविध[2] अङ्गों से युक्त दिव्य एवं मानुष[3] सब प्रकार के धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

**विज्ञानेष्वपि चास्त्राणां सौष्ठवे च महाबलः।**
**क्रियास्वपि च सर्वासु विशेषानभ्यशिक्षयत् ॥४९॥**

अस्त्रों के विज्ञान, सौष्ठव=प्रयोगपटुता और सम्पूर्ण क्रियाओं में भी महाबली अर्जुन ने उसे विशेष शिक्षा दी थी।

**आगमे च प्रयोगे च चक्रे तुल्यमिवात्मनः।**
**तुतोष पुत्रं सौभद्रं प्रेक्षमाणो धनञ्जयः ॥५०॥**

धनंजय ने अभिमन्यु को [अस्त्र-शस्त्रों के] आगम और प्रयोग में अपने समान बना दिया था।[4] वे सुभद्राकुमार को देखकर बहुत सन्तुष्ट रहते थे।

---

१. धनुर्वेद में निम्न चार पाद बताये गये हैं—

**मन्त्रमुक्तं पाणिमुक्तं मुक्तामुक्तं तथैव च।**
**अमुक्तं च धनुर्वेदे चतुष्पाच्छस्त्रमीरितम् ॥**

मन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, मुक्तामुक्त और अमुक्त—धनुर्वेद में शस्त्र के ये चार पाद बताये गये हैं।

जिसका मान्त्रिक प्रयोग होता है, उपसंहार नहीं होता उसे 'मन्त्रमुक्त' कहते हैं। जिसे हाथ में लेकर धनुष द्वारा छोड़ा जाए, उसे 'पाणिमुक्त' कहते हैं। जिसका प्रयोग और उपसंहार दोनों हों, वह 'मुक्तामुक्त' कहलाता है। जो छोड़ा नहीं जाता, जिसके देखने मात्र से ही शत्रु भाग जाते हैं, वह 'अमुक्त' कहलाता है।

अथवा—सूत्र, शिक्षा, प्रयोग और रहस्य—ये धनुर्वेद के चार पाद हैं।

२. धनुर्वेद के दश अङ्ग निम्न हैं—

**आदानमथ सन्धानं मोक्षणं विनिवर्तनम्।**
**स्थानं मुष्टिः प्रयोगश्च प्रायश्चित्तानि मण्डलम्।**
**रहस्यं चेति दशधा धनुर्वेदाङ्गमिष्यते ॥**

आदान, सन्धान, मोक्षण, विनिवर्तन, स्थान, मुष्टि, प्रयोग, प्रायश्चित्त, मण्डल और रहस्य—ये धनुर्वेद के दश अङ्ग हैं।

तरकस से बाण को निकालना 'आदान' है। बाण को धनुष की प्रत्यञ्चा पर चढ़ाना 'सन्धान' है, उसे लक्ष्य पर छोड़ने को 'मोक्षण' कहते हैं। छोड़े हुए बाण को वापस लौटाना 'विनिवर्तन' है। शरसन्धान-काल में धनुष और प्रत्यञ्चा के मध्यदेश को 'स्थान' कहते हैं। तीन अथवा चार अंगुलियों का सहयोग 'मुष्टि' कहलाता है। तर्जनी और मध्यमा अंगुलि के अथवा मध्यमा और अंगुष्ठ के मध्य से बाण का सन्धान करना 'प्रयोग' कहा जाता है। स्वतः अथवा दूसरे से प्राप्त होनेवाले ज्याघात [धनुष की डोरी के आघात] और बाण के आघात को रोकने के लिए दस्तानों के प्रयोग को 'प्रायश्चित्त कहते हैं। चक्राकार घूमते हुए रथ के साथ-साथ घूमनेवाले लक्ष्य का वेध 'मण्डल' कहलाता है। शब्द सुनकर लक्ष्य-वेधन अथवा एक ही समय में अनेक लक्ष्यों को बींध डालना—ये सब 'रहस्य' के अन्तर्गत आते हैं।

३. ब्रह्मास्त्र आदि को दिव्य और खड्ग आदि को मानुष कहते हैं।

४. लोक में ऐसी मिथ्या धारणा है कि युद्ध के समय अभिमन्यु की अवस्था केवल सोलह वर्ष थी। पाठक इस स्थल को ध्यानपूर्वक पढ़ें। यदि युद्ध के समय अभिमन्यु की अवस्था सोलह वर्ष थी, तो पाण्डवों के वनवास से पूर्व उसकी अवस्था लगभग तीन वर्ष होनी चाहिए। क्या अर्जुन ने तीन वर्ष के अभिमन्यु को सारे अस्त्र-शस्त्रों में पारंगत बना दिया था?

**सर्वसंहननोपेतं सर्वलक्षणलक्षितम् ।**
**दुर्धर्षमृषभस्कन्धं व्यात्ताननमिवोरगम् ।।५१।।**
**सिंहदर्पं महेष्वासं मत्तमातङ्गविक्रमम् ।**
**मेघदुन्दुभिनिर्घोषं पूर्णचन्द्रनिभाननम् ।।५२।।**
**कृष्णस्य सदृशं शौर्ये वीर्ये रूपे तथाऽऽकृतौ ।**
**ददर्श पुत्रं बीभत्सुर्मघवानिव तं यथा ।।५३।।**

दूसरों को तिरस्कृत करनेवाले, समस्त सद्गुणों से सम्पन्न, सभी उत्तम लक्षणों से सुशोभित एवं दुर्धर्ष, वृषभ के समान हृष्ट-पुष्ट कन्धोंवाले, शत्रुओं को मुँह खोले हुए सर्प की भाँति भयानक प्रतीत होनेवाले, सिंह के समान गर्वीले और मदमस्त, गजराज की भाँति पराक्रमी, महाधनुर्धर, मेघ और दुन्दुभि के समान गम्भीर स्वरवाले, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाले, शौर्य, पराक्रम, रूप और आकृति में श्रीकृष्ण के समान प्रतीत होनेवाले अपने उस पुत्र को अर्जुन वैसी ही प्रसन्नता से देखते थे, जैसे इन्द्र उन्हें देखा करते थे ।

**इति महाभारते आदिपर्वणि पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।।३५।।**

# षट्त्रिंशोऽध्यायः

## युधिष्ठिर के राज्य की विशेषता, श्रीकृष्ण की सहायता से अर्जुन के द्वारा खाण्डव वन का दाह

वैशम्पायन उवाच

**इन्द्रप्रस्थे वसन्तस्ते जघ्नुरन्यान् नराधिपान् ।**
**शासनाद् धृतराष्ट्रस्य राज्ञः शान्तनवस्य च ।।१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र तथा शान्तनुनन्दन भीष्मजी की आज्ञा से इन्द्रप्रस्थ में रहनेवाले पाण्डवों ने अन्य बहुत से भूपालों को, जो उनके शत्रु थे, मौत के घाट उतार दिया था ।

**आश्रित्य धर्मराजं तं सर्वलोकोऽवसत् सुखम् ।**
**पुण्यलक्षणकर्माणं स्वदेहमिव देहिनः ।।२।।**

धर्मराज युधिष्ठिर का आश्रय लेकर सब लोग सुखपूर्वक रहने लगे, जैसे जीवात्मा पुण्यकर्मों के फलस्वरूप उत्तम शरीर को पाकर सुख से रहता है ।

**न ह्ययुक्तं न चासत्यं नासह्यं न च विप्रियम् ।**
**भाषितं चारुभाषस्य जज्ञे पार्थस्य धीमतः ।।३।।**

सदा मधुर बोलनेवाले, बुद्धिमान् कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर के मुख से कभी कोई अनुचित, असत्य, असह्य और अप्रिय बात नहीं निकलती थी ।

**स हि सर्वस्य लोकस्य हितमात्मन एव च ।**
**चिकीर्षन् सुमहातेजा रेमे भरतसत्तम ।।४।।**

भरतश्रेष्ठ ! महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर सब लोगों का तथा अपना भी हित करने की चेष्टा में रहकर सदा प्रसन्नतापूर्वक जीवन-यापन करने में दत्त-चित्त रहते थे ।

**तथा तु मुदिताः सर्वे पाण्डवा विगतज्वराः ।**
**अवसन् पृथिवीपालाँस्तापयन्तः स्वतेजसा ।।५।।**

इसी प्रकार सभी पाण्डव अपने तेज से दूसरे नरेशों को सन्तप्त करते हुए निश्चिन्त तथा आनन्द-मग्न होकर वहाँ निवास करते थे ।

**ततः कतिपयाहस्य बीभत्सुः कृष्णमब्रवीत् ।**
**उष्णानि कृष्ण वर्तन्ते गच्छावो यमुनां प्रति ।।६।।**

इस प्रकार आनन्दपूर्वक निवास करते हुए कुछ दिनों पश्चात् अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—"कृष्ण ! भीषण गरमी पड़ रही है । चलिए, यमुना में स्नान के लिए चलें ।

**सुहृज्जनवृतौ तत्र विहृत्य मधुसूदन ।**
**सायाह्ने पुनरेष्यावो रोचतां ते जनार्दन ।।७।।**

"हे मधुसूदन ! मित्रों के साथ वहाँ जल-विहार करके हम लोग सायंकाल तक वापस आ जाएँगे । जनार्दन ! आपकी इच्छा हो तो चलें ।"

वासुदेव उवाच

**कुन्तीमातर्ममाप्येतद् रोचते यद् वयं जले ।**
**सुहृज्जनवृताः पार्थ विहरेम यथासुखम् ।।८।।**

**श्रीकृष्ण बोले**—कुन्तीनन्दन ! मेरी भी ऐसी इच्छा हो रही है कि हम लोग सुहृदों के साथ वहाँ चलकर सुखपूर्वक जल-विहार करें ।

वैशम्पायन उवाच

**आमन्त्र्य तौ धर्मराजमनुज्ञाप्य च भारत।**
**जग्मतुः पार्थगोविन्दौ सुहृज्जनवृतौ ततः ॥९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे भारत! यह विचार-विमर्श करके युधिष्ठिरजी की आज्ञा ले अर्जुन और श्रीकृष्ण सुहृदों के साथ वहाँ गये।

**विहारदेशं सम्प्राप्य नानाद्रुममनुत्तमम्।**
**यथोपजोषं सर्वश्च जनश्चिक्रीड भारत ॥१०॥**

हे भारत! नाना प्रकार के वृक्षों से सुशोभित विहार-स्थान पर पहुँचकर सब लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार जल-क्रीड़ा करने लगे।

**तस्मिंस्तदा वर्तमाने कुरुदाशार्हनन्दनौ।**
**समीपं जग्मतुः कञ्चिदुद्देशं सुमनोहरम् ॥११॥**

जब वहाँ जल-क्रीड़ा-विहार का आनन्दमय उत्सव चल रहा था, उसी समय श्रीकृष्ण और अर्जुन समीप ही किसी अत्यन्त मनोहर प्रदेश में गये।

**तत्र गत्वा व्यतीतानि विक्रान्तानीतराणि च।**
**बहूनि कथयित्वा तौ रेमाते पार्थमाधवौ ॥१२॥**

वहाँ जाकर श्रीकृष्ण और अर्जुन पहले किये हुए पराक्रमों तथा अन्य अनेक प्रकार की बातों की चर्चा करके आमोद-प्रमोद करने लगे।

**तत्रोपविष्टौ मुदितौ नाकपृष्ठेऽश्विनाविव।**
**अभ्यागच्छत् तदा विप्रो वासुदेवधनञ्जयौ ॥१३॥**

वहाँ प्रसन्नतापूर्वक बैठे हुए धनंजय और वासुदेव स्वर्गलोक में स्थित दोनों अश्विनीकुमारों की भाँति सुशोभित हो रहे थे। उसी समय उन दोनों के पास एक ब्राह्मण देवता आये।

**सोऽब्रवीदर्जुनं चैव वासुदेवं च सात्वतम्।**
**लोकप्रवीरौ तिष्ठन्तौ खाण्डवस्य समीपतः ॥१४॥**

उस ब्राह्मण ने अर्जुन और सात्वतवंशी श्रीकृष्ण से, जो विख्यात वीर थे तथा खाण्डव वन के समीप ठहरे हुए थे, इस प्रकार कहा—

**स युवाभ्यां सहायाभ्यामस्त्रविद्भ्यां समागतः।**
**दहेयं खाण्डवं दावमेतदन्नं वृतं मया ॥१५॥**

आप दोनों अस्त्रविद्या के पूर्ण जानकार हैं, अतः मैं इस उद्देश्य से आपके पास आया हूँ कि आप दोनों की सहायता से मैं इस खाण्डव वन को जला सकूँ। मैं आपसे इसी अन्न की भिक्षा माँगता हूँ।

अर्जुन उवाच

**उत्तमास्त्राणि मे सन्ति दिव्यानि च बहूनि च।**
**यैरहं शक्नुयां योद्धुमपि वज्रधरान् बहून् ॥१६॥**
**धनुर्मे नास्ति भगवन् बाहुवीर्येण सम्मितम्।**
**कुर्वतः समरे यत्नं वेगं यद् विषहेन्मम ॥१७॥**

**अर्जुन बोले**—भगवान्! मेरे पास बहुत-से दिव्य एवं उत्तम अस्त्र हैं, जिनके द्वारा मैं एक क्या, अनेक वज्रधारियों से युद्ध कर सकता हूँ। परन्तु मेरे पास मेरे बाहुबल के अनुरूप धनुष नहीं है, जो युद्ध-भूमि में युद्ध के लिए प्रयत्नशील मेरे वेग को सह सके।

**शरैश्च मेऽर्थो बहुभिरक्षयैः क्षिप्रमस्यतः।**
**न हि वोढुं रथः शक्तः शरान् मम यथेप्सितान् ॥१७**

इसके अतिरिक्त शीघ्रतापूर्वक बाण चलाते रहने के लिए मुझे इतने अधिक बाणों की आवश्यकता होगी, जो कभी समाप्त न हों। साथ ही मेरी इच्छा के अनुरूप बाणों को ढोने के लिए शक्तिशाली रथ भी मेरे पास नहीं है।

**अश्वांश्च दिव्यानिच्छेयं पाण्डुरान् वातरंहसः।**
**रथं च मेघनिर्घोषं सूर्यप्रतिमतेजसम् ॥१८॥**
**तथा कृष्णस्य वीर्येण नायुधं विद्यते समम्।**
**येन नागान् पिशाचांश्च निहन्यान्माधवो रणे ॥१९॥**

मैं वायु के समान वेगवान् श्वेत रंग के दिव्य घोड़े तथा मेघ के समान गम्भीर घोष करनेवाला और सूर्य के समान तेजस्वी रथ भी चाहता हूँ। इसी प्रकार इन श्रीकृष्ण के बल-पराक्रम के अनुसार कोई आयुध इनके पास भी नहीं है, जिससे ये नागों और पिशाचों को युद्ध में मार सकें।

**पौरुषेण तु यत् कार्यं तत् कर्तारौ स्व पावक।**
**करणानि समर्थानि भगवन् दातुमर्हसि ॥२०॥**

भगवन्! निष्पाप देव! पुरुषार्थ से जो कार्य हो सकता है, उसे हम लोग करने के लिए तैयार हैं; परन्तु इसके लिए सुदृढ़ साधन जुटा देने की कृपा आपको करनी होगी।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तः स भगवान् भ्राजमानो द्विजोत्तमः।**
**प्रादाच्चैव धनुरत्नमक्षय्ये च महेषुधी ॥२१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! अर्जुन के ऐसा कहने पर उस तेजस्वी ब्राह्मण ने उन्हें धनुषों में रत्न के समान गाण्डीव तथा बाणों से भरे हुए दो अक्षय एवं बड़े तरकस भी दिये ।

**रथं च दिव्याश्वयुजं कपिप्रवरकेतनम् ।**
**उपेतं राजतैरश्वैर्गान्धर्वैर्हेममालिभिः ॥२२॥**

इनके अतिरिक्त ब्राह्मणदेव ने दिव्य घोड़ों से जुता हुआ एक रथ भी प्रस्तुत किया, जिसकी ध्वजा पर कपिश्रेष्ठ विराजमान था । उसमें जुते हुए घोड़ों का रंग चाँदी के समान श्वेत था । वे सभी घोड़े गन्धर्वदेश में उत्पन्न तथा स्वर्ण-मालाओं से समलंकृत थे ।

**तच्च दिव्यं धनुःश्रेष्ठं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।**
**गाण्डीवमुपसंगृह्य बभूव मुदितोऽर्जुनः ॥२३॥**

पूर्वकाल में ब्रह्माजी द्वारा निर्मित उस दिव्य एवं श्रेष्ठ गाण्डीव धनुष को हाथ में लेकर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए ।

**लब्ध्वा रथं धनुश्चैव तथाक्षय्ये महेषुधी ।**
**बभूव कल्यः कौन्तेयः प्रहृष्टः साह्यकर्मणि ॥२४॥**

उस रथ, धनुष तथा अक्षय तरकसों को पाकर कुन्तीनन्दन अर्जुन अत्यन्त प्रसन्न हो ब्राह्मण देव की सहायता करने में समर्थ हो गये ।

**वज्रनाभं ततश्चक्रं ददौ कृष्णाय पावकः ।**
**आग्नेयमस्त्रं दयितं स च कल्योऽभवत् तदा ॥२५॥**

तत्पश्चात् उस निष्पाप ब्राह्मण ने श्रीकृष्ण को एक चक्र दिया, जिसका मध्य भाग वज्र के समान था । उस आग्नेय सुदर्शन चक्र को पाकर श्रीकृष्ण भी उस समय सहायता के लिए समर्थ हो गये ।

ब्राह्मण उवाच

**क्षिप्तं क्षिप्तं रणे चैतत् त्वया माधव शत्रुषु ।**
**हत्वाप्रतिहतं संख्ये पाणिमेष्यति ते पुनः ॥२६॥**

**ब्राह्मणदेव ने कहा**—माधव ! युद्ध में आप जब-जब इसे शत्रुओं पर चलाएँगे, तब-तब यह उन्हें शीघ्र ही मारकर और स्वयं किसी वज्र से नष्ट न होकर पुनः आपके हाथ में आ जाएगा ।[1]

वैशम्पायन उवाच

**ततः पावकमब्रूतां प्रहृष्टावर्जुनाच्युतौ ।**
**कल्यौ स्वो भगवन् योद्धुमपि सर्वैः सुरासुरैः ॥२७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—अस्त्र-शस्त्र प्राप्त कर अर्जुन और श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर उस निष्पाप ब्राह्मण से कहा—"भगवन् ! अब हम दोनों देवताओं तथा असुरों से भी युद्ध करने में समर्थ हो गये हैं ।

अर्जुन उवाच

**सर्वतः परिवार्यैनं दावेन महता प्रभो ।**
**कामं सम्प्रज्वलाद्यैव कल्यौ स्वः साह्यकर्मणि ॥२८॥**

**अर्जुन बोले**—महाप्रभो ! अब आप इस सम्पूर्ण वन को चारों ओर से घेरकर आज ही इच्छानुसार जलाइए, हम आपकी सहायता के लिए तैयार हैं ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तः स भगवान् दाशार्हेणार्जुनेन च ।**
**तैजसं रूपमास्थाय दावं दग्धुं प्रचक्रमे ॥२९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! श्रीकृष्ण और अर्जुन के ऐसा कहने पर उस ब्राह्मण ने तेजोमय रूप धारण करके उस खाण्डव वन को सब ओर से जलाना आरम्भ किया ।

**तौ रथाभ्यां रथश्रेष्ठौ दावस्योभयतः स्थितौ ।**
**दिक्षु सर्वासु भूतानां चक्राते कदनं महत् ॥३०॥**

उधर रथियों में श्रेष्ठ वे दोनों वीर दो रथों में बैठकर खाण्डव वन के दोनों ओर खड़े हो गये और सब दिशाओं में घूम-घूमकर प्राणियों का महान् संहार करने लगे ।

**यत्र यत्र च दृश्यन्ते प्राणिनः खाण्डवालयाः ।**
**पलायन्तः प्रवीरौ तौ तत्र तत्राभ्यधावताम् ॥३१॥**

खाण्डव वन में रहनेवाले प्राणी जहाँ-जहाँ भागते दिखाई देते, वहीं-वहीं वे दोनों प्रमुख वीर उनका पीछा करते ।

**खाण्डवे दह्यमाने तु भूताः शतसहस्रशः ।**
**उत्पेतुर्भैरवान् नादान् विनदन्तः समन्ततः ॥३२॥**

जब खाण्डव वन में आग फैल गई और वह अच्छी प्रकार जलने लगा, उस समय लाखों प्राणी

---

१. यहाँ प्राचीन भारत के अस्त्र-विज्ञान का अवलोकन कीजिए । आधुनिक युग के परम बुद्धिमान् वैज्ञानिक भी अभी तक किसी ऐसे शस्त्र का आविष्कार नही कर सके हैं ।

भयानक चीत्कार करते हुए चारों ओर उछलने-कूदने और भागने-दौड़ने लगे।

**दग्धैकदेशा बहवो निष्टप्ताश्च तथापरे।**
**स्फुटिताक्षा विशीर्णाश्च विलुप्ताश्च तथापरे ॥३३॥**

बहुत-से प्राणियों के शरीर का एक भाग जल गया था, बहुतेरे अग्नि में झुलस गये थे, कितनों की आँखें फूट गई थीं और कितनों के शरीर फट गये थे और बहुत-से भागकर छुप गये।

**द्विपाः प्रभिन्नाः शार्दूलाः सिंहाः केसरिणस्तथा।**
**मृगाश्च महिषाश्चैव शतशः पक्षिणस्तथा।**
**समुद्विग्ना विसस्रपुस्तथान्या भूतजातयः ॥३४॥**

मद की धारा बहानेवाले हाथी, शार्दूल, केसरी, सिंह, मृग, भैंसे, सैकड़ों पक्षी तथा दूसरी-दूसरी जाति के प्राणी अत्यन्त उद्विग्न हो इधर-उधर भागने लगे।

**पिशाचान् पक्षिणो नागान् पशूँश्चैव सहस्रशः।**
**निघ्नँश्चरति वार्ष्णेयः कालवत् तत्र भारत ॥३५॥**

हे भरतभूषण! श्रीकृष्ण वहाँ सहस्रों पिशाचों, पक्षियों, नागों तथा पशुओं का वध करते हुए काल के समान विचर रहे थे।

**क्षिप्तं क्षिप्तं पुनश्चक्रं कृष्णस्यामित्रघातिनः।**
**छित्त्वानेकानि सत्त्वानि पाणिमेति पुनः पुनः ॥३६॥**

शत्रुघाती श्रीकृष्ण द्वारा बार-बार चलाया हुआ वह चक्र अनेक प्राणियों को तहस-नहस करके पुनः उनके हाथ में लौट आता था।

**समेतानां च सर्वेषां दानवानां च सर्वशः।**
**विजेता नाभवत् कश्चित् कृष्णपाण्डवयोर्मृधे ॥३७॥**

वहाँ सब ओर से सम्पूर्ण दानव एकत्र हो गये थे, तथापि उनमें से एक भी ऐसा नहीं निकला, जो युद्ध में श्रीकृष्ण और अर्जुन को जीत सके।

**न च स्म किंचिच्छक्नोति भूतं निश्चरितुं ततः।**
**संछिद्यमानमिषुभिरस्यता सव्यसाचिना ॥३८॥**

सव्यसाची अर्जुन के बाण चलाते समय उनके बाणों से कट जाने के कारण कोई भी जीव वहाँ से बाहर नहीं निकल सका।

**नाशक्नुवंश्च भूतानि महान्त्यपि रणेऽर्जुनम्।**
**निरीक्षितुममोघास्त्रं योद्धुं चापि कुतो रणे।**
**शतं चैकेन विव्याध शतेनैकं पतत्त्रिणाम् ॥३९॥**

अमोघ अस्त्रधारी अर्जुन को उस समय बड़े-से-बड़े प्राणी देख भी न सके, फिर रणभूमि में युद्ध तो कर ही कैसे सकते थे? अर्जुन कभी एक ही बाण से सैकड़ों को बींध डालते थे और कभी एक ही को सौ बाणों से घायल कर देते थे।

**भूतसंघाश्च बहवो दीनाश्चक्रुर्महास्वनम्।**
**रुरुदुर्वारणाश्चैव तथा मृगतरक्षवः ॥४०॥**

बहुतेरे प्राणियों के समुदाय कातर होकर जोर-जोर से चीत्कार करने लगे। हाथी, मृग और चीते भी रो रहे थे।

**तथाऽसुरं मयं नाम तक्षकस्य निवेशनात्।**
**विप्रद्रवन्तं सहसा ददर्श मधुसूदनः ॥४१॥**

इसी समय तक्षक के निवास-स्थान से निकलकर सहसा भागते हुए मयासुर पर मधुसूदन [मधु नामक राक्षस को मारनेवाले श्रीकृष्ण] की दृष्टि पड़ी।

**विज्ञाय दानवेन्द्राणां मयं वै शिल्पिनां वरम्।**
**जिघांसुर्वासुदेवस्तं चक्रमुद्यम्य विष्ठितः ॥४२॥**
**स चक्रमुद्यतं दृष्ट्वा दिधक्षन्तं च पावकम्।**
**अभिधावार्जुनेत्येवं मयस्त्राहीति चाब्रवीत् ॥४३॥**

मय दानवेन्द्रों के शिल्पियों में श्रेष्ठ था, उसे पहचानकर श्रीकृष्ण उसका वध करने के लिए चक्र लेकर खड़े हो गये। मय ने देखा एक ओर मुझे मारने के लिए चक्र उठा हुआ है, दूसरी ओर अग्नि मुझे जला डालना चाहती है, तब वह अर्जुन की शरण में गया और बोला—"अर्जुन! दौड़ो, मुझे बचाओ! बचाओ!"

**तस्य भीतस्वनं श्रुत्वा मा भैरिति धनञ्जयः।**
**प्रत्युवाच मयं पार्थो जीवयन्निव भारत ॥४४॥**

हे भारत! उसका भययुक्त स्वर सुनकर कुन्ती-कुमार धनंजय ने उसे जीवन-दान देते हुए कहा—"डरो मत!"

**तं पार्थेनाभये दत्ते नमुचेर्भ्रातरं मयम्।**
**न हन्तुमैच्छद् दाशार्हः पावको न ददाह च ॥४५॥**

अर्जुन के अभय-दान देने पर श्रीकृष्ण ने नमुचि के भाई मयासुर को मारने की इच्छा त्याग दी और ब्राह्मणदेव ने भी उसे नहीं जलाया।

**तद् वनं पावको धीमान् दिनानि दश पञ्च च ।**
**ददाह कृष्णपार्थाभ्यां रक्षितः पाकशासनात् ॥४६॥**

उस परम बुद्धिमान् निष्पाप ब्राह्मण ने श्रीकृष्ण और अर्जुन के द्वारा इन्द्र के आक्रमण से सुरक्षित होकर खाण्डव वन को पन्द्रह दिन तक जलाया।[1]

**इति महाभारते आदिपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥**

**इति आदिपर्व सम्पूर्णम् ॥१॥**

---

१. खाण्डव वन का दाह नई बस्ती बसाने के लिए किया गया था। वन में आग लगा दी गई। जो वन्य और हिंसक प्राणी तथा नरमांस-भक्षक असुर वहाँ रहते थे, जब वे निकलकर भागने लगे तब ये भागकर पुरानी बस्ती में न घुस जाएँ, अतः श्रीकृष्ण और अर्जुन ने उनका संहार कर डाला।

# सभापर्व

## प्रथमोऽध्यायः

### मयासुर द्वारा पाण्डवों के लिए अद्भुत सभा-भवन का निर्माण

वैशम्पायन उवाच

**ततोऽब्रवीन्मयः पार्थं वासुदेवस्य सन्निधौ।**
**प्राञ्जलिः श्लक्ष्णया वाचा पूजयित्वा पुनः पुनः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! खाण्डव-दाह के पश्चात् मयासुर ने श्रीकृष्ण के समीप बैठे हुए अर्जुन की बार-बार प्रशंसा करके और हाथ जोड़कर मधुर वाणी में उनसे कहा—

मय उवाच

**अस्मात्कृष्णात् सुसंरब्धात् पावकाच्च दिधक्षतः।**
**त्वया त्रातोऽस्मि कौन्तेय ब्रूहि किं करवाणि ते ॥२॥**

**मयासुर बोला**—कुन्तीनन्दन! आपने अति क्रुद्ध इन कृष्ण से तथा जला डालनेवाली अग्नि से मेरी रक्षा की है, अतः बताइए, इस उपकार के बदले मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

अर्जुन उवाच

**कृतमेव त्वया सर्वं स्वस्ति गच्छ महासुर।**
**प्रीतिमान् भव मे नित्यं प्रीतिमन्तो वयं च ते ॥३॥**

**अर्जुन ने कहा**—असुरराज! तुमने इस प्रकार कृतज्ञता प्रकट करके मेरे उपकार का सारा बदला चुका दिया। तुम्हारा मङ्गल हो। अब तुम जाओ। मुझपर प्रेम बनाये रखना। हम भी तुम्हारे प्रति सदा प्रेमभाव रखेंगे।

मय उवाच

**युक्तमेतत् त्वयि विभो यथाऽऽत्थ पुरुषर्षभ।**
**प्रीतिपूर्वमहं किंचित् कर्तुमिच्छामि भारत ॥४॥**

**मयासुर बोला**—प्रभो! पुरुषोत्तम! आपने जो बात कही है, वह आप-जैसे महापुरुष के अनुरूप ही है। परन्तु भारत! मैं बड़े प्रेम से आपके लिए कुछ करना चाहता हूँ।

**अहं हि विश्वकर्मा वै दानवानां महाकविः।**
**सोऽहं वै त्वत्कृते कर्तुं किञ्चिदिच्छामि पाण्डव ॥५॥**

पाण्डुनन्दन! मैं दानवों का विश्वकर्मा और शिल्पविद्या का महान् पण्डित हूँ, अतः मैं आपके लिए किसी वस्तु का निर्माण करना चाहता हूँ।

अर्जुन उवाच

**प्राणकृच्छ्राद् विमुक्तं त्वमात्मानं मन्यसे मया।**
**एवं गते न शक्ष्यामि किञ्चित् कारयितुं त्वया ॥६॥**

**अर्जुन बोले**—मयासुर! तुम मेरे द्वारा अपने को प्राणसंकट से मुक्त हुआ मानते हो और इसलिए कुछ करना चाहते हो। ऐसी अवस्था में मैं तुमसे कोई काम न करा सकूँगा।

**न चापि तव संकल्पं मोघमिच्छामि दानव।**
**कृष्णस्य क्रियतां किंचित् तथा प्रतिकृतं मयि ॥७॥**

दानव! मैं यह भी नहीं चाहता कि तुम्हारा यह संकल्प व्यर्थ हो, अतः तुम श्रीकृष्ण के लिए कोई कार्य कर दो, इससे मेरे प्रति तुम्हारा कर्तव्य पूर्ण हो जाएगा।

वैशम्पायन उवाच

**प्रेरितो वासुदेवस्तु मयेन भरतर्षभ।**
**मुहूर्तमिव संदध्यौ किमयं प्रेर्यतामिति ॥८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे भरतश्रेष्ठ! तब मयासुर ने श्रीकृष्ण से कोई काम बताने का अनुरोध किया। उसकी प्रेरणा पर श्रीकृष्ण ने थोड़ी देर विचार किया कि 'इसे कौन-सा कार्य बताया जाए!'

**ततो विचिन्त्य मनसा कृष्णस्तमभिप्रैरयत् ।**
**धर्मराजस्य दैतेय सभा वै क्रियतामिति ।।९।।**

तत्पश्चात् मन-ही-मन कुछ सोचकर श्रीकृष्ण ने उससे कहा—"दैत्यराज ! तुम धर्मराज युधिष्ठिर के लिए एक सभा-भवन बना दो ।

**यां कृतां नानुकुर्वन्ति मानवाः प्रेक्ष्य विस्मिताः ।**
**मनुष्यलोके सकले तादृशीं कुरु वै सभाम् ।।१०।।**

"वह सभा ऐसी हो जिसके बन जाने पर समस्त मनुष्यलोक के मानव देखकर आश्चर्यचकित हो जाएँ तथा कोई उसकी अनुकृति (नकल) न कर सके ।"

**प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं सम्प्रहृष्टो मयस्तदा ।**
**विमानप्रतिमां चक्रे पाण्डवस्य शुभां सभाम् ।।११।।**

श्रीकृष्णजी की उस आज्ञा को शिरोधार्य करके मयासुर बहुत प्रसन्न हुआ । तब उसने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के लिए विमान-जैसे आकारवाला सुन्दर सभा-भवन बनाने का निश्चय किया ।

**ततः कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजे युधिष्ठिरे ।**
**सर्वमेतत् समावेद्य दर्शयामासतुर्मयम् ।।१२।।**

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण और अर्जुन ने धर्मराज युधिष्ठिर को ये सब बातें बताकर मयासुर को उनसे मिलाया ।

**तस्मै युधिष्ठिरः पूजां यथाहमकरोत् तदा ।**
**स तु तां प्रतिजग्राह मयः सत्कृत्य भारत ।।१३।।**

हे भारत ! उस समय कुरु-राज युधिष्ठिर ने मयासुर का यथोचित सत्कार किया । मयासुर ने भी बड़े आदर के साथ उनका वह सत्कार ग्रहण किया ।

**स कालं कञ्चिदाश्वस्य विश्वकर्मा विचिन्त्य तु ।**
**सभां प्रचक्रमे कर्तुं पाण्डवानां महात्मनाम् ।।१४।।**

कुछ समय तक वहाँ सुखपूर्वक रहकर दैत्यों के विश्वकर्मा मयासुर ने सोच-विचारकर महात्मा पाण्डवों के लिए सभा-भवन बनाने की तैयारी की ।

**सर्वर्तुगुणसम्पन्नां दिव्यरूपां मनोरमाम् ।**
**दशकिष्कुसहस्रां तां मापयामास सर्वतः ।।१५।।**

उसने सभा-भवन बनाने के लिए सभी ऋतुओं के गुणों से सम्पन्न दिव्यरूपवाली, मनोरम, सब ओर से दस सहस्र हाथ की [दस सहस्रहस्त वर्गाकार] भूमि नपवाई ।

**उषित्वा खाण्डवप्रस्थे सुखवासं जनार्दनः ।**
**गमनाय मतिं चक्रे पितुर्दर्शनलालसः ।।१६।।**

श्रीकृष्ण ने कुछ समय तक सुखपूर्वक खाण्डव-प्रस्थ में रहकर पिता के दर्शन की उत्सुकता से द्वारका जाने का विचार किया ।

**धर्मराजमथामन्त्र्य भ्रातॄन् पृथां च केशवः ।**
**स्वां पुरीं प्रययौ हृष्टो यथा शक्रोऽमरावतीम् ।।१७।।**

तब श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिर, सभी भाइयों और कुन्ती की आज्ञा लेकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी पुरी द्वारका को गये मानो इन्द्र अमरावती को जा रहे हों ।

**अथाब्रवीन्मयः पार्थमर्जुनं जयतां वरम् ।**
**आपृच्छे त्वां गमिष्यामि पुनरेष्यामि चाप्यहम् ।।१८**

श्रीकृष्ण के चले जाने पर मयासुर ने विजयी वीरों में श्रेष्ठ अर्जुन से कहा—"भारत ! मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ । मैं एक स्थान पर जाऊँगा और फिर शीघ्र ही लौट आऊँगा ।

**उत्तरेण तु कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति ।**
**यियक्षमाणेषु पुरा दानवेषु मया कृतम् ।।१९।।**
**चित्रं मणिमयं भाण्डं रम्यं बिन्दुसरः प्रति ।**
**सभायां सत्यसन्धस्य यदासीद् वृषपर्वणः ।।२०।।**

"पूर्व समय में जब दैत्य लोग कैलास पर्वत से उत्तर दिशा में स्थित मैनाक पर्वत पर यज्ञ करना चाहते थे, उस समय मैंने एक विचित्र एवं रमणीय मणिमय भाण्ड तैयार किया था, जो बिन्दुसर के निकट सत्यप्रतिज्ञ राजा वृषपर्वा की सभा में रखा गया था ।

**आगमिष्यामि तद् गृह्य यदि तिष्ठति भारत ।**
**ततः सभां करिष्यामि पाण्डवस्य यशस्विनीम् ।।२१।।**

"हे भारत ! यदि वह मणिमय भाण्ड अबतक वहीं होगा तो मैं उसे लेकर पुनः लौट आऊँगा । फिर उसी से पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर के यश को बढ़ानेवाली सभा तैयार करूँगा ।

**अस्ति बिन्दुसरस्युग्रा गदा च कुरुनन्दन ।**
**अनुरूपा च भीमस्य गाण्डीवं भवतो यथा ।।२२।।**

"कुरुनन्दन ! बिन्दुसर में एक गदा भी है । जैसे गाण्डीव धनुष आपके योग्य है, वैसे ही वह गदा भीमसेन के योग्य होगी ।

**वारुणश्च महाशंखो देवदत्तः सुघोषवान् ।**
**सर्वमेतत् प्रदास्यामि भवते नात्र संशयः ॥२३॥**

"वहाँ वरुणदेव का देवदत्त नामक महान् शंख भी है जो बड़ी भारी आवाज करनेवाला है। मैं ये सब वस्तुएँ लाकर आपको भेंट करूँगा, इसमें संशय नहीं।"

**इत्युक्त्वा सोऽसुरः पार्थं प्रागुदीचीं दिशं गतः ।**
**अथोत्तरेण कैलासान्मैनाकं पर्वतं प्रति ॥२४॥**

अर्जुन से ऐसा कहकर मयासुर पूर्वोत्तर दिशा [ईशानकोण] में कैलास से उत्तर मैनाक पर्वत के पास गया।

**तत्र गत्वा स जग्राह गदां शंखं च भारत ।**
**स्फाटिकं च सभाद्रव्यं यदासीद् वृषपर्वणः ॥२५**

हे भारत ! मयासुर ने वहाँ जाकर वह गदा, शंख और सभा बनाने के लिए स्फटिक मणिमय द्रव्य ले लिया जो पहले वृषपर्वा के अधिकार में था।

**तदाहृत्य च तां चक्रे सोऽसुरोऽप्रतिमां सभाम् ।**
**विश्रुतां त्रिषु लोकेषु दिव्यां मणिमयीं शुभाम् ॥२६॥**

वे सब वस्तुएँ लाकर उस असुर ने वह अनुपम सभा तैयार की जो तीनों लोकों में विख्यात, दिव्य, मणिमयी, शुभ और सुन्दर थी।

**गदां च भीमसेनाय प्रवरां प्रददौ तदा ।**
**देवदत्तं चार्जुनाय शंखप्रवरमुत्तमम् ॥२७॥**

उसने वह श्रेष्ठ गदा भीमसेन के लिए और देवदत्त नामक उत्तम शंख अर्जुन को भेंट कर दिया।

**सभा च सा महाराज शातकुम्भमयद्रुमा ।**
**अभिघ्नतीव प्रभया प्रभामर्कस्य भास्वराम् ॥२८॥**

महाराज ! उस सभा में सुवर्णमय वृक्ष शोभा पाते थे। वह सभा अपनी प्रभा द्वारा सूर्य की तेजोमयी प्रभा से टक्कर लेती थी।

**तां स्म तत्र मयेनोक्ता रक्षन्ति च वहन्ति च ।**
**सभामष्टौ सहस्राणि किंकरा नाम राक्षसाः ॥२९॥**

मयासुर की आज्ञा के अनुसार आठ सहस्र किंकर नामक राक्षस उस सभा की रक्षा करते थे और उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर उठाकर ले जाते थे।[1]

**तस्यां सभायां नलिनीं चकाराप्रतिमां मयः ।**
**वैडूर्यपत्रविततां मणिनालमयाम्बुजाम् ॥३०॥**

मयासुर ने उस सभा-भवन में एक अति सुन्दर पुष्करिणी बना रखी थी, जिसकी कहीं तुलना नहीं थी। उसमें इन्द्रनीलमणिमय कमल के पत्ते फैले हुए थे। उन कमलों के मृणाल मणियों के बने थे।

**मणिरत्नचितां तां तु केचिदभ्येत्य पार्थिवाः ।**
**दृष्ट्वापि नाभ्यजानन्त तेऽज्ञानात्प्रपतन्त्युत ॥३१॥**

मणियों तथा रत्नों से व्याप्त होने के कारण कुछ राजा लोग उस पुष्करिणी के पास आकर और उसे देखकर भी उसकी यथार्थता पर विश्वास नहीं करते थे तथा भ्रम से उसे स्थल समझकर उसमें गिर पड़ते थे।

**तां सभामभितो नित्यं पुष्पवन्तो महाद्रुमाः ।**
**आसन् नानाविधा लोलाः शीतच्छाया मनोरमाः ॥३२**

उस सभा के चहुँ ओर अनेक प्रकार के बड़े-बड़े वृक्ष लहलहा रहे थे, जो सदा फूलों से लदे रहते थे। उनकी छाया बड़ी शीतल थी। वे मनोरम वृक्ष हवा के झोंकों से सदा हिलते रहते थे।

**ईदृशीं तां सभां कृत्वा मासैः परिचतुर्दशैः ।**
**निष्ठितां धर्मराजाय मयो राजन् न्यवेदयत् ॥३३॥**

हे राजन् ! मयासुर ने पूरे चौदह मास में इस अद्भुत सभा का निर्माण किया था। जब वह बनकर तैयार हो गई, तब मय ने धर्मराज को इस बात की सूचना दी।

**ततः प्रवेशनं तस्यां चक्रे राजा युधिष्ठिरः ।**
**अयुतं भोजयित्वा तु ब्राह्मणानां नराधिपः ॥३४॥**

सभा निर्मित हो जाने पर राजा युधिष्ठिर ने दश सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराकर उस सभा-भवन में प्रवेश किया।

**इति महाभारते सभापर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥१॥**

---

१. महाराज युधिष्ठिर की यह सभा एक स्थान से दूसरे स्थान पर उठाकर ले जायी जानेवाली [Transportable] थी। वेद में भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर उठाकर ले जानेवाले गृहों का वर्णन है—

**मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव ।** —अथर्व०
**वधूमिव त्वा शाले यत्र कामं भरामसि ॥** ९।३।२४

हे शिल्पी लोगो ! ऐसी शाला का निर्माण करो जिसके बन्धन कभी ढीले न हों। जिसमें गुरु भार भी हल्का हो जाए अथवा जिसका अधिक भार भी हल्का हो जाए। नववधू की भाँति हम इस शाला को जहाँ चाहें, वहाँ ले जाएँ।

# द्वितीयोऽध्यायः

## नारद-नीति=नारदजी का प्रश्नों के रूप में युधिष्ठिर को उपदेश

वैशम्पायन उवाच

**अथ तत्रोपविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।**
**महत्सु चोपविष्टेषु गन्धर्वेषु च भारत ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! एक दिन उस सभा में महात्मा पाण्डव अन्यान्य महापुरुषों तथा गन्धर्वों आदि के साथ बैठे थे ।

**वेदोपनिषदां वेत्ता महातेजस्विनारदः ।**
**लोकाननुचरन् सर्वानागमत् तां सभां नृप ॥२॥**

राजन् ! उसी समय वेद और उपनिषदों के ज्ञाता, महातेजस्वी नारद लोक-लोकान्तरों में घूमते-फिरते उस सभा में आये ।

**तमागतमृषिं दृष्ट्वा प्रत्युत्थायानुजैः सह ।**
**अभ्यवादयत प्रीत्या विनयावनतस्तदा ॥३॥**

देवर्षि नारद को आया देख राजा युधिष्ठिर ने भाइयों समेत उठकर उन्हें प्रेम, विनय और नम्रता-पूर्वक प्रणाम किया ।

**सोऽर्चितः पाण्डवैः सर्वैर्महर्षिर्वेदपारगः ।**
**धर्मकामार्थसंयुक्तं पप्रच्छेदं युधिष्ठिरम् ॥४॥**

पाण्डवों द्वारा सत्कृत होकर उन वेदवेत्ता महर्षि ने युधिष्ठिर से धर्म, काम और अर्थ तीनों की साधक ये बातें पूछीं—

नारद उवाच

**कच्चिदर्थाश्च कल्पन्ते धर्मे च रमते मनः ।**
**सुखानि चानुभूयन्ते मनश्च न विहन्यते ॥५॥**

**नारदजी बोले**—हे राजन् ! क्या तुम्हारा धन तुम्हारे [यज्ञ-दान-कुटुम्ब-रक्षा आदि] आवश्यक कार्यों के निर्वाहार्थ पूरा पड़ जाता है ? क्या धर्म में तुम्हारा मन प्रसन्नतापूर्वक लगता है ? क्या तुम्हें इच्छानुसार सुख-भोग प्राप्त होते हैं ? प्रभु-चिन्तन में लगे हुए तुम्हारे मन में विक्षेप तो नहीं होता है ?

**कच्चिदाचरितां पूर्वैर्नरदेव पितामहैः ।**
**वर्तसे वृत्तिमक्षुद्रां धर्मार्थसहितां त्रिषु ॥६॥**

हे नरदेव ! क्या तुम ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र—इन तीनों वर्णों की प्रजा के प्रति अपने पिता-पितामहों द्वारा व्यवहार में लाई हुई धर्मार्थ-युक्त उत्तम एवं उदार वृत्ति का व्यवहार करते हो ?

**कच्चिदर्थेन वा धर्मं धर्मेणार्थमथापि वा ।**
**उभौ वा प्रीतिसारेण न कामेन प्रबाधसे ॥७॥**

तुम धन के लोभ में पड़कर धर्म को, केवल धर्म में ही लगे रहकर धन को अथवा आसक्ति ही जिसका बल है, उस कामभोग के सेवन द्वारा धर्म और अर्थ दोनों को हानि तो नहीं पहुँचाते ?

**कच्चिदर्थं च धर्मं च कामं च जयतां वर ।**
**विभज्य काले कालज्ञः सदा वरद सेवसे ॥८॥**

विजयी वीरों में श्रेष्ठ ! वरदायक नरेश ! तुम त्रिवर्ग-सेवन के उपयुक्त समय का ज्ञान तो रखते हो न ? तथा काल का विभाग करके नियत और उचित समय[1] पर सदा धर्म, अर्थ और काम का सेवन तो करते हो न ?

**कच्चिद् राजगुणैः षड्भिः सप्तोपायाँस्तथाऽनघ ।**
**बलाबलं तथा सम्यक् चतुर्दश परीक्षसे ॥९॥**

निष्पाप युधिष्ठिर ! क्या तुम राजोचित छह[2] गुणों के द्वारा सात उपायों[3] की, अपने और शत्रु के

---

१. स्मृतियों के अनुसार त्रिवर्ग-सेवन का समय-विभाग इस प्रकार बताया गया है—
**पूर्वाह्णे त्वाचरेद्धर्मं मध्याह्नेऽर्थमुपार्जयेत् ।**
**सायाह्ने चाचरेत्कामरित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥**
पूर्वाह्णकाल में धर्म का आचरण करे, मध्याह्न के समय धनोपार्जन का काम देखे तथा सायाह्न=रात्रि के समय काम का सेवन करे । यह वैदिक श्रुति का आदेश है ।

२. राजाओं में छह गुण होने चाहिएँ—(१) व्याख्यान-शक्ति, (२) प्रगल्भता, (३) तर्ककुशलता, (४) भूत-काल की स्मृति, (५) भविष्य पर दृष्टि और (६) नीतिनिपुणता ।

३. सात उपाय ये हैं—मन्त्र, औषध, इन्द्रजाल, साम, दाम, दण्ड और भेद ।

बलाबल की तथा देशपाल एवं दुर्गपाल[1] आदि चौदह व्यक्तियों की भली-भाँति परख करते रहते हो ?

**कच्चिदात्मानमन्वीक्ष्य परांश्च जयतां वर ।**
**तथा संधाय कर्माणि अष्टौ भारत सेवसे ॥१०॥**

विजेताओं में श्रेष्ठ भरतवंशी युधिष्ठिर ! क्या तुम अपनी और शत्रु की शक्ति को अच्छी प्रकार समझकर, यदि शत्रु प्रबल हो तो उसके साथ सन्धि बनाये रखकर अपने धन और कोष की वृद्धि के लिए आठ कर्मों[2] का सेवन करते हो ?

**कच्चित् प्रकृतयः सप्त न लुप्ता भरतर्षभ ।**
**आढ्यास्तथाव्यसनिनः स्वनुरक्ताश्च सर्वशः ॥११॥**

भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारी मन्त्री आदि सात[3] प्रकृतियाँ कहीं शत्रुओं में मिल तो नहीं गई हैं ? तुम्हारे राज्य के धनिक बुरे व्यसनों से बचे रहकर तुमसे प्रेम तो करते हैं न ?

**कच्चिन्न कृतकैर्दूतैर्ये चाप्यपरिशङ्किताः ।**
**त्वत्तो वा तव चामात्यैर्भिद्यते मन्त्रितं तथा ॥१२॥**

जिनपर तुम्हें सन्देह नहीं होता, ऐसे शत्रु के गुप्तचर कृत्रिम मित्र बनकर तुम्हारे मन्त्रियों द्वारा तुम्हारी गुप्त मन्त्रणा को जानकर उसे प्रकाशित तो नहीं कर देते ?

**कच्चिदात्मसमा वृद्धाः शुद्धाः सम्बोधनक्षमाः ।**
**कुलीनाश्चानुरक्ताश्च कृतास्ते वीर मन्त्रिणः ॥१३॥**

वीर ! तुमने अपने स्वयं के समान विश्वसनीय, वृद्ध, शुद्ध हृदयवाले, किसी भी बात को अच्छी प्रकार समझने में समर्थ, उत्तम कुल में उत्पन्न तथा अपने प्रति अत्यन्त अनुराग रखनेवाले पुरुषों को ही मन्त्री बना रखा है न ?

**कच्चिन्निद्रावशं नैषि कच्चित् काले विबुद्ध्यसे ।**
**कच्चिच्चापररात्रेषु चिन्तयस्यर्थमर्थवित् ॥१४॥**

तुम असमय में ही निद्रा के वशीभूत तो नहीं होते, समय पर जाग तो जाते हो न ? अर्थशास्त्र के जानकार तो तुम हो ही। रात्रि के पिछले भाग में जागकर अपने अर्थ [आवश्यक कर्तव्य एवं हित] के विषय में विचार तो करते हो न ?[4]

**कच्चिन्मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सह ।**
**कच्चित्ते मन्त्रितो मन्त्रो न राष्ट्रं परिधावति ॥१५॥**

तुम किसी गूढ़ विषय पर अकेले ही तो विचार नहीं करते अथवा बहुत लोगों के साथ बैठकर तो मन्त्रणा नहीं करते ? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारी निश्चित की हुई गुप्त मन्त्रणा फूटकर शत्रु के राज्य तक फैल जाती हो ?

**कच्चिदर्थान् विनिश्चित्य लघुमूलान् महोदयान् ।**
**क्षिप्रमारभसे कर्तुं न विघ्नयसि तादृशान् ॥१६॥**

धन की वृद्धि के ऐसे उपायों का निश्चय करके, जिनमें मूलधन तो कम लगाना पड़े परन्तु वृद्धि अधिक हो, उनको शीघ्रतापूर्वक आरम्भ कर देते हो न ? वैसे कार्यों में अथवा वैसा कार्य करनेवालों के मार्ग

---

१. परीक्षा के योग्य चौदह स्थान या व्यक्ति नीतिशास्त्र में ये बताये गये हैं—

**देशो दुर्गं रथो हस्तिवाजियोधाधिकारिणः ।**
**अन्तःपुरान्नगणनाशास्त्रलेख्यधनासवः ॥**

देश, दुर्ग, रथ, हाथी, घोड़े, शूर सैनिक, अधिकारी, अन्तःपुर, अन्न, गणना, शास्त्र, लेख्य, धन और असु= बल—इनके जो चौदह अधिकारी हैं, राजा को उनकी परीक्षा करते रहना चाहिए।

२. राजा के कोष और धन की वृद्धि के लिए आठ कर्म ये हैं—

**कृषिर्वणिक्पथो दुर्गं सेतुः कुञ्जरबन्धनम् ।**
**खन्याकरकरादानं शून्यानां च निवेशनम् ।**
**अष्ट सन्धानकर्माणि प्रयुक्तानि मनीषिभिः ॥**

खेती का विस्तार, व्यापार की रक्षा, दुर्ग की रचना एवं रक्षा, पुलों का निर्माण और उनकी रक्षा, हाथी बाँधना, सोने-हीरे आदि की खानों पर अधिकार करना, करों की वसूली और उजाड़ प्रान्तों में लोगों को बसाना—मनीषी लोगों द्वारा ये आठ सन्धानकर्म बताये गये हैं।

३. स्वामी, मन्त्री, मित्र, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना तथा पुरवासी—ये राज्य के सात अङ्ग ही सात प्रकृतियाँ हैं। अथवा—दुर्गाध्यक्ष, बलाध्यक्ष, धर्माध्यक्ष, सेनापति, पुरोहित, वैद्य और ज्योतिषी—ये भी सात प्रकृतियाँ कही गई हैं।

४. स्मृति में कहा है—

**ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेदात्मनो हितम् ।**

नित्य ब्राह्ममुहूर्त में उठकर अपने हित का चिन्तन करे।

में तुम विघ्न तो नहीं डालते ?

**कच्चित्सर्वे न कर्मान्ताः परोक्षास्ते विशङ्किताः ।**
**सर्वे वा पुनरुत्सृष्टाः संसृष्टं चात्र कारणम् ॥१७॥**

तुम्हारे राज्य के किसान,[1] मजदूर आदि श्रमजीवी मनुष्य तुमसे अज्ञात तो नहीं हैं ? उनके कार्य और गतिविधि पर तुम्हारी दृष्टि रहती है न ? वे तुम्हारे अविश्वास के पात्र तो नहीं हैं अथवा तुम उन्हें बार-बार छोड़ते और पुनः काम पर तो नहीं लेते रहते, क्योंकि महान् उत्थान में उन सबका स्नेहपूर्ण सहयोग ही कारण है ।

**कच्चिद् राजन् कृतान्येव कृतप्रायाणि वा पुनः ।**
**विदुस्ते वीर कर्माणि नानवाप्तानि कानिचित् ॥१८॥**

राजन् ! वीरशिरोमणे ! क्या तुम्हारे कार्यों के सिद्ध हो जाने पर या सिद्धि के निकट पहुँच जाने पर ही लोग उन्हें जान पाते हैं ? सिद्ध होने से पूर्व ही तुम्हारे किन्हीं कार्यों को लोग जान तो नहीं लेते ?

**कच्चित् कारणिका धर्मे सर्वशास्त्रेषु कोविदाः ।**
**कारयन्ति कुमारांश्च योधमुख्यांश्च सर्वशः ॥१९॥**

तुम्हारे यहाँ जो शिक्षा देने का काम करते हैं, वे धर्म एवं सम्पूर्ण शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् होकर ही राजकुमारों तथा मुख्य-मुख्य योद्धाओं को सब प्रकार की आवश्यक शिक्षाएँ देते हैं न ?

**कच्चित् सहस्रैर्मूर्खाणामेकं क्रीणासि पण्डितम् ।**
**पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रेयसं परम् ॥२०॥**

तुम सहस्रों मूर्खों के बदले एक पण्डित को ही अपनाते [आदरपूर्वक स्वीकार करते] हो न, क्योंकि विद्वान् पुरुष ही अर्थ-संकट के समय महान् कल्याण कर सकता है ।

**एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दान्तो विचक्षणः ।**
**राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम् ॥२१॥**

यदि एक भी मन्त्री मेधावी, शौर्यसम्पन्न, संयमी और चतुर हो तो राजा अथवा राजकुमार को महान् ऐश्वर्य प्राप्त करा सकता है ?

**कच्चिद् दुर्गाणि सर्वाणि धनधान्यायुधोदकैः ।**
**यन्त्रैश्च परिपूर्णानि तथा शिल्पिधनुर्धरैः ॥२२॥**

क्या तुम्हारे सभी दुर्ग=किले धन-धान्य, अस्त्र-शस्त्र, जल, यन्त्र=मशीन, शिल्पियों और धनुर्धर सैनिकों से भरे और पूरे रहते हैं ?

**कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पञ्च च ।**
**त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः ॥२३॥**

क्या तुम शत्रुपक्ष के अठारह[2] तथा अपने पक्ष के पन्द्रह[3] तीर्थों की तीन-तीन अज्ञात गुप्तचरों द्वारा देख-भाल या जाँच-पड़ताल करते रहते हो ?

**कच्चिद् द्विषामविदितः प्रतिपन्नश्च सर्वदा ।**
**नित्ययुक्तो रिपून् सर्वान् वीक्षसे रिपुसूदन ॥२४॥**

शत्रुसूदन ! तुम अपने शत्रुओं से अज्ञात, निरन्तर सावधान और सदा प्रयत्नशील रहकर अपने सम्पूर्ण शत्रुओं की गतिविधियों पर दृष्टि तो रखते हो न ?

**कच्चिद् विनयसम्पन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः ।**
**अनसूयुरनुप्रष्टा सत्कृतस्ते पुरोहितः ॥२५॥**

क्या तुम्हारे पुरोहित विनयशील, कुलीन, बहुज्ञ, विद्वान्, दोषदृष्टि से रहित तथा शास्त्रचर्चा में कुशल हैं ? क्या तुम उनका ठीक प्रकार से सत्कार करते हो ?

**कच्चिदग्निषु ते युक्तो विधिज्ञो मतिमानृजुः ।**
**हुतं च होष्यमाणं च काले वेदयते सदा ॥२६॥**

क्या तुमने अग्निहोत्र के लिए विधिज्ञ, बुद्धिमान् और सरलस्वभाव के ब्राह्मणों को नियुक्त किया है ? वे सदा किये हुए और किये जानेवाले हवन को तुम्हें ठीक समय पर सूचित कर देते हैं न ?

**कच्चिन्मुख्या महत्स्वेव मध्यमेषु च मध्यमाः ।**
**जघन्याश्च जघन्येषु भृत्याः कर्मसु योजिताः ॥२७॥**

---

१. महर्षि दयानन्द सरस्वती ने किसानों के सम्बन्ध में लिखा है—"यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा परिश्रम करनेवाले किसान आदि हैं ।"
—सत्यार्थप्रकाश, षष्ठ समुल्लास

२. शत्रुपक्ष के मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल अन्तर्वेशिक=अन्तःपुर का अध्यक्ष, कारागाराध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, यथायोग्य कार्यों में धन को व्यय करनेवाला सचिव, प्रदेष्टा=पहरेदारों को काम बतानेवाला, नगराध्यक्ष=कोतवाल, कार्यनिर्माणकर्ता=शिल्पियों का परिचालक, धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्ग-पाल, राष्ट्र-सीमापाल तथा वनरक्षक—ये अठारह तीर्थ हैं जिनपर राजा को गहरी दृष्टि रखनी चाहिए ।

३. उपर्युक्त अठारह तीर्थों में से आदि के तीन को छोड़कर शेष पन्द्रह तीर्थ अपने पक्ष के भी सदा परीक्षणीय हैं ।

तुमने अपने प्रधान-प्रधान व्यक्तियों को उनके योग्य महान् कार्यों में, मध्यम श्रेणी के कार्यकर्ताओं को मध्यम कार्यों में तथा निम्न श्रेणी के सेवकों को उनकी योग्यता के अनुसार छोटे कामों में ही लगा रखा है न ?

**कच्चिन्नोग्रेण दण्डेन भृशमुद्विजसे प्रजाः ।**
**राष्ट्रं तवानुशासन्ति मन्त्रिणो भरतर्षभ ।।२८।।**

भरतश्रेष्ठ ! कठोर दण्ड के द्वारा तुम प्रजाजनों को अत्यन्त पीड़ित तो नहीं करते ? मन्त्री लोग तुम्हारे राज्य का न्यायपूर्वक पालन करते हैं न ?

**कच्चित् त्वां नावजानन्ति याजकाः पतितं यथा ।**
**उग्रं प्रतिग्रहीतारं कामयानमिव स्त्रियः ।।२९।।**

जैसे पवित्र याजक पतित यजमान का तथा स्त्रियाँ कामचारी पुरुष का तिरस्कार कर देती हैं, उसी प्रकार प्रजा कठोरतापूर्वक अधिक कर लेने के कारण तुम्हारा अनादर तो नहीं करती ?

**कच्चिद्धृष्टश्च शूरश्च मतिमान्धृतिमान् शुचिः ।**
**कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिस्तव ।।३०।।**

क्या तुम्हारा सेनापति हर्ष और उत्साह से सम्पन्न, शूरवीर, बुद्धिमान् धैर्यवान्, पवित्र, कुलीन, स्वामिभक्त तथा अपने कार्य में कुशल है ?

**कच्चिद् बलस्य ते मुख्याः सर्वयुद्धविशारदाः ।**
**धृष्टावदाता विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः ।।३१**

तुम्हारी सेना के मुख्य-मुख्य दलपति सब प्रकार के युद्धों में चतुर, धृष्ट=निर्भय, निष्कपट और पराक्रमी हैं न ? तुम उनका यथोचित आदर-सत्कार करते हो न ?

**कच्चिद् बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम् ।**
**सम्प्राप्तकाले दातव्यं ददासि न विकर्षसि ।।३२।।**

तुम अपनी सेना के लिए यथोचित भोजन और वेतन ठीक समय[1] पर देते हो न ? जो उन्हें दिया जाना चाहिए, उसमें कमी या विलम्ब तो नहीं करते हो ?

**कालातिक्रमणादेते भक्तवेतनयोर्भृताः ।**
**भर्तुः कुप्यन्ति यद्भृत्याः सोऽनर्थः सुमहान्स्मृतः ।।३३।।**

भोजन और वेतन में अधिक विलम्ब होने पर भृत्यगण अपने स्वामी पर कुपित हो जाते हैं। उनका वह कोप महान् अनर्थ का कारण बताया गया है।

**कच्चित् सर्वेऽनुरक्तास्त्वां कुलपुत्राः प्रधानतः ।**
**कच्चित् प्राणाँस्तवार्थेषु संत्यजन्ति सदा युधि ।।३४।।**

क्या उत्तम कुल में उत्पन्न मन्त्री आदि सभी प्रधान अधिकारी तुमसे प्रेम रखते हैं ? क्या वे युद्ध में तुम्हारे हित के लिए अपने प्राणों तक का त्याग करने के लिए सदा उद्यत रहते हैं ?

**कच्चिन्नैको बहूनर्थान् सर्वशः साम्परायिकान् ।**
**अनुशास्ति यथाकामं कामात्मा शासनातिगः ।।३५।।**

तुम्हारे कर्मचारियों में कोई ऐसा तो नहीं है जो अपनी इच्छा के अनुसार चलनेवाला और तुम्हारे शासन का उल्लंघन करनेवाला हो तथा युद्ध के सारे साधनों और कार्यों को अकेला ही अपनी रुचि के अनुसार चला रहा हो ?

**कच्चित् पुरुषकारेण पुरुषः कर्म शोभयन् ।**
**लभते मानमधिकं भूयो वा भक्तवेतनम् ।।३६।।**

तुम्हारे यहाँ काम करनेवाला कोई पुरुष जब अपने पुरुषार्थ से किसी कार्य को उत्तम प्रकार से सम्पन्न करता है, तब वह आपसे अधिक सम्मान अथवा अधिक भत्ता और वेतन पाता है न ?

**कच्चिद् विद्याविनीताँश्च नराञ्ज्ञानविशारदान् ।**
**यथार्हं गुणतश्चैव दानेनाभ्युपपद्यसे ।।३७।।**

क्या तुम विद्या से विनयशील और ज्ञान-निपुण मनुष्यों को उनके गुणों के अनुसार यथायोग्य धन-आदि देकर उनका मान-सम्मान करते हो ?

**कच्चिद् दारान्मनुष्याणां तवार्थे मृत्युमीयुषाम् ।**
**व्यसनं चाभ्युपेतानां बिभर्षि भरतर्षभ ।।३८।।**

हे भरतश्रेष्ठ ! जो लोग तुम्हारे हित के लिए सहर्ष मृत्यु का आलिंगन करते हैं, अथवा भारी संकट

---

१. किसी नीतिकार ने कहा है—

**कालातिक्रमणं वृत्त्योर्न कुर्वीत भूपतिः ।**
**कदाचित्तं न मुञ्चन्ति भर्त्सिता अपि सेवकाः ।।**

जो राजा अपने सेवकों का वेतन देने में समय का उल्लंघन नहीं करता, उस राजा के भर्त्सना करने पर भी वे अपने राजा को नहीं छोड़ते।

में पड़ जाते हैं, तुम उनके बाल-बच्चों के योग-क्षेम की चिन्ता तो करते हो न ?

**कच्चिद् भयादुपगतं क्षीणं वा रिपुमागतम् ।**
**युद्धे वा विजितं पार्थ पुत्रवत् परिरक्षसि ॥३९॥**

हे पार्थ ! जो भय से या अपनी धन-सम्पत्ति का नाश होने से तुम्हारी शरण में आया हो अथवा युद्ध में तुमसे हार गया हो, ऐसे शत्रु का तुम पुत्र के समान पालन करते हो न ?

**कच्चित् त्वमेव सर्वस्याः पृथिव्याः पृथिवीपते ।**
**समश्चानभिशङ्क्यश्च यथा माता यथा पिता ॥४०॥**

नरेश्वर ! क्या समस्त भूमण्डल की प्रजा तुम्हें ही समदर्शी एवं माता-पिता के समान विश्वसनीय मानती है ?

**कच्चिच्च बलमुख्येभ्यः परराष्ट्रे परन्तप ।**
**उपच्छन्नानि रत्नानि प्रयच्छसि यथार्हतः ॥४१॥**

शत्रुतापक ! शत्रु के राज्य में जो प्रधान-प्रधान योद्धा हैं, तुम उन्हें छिपे-छिपे यथायोग्य रत्न आदि भेंट करते रहते हो न ?

**कच्चिदात्मानमेवाग्रे विजित्य विजितेन्द्रियः ।**
**परान् जिगीषसे पार्थ प्रमत्तानजितेन्द्रियान् ॥४२॥**

हे कुन्तीनन्दन ! क्या तुम पहले अपनी नेत्रादि इन्द्रियों और मन को जीतकर ही प्रमाद में पड़े हुए अजितेन्द्रिय शत्रुओं को जीतने की इच्छा करते हो ?

**कच्चिन्मूलं दृढं कृत्वा परान् यासि विशाम्पते ।**
**ताँश्च विक्रमसे जेतुं जित्वा च परिरक्षसि ॥४३**

महाराज ! तुम अपने राज्य की नींव को दृढ़ करके ही शत्रुओं पर धावा करते हो न ? उन शत्रुओं को जीतने के लिए पूरा पराक्रम प्रकट करते हो न ? उन्हें जीतकर उनकी पूर्णरूप से रक्षा भी करते हो न ?

**कच्चिदष्टाङ्गसंयुक्ता चतुर्विधबला चमूः ।**
**बलमुख्यैः सुनीता ते द्विषतां प्रतिबाधिनी ॥४४॥**

क्या आठ[1] अङ्गों और चार[2] प्रकार के बलों से युक्त तुम्हारी सेना सुयोग्य सेनापतियों द्वारा अच्छी प्रकार संचालित होकर शत्रुओं का संहार करने में समर्थ होती है ?

**कच्चित् कोषश्च कोष्ठं च वाहनं द्वारमायुधम् ।**
**आयश्च कृतकल्याणैस्तव भक्तैरनुष्ठितः ॥४५॥**

तुम्हारे धन-भण्डार, अन्न-भण्डार, वाहन, प्रधान द्वार, अस्त्र-शस्त्र तथा आय के साधनों की रक्षा एवं देख-भाल तुम्हारे कल्याण के लिए सदा प्रयत्नशील रहनेवाले, स्वामिभक्त मनुष्यों द्वारा ही की जाती है न ?

**कच्चिदायस्य चार्धेन चतुर्भागेन वा पुनः ।**
**पादभागैस्त्रिभिर्वापि व्ययः संशुद्धयते तव ॥४६॥**

क्या तुम्हारी आय के एक-चौथाई या आधे अथवा तीन-चौथाई भाग से तुम्हारा सारा खर्च चल जाता है ?

**कच्चिज्ज्ञातीन् गुरून्वृद्धान्वणिजः शिल्पिनः श्रितान् ।**
**अभीक्ष्णमनुगृह्णासि धनधान्येन दुर्गतान् ॥४७॥**

क्या तुम अपने आश्रित कुटुम्ब के लोगों, गुरुजनों, वृद्धों, व्यापारियों, शिल्पियों तथा दीन-दुःखियों को धन-धान्य देकर उनपर सदा अनुग्रह करते रहते हो ?

**कच्चिन्न लुब्धाश्चौरा वा वैरिणो वा विशाम्पते ।**
**अप्राप्तव्यवहारा वा तव कर्मस्वनुष्ठिताः ॥४८॥**

राजन् ! तुमने ऐसे लोगों को तो अपने कार्यों में नियुक्त नहीं कर रखा है जो लोभी, चोर, शत्रु, अथवा व्यावहारिक अनुभव से सर्वथा शून्य हों ?

**कच्चिन्न चौरैर्लुब्धैर्वा कुमारैः स्त्रीबलेन वा ।**
**त्वया वा पीड्यते राष्ट्रं कच्चित्तुष्टाः कृषीवलाः ॥४९**

चोरों, लोभियों, राजकुमारों अथवा राजकुल की स्त्रियों द्वारा अथवा स्वयं तुम्हारे द्वारा ही तुम्हारे राष्ट्र को पीड़ा तो नहीं पहुँच रही है ? क्या तुम्हारे राज्य के किसान सन्तुष्ट हैं ?

**कच्चिद् राष्ट्रे तडागानि पूर्णानि बृहन्ति च ।**
**भागशो विनिविष्टानि न कृषिर्देवमातृका ॥५०॥**

क्या तुम्हारे राज्य के सभी भागों में जल से परिपूर्ण बड़े-बड़े तालाब बनवाये गये हैं ? केवल वर्षा के पानी के भरोसे ही तो खेती नहीं होती है ?

**कच्चिन्न भवतं बीजं च कर्षकस्यावसीदति ।**
**प्रत्येकं च शतं वृद्ध्या ददास्यृणमनुग्रहम् ॥५१॥**

---

१. धनरक्षक, द्रव्यसंग्राहक, चिकित्सक, गुप्तचर, पाचक, सेवक, लेखक और प्रहरी—ये सेना के आठ अङ्ग हैं।

२. हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल—ये चार सेना के बल हैं।

तुम्हारे राज्य के किसान का अन्न या बीज तो नष्ट नहीं होता ? क्या तुम प्रत्येक किसान पर कृपा करके उसे एक रुपया सैकड़े ब्याज पर ऋण देते हो ?

**कच्चित् स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनैः ।**
**वार्तायां संश्रितस्तात लोकोऽयं सुखमेधते ।।५२।।**

तुम्हारे राष्ट्र में श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा वार्ता=कृषि, गोरक्षा तथा व्यापार का काम तो भली-भाँति किया जाता है न ? क्योंकि वार्ता-वृत्ति पर आश्रित रहनेवाले लोग ही सुखपूर्वक उन्नति करते हैं ।

**कच्चिद् द्वौ प्रथमौ यामौ रात्रेः सुप्त्वा विशाम्पते ।**
**संचिन्तयसि धर्मार्थौ याम उत्थाय पश्चिमे ।।५३।।**

हे राजन् ! क्या तुम रात्रि के [प्रथम प्रहर के पश्चात्] जो प्रथम दो [दूसरे-तीसरे] प्रहर हैं, उन्हीं में सोकर तथा अन्तिम प्रहर में उठकर धर्म एवं अर्थ का चिन्तन करते हो ?

**कच्चिदर्थयसे नित्यं मनुष्यान् समलंकृतः ।**
**उत्थाय काले कालज्ञैः सह पाण्डव मन्त्रिभिः ।।५४।।**

हे पाण्डुनन्दन ! तुम प्रतिदिन समय पर उठकर स्नानादि के पश्चात् वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो देशकाल के ज्ञाता मन्त्रियों के साथ बैठकर [प्रार्थी या दर्शनार्थी] मनुष्यों की इच्छा पूर्ण करते हो न ?

**कच्चिद् रक्ताम्बरधराः खड्गहस्ताः स्वलंकृताः ।**
**उपासते त्वामभितो रक्षणार्थमरिन्दम ।।५५।।**

हे शत्रुदमन ! क्या लाल वर्दी धारण करनेवाले, अलंकारों से समलंकृत योद्धा अपने हाथ में तलवार लेकर तुम्हारी रक्षा के लिए सब ओर उपस्थित रहते हैं ?

**कच्चिच्छारीरमाबाधमौषधैर्नियमेन वा ।**
**मानसं वृद्धसेवाभिः सदा पार्थापकर्षसि ।।५६।।**

हे पार्थ ! क्या तुम ओषधि-सेवन अथवा पथ्य-भोजन आदि नियमों के पालन द्वारा मानसिक सन्ताप को सदा दूर करते रहते हो ?

**कच्चिद् वैद्याश्चिकित्सायामष्टाङ्गायां विशारदाः ।**
**सुहृदश्चानुरक्ताश्च शरीरे ते हिताः सदा ।।५७।।**

तुम्हारे वैद्य अष्टांगचिकित्सा[1] में कुशल, हितैषी, प्रेमी तथा तुम्हारे शरीर को स्वस्थ रखने के प्रयत्न में सदा संलग्न रहनेवाले हैं न ?

**कच्चित् पौरा न सहिता ये च ते राष्ट्रवासिनः ।**
**त्वया सह विरुध्यन्ते परैः क्रीता कथञ्चन ।।५८।।**

तुम्हारे नगर अथवा राष्ट्र के निवासी संगठित होकर तुम्हारे साथ विरोध तो नहीं करते ? शत्रुओं ने उन्हें किसी प्रकार घूस=रिश्वत देकर खरीद तो नहीं लिया है ?

**कच्चित् सर्वेऽनुरक्तास्त्वां भूमिपालाः प्रधानतः ।**
**कच्चित् प्राणाँस्त्वदर्थेषु संत्यजन्ति त्वयाऽऽदृताः ।।५९**

क्या सभी मुख्य-मुख्य भूपाल तुमसे प्रेम करते हैं ? क्या वे तुम्हारे द्वारा मान-सम्मान पाकर तुम्हारे लिए अपने प्राणों की आहुति दे सकते हैं ?

**कच्चित् ते सर्वविद्यासु गुणतोऽर्चा प्रवर्तते ।**
**ब्राह्मणानां च साधूनां तव नैःश्रेयसी शुभा ।**
**दक्षिणास्त्वं ददास्येषां नित्यं स्वर्गापवर्गदाः ।।६०।।**

क्या तुम्हारे मन में सभी विद्याओं के प्रति उनके गुणों के अनुसार आदर का भाव है ? क्या तुम ब्राह्मणों तथा साधु-सन्तों की सेवा-शुश्रूषा करते हो जो तुम्हारे लिए शुभ एवं कल्याणकारिणी है ? इन ब्राह्मणों को तुम सदा दक्षिणा आदि देते रहते हो न, क्योंकि वह स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त करानेवाली है ।

**नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम् ।**
**अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम् ।**
**एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च चिन्तनम् ।।६१।।**
**निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्यापरिरक्षणम् ।**
**मङ्गलाद्यप्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वतः ।।६२।।**
**कच्चित्त्वं वर्जयस्येतान् राजदोषाँश्चतुर्दश ।**
**प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूलाऽपि पार्थिवाः ।।६३।।**

युधिष्ठिर ! तुम नास्तिकता, झूठ, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानियों का सत्सङ्ग न करना, आलस्य, पाँचों इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति, प्रजाकार्यों के सम्बन्ध में अकेले ही विचार करना, अर्थशास्त्र को न जाननेवाले मूर्खों के साथ विचार-विमर्श करना,

1. चिकित्सा में आठ सर्वप्रथम परीक्षणीय अङ्ग ये हैं—नाड़ी, मल, मूत्र, जिह्वा, नेत्र, रूप, शब्द तथा स्पर्श ।

निश्चित कार्यों के आरम्भ करने में विलम्ब या टाल-मटोल, गुप्त मन्त्रणा को सुरक्षित न रखना, माङ्गलिक उत्सव आदि न करना और एक साथ ही सभी शत्रुओं पर आक्रमण कर देना—इन राजसम्बन्धी चौदह दोषों का त्याग तो करते हो न, क्योंकि इन दोषों के कारण दृढमूल राजा भी नष्ट हो जाते हैं।

**कच्चित् ते सफला वेदाः कच्चित् ते सफलं धनम्।**
**कच्चित्ते सफला दाराः कच्चित्ते सफलं श्रुतम् ॥६४॥**

क्या तुम्हारे वेद (वेदाध्ययन) सफल हैं? क्या तुम्हारा धन सफल है? क्या तुम्हारी स्त्री सफल है और क्या तुम्हारा शास्त्र-ज्ञान सफल है?

युधिष्ठिर उवाच

**कथं वै सफला वेदाः कथं वै सफलं धनम्?**
**कथं वै सफला दाराः कथं वै सफलं श्रुतम् ॥६५॥**

**युधिष्ठिर ने पूछा**—देवर्षे! वेद कैसे सफल होते हैं? धन की सफलता कैसे होती है? स्त्री की सफलता कैसे मानी गई है और शास्त्रज्ञान कैसे सफल होता है?

नारद उवाच

**अग्निहोत्रफला वेदा दत्तभुक्तफलं धनम्।**
**रतिपुत्रफला दाराः शीलवृत्तफलं श्रुतम् ॥६६॥**

**नारदजी ने कहा**—राजन्! वेदों की सफलता अग्निहोत्र से होती है। दान और भोग से धन सफल होता है। स्त्री का फल है रति और पुत्र की प्राप्ति तथा शास्त्र-ज्ञान का फल है—शील और सदाचार।

वैशम्पायन उवाच

**एतदाख्याय स मुनिर्नारदो वै महातपाः।**
**पप्रच्छानन्तरमिदं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥६७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन्! यह कहकर महातपस्वी नारद मुनि ने धर्मात्मा युधिष्ठिर से पुनः इस प्रकार प्रश्न किये—

नारद उवाच

**कच्चिदभ्यागता दूराद्वणिजो लाभकारणात्।**
**यथोक्तमवहार्यन्ते शुल्कं शुल्कोपजीविभिः ॥६८॥**

**नारद ने पूछा**—राजन्! तुम्हारे कर लेनेवाले कर्मचारी लाभ उठाने के लिए दूर से आये व्यापारियों से ठीक-ठीक कर वसूल करते हैं न [अधिक कर तो नहीं लेते]?

**कच्चित् ते पुरुषा राजन् पुरे राष्ट्रे च मानिताः।**
**उपानयन्ति पण्यानि उपधाभिरवञ्चिताः ॥६९॥**

महाराज! वे व्यापारी लोग आपके नगर और राष्ट्र में सम्मानित होकर बिक्री के लिए उपयोगी सामान लाते हैं न? उन्हें तुम्हारे कर्मचारी छल से ठगते तो नहीं?

**कच्चिच्छृणोषि वृद्धानां धर्मार्थसहिता गिरः।**
**नित्यमर्थविदां तात यथाधर्मार्थदर्शिनाम् ॥७०॥**

तात! तुम सदा धर्म और अर्थ के ज्ञाता तथा अर्थशास्त्रज्ञ बड़े-बूढ़े लोगों की धर्म और अर्थ से युक्त बातें सुनते रहते हो न?

**कच्चित् कृतं विजानीषे कर्तारं च प्रशंससि।**
**सतां मध्ये महाराज सत्करोषि च पूजयन् ॥७१॥**

महाराज! क्या तुम्हें किसी के किये हुए उपकार का पता चलता है? क्या तुम उस उपकार करनेवाले की प्रशंसा करते हो? क्या तुम साधु-पुरुषों से भरी सभा में उस उपकारी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसका आदर-सत्कार करते हो?

**कच्चित् सूत्राणि सर्वाणि गृह्णासि भरतर्षभ।**
**हस्तिसूत्राश्वसूत्राणि रथसूत्राणि वा विभो ॥७२॥**

विशदबुद्धि भरतश्रेष्ठ! क्या तुम संक्षेप में सिद्धान्त का प्रतिपादन करनेवाले सभी सूत्रग्रन्थों—हस्तिसूत्र, अश्वसूत्र तथा रथसूत्र आदि—का पठन एवं अभ्यास करते रहते हो?

**कच्चिदभ्यस्यते सम्यग् गृहे ते भरतर्षभ।**
**धनुर्वेदस्य सूत्रं वै यन्त्रसूत्रं च नागरम् ॥७३॥**

भरतकुलश्रेष्ठ! क्या तुम्हारे घर पर धनुर्वेदसूत्र, यन्त्र-सूत्र[1] और नागरिक-सूत्र[2] का अच्छी तरह अभ्यास किया जाता है?

---

१. लोहनिर्मित उन मशीनों को, जिनके द्वारा बारूद के बल से सीसे आदि की गोलियाँ चलाई जाती हैं, यन्त्र कहते हैं। उन यन्त्रों के प्रयोग की विधि के प्रतिपादक संक्षिप्त वाक्य ही यन्त्र-सूत्र हैं।

२. नगर की रक्षा तथा उन्नति के साधनों को बतानेवाले संक्षिप्त वाक्यों को नागरिक सूत्र कहते हैं।

**कच्चिदस्त्राणि सर्वाणि ब्रह्मदण्डश्च तेऽनघ ।**
**विषयोगास्तथा सर्वे विदिताः शत्रुनाशनाः ॥७४॥**

निष्पाप नरेश ! तुम्हें सब प्रकार के अस्त्र, वेदोक्त दण्ड-विधान तथा शत्रुओं का नाश करनेवाले सब प्रकार के विष-प्रयोग ज्ञात हैं न?

**कच्चिदग्निभयाच्चैव सर्वं व्यालभयात् तथा ।**
**रोगरक्षोभयाच्चैव राष्ट्रं स्वं परिरक्षसि ॥७५॥**

क्या तुम अग्नि, सर्प, रोग तथा राक्षसों के भय से अपने सम्पूर्ण राष्ट्र की रक्षा करते हो ?

**कच्चिदन्धांश्च मूकांश्च पङ्गून् व्यङ्गानबान्धवान् ।**
**पितेव पासि धर्मज्ञ तथा प्रव्रजितानपि ॥७६॥**

धर्मज्ञ ! क्या तुम अन्धों, गूँगों, लँगड़ों, अङ्गहीनों और बन्धु-बान्धवों से रहित अनाथों तथा संन्यासियों का पिता की भाँति पालन करते हो ?

**षडनर्था महाराज कच्चित् ते पृष्ठतः कृताः ।**
**निद्राऽऽलस्यं भयं क्रोधोऽमार्दवं दीर्घसूत्रता ॥७७॥**

महाराज ! क्या तुमने निद्रा, आलस्य, भय, क्रोध, कठोरता और दीर्घसूत्रता—इन छह दोषों को त्याग दिया है ?

युधिष्ठिर उवाच

**भगवन् न्याय्यमाहैतं यथावद् धर्मनिश्चयम् ।**
**यथाशक्ति यथान्यायं क्रियतेऽयं विधिर्मया ॥७८॥**

**युधिष्ठिर बोले**—भगवन् ! आपने राजधर्म का जो यथार्थ सिद्धान्त बताया है वह सर्वथा न्यायोचित है। मैं आपके इस न्यायानुकूल आदेश का यथाशक्ति पालन करता हूँ।

**भवान् संचरते लोकान्सदा नानाविधान्बहून् ।**
**ईदृशी भवता काचिद् दृष्टपूर्वा सभा क्वचित् ॥७९॥**

मुनिवर ! आप बहुत-से लोकों का दर्शन करते हुए निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं। कृपाकर यह बताइए, क्या आपने पहले कहीं ऐसा कोई सभा-भवन देखा है ?

नारद उवाच

**मानुषेषु न मे तात दृष्टपूर्वा न वा श्रुता ।**
**सभा मणिमयी राजन् यथेयं तव भारत ॥८०॥**

**नारदजी ने कहा**—तात ! भरतवंशी नरेश ! मणि एवं रत्नों से निर्मित जैसी यह सभा है, ऐसी सभा मैंने मनुष्य-लोक में न तो पहले कभी देखी है और न कानों से ही सुनी है।

**समर्थोऽसि महीं जेतुं भ्रातरस्ते स्थिता वशे ।**
**राजसूयं क्रतुश्रेष्ठमाहरस्वेति भारत ॥८१॥**

हे भारत ! तुम्हारे भाई तुम्हारी आज्ञा के अधीन हैं। तुम सारी पृथिवी को जीतने में समर्थ हो, अतः तुम राजसूय नामक श्रेष्ठ यज्ञ का अनुष्ठान करो।

**बहुविघ्नश्च नृपते क्रतुरेष स्मृतो महान् ।**
**छिद्राण्यस्य तु वाञ्छन्ति यज्ञघ्ना ब्रह्मराक्षसाः ॥८२॥**

राजन् ! इस महान् यज्ञ में बहुत-से विघ्न आने की सम्भावना रहती है, क्योंकि यज्ञ-विनाशक ब्रह्म-राक्षस इसके छिद्र ढूँढ़ते रहते हैं।

**युद्धं च क्षत्रशमनं पृथिवीक्षयकारणम् ।**
**किंचिदेव निमित्तं च भवत्यत्र क्षयावहम् ॥८३॥**

इसका अनुष्ठान करने पर कोई ऐसा निमित्त भी बन जाता है जिससे पृथिवी पर विनाशकारी युद्ध उपस्थित हो जाता है, जो क्षत्रियों के संहार और भूमण्डल के विनाश का कारण होता है।

**एतत् संचिन्त्य राजेन्द्र यत्क्षेमं तत्समाचर ।**
**अप्रमत्तोत्थितो नित्यं चातुर्वर्ण्यस्य रक्षणे ॥८४॥**

राजेन्द्र ! यही सब सोच-विचारकर जो तुम्हें हितकर जान पड़े वह करो ! चारों वर्णों की रक्षा के लिए सदा सावधान और उद्यत रहो !

**भव एधस्व मोदस्व धनैस्तर्पय च द्विजान् ।**
**आपृच्छे त्वां गमिष्यामि दाशार्हनगरीं प्रति ॥८५॥**

संसार में तुम्हारा अभ्युदय हो, तुम आनन्दित रहो और धन से ब्राह्मणों को तृप्त करो। अब मैं यहाँ से द्वारका जाऊँगा, अतः तुमसे अनुमति चाहता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमाख्याय पार्थेभ्यो नारदो जनमेजय ।**
**जगाम तैर्वृतो राजन्नृषिभिर्यैः समागतः ॥८६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजा जनमेजय ! कुन्तीकुमारों से ऐसा कहकर नारदजी जिन ऋषियों के साथ आये थे, उन्हीं से घिरे हुए वापस चले गये।

**गते तु नारदे पार्थो भ्रातृभिः सह कौरवः ।**
**राजसूयं क्रतुश्रेष्ठं चिन्तयामास पार्थिवः ॥८७॥**

नारदजी के चले जाने पर कुरुश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ राजसूय नामक श्रेष्ठ यज्ञ के विषय में विचार करने लगे ।

**इति महाभारते सभापर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥**

# तृतीयोऽध्यायः

## युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ करने का संकल्प; भाइयों, मन्त्रियों, मुनियों तथा श्रीकृष्ण से परामर्श और श्रीकृष्ण का राजसूय यज्ञ के लिए सम्मति देना

वैशम्पायन उवाच

**स मन्त्रिणः समानाय्य भ्रातृंश्च वदतां वरः ।**
**राजसूयं प्रति तदा पुनः पुनरपृच्छत ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! वक्ताओं में श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने अपने मन्त्रियों और भाइयों को बुलाकर उनसे बार-बार पूछा, "राजसूय यज्ञ के सम्बन्ध में आप लोगों का क्या विचार है ?"

**ते पृच्छमानाः सहिता वचोऽर्थ्यं मन्त्रिणस्तदा ।**
**युधिष्ठिरं महाप्राज्ञं यियक्षुमिदमब्रुवन् ॥२॥**

इस प्रकार पूछे जाने पर राजसूय यज्ञ के इच्छुक महाबुद्धिमान् युधिष्ठिर से उन सब मन्त्रियों ने एक साथ यह अर्थयुक्त बात कही—

**समर्थोऽसि महाबाहो सर्वे ते वशगा वयम् ।**
**अचिरात् त्वं महाराज राजसूयमवाप्स्यसि ॥३॥**

महाबाहो ! आप इस यज्ञ के करने में समर्थ हैं। हम सब लोग आपकी आज्ञा के अधीन हैं। महाराज ! आप शीघ्र ही राजसूय यज्ञ पूर्ण कर सकेंगे ।

**श्रुत्वा सुहृद्वचस्तच्च जानँश्चाप्यात्मनः क्षमम् ।**
**पुनः पुनर्मनो दध्रे राजसूयाय भारत ॥४॥**

हे भारत ! उन्होंने सुहृदों का वह सम्मतिसूचक वचन सुनकर एवं यह जानते हुए भी कि राजसूय यज्ञ मेरे लिए साध्य है, इस विषय में मन-ही-मन बारम्बार विचार किया—

**सामर्थ्ययोगं सम्प्रेक्ष्य देशकालौ व्ययागमौ ।□**
**विमृश्य च धिया सम्यक् कुर्वन् प्राज्ञो न सीदति ॥५॥**

जो बुद्धिमान् अपनी शक्ति और साधनों को देखकर तथा देश-काल और आय-व्यय को बुद्धि के द्वारा भली-भाँति समझकर कार्यारम्भ करता है, वह कभी कष्ट में नहीं पड़ता ।

**न हि यज्ञ समारम्भः भवत्यात्मविनिश्चयात् ।**
**स निश्चयार्थं कार्यस्य कृष्णं परममन्यत ।**
**कृत्वा तां नैष्ठिकीं बुद्धिं प्राहिणोद् दूतमञ्जसा ॥६॥**

परन्तु केवल अपने ही निश्चय से यज्ञ आरम्भ नहीं किया जाता । उन्होंने इस कार्य के विषय में निश्चय करने के लिए श्रीकृष्ण को सर्वश्रेष्ठ माना। ऐसी निश्चयात्मक बुद्धि करके उन्होंने श्रीकृष्ण के पास शीघ्र ही एक दूत भेजा ।

**शीघ्रगेन रथेनाशु स दूतः प्राप्य यादवान् ।**
**द्वारकावासिनं कृष्णं द्वारवत्यां समासदत् ॥७॥**

वह दूत शीघ्रगामी रथ के द्वारा तुरन्त यादवों के यहाँ पहुँचकर द्वारकावासी कृष्ण से द्वारका में ही मिला ।

**दर्शनाकांक्षिणं पार्थं दर्शनाकाङ्क्षयाच्युतः ।**
**इन्द्रसेनेन सहित इन्द्रप्रस्थमगात् तदा ॥८॥**

श्रीकृष्ण दर्शनाभिलाषी युधिष्ठिर के पास स्वयं भी उनके दर्शन की इच्छा से दूत इन्द्रसेन के साथ ही इन्द्रप्रस्थ में आये ।

**तं विश्रान्तं शुभे देशे क्षणिनं कल्पमच्युतम् ।**
**धर्मराजः समागम्याज्ञापयत् स्वप्रयोजनम् ॥९॥**

इन्द्रप्रस्थ में पहुँचकर उन्होंने एक उत्तम भवन में विश्राम किया । थोड़ी देर पश्चात् जब वे मिलने योग्य हुए और इसके लिए उन्होंने अवसर निकाल लिया, तब धर्मराज युधिष्ठिर ने आकर उन्हें अपना सारा प्रयोजन बताया ।

युधिष्ठिर उवाच

**प्रार्थितो राजसूयो मे न चासौ केवलेप्सया ।**
**प्राप्यते येन तत् ते हि विदितं कृष्ण सर्वशः ॥१०॥**

**युधिष्ठिर ने कहा**—हे श्रीकृष्ण ! मैं राजसूय यज्ञ

करना चाहता हूँ, परन्तु वह इच्छा मात्र से सम्पन्न नहीं हो सकता। वह यज्ञ जैसे पूर्ण हो सकता है, वह सब आपको विदित है।

**यस्मिन् सर्वं सम्भवति यश्च सर्वत्र पूज्यते।**
**यश्च सर्वेश्वरो राजा राजसूयं स विन्दति ॥११॥**

जो सब-कुछ कर सकता है, जिसकी सर्वत्र पूजा होती है तथा जो सर्वेश्वर होता है, वही राजा राजसूय यज्ञ को सम्पन्न कर सकता है।

**तं राजसूयं सुहृदः कार्यमाहुः समेत्य मे।**
**तत्र मे निश्चिततमं तव कृष्ण गिरा भवेत् ॥१२॥**

मेरे सब सुहृद् एकत्र होकर मुझसे उसी राजसूय यज्ञ को करने के लिए कह रहे हैं, परन्तु उसके विषय में अन्तिम निश्चय तो आपके कहने से ही होगा।

**केचिद्धि सौहृदादेव न दोषं परिचक्षते।**
**स्वार्थहेतोस्तथैवान्ये प्रियमेव वदन्त्युत ॥१३॥**

कुछ लोग प्रेम के कारण मेरे दोषों को नहीं बताते हैं। दूसरे लोग स्वार्थवश वही बात कहते हैं जो मुझे प्रिय लगे।

**प्रियमेव परीप्सन्ते केचिदात्मनि यद्धितम्।**
**एवम्प्रायाश्च दृश्यन्ते जनवादाः प्रयोजने ॥१४॥**

कुछ लोग जो उनके लिए हितकर है, उसी को मेरे लिए भी हितकर समझते हैं। इस प्रकार अपने-अपने प्रयोजन को लेकर प्रायः लोगों की भिन्न-भिन्न बातें देखी जाती हैं।

**त्वं तु हेतूनतीत्यैतान् कामक्रोधौ व्युदस्य च।**
**परमं यत् क्षमं लोके यथावद् वक्तुमर्हसि ॥१५॥**

आप उपर्युक्त सभी हेतुओं और काम-क्रोध से ऊपर उठकर इस लोक में मेरे लिए जो उत्तम और करने योग्य हो, उसे ठीक-ठीक बताने की कृपा करें।

**कृष्ण उवाच**

**सर्वैर्गुणैर्महाराज राजसूयं त्वमर्हसि।**
**जानतस्त्वेव ते सर्वं किंचिद् वक्ष्यामि भारत ॥१६॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—महाराज ! आपमें सभी सद्गुण विद्यमान हैं, अतः आप राजसूय यज्ञ करने के सर्वथा योग्य हैं। भारत ! आप सब-कुछ जानते हैं तो भी इस विषय में मैं कुछ निवेदन करता हूँ।

**स त्वं सम्राड्गुणैर्युक्तः सदा भारतसत्तम।**
**क्षत्रे सम्राजमात्मानं कर्तुमर्हसि भारत ॥१७॥**

भरतकुलभूषण ! आप सदा ही सम्राट् के गुणों से समलंकृत हैं, अतः हे भारत ! आपको क्षत्रिय-समाज में अपने आपको सम्राट् बना लेना चाहिए।

**न तु शक्यं जरासन्धे जीवमाने महाबले।**
**राजसूयस्त्वयावाप्तुमेषा राजन् मतिर्मम ॥१८॥**

परन्तु राजन् ! मेरी सम्मति यह है, कि जब तक महाबली जरासन्ध जीवित है, तबतक आप राजसूय यज्ञ नहीं कर सकते।

**तेन रुद्धा हि राजानः सर्वे जित्वा गिरिव्रजे।**
**कन्दरे पर्वतेन्द्रस्य सिंहेनेव महाद्विपाः ॥१९॥**

उसने सब राजाओं को जीतकर गिरिव्रज में इस प्रकार कैद कर रखा है, जैसे किसी सिंह ने किसी महान् पर्वत की गुफा में बड़े-बड़े गजराजों=हाथियों को रोक रखा हो।

**यदि त्वेनं महाराज यज्ञं प्राप्तुमभीप्ससि।**
**यतस्व तेषां मोक्षाय जरासन्धवधाय च ॥२०॥**

हे राजन् ! यदि आप यह यज्ञ सम्पन्न करना चाहते हैं तो पहले उन कैदी राजाओं को छुड़ाने और जरासन्ध को मारने का प्रयत्न कीजिए।

**समारम्भो न शक्योऽयमन्यथा कुरुनन्दन।**
**राजसूयश्च कार्त्स्न्येन कर्तुं मतिमतां वर ॥२१॥**

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हे कुरुनन्दन ! ऐसा किये बिना आपके राजसूय यज्ञ का आयोजन पूर्णरूप से सफल नहीं हो सकेगा।

**इत्येषा मे मती राजन् यथा वा मन्यसेऽनघ।**
**एवं गते ममाचक्ष्व स्वयं निश्चित्य हेतुभिः ॥२२॥**

हे निष्पाप नरेश ! मेरी सम्मति तो यही है। फिर आप जैसा उचित समझें, वैसा करें। ऐसी दशा में स्वयं हेतुओं और युक्तियों द्वारा जो कुछ निश्चय करें, वह मुझे बताएँ।

**इति महाभारते सभापर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥३॥**

# चतुर्थोऽध्यायः

## जरासन्ध के विषय में राजा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और श्रीकृष्ण की बातचीत और जरासन्ध के वध के लिए श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन की मगध-यात्रा

युधिष्ठिर उवाच

**उक्तं त्वया बुद्धिमता यन्नान्यो वक्तुमर्हति ।**
**संशयानां हि निर्मोक्ता त्वन्नान्यो विद्यते भुवि ।।१।।**

**युधिष्ठिर बोले**—श्रीकृष्ण ! आप परम बुद्धिमान् हैं। आपने जो बात कही है, वह दूसरा कोई नहीं कह सकता। इस संसार में समस्त संशयों को मिटाने-वाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है।

**गृहे गृहे हि राजानः स्वस्य स्वस्य प्रियङ्कराः ।**
**न च साम्राज्यमाप्तास्ते सम्राट्छब्दो हि कृच्छ्रभाक् ।।२**

आजकल तो घर-घर में राजा हैं और वे सभी अपना-अपना प्रिय करने में रत हैं परन्तु वे सम्राट् पद को प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि सम्राट् की पदवी बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है।

**शममेव परं मन्ये शमात् क्षेमं भवेन्मम ।**
**आरम्भे पारमेष्ठ्ये तु न प्राप्यमिति मे मतिः ।।३।।**

मैं तो शम=मन और इन्द्रियों के संयम को ही श्रेष्ठ मानता हूँ, उसी से मेरा कल्याण होगा। राज-सूय यज्ञ का आरम्भ करने पर भी उसके फलस्वरूप ब्रह्मलोक की प्राप्ति मेरे लिए असम्भव है, मेरी तो ऐसी धारणा है।

भीम उवाच

**अनारम्भपरो राजा वल्मीक इव सीदति ।**
**दुर्बलश्चानुपायेन बलिनं योऽधितिष्ठति ।।४।।**

**भीमसेन ने कहा**—हे राजन् ! जो राजा उद्योग नहीं करता तथा जो दुर्बल होने पर भी उचित उपाय या युक्ति से कार्य न करके किसी बलवान् से भिड़ जाता है—वे दोनों दीमकों के बनाये हुए मिट्टी के ढेर के समान नष्ट हो जाते हैं।

**अतन्द्रितश्च प्रायेण दुर्बलो बलिनं रिपुम् ।**
**जयेत् सम्यक्प्रयोगेण नीत्यार्थानात्मनो हितान् ।।५।।**

परन्तु जो आलस्य त्यागकर युक्ति और नीति से काम लेता है, वह दुर्बल होने पर भी बलवान् शत्रु को जीत लेता है तथा अपने लिए हितकर और अभीष्ट अर्थ प्राप्त करता है।

**कृष्णे नयो मयि बलं जयः पार्थे धनञ्जये ।**
**मागधं साधयिष्याम इष्टिं त्रय इवाग्नयः ।।६।।**

श्रीकृष्ण में नीति है, मुझमें बल है और अर्जुन में विजय की शक्ति है, अतः हम तीनों मिलकर मगधराज जरासन्ध को उसी प्रकार जीत लेंगे, जैसे तीनों अग्नियाँ यज्ञ को सिद्ध कर देती हैं।

कृष्ण उवाच

**जित्वा जय्यान् यौवनाश्विः पालनाच्च भगीरथः ।**
**कार्तवीर्यस्तपोवीर्याद् बलात् तु भरतो विभुः ।।७।।**
**ऋद्ध्या मरुत्तस्तान् पञ्च सम्राजस्त्वनुशुश्रुम ।**
**साम्राज्यमिच्छतस्ते तु सर्वाकारं युधिष्ठिर ।**
**निग्राह्यलक्षणं प्राप्तिर्धर्मार्थनयलक्षणैः ।।८।।**

**श्रीकृष्ण बोले**—हे राजन् ! युवनाश्व के पुत्र मान्धाता ने जीतने योग्य शत्रुओं को जीतकर सम्राट् का पद पाया था। भगीरथ प्रजा का पालन करने से, कार्तवीर्य=सहस्रबाहु अर्जुन तपोबल से और राजा भरत स्वाभाविक बल से सम्राट् हुए थे। राजा मरुत्त अपनी समृद्धि के प्रभाव से सम्राट् बने थे। अबतक इन पाँच सम्राटों का नाम ही हम सुनते आ रहे हैं। युधिष्ठिर ! वे मान्धाता आदि तो एक-एक गुण से ही सम्राट् बने थे परन्तु आप तो सम्पूर्णरूप से सम्राट् होने के योग्य हैं, क्योंकि आप शत्रुविजय, प्रजापालन, तपःशक्ति, धन-समृद्धि और नीति—साम्राज्य-प्राप्ति के इन पाँचों गुणों से सम्पन्न हैं।

**बार्हद्रथो जरासन्धस्तद् विद्धि भरतर्षभ ।**
**ततः स्म मागधं संख्ये प्रतिबाधेम यद् वयम् ।।९।।**

परन्तु भरतश्रेष्ठ ! आपके मार्ग में बृहद्रथ का पुत्र जरासन्ध बाधक है, यह आपको जान लेना चाहिए। राजसूय यज्ञ की निर्विघ्न सफलता के लिए हम लोग जरासन्ध को द्वन्द्व-युद्ध में मार डालें।

**षडशीतिः समानीताः शेषा राजँश्चतुर्दश ।**
**जरासन्धेन राजानस्ततः क्रूरं प्रवर्त्स्यते ।।१०।।**

राजन् ! जरासंध ने छियासी राजाओं को क़ैद कर रखा है, केवल चौदह शेष हैं। उनको भी बन्दी बनाने के पश्चात् वह क्रूर कर्म में प्रवृत्त होगा अर्थात् उन सबकी बलि देगा।

**प्राप्नुयात् स यशो दीप्तं तत्र यो विघ्नमाचरेत्।**
**जयेद् यश्च जरासन्धं स सम्राट् नियतं भवेत् ॥११॥**

जो राजा जरासंध के इस कर्म में विघ्न डालेगा, वह उज्ज्वल यश का भागी बनेगा और जो उसे जीत लेगा, वही निश्चितरूप से सम्राट् बनेगा।

युधिष्ठिर उवाच

**सम्राड्गुणमभीप्सन् वै युष्मान् स्वार्थपरायणः।**
**कथं प्रहिणुयां कृष्ण सोऽहं केवलसाहसात् ॥१२॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हे कृष्ण ! मैं सम्राट् के गुणों की इच्छा रखकर, स्वार्थ-साधन में तत्पर हो केवल साहस के भरोसे आप लोगों को जरासन्ध के पास कैसे भेज दूँ ?

**भीमार्जुनावुभौ नेत्रे मनो मन्ये जनार्दनम्।**
**मनश्चक्षुर्विहीनस्य कीदृशं जीवितं भवेत् ॥१३॥**

हे जनार्दन ! भीम और अर्जुन दोनों मेरे नेत्र हैं और आपको तो मैं अपना मन मानता हूँ। अपने मन और नेत्रों को खो देने पर मेरा यह जीवन कैसे स्थिर रह सकेगा ?

**जरासन्धबलं प्राप्य दुष्पारं भीमविक्रमम्।**
**यमोऽपि न विजेताऽऽजौ तत्र वः किं विचेष्टितम् ॥१४**

जरासन्ध की सेना का पार पाना अति कठिन है। उसका पराक्रम भी भयानक है। युद्ध में उस सेना का सामना करके यमराज भी नहीं जीत सकता, फिर आप लोगों का प्रयत्न वहाँ क्या कर सकता है ?

**अस्मिंस्त्वर्थान्तरे युक्तमनर्थः प्रतिपद्यते।**
**तस्मान्न प्रतिपत्तिस्तु कार्या युक्ता मता मम ॥१५॥**

यह कार्य हमारे लिए इष्टफल के विपरीत फल देनेवाला जान पड़ता है, अतः अबतक हम जिसे सम्पन्न करना चाहते थे, उस राजसूय यज्ञ की ओर ध्यान देना मुझे उचित नहीं जान पड़ता।

**संन्यासं रोचये साधु कार्यस्यास्य जनार्दन।**
**प्रतिहन्ति मनो मेऽद्य राजसूयो दुराहरः ॥१६॥**

हे जनार्दन ! मुझे तो यह कार्य छोड़ देना ही अच्छा लगता है। राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान बहुत कठिन है। अब यह मेरे मन को प्रतिहत (निरुत्साहित) कर रहा है।

वैशम्पायन उवाच

**पार्थः प्राप्य धनुः श्रेष्ठमक्षय्ये च महेषुधी।**
**रथं ध्वजं सभां चैव युधिष्ठिरमभाषत ॥१७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! कुन्तीनन्दन अर्जुन उत्तम गाण्डीव धनुष, दो अक्षय तरकस, दिव्य रथ, ध्वजा और सभा प्राप्त कर चुके थे, अतः वे उत्साहित होकर युधिष्ठिर से बोले—

अर्जुन उवाच

**धनुः शस्त्रं शरा वीर्यं पक्षो भूमिर्यशो बलम्।**
**प्राप्तमेतन्मया राजन् दुष्प्रापं यदभीप्सितम् ॥१८॥**

**अर्जुन ने कहा**—हे राजन् ! धनुष, शस्त्र, बाण, पराक्रम, श्रेष्ठ सहायक, साम्राज्य, यश और बल की प्राप्ति अति कठिनाई से होती है किन्तु ये सभी दुर्लभ वस्तुएँ मुझे अपनी इच्छा के अनुकूल प्राप्त हुई हैं।

**कुले जन्म प्रशंसन्ति वैद्याः साधु सुनिष्ठिताः।□**
**बलेन सदृशं नास्ति वीर्यं तु मम रोचते ॥१९॥**

अनुभवी विद्वान् उत्तम कुल में जन्म की बड़ी प्रशंसा करते हैं, परन्तु बल के समान वह (उत्तम कुल) भी नहीं है। मुझे तो बल-पराक्रम ही श्रेष्ठ जान पड़ता है।

**कृतवीर्यकुले जातो निर्वीर्यः किं करिष्यति।**
**निर्वीर्ये तु कुले जातो वीर्यवाँस्तु विशिष्यते ॥२०॥**

महापराक्रमी राजा कृतवीर्य के कुल में उत्पन्न होकर भी जो स्वयं निर्बल है, वह क्या करेगा ? वरन् निर्बल कुल में जन्म लेकर भी जो बलवान् और पराक्रमी है, वही श्रेष्ठ है।

**क्षत्रियः सर्वशो राजन् यस्य वृत्तिर्द्विषज्जये।**
**सर्वैर्गुणैर्विहीनोऽपि वीर्यवान् हि तरेद् रिपून् ॥२१॥**

महाराज ! शत्रुओं के जीतने में जिसकी प्रवृत्ति हो, वही सब प्रकार से श्रेष्ठ क्षत्रिय है। बलवान् पुरुष सब गुणों से हीन हो, तो भी वह शत्रुओं के संकट से पार हो सकता है।

**सर्वैरपि गुणैर्युक्तो निर्वीर्यः किं करिष्यति।**
**गुणीभूता गुणाः सर्वे तिष्ठन्ति हि पराक्रमे ॥२२॥**

जो पराक्रमहीन है, वह सर्वगुण-सम्पन्न होकर भी क्या करेगा, क्योंकि पराक्रम में सभी गुण उसके अङ्ग बनकर रहते हैं।

**जयस्य हेतुः सिद्धिर्हि कर्म दैवं च संश्रितम्।**
**संयुक्तो हि बलैः कश्चित् प्रमादान्नोपयुज्यते।**
**तेन द्वारेण शत्रुभ्यः क्षीयते सबलो रिपुः ॥२३॥**

महाराज! सिद्धि=मनोयोग और प्रारब्ध के अनुकूल पुरुषार्थ ही विजय का हेतु है। जो बल से सम्पन्न होकर भी प्रमाद करे, तो वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता। प्रमादरूप छिद्र के कारण बलवान् शत्रु भी अपने सामान्य शत्रुओं द्वारा मारा जाता है।

**दैन्यं यथा बलवति तथा मोहो बलान्विते।**
**तावुभौ नाशकौ हेतू राज्ञा त्याज्यौ जयार्थिना ॥२४॥**

बलवान् पुरुष में दीनता की भाँति बलिष्ठ पुरुषों में मोह का होना भी महान् दोष है। दीनता और मोह दोनों विनाश के कारण हैं, अतः विजय के इच्छुक राजा को इन दोनों को त्याग देना चाहिए।

**जरासन्धविनाशं च राज्ञां च परिरक्षणम्।**
**यदि कुर्याम यज्ञार्थं किं ततः परमं भवेत् ॥२५॥**

यदि हम राजसूय यज्ञ की सिद्धि के लिए जरासन्ध का नाश और क़ैद में पड़े हुए राजाओं की रक्षा कर सकें, तो इससे उत्तम और क्या हो सकता है?

**अनारम्भे हि नियतो भवेदगुणनिश्चयः।**
**गुणान्निःसंशयाद् राजन् नैर्गुण्यं मन्यते कथम् ॥२६**

यदि हम यज्ञ का आरम्भ नहीं करते हैं तो निश्चय ही हमारी अयोग्यता और दुर्बलता प्रकट होती है, अतः राजन्! सुनिश्चित गुण की उपेक्षा करके आप निर्गुणता का कलंक क्यों स्वीकार करते हैं?

**काषायं सुलभं पश्चान्मुनीनां शममिच्छताम्।**
**साम्राज्यं तु भवेच्छक्यं वयं योत्स्यामहे परान् ॥२७॥**

ऐसा करने पर तो हमें शान्ति के अभिलाषी संन्यासियों का गेरुआ वस्त्र ही सुलभ होगा, परन्तु हम लोग साम्राज्य प्राप्त करने में समर्थ हैं, अतः हम लोग शत्रुओं से युद्ध करेंगे।

कृष्ण उवाच

**जातस्य भारते वंशे तथा कुन्त्याः सुतस्य च।**
**या वै युक्ता मतिः सेयमर्जुनेन प्रदर्शिता ॥२८॥**

श्रीकृष्ण ने कहा—राजन्! भरतवंश में उत्पन्न पुरुष और कुन्ती-जैसी माता के पुत्र की जैसी बुद्धि होनी चाहिए, अर्जुन ने उसी का परिचय दिया है।

**न स्म मृत्युर्वयं विद्मरात्रौ वा यदि वा दिवा।**
**न चापि कञ्चिदमरमयुद्धेनानुशुश्रुमः ॥२९॥**

महाराज! हम लोग यह नहीं जानते कि मृत्यु कब आएगी—रात्रि में आएगी या दिन में। हमने यह भी नहीं सुना है कि युद्ध न करने के कारण कोई अमर हो गया हो।

**एतावदेव पुरुषैः कार्यं हृदयतोषणम्।**
**नयेन विधिदृष्टेन यदुपक्रमते परान् ॥३०॥**

वीर पुरुषों का इतना ही कर्तव्य है कि वे अपने हृदय के सन्तोष के लिए नीतिशास्त्र में निर्दिष्ट नीति के अनुसार शत्रुओं पर आक्रमण करें।

**ते वयं नयमास्थाय शत्रुदेहसमीपगाः।**
**कथमन्तं न गच्छेम वृक्षस्येव नदीरयाः ॥३१॥**

हम लोग नीति का आश्रय लेकर शत्रु के शरीर के निकट तक पहुँच जाएँ, फिर जैसे नदी का वेग किनारे के वृक्षों को नष्ट कर देता है, वैसे ही हम शत्रु का अन्त क्यों न कर डालेंगे?

**मयि नीतिर्बलं भीमे रक्षिता चावयोर्जयः।**
**मागधं साधयिष्याम इष्टिं त्रय इवाग्नयः ॥३२॥**

मुझमें नीति है, भीम में बल है और अर्जुन हम दोनों के रक्षक हैं, अतः जैसे तीन अग्नियाँ यज्ञ की सिद्धि करती हैं वैसे ही हम तीनों मिलकर जरासन्ध के वध का काम पूरा कर लेंगे।

**त्रिभिरासादितोऽस्माभिर्विजने स नराधिपः।**
**न सन्देहो यथा युद्धमेकेनाप्युपयास्यति ॥३३॥**
**अवमानाच्च लोभाच्च बाहुवीर्याच्च दर्पितः।**
**भीमसेनेन युद्धाय ध्रुवमप्युपयास्यति ॥३४॥**

जब हम तीनों एकान्त में राजा जरासन्ध से मिलेंगे, तब वह हम तीनों में से किसी एक के साथ द्वन्द्वयुद्ध करना स्वीकार कर लेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अपमान के भय से, बड़े योद्धा भीम के साथ

लड़ने के लोभ से और अपने बाहुबल के अभिमान से जरासन्ध निश्चय ही भीमसेन के साथ युद्ध करने के लिए तैयार होगा।

**अलं तस्मै महाबाहुर्भीमसेनो महाबलः।**
**लोकस्य समुदीर्णस्य निधनायान्तको यथा ।।३५।।**

जैसे उत्पन्न हुए समस्त संसार के विनाश के लिए एकमात्र यमराज पर्याप्त हैं, वैसे ही महाबली महाबाहु भीम जरासंध के वध के लिए पर्याप्त हैं।

**यदि मे हृदयं वेत्सि यदि ते प्रत्ययो मयि।**
**भीमसेनार्जुनौ शीघ्रं न्यासभूतौ प्रयच्छ मे ।।३६।।**

राजन् ! यदि आप मेरे हृदय को जानते हैं और आपका मुझपर विश्वास है, तो भीम और अर्जुन को धरोहर के रूप में शीघ्र ही मुझे देने की कृपा करें।

युधिष्ठिर उवाच

**अच्युताच्युत मा मैवं व्याहरामित्रकर्षन।**
**पाण्डवानां भवान् नाथो भवन्तं चाश्रिता वयम् ।।३७**

**युधिष्ठिर बोले**—अपनी मर्यादा से च्युत न होनेवाले शत्रुनाशक अच्युत ! आप ऐसी बात कदापि न कहें। आप हम पाण्डवों के स्वामी और रक्षक हैं और हम सब लोग आपकी शरण में हैं।

**यथा वदसि गोविन्द सर्वं तदुपपद्यते।**
**न हि त्वमग्रतस्तेषां येषां लक्ष्मीः पराङ्मुखी ।।३८।।**

हे गोविन्द ! आप जैसा कहते हैं, वह सब ठीक है। जिनकी राज्यलक्ष्मी विमुख हो चुकी है, उनके सम्मुख आप आते ही नहीं हैं।

**निहतश्च जरासन्धो मोक्षिताश्च महीक्षितः।**
**राजसूयश्च मे लब्धो निदेशे तव तिष्ठतः ।।३९।।**

आपकी आज्ञा के अनुसार चलने मात्र से मैं यह मानता हूँ कि जरासन्ध मारा गया, समस्त राजा उसकी कैद से छूट गये और मेरा राजसूय यज्ञ भी पूरा हो गया।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तास्ततः सर्वे भ्रातरो विपुलौजसः।**
**वार्ष्णेयः पाण्डवेयौ च प्रतस्थुर्मागधं प्रति ।।४०।।**
**वर्चस्विनां ब्राह्मणानां स्नातकानां परिच्छदम्।**
**आच्छाद्य सुहृदां वाक्यैर्मनोज्ञैरभिनन्दिताः ।।४१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर वे सब महातेजस्वी भाई श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम मगधराज से भिड़ने के लिए उसकी राजधानी की ओर चल दिये। उन्होंने तेजस्वी ब्राह्मण-स्नातकों का वेश धारण कर अपने क्षत्रिय रूप को छिपाकर यात्रा की। उस समय सब हितैषी सुहृदों ने मधुर वचनों द्वारा उनका अभिनन्दन किया।

**कुरुभ्यः प्रस्थितास्ते तु गङ्गाशोणमतीत्य च।**
**गोरथं गिरिमासाद्य ददृशुर्मागधं पुरम् ।।४२।।**

कुरुदेश से चलकर गङ्गा और शोणभद्र को पार करके, गोरथ पर्वत पर पहुँचकर उन तीनों ने मगध की राजधानी को देखा।

**इति महाभारते सभापर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।**

# पञ्चमोऽध्यायः

**मगध की राजधानी में प्रवेश, श्रीकृष्ण और जरासन्ध का संवाद, जरासन्ध का भीम से लड़ने के लिए तैयार होना और भीम द्वारा उसका वध**

वैशम्पायन उवाच

**हृष्टपुष्टजनोपेतं चातुर्वर्ण्यसमाकुलम्।**
**स्फीतोत्सवमनाधृष्यमासेदुश्च गिरिव्रजम् ।।१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—वहाँ से चलकर वे तीनों गिरिव्रज के निकट जा पहुँचे। वह नगर चारों वर्णों के लोगों से भरा-पूरा था। उसमें रहनेवाले सभी लोग हृष्ट-पुष्ट दिखाई देते थे। वहाँ अधिकाधिक उत्सव होते रहते थे। उस नगर को कोई जीत भी नहीं सकता था।

**ततो द्वारमनासाद्य चैत्यकान्तं समाद्रवन्।**
**स्थिरं सुविपुलं शृङ्गं सुमहान्तं पुरातनम् ।।२।।**
**विपुलैर्बाहुभिर्वीरास्तेऽभिहत्याभ्यपातयन्।**
**ततस्ते मागधं हृष्टाः पुरं प्रविविशुस्तदा ।।३।।**

वे मुख्य फाटक पर न जाकर नगर के चैत्यक नामक ऊंचे स्थान पर चढ़ गये। उस चैत्यक का विशाल शिखर बहुत पुराना परन्तु सुदृढ़ था।

श्रीकृष्ण आदि तीनों वीरों ने अपनी विशाल भुजाओं से टक्कर मारकर उस चैत्यक पर्वत के शिखर को गिरा दिया। तत्पश्चात् वे अत्यन्त प्रसन्न होकर मगध की राजधानी गिरिव्रज के भीतर प्रविष्ट हुए।

**राजमार्गेण गच्छन्तः कृष्णभीमधनञ्जयाः।**
**बलाद् गृहीत्वा माल्यानि मालाकारान्महाबलाः॥४॥**

राजमार्ग पर चलते हुए महाबली श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन ने एक माली से बलपूर्वक बहुत-सी मालाएँ छीनकर धारण कर लीं।

**विरागवसनाः सर्वे स्रग्विणो मृष्टकुण्डलाः।**
**निवेशनमथाजग्मुर्जरासन्धस्य धीमतः॥५॥**

उन तीनों के वस्त्र अनेक रंगों के थे। उन्होंने गले में हार तथा कानों में चमकीले कुण्डल पहने हुए थे। वे चलते-चलते बुद्धिमान् राजा जरासन्ध के महल के निकट जा पहुँचे।

**ते त्वतीत्य जनाकीर्णाः कक्षास्तिस्रो नरर्षभाः।**
**अहंकारेण राजानमुपतस्थुर्गतव्यथाः॥६॥**

वे नरश्रेष्ठ लोगों से भरी हुई तीन ड्योढ़ियों को पार करके निर्भय एवं निश्चिन्त हो बड़े दर्प के साथ राजा जरासन्ध के निकट पहुँच गये।

**तान् पाद्यमधुपर्कार्हान् गवार्हान् सत्कृतिं गतान्।**
**प्रत्युत्थाय जरासन्ध उपतस्थे यथाविधि॥७॥**

वे पाद्य, मधुपर्क और गोदान पाने के योग्य थे। उनका सर्वत्र सत्कार अभीष्ट था। उन्हें आया देख जरासन्ध उठकर खड़ा हो गया तथा विधिपूर्वक उनका आतिथ्य किया।

**उवाच चैतान् राजासौ स्वागतं वोऽस्त्विति प्रभुः।**
**मौनमासीत् तदा पार्थभीमयोर्जनमेजय॥८॥**
**तेषां मध्ये महाबुद्धिः कृष्णो वचनमब्रवीत्।**
**वक्तुं नायाति राजेन्द्र एतयोर्नियमस्थयोः॥९॥**
**अर्वाङ्निशीथात् परतस्त्वया सार्धं वदिष्यतः।**
**यज्ञागारे स्थापयित्वा राजा राजगृहं गतः॥१०॥**

तत्पश्चात् महाबली राजा ने इन तीनों अतिथियों से कहा—'आप लोगों का स्वागत है।' जनमेजय! उस समय भीम और अर्जुन मौन थे अतः महाबुद्धिमान् श्रीकृष्ण ने कहा—"राजेन्द्र! ये दोनों एक व्रत-नियम में दीक्षित (बद्ध) हैं, अतः आधी रात से पूर्व नहीं बोलते। अर्धरात्रि व्यतीत होने पर ये दोनों आप से वार्तालाप करेंगे।" तब जरासन्ध उन्हें यज्ञशाला में ठहराकर स्वयं राजभवन में चला गया।

**ततोऽर्धरात्रे सम्प्राप्ते यातो यत्र स्थिता द्विजाः।**
**इदमूचुरमित्रघ्नाः स्वस्त्यस्तु कुशलं नृप॥११॥**

फिर आधी रात्रि होने पर जरासन्ध वहाँ गया जहाँ वे ब्राह्मण ठहरे हुए थे। शत्रुओं का नाश करने वाले वे सभी जरासन्ध को देखते ही बोले—"राजन्! आपका का कल्याण हो।"

**तानुवाच जरासन्धो गर्हितान्परिवेशनात्।**
**न स्नातकव्रता विप्रा बहिर्माल्यानुलेपनाः॥१२॥**
**भवन्तीति नृलोकेऽस्मिन् विदितं मम सर्वशः।**
**के यूयं पुष्पवन्तश्च भुजैर्ज्याकृतलक्षणैः॥१३॥**

हे कुरुनन्दन! उस समय जरासन्ध ने उन तीनों की निन्दा करते हुए कहा—"हे ब्राह्मणो! संसार में सर्वत्र प्रसिद्ध है कि स्नातकव्रत का पालन करनेवाले ब्राह्मण माला और चन्दन धारण नहीं करते। मुझे भी यह बात भली-भाँति विदित है। आपके गले में फूलों की माला है और भुजाओं में धनुष की प्रत्यञ्चा की रगड़ का चिह्न भी स्पष्ट दिखाई देता है, अतः बताइए, आप लोग कौन हैं?

**बिभ्रतः क्षात्रमोजश्च ब्राह्मण्यं प्रतिजानथ।**
**सत्यं वदत के यूयं सत्यं राजसु शोभते॥१४॥**

"आप लोग क्षत्रियोचित तेज धारण करते हैं परन्तु ब्राह्मण होने का परिचय दे रहे हैं। सच बताइए, आप कौन हैं? राजाओं में सत्य की ही शोभा होती है।

**चैत्यकस्य गिरेः शृङ्गं भित्त्वा किमिह छद्मना।**
**अद्वारेण प्रविष्टाः स्थ निर्भया राजकिल्बिषात्॥१५**

चैत्यक पर्वत के शिखर को तोड़कर राजा का अपराध करके भी उससे भयभीत न हो छद्म-वेश धारण करके आप लोग द्वार-मार्ग छोड़कर इस नगर में घुस आये हैं, इसका क्या कारण है?

**वदध्वं वाचि वीर्यं च ब्राह्मणस्य विशेषतः।**
**कर्म चैतद् विलिंगस्थं किं वोऽद्य प्रसमीक्षितम्॥१६॥**

"बोलिए, ब्राह्मण की तो वाणी में ही तेज होता है, कर्म में नहीं। आपने तो पर्वतशिखर को ही तोड़ा

है, वह आपके वर्ण और वेश के सर्वथा विपरीत है। बताइए, आपने आज क्या सोच रखा है ?

**एवं च मामुपस्थाय कस्माच्च विधिनार्हणाम् ।**
**प्रतीतां नानुगृह्णीत कार्यं किं वास्मदागमे ॥१७॥**

इस प्रकार मेरे यहाँ उपस्थित होकर मेरे द्वारा विधिपूर्वक अर्पित की हुई इस पूजा को आप लोग ग्रहण क्यों नहीं करते ? फिर मेरे यहाँ आपके आने का प्रयोजन ही क्या है ?

कृष्ण उवाच

**स्नातकान्ब्राह्मणान् राजन्विद्ध्यस्माँस्त्वं नराधिप ।**
**स्नातकव्रतिनो राजन् ब्राह्मणाः क्षत्रियाविशः ॥१८॥**

**श्रीकृष्ण ने कहा**—हे राजन् ! वेश के अनुसार तुम हमें स्नातक ब्राह्मण समझ सकते हो । वैसे तो स्नातक व्रत का पालन करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों के लोग होते हैं ।

**पुष्पवत्सु ध्रुवा श्रीश्च पुष्पवन्तस्ततो वयम् ।**
**क्षत्रियो बाहुवीर्यस्तु न तथा वाक्यवीर्यवान् ॥१९॥**

पुष्प धारण करनेवालों में लक्ष्मी का निवास ध्रुव है, अतः हम लोग पुष्पमालाधारी हैं। क्षत्रिय का बल और पराक्रम उसकी भुजाओं में होता है, वाणी में नहीं, अतः हम मौन हैं ।

**स्ववीर्यं क्षत्रियाणां तु बाह्वोर्धाता न्यवेशयत् ।**
**तद् दिदृक्षसि चेद् राजन् द्रष्टास्यद्य न संशयः ॥२०॥**

विधाता ने क्षत्रियों का अपना बल उनकी भुजाओं में ही भर दिया है। राजन् ! यदि आज उसे देखना चाहते हो तो निश्चय ही देख लोगे ।

**अद्वारेण रिपोर्गेहं द्वारेण सुहृदो गृहान् ।**
**प्रविशन्ति नरा धीरा द्वाराण्येतानि धर्मतः ॥२१॥**

धीर मनुष्य शत्रु के घर में बिना द्वार (दरवाज़े) के और मित्र के घर में द्वार से घुसते हैं। शत्रु और मित्र के लिए धर्मतः ये ही द्वार बताये गये हैं ।

**कार्यवन्तो गृहानेत्य शत्रुतो नार्हणां वयम् ।**
**प्रतिगृह्णीम तद् विद्धि एतन्नः शाश्वतं व्रतम् ॥२२॥**

हम अपने कार्य से तुम्हारे घर आये हैं, अतः शत्रु से पूजा ग्रहण नहीं कर सकते। यह हमारा सनातन व्रत है। इस बात को तुम अच्छी प्रकार समझ लो ।

जरासन्ध उवाच

**न स्मरामि कदा वैरं कृतं युष्माभिरित्युत ।**
**चिन्तयँश्च न पश्यामि भवतां प्रति वैकृतम् ॥२३॥**

**जरासन्ध बोला**—हे ब्राह्मणो ! मुझे स्मरण नहीं आता कि मैंने कब आप लोगों के साथ वैर किया है। बहुत सोचने पर भी मुझे आपके प्रति अपने द्वारा किया हुआ कोई अपराध दिखाई नहीं देता ।

**वैकृते वासति कथं मन्यध्वं मामनागसम् ।**
**अरिं वै ब्रूत हे विप्राः सतां समय एष हि ॥२४॥**

हे विप्रो ! जब मुझसे अपराध ही नहीं हुआ है तब मुझ निर्दोष को आप लोग शत्रु कैसे मान रहे हैं, यह बताइए। क्या यही साधु पुरुषों का बर्ताव है ?

**तस्य मेऽद्य स्थितस्येह स्वधर्मे नियतात्मनः ।**
**अनागसं प्रजानां च प्रमादादिव जल्पथ ॥२५॥**

मैं अपने मन को वश में रखकर सदा स्वधर्म [क्षत्रिय धर्म] में स्थित रहता हूँ। प्रजाओं का भी कोई अपराध नहीं करता, ऐसी स्थिति में आप लोग प्रमाद से ही मुझे शत्रु बता रहे हैं ।

कृष्ण उवाच

**कुलकार्यं महाबाहो कश्चिदेकः कुलोद्वहः ।**
**वहते यस्तन्नियोगाद् वयमभ्युद्यतास्त्वयि ॥२६॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—हे महाबाहो ! सारे कुल में कुल के भार को एक व्यक्ति ही सँभालता है, उस कुल के सभी लोगों की रक्षा आदि का कार्य वही सम्पन्न करता है। जो वैसे महापुरुष हैं, उन्हीं की आज्ञा से आज हम तुम्हें दण्ड देने को उद्यत हुए हैं ।

**त्वया चोपहृता राजन् क्षत्रिया लोकवासिनः ।**
**तदागः क्रूरमुत्पाद्य मन्यसे किमनागसम् ॥२७॥**

राजन् ! तुमने भूलोक-निवासी क्षत्रियों को कैद में डाल रखा है। ऐसे क्रूर अपराध का आयोजन करके भी तुम अपने आपको निरपराध मानते हो ?

**राजा राज्ञः कथं साधून्हिंस्यान्नृपतिसत्तम ।**
**तद् राज्ञः संनिगृह्य त्वं रुद्रायोपजिहीर्षसि ॥२८॥**

नृपश्रेष्ठ ! एक राजा दूसरे राजा की हत्या कैसे कर सकता है ? तुम राजाओं को बन्दीगृह में डाल उन्हें रुद्र देवता पर चढ़ाना चाहते हो ?

**अस्माँस्तदेनो गच्छेद्धि कृतं बार्हद्रथ त्वया ।**
**वयं हि शक्ता धर्मस्य रक्षणे धर्मचारिणः ॥२९॥**

बृहद्रथकुमार ! तुम्हारे द्वारा किया हुआ यह पाप हम सब लोगों पर भी लागू होगा, क्योंकि हम धर्म की रक्षा करने में समर्थ और धर्म का पालन करनेवाले हैं।

**मनुष्याणां समालम्भो न च दृष्टः कदाचन ।**
**स कथं मानुषैर्देवं यष्टुमिच्छसि शंकरम् ॥३०॥**

किसी देवता की पूजा के लिए मनुष्यों का वध कभी नहीं देखा गया । फिर तुम कल्याणकारी शिव की पूजा मनुष्यों की हिंसा द्वारा कैसे करना चाहते हो ?

**ते त्वां ज्ञातिक्षयकरं वयमार्तानुसारिणः ।**
**ज्ञातिवृद्धिनिमित्तार्थं विनिहन्तुमिहागताः ॥३१॥**

संकट में पड़े हुए दीन-दुखियों के रक्षक हम लोग सजातीय बन्धुओं की वृद्धि के उद्देश्य से जाति-भाइयों के हत्यारे तुम्हारा वध करने के लिए यहाँ आये हैं ।

**नास्ति लोके पुमानन्यः क्षत्रियेष्विति चैव तत् ।**
**मन्यसे स च ते राजन् सुमहान् बुद्धिविप्लवः ॥३२॥**

राजन् ! जो तुम यह मान बैठे हो कि इस संसार के क्षत्रियों में मेरे समान दूसरा कोई नहीं है, यह तुम्हारी बुद्धि का बहुत बड़ा भ्रम है ।

**युयुक्षमाणास्त्वत्तो हि न वयं ब्राह्मणा ध्रुवम् ।**
**शौरीरस्मि हृषीकेशो नृवीरौ पाण्डवाविमौ ॥३३॥**

तुमसे युद्ध की इच्छा रखनेवाले हम लोग निश्चय ही ब्राह्मण नहीं हैं। मैं वसुदेवपुत्र हृषीकेश हूँ और ये दोनों पाण्डुपुत्र वीरवर भीमसेन और अर्जुन हैं ।

**त्वामाह्वयामहे राजन् स्थिरो युध्यस्व मागध ।**
**मुञ्च वा नृपतीन् सर्वान् गच्छ वा त्वं यमक्षयम् ॥३४**

मगधनरेश ! हम तुम्हें युद्ध के लिए ललकारते हैं। तुम डटकर युद्ध करो। या तुम समस्त राजाओं को छोड़ दो अथवा यमलोक की राह लो ।

जरासन्ध उवाच

**नाजितान् वै नरपतीनहमादद्मि कांश्चन ।**
**अजितः पर्यवस्थाता कोऽत्र यो न मया जितः ॥३५॥**

जरासन्ध ने कहा—कृष्ण ! मैं युद्ध में जीते बिना किसी भी राजा को कैद करके यहाँ नहीं लाया हूँ । यहाँ ऐसा कौन-सा शत्रु राजा है, जो दूसरों से अजेय होने पर भी मेरे द्वारा न जीता गया हो ?

**क्षत्रियस्यैतदेवाहुर्धर्म्यं कृष्णोपजीवनम् ।**
**विक्रम्य वशमानीय कामतो यत् समाचरेत् ॥३६॥**

कृष्ण ! क्षत्रिय के लिए तो यह धर्मानुकूल जीविका बताई गई है कि वह पराक्रम करके शत्रु को अपने वश में लाकर फिर उसके साथ मनमाना बर्ताव करे ।

**देवतार्थमुपाहृत्य राज्ञः कृष्ण कथं भयात् ।**
**अहमद्य विमुच्येयं क्षात्रं व्रतमनुस्मरन् ॥३७॥**

कृष्ण ! मैं क्षत्रियों के व्रत को स्मरण रखता हुआ देवों के बलिदानार्थ उपहार में लाये हुए इन राजाओं को आज तुम्हारे भय से कैसे छोड़ सकता हूँ ?

**सैन्यं सैन्येन व्यूढेन एक एकेन वा पुनः ।**
**द्वाभ्यां त्रिभिर्वा योत्स्येऽहं युगपत् पृथगेव वा ॥३८॥**

तुम्हारी सेना मेरी व्यूहरचना-युक्त सेना के साथ लड़ ले अथवा तुममें से कोई एक मुझ अकेले के साथ द्वन्द्वयुद्ध कर ले, अथवा मैं अकेला ही तुममें से दो या तीनों के साथ बारी-बारी से अथवा एक साथ युद्ध कर सकता हूँ ।

कृष्ण उवाच

**त्रयाणां केन ते राजन् योद्धुमुत्सहते मनः ।**
**अस्मदन्यतमेनेह सज्जीभवतु को युधि ॥३९॥**

**श्रीकृष्ण ने पूछा**—हे राजन् ! हम तीनों में से किस एक वीर के साथ युद्ध करने के लिए तुम्हारे मन में उत्साह हो रहा है ? हममें से कौन तुम्हारे साथ युद्ध के लिए कटिबद्ध हो ?

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तः स नृपतिर्युद्धं वव्रे महाद्युतिः ।**
**जरासन्धस्ततो राजा भीमसेनेन मागधः ॥४०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—श्रीकृष्ण द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर महातेजस्वी मगध-नरेश राजा जरासन्ध ने भीमसेन के साथ युद्ध करना स्वीकार किया ।

**अवमुच्य किरीटं स केशान् समनुगृह्य च ।**
**उदतिष्ठज्जरासन्धो वेलातिग इवार्णवः ॥४१॥**

जरासन्ध ने किरीट=मुकुट उतारकर केशों को कसकर बाँध लिया। तत्पश्चात् वह युद्ध के लिए उठकर खड़ा हो गया, मानो समुद्र अपनी मर्यादा को लाँघने के लिए उद्यत हो गया हो।

**उवाच मतिमान् राजा भीमं भीमपराक्रमः।**
**भीम योत्स्ये त्वया सार्धं श्रेयसा निर्जितं वरम् ॥४२॥**

फिर भयानक पराक्रम करनेवाले बुद्धिमान् राजा जरासन्ध ने भीमसेन से कहा—"भीम ! आओ ! मैं तुमसे युद्ध करूँगा, क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष से लड़कर हारना भी अच्छा है।"

**एवमुक्त्वा जरासन्धो भीमसेनमरिन्दमः।**
**प्रत्युद्ययौ महातेजाः शक्रं बल इवासुरः ॥४३॥**

ऐसा कहकर महातेजस्वी शत्रुदमन जरासन्ध भीमसेन की ओर बढ़ा मानो बल नामक असुर इन्द्र से भिड़ने के लिए बढ़ा आ रहा हो।

**ततः सम्मन्त्र्य कृष्णेन कृतस्वस्त्ययनो बली।**
**भीमसेनो जरासन्धमाससाद युयुत्सया ॥४४॥**

तब महाबली भीम भी कृष्ण से परामर्श कर स्वस्ति-वाचन के पश्चात् युद्ध की इच्छा से जरासन्ध के पास आ धमके।

**ततस्तौ नरशार्दलौ बाहुशस्त्रौ समीयतुः।**
**वीरौ परमसंहृष्टावन्योन्यजयकांक्षिणौ ॥४५॥**

फिर तो मनुष्यों में सिंह के समान पराक्रमी वे दोनों वीर अत्यन्त हर्ष और उत्साह में भरकर एक-दूसरे को जीतने की इच्छा से अपनी भुजाओं से ही शस्त्रों का काम लेते हुए परस्पर भिड़ गये।

**करग्रहणपूर्वं तु कृत्वा पादाभिवन्दनम्।**
**कक्षैः कक्षां विधुन्वानावास्फोटं तत्र चक्रतुः ॥४६॥**

पहले उन दोनों ने हाथ मिलाये, फिर एक-दूसरे के चरणों का अभिवादन किया। तदनन्तर भुजाओं को भुजाओं से ठोकते हुए वे दोनों वीर ताल ठोकने लगे।

**स्कन्धे दोर्भ्यां समाहत्य निहत्य च मुहुर्मुहुः।**
**अङ्गमङ्गैः समाश्लिष्य पुनरास्फालनं विभो ॥४७॥**

राजन् ! फिर वे दोनों हाथों से एक-दूसरे के कन्धे पर बार-बार चोट करते हुए अङ्ग-अङ्ग से भिड़कर आपस में गुँथ गये तथा एक-दूसरे को बार-बार रगड़ने लगे।

**करसम्पीडनं कृत्वा गर्जन्तौ वारणाविव।**
**नर्दन्तौ मेघसंकाशौ बाहुप्रहरणावुभौ ॥४८॥**

एक-दूसरे के हाथ दबाकर वे दोनों दो गजराजों की भाँति गरजने लगे। वे दोनों ही भुजाओं से प्रहार करते हुए मेघ के समान गम्भीर स्वर से महानाद करने लगे।

**तलेनाहन्यमानौ तु अन्योन्यं कृतवीक्षणौ।**
**सिंहाविव सुसंक्रुद्धावाकृष्याकृष्य युध्यताम् ॥४९॥**

थप्पड़ों की मार खाकर वे परस्पर घूर-घूर कर देखते और अत्यन्त क्रोध में भरे हुए दो सिंहों के समान एक-दूसरे को खींच-खींचकर लड़ने लगे।

**तयोर्युद्धं ततो द्रष्टुं समेताः पुरवासिनः।**
**ब्राह्मणा वणिजश्चैव क्षत्रियाश्च सहस्रशः ॥५०॥**
**शूद्राश्च नरशार्दूल स्त्रियो वृद्धाश्च सर्वशः।**
**निरन्तरमभूत् तत्र जनौघैरभिसंवृतम् ॥५१॥**

जनमेजय ! उस समय उनका मल्ल-युद्ध देखने के लिए नगरवासी सहस्रों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्रियाँ एवं वृद्ध एकत्र हो गये। मनुष्यों की अपार भीड़ से वह स्थान खचाखच भर गया।

**तयोरथ भुजाघातान्निग्रहप्रग्रहात् तथा।**
**आसीत् सुभीमसम्पातो वज्रपर्वतयोरिव ॥५२॥**

उन दोनों की भुजाओं के आघात से तथा एक दूसरे के निग्रह-प्रग्रह[1] से ऐसा भयंकर पटपट शब्द होता था, मानो वज्र और पर्वत आपस में टकरा रहे हों।

**उभौ परमसंहृष्टौ बलेन बलिनां वरौ।**
**अन्योन्यस्यान्तरं प्रेप्सू परस्परजयैषिणौ ॥५३॥**

बलवानों में श्रेष्ठ वे दोनों वीर अत्यन्त हर्ष और उत्साह में भरे हुए थे तथा एक-दूसरे की दुर्बलता पर दृष्टि रखते हुए परस्पर बलपूर्वक विजय पाने के इच्छुक थे।

---

१. दोनों हाथों से शत्रु का कन्धा पकड़कर खींचने और उसे मुँह के बल नीचे गिराने की चेष्टा का नाम 'निग्रह' तथा शत्रु को उत्तान गिराने के लिए उसके पैरों को पकड़कर खींचने का नाम 'प्रग्रह' है।

**व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ।**
**बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥५४॥**

उन दोनों की छाती चौड़ी और भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं। दोनों ही मल्लयुद्ध में कुशल थे और लोहे की परिघ (मूसलाकार शस्त्र) जैसी मोटी भुजाओं को भिड़ाकर परस्पर गुँथ जाते थे।

**कार्तिकस्य तु मासस्य प्रवृत्तं प्रथमेऽहनि।**
**अनाहारं दिवारात्रमविश्रान्तमवर्तत ॥५५॥**

कार्तिक मास के प्रथम दिन उन दोनों का मल्ल-युद्ध आरम्भ हुआ और दिन-रात बिना खाये-पिये अविराम गति से चलता रहा।

**तद्वृत्तं तु त्रयोदश्यां समवेतं महात्मनोः।**
**चतुर्दश्यां निशायां तु निवृत्तो मागधः क्लमात् ॥५६॥**

उन वीर महात्माओं का वह युद्ध इसी रूप में त्रयोदशी[1] तक चलता रहा। चतुर्दशी की रात्रि में मगध-नरेश जरासन्ध थककर युद्ध से निवृत्त-सा होने लगा।

**तं राजानं तथा क्लान्तं दृष्ट्वा राजञ्जनार्दनः।**
**उवाच भीमकर्माणं भीमं सम्बोधयन्निव ॥५७॥**

राजन्! मगधनरेश को इस प्रकार थका देखकर श्रीकृष्ण ने भयानक कर्म करनेवाले भीम को सम्बोधन-सा करते हुए कहा—

**क्लान्तः शत्रुर्न कौन्तेय लभ्यः पीडयितुं रणे।**
**पीड्यमानो हि कार्त्स्न्येन जह्याज्जीवितमात्मनः ॥५८**

कुन्तीनन्दन! शत्रु थक गया हो तो युद्ध में उसे अधिक पीड़ा देना उचित नहीं है। यदि उसे पूर्णरूप से पीड़ा दी जाए तो वह अपने प्राणों को त्याग देगा।

**तस्मात् त्वया न कौन्तेय पीडनीयो जनाधिपः।**
**सममेतेन युध्यस्व बाहुभ्यां भरतर्षभ ॥५९॥**

पार्थ! तुम्हें राजा जरासन्ध को अधिक पीड़ा नहीं देनी चाहिए। भरतश्रेष्ठ! तुम अपनी भुजाओं द्वारा इनके साथ समभाव से ही युद्ध करो।

**एवमुक्तस्तदा भीमो जरासन्धमरिन्दमः।**
**उत्क्षिप्य भ्रामयामास बलवन्तं महाबलः ॥६०॥**

श्रीकृष्ण के ऐसा संकेत करने पर शत्रुदमन महाबली भीम ने उसी समय बलशाली जरासन्ध को उठाकर आकाश में घुमाना आरम्भ किया।

**भ्रामयित्वा शतगुणं जानुभ्यां भरतर्षभ।**
**बभञ्ज पृष्ठं संक्षिप्य निष्पिष्य विननाद च ॥६१॥**

भरतश्रेष्ठ जनमेजय! भीम ने उसे सौ बार घुमाकर धरती पर पटक दिया। फिर उसकी पीठ को धनुष की भाँति मोड़कर दोनों घुटनों की चोट से उसकी रीढ़ तोड़ डाली और अपने शरीर की रगड़ से उसे पीसते हुए भयंकर सिंहनाद किया।

**ततो राज्ञः कुलद्वारि प्रसुप्तमिव तं नृपम्।**
**रात्रौ गतासुमुत्सृज्य निश्चक्रमुररिन्दमाः ॥६२॥**

तत्पश्चात् शत्रुओं का मानमर्दन करनेवाले वे तीनों वीर रात्रि में जरासन्ध के प्राणहीन शरीर को सोते हुए के समान राजभवन के द्वार पर छोड़कर वहाँ से चल दिये।

**जरासन्धरथं कृष्णो योजयित्वा पताकिनम्।**
**आरोप्य भ्रातरौ चैव मोक्षयामास बान्धवान् ॥६३॥**

श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के ध्वजा-पताका से मण्डित दिव्य रथ को जोत लिया। भीम और अर्जुन को उसपर चढ़ाकर वे पहाड़ी खोह पर जा पहुँचे और वहाँ कारागार में पड़े हुए बन्धुस्वरूप सब राजाओं को बन्धन-मुक्त कर दिया।

**बन्धनाद् विप्रमुक्ताश्च राजानो मधुसूदनम्।**
**पूजयामासुरूचुश्च स्तुतिपूर्वमिदं वचः ॥६४॥**

बन्धन से मुक्त हुए राजाओं ने भी श्रीकृष्ण की पूजा की तथा उनकी स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा—

**नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दने।**
**भीमार्जुनबलोपेते धर्मस्य प्रतिपालनम् ॥६५॥**

देवकी के आनन्द को बढ़ानेवाले हे महाबाहु कृष्ण! भीम और अर्जुन के साथ आप जो धर्म की रक्षा कर रहे हैं वह आप जैसे धर्मज्ञ के लिए आश्चर्य की बात नहीं है।

---

१. तेरह दिन तक बिना खाये-पिये निरन्तर युद्ध विश्व-कीर्तिमान [World Record] है जिसे आज तक कोई नहीं तोड़ सका है। जैसे आजकल तैरने, निरन्तर बोलने, पैदल और साइकिल पर चलने के रिकार्ड हैं, ऐसा ही रिकार्ड यह भी है।

**जरासन्धह्रदे घोरे दुःखपङ्के निमज्जताम् ।**
**राज्ञां समभ्युद्धरणं यदिदं कृतमद्य वै ॥६६॥**

श्रीकृष्ण ! हम सब राजा दुःखरूपी कीचड़ से भरे जरासन्ध-रूपी भयानक कुण्ड में डूब रहे थे । आज आपने हमारा जो उद्धार किया है, वह आपके ही योग्य है ।

**किं कुर्मः पुरुषव्याघ्र शाधि नः प्रणतिस्थितान् ।**
**कृतमित्येव तद् विद्धि नृपैर्यद्यपि दुष्करम् ॥६७॥**

पुरुषसिंह ! हम सब आपके चरणों में पड़े हैं । आप हमें आज्ञा दीजिए, हम आपकी क्या सेवा करें ? यदि कोई दुष्कर कार्य भी हो, तो भी आपको यह समझना चाहिए कि हम सब राजाओं ने मिलकर उसे पूर्ण कर ही दिया ।

**तानुवाच हृषीकेशः समाश्वास्य महामनाः ।**
**युधिष्ठिरो राजसूयं क्रतुमाहर्तुमिच्छति ॥६८॥**

तब महामना श्रीकृष्ण ने उन सबको आश्वासन देकर कहा—"राजाओ ! धर्मराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं ।

**तस्य धर्मप्रवृत्तस्य पार्थिवत्वं चिकीर्षतः ।**
**सर्वैर्भवद्भिर्विज्ञाय साहाय्यं क्रियतामिति ॥६९॥**

"धर्म में तत्पर रहते हुए ही उन्हें सम्राट् पद प्राप्त करने की इच्छा हुई है । अतः इस कार्य में आप सब लोग उनकी सहायता करें ।"

**ततः सुप्रीतमनसस्ते नृपा नृपसत्तम ।**
**तथेत्येवाब्रुवन् सर्वे प्रतिगृह्यास्य तां गिरम् ॥७०॥**

हे राजेन्द्र ! तब उन सभी राजाओं ने प्रसन्न-चित्त होकर 'तथास्तु' कह श्रीकृष्ण की वह आज्ञा शिरोधार्य की ।

**जरासन्धात्मजश्चैव सहदेवो महामनाः ।**
**निर्ययौ सजनामात्यः पुरस्कृत्य पुरोहितम् ॥७१॥**

तत्पश्चात् जरासन्ध का पुत्र महामना सहदेव पुरोहित को आगे करके सेवकों और मन्त्रियों के साथ नगर से बाहर निकला ।

**स नीचैः प्रणतो भूत्वा बहुरत्नपुरोगमः ।**
**सहदेवो नृणां देवं वासुदेवमुपस्थितः ॥७२॥**

उसके आगे रत्नों का विशाल भण्डार आ रहा था । सहदेव बड़े विनीत भाव से चरणों में पड़कर नरदेव श्रीकृष्ण की शरण में आया ।

**भयार्ताय ततस्तस्मै कृष्णो दत्त्वाऽभयं तदा ।**
**आददेऽस्य महार्हाणि रत्नानि पुरुषोत्तमः ॥७३॥**

पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने भय से पीड़ित सहदेव को अभयदान देकर उसके लाये बहुमूल्य रत्नों की भेंट स्वीकार कर ली ।

**अभ्यषिञ्चच्च तत्रैव जरासन्धात्मजं मुदा ।**
**गत्वैकत्वं च कृष्णेन पार्थाभ्यां चैव सत्कृतः ॥७४॥**

तदनन्तर श्रीकृष्ण ने जरासन्ध-पुत्र सहदेव को प्रसन्नपूर्वक वहीं पिता के राज्य पर अभिषिक्त कर उसे अपना अभिन्न सुहृद् बना लिया । भीम और अर्जुन ने भी उसका बड़ा सत्कार किया ।

**विवेश राजा द्युतिमान् बार्हद्रथपुरं नृप ।**
**अभिषिक्तो महाबाहुर्जारासन्धिर्महात्मभिः ॥७५॥**

हे राजन् ! उन महात्माओं द्वारा अभिषिक्त हो महाबाहु जरासन्ध-कुमार तेजस्वी राजा सहदेव अपने पिता के नगर में लौट गया ।

**कृष्णस्तु सह पार्थाभ्यां श्रिया परमया युतः ।**
**रत्नान्यादाय भूरीणि प्रययौ पुरुषर्षभः ॥७६॥**

उधर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सर्वोत्तम शोभा से सम्पन्न हो, प्रचुर रत्नों की भेंट ले दोनों कुन्तीकुमारों के साथ वहाँ से चल पड़े ।

**इन्द्रप्रस्थमुपागम्य पाण्डवाभ्यां सहाच्युतः ।**
**समेत्य धर्मराजं तं प्रीयमाणोऽभ्यभाषत ॥७७॥**

भीमसेन और अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ में आकर श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिर से मिले तथा अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—

**दिष्ट्या भीमेन बलवाञ्जरासन्धो निपातितः ।**
**राजानो मोक्षितश्चैव बन्धनान्नृपसत्तम ॥७८॥**

"हे नरेन्द्र ! सौभाग्य से महाबली भीमसेन ने जरासन्ध को मार गिराया और समस्त राजाओं को उसकी कैद से छुड़ा दिया ।

**दिष्ट्या कुशलिनौ चेमौ भीमसेनधनञ्जयौ ।**
**पुनः स्वनगरं प्राप्तावक्षताविति भारत ॥७९॥**

"हे भारत ! सौभाग्य से भीम और अर्जुन दोनों भाई अपने नगर में पुनः सकुशल लौट आये हैं तथा इन्हें कोई हानि नहीं पहुँची ।"

ततो युधिष्ठिरः कृष्णं पूजयित्वा यथार्हतः ।
भीमसेनार्जुनौ चैव प्रहृष्टः परिषस्वजे ॥८०॥

तब महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का यथा-योग्य आदर-सत्कार कर भीम और अर्जुन का भी प्रसन्नतापूर्वक आलिंगन किया ।

घातयित्वा जरासन्धं बुद्धिपूर्वमरिन्दमः ।
धर्मराजमनुज्ञाप्य प्रययौ स्वां पुरीं प्रति ॥८१॥

बुद्धिपूर्वक जरासन्ध को मरवाकर शत्रुमर्दन श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर अपनी द्वारकापुरी को चले गये ।

**इति महाभारते सभापर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥**

# षष्ठोऽध्यायः

## पाण्डवों की दिग्विजय, युधिष्ठिर की दीक्षा, विभिन्न देशों के राजाओं का आगमन और उनके भोजन-विश्राम आदि की सुव्यवस्था

वैशम्पायन उवाच

**पार्थः प्राप्य धनुः श्रेष्ठमक्षय्यौ च महेषुधी ।
रथं ध्वजं सभां चैव युधिष्ठिरमभाषत ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! अर्जुन श्रेष्ठ धनुष, दो बड़े और अक्षय तरकस, दिव्य रथ, ध्वज और सभा-भवन पहले ही प्राप्त कर चुके थे, अब वे युधिष्ठिर से बोले—

अर्जुन उवाच

**धनुरस्त्रं शरा वीर्यं पक्षो भूमिर्यशो बलम् ।
प्राप्तमेतन्मया राजन् दुष्प्रापं यदभीप्सितम् ॥२॥**

**अर्जुन बोले**—राजन् ! मुझे धनुष, अस्त्र, बाण, पराक्रम, श्रीकृष्ण जैसे सहायक, भूमि, यश और बल—ये सभी दुर्लभ और मनोवाञ्छित वस्तुएँ प्राप्त हो चुकी हैं ।

**तत्र कृत्यमहं मन्ये कोशस्य परिवर्धनम् ।
करमाहारयिष्यामि राज्ञः सर्वान् नृपोत्तम ॥३॥**

हे नरेन्द्र ! अब मैं अपने कोश को बढ़ाना ही आवश्यक कार्य समझता हूँ । मेरी इच्छा है कि सभी राजाओं को जीतकर उनसे कर प्राप्त करूँ ।

वैशम्पायन उवाच

**धनञ्जयवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
स्निग्धगम्भीरनादिन्या तं गिरा प्रत्यभाषत ॥४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! अर्जुन का कथन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर स्नेहसिक्त गम्भीर वाणी में उनसे इस प्रकार बोले—

**स्वस्तिवाच्यार्हतो विप्रान् प्रयाहि भरतर्षभ ।
विजयस्ते ध्रुवं पार्थ प्रियं काममवाप्स्यसि ॥५॥**

भरतकुलभूषण ! पूजनीय ब्राह्मणों से स्वस्ति-वाचन कराकर यात्रा करो । पार्थ ! तुम्हारी विजय सुनिश्चित है, तुम मनोवाञ्छित कामनाओं को पूर्ण करोगे ।

**इत्युक्तः प्रययौ पार्थः सैन्येन महताऽऽवृतः ।
अग्निदत्तेन दिव्येन रथेनाद्भुतकर्मणा ॥६॥
तथैव भीमसेनोऽपि यमौ च पुरुषर्षभौ ।
ससैन्याः प्रययुः सर्वे धर्मराजेन पूजिताः ॥७॥**

उनका आदेश पाकर कुन्तीपुत्र अर्जुन विशाल सेना के साथ अग्निदेव द्वारा प्रदत्त अद्भुतकर्मा दिव्य रथ द्वारा वहाँ से चले । इसी प्रकार भीससेन तथा नरश्रेष्ठ नकुल और सहदेव—सब भाइयों ने भी धर्म-राज से सम्मानित हो सेनाओं के साथ दिग्विजय के लिए प्रयाण किया ।

**दिशं धनपतेरिष्टामजयत् पाकशासनिः ।
भीमसेनस्तथा प्राचीं सहदेवस्तु दक्षिणाम् ।
प्रतीचीं नकुलो राजन् दिशं व्यजयतास्त्रवित् ॥८॥**

राजन् ! इन्द्रपुत्र अर्जुन ने कुबेर की प्रिय उत्तर दिशा पर विजय प्राप्त की । भीम ने पूर्व दिशा को, सहदेव ने दक्षिण और अस्त्रवेत्ता नकुल ने पश्चिम दिशा को जीत लिया ।

**खाण्डवप्रस्थमध्यस्थो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
आसीत् परमया लक्ष्म्या सुहृद्गणवृतः प्रभुः ॥९॥**

केवल धर्मराज युधिष्ठिर ही सुहृदों से घिरे हुए

अपनी उत्तम राजलक्ष्मी के साथ खाण्डवप्रस्थ में रह गये थे।

**रक्षणाद् धर्मराजस्य सत्यस्य परिपालनात्।**
**शत्रूणां क्षपणाच्चैव स्वकर्मनिरताः प्रजाः ॥१०॥**

धर्मराज युधिष्ठिर प्रजा की रक्षा, सत्य का पालन और शत्रुओं का संहार करते थे। उनके इन कार्यों से निश्चिन्त और उत्साहित होकर समस्त प्रजावर्ग अपने-अपने वर्णाश्रमोचित कर्मों के पालन में तत्पर रहते थे।

**बलीनां सम्यगादानाद् धर्मतश्चानुशासनात्।**
**निकामवर्षी पर्जन्यः स्फीतो जनपदोऽभवत् ॥११॥**

न्यायपूर्वक कर लेने और धर्मपूर्वक शासन करने से उनके राज्य में मेघ इच्छानुसार वर्षा करते थे। इस प्रकार युधिष्ठिर का सम्पूर्ण जनपद धन-धान्य से सम्पन्न हो गया था।

**सर्वारम्भाः सुप्रवृत्ता गोरक्षा कर्षणं वणिक्।**
**विशेषात् सर्वमेवैतत् संजज्ञे राजकर्मणः ॥१२॥**

गोरक्षा, खेती और व्यापार आदि सभी कार्य अच्छी प्रकार होने लगे थे। विशेषतः राजा की सुव्यवस्था से ही यह सब-कुछ उत्तम रूप से सम्पन्न होता था।

**अवर्षं चातिवर्षं च व्याधिपावकमूर्च्छनम्।**
**सर्वमेतत् तदा नासीद् धर्मनित्ये युधिष्ठिरे ॥१३॥**

धर्मशील युधिष्ठिर के राज्य में अनावृष्टि, अतिवृष्टि, व्याधि, रोग तथा आग लगने आदि उपद्रवों का नाम तक नहीं था।

**प्रियं कर्तुमुपस्थातुं बलिकर्म स्वभावजम्।**
**अभिहर्तुं नृपा जग्मुर्नान्यैः कार्यैः कथञ्चन ॥१४॥**

राजा लोग उनके यहाँ स्वाभाविक भेंट देने अथवा उनका कोई प्रिय कार्य करने के लिए ही आते थे, युद्धादि किसी अन्य कार्य से नहीं।

**धर्म्यैर्धनागमैस्तस्य ववृधे निचयो महान्।**
**कर्तुं यस्य न शक्येत क्षयो वर्षशतैरपि ॥१५॥**

धर्मपूर्वक प्राप्त होनेवाले धन की आय से उनका महान् धन-भण्डार इतना बढ़ गया था कि सैकड़ों वर्ष खुले हाथ लुटाने पर भी उसे समाप्त नहीं किया जा सकता था।

**स्वकोष्ठस्य परीमाणं कोशस्य च महीपतिः।**
**विज्ञाय राजा कौन्तेयो यज्ञायैव मनो दधे ॥१६॥**

अपने अन्न-वस्त्र के भण्डार तथा कोश का परिमाण जानकर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने यज्ञ करने का निश्चय किया।

**सुहृदश्चैव ये सर्वे पृथक् च सह चाब्रुवन्।**
**यज्ञकालस्तव विभो क्रियतामत्र साम्प्रतम् ॥१७॥**

उनके जितने हितैषी मित्र थे, वे सभी अलग-अलग और एक साथ यही कहने लगे—प्रभो! आपके राजसूय यज्ञ करने का उपयुक्त समय आ गया है, अतः अब आप उसका आरम्भ कीजिए।

**अथैवं ब्रुवतामेव तेषामभ्याययौ हरिः।**
**उच्चावचमुपादाय धर्मराजाय माधवः ॥१८॥**

वे सुहृद् जन इस प्रकार की बातें कर ही रहे थे कि उसी समय श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिर के लिए नाना प्रकार के रत्नों की भेंट लेकर वहाँ आ पहुँचे।

**तं मुदाभिसमागम्य सत्कृत्य च यथाविधि।**
**स पृष्ट्वा कुशलं चैव सुखासीनं युधिष्ठिरः ॥१९॥**
**धौम्य-द्वैपायन-मुखैर्ऋत्विग्भिः पुरुषर्षभ।**
**भीमार्जुन-यमैश्चैव सहितः कृष्णमब्रवीत् ॥२०॥**

नरश्रेष्ठ जनमेजय! राजा युधिष्ठिर अति प्रसन्न होकर उनसे मिले। उनका विधिपूर्वक स्वागत-सत्कार करके कुशल-मङ्गल पूछा। जब वे सुखपूर्वक बैठ गये, तब धौम्य, द्वैपायन आदि ऋत्विजों तथा भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव—चारों भाइयों के साथ निकट जाकर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा—

युधिष्ठिर उवाच

**त्वत्कृते पृथिवी सर्वा मद्वशे कृष्ण वर्तते।**
**धनं च बहु वार्ष्णेय त्वत्प्रसादादुपार्जितम् ॥२१॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हे श्रीकृष्ण! आपकी कृपा से आपकी सेवा के लिए सारी पृथिवी इस समय मेरे अधीन हो गई है। वार्ष्णेय! मुझे धन भी खूब प्राप्त हो गया है।

**तदहं यष्टुमिच्छामि दाशार्ह सहितस्त्वया।**
**अनुजैश्च महाबाहो तन्मानुज्ञातुमर्हसि ॥२२॥**

हे महाबाहु दाशार्ह! अब मैं आप तथा अपने

छोटे भाइयों के साथ यज्ञ करना चाहता हूँ। इसके लिए आप मुझे अनुमति प्रदान करें।

श्रीकृष्ण उवाच

**त्वमेव राजशार्दूल सम्राडर्हो महाक्रतुम्।**
**संप्राप्नुहि त्वया प्राप्ते कृतकृत्यास्ततो वयम् ॥२३॥**

**श्रीकृष्ण ने कहा**—हे राजसिंह! आप सम्राट् होने के योग्य हैं, अतः आप ही इस महान् यज्ञ की दीक्षा ग्रहण कीजिए। आपके दीक्षा लेने पर हम सब कृतकृत्य हो जाएँगे।

**यजस्वाभीप्सितं यज्ञं मयि श्रेयस्यवस्थिते।**
**नियुङ्क्ष्व त्वं च मां कृत्ये सर्वं कर्तास्मि ते वचः ॥२४॥**

आप अपने अभीष्ट यज्ञ को आरम्भ कीजिए। मैं आपका कल्याण करने के लिए सदा उद्यत हूँ। मुझे भी आवश्यक कार्य में लगाइए। मैं आपकी सब आज्ञाओं का पालन करूँगा।

वैशम्पायन उवाच

**अनुज्ञातस्तु कृष्णेन पाण्डवो भ्रातृभिः सह।**
**यष्टुञ्च राजसूयेन साधनान्युपचक्रमे ॥२५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर भाइयोंसहित पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने के लिए साधन जुटाना आरम्भ किया।

**ततस्त्वाज्ञापयामास पाण्डवोऽरिनिबर्हणः।**
**सहदेवं युधां श्रेष्ठं मन्त्रिणश्चैव सर्वशः ॥२६॥**

उस समय शत्रुसंहारक पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ने योद्धाओं में श्रेष्ठ सहदेव और सभी मन्त्रियों को आज्ञा दी—

**अस्मिन् क्रतौ यथोक्तानि यज्ञाङ्गानि द्विजातिभिः।**
**तथोपकरणं सर्वं मङ्गलानि च सर्वशः ॥२७॥**
**अधियज्ञांश्च सम्भारान् धौम्योक्तान् क्षिप्रमेव हि।**
**समानयन्तु पुरुषा यथायोगं यथाक्रमम् ॥२८॥**

"इस यज्ञ के लिए ब्राह्मणों द्वारा निर्दिष्ट यज्ञ के अङ्गभूत सामान, आवश्यक उपकरण, सब प्रकार की मांगलिक वस्तुएँ तथा धौम्यजी की बताई हुई यज्ञोपयोगी सामग्री—इन सभी वस्तुओं को क्रमशः जैसे मिलें, वैसे शीघ्र ही अपने सेवक जाकर ले आएँ।"

**तद्वाक्यसमकालं च कृतं सर्वं न्यवेदयत्।**
**सहदेवो युधां श्रेष्ठो धर्मराजे युधिष्ठिरे ॥२९॥**

धर्मराज युधिष्ठिर की बात समाप्त होते ही योद्धाओं में श्रेष्ठ सहदेव ने उनसे निवेदन किया—"यह सब व्यवस्था हो चुकी है।"

**ततो द्वैपायनो राजन्नृत्विजः समुपानयत्।**
**स्वयं ब्रह्मत्वमकरोत् तस्य सत्यवतीसुतः ॥३०॥**

राजन्! महर्षि द्वैपायन व्यास बहुत-से ऋत्विजों को ले आये और सत्यवतीनन्दन व्यास ने उस यज्ञ में ब्रह्मा का आसन स्वयं सँभाला।

**तत आज्ञापयामास स राजा राजसत्तमः।**
**सहदेवं तदा सद्यो मन्त्रिणं पुरुषर्षभः ॥३१॥**
**आमन्त्रणार्थं दूताँस्त्वं प्रेषयस्वाशुगान् द्रुतम्।**
**उपश्रुत्य वचो राज्ञः स दूतान् प्राहिणोत् तदा ॥३२॥**

तत्पश्चात् राजशिरोमणि नरश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर ने तुरन्त मन्त्री सहदेव को आज्ञा दी, "सब राजाओं तथा ब्राह्मणों को आमन्त्रित करने के लिए शीघ्रगामी दूत तुरन्त भेजो!" राजा की आज्ञा पाते ही सहदेव ने दूतों को भेजा और कहा—

**आमन्त्रयध्वं राष्ट्रेषु ब्राह्मणान् भूमिपानथ।**
**विशश्च मान्यान् शूद्रांश्च सर्वानानयतेति च ॥३३॥**

"तुम लोग सभी राज्यों में घूम-घूमकर वहाँ के राजाओं, ब्राह्मणों, वैश्यों तथा सब माननीय शूद्रों को निमन्त्रित करो और उन्हें बुलाकर ले आओ।"

**ततस्ते तु यथाकालं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।**
**दीक्षयाञ्चक्रिरे विप्रा राजसूयाय भारत ॥३४॥**

हे भारत! तत्पश्चात् वहाँ आये हुए सब ब्राह्मणों ने ठीक समय पर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ की दीक्षा दी।

**दीक्षितः स तु धर्मात्मा धर्मराजो युधिष्ठिरः।**
**जगाम यज्ञायतनं वृतो विप्रैः सहस्रशः ॥३५॥**

यज्ञ की दीक्षा लेकर धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिर बहुत-से ब्राह्मणों से घिरे हुए यज्ञ-मण्डप में गये।

**ततो युधिष्ठिरो राजा प्रेषयामास पाण्डवम्।**
**नकुलं हास्तिनपुरं भीष्माय पुरुषर्षभः ॥३६॥**
**द्रोणाय धृतराष्ट्राय विदुराय कृपाय च।**
**भ्रातृणां चैव सर्वेषां येऽनुरक्ता युधिष्ठिरे ॥३७॥**

तब पुरुषोत्तम राजा युधिष्ठिर ने भीष्म, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, विदुर, कृपाचार्य तथा दुर्योधन आदि सब भाइयों तथा अपने में अनुराग रखनेवाले अन्य जो लोग वहाँ रहते थे, उन सबको बुलाने के लिए पाण्डुपुत्र नकुल को हस्तिनापुर भेजा।

**स गत्वा हास्तिनपुरं नकुलः समितिञ्जयः।**
**भीष्ममामन्त्रयाञ्चक्रे धृतराष्ट्रं च पाण्डवः ॥३८॥**

युद्धविजयी पाण्डुपुत्र नकुल ने हस्तिनापुर में जाकर भीष्म और धृतराष्ट्र को निमन्त्रित किया।

**सत्कृत्यामन्त्रितास्तेन आचार्यप्रमुखास्ततः।**
**प्रययुः प्रीतमनसो यज्ञं ब्रह्मपुरःसराः ॥३९॥**

तदनन्तर उन्होंने अत्यन्त सत्कारपूर्वक आचार्य-प्रमुख आदि को भी निमन्त्रण दिया। वे सब लोग अति प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को आगे करके उस यज्ञ में गये।

**द्रष्टुकामाः सभां चैव धर्मराजं च पाण्डवम्।**
**दिग्भ्यः सर्वे समापेतुः क्षत्रियास्तत्र भारत ॥४०॥**

हे भारत ! धर्मराज युधिष्ठिर और उनकी सभा को देखने के लिए समस्त दिशाओं से सभी क्षत्रिय वहाँ आये।

**धृतराष्ट्रश्च भीष्मश्च विदुरश्च महामतिः।**
**दुर्योधनपुरोगाश्च भ्रातरः सर्व एव ते ॥४१॥**
**गान्धारराजः सुबलः शकुनिश्च महाबलः।**
**तथा शल्यश्च बलवान् बाह्लिकश्च महाबलः ॥४२॥**
**अश्वत्थामा कृपो द्रोणः सैन्धवश्च जयद्रथः।**
**यज्ञसेनः सपुत्रश्च शाल्वश्च वसुधाधिपः ॥४३॥**
**प्राग्ज्योतिषश्च नृपतिर्भगदत्तो महारथः।**
**राजानो राजपुत्राश्च नानाजनपदेश्वराः ॥४४॥**

धृतराष्ट्र, भीष्म, महाबुद्धिमान् विदुर, दुर्योधन आदि सभी भाई, गान्धारराज सुबल, महाबली शकुनि, बलवान् राजा शल्य, महाबली बाह्लिक, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, सिन्धुराज जयद्रथ, पुत्रोंसहित महाराज द्रुपद, राजा शाल्व, प्राग्ज्योतिषपुर के नरेश महारथी भगदत्त तथा नाना जनपदों के शासक राजा एवं राजकुमार उस यज्ञ में पधारे थे।

**ददुस्तेषामावसथान् धर्मराजस्य शासनात्।**
**बहुभक्ष्यान्वितान् राजन् दीर्घिकातरुशोभितान् ॥४५**

धर्मराज की आज्ञा से प्रबन्धकों ने उनके ठहरने के लिए उत्तम भवन दिये जो प्रभूत भोजन-सामग्री से सम्पन्न थे। उन घरों में स्नान के लिए बावलियाँ बनी थीं और वे भाँति-भाँति के वृक्षों से सुशोभित थे।

**तत् सदः पार्थिवैः कीर्णं ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः।**
**भ्राजते स्म तदा राजन् नाकपृष्ठं यथामरैः ॥४६॥**

जनमेजय ! उस समय राजाओं, ब्राह्मणों और महर्षियों से भरा हुआ वह यज्ञमण्डप देवताओं से भरे-पूरे स्वर्गलोक के समान शोभा पा रहा था।

**इति महाभारते सभापर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥६॥**

# सप्तमोऽध्यायः

## राजसूय यज्ञ का वर्णन, भीष्मजी की अनुमति से श्रीकृष्णजी की अग्रपूजा और शिशुपाल का बहिर्गमन

वैशम्पायन उवाच

**पितामहं गुरुं चैव प्रत्युद्गम्य युधिष्ठिरः।**
**अभिवाद्य ततो राजन् वचनमिदमब्रवीत् ॥१॥**
**भीष्मं द्रोणं कृपं द्रौणिं दुर्योधनविविंशती।**
**अस्मिन् यज्ञे भवन्तो मामनुगृह्णन्तु सर्वशः ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! पितामह भीष्म तथा गुरु द्रोणाचार्य आदि का स्वागत करके युधिष्ठिर ने उनके चरणों में प्रणाम किया फिर भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, दुर्योधन और विविंशति से कहा—"इस यज्ञ में आप लोग सब प्रकार से मुझपर अनुग्रह करें।"

**एवमुक्त्वा स तान् सर्वान् दीक्षितः पाण्डवाग्रजः।**
**युयोज स यथायोग्यमधिकारेष्वनन्तरम् ॥३॥**

ऐसा निवेदन करके यज्ञदीक्षित युधिष्ठिर ने उन सबको यथायोग्य अधिकारों में लगाया।

**भक्ष्यभोज्याधिकारेषु दुःशासनमयोजयत्।**
**परिग्रहे ब्राह्मणानामश्वत्थामानमुक्तवान् ॥४॥**

भक्ष्य-भोज्य आदि सामग्रियों की देख-रेख तथा

उसके बाँटने-परोसने की व्यवस्था का अधिकार दुःशासन को दिया और ब्राह्मणों के स्वागत-सत्कार का भार अश्वत्थामा को सौंपा।

**राज्ञां तु प्रतिपूजार्थं संजयं स न्ययोजयत्।**
**कृताकृतपरिज्ञाने भीष्मद्रोणौ महामती ॥५॥**

राजाओं के सेवा-सत्कार के लिए धर्मराज ने संजय को नियुक्त किया। कितना काम हो गया और कितना शेष है, इसकी देख-भाल का काम महाबुद्धिमान् भीष्म और द्रोणाचार्य को मिला।

**हिरण्यस्य सुवर्णस्य रत्नानां चान्ववेक्षणे।**
**दक्षिणानां च वै दाने कृपं राजा न्ययोजयत् ॥६॥**

उत्तम वर्ण के सुवर्ण तथा रत्नों के परखने, रखने और दक्षिणा देने के कार्य में राजा युधिष्ठिर ने कृपाचार्य को नियुक्त किया।

**क्षत्ता व्ययकरस्त्वासीद् विदुरः सर्वधर्मवित्।**
**दुर्योधनस्त्वर्हणानि प्रतिजग्राह सर्वशः ॥७॥**

सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता विदुरजी धन को व्यय करने के कार्य में नियुक्त किये गये। राजा दुर्योधन कर देनेवाले राजाओं से सब प्रकार की भेंट स्वीकार करने और व्यवस्थापूर्वक रखने का काम सँभाल रहे थे।

**चरणक्षालने कृष्णो ब्राह्मणानां स्वयं ह्यभूत्। □**
**सर्वलोकसमावृत्तः पिप्रीषुः फलमुत्तमम् ॥८॥**

सब लोगों से घिरे हुए श्रीकृष्ण सबको सन्तुष्ट करने की इच्छा से स्वयं ही ब्राह्मणों के चरण धोने में लगे थे, जिससे उत्तम फल की प्राप्ति होती है।

**द्रष्टुकामाः सभां चैव धर्मराजं युधिष्ठिरम्।**
**न कश्चिदाहरत् तत्र सहस्रावरमर्हणम् ॥९॥**

धर्मराज युधिष्ठिर को और उनकी सभा को देखने की इच्छा से आये हुए राजाओं में कोई भी ऐसा नहीं था, जो एक सहस्र स्वर्णमुद्रा से कम भेंट लाया हो।

**कथं तु मम कौरव्यो रत्नदानैः समाप्नुयात्।**
**यज्ञमित्येव राजानः स्पर्धमाना ददुर्धनम् ॥१०॥**

सभी राजा यह होड़ लगाकर धन दे रहे थे कि कुरुनन्दन युधिष्ठिर किसी प्रकार मेरे ही दिये हुए रत्नों के दान से अपना यज्ञ सम्पूर्ण करें।

**सर्वान् जनान् सर्वकामैः समृद्धैः समतर्पयत्।**
**अन्नवान् बहुभक्ष्यश्च भुक्तवज्जनसंवृतः ॥११॥**

उधर राजा युधिष्ठिर ने उस यज्ञ में पधारे सब लोगों को उनकी सभी कामनाएँ पूर्ण करके सन्तुष्ट किया। वह यज्ञ-समारोह अन्न से भरा-पूरा था, उसमें खाने-पीने की सब सामग्रियाँ पर्याप्त परिमाण में सदा प्रस्तुत रहती थीं। वह यज्ञ खा-पीकर तृप्त हुए लोगों से परिपूर्ण था।

**यथा देवास्तथा विप्रा दक्षिणान्नमहाधनैः।**
**ततृपुः सर्ववर्णाश्च तस्मिन् यज्ञे मुदान्विताः ॥१२॥**

उस यज्ञ से जिस प्रकार अग्नि, वायु, जल आदि देवता तृप्त हुए, उसी प्रकार दक्षिणा में अन्न और विपुल धन पाकर ब्राह्मण तृप्त हो गये। उस यज्ञ में सभी वर्णों के लोग बड़े प्रसन्न थे, सबको पूर्ण तृप्ति मिली थी।

**ततोऽभिषेचनीयेऽह्नि ब्राह्मणा राजभिः सह।**
**अन्तर्वेदीं प्रविविशुः सत्कारार्हा महर्षयः ॥१३॥**

तदनन्तर अभिषेचनीय [पूज्य पुरुषों के अभिषेक] कार्य के दिन सत्कार के योग्य महर्षिगण और ब्राह्मण लोग राजाओं के साथ यज्ञशाला में गये।

**ततो भीष्मोऽब्रवीद् राजन् धर्मराजं युधिष्ठिरम्।**
**क्रियतामर्हणं राज्ञां यथार्हमिति भारत ॥१४॥**

महाराज! यज्ञशाला में प्रविष्ट होने पर भीष्मजी ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा—"भरतकुलभूषण युधिष्ठिर! अब तुम यहाँ पधारे हुए इन राजाओं का यथायोग्य सत्कार करो।

**आचार्यमृत्विजं चैव संयुजं च युधिष्ठिर।**
**स्नातकं च प्रियं प्राहुः षडर्घ्यार्हान् नृपं तथा ॥१५॥**

आचार्य, ऋत्विक्, सम्बन्धी, स्नातक, प्रिय मित्र और राजा—इन छहों को अर्घ्य देकर पूजने योग्य बताया गया है।

**एतानर्घ्यानभिगतानाहुः संवत्सरोषितान्।**
**त इमे कालपूगस्य महतोऽस्मानुपागताः ॥१६॥**

ये यदि एक वर्ष के पश्चात् अपने यहाँ पधारें तो इन्हें अर्घ्य प्रदान कर इनकी पूजा करनी चाहिए, ऐसा शास्त्रवेत्ताओं का कथन है। ये सभी नरेश तो हमारे यहाँ बहुत समय के पश्चात् आये हैं।

**एषामेकैकशो राजन्नर्घ्यमानीयतामिति ।**
**अथ चैषां वरिष्ठाय समर्थायोपनीयताम् ॥१७॥**

अतः राजन् ! तुम इन सबके लिए बारी-बारी से अर्घ्य दो तथा इन सबमें जो श्रेष्ठ और शक्तिशाली हो, उसे सबसे पहले अर्घ्य प्रदान करो ।

युधिष्ठिर उवाच

**कस्मै भवान् मन्यतेऽर्घ्यमेकस्मै कुरुनन्दन ।**
**उपनीयमानं युक्तं च तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१८॥**

**युधिष्ठिर ने पूछा**—कुरुनन्दन पितामह ! इन समागत नरेशों में आप किसको सबसे पहले अर्घ्य प्रदान करना उचित समझते हैं, यह मुझे बताइए !

भीष्म उवाच

**एष ह्येषां समस्तानां तेजोबलपराक्रमैः ।**
**मध्ये तपन्निवाभाति ज्योतिषामिव भास्करः ॥१९॥**
**असूर्यमिव सूर्येण निर्वातमिव वायुना ।**
**भासितं ह्लादितं चैव कृष्णेनेदं सदो हि नः ॥२०॥**

**भीष्म बोले**—हे कुन्तीनन्दन ! ये श्रीकृष्ण सब समागत राजाओं के मध्य में अपने तेज, बल और पराक्रम से उसी प्रकार देदीप्यमान हो रहे हैं, जैसे ग्रह-नक्षत्रों में भुवनभास्कर सूर्य । अन्धकारपूर्ण स्थान जैसे सूर्य का उदय होने पर ज्योति से जगमगा उठता है और वायु-हीन स्थान जैसे वायु के संचार से प्राण-वान् हो जाता है, वैसे ही श्रीकृष्ण द्वारा हमारी यह सभा आह्लादित एवं प्रकाशित हो रही है [अतः ये ही अग्रपूजा के योग्य हैं ।]

वैशम्पायन उवाच

**तस्मै भीष्माभ्यनुज्ञातः सहदेवः प्रतापवान् ।**
**उपजह्रेऽथ विधिवद् वार्ष्णेयायार्घ्यमुत्तमम् ॥२१॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—पितामह भीष्म की आज्ञा पाकर प्रतापी सहदेव ने वृष्णिकुलभूषण श्रीकृष्ण को विधिपूर्वक उत्तम अर्घ्य निवेदन किया ।

**प्रतिजग्राह तत् कृष्णः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।**
**शिशुपालस्तु तां पूजां वासुदेवे न चक्षमे ॥२२॥**

श्रीकृष्ण ने शास्त्रविधि के अनुसार वह अर्घ्य स्वीकार किया । वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण की उस पूजा को राजा शिशुपाल सहन नहीं कर सका ।

**स उपालभ्य भीष्मं च धर्मराजं च संसदि ।**
**अपाक्षिपद् वासुदेवं चेदिराजो महाबलः ॥२३॥**

महाबली चेदिराज भरी सभा में भीष्म और धर्मराज युधिष्ठिर को उलाहना देकर वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण पर आक्षेप करने लगा ।

शिशुपाल उवाच

**नायमर्हति वार्ष्णेयस्तिष्ठत्स्विह महात्मसु ।**
**महीपतिषु कौरव्य राजवत् पार्थिवार्हणम् ॥२४॥**

**शिशुपाल ने कहा**—कौरव्य ! यहाँ इन महात्मा भूमिपतियों के रहते हुए यह वृष्णिवंशी कृष्ण राजाओं की भाँति राजोचित पूजा का अधिकारी कदापि नहीं हो सकता ।

**नायं युक्तः समाचारः पाण्डवेषु महात्मसु ।**
**यत् कामात् पुण्डरीकाक्षं पाण्डवार्चितवानसि ॥२५॥**
**बाला यूयं न जानीध्वं धर्मः सूक्ष्मो हि पाण्डवाः ।**
**अयं च स्मृत्यतिक्रान्तो ह्यापगेयोऽल्पदर्शनः ॥२६॥**

महात्मा पाण्डवों के लिए यह विपरीत आचार कदापि उचित नहीं है । पाण्डुकुमार ! तुमने स्वार्थवश कमलनयन कृष्ण का पूजन किया है । पाण्डवो ! तुम अभी बालक हो । तुम्हें धर्म का पता ही नहीं है, क्योंकि धर्म का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है । ये गङ्गानन्दन भीष्म बहुत वृद्ध हो गये हैं, अतः इनकी स्मरणशक्ति मारी गई है, इनकी सूझ-बूझ भी बहुत कम हो गई है [इसीलिए इन्होंने श्रीकृष्ण की पूजा की सम्मति दी है] ।

**कथं ह्यराजा दाशार्हो मध्ये सर्वमहीक्षिताम् ।**
**अर्हणामर्हति तथा यथा युष्माभिरर्चितः ॥२७॥**

यह यदुवंशी कृष्ण राजा नहीं है, फिर समस्त भूपालों के मध्य में तुम लोगों ने जिस प्रकार इसकी पूजा की है, वैसी पूजा का अधिकारी यह कैसे हो सकता है ?

**अथ वा मन्यसे कृष्णं स्थविरं कुरुपुङ्गव ।**
**वसुदेवे स्थिते वृद्धे कथमर्हति तत्सुतः ॥२८॥**

कुरुश्रेष्ठ ! यदि तुम श्रीकृष्ण को बड़ा-बूढ़ा समझते हो तो इसके पिता वृद्ध वसुदेवजी के रहते हुए उनका यह पुत्र पूजा का पात्र कैसे हो सकता है ?

**आचार्यं मन्यसे कृष्णमथ वा कुरुनन्दन ।**

**द्रोणे तिष्ठति वार्ष्णेयं कस्मादर्चितवानसि ॥२९॥**

कुरुनन्दन ! यदि यह समझ लें कि तुम कृष्ण को आचार्य मानते हो, फिर आचार्यों में वृद्ध द्रोणाचार्य के रहते हुए तुमने इस यदुवंशी की पूजा क्यों की है ?

**ऋत्विजं मन्यसे कृष्णमथ वा कुरुनन्दन ।**
**द्वैपायने स्थिते वृद्धे कथं कृष्णोऽर्चितस्त्वया ॥३०॥**

कुरुनन्दन ! यदि यह कहा जाए कि तुम कृष्ण को अपना ऋत्विज समझते हो तो ऋत्विजों में भी सबसे वृद्ध द्वैपायन वेदव्यास के रहते हुए तुमने कृष्ण की पूजा कैसे की ?

**भीष्मे शान्तनवे राजन् राजेन्द्रे च सुयोधने ।**
**अश्वत्थाम्नि स्थिते वीरे कुलाचार्ये स्थिते कृपे ॥३१॥**
**भीष्मके चैव दुर्धर्षे एकलव्ये तथैव च ।**
**शल्ये मद्राधिपे चैव कथं कृष्णस्त्वयार्चितः ॥३२॥**

हे राजन् ! शान्तनुनन्दन भीष्म, राजाधिराज दुर्योधन, वीर अश्वत्थामा, भरतवंश के आचार्य कृप, दुर्धर्ष वीर भीष्मक, श्रेष्ठ धनुर्धर एकलव्य तथा मद्रराज शल्य के रहते हुए तुमने कृष्ण की पूजा कैसे की ?

**नैवर्त्विग् नैव चाचार्यो न राजा मधुसूदनः ।**
**अर्चितश्च कुरुश्रेष्ठ किमन्यत्प्रियकाम्यया ॥३३॥**

कुरुश्रेष्ठ ! मधुसूदन न ऋत्विज है, न आचार्य है, और न राजा ही है। फिर तुमने किस प्रिय कामना से इसकी पूजा की है ?

**अथ वाभ्यर्चनीयोऽयं युष्माकं मधुसूदनः ।**
**किं राजभिरिहानीतैरवमानाय भारत ॥३४॥**

हे भारत ! यदि यह मधुसूदन ही तुम्हारा पूजनीय है, और इसकी ही पूजा तुम्हें करनी थी तो इन राजाओं को केवल अपमानित करने के लिए बुलाने की क्या आवश्यकता थी ?

**वयं तु न भयादस्य कौन्तेयस्य महात्मनः ।**
**प्रयच्छामः करान् सर्वे न लोभान्न च सान्त्वनात् ॥३५**

राजाओ ! हम सब लोग इन महात्मा कुन्ती-नन्दन युधिष्ठिर को जो कर दे रहे हैं, वह किसी भय, लोभ अथवा किसी विशेष आश्वासन के कारण नहीं दे रहे हैं ।

**अस्य धमप्रवृत्तस्य पार्थिवत्वं चिकीर्षितः ।**
**करानस्मै प्रयच्छामः सोऽयमस्मान् न मन्यते ॥३६॥**

यह धर्माचरण में रत क्षत्रिय सम्राट् का पद पाना चाहता है, यही सोचकर हम उसे कर देते हैं, परन्तु यह राजा युधिष्ठिर तो हम लोगों को कुछ समझता ही नहीं है ।

**किमन्यदवमानाद्धि यदेनं राजसंसदि ।**
**अप्राप्तलक्षणं कृष्णमर्घ्येणार्चितवानसि ॥३७॥**

युधिष्ठिर ! इससे बढ़कर और अपमान क्या हो सकता है कि तुमने राजाओं की सभा में राजोचित चिह्न छत्र-चँवरादि से हीन कृष्ण की अर्घ्य के द्वारा पूजा की है ?

**यदि भीताश्च कौन्तेयाः कृपणाश्च तपस्विनः ।**
**ननु त्वयापि बोद्धव्यं यां पूजां माधवार्हसि ॥३८॥**

[फिर शिशुपाल ने कृष्ण से कहा—] माधव ! कुन्ती के पुत्र तो कायर, डरपोक और तपस्वी हैं । इन्होंने तुम्हें ठीक-ठीक न जानकर तुम्हारी पूजा कर दी तो तुम्हें तो समझना चाहिए था कि तुम किस पूजा के अधिकारी हो ।

**अथ वा कृपणैरेतामुपनीतां जनार्दन ।**
**पूजामनर्हः कस्मात् त्वमभ्यनुज्ञातवानसि ॥३९॥**

अथवा जनार्दन ! इन कायरों द्वारा उपस्थित की हुई इस अग्रपूजा को उसके योग्य न होते हुए भी तुमने कैसे स्वीकार कर लिया ?

**अयुक्तामात्मनः पूजां त्वं पुनर्बहु मन्यसे ।**
**हविषः प्राप्य निष्यन्दं प्राशिता श्वेव निर्जने ॥४०॥**

जैसे कुत्ता एकान्त में चूकर गिरे हुए थोड़े से घी को चाट ले और अपने को धन्य मानने लगे, वैसे ही तुम अपने लिए अयोग्य पूजा स्वीकार करके अपने आपको बहुत बड़ा मान रहे हो ।

**न त्वयं पार्थिवेन्द्राणामपमानः प्रयुज्यते ।**
**त्वामेव कुरवो व्यक्तं प्रलम्भन्ते जनार्दन ॥४१॥**

कृष्ण ! तुम्हारी इस अग्रपूजा से हम राजा-धिराजों का कोई अपमान नहीं होता, परन्तु ये कुरु-वंशी पाण्डव तुम्हें अर्घ्य प्रदान कर वास्तव में तुम्हें ही ठग रहे हैं ।

**क्लीबे दारक्रिया यादृगन्धे वा रूपदर्शनम् ।**
**अराज्ञो राजवत् पूजा तथा ते मधूसूदन ॥४२॥**

हे मधुसूदन ! जैसे नपुंसक का विवाह रचाना और अन्धे को रूप दिखाना उसका उपहास करना ही है, वैसे ही तुम-जैसे राज्यहीन की यह राजाओं के समान पूजा भी विडम्बना ही है ।

**दृष्टो युधिष्ठिरो राजा दृष्टो भीष्मश्च यादृशः ।**
**वासुदेवोऽप्ययं दृष्टः सर्वमेतद् यथातथम् ॥४३॥**

आज मैंने राजा युधिष्ठिर को देख लिया, भीष्म भी जैसे हैं, उन्हें भी देख लिया और इस कृष्ण के भी वास्तविक रूप को देख लिया । वास्तव में ये सब एक-जैसे ही महत्त्वहीन हैं ।

वैशम्पायन उवाच

**इत्युक्त्वा शिशुपालस्तानुत्थाय परमासनात् ।**
**निर्ययौ सदसस्तस्मात् सहितो राजभिस्तदा ॥४४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—ऐसा कहकर शिशुपाल अपने उत्तम आसन से उठकर कुछ राजाओं को साथ ले सभाभवन से बाहर निकल गया ।[1]

**इति महाभारते सभापर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥७॥**

# अष्टमोऽध्यायः

## भीष्म द्वारा शिशुपाल के आक्षेपों का उत्तर, शिशुपाल द्वारा भीष्म की निन्दा

वैशम्पायन उवाच

**ततो युधिष्ठिरो राजा शिशुपालमुपाद्रवत् ।**
**उवाच चैनं मधुरं सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तब राजा युधिष्ठिर दौड़ते हुए शिशुपाल के पास गये और उसे शान्तिपूर्वक समझाते हुए मधुर वाणी में बोले—

**नेदं युक्तं महीपाल यादृशं वै त्वमुक्तवान् ।**
**अधर्मश्च परो राजन् पारुष्यं च निरर्थकम् ॥२॥**

हे राजन् ! तुमने जैसी बात कह डाली है, वह कदापि उचित नहीं है । किसी के प्रति इस प्रकार व्यर्थ कठोर बातें कहना महान् अधर्म है ।

**पश्य चैतान् महीपालाँस्त्वत्तो वृद्धतरान् बहून् ।**
**मृष्यन्ते चार्हणां कृष्णे तद्वत् त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥३॥**

देखो ! ये सभी नरेश, जिनमें अनेक तुम्हारी अपेक्षा अवस्था व अनुभव में बहुत बड़े हैं, श्रीकृष्ण की अग्रपूजा को निःसंकोच सहन कर रहे हैं । इसी प्रकार तुम्हें भी इस विषय में कुछ नहीं कहना चाहिए ।

**न हि धर्मं परं जातु नावबुध्येत पार्थिवः ।**
**भीष्मः शान्तनवस्त्वेनं मावमंस्थास्त्वमन्यथा ॥४॥**

शान्तनुनन्दन भीष्मजी धर्म के तत्त्व को न जानते हों, ऐसी बात भी नहीं है, अतः तुम इनका अनादर न करो ।

भीष्म उवाच

**नास्मै देयो ह्यनुनयो नायमर्हति सान्त्वनम् ।**
**लोकवृद्धतमे कृष्णे योऽर्हणां नाभिमन्यते ॥५॥**

**भीष्मजी बोले**—धर्मराज ! इस समय श्रीकृष्ण ही सम्पूर्ण जगत् में सबसे बढ़कर हैं, वे ही परम पूज्य हैं । जो व्यक्ति उनकी अग्रपूजा स्वीकार नहीं करता, उसकी अनुनय-विनय नहीं करनी चाहिए । वह सान्त्वना देने योग्य है भी नहीं ।

**क्षत्रियः क्षत्रियं जित्वा रणे रणकृतां वरः ।**
**यो मुञ्चति वशे कृत्वा गुरुर्भवति तस्य सः ॥६॥**

योद्धाओं में श्रेष्ठ जो क्षत्रिय जिस क्षत्रिय को युद्ध में जीतकर, अपने वश में करके छोड़ देता है, वह उस पराजित क्षत्रिय के लिए गुरु के तुल्य पूज्य हो जाता है ।

**अस्यां हि समितौ राज्ञामेकमप्यजितं युधि ।**
**न पश्यामि महीपालं सात्वतीपुत्रतेजसा ॥७॥**

राजाओं के इस समूह में एक भी भूपाल ऐसा दिखाई नहीं देता जो युद्ध में देवकीनन्दन श्रीकृष्ण के तेज से परास्त न हो चुका हो ।

---

१. जैसे आजकल विरोधी पक्ष के लोग संसद् से बाहर निकल जाते हैं, इसी प्रकार यह भी शिशुपाल का बहिर्गमन (Walk out) था । सम्भवतः आज की यह प्रथा महाभारत-काल से ही आयी हो ।

**तस्मात् सत्स्वपि वृद्धेषु कृष्णमर्चाम नेतरान् ।**
**एवं वक्तुं न चार्हस्त्वं मा तेऽभूद् बुद्धिरीदृशी ॥८॥**

अतः हम अन्य वृद्ध पुरुषों के होते हुए भी श्रीकृष्ण की पूजा करते हैं, दूसरों की नहीं। राजन् ! तुम्हें कृष्ण के प्रति वैसी बातें मुँह से नहीं निकालनी चाहिए थीं। उनके प्रति तुम्हें ऐसी बुद्धि नहीं रखनी चाहिए।

**न सम्बन्धं पुरस्कृत्य कृतार्थं वा कथञ्चन ।**
**अर्चामहेऽर्चितं सद्भिर्भुवि भूतसुखावहम् ॥९॥**

चेदिराज ! अपना सम्बन्धी होने के कारण अथवा किसी उपकार के कारण हम इनकी पूजा नहीं कर रहे हैं। ये सभी प्राणियों को सुख पहुँचानेवाले हैं, और बड़े-बड़े सन्त-महात्माओं ने इनकी पूजा की है, इसीलिए हम भी इनकी पूजा कर रहे हैं।

**यशः शौर्यं जयं चास्य विज्ञायार्चां प्रयुज्महे ।**
**न च कश्चिदिहास्माभिः सुबालोऽप्यपरीक्षितः ॥१०॥**

हम इनके यश, शौर्य और विजय को भली-भाँति जानकर इनकी पूजा कर रहे हैं। यहाँ बैठे हुए लोगों में कोई छोटा-सा बालक भी ऐसा नहीं है, जिसके गुणों की हम लोगों ने पूर्णतः परीक्षा न की हो।

**वेदवेदाङ्ग-विज्ञानं बलं चाभ्यधिकं तथा ।□**
**नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते ॥११**
**दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा ।□**
**सन्नतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते ॥१२॥**

इनमें वेद-वेदाङ्गों का ज्ञान तो है ही, बल भी सबसे अधिक है। श्रीकृष्ण के सिवा इस युग के संसार में मनुष्यों में दूसरा कौन सबसे बढ़कर है ?

दान, दक्षता, शास्त्र-ज्ञान, शौर्य, आत्म-लज्जा, कीर्ति, उत्तम बुद्धि, विनय, श्री, धृति, तुष्टि और पुष्टि—ये सभी सद्गुण श्रीकृष्ण में नित्य विद्यमान हैं।

**ऋत्विग् गुरुस्तथाऽऽचार्यः स्नातको नृपतिः प्रियः ।**
**सर्वमेतद्धृषीकेशस्तस्मादभ्यर्चितोऽच्युतः ॥१३॥**

श्रीकृष्ण हमारे ऋत्विक्, गुरु, आचार्य, स्नातक, राजा और प्रिय मित्र—सब-कुछ हैं, अतः हमने इनकी ही अग्रपूजा की है।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वा ततो भीष्मो विरराम महाबलः ।**
**व्याजहारोत्तरं तत्र सहदेवोऽर्थवद् वचः ॥१४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! ऐसा कह जब महाबली भीष्म चुप हुए, तब माद्रीपुत्र सहदेव ने शिशुपाल की बातों का मुँहतोड़ उत्तर देते हुए यह अर्थयुक्त बात कही—

**पूज्यमानं मया यो वः कृष्णं न सहते नृपाः ।**
**सर्वेषां बलिनां मूर्ध्नि मयेदं निहितं पदम् ॥१५॥**
**एवमुक्ते मया सम्यगुत्तरं प्रब्रवीतु सः ।**
**स एव हि मया वध्यो भविष्यति न संशयः ॥१६॥**

"हे राजाओ ! मेरे द्वारा श्रीकृष्ण की जो पूजा की गई है, आप लोगों में से जो उसे सहन न कर सकें, मैंने उन सब बलवानों के सिर पर अपना यह पैर रख दिया। मैंने यह बात बहुत सोच-समझकर कही है। जो इसका उत्तर देना चाहे, वह सामने आ जाए। वह मेरे द्वारा वध के योग्य होगा, इसमें संशय नहीं है।

**मतिमन्तश्च ये केचिदाचार्यं पितरं गुरुम् ।**
**अर्च्यमर्चितमर्घार्हमनुजानन्तु ते नृपाः ॥१७॥**

"जो बुद्धिमान् राजा हों, वे मेरे द्वारा की हुई आचार्य, पिता, गुरु, पूजनीय तथा अग्रपूजा के सर्वथा योग्य श्रीकृष्ण की पूजा का हृदय से अनुमोदन करें।"

**ततो न व्याजहारैषां कश्चिद् बुद्धिमतां सताम् ।**
**मानिनां बलिनां राज्ञां मध्ये वै दर्शिते पदे ॥१८॥**

सहदेव ने महामानी और बलवान् राजाओं के बीच में खड़े होकर अपना पैर दिखाया था, तो भी जो बुद्धिमान् और श्रेष्ठ नरेश थे, उनमें से कोई कुछ न बोला।

**पूजयित्वा च पूजार्हान् ब्रह्मक्षत्रविशेषवित् ।**
**सहदेवो नृणां देवः समापयत कर्म तत् ॥१९॥**

तब वहाँ आये हुए ब्राह्मणों और क्षत्रियों में विशिष्ट व्यक्तियों को पहचाननेवाले नरदेव सहदेव ने पूज्य व्यक्तियों की क्रमशः पूजा करके वह अर्घ्य-निवेदन का कार्य पूरा कर दिया।

**तस्मिन्नभ्यर्चिते कृष्णे सुनीथः शत्रुकर्षणः ।**
**अतिताम्रेक्षणः कोपादुवाच मनुजाधिपान् ॥२०॥**

इस प्रकार श्रीकृष्ण का पूजन सम्पन्न हो जाने पर शत्रु-विजयी शिशुपाल ने क्रोध से अत्यन्त लाल आँखें करके समस्त राजाओं से कहा—

**स्थितः सेनापतिर्योऽहं मन्यध्वं किं तु साम्प्रतम् ।**
**युधि तिष्ठाम संनह्य समेतान् वृष्णिपाण्डवान् ॥२१॥**

"हे भूमिपालो ! मैं आप सबका सेनापति बनकर खड़ा हूँ । तुम लोग किस चिन्ता में पड़े हो ? आओ, हम सब लोग युद्ध के लिए कटिबद्ध होकर पाण्डवों और यादवों की सम्मिलित सेना का सामना करने के लिए डट जाएँ ।"

**इति सर्वान् समुत्साह्य राज्ञस्ताँश्चेदिपुङ्गवः ।**
**यज्ञोपघाताय ततः सोऽमन्त्रयत राजभिः ॥२२॥**
**तत्राहूता गताः सर्वे सुनीथप्रमुखा गणाः ।**
**समदृश्यन्त संक्रुद्धा विवर्णवदनास्तथा ॥२३॥**

इस प्रकार उन सब राजाओं को युद्ध के लिए उत्साहित करके शिशुपाल ने युधिष्ठिर के यज्ञ में विघ्न डालने के उद्देश्य से राजाओं से मन्त्रणा की। शिशुपाल के आमन्त्रण पर उसके सेनापतित्व में सुनीथ आदि कुछ प्रमुख नरेशगण चले आये। वे सबके सब अत्यन्त क्रुद्ध थे। उनके मुख की कान्ति बदली हुई दिखाई देती थी।

**युधिष्ठिराभिषेकं च वासुदेवस्य चार्हणम् ।**
**न स्याद् यथा तथा कार्यमेवं सर्वे तदाब्रुवन् ॥२४॥**

वे सब बोले—"युधिष्ठिर के अभिषेक और कृष्ण की पूजा का कार्य सफल न हो सके, वैसा प्रयत्न हमको करना चाहिए।"

**तं बलौघमपर्यन्तं राजसागरमक्षयम् ।**
**कुर्वाणं समयं कृष्णो युद्धाय बुबुधे तदा ॥२५॥**

राजाओं का वह समुदाय अक्षय समुद्र की भाँति उमड़ रहा था। उसका कहीं अन्त दिखाई नहीं देता था। सेनाएँ ही उसकी अपार जलराशि थीं। उसे इस प्रकार शपथ करते देख श्रीकृष्ण ने यह समझ लिया कि अब ये नरेश युद्ध के लिए तैयार हैं।

**ततः सागरसंकाशं दृष्ट्वा नृपतिमण्डलम् ।**
**रोषात् प्रचलितं सर्वं भीष्ममाह युधिष्ठिरः ॥२६॥**

तदनन्तर महासागर की भाँति राजाओं के उस समुदाय को क्रोध से चञ्चल हुआ देखकर धर्मराज युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से कहा—

युधिष्ठिर उवाच

**असौ रोषात् प्रचलितो महान् नृपतिसागरः ।**
**अत्र यत् प्रतिपत्तव्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥२७॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हे पितामह ! यह देखिए, राजाओं का यह महासमुद्र क्रोध से अत्यन्त (क्षुब्ध) हो उठा है। इन सबको शान्त करने का जो उचित उपाय जान पड़े, वह मुझे बताइए।

**यज्ञस्य च न विघ्नः स्यात् प्रजानां च हितं भवेत् ।**
**यथा सर्वत्र तत्सर्वं ब्रूहि मेऽद्य पितामह ॥२८॥**

हे दादाजी ! यज्ञ में विघ्न न पड़े और प्रजा का हित हो तथा जिस प्रकार सर्वत्र शान्ति भी बनी रहे, वह सब उपाय मुझे बताने की कृपा करें।

भीष्म उवाच

**मा भैस्त्वं कुरुशार्दूल श्वा सिंहं हन्तुमर्हति ।**
**शिवः पन्था सुनीतोऽत्र यया पूर्वतरं वृतः ॥२९॥**

**भीष्म ने कहा**—कुरुवंश के वीरवर ! तुम डरो मत। क्या कुत्ता कभी सिंह को मार सकता है ? हमने कल्याणमय मार्ग [श्रीकृष्ण का आश्रय] पहले ही चुन लिया है।

**प्रसुप्ते हि यथा सिंहे श्वानस्तस्मिन् समागताः ।**
**भषेयुः सहिताः सर्वे तथेमे वसुधाधिपाः ॥३०॥**
**वृष्णिसिंहस्य सुप्तस्य तथामी प्रमुखे स्थिताः ।**
**भषन्ते तात संक्रुद्धाः श्वानः सिंहस्य संनिधौ ॥३१॥**
**न हि सम्बुध्यते यावत् सुप्तः सिंह इवाच्युतः ।**
**तेन सिंहीकरोत्येतान् नृसिंहश्चेदिपुङ्गवः ॥३२॥**
**पार्थिवान् पार्थिवश्रेष्ठः शिशुपालोऽप्यचेतनः ।**
**सर्वान् सर्वात्मना तात नेतुकामो यमक्षयम् ॥३३॥**

जैसे सिंह के सो जाने पर बहुत-से कुत्ते उसके निकट आकर एक साथ भौंकने लगते हैं, वैसे ही ये सामने खड़े राजा भी तभी तक भौंक रहे हैं, जबतक वृष्णिवंश का सिंह सो रहा है। क्रोध में भरे हुए कुत्ते के समान ये लोग सिंह के निकट तभी तक कोलाहल मचा रहे हैं, जबतक श्रीकृष्ण सिंह की भाँति जाग नहीं उठते और इन्हें दण्ड देने के लिए प्रस्तुत नहीं हो जाते। राजाओं में श्रेष्ठ चेदिकुल-भूषण नृसिंह शिशुपाल भी अपनी विवेक-शक्ति खो बैठा है, तभी

इन सब नरेशों को यमलोक में भेज देने की इच्छा से कुत्ते से सिंह बनाने का प्रयत्न कर रहा है।

वैशम्पायन उवाच

**इति तस्य वचः श्रुत्वा ततश्चेदिपतिर्नृपः।**
**भीष्मं रूक्षाक्षरा वाचः श्रावयामास भारत ॥३४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! भीष्मजी का कथन सुनकर चेदिराज शिशुपाल उन्हें अत्यन्त कठोर बातें सुनाने लगा।

शिशुपाल उवाच

**विभीषिकाभिर्बह्वीभिर्भीषयन् सर्वपार्थिवान्।**
**न व्यपत्रपसे कस्माद् वृद्धः सन् कुलपांसन ॥३५॥**

**शिशुपाल बोला**—कुलकलंकी भीष्म ! तुम अनेक प्रकार की गीदड़भभकियों द्वारा इन सब राजाओं को डराने की चेष्टा क्यों कर रहे हो ? बड़े-बूढ़े होकर भी तुम्हें अपने इस घृणित कृत्य पर लज्जा क्यों नहीं आती ?

**युक्तमेतत् तृतीयायां प्रकृतौ वर्तता त्वया।**
**वक्तुं धर्मादपेतार्थं त्वं हि सर्वकुरूत्तमः ॥३६॥**

तुम तीसरी प्रकृति में स्थित [नपुंसक] हो, अतः तुम्हारे लिए इस प्रकार धर्म के विरुद्ध बातें कहना उचित ही है। फिर भी यह आश्चर्य है कि तुम सारे कुरुकुल के श्रेष्ठ पुरुष कहे जाते हो।

**नावि नौरिव सम्बद्धा यथान्धो वान्धमन्वियात्।**
**तथाभूता हि कौरव्या येषां भीष्म त्वमग्रणीः ॥३७॥**

भीष्म ! जैसे एक नाव दूसरी नाव में बाँध दी जाए, जैसे एक अन्धा दूसरे अन्धे के पीछे चले, वही अवस्था इन सब कौरवों की है, जिन्हें तुम जैसा कुल-नेता मिला है।

**अवलिप्तस्य मूर्खस्य केशवं स्तोतुमिच्छतः।**
**कथं भीष्म न ते जिह्वा शतधेयं विदीर्यते ॥३८॥**

भीष्म ! तुम्हें अपने ज्ञानीपन का बड़ा अभिमान है, परन्तु तुम हो वास्तव में महामूर्ख। अहो ! इस केशव की स्तुति करने की इच्छा होते ही तुम्हारी जीभ के सैकड़ों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ?

**यत्र कुत्सा प्रयोक्तव्या भीष्म बालतरैर्नरैः।**
**तमिमं ज्ञानवृद्धः सन् गोपं संस्तोतुमिच्छसि ॥३९॥**

भीष्म ! जिसके प्रति मूर्ख-से-मूर्ख मनुष्य को भी घृणा करनी चाहिए, तुम इतने ज्ञान-वृद्ध होकर भी उसी ग्वाले की स्तुति करना चाहते हो [आश्चर्य है ! ]

**यद्यनेन हतो बाल्ये शकुनिश्चित्रमत्र किम्।**
**तौ वाश्ववृषभौ भीष्म यौ न युद्ध विशारदौ ॥४०॥**

भीष्म ! यदि इसने बचपन में एक पक्षी [बकासुर] को अथवा युद्धकला से सर्वथा अनभिज्ञ केशी नामक अश्व और अरिष्टासुर वृषभ को मार डाला तो इसमें क्या आश्चर्य की बात हो गई ?

**चेतनारहितं काष्ठं यद्यनेन निपातितम्।**
**पादेन शकटं भीष्म तत्र किं कृतमद्भुतम् ॥४१॥**

भीष्म ! छकड़ा क्या है ? चेतना-शून्य लकड़ियों का ढेर ही तो। यदि इसने पैर से उसको उलट ही दिया तो यह कौन-सी आश्चर्य की बात हो गई ?

**वल्मीकमात्रः सप्ताहं यद्यनेन धृतोऽचलः।**
**तदा गोवर्धनो भीष्म न तच्चित्रं मतं मम ॥४२॥**

भीष्म ! यदि इसने गोवर्धन पर्वत को सात दिन तक अपने हाथ पर उठाये रखा तो उसमें भी मुझे कोई आश्चर्य की बात नहीं जान पड़ती, क्योंकि गोवर्धन तो दीमकों की खोदी हुई मिट्टी का ढेर मात्र है।

**यस्य चानेन धर्मज्ञ भुक्तमन्नं बलीयसः।**
**स चानेन हतः कंस इत्येतन्न महाद्भुतम् ॥४३॥**

धर्मज्ञ भीष्म ! जिस महाबली कंस का अन्न खाकर यह पला था, उसी को इसने मार डाला। यह भी इसके लिए कोई बड़ी अद्भुत बात नहीं है।

**न ते श्रुतमिदं भीष्म नूनं कथयतां सताम्।**
**यद् वक्ष्ये त्वामधर्मज्ञं वाक्यं कुरुकुलाधम ॥४४॥**

कुरुकुलाधम भीष्म ! तुम धर्म को बिल्कुल नहीं जानते। मैं तुमसे धर्म की जो बात कहूँगा, वह तुमने सन्त-महात्माओं के मुख से भी नहीं सुनी होगी।

**स्त्रीषु गोषु न शस्त्राणि पातयेद् ब्राह्मणेषु च।**
**यस्य चान्नानि भुञ्जीत यत्र च स्यात् प्रतिश्रयः ॥४५**

स्त्री पर, गौ पर और ब्राह्मणों पर तथा जिसका अन्न खाया हो अथवा जिसके यहाँ अपने को आश्रय मिला हो, इन पर कभी हथियार न चलाए।

**इति सन्तोऽनुशासन्ति सज्जनं धर्मिणः सदा ।**
**भीष्म लोके हि तत्सर्वं वितथं त्वयि दृश्यते ॥४६॥**

भीष्म ! जगत् में साधु, धर्मात्मा पुरुष सज्जनों को सदा इसी धर्म का उपदेश देते हैं । परन्तु तुम्हारे निकट यह सब धर्म मिथ्या दिखाई देता है ।

**ज्ञानवृद्धं च वृद्धं च भूयांसं केशवं मम ।**
**अजानत इवाख्यासि संस्तुवन् कौरवाधम ॥४७॥**

कौरवाधम ! तुम मेरे समक्ष इस कृष्ण की स्तुति करते हुए इसे ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध बता रहे हो, मानो मैं इसके विषय में कुछ जानता ही न होऊँ ।

**गोघ्नः स्त्रीघ्नश्च सन्भीष्म त्वद्वाक्याद्यदि पूज्यते ।**
**एवंभूतश्च यो भीष्म कथं संस्तवमर्हति ॥४८॥**

भीष्म ! यदि तुम्हारे कहने से गोघाती और स्त्री-हन्ता कृष्ण की पूजा हो रही है तो तुम्हारी धर्मज्ञता की सीमा समाप्त हो गई । अब तुम्हीं कहो, इन दोनों प्रकार की हत्याओं का अपराधी स्तुति का अधिकारी कैसे हो सकता है ?

**को हि धर्मोऽस्ति ते भीष्म ब्रह्मचर्यमिदं वृथा ।**
**यद् धारयसि मोहाद्वा क्लीबत्वाद्वा न संशयः ॥४९॥**

भीष्म ! तुम्हारा धर्म क्या है ? तुम्हारा ब्रह्म-चर्य भी व्यर्थ का ढकोसला मात्र है जिसे तुमने मोह-वश अथवा नपुंसकता के कारण धारण कर रखा है, इसमें संशय नहीं ।

**न त्वहं तव धर्मज्ञ पश्याम्युपचयं क्वचित् ।**
**न हि ते सेविता वृद्धा य एवं धर्ममब्रवीः ॥५०॥**

धर्मज्ञ भीष्म ! मैं तुम्हारी कहीं कोई उन्नति भी नहीं देख रहा हूँ । मेरा तो विश्वास है कि तुमने ज्ञानवृद्धों का सत्सङ्ग नहीं किया, तभी तुम ऐसे धर्म का उपदेश करते हो ।

**इति महाभारते सभापर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥८॥**

# नवमोऽध्याय

**भीम का क्रोध, भीष्म का उन्हें शान्त करना और कृष्ण से युद्ध करने के लिए चुनौती देना, कृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध, यज्ञ की समाप्ति और श्रीकृष्ण का स्वदेश-गमन**

वैशम्पायन उवाच

**तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रूक्षं रूक्षाक्षरं बहु ।**
**चुकोप बलिनां श्रेष्ठो भीमसेनः प्रतापवान् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! शिशुपाल की रूखी और अत्यन्त कटुता से भरी बातों को सुनकर बलवानों में श्रेष्ठ प्रतापी भीमसेन क्रोधाग्नि से भभक उठे ।

**उत्पतन्तं तु वेगेन जग्राहैनं मनस्विनम् ।**
**भीष्म एव महाबाहुर्महासेनमिवेश्वरः ॥२॥**

वे उछलकर शिशुपाल के पास पहुँचना ही चाहते थे कि महाबाहु भीष्म ने बड़े वेग से उठकर उन मनस्वी भीम को वैसे ही पकड़ लिया, जैसे महेश्वर ने कार्तिकेय को रोक लिया था ।

**प्रहसँश्चाब्रवीद् वाक्यं चेदिराजः प्रतापवान् ।**
**भीमसेनमभिक्रुद्धं दृष्ट्वा भीमपराक्रमम् ॥३॥**

उस समय भयानक पराक्रमी भीम को कुपित देख प्रतापी चेदिराज हँसते हुए बोला—

**मुञ्चैनं भीष्म पश्यन्तु यावदेनं नराधिपाः ।**
**मत्प्रभावविनिर्दग्धं पतङ्गमिव वह्निना ॥४॥**

भीष्म ! इसे छोड़ दो, ये सभी राजा लोग देख लें कि यह भीम मेरे प्रभाव से उसी प्रकार दग्ध हो जाएगा जैसे पतंगा अग्नि के पास जाते ही भस्म हो जाता है ।

**ततश्चेदिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा तत्कुरुसत्तमः ।**
**भीमसेनमुवाचेदं भीष्मो मतिमतां वरः ॥५॥**

तब चेदिराज की वह बात सुनकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ कुरुकुलभूषण भीष्मजी ने भीमसेन से कहा—

भीष्म उवाच

**नैषा चेदिपतेर्बुद्धिर्यया त्वाऽऽह्वयतेऽच्युतम् ।**
**नूनं कालपरीतात्मा जल्पति कुलपांसनः ॥६॥**

**भीष्मजी बोले**—भीमसेन ! यह चेदिराज शिशु-पाल की बुद्धि नहीं है, जिसके द्वारा वह युद्ध से कभी पीछे न हटनेवाले तुम जैसे महावीर को ललकार रहा है । निश्चय ही काल ने इसके मन और बुद्धि को

ग्रस लिया है, इसीलिए यह कुल-कलंक ग्रनाप-शनाप बोल रहा है।

वैशम्पायन उवाच

**ततो न ममृषे चैद्यस्तद् भीष्मवचनं तदा।**
**उवाच चैनं संक्रुद्धः पुनर्भीष्ममथोत्तरम् ॥७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! भीष्म की यह बात शिशुपाल न सह सका। वह पुनः ग्रत्यन्त क्रोध में भरकर भीष्मजी को उनकी बातों का उत्तर देते हुए बोला—

शिशुपाल उवाच

**ग्रात्मनिन्दाऽऽत्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः।**
**ग्रनाचरितमार्याणां वृत्तमेतच्चतुर्विधम् ॥८॥**

**शिशुपाल बोला**—भीष्म! ग्रपनी निन्दा, ग्रपनी प्रशंसा, दूसरे की निन्दा ग्रौर दूसरे की स्तुति ये चार प्रकार के कार्य पहले के श्रेष्ठ पुरुषों ने कभी नहीं किये हैं।

**यदस्तुत्यमिमं शश्वन्मोहात् संस्तौषि भक्तितः।**
**केशवं तच्च ते भीष्म भूलिङ्गशकुनिर्यथा ॥९॥**

भीष्म! जो स्तुति के सर्वथा ग्रयोग्य है, उसी केशव की तुम मोहवश सदा भक्तिभाव से स्तुति करते हो। तुम्हारा यह व्यवहार उस भूलिंग पक्षी के समान है, जो कहता कुछ है ग्रौर करता कुछ है।

**भूलिंगशकुनिर्नाम पार्श्वे हिमवतः परे।**
**भीष्म तस्याः सदा वाचः श्रूयन्तेऽर्थविगर्हिताः ॥१०॥**

भीष्म! हिमालय के दूसरे भाग में भूलिङ्ग नाम से प्रसिद्ध एक चिड़िया रहती है। उसके मुख से सदा ऐसी बात सुनाई पड़ती है, जो उसके कार्य के विपरीत-भाव की सूचक होने के कारण ग्रति निन्दनीय जान पड़ती है।

**मा साहसमितीदं सा सततं वाशते किल।**
**साहसं चात्मनातीव चरन्ती नावबुध्यते ॥११॥**

वह चिड़िया सदा यही कहती है 'मा साहसम्' ग्रर्थात् साहस का काम मत करो; परन्तु वह स्वयं ही भारी साहस का काम करती हुई भी यह नहीं समझ पाती।

**सा हि मांसार्गलं भीष्म मुखात् सिंहस्य खादतः।**
**दन्तान्तरविलग्नं यत् तदादत्तेऽल्पचेतना ॥१२॥**

भीष्म! वह चिड़िया मांस खाते हुए सिंह के दाँतों में लगे हुए मांस के टुकड़ों को ग्रपनी चोंच से चुगती रहती है।

**इच्छतः सा हि सिंहस्य भीष्म जीवत्यसंशयम्।**
**तद्वत् त्वमप्यधर्मिष्ठ सदा वाचः प्रभाषसे ॥१३॥**

निःसन्देह सिंह की इच्छा से ही वह ग्रबतक जी रही है। पापी भीष्म! तुम भी उसी पक्षी की भाँति सदा बढ़-चढ़कर बातें करते हो।

**इच्छतां भूमिपालानां भीष्म जीवस्यसंशयम्।**
**लोकविद्विष्टकर्मा हि नान्योऽस्ति भवता समः ॥१४॥**

भीष्म! निःसन्देह तुम्हारा जीवन इन राजाग्रों की इच्छा से ही बचा हुग्रा है क्योंकि तुम्हारे समान दूसरा कोई राजा ऐसा नहीं है, जिसके कर्म सम्पूर्ण जगत् से द्वेष करनेवाले हों।

भीष्म उवाच

**इच्छतां किल नामाहं जीवाम्येषां महीक्षिताम्।**
**सोऽहं न गणयाम्येतांस्तृणेनापि नराधिपान् ॥१५॥**

**भीष्मजी बोले**—ग्रहो! शिशुपाल के कथनानुसार मैं इन राजाग्रों की इच्छा पर जी रहा हूँ। परन्तु मैं तो इन समस्त भूपालों को तिनके के बराबर भी नहीं समझता।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्ते तु भीष्मेण ततः संचुक्रुशुर्नृपाः।**
**केचिज्जहृषिरे तत्र केचिद् भीष्मं जगर्हिरे ॥१६॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—भीष्म के ऐसा कहने पर बहुत-से राजा कुपित हो उठे। कुछ राजाग्रों को हर्ष हुग्रा ग्रौर कुछ भीष्मजी की निन्दा करने लगे।

**केचिदूचुर्महेष्वासाः श्रुत्वा भीष्मस्य तद् वचः।**
**पापोऽवलिप्तो वृद्धश्च नायं भीष्मोऽर्हति क्षमाम् ॥१७**

कुछ महान् धनुर्धर नरेश भीष्म की यह बात सुनकर कहने लगे—"यह बूढ़ा भीष्म तो पापी ग्रौर घमण्डी है, ग्रतः क्षमा के योग्य नहीं है।

**हन्यतां दुर्मतिर्भीष्मः पशुवत् साध्वयं नृपाः।**
**सर्वैः समेत्य संरब्धैर्दह्यतां वा कटाग्निना ॥१८॥**

"नृपगण! क्रोध में भरे हुए हम लोग मिलकर इस दुष्टबुद्धि भीष्म को पशु की भाँति गला दबाकर

मार डालें अथवा घास-फूंस की अग्नि में इसे जीवित जला डालें।"

**इति तेषां वचः श्रुत्वा ततः कुरुपितामहः।**
**उवाच मतिमान् भीष्मस्तानेव वसुधाधिपान् ॥१९॥**

उन नरेशों की ये बातें सुनकर कुरुकुल के पितामह महामति भीष्मजी फिर उन्हीं राजाओं से बोले—

**उक्तस्योक्तस्य नेहान्तमहं समुपलक्षये।**
**यत्तु वक्ष्यामि तत्सर्वं शृणुध्वं वसुधाधिपाः ॥२०॥**

"नरेशो! यदि मैं आप सबकी बातों का अलग-अलग उत्तर दूं, तो यहाँ उसकी समाप्ति होती दिखाई नहीं देती, अतः मैं जो कुछ कह रहा हूँ, आप सब उसे ध्यान से सुनो—

**पशुवद् घातनं वा मे दहनं वा कटाग्निना।**
**क्रियतां मूर्ध्नि वो न्यस्तं मयेदं सकलं पदम् ॥२१॥**

"तुम लोगों में साहस या शक्ति हो तो पशु की भाँति मेरी हत्या कर दो अथवा घास-फूंस की अग्नि में मुझे जला दो। मैंने तो तुम लोगों के मस्तक पर अपना पूरा पैर रख दिया है।

**एष तिष्ठति गोविन्दः पूजितोऽस्माभिरच्युतः।**
**यस्य वस्त्वरते बुद्धिर्मरणाय स माधवम्।**
**कृष्णमाह्वयतामद्य युद्धे चक्रगदाधरम् ॥२२॥**

"हमारे द्वारा सत्कृत एवं पूजित, अपनी महिमा से कभी च्युत नहीं होनेवाले गोविन्द तुम लोगों के सामने विद्यमान हैं। तुम लोगों में से जिसकी बुद्धि मृत्यु का आलिङ्गन करने के लिए उतावली हो रही हो, वह यदुकुलभूषण चक्रगदाधारी कृष्ण को आज युद्ध के लिए ललकारे।"

**ततः श्रुत्वैव भीष्मस्य चेदिराडुरुविक्रमः।**
**युयुत्सुर्वासुदेवेन वासुदेवमुवाच ह ॥२३॥**

भीष्मजी की यह बात सुनते ही महापराक्रमी चेदिराज शिशुपाल श्रीकृष्ण के साथ युद्ध के लिए उत्सुक हो इस प्रकार बोला—

**आह्वये त्वां रणं गच्छ मया सार्धं जनार्दन।**
**यावदद्य निहन्मि त्वां सहितं सर्वपाण्डवैः ॥२४॥**

"जनार्दन! मैं तुम्हें ललकार रहा हूँ। आओ, मेरे साथ युद्ध करो, जिससे आज मैं समस्त पाण्डवों सहित तुम्हें मार डालूं।

**सह त्वया हि मे वध्याः सर्वथा कृष्ण पाण्डवाः।**
**नृपतीन् समतिक्रम्य यैरराजा त्वमर्चितः ॥२५॥**

"कृष्ण! तुम्हारे साथ ये पाण्डव भी सर्वथा मेरे द्वारा मार डालने के योग्य हैं, क्योंकि इन्होंने सब राजाओं की अवहेलना करके राजा न होने पर भी तुम्हारी पूजा की है।"

**एवमुक्तस्ततः कृष्णो मृदुपूर्वमिदं वचः।**
**उवाच पार्थिवान् सर्वान् स समक्षं च वीर्यवान् ॥२६॥**

शिशुपाल के ऐसा कहने पर अनन्त पराक्रमी श्रीकृष्ण ने उसके सामने समस्त राजाओं से मधुर वाणी में कहा—

**एष नः शत्रुरत्यन्तं पार्थिवाः सात्वतीसुतः।**
**सात्वतानां नृशंसात्मा न हितोऽनपकारिणाम् ॥२७॥**

"राजवृन्द! यदुकुल की कन्या का पुत्र होकर भी यह शिशुपाल हम लोगों से अत्यन्त शत्रुता रखता है। यद्यपि यादवों ने इसका कोई अपराध नहीं किया है तो भी यह क्रूरात्मा सदा उनके अहित में ही लगा रहता है।

**प्राग्ज्योतिष्पुरं यातानस्माञ्ज्ञात्वा नृशंसकृत्।**
**अदहद् द्वारकामेष स्वस्रीयः सन् नराधिपाः ॥२८॥**

"हे भूमिपालो! हम प्राग्ज्योतिषपुर में गये थे, यह बात जब इसे ज्ञात हुई, तब इस क्रूरकर्मा ने मेरे पिताजी का भानजा होकर भी द्वारका में आग लगवा दी।

**अश्वमेधे हयं मेध्यमुत्सृष्टं रक्षिभिर्वृतम्।**
**पितुर्मे यज्ञविघ्नार्थमहरत् पापनिश्चयः ॥२९॥**

"मेरे पिताजी ने अश्वमेध यज्ञ में रक्षकों से घिरा हुआ पवित्र घोड़ा छोड़ा। इस पापपूर्ण विचारवाले दुष्टात्मा ने यज्ञ में विघ्न डालने के लिए वह घोड़ा भी चुरा लिया।

**पश्यन्ति हि भवन्तोऽद्य मय्यतीव व्यतिक्रमम्।**
**पितृष्वसुः कृते दुःखं सुमहन्मर्षयाम्यहम् ॥३०॥**

"आप लोग देख ही रहे हैं कि इस समय यह मेरे प्रति कैसा अभद्र व्यवहार कर रहा है। मैं अपनी बुआ के सन्तोष के लिए ही इसके अति दुःखद अपराधों को सहन करता आया हूँ।

**इमं त्वस्य न शक्ष्यामि क्षन्तुमद्य व्यतिक्रमम् ।**
**अवलेपाद् वधार्हस्य समग्रे राजमण्डले ।।३१।।**

"परन्तु आज इसने अभिमान के वशीभूत होकर समस्त राजाओं के समक्ष मेरे साथ जो दुर्व्यवहार किया है, उसे मैं अब क्षमा नहीं कर सकूँगा ।"

**एवमुक्त्वा यदुश्रेष्ठश्चेदिराजस्य तत्क्षणात् ।**
**व्यपाहरच्छिरः क्रुद्धश्चक्रेणामित्रकर्षणः ।।३२।।**

ऐसा कहकर कुपित हुए शत्रुनाशक यदुकुलभूषण श्रीकृष्ण ने चक्र से उसी क्षण चेदिराज शिशुपाल का सिर उड़ा दिया ।

**ततः केचिन्महीपाला नाब्रुवँस्तत्र किञ्चन ।**
**अपरे दशनैरोष्ठानदशन् क्रोधमूर्च्छिताः ।।३३।।**

उस समय कुछ भूपाल वहाँ इस विषय में कुछ न बोल सके—मौन रह गये । कुछ नृपगण क्रोध से मूर्च्छित होकर दाँतों से ओठ चबाने लगे ।

**रहश्च केचिद् वार्ष्णेयं प्रशशंसुर्नराधिपाः ।**
**केचिदेव सुसंरब्धा मध्यस्थास्त्वपरेऽभवन् ।।३४।।**

कुछ राजा एकान्त में श्रीकृष्ण की प्रशंसा करने लगे । कुछ ही भूपाल अत्यन्त क्रोध के वशीभूत हो रहे थे तथा कुछ लोग तटस्थ थे ।

**पाण्डवस्त्वब्रवीद् भ्रातॄन् सत्कारेण महीपतिम् ।**
**दमघोषात्मजं वीरं संस्कारयत मा चिरम् ।।३५।।**

उधर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को आदेश दिया—"दमघोषपुत्र वीर राजा शिशुपाल का अन्त्येष्टि-संस्कार अति सत्कार के साथ करो, इसमें विलम्ब मत करो ।"

**चेदीनामाधिपत्ये च पुत्रमस्य महीपतेः ।**
**अभ्यषिञ्चत् तदा पार्थः सह तैर्वसुधाधिपैः ।।३६।।**

शिशुपाल के अन्त्येष्टि संस्कार के पश्चात् कुन्ती-नन्दन राजा युधिष्ठिर ने वहाँ आये हुए सभी राजाओं के साथ चेदिदेश के राजसिंहासन पर शिशुपाल के पुत्र को अभिषिक्त कर दिया ।

**शान्तविघ्नं सुखारम्भं केशवेन सुरक्षितम् ।**
**समापयामास च तं राजसूयं महाक्रतुम् ।।३७।।**

प्रशान्त-विघ्न, सुखपूर्वक आरम्भ हुए और श्री-कृष्ण द्वारा सुरक्षित उस राजसूय यज्ञ को महाराज युधिष्ठिर ने विधिपूर्वक सम्पन्न किया ।

**ततस्त्ववभृथस्नातं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।**
**समस्तं पार्थिवं क्षत्रमुपागम्येदमब्रवीत् ।।३८।।**

यज्ञ समाप्त होने पर जब महाराज युधिष्ठिर अवभृथ स्नान कर चुके, उस समय समस्त क्षत्रिय राजाओं का समुदाय उनके पास आकर बोला—

**दिष्टया वर्धसि धर्मज्ञ साम्राज्यं प्राप्तवानसि ।**
**आपृच्छामो नरव्याघ्र सर्वकामैः सुपूजिताः ।।३९।।**

"धर्मज्ञ ! बड़े सौभाग्य की बात है कि आपका अभ्युदय हो रहा है । आपने सम्राट् का पद प्राप्त कर लिया यह और भी अधिक सौभाग्य की बात है । आपने हमारे लिए सब प्रकार के अभीष्ट पदार्थ सुलभ करके हमारा सम्मान किया है । अब हम आपसे जाने की अनुमति लेना चाहते हैं ।"

**श्रुत्वा तु वचनं राज्ञां धर्मराजो युधिष्ठिरः ।**
**सम्पूज्य नृपतीन्सम्यक् भ्रातॄन् सर्वानुवाच ह ।।४०।।**

राजाओं का यह कथन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने उन पूजनीय नरेशों का यथायोग्य सत्कार करके अपने सब भाइयों से कहा—

**प्रस्थिताः स्वानि राष्ट्राणि मामापृच्छ्य परन्तपाः ।**
**अनुव्रजत भद्रं वो विषयान्तं नृपोत्तमान् ।।४१।।**

"ये परन्तप भूपाल मुझसे आज्ञा लेकर अपने-अपने राष्ट्रों को जाने के लिए उद्यत हैं । तुम्हारा कल्याण हो । तुम लोग इन श्रेष्ठ नरेन्द्रों को आदर-पूर्वक राज्य की सीमा तक पहुँचा आओ ।

**भ्रातुर्वचनमाज्ञाय पाण्डवा धर्मचारिणः ।**
**यथार्हं नृपतीन् सर्वानेकैकं समनुव्रजन् ।।४२।।**

भाई की आज्ञा मानकर वे धर्मात्मा पाण्डव एक-एक करके यथायोग्य सभी राजाओं के साथ गये ।

**विराटमन्वयात् तूर्णं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।**
**धनञ्जयो यज्ञसेनं महात्मानं महारथम् ।।४३।।**

प्रतापी धृष्टद्युम्न तुरन्त ही राजा विराट के साथ गया । धनञ्जय ने महारथी महात्मा द्रुपद का अनुसरण किया ।

**भीष्मं च धृतराष्ट्रं च भीमसेनो महाबलः ।**
**द्रोणं तु ससुतं वीरं सहदेवो युधाम्पतिः ।।४४।।**

महाबली भीमसेन भीष्म और धृतराष्ट्र के साथ गये । योद्धाओं में श्रेष्ठ सहदेव ने द्रोणाचार्य तथा

उनके वीर पुत्र अश्वत्थामा को पहुँचाया।

**नकुलः सुबलं राजन् सहपुत्रं समन्वयात्।**
**द्रौपदेयाः ससौभद्राः पर्वतीयान् महारथान् ॥४५॥**

राजन्! सुबल और उनके पुत्र के साथ नकुल गये। द्रौपदी के पाँचों पुत्रों और अभिमन्यु[1] ने पर्वतीय महारथियों को अपने राज्य की सीमा तक पहुँचाया।

**गतेषु पार्थिवेन्द्रेषु सर्वेषु ब्राह्मणेषु च।**
**युधिष्ठिरमुवाचेदं वासुदेवः प्रतापवान् ॥४६॥**

राजाओं और ब्राह्मणों के चले जाने पर प्रतापी श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—

**आपृच्छे त्वां गमिष्यामि द्वारकां कुरुनन्दन।**
**राजसूयं क्रतुश्रेष्ठं दिष्टया त्वं प्राप्तवानसि ॥४७॥**

"कुरुनन्दन! मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ, अब मैं द्वारकापुरी जाऊँगा। सौभाग्य से आपने सब यज्ञों में श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ सम्पादन कर लिया है।"

**तमुवाचैवमुक्तस्तु धर्मराजो जनार्दनम्।**
**तव प्रसादाद् गोविन्द प्राप्तः क्रतुवरो मया ॥४८॥**

उनके ऐसा कहने पर धर्मराज युधिष्ठिर जनार्दन से बोले—"हे गोविन्द! आपकी ही कृपा से मैंने यह परमोत्तम यज्ञ सम्पन्न किया है।

**कथं त्वद्गमनार्थं मे वाणी वितरतेऽनघ।**
**न ह्यहं त्वामृते वीर रतिं प्राप्नोमि कर्हिचित् ॥४९॥**

"हे निष्पाप! मेरी वाणी आपको जाने के लिए कैसे कह सकती है? वीर! मैं आपके बिना किसी भी प्रकार प्रसन्न नहीं रह सकता।

**अवश्यं चैव गन्तव्या भवता द्वारकापुरी।**
**एवमुक्तः स धर्मात्मा युधिष्ठिरसहायवान् ॥५०॥**
**अभिगम्याब्रवीत् प्रीतः पृथां पृथुयशा हरिः।**
**साम्राज्यं समनुप्राप्ताः पुत्रास्तेऽद्य पितृष्वसः ॥५१॥**
**सिद्धार्था वसुमन्तश्च सा त्वं प्रीतिमवाप्नुहि।**
**अनुज्ञातस्त्वया चाहं द्वारकां गन्तुमुत्सहे ॥५२॥**

"परन्तु आपका द्वारकापुरी जाना भी आवश्यक ही है।" उनके ऐसा कहने पर महायशस्वी धर्मात्मा श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को साथ लेकर बुआ कुन्ती के पास गये और प्रसन्नतापूर्वक यों बोले—"बुआजी! आपके पुत्रों ने अब साम्राज्य प्राप्त कर लिया है। इनका मनोरथ पूर्ण हो गया है, ये सब-के-सब धन तथा रत्नों से सम्पन्न हैं। अब तुम इनके साथ प्रसन्नतापूर्वक रहो। यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं द्वारका जाना चाहता हूँ।"

**सुभद्रां द्रौपदीं चैव सभाजयत केशवः।**
**निष्क्राम्यान्तःपुरात्तस्माद् युधिष्ठिरसहायवान् ॥५३**

कुन्ती से आज्ञा ले श्रीकृष्ण द्रौपदी एवं सुभद्रा से भी मिले और मधुर वचनों से उन दोनों को प्रसन्न किया। तदनन्तर वे युधिष्ठिर के साथ अन्तःपुर से बाहर निकले।

**उपस्थितं रथं दृष्ट्वा समारुह्य महामनाः।**
**प्रययौ पुण्डरीकाक्षस्ततो द्वारवतीं पुरीम् ॥५४॥**

रथ को उपस्थित देखकर महामना कमलनयन श्रीकृष्ण उस पर आरूढ़ हो द्वारकापुरी की ओर चल पड़े।

**तं पद्भ्यामनुवव्राज धर्मराजो युधिष्ठिरः।**
**भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् वासुदेवं महाबलम् ॥५५॥**

भाइयोंसहित श्रीमान् धर्मराज युधिष्ठिर पैदल ही महाबली वासुदेव के पीछे-पीछे चलने लगे।

**ततो मुहूर्तं संगृह्य स्यन्दनप्रवरं हरिः।**
**अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥५६॥**

थोड़ी दूर जाने पर कमललोचन श्रीकृष्ण ने दो घड़ी के लिए अपने श्रेष्ठ रथ को रोककर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से कहा—

**अप्रमत्तः स्थितो नित्यं प्रजाः पाहि विशाम्पते।**
**कृत्वा परस्परेणैवं संविदं कृष्णपाण्डवौ ॥५७॥**
**अन्योऽन्यं समनुज्ञाप्य जग्मतुः स्वगृहान् प्रति।**
**गते द्वारवतीं कृष्णे सात्वतप्रवरे नृप ॥५८॥**

---

१. जो लोग युद्ध के समय अभिमन्यु की अवस्था केवल सोलह वर्ष मानते हैं, वे इस स्थल को ध्यानपूर्वक पढ़ें। यदि युद्ध के समय अभिमन्यु सोलह वर्ष के थे, तो राजसूय यज्ञ के समय उनकी अवस्था तीन वर्ष की होनी चाहिए। क्या कोई तीन वर्ष का बालक किसी को विदा करने के लिए किसी के साथ जा सकता है?

**एको दुर्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौबलः ।**
**तस्यां सभायां दिव्यायामूषतुस्तौ नरर्षभौ ।।५६।।**

"राजन् ! आप सदा सावधान रहकर प्रजाजनों के पालन में तत्पर रहें ।" श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर आपस में इस प्रकार बातें करके एक-दूसरे की आज्ञा ले अपने-अपने स्थान को चल दिये । राजन् ! यदु-वंश-शिरोमणि श्रीकृष्ण के द्वारका चले जाने पर भी राजा दुर्योधन और सुबलपुत्र शकुनि—ये दोनों नर-श्रेष्ठ उस दिव्य सभा-भवन में ही रहे ।

**इति महाभारते सभापर्वणि नवमोऽध्यायः ।।९।।**

## दशमोऽध्यायः

**दुर्योधन का मय-निर्मित सभा-भवन को देखना और पग-पग पर भ्रम के कारण उपहास का पात्र बनना, पाण्डवों पर विजय-प्राप्ति के लिए दुर्योधन और शकुनि का वार्तालाप**

वैशम्पायन उवाच

**वसन् दुर्योधनस्तस्यां सभायां पुरुषर्षभ ।**
**शनैर्ददर्श तां सर्वां सभां शकुनिना सह ।।१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—नरश्रेष्ठ जनमेजय ! राजा दुर्योधन ने उस सभा-भवन में निवास करते समय शकुनि के साथ धीरे-धीरे उस सारी सभा का निरीक्षण किया ।

**तस्यां दिव्यानभिप्रायान् ददर्श कुरुनन्दनः ।**
**न दृष्टपूर्वा ये तेन नगरे नागसाह्वये ।।२।।**

कुरुनन्दन दुर्योधन ने उस सभा-भवन में उन दिव्य अभिप्रायों [दृश्यों] को देखा, जिन्हें उसने हस्तिना-पुर में पहले कभी नहीं देखा था ।

**स कदाचित् सभामध्ये धार्तराष्ट्रो महीपतिः ।**
**स्फाटिकं स्थलमासाद्य जलमित्यभिशंकया ।।३।।**
**स्ववस्त्रोत्कर्षणं राजा कृतवान् बुद्धिमोहितः ।**
**दुर्मना विमुखश्चैव परिचक्राम तां सभाम् ।।४।।**

एक दिन की बात है, राजा दुर्योधन उस सभा-भवन में भ्रमण करता हुआ स्फटिक मणिमय स्थल पर जा पहुँचा और वहाँ जल की आशंका से उसने अपना वस्त्र ऊपर उठा लिया । इस प्रकार बुद्धि-मोह हो जाने से उसका मन उदास हो गया, अतः उस स्थान से लौटकर वह सभा में दूसरी ओर चक्कर लगाने लगा ।

**ततः स्थले निपतितो दुर्मना व्रीडितो नृपः ।**
**निःश्वसन् विमुखश्चापि परिचक्राम तां सभाम् ।।५।।**

तत्पश्चात् वह स्थल में ही गिर पड़ा । इससे वह मन-ही-मन दुःखित और लज्जित हो गया तथा वहाँ से हटकर लम्बी साँसें लेता हुआ सभा-भवन में घूमने लगा ।

**ततः स्फाटिकतोयां वै स्फाटिकाम्बुजशोभिताम् ।**
**वापीं मत्वा स्थलमिव सवासाः प्रापतज्जले ।।६।।**

फिर स्फटिकमणि के समान स्वच्छ जल से भरी तथा स्फटिकमणिमय कमलों से सुशोभित बावली को स्थल मानकर वह वस्त्रोंसहित जल में गिर पड़ा ।

**जले निपतितं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः ।**
**अर्जुनश्च यमौ चोभौ सर्वे ते प्राहसँस्तदा ।।७।।**

उसे जल में गिरा हुआ देख भीमसेन, अर्जुन और नकुल-सहदेव सभी उस समय ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे ।

**तथागतं तु तं दृष्ट्वा किंकराश्च सुयोधनम् ।**
**वासांसि च शुभान्यस्मै प्रददू राजशासनात् ।।८।।**

दुर्योधन की यह दुरवस्था देख सेवकों ने राजा की आज्ञा से दुर्योधन को सुन्दर वस्त्र प्रदान किये ।

**नामर्षयत् ततस्तेषामवहासममर्षणः ।**
**आकारं रक्षमाणस्तु न स तान् समुदैक्षत ।।९।।**

दुर्योधन स्वभाव से ही अमर्षशील था, अतः वह उनका उपहास नहीं सह सका । अपने मुख-मण्डल के भाव को छिपाये रखने के लिए वह उनकी ओर आँख नहीं उठाता था ।

**पुनर्वसनमुत्क्षिप्य प्रतरिष्यन्निव स्थलम् ।**
**आरुरोह ततः सर्वे जहसुश्च पुनर्जनाः ।।१०।।**

फिर स्थल में ही जल का भ्रम हो जाने से वह कपड़े उठाकर इस प्रकार चलने लगा, मानो तैरने की तैयारी कर रहा हो । इस प्रकार जब वह ऊपर

चढ़ा, तब सब लोग उसकी भ्रान्ति पर पुनः हँसने लगे।

**द्वारं तु पिहिताकारं स्फाटिकं प्रेक्ष्य भूमिपः।**
**प्रविशन्नाहतो मूर्ध्नि व्याघूर्णित इव स्थितः ॥११॥**

तत्पश्चात् राजा दुर्योधन ने स्फटिकमणि का बना हुआ एक द्वार देखा जो वस्तुतः बन्द था, परन्तु खुला हुआ दिखाई देता था। उसमें प्रवेश करते ही उसका सिर टकरा गया तथा उसे चक्कर-सा आ गया।

**भीमसेनेन तत्रोक्तो धृतराष्ट्रात्मजेति च।**
**सम्बोध्य प्रहसित्वा च इतो द्वारं नराधिपः ॥१२॥**

महाराज ! वहाँ भीमसेन ने उसे 'धृतराष्ट्रपुत्र'[1] कहकर सम्बोधित किया और हँसते हुए कहा—"राजन् ! द्वार इधर है।"

**तादृशं च परं द्वारं स्फाटिकोरुकपाटकम्।**
**विघट्टयन् कराभ्यां तु निष्क्रम्याग्रे पपात ह ॥१३॥**

आगे चलकर ठीक उसी प्रकार का एक अन्य द्वार मिला जिसमें स्फटिकमणि के बड़े-बड़े किवाड़ लगे थे। यद्यपि वह खुला था, तो भी दुर्योधन ने उसे बन्द समझकर उस पर दोनों हाथों से धक्का देना चाहा। उस धक्के से वह स्वयं द्वार के बाहर निकलकर गिर पड़ा।

**द्वारं तु वितताकारं समापेदे पुनश्च सः।**
**तद्वत्तं चेति मन्वानो द्वारस्थानादुपारमत् ॥१४॥**

आगे जाने पर उसे एक बहुत बड़ा फाटक और मिला, परन्तु कहीं पिछले द्वारों की भाँति यहाँ भी कोई अप्रिय घटना न घट जाए, इस भय से वह उस द्वार के इधर से ही लौट आया।

**एवं प्रलम्भान् विविधान् प्राप्य तत्र विशाम्पते।**
**पाण्डवेयाभ्यनुज्ञातस्ततो दुर्योधनो नृपः ॥१५॥**
**अप्रहृष्टेन मनसा राजसूये महाक्रतौ।**
**प्रेक्ष्य तामद्भुतामृद्धिं जगाम गजसाह्वयम् ॥१६॥**

राजन् ! इस प्रकार वहाँ बार-बार धोखा खाकर राजा दुर्योधन राजसूय महायज्ञ में पाण्डवों के पास आयी हुई अद्भुत-अपार समृद्धि पर दृष्टि डालकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर की आज्ञा ले अप्रसन्न मन से हस्तिनापुर को लौट गया।

**पाण्डवश्रीप्रतप्तस्य ध्यायमानस्य गच्छतः।**
**दुर्योधनस्य नृपतेः पापा मतिरजायत ॥१७॥**

पाण्डवों की राजलक्ष्मी से सन्तप्त हो उसी का चिन्तन करते हुए जाते समय राजा दुर्योधन के मन में पापपूर्ण विचार का उदय हुआ।

**पार्थान्सुमनसो दृष्ट्वा पार्थिवाँश्च वशानुगान्।**
**कृत्स्नं चापि हितं लोकमाकुमारं कुरूद्वह ॥१८॥**
**महिमानं परं चापि पाण्डवानां महात्मनाम्।**
**दुर्योधनो धार्तराष्ट्रो विवर्णः समपद्यत ॥१९॥**

कुरुश्रेष्ठ ! यह देखकर कि कुन्ती-पुत्रों का मन प्रमुदित है, भूमण्डल के सब नरेश उनके वश में हैं तथा आबाल-वृद्ध सारा जगत् उनका हितैषी है, महात्मा पाण्डवों की महिमा अत्यन्त बढ़ी हुई है, धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन का रंग फीका पड़ गया।

**अनेकाग्रं तु तं दृष्ट्वा शकुनिः प्रत्यभाषत।**
**दुर्योधन कुतोमूलं निःश्वसन्निव गच्छसि ॥२०॥**

उसे नाना प्रकार की चिन्ताओं से युक्त देखकर शकुनि ने पूछा—"दुर्योधन ! तुम्हारे दुःख का क्या कारण है, जिससे तुम लम्बी-लम्बी साँसें खींचते चल रहे हो ?"

दुर्योधन उवाच

**दृष्ट्वेमां पृथिवीं कृत्स्नां युधिष्ठिरवशानुगाम्।**
**अमर्षेण तु सम्पूर्णो दह्यमानो दिवानिशम् ॥२१॥**

**दुर्योधन बोला**—मामाजी ! इस सारी पृथिवी को युधिष्ठिर के वश में आयी देखकर मैं दिन-रात ईर्ष्या से भरा जलता रहता हूँ।

**श्रियं तथाऽऽगतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमिव पाण्डवे।**
**अमर्षवशमापन्नो दह्यामि न तथोचितः ॥२२॥**

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के समीप प्राप्त हुई उस प्रकाशमयी लक्ष्मी को देखकर मैं ईर्ष्यावश जल रहा हूँ। यद्यपि मेरे लिए यह उचित नहीं है।

---

१. महाभारत में केवल इतना ही वर्णन है। लोक में ऐसा प्रचलित है कि द्रौपदी उसे देखकर हँस पड़ी और बोली कि "अन्धों के अन्धे ही होते हैं।" यह बात महाभारत में कहीं नहीं है।

**वह्निमेव प्रवेक्ष्यामि भक्षयिष्यामि वा विषम् ।**
**अपो वापि प्रवेक्ष्यामि न हि शक्ष्यामि जीवितुम् ॥२३**

मैं अग्नि में प्रविष्ट हो जाऊँगा, विष खा लूँगा अथवा जल में डूब मरूँगा, अब मैं जीवित नहीं रह सकूँगा।

**को हि नाम पुमाँल्लोके मर्षयिष्यति सत्ववान् ।**
**सपत्नानृद्धचतो दृष्ट्वा हीनमात्मानमेव च ॥२४**

संसार में ऐसा कौन शक्तिशाली मनुष्य होगा जो शत्रुओं की वृद्धि और अपनी हीन-अवस्था होती देखकर भी चुपचाप सहन कर लेगा ?

**ईश्वरत्वं पृथिव्याश्च वसुमत्तां च तादृशीम् ।**
**यज्ञं च तादृशं दृष्ट्वा मादृशः को न संज्वरेत् ॥२५॥**

शत्रुओं के पास समस्त भू-मंडल का वह साम्राज्य, वैसी धन-रत्नों से भरी सम्पदा तथा उनका वैसा उत्कृष्ट राजसूय यज्ञ देखकर मेरे जैसा कौन मनुष्य चिन्तित नहीं होगा ?

**अशक्तश्चैक एवाहं तामाहर्तुं नृपश्रियम् ।**
**सहायाँश्च न पश्यामि तेन मृत्युं विचिन्तये ॥२६॥**

मैं अकेला उस राजलक्ष्मी को हड़प लेने में असमर्थ हूँ और अपने पास योग्य सहायक भी नहीं पाता हूँ, अतः मृत्यु का चिन्तन करता हूँ ।

**कृतो यत्नो मया पूर्वं विनाशे तस्य सौबल ।**
**तच्च सर्वमतिक्रम्य संवृद्धोऽप्स्विव पंकजम् ॥२७॥**

सुबलपुत्र ! मैंने पहले धर्मराज युधिष्ठिर को नष्ट करने का प्रयत्न किया था, किन्तु उन सारे संकटों को लाँघकर वे जल में कमल की भाँति निरन्तर बढ़ते ही गये ।

**सोऽहं श्रियं च तां दृष्ट्वा सभां वा च तथाविधाम् ।**
**रक्षिभिश्चावहासं तं परितप्ये यथाग्निना ॥२८॥**

मैं उस राजलक्ष्मी को, उस दिव्य सभा को तथा रक्षकों द्वारा किये गये अपने उपहास को देखकर निरन्तर सन्तप्त हो रहा हूँ, मानो अग्नि में जला जा रहा हूँ ।

**स मामभ्यनुजानीहि मातुलाद्य सुदुःखितम् ।**
**अमर्षं च समाविष्टं धृतराष्ट्रे निवेदय ॥२९॥**

मामाजी ! आप अब मुझे मरने के लिए आज्ञा दीजिए, क्योंकि मैं अत्यन्त दुःखी हूँ और ईर्ष्या की अग्नि में जल रहा हूँ । महाराज धृतराष्ट्र को मेरी यह अवस्था सूचित कर देना ।

शकुनिरुवाच

**दुर्योधन न तेऽमर्षः कार्यः प्रति युधिष्ठिरम् ।**
**भागधेयानि हि स्वानि पाण्डवा भुञ्जते सदा ॥३०॥**

**शकुनि ने कहा**—दुर्योधन ! तुम्हें युधिष्ठिर के प्रति ईर्ष्या नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि पाण्डव सदा अपने भाग्य का ही उपभोग करते आ रहे हैं ।

**आरब्धाश्च महाराज पुनः पुनररिन्दम ।**
**विमुक्ताश्च नरव्याघ्रा भागधेयपुरस्कृताः ॥३१॥**

शत्रुदमन ! तुमने अनेक बार पाण्डवों पर कुचक्र चलाये, परन्तु वे नर-श्रेष्ठ अपने भाग्य से उन सभी संकटों से छुटकारा पाते गये ।

**लब्धश्चानभिभूतार्थैः पित्र्योंऽशः पृथिवीपते ।**
**विवृद्धस्तेजसा तेषां तत्र का परिदेवना ॥३२॥**

नृपते ! पाण्डवों ने अपने लक्ष्य से विचलित न होकर निरन्तर प्रयत्न करके राज्य में अपना पैतृक अंश प्राप्त किया है । वह पैतृक सम्पत्ति आज उन्हीं के तेज से बहुत बढ़ गई है, अतः उसके लिए चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ?

**यच्चासहायतां राजन्नुक्तवानसि भारत ।**
**तन्मिथ्या भ्रातरो हीमे तव सर्वे वशानुगाः ॥३३॥**

हे भारत ! तुमने जो अपने आपको असहाय बताया है, वह भी मिथ्या है; क्योंकि तुम्हारे ये सब भाई तुम्हारी आज्ञा के अधीन हैं ।

**द्रोणस्तव महेष्वासः सह पुत्रेण वीर्यवान् ।**
**सूतपुत्रश्च राधेयो गौतमश्च महारथः ॥३४॥**
**अहं च सह सोदर्यैः सौमदत्तिश्च पार्थिवः ।**
**एतैस्त्वं सहितः सर्वैर्जय कृत्स्नां वसुन्धराम् ॥३५॥**

महान् धनुर्धर एवं पराक्रमी द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा के साथ तुम्हारे सहायक हैं। राधानन्दन सूतपुत्र कर्ण, महारथी कृपाचार्य, भाइयों सहित मैं तथा राजा भूरिश्रवा—इन सबके साथ तुम भी सारी पृथिवी पर विजय प्राप्त करो ।

दुर्योधन उवाच

**त्वया च सहितो राजन्नेतैश्चान्यैर्महारथैः ।**
**एतानेव विजेष्यामि यदि त्वमनुमन्यसे ॥३६॥**

**एतेषु विजितेष्वद्य भविष्यति मही मम ।**
**सर्वे च पृथिवीपालाः सभा सा च महाधना ॥३७॥**

**दुर्योधन बोला**—राजन् ! यदि तुम्हारा सहयोग हो, तो तुम्हारे और इन द्रोणाचार्य आदि महारथियों के साथ मैं इन पाण्डवों को ही युद्ध में जीत लूं । इनके परास्त हो जाने पर आज ही यह सम्पूर्ण पृथिवी, समस्त भूपाल और वह महाधन-सम्पन्न सभा भी मेरे अधीन हो जाएगी ।

शकुनिरुवाच

**धनञ्जयो वासुदेवो भीमसेनो युधिष्ठिरः ।**
**नकुलः सहदेवश्च द्रुपदश्च सहात्मजैः ॥३८॥**
**नैते युधि पराजेतुं शक्या देवगणैरपि ।**
**महारथा महेष्वासाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥३९॥**

**शकुनि ने कहा**—राजन् ! अर्जुन, श्रीकृष्ण, भीमसेन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव तथा पुत्रोंसहित द्रुपद—इन्हें देवता भी युद्ध में परास्त नहीं कर सकते । ये सबके सब महारथी महान् धनुर्धर, अस्त्र-विद्या में निपुण और युद्ध में उन्मत्त होकर लड़नेवाले हैं ।

**अहं तु तद्विजानामि विजेतुं येन शक्यते ।**
**युधिष्ठिरं स्वयं राजंस्तन्निबोध जुषस्व च ॥४०॥**

राजन् ! मैं वह उपाय जानता हूँ जिससे युधिष्ठिर स्वयं पराजित हो सकते हैं । तुम उसे सुनो और उसका सेवन करो ।

**द्यूतप्रियश्च कौन्तेयो न स जानाति देवितुम् ।**
**समाहूतश्च राजेन्द्रो न शक्ष्यति निवर्तितुम् ॥४१॥**

राजन् ! कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को जुआ बहुत प्रिय है परन्तु वह जुआ खेलना नहीं जानते । यदि उन्हें जुआ खेलने के लिए बुलाया जाए, तो वे पीछे नहीं हट सकेंगे ।

**देवने कुशलश्चाहं न मेऽस्ति सदृशो भुवि ।**
**त्रिषु लोकेषु कौरव्य तं त्वं द्यूते समाह्वय ॥४२॥**

मैं जुआ खेलने में अति प्रवीण हूँ । इस कला में मेरी समानता करनेवाला पृथ्वी की तो बात ही क्या, तीनों लोकों में दूसरा नहीं है । अतः हे कुरुनन्दन ! तुम युधिष्ठिर को द्यूतक्रीड़ा के लिए बुलवाओ ।

**तस्याक्षकुशलो राजन्नादास्येऽहमसंशयम् ।**
**राज्यं श्रियं च तां दीप्तां त्वदर्थं पुरुषर्षभ ॥४३॥**

नरश्रेष्ठ ! मैं पासा फेंकने में कुशल हूँ, अतः युधिष्ठिर के राज्य तथा देदीप्यमान राजलक्ष्मी को तुम्हारे लिए अवश्य प्राप्त कर लूंगा, इसमें सन्देह नहीं है ।

**इदं तु सर्वं त्वं राज्ञे दुर्योधन निवेदय ।**
**अनुज्ञातस्तु ते पित्रा विजेष्ये तान् न संशयः ॥४४॥**

दुर्योधन ! तुम ये सारी बातें अपने पिता धृत-राष्ट्र से कहो । उनकी आज्ञा मिल जाने पर मैं निश्चय ही पाण्डवों को जीत लूँगा ।

दुर्योधन उवाच

**त्वमेव कुरुमुख्याय धृतराष्ट्राय सौबल ।**
**निवेदय यथान्यायं नाहं शक्ष्ये निवेदितुम् ॥४५॥**

**दुर्योधन बोला**—सुबलनन्दन ! आप ही कुरुकुल के प्रधान महाराज धृतराष्ट्र से इन सब बातों को यथोचित रूप से कहिए । मैं स्वयं कुछ भी नहीं कह सकूंगा ।

**इति महाभारते सभापर्वणि दशमोऽध्यायः ॥१०॥**

# एकादशोऽध्यायः

## दुर्योधन का द्यूत के लिए धृतराष्ट्र को उकसाना

वैशम्पायन उवाच

**दुर्योधनवचः श्रुत्वा धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ।**
**उपगम्य महाप्राज्ञं शकुनिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! दुर्योधन की बात सुनकर शकुनि ने [हस्तिनापुर में आकर] महाप्राज्ञ राजा धृतराष्ट्र से इस प्रकार कहा—

शकुनिरुवाच

**दुर्योधनो महाराज विवर्णो हरिणः कृशः ।**
**दीनश्चिन्तापरश्चैव तं विद्धि मनुजाधिप ॥२॥**

**शकुनि बोला**—महाराज ! दुर्योधन की कान्ति मलिन होती जा रही है । उसका रंग सफेद पड़ गया है तथा वह दुर्बल हो गया है । उसकी दशा दयनीय

है। वह निरन्तर चिन्ता में डूबा रहता है। नरेश्वर! आप उसके मनोभावों को समझने का प्रयत्न कीजिए।

**न वै परीक्षसे सम्यगसह्यं शत्रुसम्भवम्।**
**ज्येष्ठपुत्रस्य हृच्छोकं किमर्थं नावबुध्यसे ॥३॥**

उसे शत्रुओं के द्वारा कोई असह्य कष्ट प्राप्त हुआ है। आप उसकी ठीक प्रकार से परीक्षा क्यों नहीं करते? दुर्योधन आपका ज्येष्ठ पुत्र है। उसके हृदय में महान् शोक व्याप्त है, आप उसका पता क्यों नहीं लगाते?

धृतराष्ट्र उवाच

**दुर्योधन कुतोमूलं भृशमार्तोऽसि पुत्रक।**
**श्रोतव्यश्चेन्मया सोऽर्थो ब्रूहि मे कुरुनन्दन ॥४॥**

**धृतराष्ट्र ने पूछा**—पुत्र दुर्योधन! तुम्हारे दुःख का क्या कारण है? सुना है, तुम बड़े कष्ट में हो। कुरुनन्दन! यदि मेरे सुनने योग्य हो, तो वह बात मुझे बताओ।

**अयं त्वां शकुनिः प्राह विवर्णं हरिणं कृशम्।**
**चिन्तयँश्च न पश्यामि शोकस्य तव सम्भवम् ॥५॥**

शकुनि कहता है कि तुम्हारी कान्ति फीकी पड़ गई है। तुम सफेद और दुबले हो गये हो, परन्तु मैं बहुत सोचने पर भी तुम्हारे शोक का कोई कारण नहीं देखता।

**ऐश्वर्यं हि महत् पुत्र त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।**
**भ्रातरः सुहृदश्चैव नाचरन्ति तवाप्रियम् ॥६॥**

"वत्स! इस सम्पूर्ण महान् ऐश्वर्य की प्रतिष्ठा तुम्हारे ही ऊपर है। तुम्हारे भाई और सुहृद्= हितैषी कभी तुम्हारे प्रतिकूल आचरण नहीं करते।

**आच्छादयसि प्रावारानश्नासि विशदौदनम्।**
**आजानेया वहन्त्यश्वाः केनासि हरिणः कृशः ॥७॥**

तुम बहुमूल्य वस्त्र पहनते-ओढ़ते हो, उत्तम विशुद्ध भात खाते हो और उत्तम नस्ल के घोड़े तुम्हारी सवारी में रहते हैं, फिर किस दुःख से तुम सफेद और दुबले हो गये हो?

**शयनानि महार्हाणि योषितश्च मनोरमाः।**
**गुणवन्ति च वेश्मानि विहाराश्च यथासुखम् ॥८॥**
**देवानामिव ते सर्वं वाचि बद्धं न संशयः।**
**स दीन इव दुर्धर्ष कस्माच्छोचसि पुत्रक ॥९॥**

बहुमूल्य शय्याएँ, मन को प्रिय लगनेवाली अनिन्द्य सुन्दरी युवतियाँ, सभी ऋतुओं में सुखदायक भवन तथा इच्छानुसार सुखप्रद विहार-स्थान—देवताओं की भाँति ये सभी वस्तुएँ निःसन्देह तुम्हें वाणी द्वारा कहनेमात्र से सुलभ हैं। मेरे दुर्धर्ष पुत्र! फिर तुम दीन की भाँति क्यों शोक करते हो?

दुर्योधन उवाच

**अश्नाम्याच्छादये चाहं यथा कुपुरुषस्तथा।**
**अमर्षं धारये चोग्रं निनीषुः कालपर्ययम् ॥१०॥**

**दुर्योधन बोला**—पिताजी! मैं अच्छा खाता हूँ, उत्तम वस्त्र पहनता हूँ परन्तु नीच पुरुषों की भाँति। मैं समय के परिवर्तन की प्रतीक्षा में रहकर अपने हृदय में भारी ईर्ष्या धारण कर रहा हूँ।

**अमर्षणः स्वाः प्रकृतीरभिभूय परं स्थितः।□**
**क्लेशान् मुमुक्षुः परजान् स वै पुरुष उच्यते ॥११॥**

जो शत्रुओं के प्रति अमर्ष रखकर उन्हें पराजित करके विश्राम लेता है तथा अपनी प्रजा को शत्रुजनित क्लेशों से छुड़ाने की इच्छा रखता है, वही पुरुष कहलाता है।

**सन्तोषो वै श्रियं हन्ति ह्यभिमानं च भारत।□**
**अनुक्रोशभये चोभे यैर्वृतो नाश्नुते महत् ॥१२॥**

हे भारत! सन्तोष लक्ष्मी और स्वाभिमान को नष्ट कर देता है। दया और भय ये दोनों भी वैसे ही हैं। इन [सन्तोषादि] से युक्त मनुष्य कभी ऊँचा पद नहीं पा सकता।

**न मां प्रीणाति मद्भुक्तं श्रियं दृष्ट्वा युधिष्ठिरे।**
**अति ज्वलन्तीं कौन्तेये विवर्णकरणीं मम ॥१३॥**

कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर की उस अत्यन्त प्रकाशमान राजलक्ष्मी को देखकर मुझे भोजन अच्छा नहीं लगता। उसी के कारण मेरी कान्ति नष्ट हो रही है।

**न क्वचिद्धि मया तादृग् दृष्टपूर्वो न च श्रुतः।**
**यादृग् धनागमो यज्ञे पाण्डुपुत्रस्य धीमतः ॥१४॥**

महाप्राज्ञ पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के यज्ञ में धन की जैसी प्राप्ति हुई है, वैसी मैंने पहले कहीं न तो देखी है और न सुनी ही है।

**अपर्यन्तं धनौघं तं दृष्ट्वा शत्रोरहं नृप।**
**शमं नैवाभिगच्छामि चिन्तयानो विशाम्पते ॥१५॥**

महाराज ! शत्रु की वह अनन्त धनराशि देखकर मैं चिन्तित हो रहा हूँ, मुझे चैन नहीं मिलता।

शकुनिरुवाच

**यामेतामतुलां लक्ष्मीं दृष्टवानसि पाण्डवे।**
**तस्याः प्राप्तावुपायं मे शृणु सत्यपराक्रम ॥१६॥**

**शकुनि बोला**—सत्यपराक्रमी दुर्योधन ! तुमने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के यहाँ जो अनुपम लक्ष्मी देखी है, उसकी प्राप्ति का उपाय मुझसे सुनो।

**अहमक्षेष्वभिज्ञातः पृथिव्यामपि भारत।**
**हृदयज्ञः पणज्ञश्च विशेषज्ञश्च देवने ॥१७॥**

हे भारत ! मैं इस भूमण्डल में जुए के खेल का विशेष जानकार हूँ, द्यूतक्रीड़ा का मर्मज्ञ हूँ, दाँव लगाने का भी मुझे ज्ञान है तथा पासे फेंकने की कला में भी मैं विशेषज्ञ हूँ।

**द्यूतप्रियश्च कौन्तेयो न च जानाति देवितुम्।**
**आहूतश्चैष्यति व्यक्तं द्यूतादपि रणादपि ॥१८॥**

कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर को जुआ खेलना बहुत प्रिय है परन्तु वे उसे खेलना नहीं जानते। द्यूत अथवा युद्ध किसी भी उद्देश्य से यदि उन्हें बुलाया जाए तो वे अवश्य पधारेंगे।

**नियतं तं विजेष्यामि कृत्वा तु कपटं विभो।**
**आनयामि समृद्धिं तां दिव्यां चोपाह्वयस्व तम् ॥१९॥**

विभो ! मैं छल का आश्रय लेकर युधिष्ठिर को निश्चय ही जीत लूँगा तथा उनकी उस दिव्य समृद्धि को यहाँ मँगा लूँगा, अतः तुम उन्हें बुलवाओ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तः शकुनिना राजा दुर्योधनस्ततः।**
**धृतराष्ट्रमिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत् ॥२०॥**
**अयमुत्सहते राजञ्छ्रियमाहर्तुमक्षवित्।**
**द्यूतेन पाण्डुपुत्रस्य तदनुज्ञातुमर्हसि ॥२१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—शकुनि के ऐसा कहने पर राजा दुर्योधन ने तुरन्त ही धृतराष्ट्र से कहा—"राजन् ! यह शकुनि द्यूतक्रीड़ा के मर्मज्ञ हैं और जुए द्वारा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर की राजलक्ष्मी के अपहरण का उत्साह रखते हैं, अतः इसके लिए इन्हें आज्ञा दीजिए।"

धृतराष्ट्र उवाच

**क्षत्ता मन्त्री महाप्राज्ञः स्थितो यस्यास्मि शासने।**
**तेन संगम्य वेत्स्यामि कार्यस्यास्य विनिश्चयम् ॥२२**

**धृतराष्ट्र बोले**—महाबुद्धिमान् विदुर मेरे मन्त्री हैं। मैं उनके आदेशानुसार चलता हूँ। उनसे विचार-विमर्श के पश्चात् मैं यह जान सकूँगा कि इस कार्य के सम्बन्ध में क्या निश्चय किया जाए।

**स हि धर्मं पुरस्कृत्य दीर्घदर्शी परं हितम्।**
**उभयोः पक्षयोर्युक्तं वक्ष्यत्यर्थविनिश्चयम् ॥२३॥**

विदुर दूरदर्शी हैं, वे धर्म को सामने रखकर दोनों पक्षों के लिए उचित और परम हित की बात सोचकर उसके अनुकूल ही कार्य का निश्चय करेंगे।

दुर्योधन उवाच

**निवर्तयिष्यति त्वासौ यदि क्षत्ता समेष्यति।**
**निवृत्ते त्वयि राजेन्द्र मरिष्येऽहमसंशयम् ॥२४॥**

**दुर्योधन ने कहा**—विदुरजी जब आपसे मिलेंगे तब निश्चय ही आपको इस कार्य से निवृत्त कर देंगे। राजेन्द्र ! आपके इस कार्य से मुँह मोड़ लेने पर मैं निःसन्देह प्राण त्याग दूँगा।

**स त्वं मयि मृते राजन् विदुरेण सुखी भव।**
**भोक्ष्यसे पृथिवीं कृत्स्नां किं मया त्वं करिष्यसि ॥२५**

राजन् ! मेरी मृत्यु हो जाने पर आप विदुर के साथ सुख से रहना और सारे भूमण्डल का राज्य भोगना। मेरे जीवित रहने से आपका क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ?

वैशम्पायन उवाच

**आर्तवाक्यं तु तत्तस्य प्रणयोक्तं निशम्य सः।**
**धृतराष्ट्रोऽब्रवीत् प्रेष्यान् दुर्योधनमते स्थितः ॥२६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! अपने पुत्र का यह प्रेमपूर्ण आर्तवचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र दुर्योधन के मत में आ गये और सेवकों से बोले—

**स्थूणासहस्रैर्बृहतीं शतद्वारां सभां मम।**
**मनोरमां दर्शनीयामाशु कुर्वन्तु शिल्पिनः ॥२७॥**

"बहुत-से शिल्पी लगकर एक परम सुन्दर, दर्शनीय तथा विशाल सभा-भवन का शीघ्र निर्माण करें। उसमें सौ द्वार हों और एक सहस्र खम्भे हों।

**ततः संस्तीर्य रत्नैस्तां तक्ष्ण आनाय्य सर्वशः ।**
**सुकृतां सुप्रवेशां च निवेदयत मे शनैः ॥२८॥**

"फिर सब देशों से तक्षक (शिल्पी) बुलाकर उस सभा-भवन के खम्भों और दीवारों में रत्न जड़वा दिये जाएँ । वह सुन्दर एवं सुसज्जित भवन जब सुख-पूर्वक प्रवेश के योग्य हो जाए, तब धीरे-से मेरे पास आकर इसकी सूचना दो ।"

**दुर्योधनस्य शान्त्यर्थमिति निश्चित्य भूमिपः ।**
**धृतराष्ट्रो महाराज प्राहिणोद् विदुराय वै ॥२९॥**

महाराज ! दुर्योधन की मनःशान्ति के लिए ऐसा निश्चय करके राजा धृतराष्ट्र ने विदुर के पास दूत भेजा ।

**तत् श्रुत्वा विदुरो धीमान् कलिद्वारमुपस्थितम् ।**
**विनाशमुखमुत्पन्नं धृतराष्ट्रमुपाद्रवत् ॥३०॥**

बुद्धिमान् विदुर कलह के द्वाररूप जुए का अवसर उपस्थित हुआ सुनकर तथा विनाश का मुख प्रकट हुआ जान धृतराष्ट्र के पास दौड़े हुए आये ।

**सोऽभिगम्य महात्मानं भ्राता भ्रातरमग्रजम् ।**
**मूर्ध्ना प्रणम्य चरणाविदं वचनमब्रवीत् ॥३१॥**

विदुर ने अपने श्रेष्ठ भ्राता महामना धृतराष्ट्र के पास जाकर उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—

विदुर उवाच

**नाभिनन्दामि ते राजन् व्यवसायमिमं प्रभो ।**
**पुत्रैर्भेदो यथा न स्याद् द्यूतहेतोस्तथा कुरु ॥३२॥**

**विदुर बोले**—राजन् ! मैं आपके इस निश्चय को पसन्द नहीं करता । प्रभो ! आप ऐसा प्रयत्न कीजिए, जिससे जुए के कारण आपके और पाण्डु के पुत्रों में भेद-भाव न हो ।

वैशम्पायन उवाच

**विदुरस्य मतिं ज्ञात्वा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।**
**दुर्योधनमिदं वाक्यमुवाच विजने पुनः ॥३३॥**

विदुर का विचार जानकर अम्बिका-नन्दन राजा धृतराट्र ने एकान्त में दुर्योधन से पुनः इस प्रकार कहा—

धृतराष्ट्र उवाच

**अलं द्यूतेन गान्धारे विदुरो न प्रशंसति ।**
**न ह्यसौ महाबुद्धिरहितं नो वदिष्यति ॥३४॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—"गान्धारीनन्दन ! जुए का खेल नहीं होना चाहिए । विदुर इसे अच्छा नहीं मानते । महाप्राज्ञ विदुर हमें ऐसा परामर्श नहीं देंगे, जिससे हमारा अहित हो ।

**हितं हि परमं मन्ये विदुरो यत् प्रभाषते ।**
**तदलं पुत्र द्यूतेन द्यूते भेदो हि दृश्यते ॥३५॥**

विदुर जो कुछ कहते हैं, उसी को मैं अपना सर्वोत्तम हित मानता हूँ, अतः वत्स ! जुए का खेल नहीं होना चाहिए । जुए में वैर-विरोध की सम्भावना दिखाई देती है ।

**भेदे विनाशो राज्यस्य तत् पुत्र परिवर्जय ।**
**पित्रा मात्रा च पुत्रस्य यद् वै कार्यं परं स्मृतम् ॥३६॥**

वैर-विरोध होने से राज्य का नाश हो जाता है, अतः पुत्र ! तू जुए का आग्रह छोड़ दे । माता-पिता को चाहिए कि वे पुत्रों को उत्तम कर्तव्य की शिक्षा दें, अतः मैंने ऐसा कहा है ।

**त्वं वै ज्येष्ठो ज्यैष्ठिनेयः पुत्र मा पाण्डवान् द्विषः ।**
**द्वेष्टा ह्यसुखमादत्ते यथैव निधनं तथा ॥३७॥**

दुर्योधन ! तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो, जेठी रानी के गर्भ से उत्पन्न हुए हो । पुत्र ! पाण्डवों से व्यर्थ द्वेष मत करो, क्योंकि द्वेष करनेवाला मनुष्य मृत्यु के समान कष्ट पाता है ।

**अव्युत्पन्नं समानार्थं तुल्यमित्रं युधिष्ठिरम् ।**
**अद्विषन्तं कथं द्विष्यात् त्वादृशो भरतर्षभ ॥३८॥**

युधिष्ठिर छलकपट से अनभिज्ञ हैं (वे किसी के साथ छल-कपट नहीं करते) । उनका धन तुम्हारे ही जैसा है । जो तुम्हारे मित्र हैं वे उनके भी मित्र हैं तथा युधिष्ठिर तुमसे कभी द्वेष नहीं करते । भरत-कुलभूषण ! तुम्हारे जैसे पुरुष को भी उनसे द्वेष नहीं करना चाहिए ।

**तुल्याभिजनवीर्यश्च कथं भ्रातुः श्रियं नृपः ।**
**पुत्र कामयसे मोहान् मैवं भूः शाम्य मा शुचः ॥३९॥**

राजन् ! तुम्हारा और युधिष्ठिर का कुल एवं पराक्रम एक-सा है । पुत्र ! तुम मोहवश अपने भाई की लक्ष्मी की इच्छा क्यों करते हो ? ऐसे अधम मत बनो । शान्त भाव से रहो, शोक न करो ।

**अनार्याचरितं तात परस्वस्पृहणं भृशम् ।**
**स्वसन्तुष्टः स्वधर्मस्थो यः स वै सुखमेधते ॥४०॥**
**अव्यापारः परार्थेषु नित्योद्योगः स्वकर्मसु ।**
**रक्षणं समुपात्तानामेतद् वैभवलक्षणाम् ॥४१॥**

तात ! दूसरों के धन की स्पृहा (इच्छा) रखना अत्यन्त नीच पुरुषों का काम है। जो अपने ही धन में सन्तुष्ट तथा अपने धर्म में ही स्थित है, वही सुख प्राप्त करता है। दूसरों के धन को हड़पने की चेष्टा न करना, अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना तथा अपने को जो कुछ प्राप्त है, उसकी रक्षा करना—यही उत्तम वैभव का लक्षण है।

**विपत्तिष्वव्यथो दक्षो नित्यमुत्थानवान् नरः ।**
**अप्रमत्तो विनीतात्मा नित्यं भद्राणि पश्यति ॥४२॥**

जो विपत्ति में व्यथित नहीं होता, सदा उद्योग-शील बना रहता है, जो प्रमाद-रहित है, जिसके हृदय में विनयरूप सद्गुण है, वह चतुर मनुष्य सदा कल्याण ही देखता है।

**बाहूनिवैतान् मा छेत्सीः पाण्डुपुत्रास्तथैव ते ।**
**भ्रातृणां तद्धनार्थं वै मित्रद्रोहं च मा कुरु ॥४३॥**

ये पाण्डव तुम्हारी भुजाओं के समान हैं, इन्हें काटो मत। इसी प्रकार तुम भाइयों के धन के लिए मित्र-द्रोह न करो।

दुर्योधन उवाच

**यस्य नास्ति निजा प्रज्ञा केवलं तु बहुश्रुतः ।**
**न स जानाति शास्त्रार्थं दर्वी सूपरसानिव ॥४४॥**

**दुर्योधन बोला**—पिताजी ! जिसके पास अपनी बुद्धि नहीं है, जिसने केवल बहुत-से शास्त्रों को श्रवण भर किया है, वह शास्त्र के तात्पर्य को नहीं जान सकता, जैसे कलछी दाल के रस का (स्वाद) नहीं जान सकती।

**जानन् वै मोहयसि मां नावि नौरिव संयता ।**
**स्वार्थे किं नावधानं ते उताहो द्वेष्टि मां भवान् ॥४५॥**

एक नाव में बँधी हुई दूसरी नौका के समान आप विदुरजी की बुद्धि के आश्रित हैं। आप जानते हुए भी मुझे मोह में क्यों डाल रहे हैं ? स्वार्थ-साधन के लिए क्या आपमें तनिक भी सावधानी नहीं है ? अथवा आप मुझसे द्वेष रखते हैं ?

**राजन् परिणतप्रज्ञो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ।**
**प्रतिपन्नान् स्वकार्येषु सम्मोहयसि नो भृशम् ॥४६॥**

राजन् ! आपकी बुद्धि परिपक्व है, आप वृद्ध पुरुषों की सेवा करते हैं, आपने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की है, तो भी जब हम लोग अपने कार्य में तत्पर होते हैं, उस समय आप हमें बार-बार मोह में डाल देते हैं।

**क्षत्रियस्य महाराज जये वृत्तिः समाहिता ।**
**स वै धर्मस्त्वधर्मो वा स्ववृत्तौ का परीक्षणा ॥४७॥**

महाराज ! क्षत्रिय की वृत्ति सदा विजय में ही लगी रहती है, वह चाहे धर्म हो या अधर्म। अपनी वृत्ति के विषय में परीक्षा क्या ?

**प्रच्छन्नो वा प्रकाशो वा योगो योऽरिं प्रबाधते ।**
**तद् वै शस्त्रं शस्त्रविदां न शस्त्रं छेदनं स्मृतम् ॥४८॥**

गुप्त या प्रकट, जो भी उपाय शत्रु को विपत्ति में डाल दे, वही शस्त्रज्ञ पुरुषों का शस्त्र है। केवल काटनेवाला शस्त्र ही शस्त्र नहीं है।

**शत्रुश्चैव हि मित्रं च न लेख्यं न च मातृका ।**
**यो वै संतापयति यं स शत्रुः प्रोच्यते नृप ॥४९॥**

राजन् ! अमुक शत्रु है और अमुक मित्र, इसका कोई लेखा नहीं है। शत्रु-मित्र-सूचक कोई अक्षर भी नहीं है। जो जिसको सन्ताप देता है, वही उसका शत्रु कहा जाता है।

**असन्तोषः श्रियो मूलं तस्मात्तं कामयाम्यहम् ।**
**समुच्छ्रये यो यतते स राजन् परमो नयः ॥५०॥**

असन्तोष ही लक्ष्मी-प्राप्ति का मूल कारण है, अतः मैं असन्तोष चाहता हूँ। राजन् ! जो अपनी उन्नति के लिए प्रयत्न करता है, उसका वह प्रयत्न ही सर्वोत्तम नीति है।

**द्वावेतौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव ।**
**राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥५१॥**

जैसे सर्प बिल में रहनेवाले चूहों आदि को निगल जाता है, उसी प्रकार यह भूमि विरोध न करनेवाले राजा तथा परदेश में न विचरनेवाले ब्राह्मण=संन्यासी को ग्रस लेती है।

**शत्रुपक्षं समृध्यन्तं यो मोहात् समुपेक्षते ।**
**व्याधिराप्यायित इव तस्य मूलं छिनत्ति सः ॥५२॥**

जो निरन्तर बढ़ते हुए शत्रु-पक्ष की ओर से मोह-वश उदासीन हो जाता है, तो बढ़े हुए रोग की भाँति शत्रु उस उदासीन राजा की जड़ काट डालता है ।

**आजमीढ रिपोर्लक्ष्मीर्मा ते रोचिष्ट भारत ।**
**एष भारः सत्त्ववतां नय शिरसि विष्ठितः ॥५३॥**

भरतकुलतिलक ! अजमीढनन्दन ! आपको शत्रु की लक्ष्मी अच्छी नहीं लगनी चाहिए । हर समय न्याय को सिर पर उठाये रखना भी बुद्धिमानों के लिए भार ही है ।

**नाप्राप्य पाण्डवैश्वर्यं संशयो मे भविष्यति ।**
**अवाप्स्ये वा श्रियं तां हि शयिष्ये वा हतो युधि ॥५४॥**

जब तक मैं पाण्डवों की सम्पत्ति को प्राप्त न कर लूँ, तबतक मेरे मन में दुविधा ही रहेगी । अतः या तो मैं पाण्डवों की उस सम्पत्ति को प्राप्त करूँगा अथवा युद्ध में मरकर सो जाऊँगा [तभी मेरी दुविधा मिटेगी] ।

**इति महाभारते सभापर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥११॥**

## द्वादशोऽध्यायः

### युधिष्ठिर का हस्तिनापुर में आगमन, द्यूत-क्रीड़ा का आरम्भ और शकुनि के छल से प्रत्येक दाँव पर उसकी हार

धृतराष्ट्र उवाच

**वाक्यं न मे रोचते यत् त्वयोक्तं**
**यत्ते प्रियं तत् क्रियतां नरेन्द्र ।**
**पश्चात्तप्यसे त्वतिक्रम्य वाक्यं**
**न हीदृशं भावि वचो हि धर्म्यम् ॥१॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—पुत्र ! तुमने जो बात कही है, वह मुझे अच्छी नहीं लगती । नरेन्द्र ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो । जुआ आरम्भ करने पर मेरी बातों को याद करके तुम पीछे पछताओगे, क्योंकि तुम्हारे मुख से जैसी बातें निकली हैं, वे धर्मानुकूल नहीं हैं ।

वैशम्पायन उवाच

**ततो विद्वान् विदुरं मन्त्रिमुख्य-**
**मुवाचेदं धृतराष्ट्रो नरेन्द्रः ।**
**युधिष्ठिरं राजपुत्रं च गत्वा**
**मद्वाक्येन क्षिप्रमिहानयस्व ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—तदनन्तर विद्वान् राजा धृतराष्ट्र ने मन्त्रियों में प्रधान विदुर को यह आज्ञा दी कि तुम राजकुमार युधिष्ठिर के पास जाकर मेरे आदेश से उन्हें शीघ्र यहाँ लिवा लाओ ।

**ततः प्रायाद् विदुरोऽश्वैरुदारै-**
**र्महाजवैर्बलिभिः साधुदान्तैः ।**
**बलान्नियुक्तो धृतराष्ट्रराज्ञा**
**मनीषिणां पाण्डवानां सकाशे ॥३॥**

राजा धृतराष्ट्र के बलपूर्वक भेजने पर विदुरजी अत्यन्त वेगशाली, बलवान् तथा अच्छी प्रकार वश में किये हुए श्रेष्ठ अश्वों से जुते हुए रथ पर सवार होकर परमबुद्धिमान् पाण्डवों के पास गये ।

**तं वै राजा सत्यधृतिर्महात्मा**
**अजातशत्रुर्विदुरं यथावत् ।**
**पूजापूर्वं प्रतिगृह्याजमीढ-**
**स्ततोऽपृच्छद् धृतराष्ट्रं सपुत्रम् ॥४॥**

सत्यवादी महात्मा अजमीढनन्दन अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर ने विदुरजी का यथावत् आदर-सत्कार करके उनसे पुत्रोंसहित धृतराष्ट्र की कुशल पूछी ।

युधिष्ठिर उवाच

**विज्ञायते ते मनसोऽप्रहर्षः**
**कच्चित् क्षत्तः कुशलेनागतोऽसि ।**
**कच्चित्पुत्राः स्थविरस्यानुलोमा**
**वशानुगाश्चापि विशोऽथ कच्चित् ॥५॥**

**युधिष्ठिर बोले**—विदुरजी ! आपका मन प्रसन्न नहीं जान पड़ता, आप कुशल से तो आये हैं ? वृद्ध राजा धृतराष्ट्र के पुत्र उनके अनुकूल तो चलते हैं न ? सारी प्रजा उनके वश में है न ?

विदुर उवाच

**राजा महात्मा कुशली सपुत्र**
**आस्ते वृतो ज्ञातिभिरिन्द्रकल्पः ।**

**प्रीतो राजन् पुत्रगणैर्विनीतै-**
**र्विशोक एवात्मरतिर्महात्मा ॥६॥**

**विदुर ने बताया**—हे राजन् ! इन्द्र के समान प्रभावशाली महामना राजा धृतराष्ट्र अपने भाई-बन्धुओं तथा पुत्रोंसहित कुशलपूर्वक हैं ? अपने विनीत पुत्रों से वे प्रसन्न रहते हैं ? उनमें शोक का अभाव है ? वे महामना अपनी आत्मा में ही अनुराग रखने वाले हैं ।

**इदं तु त्वां कुरुराजोऽभ्युवाच**
**पूर्वं पृष्ट्वा कुशलं चाव्ययं च ।**
**इयं सभा त्वत्सभातुल्यरूपा**
**भ्रातॄणां ते दृश्यतामेत्य पुत्र ॥७॥**
**समागम्य भ्रातृभिः पार्थ तस्यां**
**सुहृद्द्यूतं क्रियतां रम्यतां च ।**
**प्रीयामहे भवतां सङ्गमेन**
**समागताः कुरवश्चापि सर्वे ॥८॥**

कुरुराज धृतराष्ट्र ने पहले तुमसे कुशल और आरोग्य पूछकर यह सन्देश दिया है कि वत्स ! मैंने तुम्हारी सभा की भाँति ही एक सभा तैयार करायी है । तुम अपने भाइयों के साथ आकर अपने दुर्योधन आदि भाइयों की इस सभा को देखो । इसमें सभी इष्ट-मित्र मिलकर जुआ खेलें और मन बहलाएँ । हम सभी कौरव तुम सबसे मिलकर अति प्रसन्न होंगे ।

युधिष्ठिर उवाच

**द्यूते क्षत्तः कलहो विद्यते नः**
**को वै द्यूतं रोचयेद् बुध्यमानः ।**
**किं वा भवान् मन्यते युक्तरूपं**
**भवद्वाक्ये सर्व एव स्थिताः स्म ॥९॥**

**युधिष्ठिर बोले**—विदुरजी ! जुए में तो झगड़ा-फसाद होता है । कौन बुद्धिमान् मनुष्य जुआ खेलना पसन्द करेगा अथवा आप क्या इसे ठीक समझते हैं ? हम सब लोग तो आपकी आज्ञा के अनुसार चलने-वाले हैं ।

विदुर उवाच

**जानाम्यहं द्यूतमनर्थमूलं**
**कृतश्च यत्नोऽस्य मया निषेधे ।**
**राजा च मां प्राहिणोत् त्वत्सकाशं**
**श्रुत्वा विद्वञ्श्रेय इहाचरस्व ॥१०॥**

**विदुरजी ने कहा**—विद्वन् ! मैं जानता हूँ, जुआ अनर्थ की जड़ है, अतः मैंने उसे रोकने का प्रयत्न भी किया । तथापि राजा धृतराष्ट्र ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है । यह सुनकर तुम्हें जो कल्याणकर जान पड़े, वह करो ।

युधिष्ठिर उवाच

**के तत्रान्ये कितवा दीव्यमाना**
**विना राज्ञो धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः ।**
**पृच्छामि त्वां विदुर ब्रूहि नस्तान्**
**यैर्दीव्यामः शतशः संनिपत्य ॥११॥**

**युधिष्ठिर ने पूछा**—हे विदुरजी ! वहाँ राजा धृतराष्ट्र के पुत्रों को छोड़कर अन्य कौन-कौन धूर्त जुआ खेलनेवाले हैं ? यह मैं आपसे पूछता हूँ । आप उन सबको बताइए, जिनके साथ मिलकर और सैकड़ों की बाजी लगाकर हमें जुआ खेलना होगा ।

विदुर उवाच

**गान्धारराजः शकुनिर्विशाम्पते**
**राजातिदेवी सकलो मताक्षः ।**
**विविंशतिश्चित्रसेनश्च राजा**
**सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयश्च ॥१२॥**

**विदुर बोले**—राजन् ! वहाँ गान्धारराज शकुनि है, जो जुए का बहुत बड़ा खिलाड़ी है । वह अपनी इच्छा के अनुसार पासे फेंकने में सिद्धहस्त है । उसे द्यूतक्रीड़ा के रहस्य का पूर्णज्ञान है । उसके अतिरिक्त राजा विविंशति, चित्रसेन, राजा सत्यव्रत, पुरुमित्र और जय भी रहेंगे ।

युधिष्ठिर उवाच

**नाहं राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शासना-**
**न्न गन्तुमिच्छामि कवे दुरोदरम् ।**
**इष्टो हि पुत्रस्य पिता सदैव**
**तदस्मि कर्ता विदुरात्थ मां यथा ॥१३॥**

**युधिष्ठिर बोले**—महाप्राज्ञ विदुरजी ! मैं राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा से जुए में अवश्य चलना चाहता हूँ । पुत्र को पिता सदैव मान्य है, अतः आपने मुझे जैसा आदेश दिया है, मैं वैसा ही करूँगा ।

**न चाकामः शकुनिना देविताहं**
**न चेन्मां जिष्णुराह्वयिता सभायाम् ।**
**आहूतोऽहं न निवर्ते कदाचित्**
**तदाहितं शाश्वतं वै व्रतं मे ॥१४॥**

मेरे मन में जुआ खेलने की इच्छा नहीं है। यदि मुझे विजयशील राजा धृतराष्ट्र सभा में न बुलाते, तो मैं शकुनि से कभी जुआ नहीं खेलता, परन्तु 'बुलाने पर मैं कभी पीछे नहीं हटूँगा'—यह मेरा सदा का नियम है।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वा विदुरं धर्मराजः**
**प्रायात्रिकं सर्वमाज्ञाप्य तूर्णम् ।**
**प्रायाच्छ्वोभूते सगणः सानुयात्रः**
**सह स्त्रीभिर्द्रौपदीमादि कृत्वा ॥१५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! विदुर से ऐसा कहकर धर्मराज युधिष्ठिर ने तुरन्त ही यात्रा की सम्पूर्ण तैयारी करने का आदेश दे दिया। फिर प्रातःकाल होने पर उन्होंने अपने भाई-बन्धुओं, सेवकों तथा द्रौपदी आदि स्त्रियों के साथ हस्तिनापुर की यात्रा की।

**स हास्तिनपुरं गत्वा धृतराष्ट्रगृहं ययौ ।**
**समियाय च धर्मात्मा धृतराष्ट्रेण पाण्डवः ॥१६॥**

धर्मात्मा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर हस्तिनापुर में पहुँचकर धृतराष्ट्र के भवन में गये और उनसे मिले।

**तथा भीष्मेण द्रोणेन कर्णेन च कृपेण च ।**
**समियाय यथान्यायं द्रौणिना च विभुः सह ॥१७॥**

इसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा के साथ भी यथायोग्य मिले।

**ततो हर्षः समभवत् कौरवाणां विशाम्पते ।**
**तान् दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रान् पाण्डवान् प्रियदर्शनान् ॥१८**

जनमेजय ! उन पुरुषश्रेष्ठ प्रियदर्शन पाण्डवों को आये देख कौरव अत्यन्त हर्षित हुए।

**सुखोषितास्ते रजनीं प्रातः सर्वे कृताह्निकाः ।**
**सभां रम्यां प्रविविशुः कितवैरभिनन्दिताः ॥१९॥**

सुखपूर्वक रात बिताकर वे प्रातःकाल उठे और सन्ध्या आदि नित्य-कर्म करने के पश्चात् उस रमणीय सभा में गये। वहाँ जुआरियों ने उनका अभिनन्दन किया।

**प्रविश्य तां सभां पार्थाः पूजार्हानभिपूज्य च ।**
**आसनेषु विचित्रेषु चोपविष्टा यथार्हतः ॥२०॥**

कुन्तीपुत्र उस सभा में पहुँचकर तथा पूजनीय राजाओं का सम्मान करके यथायोग्य विचित्र आसनों पर विराजमान हुए।

**तेषु तत्रोपविष्टेषु सर्वेष्वथ नृपेशु च ।**
**शकुनिः सौबलस्तत्र युधिष्ठिरमभाषत ॥२१॥**

उनके एवं सब नरेशों के बैठ जाने पर वहाँ सुबलकुमार शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा—

शकुनिरुवाच

**उपस्तीर्णा सभा राजन् सर्वे त्वयि कृतेक्षणाः ।**
**अक्षानुप्त्वा देवनस्य समयोऽस्तु युधिष्ठिर ॥२२॥**

**शकुनि बोला**—महाराज युधिष्ठिर ! सभा में पासे फेंकनेवाला वस्त्र बिछा दिया गया है। सब आपकी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब पासे फैंककर जुआ खेलने का अवसर मिलना चाहिए।

युधिष्ठिर उवाच

**निकृतिर्देवनं पापं न क्षात्रोऽत्र पराक्रमः ।**
**न च नीतिर्ध्रुवा राजन् किं त्वं द्यूतं प्रशंससि ॥२३॥**

**युधिष्ठिर ने कहा**—हे राजन् ! जुआ तो एक प्रकार का छल है और पाप का कारण है। इसमें न तो क्षत्रियोचित पराक्रम ही दिखाया जा सकता है, और न इसकी कोई निश्चित नीति है। फिर तुम इस जुए की प्रशंसा क्यों करते हो ?

**न हि मानं प्रशंसन्ति निकृतौ कितवस्य हि ।**
**शकुने मैव नो जैषीरमार्गेण नृशंसवत् ॥२४॥**

हे शकुनि ! जुआरियों का छल-कपट में ही सम्मान होता है, सज्जन पुरुष वैसे सम्मान की प्रशंसा नहीं करते। तुम क्रूर मनुष्य की भाँति अनुचित मार्ग से हमें जीतने की चेष्टा न करो।

**इदं वै देवनं पापं निकृत्या कितवैः सह ।**
**धर्मेण तु जयो युद्धे तत्परं न तु देवनम् ॥२५॥**

जुआरियों के साथ शठतापूर्वक जो जुआ खेला जाता है, वह पाप है। धर्मानुकूल विजय तो युद्ध में

ही प्राप्त होती है, अतः क्षत्रियों के लिए युद्ध ही श्रेष्ठ है, जुआ खेलना नहीं।

**शक्तितो ब्राह्मणान् नूनं रक्षितुं प्रयतामहे।**
**तद् वै वित्तं मातिदेवीर्मा जैषीः शकुने परान् ॥२६॥**

शकुने ! हम लोग जिस धन से अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों की रक्षा करने का प्रयत्न करते हैं, उसे तुम जुआ खेलकर हमसे हड़पने की चेष्टा मत करो।

**निकृत्या कामये नाहं सुखान्युत धनानि वा।**
**कितवस्येह कृतिनो वृत्तमेतन्न पूज्यते ॥२७॥**

मैं धूर्ततापूर्ण बर्ताव द्वारा सुख अथवा धन पाने की इच्छा नहीं करता, क्योंकि जुआरी के कार्य को विद्वान् लोग अच्छा नहीं समझते।

शकुनिरुवाच

**श्रोत्रियः श्रोत्रियानेति निकृत्यैव युधिष्ठिर।**
**विद्वानविदुषोऽभ्येति नाहुस्तां निकृतिं जनाः ॥२८॥**

**शकुनि ने कहा**—युधिष्ठिर ! एक श्रोत्रिय [वेद का विद्वान्] जब दूसरे श्रोत्रिय के पास उसे जीतने के लिए जाता है, तब शठता से ही कार्य लेता है। विद्वान् अविद्वानों को शठता से ही परास्त करता है, परन्तु इसे जनसाधारण शठता नहीं कहते।

**अक्षैर्हि शिक्षितोऽभ्येति निकृत्यैव युधिष्ठिर।**
**अकृतास्त्रं कृतास्त्रश्च दुर्बलं बलवत्तरः ॥२९॥**
**एवं कर्मसु सर्वेषु निकृत्यैव युधिष्ठिर।**
**विद्वानविदुषोऽभ्येति नाहुस्तां निकृतिं जनाः ॥३०॥**

हे युधिष्ठिर ! जो द्यूतविद्या में पूर्ण शिक्षित है, वह अशिक्षितों पर शठता से ही विजय पाता है। धर्मराज ! अस्त्र-विद्या में निपुण योद्धा अनाड़ी को एवं बलिष्ठ पुरुष दुर्बल को शठता से ही जीतना चाहता है। इस प्रकार सब कार्यों में विद्वान् पुरुष अविद्वानों को शठता से ही जीतते हैं, किन्तु लोग उसे शठता नहीं कहते।

**एवं त्वं मामिहाभ्येत्य निकृतिं यदि मन्यसे।**
**देवनाद् विनिवर्तस्व यदि ते विद्यते भयम् ॥३१॥**

इसी प्रकार यदि आप मेरे पास आकर ऐसा समझते हैं कि आपके साथ शठता की जाएगी और यदि आपको भय प्रतीत होता है, तो जुए के खेल से निवृत्त हो जाइए।

युधिष्ठिर उवाच

**आहूतो न निवर्तेयमिति मे व्रतमाहितम्।**
**विधिश्च बलवान् राजन्दिष्टस्यास्मि वशे स्थितः ॥३२॥**

**युधिष्ठिर बोले**—राजन् ! मैं बुलाने पर पीछे नहीं हटता, यह मेरा निश्चित व्रत है। दैव बलवान् है। मैं दैव के अधीन हूँ।

**अस्मिन् समागमे केन देवनं मे भविष्यति।**
**प्रतिपाणश्च कोऽन्योऽस्ति ततो द्यूतं प्रवर्तताम् ॥३३॥**

अच्छा तो यहाँ एकत्र हुए मनुष्यों में मुझे किसके साथ जुआ खेलना होगा ? मेरे मुकाबले में दूसरा कौन पुरुष दाँव लगाएगा ? इसका निश्चय हो जाए, तो द्यूतक्रीड़ा आरम्भ हो।

दुर्योधन उवाच

**अहं दाताऽस्मि रत्नानां धनानां च विशाम्पते।**
**मदर्थे देविता चायं शकुनिर्मातुलो मम ॥३४॥**

**दुर्योधन ने कहा**—राजन् ! दाँव पर लगाने के लिए धन और रत्न तो मैं दूँगा, परन्तु मेरी ओर से खेलेंगे मेरे मामा शकुनि।

युधिष्ठिर उवाच

**अन्येनान्यस्य वै द्यूतं विषमं प्रतिभाति मे।**
**एतद् विद्वन्नुपादत्स्व काममेवं प्रवर्तताम् ॥३५॥**

**युधिष्ठिर बोले**—एक के लिए दूसरे का जुआ खेलना मुझे तो अनुचित ही प्रतीत होता है। विद्वन् ! इस बात को समझ लो, फिर इच्छानुसार जुए का खेल आरम्भ हो।

वैशम्पायन उवाच

**उपोह्यमाने द्यूते तु राजानः सर्व एव ते।**
**धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विविशुस्तां सभां ततः ॥३६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! जब जुए का खेल आरम्भ होने लगा तब सब राजा लोग धृतराष्ट्र को आगे करके उस सभा में आये।

**भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव विदुरश्च महामतिः।**
**नातिप्रीतेन मनसा तेऽन्ववर्तन्त भारत ॥३७॥**

हे भारत ! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य तथा महाप्राज्ञ विदुर—ये सब लोग खिन्न मन से ही धृतराष्ट्र के पीछे-पीछे वहाँ आये।

**ते द्वन्द्वशः पृथक् चैव सिंहग्रीवा महौजसः ।**
**सिंहासनानि भूरीणि विचित्राणि च भेजिरे ॥३८॥**

सिंह के समान ग्रीवावाले ये महातेजस्वी राजा लोग कहीं एक-एक आसन पर दो-दो तथा कहीं अलग-अलग एक-एक आसन पर एक ही व्यक्ति बैठे। इस प्रकार उन्होंने वहाँ रखे हुए बहुसंख्यक विचित्र सिंहासनों को ग्रहण किया।

**शुशुभे सा सभा राजन् राजभिस्तैः समागतैः ।**
**देवैरिव महाभागैः समवेतैस्त्रिविष्टपम् ॥३९॥**

राजन् ! जैसे महाभाग देवताओं का समागम होने पर स्वर्गलोक सुशोभित होता है, वैसे ही उन आगन्तुक नरेशों से उस सभा की बड़ी शोभा हो रही थी।

**सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे भास्वरमूर्तयः ।**
**प्रावर्तत महाराज सुहृद्द्यूतमनन्तरम् ॥४०॥**

महाराज ! वे सब-के-सब वेदवेत्ता एवं शूरवीर थे। उनके शरीर तेज से प्रदीप्त हो रहे थे। उनके बैठ जाने पर वहाँ सुहृदों की द्यूतक्रीड़ा आरम्भ हुई।

युधिष्ठिर उवाच

**अयं बहुधनो राजन् सागरावर्तसम्भवः ।**
**मणिर्हारोत्तरः श्रीमान् कनकोत्तमभूषणः ॥४१॥**

**युधिष्ठिर बोले**—राजन् ! यह समुद्र के आवर्त्त में उत्पन्न हुआ कान्तिमान् मणिरत्न बहुत बड़े मूल्य का है। मेरे हारों में यह सर्वोत्तम है तथा इस पर उत्तम सुवर्ण मढ़ा गया है।

**एतद् राजन् मम धनं प्रतिपाणोऽस्ति कस्तव ।**
**येन मां त्वं महाराज धनेन प्रतिदीव्यसे ॥४२॥**

राजन् ! मेरी ओर से यही धन दाँव पर रखा गया है। इसके बदले में तुम्हारी ओर से कौन-सा धन दाँव पर रखा जाता है जिस धन के द्वारा तुम मेरे साथ खेलना चाहते हो ?

दुर्योधन उवाच

**सन्ति मे मणयश्चैव धनानि सुबहूनि च ।**
**मत्सरश्च न मेऽर्थेषु जयस्वैनं दुरोदरम् ॥४३॥**

**दुर्योधन ने कहा**—मेरे पास भी मणियाँ और बहुत-सा धन है, मुझे अपने धन पर अहंकार नहीं है। आप इसे जुए में जीतिए।

वैशम्पायन उवाच

**ततो जग्राह शकुनिस्तानक्षानक्षतत्त्ववित् ।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥४४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तदनन्तर पासे फैंकने की कला में अति प्रवीण शकुनि ने उन पासों को हाथ में लिया और उन्हें फेंककर युधिष्ठिर से कहा—"लो, यह दाँव मैंने जीत लिया।"

युधिष्ठिर उवाच

**मत्तः कैतवकेनैव यज्जितोऽस्मि दुरोदरे ।**
**शकुने हन्त दीव्यामो ग्लहमानाः परस्परम् ॥४५॥**

**युधिष्ठिर बोले**—शकुनि ! तुमने छल से इस दाँव में मुझे हरा दिया, इसी पर तुम गर्वित हो उठे हो। आओ, हम लोग पुनः परस्पर पासे फेंककर जुआ खेलें।

**सन्ति निष्कसहस्रस्य भाण्डिन्यो भरिताः शुभाः ।**
**कोशो हिरण्यमक्षय्यं जातरूपमनेकशः ॥४६**
**एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ।**
**इत्युक्तः शकुनिः प्राह जितमित्येव तं नृपम् ॥४७॥**

मेरे पास सहस्रों निष्कों से भरी हुई बहुत-सी सुन्दर पेटियाँ रखी हैं। इसके सिवा खजाना है, अक्षय धन है और अनेक प्रकार के सुवर्ण हैं। राजन् ! मैंने यह सब दाँव पर लगा दिया। मैं इसी के द्वारा तुम्हारे साथ खेलता हूँ।

युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा—"लो, यह दाँव भी मैंने जीत लिया।"

युधिष्ठिर उवाच

**सहस्रसंख्या नागा मे मत्तास्तिष्ठन्ति सौबल ।**
**हेमकक्षाः कृतापीडाः पद्मिनो हेममालिनः ॥४८॥**

**युधिष्ठिर बोले**—सुबलकुमार ! मेरे यहाँ एक सहस्र मतवाले हाथी हैं, जिनके बाँधने के रस्से सुवर्णमय हैं। वे सदा आभूषणों से अलंकृत रहते हैं। उनके कपोल और मस्तक आदि अङ्गों पर कमल के चिह्न बने हुए हैं। उनके गले में सोने के हार सुशोभित होते हैं।

**सर्वे च पुरभेत्तारो नवमेघनिभा गजाः ।**
**एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥४९॥**

वे सब-के-सब बड़े-बड़े नगरों को भी नष्ट करने

की शक्ति रखते हैं। उनकी कान्ति नवीन मेघों की घटा के समान है। राजन्! यह मेरा धन है, जिसे दाँव पर लगाकर मैं तुम्हारे साथ खेलता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**इत्येवंवादिनं पार्थं प्रहसन्निव सौबलः।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥५०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! ऐसी बातें कहते हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से शकुनि ने हँसकर कहा—"इस दाँव को भी मैंने ही जीता।"

युधिष्ठिर उवाच

**रथास्तावन्त एवेमे हेमदण्डाः पताकिनः।**
**हयैर्विनीतैः सम्पन्ना रथिभिश्चित्रयोधिभिः।**
**एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥५१॥**

**युधिष्ठिर बोले**—मेरे पास उतने ही अर्थात् एक सहस्र रथ हैं, जिनकी ध्वजाओं में सोने के डण्डे लगे हैं। उन रथों पर पताकाएँ फहराती रहती हैं। उनमें सधे हुए घोड़े जोते जाते हैं तथा विचित्र युद्ध करने-वाले रथी उनमें बैठते हैं। राजन्! यह मेरा धन है, इसे दाँव पर लगाकर मैं तुम्हारे साथ खेलता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**इत्येवमुक्ते वचने कृतवैरो दुरात्मवान्।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥५२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! उनके ऐसा कहने पर वैरी दुरात्मा शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा, "लो, यह दाँव भी मैंने ही जीता।"

युधिष्ठिर उवाच

**अश्वांस्तित्तिरिकल्माषान् गान्धर्वान् हेममालिनः।**
**ददौ चित्ररथस्तुष्टो यांस्तान् गाण्डीवधन्वने ॥५३॥**
**युद्धे जितः पराभूतः प्रीतिपूर्वमरिन्दमः।**
**एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥५४॥**

**युधिष्ठिर बोले**—मेरे पास तीतर पक्षी के समान विचित्र वर्णवाले गन्धर्व देश के घोड़े हैं, जो सोने के हारों से समलंकृत हैं। शत्रुदमन चित्ररथ गन्धर्व ने युद्ध में पराजित एवं तिरस्कृत होने के पश्चात् सन्तुष्ट हो गाण्डीवधारी अर्जुन को प्रेमपूर्वक वे घोड़े भेंट किये थे। राजन्! यह मेरा धन है, जिसे दाँव पर लगाकर मैं तुम्हारे साथ खेलता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**एतत् श्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥५५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—यह सुनकर छल का आश्रय लेनेवाले शकुनि ने पुनः अपनी ही जीत का निश्चय करके युधिष्ठिर से कहा—"यह दाँव भी मैंने ही जीता है।"

युधिष्ठिर उवाच

**ताम्रलोहैः परिवृता निधयो ये चतुःशताः।**
**पञ्चद्रौणिक एकैकः सुवर्णस्याहतस्य वै ॥५६॥**
**जातरूपस्य मुख्यस्य अनर्घेयस्य भारत।**
**एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥५७॥**

**युधिष्ठिर ने कहा**—मेरे पास तांबे और लोहे की चार सौ निधियाँ, खजाने से भरी हुई पेटियाँ हैं। प्रत्येक में पाँच-पाँच द्रोण विशुद्ध सोना भरा हुआ है। वह सारा सोना तपाकर शुद्ध किया हुआ है। उसका मूल्य आँका नहीं जा सकता। भारत! यह मेरा धन है, जिसे दाँव पर रखकर मैं तुम्हारे साथ खेलता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**एतत् श्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥५८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! ऐसा सुनकर छल का आश्रय लेनेवाले शकुनि ने पूर्ववत् पूर्ण निश्चय के साथ युधिष्ठिर से कहा—"यह दाँव भी मैंने ही जीता।"

**इति महाभारते सभापर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥**

# त्रयोदशोऽध्यायः

## विदुर द्वारा जुए का घोर विरोध और बारम्बार चेतावनी देना, युधिष्ठिर का जुए में अपना सर्वस्व और भाइयों सहित द्रौपदी को भी हारना

वैशम्पायन उवाच

**एवं प्रवर्तिते द्यूते घोरे सर्वापहारिणि ।**
**सर्वसंशयनिर्मोक्ता विदुरो वाक्यमब्रवीत् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! जिस समय सर्वस्व का हरण करनेवाली यह क्रूर द्यूतक्रीड़ा चल रही थी, उसी समय समस्त संशयों का निवारण करनेवाले विदुरजी बोले—

विदुर उवाच

**महाराज विजानीहि यत् त्वां वक्ष्यामि भारत ।**
**मुमूर्षोरौषधमिव न रोचेतापि ते श्रुतम् ॥२॥**

**विदुर बोले**—भरतकुलभूषण महाराज धृतराष्ट्र ! जैसे मरणासन्न रोगी को औषध अच्छी नहीं लगती, वैसे ही आप लोगों को मेरी शास्त्रसम्मत बात भी अच्छी नहीं लगेगी । फिर भी मैं आपसे जो कुछ कह रहा हूँ उसे ध्यानपूर्वक सुनिए और समझिए ।

**गृहे वसन्तं गोमायुं त्वं वै मोहान्न बुध्यसे ।**
**दुर्योधनस्य रूपेण शृणु काव्यां गिरं मम ॥३॥**

राजन् ! दुर्योधन के रूप में आपके घर में एक गीदड़ निवास कर रहा है, परन्तु मोह के कारण आप इस बात को समझ नहीं पाते । सुनिए, मैं आपको शुक्राचार्य की कही हुई नीति की बात बताता हूँ ।

**मधु वै माध्विको लब्ध्वा प्रपातं नैव बुध्यते ।**
**आरुह्य तं मज्जति वा पतनं चाधिगच्छति ॥४॥**

मधु बेचनेवाला जब किसी ऊँचे वृक्ष आदि पर मधु का छत्ता देख लेता है, तब वहाँ से गिरने की सम्भावना की ओर ध्यान नहीं देता । वह ऊँचे स्थान पर चढ़कर या तो मधु पाकर मग्न हो जाता है, अथवा उस स्थान से नीचे गिर जाता है ।

**सोऽयं मत्तोऽक्षद्यूतेन मधुवन्न परीक्षते ।**
**प्रपातं बुध्यते नैव वैरं कृत्वा महारथैः ॥५॥**

वैसे ही जुए के मद में उन्मत्त यह दुर्योधन मधु-मत्त मनुष्य की भाँति अपने ऊपर आनेवाले संकट को नहीं देखता है । महारथी पाण्डवों के साथ वैर करके हमें पतन के गर्त में गिरकर मरना पड़ेगा, इस बात को यह समझ नहीं पा रहा है ।

**विदितं मे महाप्राज्ञ भोजेष्वेवासमञ्जसम् ।**
**पुत्रं संत्यक्तवान् पूर्वं पौराणां हितकाम्यया ॥६॥**

महाप्राज्ञ ! मुझे ज्ञात है कि भोजवंशियों के एक नरेश ने पूर्वकाल में नगरवासियों की हितेच्छा से अपने कुमार्गगामी पुत्र का परित्याग कर दिया था ।

**त्वन्नियुक्तः सव्यसाची निगृह्णातु सुयोधनम् ।**
**निग्रहादस्य पापस्य मोदन्तां कुरवः सुखम् ॥७॥**
**काकेनेमांश्चित्रबर्हान् शार्दूलान् क्रोष्टुकेन च ।**
**क्रीणीष्व पाण्डवान् राजन्मा मज्जीः शोकसागरे ॥८॥**

आप आज्ञा दें तो ये सव्यसाची अर्जुन इस दुर्योधन को बन्दी बना सकते हैं । इस पापी के कैद हो जाने से समस्त कौरव सुख और आनन्द से रह सकते हैं । राजन् ! दुर्योधन कौवा है और पाण्डव मोर । इस कौवे को देकर आप विचित्र पक्षोंवाले मोरों को खरीद लीजिए । इस गीदड़ को त्यागकर पाण्डवरूपी सिंहों को अपनाइए । शोक-सागर में डूबकर अपने प्राण न गँवाइए ।

**वृक्षानङ्गारकारीव मैनान् धाक्षीः समूलकान् ।**
**मा गमः ससुतामात्यः सबलश्च यमक्षयम् ॥९॥**

जैसे कोयला बनानेवाला वृक्षों को जलाकर भस्म कर देता है, वैसे ही आप इन पाण्डवों को जड़मूल सहित जलाने की चेष्टा न कीजिए । कहीं ऐसा न हो कि पाण्डवों के साथ विरोध करने के कारण आपको पुत्र, मन्त्री और सेना के साथ यमलोक में जाना पड़े ।

**समवेतान् हि कः पार्थान् प्रतियुध्येत भारत ।**
**मरुद्भिः सहितो राजन्नपि साक्षान्मरुत्पतिः ॥१०॥**

हे भरतवंशीय राजन् ! देवताओंसहित साक्षात् देवराज इन्द्र ही क्यों न हों, जब कुन्तीपुत्र संगठित होकर युद्ध के लिए तैयार होंगे, उस समय उनका सामना कौन कर सकता है ?

**द्यूतं मूलं कलहस्याभ्युपैति**
**मिथो भेदं महते दारुणाय ।**
**यदास्थितो धृतराष्ट्रस्य पुत्रो**
**दुर्योधनः सृजते वैरमुग्रम् ॥११॥**

जुआ खेलना झगड़े की जड़ है। इससे आपस में फूट पैदा होती है, जो बड़े भयंकर संकट की जननी है। यह धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन उसी का आश्रय लेकर इस समय भयानक वैर की सृष्टि कर रहा है।

**दुर्योधनो ग्लहते पाण्डवेन**
**प्रियायसे त्वं जयतीति तच्च ।**
**अतिनर्मा जायते सम्प्रहारो**
**यतो विनाशः समुपैति पुंसाम् ॥१२॥**

दुर्योधन पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के साथ दाँव लगाकर जुआ खेल रहा है, साथ ही वह जीत भी रहा है। महाराज ! यह सोचकर तुम बहुत प्रसन्न हो रहे हो। परन्तु आज का यह अतिशय विनोद शीघ्र ही भयंकर युद्ध के रूप में परिणत होनेवाला है जिससे असंख्यों मनुष्यों का संहार होगा।

**जानीमहे देवितं सौबलस्य**
**वेद द्यूते निकृतिं पार्वतीयः ।**
**यतः प्राप्तः शकुनिस्तत्र यातु**
**मा यूयुधे भारत पाण्डवेयान् ॥१३॥**

सुबलपुत्र शकुनि का जुआ खेलना कैसा है, मैं यह भी जानता हूँ। यह पर्वतीय नरेश जुए की सारी कपट-विद्या को जानता है। मेरी इच्छा है कि यह शकुनि जहाँ से आया है, वहीं लौट जाए। भारत ! कौरव-पाण्डवों में आप युद्ध की आग मत भड़काओ।

दुर्योधन उवाच

**परानेव यशसा श्लाघसे त्वं**
**सदा क्षत्तः कुत्सयन् धार्तराष्ट्रान् ।**
**जानीमहे विदुर यत् प्रियस्त्वं**
**बालानिवास्मानवमन्यसे त्वम् ॥१४॥**

**दुर्योधन बोला**—विदुर ! तुम सदा हमारे शत्रुओं के सुयश की डींग हाँकते रहते हो और हम सभी धृतराष्ट्र-पुत्रों की निन्दा करते रहते हो। तुम किसके प्रेमी हो, यह हम जानते हैं। तुम हमें मूर्ख समझकर सदा हमारा अपमान ही करते रहते हो।

**उत्सङ्गे च व्याल इवाहितोऽसि**
**मार्जारवत् पोषकं चोपहंसि ।**
**भर्तृघ्नं त्वां न हि पापीय आहुः**
**तस्मात् क्षत्तः किं न बिभेषि पापात् ॥१५॥**

हमारे लिए तुम गोद में बैठे सर्प के समान हो तथा बिलाव की भाँति पालनेवाले का ही गला घोंट रहे हो। तुम अपने स्वामी से द्रोह रखते हो, फिर भी लोग तुम्हें पापी नहीं कहते। हे विदुर ! तुम इस पाप से डरते क्यों नहीं ?

**मा नोऽवमंस्था विद्म मनस्तवेदं**
**शिक्षस्व बुद्धिं स्थविराणां सकाशात् ।**
**यशो रक्षस्व विदुर सम्प्रणीतं**
**मा व्यापृतः परकार्येषु भूस्त्वम् ॥१६॥**

विदुर ! तुम हम लोगों का अपमान मत करो। हम तुम्हारे मन को जान चुके हैं। तुम बड़े-बूढ़ों के पास बैठकर बुद्धि सीखो। अपने पूर्वार्जित यश की रक्षा करो। दूसरों के काम में हस्तक्षेप न करो।

**अहं कर्तेति विदुर मा च मंस्था**
**मा नो नित्यं परुषाणीह वोचः ।**
**न त्वां पृच्छामि विदुर यद्धितं मे**
**स्वस्ति क्षत्तर्मा तितिक्षून् क्षिणु त्वम् ॥१७॥**

विदुर ! 'मैं ही कर्त्ता-धर्त्ता हूँ' ऐसा मत समझो, और हमें प्रतिदिन कटु वचन भी मत बोलो। मैं अपने हित के सम्बन्ध में तुमसे कोई सम्मति नहीं माँगता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। हम तुम्हारे कटु वचन सहते जाते हैं, अतः हम क्षमाशीलों को तुम अपने वचनरूपी बाणों से मत छेदो।

**न वासयेत् पारवर्ग्यं द्विषन्तं**
**विशेषतः क्षत्तरहितं मनुष्यम् ।**
**स यत्रेच्छसि विदुर तत्र गच्छ**
**सुसान्त्विता ह्यसती स्त्री जहाति ॥१८॥**

विदुर ! जो शत्रु का पक्षपाती हो, अपने से द्वेष रखता हो और अहित करनेवाला हो, ऐसे मनुष्य को घर में नहीं रखना चाहिए, अतः तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ चले जाओ। कुलटा स्त्री को मधुर वचनों द्वारा कितनी ही सान्त्वना दी जाए, वह पति को छोड़ ही देती है।

विदुर उवाच

**अबालस्त्वं मन्यसे राजपुत्र**
**बालोऽहमित्येव सुमन्दबुद्धे ।**
**यः सौहृदे पुरुषं स्थापयित्वा**
**पश्चादेनं दूषयते स बालः ॥१६॥**

**विदुर बोले**—राजकुमार दुर्योधन ! तुम्हारी बुद्धि अति मन्द है । तुम अपने को विद्वान् और मुझे मूर्ख समझते हो । जो किसी व्यक्ति को सुहृद् के पद पर स्थापित करके फिर स्वयं ही उस पर दोषारोपण करता है, वही मूर्ख है ।

**न श्रेयसे नीयते मन्दबुद्धिः**
**स्त्री श्रोत्रियस्येव गृहे प्रदुष्टा ।**
**ध्रुवं न रोचेद् भरतर्षभस्य**
**पतिः कुमार्या इव षष्टिवर्षः ॥२०॥**

जैसे श्रोत्रिय के घर में दुराचारिणी स्त्री को यज्ञादि उत्तम कर्मों में नहीं लगाया जा सकता, वैसे ही मूर्ख मनुष्य को कल्याण के मार्ग पर नहीं लगाया जा सकता । जैसे कुमारी कन्या को साठ वर्ष का बूढ़ा पति पसन्द नहीं आ सकता, उसी प्रकार भरतवंश-शिरोमणि दुर्योधन को निश्चय ही मेरा उपदेश रुचिकर प्रतीत नहीं हो सकता ।

**अतः प्रियं चेदनुकांक्षसे त्वं**
**सर्वेषु कार्येषु हिताहितेषु ।**
**स्त्रियश्च राजञ्जडपङ्गुकांश्च**
**पृच्छ त्वं वै तादृशांश्चैव सर्वान् ॥२१॥**

राजन् ! यदि तुम भले-बुरे सभी कार्यों में केवल चिकनी-चुपड़ी बातें ही सुनना चाहते हो तो स्त्रियों, मूर्खों, पंगुओं तथा उसी प्रकार के अन्य सब मनुष्यों से सम्मति लिया करो ।

**लभ्यते खलु पापीयान् नरोऽनुप्रियवागिह ।**
**अप्रियस्य हि पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥२२॥**

इस संसार में सदा मन को प्रिय लगनेवाले वचन बोलनेवाला महापापी मनुष्य भी अवश्य मिल सकता है, परन्तु हितकारी अप्रिय वचन को कहने और सुननेवाले दोनों दुर्लभ हैं ।

**यस्तु धर्मपरश्च स्याद्धित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये ।**
**अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् ॥२३॥**

जो धर्म में तत्पर रहकर स्वामी के प्रिय-अप्रिय का विचार छोड़कर अप्रिय होने पर भी हितकर वचन बोलता है, वही राजा का सच्चा सहायक है ।

**आशीविषान् नेत्रविषान् कोपयेन्न च पण्डितः ।**
**एवं तेऽहं वदामीदं प्रयतः कुरुनन्दन ॥२४॥**

हे कुरुनन्दन ! मैं एकाग्र हृदय से तुमसे यह बात कहता हूँ—'विद्वान् पुरुष उन सर्पों को कुपित न करें जो दाँतों और नेत्रों से भी विष उगलते रहते हैं ।' [ये पाण्डव तुम्हारे लिए विष से भी भयंकर हैं, इन्हें मत छेड़ो] । इधर ये बातें हो रही थीं, उधर—

शकुनिरुवाच

**बहुवित्तं पराजैषीः पाण्डवानां युधिष्ठिर ।**
**आचक्ष्व वित्तं कौन्तेय यदि तेऽस्त्यपराजितम् ॥२५॥**

**शकुनि बोला**—कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ! आप अब तक पाण्डवों का बहुत-सा धन हार चुके हैं । यदि आपके पास बिना हारा हुआ कोई धन शेष हो तो बताइए ।

युधिष्ठिर उवाच

**मम वित्तमसंख्येयं यदहं वेद सौबल ।**
**अथ त्वं शकुने कस्माद् वित्तं समनुपृच्छसि ॥२६॥**

**युधिष्ठिर ने कहा**—सुबलपुत्र ! मेरे पास अमित धन है, जिसे मैं जानता हूँ । शकुने ! तुम मेरे धन का परिमाण क्यों पूछते हो ?

**गवाश्वं बहुधेनूकमसंख्येयमजाविकम् ।**
**यत् किंचिदनुपर्णाशां प्राक् सिन्धोरपि सौबल ।**
**एतन्मम धनं सर्वं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥२७॥**

सुबलपुत्र ! मेरे पास सिन्धु नदी के पूर्वी तट से लेकर पर्णाशा नदी के किनारे तक जो भी बैल, घोड़े, गाय, भेड़ एवं बकरी आदि पशु-धन है, वह असंख्य है । उनमें भी दूध देनेवाली गौओं की संख्या अधिक है । यह सारा धन मेरा है, जिसे मैं दाँव पर रखकर तुम्हारे साथ खेलता हूँ ।

वैशम्पायन उवाच

**एतत् श्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥२८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! यह सुनकर छल का आश्रय लेनेवाले शकुनि ने अपनी ही जीत

घोषित करते हुए युधिष्ठिर से कहा—"लो, यह दाँव भी मैंने ही जीता।"

युधिष्ठिर उवाच

**पुरं जनपदो भूमिरब्राह्मणधनैः सह।**
**अब्राह्मणाश्च पुरुषा राजञ्छिष्टं धनं मम।**
**एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥२६॥**

**युधिष्ठिर बोले**—राजन्! ब्राह्मणों को जीविका रूप में जो ग्राम आदि दिये गये हैं, उन्हें छोड़कर शेष जो नगर, जनपद तथा भूमि मेरे अधिकार में है तथा जो ब्राह्मणेतर मनुष्य मेरे यहाँ रहते हैं, वह सब मेरा शेष धन है। शकुने! मैं इसी धन को दाँव पर लगाकर तुम्हारे साथ जुआ खेलता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**एतत् श्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥३०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! यह सुनकर शठता का आश्रय लेकर शकुनि ने पुनः अपनी ही जीत का निश्चय करके युधिष्ठिर से कहा—"यह दाँव भी मैंने ही जीता।"

युधिष्ठिर उवाच

**राजपुत्रा इमे राजञ्छोभन्ते यैर्विभूषिताः।**
**कुण्डलानि च निष्काश्च सर्वं राजविभूषणम्।**
**एतन्मम धनं राजँस्तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥३१॥**

**युधिष्ठिर बोले**—राजन्! ये राजपुत्र जिन आभूषणों से विभूषित होकर सुशोभित हो रहे हैं, वे कुण्डल और गले के सुवर्ण-भूषण आदि समस्त राजकीय आभूषण मेरे धन हैं। इन्हें दाँव पर लगाकर मैं तुम्हारे साथ जुआ खेलता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**एतत् श्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥३२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! यह सुनकर छल-कपट का आश्रय लेनेवाले शकुनि ने घोषणापूर्वक युधिष्ठिर से कहा—"लो, यह दाँव भी मैंने ही जीता।"

युधिष्ठिर उवाच

**श्यामो युवा लोहिताक्षः सिंहस्कन्धो महाभुजः।**
**नकुलो ग्लह एवैको विद्ध्येतन्मम तद्धनम् ॥३३॥**

**युधिष्ठिर ने कहा**—श्यामवर्ण, तरुण, लाल नेत्रों और सिंह के समान कन्धोंवाले महाबाहु नकुल को ही इस समय मैं दाँव पर रखता हूँ, इन्हीं को मेरे दाँव का धन समझो।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वा तु तानक्षाञ्छकुनिः प्रत्यपद्यत।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥३४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! ऐसा कहकर शकुनि ने पासे फेंके और युधिष्ठिर से कहा—"लो, इस दाँव पर भी मेरी ही विजय हुई।"

शकुनि उवाच

**प्रियस्ते नकुलो राजन् राजपुत्रो युधिष्ठिर।**
**अस्माकं वशतां प्राप्तो भूयः केनेह दीव्यसि ॥३५॥**

**शकुनि ने पूछा**—धर्मराज युधिष्ठिर! आपके परमप्रिय राजकुमार नकुल तो हमारे अधीन हो गये, अब आप कौन-से धन को दाँव पर लगा रहे हैं?

युधिष्ठिर उवाच

**अयं धर्मान् सहदेवोऽनुशास्ति**
**लोके ह्यस्मिन् पण्डिताख्यां गतश्च।**
**अनर्हता राजपुत्रेण तेन**
**दीव्याम्यहं चाप्रियवत् प्रियेण ॥३६॥**

**युधिष्ठिर ने कहा**—ये सहदेव धर्मों का उपदेश करते हैं। संसार में पण्डित के रूप में इनकी प्रसिद्धि है। मेरे प्रिय राजकुमार सहदेव यद्यपि दाँव पर लगाने के योग्य नहीं हैं, तो भी मैं अप्रिय वस्तु की भाँति इन्हें दाँव पर लगाकर खेलता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**एतत् श्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥३७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! यह सुनकर छली शकुनि ने निश्चयपूर्वक युधिष्ठिर से कहा—"इस दाँव पर भी मेरी ही विजय हुई।"

शकुनिरुवाच

**माद्रीपुत्रौ प्रियौ राजँस्तवेमौ विजितौ मया।**
**गरीयांसौ तु ते मन्ये भीमसेनधनञ्जयौ ॥३८॥**

**शकुनि ने कहा**—राजन्! आपके ये दोनों प्रिय

भाई माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव तो मेरे द्वारा जीत लिये गये। मैं समझता हूँ, भीमसेन और अर्जुन आपके लिए अधिक गौरव की वस्तु हैं [अतः आप इन्हें दाँव पर नहीं लगाएँगे]।

युधिष्ठिर उवाच

**अधर्मं चरसे नूनं यो नावेक्षसि वै नयम्।**
**यो नः सुमनसां मूढ विभेदं कर्तुमिच्छसि ॥३९॥**

**युधिष्ठिर बोले**—अरे मूढ़! तू निश्चय ही अधर्म का आचरण कर रहा है, जो न्याय की ओर दृष्टि-पात नहीं करता। तू शुद्ध हृदयवाले हम भाइयों में फूट डालना चाहता है।

शकुनिरुवाच

**गर्ते मत्तः प्रपतति प्रमत्तः स्थाणुमृच्छति।**
**ज्येष्ठो राजन् वरिष्ठोऽसि नमस्ते भरतर्षभ ॥४०॥**

**शकुनि बोला**—राजन्! धन के लोभ से अधर्म करनेवाला मतवाला मनुष्य गढ़े में गिरता है, अवनति को प्राप्त होता है। अधिक उन्मत्त हुआ मनुष्य ठूँठा काठ हो जाता है। आप तो आयु में बड़े और गुणों में श्रेष्ठ हैं। हे भरतकुलभूषण! आपको नमस्कार है।

**स्वप्ने तानि न दृश्यन्ते जाग्रतो वा युधिष्ठिर।**
**कितवा यानि दीव्यन्तः प्रलपन्त्युत्कटा इव ॥४१॥**

धर्मराज युधिष्ठिर! जुआरी जुआ खेलते समय पागल होकर अनाप-शनाप बातें बक जाते हैं, वे न कभी स्वप्न में दिखाई देती हैं और न जागृति-काल में ही।

युधिष्ठिर उवाच

**यो नः संख्ये नौरिव पारनेता**
**जेता रिपूणां राजपुत्रस्तरस्वी।**
**अनर्हता लोकवीरेण तेन**
**दीव्याम्यहं शकुने फाल्गुनेन ॥४२॥**

**युधिष्ठिर ने कहा**—हे शकुनि! जो युद्ध-रूपी समुद्र में हम लोगों को नौका की भाँति पार लगाने-वाले हैं, जो शत्रुओं के विजेता हैं, वे संसार-प्रसिद्ध, वेगशाली वीर, राजकुमार अर्जुन यद्यपि दाँव पर लगाने योग्य नहीं हैं, तो भी उनको दाँव पर लगाकर मैं तुम्हारे साथ जुआ खेलता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**एतत् श्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥४३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! यह सुनकर शठता का आश्रय लेनेवाले शकुनि ने पूर्ववत् अपनी विजय का निश्चय करके युधिष्ठिर से कहा—"इस दाँव पर भी मेरी ही विजय हुई।"

युधिष्ठिर उवाच

**तिर्यक् प्रेक्षी यश्च सदात्यमर्षी**
**गदाभृतामग्र्य इहारिमर्दी।**
**अनर्हता राजपुत्रेण तेन**
**दीव्याम्यहं भीमसेनेन राजन् ॥४४॥**

**युधिष्ठिर बोले**—राजन्! जो तिरछी दृष्टि से देखते हैं, जो सदा अत्यन्त अमर्ष में भरे रहते हैं, जो गदाधारियों में अग्रगण्य तथा अपने शत्रुओं को कुचल डालनेवाले हैं, उन्हीं राजकुमार भीमसेन को मैं दाँव पर लगाकर यह जुआ खेलता हूँ, यद्यपि वे इसके योग्य नहीं हैं।

वैशम्पायन उवाच

**एतत् श्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥४५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! यह सुनकर धूर्तता का आश्रय लेनेवाले शकुनि ने घोषणापूर्वक युधिष्ठिर से कहा—"लो, यह दाँव भी मैंने ही जीता।"

शकुनिरुवाच

**बहुवित्तं पराजैषीर्भ्रातृंश्च सहयद्विपान्।**
**आचक्ष्व वित्तं कौन्तेय यदि तेऽस्त्यपराजितम् ॥४६॥**

**शकुनि बोला**—कुन्तीनन्दन! आप अपने भाइयों तथा हाथी-घोड़ोंसहित बहुत-सा धन हार चुके, अब आपके पास बिना हारा हुआ कोई धन शेष हो, तो बताइए।

युधिष्ठिर उवाच

**अहं विशिष्टः सर्वेषां भ्रातृणां दयितस्तथा।**
**कुर्यामहं जितः कर्म स्वयमात्मन्युपप्लुते ॥४७॥**

**युधिष्ठिर ने कहा**—मैं अपने सब भाइयों में बड़ा और सबका प्रिय हूँ, अतः मैं अपने को ही दाँव पर

लगाता हूँ। यदि मैं हार गया तो पराजित दास की भाँति सब काम करूँगा।

वैशम्पायन उवाच

**एतत् श्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥४८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! यह सुनकर कपटी शकुनि ने निश्चय के साथ अपनी विजय घोषित करते हुए युधिष्ठिर से कहा—"लो, यह दाँव भी मैंने ही जीत लिया।"

शकुनिरुवाच

**एतत् पापिष्ठमकरोर्यदात्मानमहारयः।**
**शिष्टे सति धने राजन् पाप आत्मपराजयः ॥४९॥**

**शकुनि बोला**—हे राजन्! आप अपने को दाँव पर लगाकर जो हार गये, यह आपके द्वारा बड़ा अधर्म-कार्य हुआ। धन के शेष रहते हुए अपने आपको हार जाना महान् पाप है।

**अस्ति ते वै प्रिया राजन् ग्लह एकोऽपराजितः।**
**पणस्व कृष्णां पाञ्चालीं तयाऽऽत्मानं पुनर्जय ॥५०॥**

राजन्! आपकी प्रियतमा द्रौपदी भी एक ऐसा दाँव है, जिसे आप अबतक नहीं हारे हैं, अतः पाञ्चाल राजकुमारी कृष्णा को आप दाँव पर लगाइए तथा उसके द्वारा फिर अपने को जीत लीजिए।

युधिष्ठिर उवाच

**नैव लघ्वी न महती न कृष्णा नातिरोहिणी।**
**नीलकुञ्चितकेशी च तया दीव्याम्यहं त्वया ॥५१॥**

**युधिष्ठिर बोले**—जो न नाटी है न लम्बी है, न कृष्णवर्णा है न अधिक रक्तवर्णा तथा जिसके केश नीले तथा घुँघराले हैं, उस द्रौपदी को भी दाँव पर लगाकर मैं तुम्हारे साथ खेलता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्ते तु वचने धर्मराजेन धीमता।**
**धिग्धिगित्येव वृद्धानां सभ्यानां निःसृता गिरः ॥५२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! बुद्धिमान् धर्मराज के ऐसा कहते ही उस सभा में बैठे हुए वृद्ध पुरुषों के मुख से 'धिक्कार है, धिक्कार है' की आवाज आने लगी।

**चुक्षुभे सा सभा राजन् राज्ञां संजज्ञिरे शुचः।**
**भीष्मद्रोणकृपादीनां स्वेदश्च समजायत ॥५३॥**

राजन्! उस समय सारी सभा में हलचल मच गई। राजाओं को अतिशोक हुआ। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि के शरीरों से पसीना छूटने लगा।

**शिरो गृहीत्वा विदुरो गतसत्त्व इवाभवत्।**
**आस्ते ध्यायन्नधोवक्त्रो निःश्वसन्निव पन्नगः ॥५४॥**

विदुरजी तो दोनों हाथों से अपना सिर थामकर बेहोश-से हो गये। वे फुफकार मारते हुए सर्प की भाँति उच्छ्वास लेकर मुँह नीचा किये हुए गम्भीर चिन्तन में मग्न हो बैठे रह गये।

**धृतराष्ट्रस्तु तं हृष्टः पर्यपृच्छत् पुनः पुनः।**
**किं जितं किं जितमिति ह्याकारं नाभ्यरक्षत ॥५५॥**

धृतराष्ट्र मन-ही-मन प्रसन्न हो उनसे बार-बार पूछ रहे थे—"क्या हमारे पक्ष की जीत हो रही है?" वे अपनी प्रसन्नता की आकृति को न छिपा सके।

**जहर्ष कर्णोऽतिभृशं सह दुःशासनादिभिः।**
**इतरेषां तु सभ्यानां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥५६॥**

दुःशासन आदि के साथ कर्ण को भी अत्यधिक प्रसन्नता हुई परन्तु अन्य सभासदों की आँखों से आँसू गिरने लगे।

**सौबलस्त्वभिधायैवं जितकाशी मदोत्कटः।**
**जितमित्येव तानक्षान् पुनरेवान्वपद्यत ॥५७॥**

सुबलपुत्र शकुनि ने "मैंने यह भी जीत लिया"—ऐसा कहकर पासों को पुनः उठा लिया। उस समय वह विजयोल्लास से सुशोभित और मदोन्मत्त हो रहा था।

**इति महाभारते सभापर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥**

# चतुर्दशोऽध्यायः

## विदुर का दुर्योधन को फटकारना, दुःशासन का द्रौपदी को केश पकड़कर घसीटते हुए सभा में लाना, द्रौपदी का प्रश्न

दुर्योधन उवाच

**एहि क्षत्तर्द्रौपदीमानयस्व**
**प्रियां भार्यां सम्मतां पाण्डवानाम् ।**
**सम्मार्जतां वेश्म परैतु शीघ्रं**
**तत्रास्तु दासीभिरपुण्यशीला ॥१॥**

**दुर्योधन बोला**—हे विदुर ! यहाँ आओ। तुम जाकर पाण्डवों[1] की प्यारी एवं मनोनुकूल पत्नी द्रौपदी को यहाँ ले आओ। वह भाग्यहीना शीघ्र यहाँ आये तथा मेरे महलों में झाड़ू लगाए। उसे वहीं दासियों के साथ रहना होगा।

विदुर उवाच

**दुर्विभाव्यं भाषितं त्वादृशेन**
**न मन्द सम्बुध्यसि पाशबद्धः ।**
**प्रपाते त्वं लम्बमानो न वेत्सि**
**व्याघ्रान् मृगः कोपयसेऽतिबाल्यात् ॥२॥**

**विदुर बोले**—अरे मूर्ख ! तेरे-जैसे नीच के मुख से ही ऐसा दुर्वचन निकल सकता है। तू काल-पाश में बँधा होने से कुछ समझ नहीं पा रहा। तू ऐसे ऊँचे स्थान में लटक रहा है, जहाँ से गिरकर प्राण जाने में अधिक देर नहीं है, परन्तु तुझे इस बात का पता नहीं है। तू एक साधारण मृग होकर अपनी मूर्खता से व्याघ्रों को क्रुद्ध कर रहा है।

**आशीविषास्ते शिरसि पूर्णकोपा महाविषाः ।**
**मा कोपिष्ठाः सुमन्दात्मन् मा गमस्त्वं यमक्षयम् ॥३॥**

मन्दात्मन् ! तेरे सिर पर क्रोध में भरे हुए महाविषधर साँप चढ़ आये हैं। तू उनके क्रोध को मत भड़का ! यमलोक में जाने को उद्यत मत हो !

**न हि दासीत्वमापन्ना कृष्णा भवितुमर्हति ।**
**अनीशेन हि राज्ञैषा पणे न्यस्तेति मे मतिः ॥४॥**

द्रौपदी कभी दासी नहीं हो सकती, क्योंकि राजा युधिष्ठिर पहले अपने को हारकर द्रौपदी को दाँव पर लगाने का अधिकार खो चुके थे। ऐसी अवस्था में उन्होंने इसे दाँव पर लगाया है, अतः मेरा विश्वास है कि द्रौपदी हारी नहीं गई।

**अयं धत्ते वेणुरिवात्मघाती**
**फलं राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रः ।**
**द्यूतं हि वैराय महाभयाय**
**मत्तो न बुध्यत्ययमन्तकालम् ॥५॥**

जैसे बाँस अपने नाश के लिए ही फल धारण करता है, वैसे ही धृतराष्ट्र के पुत्र इस राजा दुर्योधन ने महाभयंकर वैर की सृष्टि के लिए इस जुए के खेल को अपनाया है। यह ऐसा उन्मत्त हो गया है कि मृत्यु सिर पर नाच रही है, किन्तु इसे उसका पता ही नहीं है।

**नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी**
**न हीनतः परमभ्याददीत ।**
**ययास्य वाचा पर उद्विजेत**
**न तां वदेदुषतीं पापलोक्याम् ॥६॥**

किसी को मर्मभेदी बात न कहे, किसी से कठोर वचन न बोले। नीच कर्म के द्वारा शत्रु को वश में करने की चेष्टा न करे। जिस बात से दूसरे को उद्वेग हो, जो जलन पैदा करनेवाली और नरक=दुःखविशेष की प्राप्ति करानेवाली हो, ऐसी बात मुँह से कभी न निकाले।

**समुच्चरन्त्यतिवादाश्च वक्त्राद्**
**यैराहतः शोचति राज्यहानि ।**
**परस्य नामर्मसु ते पतन्ति**
**तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु ॥७॥**

---

१. द्रौपदी केवल युधिष्ठिर की पत्नी थी। युधिष्ठिर द्वारा उसे दाँव पर लगाने से भी यह बात सिद्ध होती है। यहाँ उसे 'पाण्डवों की प्यारी पत्नी' कहना लाक्षणिक है। आज भी इस प्रकार के प्रयोग होते हैं। जैसे "यह आचार-वालों की पत्नी है।" पत्नी तो वह एक ही की होती है, परन्तु कहा इस प्रकार जाता है मानो सबकी हो।

मुख से जो कटुवचन-रूपी बाण निकलते हैं, उनसे आहत हुआ मनुष्य रात-दिन शोक और चिन्ता में डूबा रहता है। वे दूसरे के मर्म पर ही आघात करते हैं, अतः बुद्धिमान् को दूसरों के प्रति कठोर वचनों का व्यवहार नहीं करना चाहिए।

**न किंचिदित्थं प्रवदन्ति पार्था**
**वनेचरं वा गृहमेधिनं वा।**
**तपस्विनं वा परिपूर्णविद्यं**
**भषन्ति हैवं श्वनराः सदैव ॥८॥**

कुन्तीपुत्र किसी वनवासी, गृहस्थ, तपस्वी अथवा विद्वान् से ऐसी कठोर बात कभी नहीं बोलते। तुम्हारे-जैसे कुत्ते के-से स्वभाववाले मनुष्य ही सदा इस प्रकार दूसरों पर भोंका करते हैं।

**मज्जन्त्यलाबूनि शिलाः प्लवन्ते**
**मुह्यन्ति नावोऽम्भसि शश्वदेव।**
**मूढो राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो**
**न मे वाचः पथ्यरूपाः शृणोति ॥९॥**

चाहे तूँबी जल में डूब जाए, पत्थर तैरने लग जाएँ तथा नौकाएँ भी सदा जल में डूब जाया करें, परन्तु धृतराष्ट्र का यह मूर्ख पुत्र राजा दुर्योधन मेरी हितकर बातें नहीं सुन सकता।

वैशम्पायन उवाच

**धिगस्तु क्षत्तारमिति ब्रुवाणो**
**दर्पेण मत्तो धृतराष्ट्रस्य पुत्रः।**
**अवैक्षत प्रातिकामीं सभाया-**
**मुवाच चैनं परमार्यमध्ये ॥१०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन गर्व से उन्मत्त हो रहा था। उसने 'विदुर को धिक्कार है'—ऐसा कहकर प्रातिकामी की ओर देखा और सभा में बैठे हुए श्रेष्ठ पुरुषों के मध्य उससे कहा—

दुर्योधन उवाच

**प्रातिकामिन् द्रौपदीमानयस्व**
**न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः।**
**क्षत्ता ह्ययं विवदत्येव भीतो**
**न चास्माकं वृद्धिकामः सदैव ॥११॥**

**दुर्योधन बोला**—प्रातिकामिन्! तुम द्रौपदी को यहाँ ले आओ! तुम्हें पाण्डवों से भयभीत नहीं होना चाहिए। ये विदुर तो भीरु हैं, अतः सदा ऐसी बातें किया करते हैं। ये कभी हम लोगों की वृद्धि नहीं चाहते।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तः प्रातिकामी स सूतः**
**प्रायाच्छीघ्रं राजवचो निशम्य।**
**प्रविश्य च श्वेव हि सिंहगोष्ठं**
**समासदन्महिषीं पाण्डवानाम् ॥१२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! दुर्योधन के ऐसा कहने पर राजा के आदेश को शिरोधार्य करके वह सूत प्रातिकामी शीघ्र चला गया तथा जैसे कुत्ता सिंह की माँद में घुसे, उसी प्रकार उस राजभवन में प्रवेश करके वह पाण्डवों की महारानी के पास गया।

प्रातिकाम्युवाच

**युधिष्ठिरो द्यूतमदेन मत्तो**
**दुर्योधनो द्रौपदि त्वामजैषीत्।**
**सा त्वं प्रपद्यस्व नृपस्य वेश्म**
**नयामि त्वां कर्मणि याज्ञसेनि ॥१३॥**

**प्रातिकामी बोला**—हे द्रुपदकुमारि! धर्मराज युधिष्ठिर ने जुए के मद में उन्मत्त हो अपना सर्वस्व हारकर आपको भी दाँव पर लगा दिया और दुर्योधन ने आपको जीत लिया। याज्ञसेनि! अब आप महाराज धृतराष्ट्र के महल में पधारें। मैं आपको वहाँ दासी का काम करवाने के लिए ले चलता हूँ।

द्रौपद्युवाच

**कथं त्वेवं वदसि प्रातिकामिन्**
**को हि दीव्येद् भार्यया राजपुत्रः।**
**मूढो राजा द्यूतमदेन मत्तो**
**ह्यभून्नान्यत् कैतवमस्य किंचित् ॥१४॥**

**द्रौपदी ने कहा**—प्रातिकामिन्! तू ऐसी बात कैसे कहता है? कौन राजकुमार अपनी पत्नी को दाँव पर लगाकर जुआ खेलेगा? क्या राजा युधिष्ठिर जुए के मद में इतने उन्मत्त हो गये कि उनके पास जुआरियों को देने के लिए दूसरा कोई धन नहीं बचा?

प्रातिकाम्युवाच

**यदा नाभूत् कैतवमन्यदस्य**
**तदादेवीत् पाण्डवोऽजातशत्रुः ।**
**न्यस्ताः पूर्वं भ्रातरस्तेन राज्ञा**
**स्वयं चात्मा त्वमथो राजपुत्रि ॥१५॥**

**प्रातिकामी बोला**—राजकुमारि! जब जुआरियों को देने के लिए दूसरा कोई धन शेष नहीं रहा, तब अजातशत्रु पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ने पहले तो अपने भाइयों को दाँव पर लगाया, तत्पश्चात् अपने को और अन्त में आपको भी दाँव पर लगा दिया।

द्रौपद्युवाच

**गच्छ त्वं कितवं गत्वा सभायां पृच्छ सूतज ।**
**किं नु पूर्वं पराजैषीरात्मानमथवा नु माम् ॥१६॥**

**द्रौपदी ने कहा**—सूतपुत्र! तुम उस सभा में जुआरी महाराज के पास जाओ तथा वहाँ जाकर यह पूछो कि—'आप पहले अपने को हारे थे, या मुझे?'

**एतज्ज्ञात्वा समागच्छ ततो मां नय सूतज ।**
**ज्ञात्वा चिकीर्षितमहं राज्ञो यास्यामि दुःखिता ॥१७॥**

सूतनन्दन! यह जानकर लौट आओ। तब मुझे ले चलो। राजा क्या करना चाहते हैं—यह जानकर ही मैं दुःखिनी अबला उस सभा में चलूँगी।

वैशम्पायन उवाच

**सभां गत्वा स चोवाच द्रौपद्यास्तत् वचस्तदा ।**
**युधिष्ठिरं नरेन्द्राणां मध्ये स्थितमिदं वचः ॥१८॥**
**कस्येशो नः पराजैषीरिति त्वामाह द्रौपदी ।**
**किन्नु पूर्वं पराजैषीरात्मानमथवापि माम् ॥१९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! प्रातिकामी सूत ने सभा में जाकर राजाओं के मध्य में बैठे हुए युधिष्ठिर से द्रौपदी की वह बात कह सुनाई। उसने कहा—"द्रौपदी आप से पूछना चाहती है कि किस-किस वस्तु के स्वामी रहते हुए आप मुझे हारे हैं? और, आप पहले अपने को हारे हैं या मुझे?"

**युधिष्ठिरस्तु निश्चेता गतसत्त्व इवाभवत् ।**
**न तं सूतं प्रत्युवाच वचनं साध्वसाधु वा ॥२०॥**

हे राजन्! उस समय युधिष्ठिर अचेत और निष्प्राण-से हो रहे थे, अतः उन्होंने प्रातिकामी को भला-बुरा कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

दुर्योधन उवाच

**इहैवागत्य पाञ्चाली प्रश्नमेनं प्रभाषताम् ।**
**इहैव सर्वे शृण्वन्तु तस्याश्चैतस्य यद् वचः ॥२१॥**

**दुर्योधन बोला**—सूतपुत्र! जाकर कह दो, द्रौपदी यहीं आकर अपने इस प्रश्न को पूछे। यहीं सब सभासद् उसके प्रश्न और युधिष्ठिर के उत्तर को सुनें।

वैशम्पायन उवाच

**स गत्वा राजभवनं दुर्योधनवशानुगः ।**
**उवाच द्रौपदीं सूतः प्रातिकामी व्यथान्वितः ॥२२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! प्रातिकामी दुर्योधन के वश में था, अतः वह राज-भवन में जाकर द्रौपदी से व्यथित होकर बोला—

प्रातिकाम्युवाच

**सभ्यास्त्वमी राजपुत्र्याह्वयन्ति**
**मन्ये प्राप्तः संक्षयः कौरवाणाम् ।**
**न वै समृद्धिं पालयते लघीयान्**
**यस्त्वां सभां नेष्यति राजपुत्रि ॥२३॥**

**प्रातिकामी बोला**—राजकुमारि! वे [दुर्योधन आदि] सभासद् तुम्हें सभा में ही बुला रहे हैं। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि अब कौरवों के विनाश का समय आ गया है। जो (दुर्योधन) इतना गिर गया है कि तुम्हें सभा में बुलाने का साहस करता है, वह कभी अपनी धन-सम्पत्ति की रक्षा नहीं कर सकता।

द्रौपद्युवाच

**एवं नूनं व्यदधात् संविधाता**
**स्पर्शावुभौ स्पृशतो वृद्धबालौ ।**
**धर्मं त्वेकं परमं प्राह लोके**
**स नः शमं धास्यति गोप्यमानः ॥२४॥**

**द्रौपदी बोली**—सूतपुत्र! निश्चय ही विधाता का ऐसा ही विधान है। बालक और वृद्ध सबको सुख-दुःख प्राप्त होते रहते हैं। जगत् में एकमात्र धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। यदि हम उसका पालन करें तो वह हमारा कल्याण करेगा।

**सोऽयं धर्मो मात्यगात् कौरवान् वै**
**सभ्यान् गत्वा पृच्छ धर्म्यं वचो मे ।**

**ते मां ब्रूयुर्निश्चितं तत् करिष्ये**
**धर्मात्मानो नीतिमन्तो वरिष्ठाः ॥२५॥**

मेरे इस धर्म का उल्लंघन न हो, अतः तुम सभा में बैठे हुए कुरुवंशियों के पास जाकर मेरी यह धर्मानुकूल बात पूछो—'इस समय मुझे क्या करना चाहिए ?' वे धर्मात्मा, नीतिज्ञ और श्रेष्ठ महापुरुष मुझे जैसी आज्ञा देंगे, मैं निश्चय ही वैसा करूँगी।

वैशम्पायन उवाच

**श्रुत्वा सूतस्तद्वचो याज्ञसेन्याः**
**सभां गत्वा प्राह वाक्यं तदानीम् ।**
**अधोमुखास्ते न च किंचिदूचु-**
**र्निर्बन्धं तं धार्तराष्ट्रास्य बुद्ध्वा ॥२६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—द्रौपदी का यह कथन सुनकर प्रातिकामी ने पुनः सभा में लौटकर द्रौपदी के प्रश्न को दुहराया। परन्तु उस समय दुर्योधन के उस दुराग्रह को जानकर सभी मुख लटकाए बैठे रहे, कोई कुछ भी नहीं बोला।

**पाण्डवाश्च महात्मानो दीना दुःखसमन्विताः ।**
**सत्येनातिपरीताङ्गा नोदीक्षन्ते स्म किञ्चन ॥२७॥**

इधर महात्मा पाण्डव सत्य के बन्धन से बँधकर अत्यन्त दीन और दुःख-मग्न थे। उन्हें कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था।

**ततस्त्वेषां मुखमालोक्य राजा**
**दुर्योधनः सूतमुवाच हृष्टः ।**
**इहैवैतामानय प्रातिकामिन्**
**प्रत्यक्षमस्याः कुरवो ब्रुवन्तु ॥२८॥**

उनके दीन मुख की ओर देखकर राजा दुर्योधन अतिप्रसन्न हो सूत से बोला—"प्रातिकामिन् ! तुम द्रौपदी को यहीं ले आओ। उसके समक्ष ही धर्मात्मा कौरव उसके प्रश्नों का उत्तर देंगे।"

**ततः सूतस्तस्य वशानुगामी**
**भीतश्च कोपाद् द्रुपदात्मजायाः ।**
**विहाय मानं पुनरेव सभ्या-**
**नुवाच कृष्णां किमहं ब्रवीमि ॥२९॥**

तत्पश्चात् दुर्योधन के वशवर्ती प्रातिकामी ने द्रौपदी के क्रोध से डरते हुए अपने मान-सम्मान की चिन्ता न करके पुनः सभासदों से पूछा—"मैं द्रौपदी को क्या उत्तर दूं ?"

दुर्योधन उवाच

**दुःशासनैष मम सूतपुत्रो**
**वृकोदरादुद्विजतेऽल्पचेताः ।**
**स्वयं प्रगृह्यानय याज्ञसेनीं**
**किं ते करिष्यन्त्यवशाः सपत्नाः ॥३०॥**

**दुर्योधन बोला**—हे दुःशासन ! यह मेरा सेवक सूतपुत्र प्रातिकामी अत्यन्त मूर्ख है। यह भीमसेन से डरता है। तुम स्वयं द्रौपदी को पकड़कर यहाँ ले आओ। हमारे शत्रु पाण्डव इस समय हम लोगों के वश में हैं। वे तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

**ततः समुत्थाय स राजपुत्रः**
**श्रुत्वा भ्रातुः शासनं रक्तदृष्टिः ।**
**प्रविश्य तद्वेश्म महारथाना-**
**मित्यब्रवीद् द्रौपदीं राजपुत्रीम् ॥३१॥**

भाई का आदेश सुनकर राजकुमार दुःशासन उठ खड़ा हुआ और लाल आँखें किये वहाँ से चल दिया। महारथी पाण्डवों के महल में प्रविष्ट होकर उसने राजकुमारी द्रौपदी से इस प्रकार कहा—

**एह्येहि पाञ्चालि जितासि कृष्णे**
**दुर्योधनं पश्य विमुक्तलज्जा ।**
**कुरून् भजस्वायतपत्रनेत्रे**
**धर्मेण लब्धासि सभां परैहि ॥३२॥**

"पाञ्चालि ! आओ, आओ, तुम जुए में जीती जा चुकी हो। कृष्णे ! अब लज्जा छोड़कर दुर्योधन की ओर देखो। कमल के समान विशाल नेत्रोंवाली द्रौपदि ! हमने धर्म के अनुसार तुम्हें प्राप्त किया है, अतः तुम कौरवों की सेवा करो। अभी राजसभा में चली चलो।"

**ततः समुत्थाय सुदुर्मनाः सा**
**विवर्णमामृज्य मुखं करेण ।**
**आर्ता प्रदुद्राव यतः स्त्रियस्ता**
**वृद्धस्य राज्ञः कुरुपुङ्गवस्य ॥३३॥**

यह सुनकर द्रौपदी का मन अत्यन्त उदास हो गया। उसने अपने मलिन मुख को हाथ से पोंछा। फिर उठकर वह आर्त अबला उसी ओर भागी, जहाँ वृद्ध महाराज धृतराष्ट्र की स्त्रियाँ बैठी हुई थीं।

**ततो जवेनाभिससार रोषाद्**
**दुःशासनस्तामभिगर्जमानः ।**
**दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिमत्सु**
**जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम् ।।३४।।**

तब दुःशासन भी रोष से गर्जता हुआ बड़े वेग से उसके पीछे दौड़ा। उसने महाराज युधिष्ठिर की पत्नी द्रौपदी के लम्बे, नीले और लहराते हुए केशों को पकड़ लिया।[1]

**स तां पराकृष्य सभासमीप-**
**मानीय कृष्णामतिदीर्घकेशीम् ।**
**दुःशासनो नाथवतीमनाथां**
**चकर्ष वायुः कदलीमिवार्ताम् ।।३५।।**

लम्बे केशोंवाली वह द्रौपदी यद्यपि सनाथा थी, तो भी दुःशासन उस आर्त अबला को अनाथ की भाँति घसीटता हुआ सभा के समीप ले आया तथा जैसे वायु केले के वृक्ष को झकझोर कर झुका देती है, उसी प्रकार वह द्रौपदी को बलपूर्वक घसीटने लगा।[2]

**सा कृष्यमाणा नमिताङ्गयष्टिः**
**शनैरुवाचाथ रजस्वलास्मि ।**
**एकं च वासो मम मन्दबुद्धे**
**नेतुं सभां नार्हसि मामनार्य ।।३६।।**

दुःशासन के खींचने से द्रौपदी का शरीर झुक गया। उसने धीरे से कहा—"ओ मन्दबुद्धि दुष्टात्मा दुःशासन ! मैं रजस्वला हूँ तथा मेरे शरीर पर एक ही वस्त्र है। इस अवस्था में मुझे सभा में ले जाना अनुचित है।"

दुःशासन उवाच

**रजस्वला वा भव याज्ञसेनि**
**एकाम्बरा वाप्यथवा विवस्त्रा ।**
**द्यूते जितासि च कृतासि दासी**
**दासीषु वासश्च यथोपजोषम् ।।३७।।**

**दुःशासन बोला**—द्रौपदी ! तू रजस्वला, एकवस्त्रा अथवा नंगी ही क्यों न हो, हमने तुझे जुए में जीता है, अतः अब तू हमारी दासी हो चुकी है। तुझे अब हमारी इच्छा के अनुसार दासियों में रहना पड़ेगा।

वैशम्पायन उवाच

**प्रकीर्णकेशी पतितार्धवस्त्रा**
**दुःशासनेन व्यवधूयमाना ।**
**ह्रीमत्यमर्षेण च दह्यमाना**
**शनैरिदं वाक्यमुवाच कृष्णा ।।३८।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! उस समय द्रौपदी के केश बिखर गये थे। दुःशासन के झकझोरने से उसका आधा वस्त्र भी खिसककर गिर गया था। वह लज्जा से गड़ी जाती थी तथा भीतर-ही-भीतर क्रोध से जल रही थी। उसी अवस्था में वह धीरे से बोली—

द्रौपद्युवाच

**इमे सभायामुपनीतशास्त्राः**
**क्रियावन्तः सर्व एवेन्द्रकल्पाः ।**
**गुरुस्थानाः गुरवश्चैव सर्वे**
**तेषामग्रे नोत्सहे स्थातुमेवम् ।।३९।।**

**द्रौपदी बोली**—अरे दुष्ट ! इस सभा में शास्त्रों के विद्वान्, कर्मठ तथा इन्द्र के समान तेजस्वी मेरे पिता के समान सभी गुरुजन बैठे हुए हैं। मैं उनके समक्ष इस रूप में खड़ी होना नहीं चाहती।

**इदं त्वकार्यं कुरुवीरमध्ये**
**रजस्वलां यत् परिकर्षसे माम् ।**

---

१. यहाँ द्रौपदी को नरेन्द्रपत्नी=युधिष्ठिर की पत्नी कहा गया है।

२. दुःशासन द्वारा द्रौपदी की साड़ी का खींचा जाना और श्रीकृष्ण द्वारा उसकी साड़ी बढ़ाना गप्प है। श्रीकृष्णजी तो कहते हैं कि मुझे पता ही नहीं था कि जुआ खेला जा रहा है। यदि मैं द्वारका में होता तो बिना बुलाये भी हस्तिनापुर आकर जुए को रुकवा देता।

[द्र० वनपर्व० १।१२-१३]

पूना-संस्करण में भी वह सारा विवरण प्रक्षेप होने के कारण मूल पाठ में नहीं दिया गया है।

**न चापि कश्चित् कुरुतेऽत्र कुत्सां**
**ध्रुवं तवेदं मतमभ्युपेताः ॥४०॥**

अरे ! तू इन कौरव-वीरों के मध्य में जो मुझ रजस्वला स्त्री को खींचकर लिए जा रहा है, यह अति पापपूर्ण कृत्य है। मैं देखती हूँ, यहाँ कोई भी मनुष्य तेरे इस कुकर्म की निन्दा नहीं कर रहा है। निश्चय ही ये सब लोग तेरे वश में हो गये।

**धिगस्तु नष्टः खलु भारतानां**
**धर्मस्तथा क्षत्रविदां च वृत्तम् ।**
**यत्र ह्यतीतां कुरुधर्मवेलां**
**प्रेक्षन्ति सर्वे कुरवः सभायाम् ॥४१॥**

अहो ! धिक्कार है। भरतवंश के नरेशों का धर्म निश्चय ही नष्ट हो गया तथा क्षत्रियधर्म के जानने-वाले इन महापुरुषों का सदाचार भी नष्ट हो गया। यहाँ कौरवों की धर्म-मर्यादा का उल्लंघन हो रहा है, तो भी सभा में बैठे हुए सभी कुरुवंशी मौन होकर देख रहे हैं !

**द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्त्वं**
**क्षत्तुस्तथैवास्य महात्मनोऽपि ।**
**राज्ञस्तथा हीममधर्ममुग्रं**
**न लक्षयन्ते कुरुवृद्धमुख्याः ॥४२॥**

जान पड़ता है, गुरु द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म, महात्मा विदुर तथा राजा धृतराष्ट्र में अब कोई शक्ति नहीं रह गई है, तभी तो ये कुरुवंश के वृद्ध महापुरुष राजा दुर्योधन के इस भयानक पापाचार की ओर दृष्टिपात नहीं कर रहे हैं।

भीष्म उवाच

**न धर्मसौक्ष्म्यात् सुभगे विवेक्तुं**
**शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत् ।**
**अस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं**
**स्त्रियाश्च भर्तुर्वशतां समीक्ष्य ॥४३॥**

**भीष्म बोले**—सौभाग्यशालिनी ! धर्म का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण मैं तुम्हारे इस प्रश्न का ठीक-ठीक विवेचन नहीं कर सकता। जो स्वामी नहीं है, वह पराया धन दाँव पर नहीं लगा सकता। परन्तु स्त्री को सदा अपने स्वामी के ही अधीन देखा जाता है, अतः इन सब बातों पर विचार करने के बाद मुझसे कुछ कहते नहीं बनता।

वैशम्पायन उवाच

**तां कृष्यमाणां च रजस्वलां च**
**स्रस्तोत्तरीयामतदर्हमाणाम् ।**
**वृकोदरः प्रेक्ष्य युधिष्ठिरं च**
**चकार कोपं परमार्तरूपः ॥४४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—कृष्णा रजस्वला दशा में घसीटी जा रही थी, उसके सिर का वस्त्र सरक गया था। वह इस तिरस्कार के योग्य कदापि नहीं थी। उसकी यह दुरवस्था देखकर भीमसेन को बड़ी पीड़ा हुई। वे युधिष्ठिर की ओर देखकर मन-ही-मन क्रुद्ध हो उठे।

**इति महाभारते सभापर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥**

## पञ्चदशोऽध्यायः

### भीमसेन का क्रोध, विकर्ण की धर्मसंगत बात, भीम द्वारा दुःशासन के रक्तपान की प्रतिज्ञा

भीम उवाच

**भवन्ति गेहे बन्धक्यः कितवानां युधिष्ठिर ।**
**न ताभिरुत दीव्यन्ति दया चैवास्ति तास्वपि ॥१॥**

**भीम बोले**—भैया युधिष्ठिर ! जुआरियों के घर में प्रायः कुलटा स्त्रियाँ रहती हैं, परन्तु वे भी उन्हें दाँव पर लगाकर जुआ नहीं खेलते। उन कुलटाओं के प्रति भी उनके हृदय में दया रहती है।

**काश्यो यद् धनमाहार्षीद् द्रव्यं यच्चान्यदुत्तमम् ।**
**तथान्ये पृथिवीपाला यानि रत्नान्युपाहरन् ॥२॥**
**वाहनानि धनं चैव कवचान्यायुधानि च ।**
**राज्यमात्मा वयं चैव कैतवेन हृतं परैः ॥३॥**

काशिराज ने जो धन उपहार में लाकर दिया था तथा और भी जो उत्तम द्रव्य वे हमारे लिए लाये थे एवं अन्य राजाओं ने भी जो रत्न हमें भेंट किये थे,

उन सबको और हमारे वाहनों, वैभवों, कवचों, आयुधों, राज्य, आपके शरीर तथा हम सब भाइयों को भी शत्रुओं ने जुए के दाँव पर रखवाकर अपने अधिकार में कर लिया।

**न च मे तत्र कोपोऽभूत् सर्वस्येशो हि नो भवान् ।**
**इमं त्वतिक्रमं मन्ये द्रौपदी यत्र पण्यते ॥४॥**

उस सबके लिए मेरे मन में क्रोध नहीं हुआ, क्योंकि आप हमारे सर्वस्व के स्वामी हैं, परन्तु द्रौपदी को जो दाँव पर लगाया गया, इसे मैं अत्यन्त अनुचित मानता हूँ ।

**अस्याः कृते मन्युरयं त्वयि राजन् निपात्यते ।**
**बाहू ते सम्प्रधक्ष्यामि सहदेवाग्निमानय ॥५॥**

राजन् ! द्रौपदी की इस दुर्दशा के लिए मैं आप पर ही अपना क्रोध छोड़ रहा हूँ । मैं आपकी दोनों भुजाओं को जलाऊँगा। सहदेव ! अग्नि ले आओ ।

अर्जुन उवाच

**न पुरा भीमसेन त्वमीदृशीर्वदिता गिरः ।**
**परैस्ते नाशितं नूनं नृशंसैर्धर्मगौरवम् ॥६॥**

**अर्जुन ने कहा**—भैया भीमसेन ! तुमने पहले कभी ऐसी बातें नहीं कही थीं । निश्चय ही क्रूरकर्मा शत्रुओं ने तुम्हारी धर्म-विषयक गौरवमय बुद्धि को नष्ट कर दिया है ।

**न सकामाः परे कार्या धर्ममेवाचरोत्तमम् ।**
**भ्रातरं धार्मिकं ज्येष्ठं कोऽतिवर्तितुमर्हति ॥७॥**

भैया ! शत्रुओं की कामना सफल मत करो; उत्तम धर्म का ही आचरण करो। भला, अपने धर्मात्मा बड़े भाई का अपमान करना किसको उचित है ?

वैशम्पायन उवाच

**तथा तान् दुःखितान् दृष्ट्वा पाण्डवान् धृतराष्ट्रजः ।**
**कृष्यमाणां च पाञ्चालीं विकर्ण इदमब्रवीत् ॥८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! पाण्डवों को दुःखी और पाञ्चालकुमारी द्रौपदी को घसीटी जाती हुई देख धृतराष्ट्रनन्दन विकर्ण ने कहा—

**याज्ञसेन्या यदुक्तं तद् वाक्यं विब्रूत पार्थिवाः ।**
**अविवेकेन वाक्यस्य नरकः सद्य एव नः ॥९॥**

"नरेशो ! द्रौपदी ने जो प्रश्न उपस्थित किया है, आप लोग उसका उत्तर दें । यदि इसके प्रश्न का ठीक-ठीक विवेचन न किया गया, तो हमें शीघ्र ही नरक भोगना पड़ेगा ।"

**भीष्मश्च धृतराष्ट्रश्च कुरुवृद्धतमावुभौ ।**
**समेत्य नाहतुः किंचिद् विदुरश्च महामतिः ॥१०॥**

"पितामह भीष्म और पिता धृतराष्ट्र—ये दोनों कुरुवंश के सबसे वृद्ध पुरुष हैं । ये तथा महाप्राज्ञ विदुरजी मिलकर कुछ उत्तर क्यों नहीं देते ?"

**एवं स बहुशः सर्वानुक्तवांस्तान् सभासदः ।**
**न च ते पृथिवीपालास्तमूचुः साध्वसाधु वा ॥११॥**

इस प्रकार विकर्ण ने उन सब सभासदों से बार-बार अनुरोध किया, परन्तु उन राजाओं ने उस विषय में उचितानुचित कुछ नहीं कहा ।

**उक्त्वा सकृत्तथा सर्वान् विकर्णः पृथिवीपतीन् ।**
**पाणौ पाणिं विनिष्पिष्य निःश्वसन्निदमब्रवीत् ॥१२**

उन सब नरेशों से बार-बार आग्रह करने पर भी जब कुछ उत्तर नहीं मिला, तब विकर्ण ने हाथ पर हाथ मलते हुए लम्बी साँस खींचकर कहा—

विकर्ण उवाच

**विब्रूत पृथिवीपाला वाक्यं मा वा कथञ्चन ।**
**मन्ये न्याय्यं यदत्राहं तद्धि वक्ष्यामि कौरवाः ॥१३॥**

कौरवो तथा अन्य नरेशो ! आप लोग द्रौपदी के प्रश्न पर किसी प्रकार का विचार प्रकट करें या न करें । मैं इस विषय में जो न्यायानुकूल समझता हूँ, वह कहता हूँ—

**चत्वार्याहुर्नरश्रेष्ठा व्यसनानि महीक्षिताम् । □**
**मृगयां पानमक्षाँश्च ग्राम्ये चैवातिरक्तताम् ॥१४॥**

नरश्रेष्ठ भूपालो ! राजाओं के चार दुर्व्यसन बताये गये हैं—शिकार खेलना, मदिरा-पान, जुआ खेलना तथा विषय-भोग में अत्यन्त आसक्ति ।

**एतेषु हि नरः सक्तो धर्ममुत्सृज्य वर्तते । □**
**यथायुक्तेन च कृतां क्रियां लोको न मन्यते ॥१५॥**

इन व्यसनों में फँसा हुआ मनुष्य धर्म की अवहेलना करके मनमाना व्यवहार करने लगता है। इस प्रकार व्यसनासक्त मनुष्य द्वारा किये हुए किसी भी कार्य को लोग सम्मान नहीं देते ।

**तदयं पाण्डुपुत्रेण व्यसने वर्तता भृशम् ।**
**समाहूतेन कितवैरास्थितो द्रौपदीपणः ॥१६॥**

ये पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर द्यूत-रूपी दुर्व्यसन में अत्यन्त आसक्त हैं। इन्होंने धूर्त जुआरियों से प्रेरित होकर द्रौपदी को दाँव पर लगा दिया है।

**इयं च कीर्तिता कृष्णा सौबलेन पणार्थिना ।**
**एतत् सर्वं विचार्याहं मन्ये न विजितामिमाम् ॥१७॥**

सब दाँवों को जीतने की इच्छावाले सुबलपुत्र शकुनि ने ही द्रौपदी को दाँव पर लगाने की बात उठाई थी। इन सब बातों पर विचार करके मैं द्रुपदकुमारी कृष्णा को जीती हुई नहीं मानता।

वैशम्पायन उवाच

**एतत् श्रुत्वा महान् नादः सभ्यानामुदतिष्ठत ।**
**विकर्णं शंसमानानां सौबलं चापि निन्दताम् ॥१८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—इस कथन को सुनकर सभी सभासद् विकर्ण की प्रशंसा और सुबलपुत्र शकुनि की निन्दा करने लगे। उस समय वहाँ बड़ा कोलाहल मच गया।

**तस्मिन्नुपरते शब्दे राधेयः क्रोधमूर्च्छितः ।**
**प्रगृह्य रुचिरं बाहुमिदं वचनमब्रवीत् ॥१९॥**

उस कोलाहल के शान्त होने पर राधानन्दन कर्ण क्रोध से मूर्च्छित हो विकर्ण की सुन्दर भुजा को पकड़कर इस प्रकार कहने लगा।

कर्ण उवाच

**दृश्यन्ते वै विकर्णेह वैकृतानि बहून्यपि । □**
**तज्जातस्तद्विनाशाय यथाग्निररणिप्रजः ॥२०॥**

**कर्ण बोला**—विकर्ण! इस संसार में बहुत-सी बातें उलटा परिणाम उत्पन्न करनेवाली देखी जाती हैं। जैसे अरणि से उत्पन्न हुई अग्नि उसी को भस्म कर देती है, वैसे ही कोई-कोई मनुष्य जिस कुल में उत्पन्न होता है, उसी का नाशक बन जाता है।

**द्रोणो भीष्मः कृपो द्रौणिर्विदुरश्च महामतिः ।**
**धृतराष्ट्रश्च गान्धारी भवतः प्राज्ञवत्तराः ॥२१॥**

विकर्ण! द्रोण, भीष्म, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, महाप्राज्ञ विदुर, धृतराष्ट्र एवं गान्धारी—ये सब तुमसे अधिक बुद्धिमान् हैं।

**एते न किंचिदप्याहुः प्रेरिता ह्यपि कृष्णया ।**
**धर्मेण विजितामेतां मन्यन्ते द्रुपदात्मजाम् ॥२२॥**

द्रौपदी के बार-बार प्रेरित करने पर भी ये सब कुछ भी नहीं बोलते हैं, क्योंकि ये सब लोग द्रुपद-कुमारी को धर्मानुसार जीती हुई समझते हैं।

**त्वं तु केवलबाल्येन धार्तराष्ट्र विदीर्यसे ।**
**यद् ब्रवीषि सभामध्ये बालः स्थविरभाषितम् ॥२३॥**

धृतराष्ट्रकुमार! तुम केवल अपनी मूर्खता के कारण अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हो, क्योंकि तुम बालक होकर भी भरी सभा में वृद्धों की-सी बातें करते हो।

**न च धर्मं यथावत् त्वं वेत्सि दुर्योधनावर ।**
**यद् ब्रवीषि जितां कृष्णामजितेति सुमन्दधीः ॥२४॥**

दुर्योधन के छोटे भाई! तुम्हें धर्म के विषय में यथार्थ ज्ञान नहीं है। तुम जो जीती हुई द्रौपदी को बिना जीती हुई बता रहे हो, इससे तुम्हारे मन्द-बुद्धि होने का परिचय मिलता है।

**यच्चैषां द्रविणं किञ्चिद् या चैषा ये च पाण्डवाः ।**
**सौबलेनेह तत्सर्वं धर्मेण विजितं वसु ॥२५॥**

इन पाण्डवों के पास जो धन है, जो यह द्रौपदी है, तथा जो ये पाण्डव हैं, इन सबको सुबलपुत्र शकुनि ने यहाँ जुए के धन के रूप में धर्मपूर्वक जीता है।

**दुःशासन सुबालोऽयं विकर्णः प्राज्ञवादिकः ।**
**पाण्डवानां च वासांसि द्रौपद्याश्चाप्युपाहर ॥२६॥**

दुःशासन! यह विकर्ण अत्यन्त मूर्ख है, परन्तु विद्वानों की-सी बातें बनाता है। तुम पाण्डवों के और द्रौपदी के भी वस्त्र उतार लो।

वैशम्पायन उवाच

**तत् श्रुत्वा पाण्डवाः सर्वे स्वानि वासांसि भारत ।**
**अवकीर्योत्तरीयाणि सभायां समुपाविशन् ॥२७**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! कर्ण की बात सुनकर समस्त पाण्डव अपने-अपने उत्तरीय-[शरीर के उपरि भाग के] वस्त्र उतारकर सभा में बैठ गये।

**ततो दुःशासनो राजन् द्रौपद्या वसनं बलात् ।**
**सभामध्ये समाक्षिप्य व्यपाक्रष्टुं प्रचक्रमे ॥२८॥**

हे राजन्! तब दुःशासन ने उस भरी सभा में

द्रौपदी का वस्त्र बलपूर्वक पकड़कर खींचना आरम्भ किया।

**शशाप तत्र भीमस्तु राजमध्ये बृहत्स्वनः।**
**क्रोधाद् विस्फुरमाणौष्ठो विनिष्पिष्य करे करम् ॥२९**

उस समय वहाँ समस्त राजाओं के मध्य में हाथ-पर-हाथ मलते हुए भीमसेन ने क्रोध में फड़कते हुए ओठों से भयंकर गर्जना के साथ यह शाप दिया [प्रतिज्ञा की]।

भीम उवाच

**इदं मे वाक्यमादद्ध्वं क्षत्रिया लोकवासिनः।**
**नोक्तपूर्वं नरैरन्यैर्न चान्यो यद् वदिष्यति ॥३०॥**

**भीमसेन बोले**—देश-देशान्तरवासी क्षत्रियो ! आप लोग मेरी इस बात पर ध्यान दें। ऐसी बात आज से पूर्व न तो किसी ने कही होगी और न दूसरा कोई कहेगा ही।

**यद्येतदेवमुक्त्वाहं न कुर्यां पृथिवीश्वराः।**
**पितामहानां पूर्वेषां नाहं गतिमवाप्नुयाम् ॥३१॥**
**अस्य पापस्य दुर्बुद्धेर्भारतापसदस्य च।**
**न पिबेयं बलाद् वक्षो भित्वा चेद् रुधिरं युधि ॥३२॥**

नरेशो ! यह खोटी बुद्धिवाला दुःशासन भरतवंश के लिए कलंक है। मैं युद्ध में बलपूर्वक इस पापी की छाती फाड़कर इसका रक्तपान करूँगा। यदि रक्तपान न करूँ अर्थात् यदि अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण न करूँ तो मुझे अपने पूर्वज बाप-दादों की श्रेष्ठ गति न मिले।

वैशम्पायन उवाच

**धिक्शब्दस्तु ततस्तत्र समभूल्लोमहर्षणः।**
**सभ्यानां नरदेवानां दृष्ट्वा कुन्तीसुतांस्तथा ॥३३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—उस समय कुन्तीपुत्रों की ओर देखकर सभा में उपस्थित राजाओं की ओर से दुःशासन पर रोमाञ्चकारी शब्दों में धिक्कार की बौछार होने लगी।

भीमसेन उवाच

**यद्येष गुरुरस्माकं धर्मराजो महामनाः।**
**न प्रभुः स्यात् कुलस्यास्य न वयं मर्षयेमहि ॥३४॥**

**भीमसेन ने कहा**—यदि ये महामना धर्मराज युधिष्ठिर हमारे पितृतुल्य तथा इस पाण्डुकुल के स्वामी न होते, तो आज हम इन कौरवों का यह अत्याचार कदापि न सहते।

**पश्यध्वं ह्यायतौ वृत्तौ भुजौ मे परिघाविव।**
**नैतयोरन्तरं प्राप्य मुच्येतापि शतक्रतुः ॥३५॥**

भूपालो ! परिघ के समान मोटी और गोलाकार मेरी इन विशाल बाहुओं को देखो। इनके बीच में आकर इन्द्र भी जीवित नहीं बच सकता।

**धर्मपाशसितः पारं नाधिगच्छामि संकटम्।**
**गौरवेण निरुद्धश्च निग्रहादर्जुनस्य च ॥३६॥**

मैं धर्म के बन्धन में बँधा हूँ। बड़े भाई के गौरव ने मुझे रोक रखा है और अर्जुन भी मना कर रहे हैं, इसीलिए मैं इस संकट से पार नहीं हो पा रहा हूँ।

**धर्मराजनिसृष्टस्तु सिंहः क्षुद्रमृगानिव।**
**धार्तराष्ट्रानिमान्पापान्निष्पिषेयं तलासिभिः ॥३७॥**

यदि धर्मराज मुझे आज्ञा दें, तो जैसे सिंह छोटे-छोटे मृगों को दबोच लेता है, वैसे ही मैं धृतराष्ट्र के इन पापी पुत्रों को तलवार के स्थान पर हाथों के तलवों से ही मसल डालूँ।

वैशम्पायन उवाच

**तमुवाच तदा भीष्मो द्रोणो विदुर एव च।**
**क्षम्यतामिदमित्येवं सर्वं सम्भाव्यते त्वयि ॥३८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन् ! तब भीष्म, द्रोण और विदुर ने भीमसेन को शान्त करते हुए कहा—"भीम ! क्षमा करो, तुम सब-कुछ कर सकते हो।"

इति महाभारते सभापर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

# षोडशोऽध्यायः

## भीमसेन द्वारा दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की प्रतिज्ञा, द्रौपदी को धृतराष्ट्र से वर-प्राप्ति और पाण्डवों का दास-भाव से मुक्त होकर इन्द्रप्रस्थ लौटना

वैशम्पायन उवाच

**भीमसेनवचः श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।**
**युधिष्ठिरमुवाचेदं तूष्णीम्भूतमचेतनम् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—भीमसेन का वह वचन सुनकर उस समय राजा दुर्योधन ने मौन एवं अचेत-सी अवस्था में बैठे हुए युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा—

**भीमार्जुनौ यमौ चैव स्थितौ ते नृप शासने ।**
**प्रश्नं ब्रूहि च कृष्णां त्वमजितां यदि मन्यसे ॥२॥**

"राजन् ! भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव आपकी आज्ञा के अधीन हैं । आप ही द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर दीजिए । क्या आप द्रौपदी को हारी हुई नहीं मानते हैं ?"

**एवमुक्त्वा तु कौन्तेयमपोह्य वसनं स्वकम् ।**
**स्मयन्निवैक्षत्पाञ्चालीमैश्वर्यमदमोहितः ॥३॥**
**अभ्युत्स्मयित्वा राधेयं भीममाधर्षयन्निव ।**
**द्रौपद्याः प्रेक्षमाणायाः सव्यमूरुमदर्शयत् ॥४॥**

कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से ऐसा कहकर ऐश्वर्यमद से मदान्ध हुए दुर्योधन ने संकेत से राधानन्दन कर्ण को उत्साहित करते हुए और भीमसेन का तिरस्कार-सा करते हुए अपनी जाँघ का वस्त्र हटाकर द्रौपदी की ओर मुस्कराते हुए देखा तथा अपनी बायीं जाँघ द्रौपदी की दृष्टि के सामने करके दिखाई ।

**भीमसेनस्तमालोक्य नेत्रे उत्फाल्य लोहिते ।**
**प्रोवाच राजमध्ये तं सभां विश्रावयन्निव ॥५॥**

यह देखकर भीमसेन की आँखें क्रोध से लाल हो गईं । वे आँखें फाड़-फाड़कर देखते और सारी सभा को सुनाते हुए-से राजाओं के मध्य में बोले—

**पितृभिः सह सालोक्यं मा स्म गच्छेद् वृकोदरः ।**
**यद्येतमूरुं गदया न भिन्द्यां ते महाहवे ॥६॥**

"दुर्योधन ! यदि महासमर में मैं तेरी इस जाँघ को अपनी गदा से न तोड़ डालूँ तो मुझ भीमसेन को अपने पूर्वजों के साथ उन्हीं के समान पुण्यलोकों की प्राप्ति न हो ।"

धृतराष्ट्र उवाच

**हतोऽसि दुर्योधन मन्दबुद्धे**
**यस्त्वं सभायां कुरुपुङ्गवानाम् ।**
**स्त्रियं समाभाषसि दुर्विनीत**
**विशेषतो द्रौपदीं धर्मपत्नीम् ॥७॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—रे मन्द-बुद्धि दुर्योधन ! तू तो जीता ही मारा गया । दुर्विनीत ! तू श्रेष्ठ कुरु-वंशियों की सभा में अपने ही कुल की महिला, विशेषतः पाण्डुकुल की सती-साध्वी धर्मपत्नी द्रौपदी को लाकर उससे पापपूर्ण बातें कर रहा है । [दुर्योधन से ऐसा कह फिर उन्होंने द्रौपदी से कहा]

**वरं वृणीष्व पाञ्चालि मत्तो यदभिवाञ्छसि ।**
**वधूनां हि विशिष्टा मे त्वं धर्मपरमा सती ॥८॥**

बहू द्रौपदी ! तुम मेरी पुत्र-वधुओं में सबसे श्रेष्ठ तथा धर्मपरायणा सती हो । तुम्हारी जो इच्छा हो, उसके अनुसार मुझसे वर माँग लो ।

द्रौपद्युवाच

**ददासि चेद् वरं मह्यं वृणोमि भरतर्षभ ।**
**सर्वधर्मानुगः श्रीमानदासोऽस्तु युधिष्ठिरः ॥९॥**

**द्रौपदी बोली**—भरतवंश-शिरोमणे ! यदि आप मुझे वर देते हैं तो मैं यह वर माँगती हूँ कि सम्पूर्ण धर्म का आचरण करनेवाले राजा युधिष्ठिर दासभाव से मुक्त हो जाएँ ।

धृतराष्ट्र उवाच

**एवं भवतु कल्याणि यथा त्वमभिभाषसे ।**
**द्वितीयं ते वरं भद्रे ददामि वरयस्व माम् ॥१०॥**

**धृतराष्ट्र ने कहा**—कल्याणी ! तुम जैसा कहती हो, वैसा ही हो । भद्रे ! अब मैं तुम्हें दूसरा वर देता हूँ, वह भी माँग लो ।

द्रौपद्युवाच

**सरथौ सधनुष्कौ च भीमसेनधनञ्जयौ ।**
**यमौ च वरये राजन्नदासान् स्ववशानहम् ॥११॥**

**द्रौपदी बोली**—हे राजन् ! मैं दूसरा वर यह माँगती हूँ कि भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव

अपने रथ और धनुष-बाण सहित दास-भाव से रहित एवं स्वतन्त्र हो जाएँ।

धृतराष्ट्र उवाच

**तथाऽस्तु ते महाभागे यथा त्वं नन्दिनीच्छसि।**
**तृतीयं वरयास्मत्तो नासि द्वाभ्यां सुसत्कृता ॥१२॥**

**धृतराष्ट्र ने कहा**—हे महाभागे! तुम अपने कुल को आनन्द प्रदान करनेवाली हो। तुम जैसा चाहती हो, वैसा ही हो। अब तुम तीसरा वर और माँगो। मैं समझता हूँ, केवल दो वरों से तुम्हारा पूरा सत्कार नहीं हुआ।

द्रौपद्युवाच

**लोभो धर्मस्य नाशाय भगवन् नाहमुत्सहे।**
**अनर्हा वरमादातुं तृतीयं राजसत्तम ॥१३॥**

**द्रौपदी बोली**—भगवन्! लोभ धर्म का नाशक होता है, अतः अब मेरे मन में वर माँगने का उत्साह नहीं है। राज-शिरोमणे! तीसरा वर लेने का मुझे अधिकार भी नहीं है।

**एकमाहुर्वैश्यवरं द्वौ तु क्षत्रस्त्रिया वरौ।**
**त्रयस्तु राज्ञो राजेन्द्र ब्राह्मणस्य शतं वराः ॥१४॥**

हे राजेन्द्र! वैश्य को एक वर माँगने का अधिकार बताया गया है, क्षत्रिय की स्त्री दो वर माँग सकती है, क्षत्रिय को तीन वर और ब्राह्मण को सौ वर माँगने का अधिकार है।

वैशम्पायन उवाच

**अप्लवेऽम्भसि मग्नानामप्रतिष्ठे निमज्जताम्।**
**पाञ्चाली पाण्डुपुत्राणां नौरेषा पारगाभवत् ॥१५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—पाण्डव लोग नौका और आधार से रहित जल में गोते खा रहे थे, संकट के अथाह सागर में डूब रहे थे, किन्तु द्रौपदी उनके लिए पार लगानेवाली नौका बन गई।

भीम उवाच

**इहैवैतांस्त्वहं सर्वान् हन्मि शत्रून् समागतान्।**
**अथ निष्क्रम्य राजेन्द्र समूलान् हन्मि भारत ॥१६॥**

**भीमसेन ने कहा**—भरतकुलतिलक युधिष्ठिर! [यदि आपकी आज्ञा हो तो] यहाँ आये हुए इन सब शत्रुओं को मैं यहीं समाप्त कर दूँ तथा यहाँ से बाहर निकलकर इनके मूल को भी नष्ट कर डालूँ।

**किं नो विविदितेनेह किमुक्तेन च भारत।**
**अद्यैवैतान् निहन्मीह प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ॥१७॥**

हे भारत! अब यहाँ वाद-विवाद या उत्तर-प्रत्युत्तर करने की हमें क्या आवश्यकता है? मैं आज ही इन सबको मौत के घाट उतार देता हूँ, आप इस सारी पृथिवी का निष्कण्टक शासन कीजिए।

वैशम्पायन उवाच

**युधिष्ठिरस्तमावार्य बाहुना बाहुशालिनम्।**
**मैवमित्यब्रवीच्चैनं जोषमास्स्वेति भारत ॥१८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! उस समय विशाल भुजाओं से सुशोभित होनेवाले भीमसेन को अपने हाथों से रोकते हुए युधिष्ठिर ने कहा—"प्रिय अनुज! ऐसा न करो, शान्ति से बैठो!"

**निवार्य च महाबाहुं कोपसंरक्तलोचनम्।**
**पितरं समुपातिष्ठद् धृतराष्ट्रं कृताञ्जलिः ॥१९॥**

उस समय क्रोध के कारण लाल-लाल नेत्रवाले महाबाहु भीमसेन को रोककर राजा युधिष्ठिर हाथ जोड़े हुए अपने ताऊ महाराज धृतराष्ट्र के पास गये।

युधिष्ठिर उवाच

**राजन् किं करवामस्ते प्रशाध्यस्माँस्त्वमीश्वरः।**
**नित्यं हि स्थातुमिच्छामस्तव भारत शासने ॥२०॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हे राजन्! आप हमारे स्वामी हैं। आज्ञा दीजिए, हम क्या करें। हे भारत! हम लोग सदा आपकी आज्ञा के अधीन रहना चाहते हैं।

धृतराष्ट्र उवाच

**अजातशत्रो भद्रं ते अरिष्टं स्वस्ति गच्छत।**
**अनुज्ञाताः सहधनाः स्वराज्यमनुशासत ॥२१॥**

**धृतराष्ट्र ने कहा**—हे अजातशत्रो! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी आज्ञा से हारे हुए धन के साथ बिना किसी विघ्न-बाधा के कुशलपूर्वक अपनी राजधानी को जाओ और अपने राज्य का शासन करो।

**वेत्थ त्वं तात धर्माणां गतिं सूक्ष्मां युधिष्ठिर।**
**विनीतोऽसि महाप्राज्ञ वृद्धानां पर्युपासिता ॥२२॥**

तात युधिष्ठिर! तुम धर्म की सूक्ष्म गति को जानते हो। महामते! तुममें विनय है। तुमने बड़े-बूढ़ों की सेवा और उनका सत्सङ्ग किया है।

**यतो बुद्धिस्ततः शान्तिः प्रशमं गच्छ भारत ।**
**नादारुणि पतेच्छस्त्रं दारुण्येतन्निपात्यते ॥२३॥**

जहाँ बुद्धि है, वहीं शान्ति है । हे भारत ! तुम शान्त हो जाओ [जो कुछ हुआ है, उसे भूल जाओ] पत्थर या लोहे पर कुल्हाड़ी नहीं पड़ती, लोग उसे लकड़ी पर ही चलाते हैं ।

**न वैराण्यभिजानन्ति गुणान्पश्यन्ति नागुणान् ।**
**विरोधं नाधिगच्छन्ति ये त उत्तमपूरुषाः ॥२४॥**
**स्मरन्ति सुकृतान्येव न वैराणि कृतान्यपि ।**
**सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ते प्रतिक्रियाम् ॥२५॥**

जो पुरुष वैर को याद नहीं रखते, गुणों को ही देखते हैं अवगुणों को नहीं तथा किसी से विरोध नहीं रखते, वे ही उत्तम पुरुष कहलाते हैं । साधु पुरुष दूसरों के सत्कर्मों [उपकारादि] को ही स्मरण रखते हैं, उनके किये हुए वैर को नहीं । वे दूसरों की भलाई तो करते हैं, परन्तु उनसे बदला लेने की भावना नहीं रखते ।

**संवादे परुषाण्याहुर्युधिष्ठिर नराधमाः ।**
**प्रत्याहुर्मध्यमास्त्वेते ह्युक्ते परुषमुत्तरम् ॥२६॥**
**न चोक्ता नैव चानुक्तास्त्वहिताः परुषा गिरः ।**
**प्रतिजल्पन्ति वै धीराः सदा तूत्तमपूरुषाः ॥२७॥**

युधिष्ठिर ! नीच मनुष्य साधारण बातचीत में भी कटु वचन बोलने लगते हैं; जो स्वयं पहले कटु वचन न कहकर प्रत्युत्तर में कठोर बातें कहते हैं, वे मध्यम श्रेणी के पुरुष हैं; परन्तु जो धीर एवं श्रेष्ठ पुरुष हैं, वे किसी के कटुवचन बोलने या न बोलने पर भी अपने मुख से कभी कटु तथा अहितकर वचन नहीं बोलते ।

**असम्भिन्नार्यमर्यादाः साधवः प्रियदर्शनाः ।**
**तथाचरितमार्येण त्वयास्मिन् सत्समागमे ॥२८॥**

श्रेष्ठ पुरुष आर्य-मर्यादाओं को कभी भङ्ग नहीं करते । उनके दर्शन से सभी लोग प्रसन्न हो जाते हैं । युधिष्ठिर ! कौरव-पाण्डवों के समागम में तुमने श्रेष्ठ पुरुषों के ही समान आचरण किया है ।

**दुर्योधनस्य पारुष्यं तत् तात हृदि मा कृथाः ।**
**मातरं चैव गान्धारीं पितरं पश्य भारत ॥२९॥**

तात ! दुर्योधन ने तुम्हारे प्रति जो कठोर बर्ताव किया, तुम उसे अपने हृदय में मत लाना । भारत ! तुम अपनी माता गान्धारी और ताऊ की ओर देखो ।

**प्रेक्षापूर्वं मया द्यूतमिदमासीदुपेक्षितम् ।**
**मित्राणि द्रष्टुकामेन पुत्राणां च बलाबलम् ॥३०॥**

मैंने जानबूझकर ही इस जुए की इसलिए उपेक्षा कर दी—उसे रोकने की चेष्टा नहीं की—क्योंकि मैं अपने मित्रों और सुहृदों से मिलना तथा अपने पुत्रों के बलाबल को देखना चाहता था ।

**त्वयि धर्मोऽर्जुने धैर्यं भीमसेने पराक्रमः ।**
**श्रद्धा च गुरुशुश्रूषा यमयोः पुरुषाग्र्ययोः ॥३१॥**
**अजातशत्रो भद्रं ते खाण्डवप्रस्थमाविश ।**
**भ्रातृभिस्तेऽस्तु सौभ्रात्रं धर्मे ते धियतां मनः ॥३२॥**

तुममें धर्म है, अर्जुन में धैर्य है, भीमसेन में पराक्रम है, नरश्रेष्ठ नकुल और सहदेव में श्रद्धा एवं विशुद्ध गुरु-सेवा का भाव है । अजातशत्रो ! तुम्हारा कल्याण हो । अब तुम खाण्डवप्रस्थ को प्रस्थान करो । दुर्योधन आदि बन्धुओं के प्रति तुममें श्रेष्ठ भाई का-सा स्नेह-भाव रहे तथा तुम्हारा मन सदा धर्म में लगा रहे ।

वैशम्पायन उवाच

**इत्युक्तो भरतश्रेष्ठ धर्मराजो युधिष्ठिरः ।**
**कृत्वाऽऽर्यसमयं सर्वं प्रतस्थे भ्रातृभिः सह ॥३३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे भरतश्रेष्ठ ! राजा धृतराष्ट्र के इस प्रकार कहने पर धर्मराज युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के आदेश को स्वीकार करके भाइयोंसहित वहाँ से विदा हो गये ।

**ते रथान् मेघसंकाशानास्थाय सह कृष्णया ।**
**प्रययुर्हृष्टमनसा इन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम् ॥३४॥**

वे सब द्रौपदी के साथ मेघ के समान शब्द (गम्भीर घोष-नाद) करनेवाले रथों पर बैठकर प्रसन्न मन से नगरों में श्रेष्ठ इन्द्रप्रस्थ को चल दिये ।

**इति महाभारते सभापर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥१६॥**

# सप्तदशोऽध्यायः

## पुनः जुए का बुलावा, युधिष्ठिर का पुनः जुआ खेलना तथा हारना; दुशासन द्वारा पाण्डवों का उपहास और पाण्डवों द्वारा शत्रुओं को मारने की भीषण प्रतिज्ञा

जनमेजय उवाच

**अनुज्ञातान्विदित्वेमान् सरत्नधनसञ्चयान् ।**
**पाण्डवान् धार्तराष्ट्राणां कथमासीन्मनस्तदा ।।१।।**

**जनमेजय ने पूछा**—ब्रह्मन् ! जब कौरवों को यह पता चला कि पाण्डवों को रथ और धन के संग्रह-सहित इन्द्रप्रस्थ जाने की आज्ञा मिल गई है, तब उनकी मनोदशा कैसी हुई ?

वैशम्पायन उवाच

**अनुज्ञातान्विदित्वैतान् धृतराष्ट्रेण धीमता ।**
**राजन् दुःशासनः क्षिप्रं जगाम भ्रातरं प्रति ।।२।।**
**दुर्योधनं समासाद्य सामात्यं भरतर्षभ ।**
**दुःखार्तो भरतश्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत् ।।३।।**

**वैशम्पायनजी बोले**—भरतकुलश्रेष्ठ जनमेजय ! परम बुद्धिमान् महाराजा धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को इन्द्रप्रस्थ जाने की आज्ञा दे दी, यह जानकर दुःशासन शीघ्र ही अपने भाई भरतश्रेष्ठ दुर्योधन के पास, जो अपने मन्त्रियों [कर्ण एवं शकुनि] के साथ बैठा था, गया तथा दुःख से पीड़ित होकर यह वचन बोला—

दुःशासन उवाच

**दुःखेनैतत् समानीतं स्थविरो नाशयत्यसौ ।**
**शत्रुसाद् गमयद् द्रव्यं तद् बुध्यध्वं महारथाः ।।४।।**

**दुःशासन ने कहा**—महारथियो ! आप लोगों को ज्ञात होना चाहिए कि हमने अति कष्ट से जिस धन-राशि को प्राप्त किया था, उसे हमारा बूढ़ा बाप नष्ट कर रहा है, उसने सारा धन शत्रुओं को प्रदान कर दिया ।

वैशम्पायन उवाच

**अथ दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः ।**
**मिथः संगम्य सहिताः पाण्डवान् प्रति मानिनः ।।५।।**
**वैचित्रवीर्यं राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।**
**अभिगम्य त्वरायुक्ताः श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन् ।।६।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—यह सुनकर दुर्योधन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि, जो बड़े ही अभिमानी थे, पाण्डवों से बदला लेने के लिए आपस में मिलकर विचार-विमर्श करने लगे । फिर उन सबने बड़ी उतावली के साथ विचित्रवीर्य-नन्दन मनीषी राजा धृतराष्ट्र के पास जाकर मीठी वाणी में कहा—

दुर्योधन उवाच

**न त्वयेदं श्रुतं राजन् यज्जगाद बृहस्पतिः ।**
**शक्रस्य नीतिं प्रवदन् विद्वान् देवपुरोहितः ।।७।।**

**दुर्योधन बोला**—राजन् ! देवगुरु विद्वान् बृहस्पति ने इन्द्र को नीति का उपदेश करते हुए जो बात कही है, उसे शायद आपने नहीं सुना है ।

**सर्वोपायैर्निहन्तव्याः शत्रवः शत्रुसूदन ।**
**पुरा युद्धाद् बलाद् वापि प्रकुर्वन्ति तवाहितम् ।।८।।**

शत्रुसूदन ! शत्रुओं को सभी उपायों से मार डालना चाहिए, क्योंकि आगे चलकर वे बल से और युद्ध से तुम्हारा अहित ही करेंगे ।

**आत्तशस्त्रा रथगताः कुपितास्तात पाण्डवाः ।**
**निःशेषं वः करिष्यन्ति क्रुद्धा ह्याशीविषा इव ।।९।।**

तात ! अस्त्र-शस्त्रों को लेकर रथ में बैठे हुए पाण्डव कुपित होकर क्रुद्ध विषधर सर्पों की भाँति आपके कुल को नष्ट कर डालेंगे ।

**न क्षंस्यन्ते तथास्माभिर्जातु विप्रकृता हि ते ।**
**द्रौपद्याश्च परिक्लेशं कस्तेषां क्षन्तुमर्हति ।।१०।।**

हमने उनका तिरस्कार किया है, अतः वे हमें कभी क्षमा नहीं करेंगे । द्रौपदी को जो कष्ट दिया गया है, उसे उनमें से कौन चुपचाप सहन कर लेगा ?

**पुनर्दीव्याम भद्रं ते वनवासाय पाण्डवैः ।**
**एवमेतान् वशे कर्तुं शक्ष्यामः पुरुषर्षभ ।।११।।**

पुरुषश्रेष्ठ ! आपका मङ्गल हो ! हम चाहते हैं कि वनवास की शर्त रखकर पाण्डवों के साथ एक बार फिर जुआ खेलें ।

**ते वा द्वादशवर्षाणि वयं वा द्यूतनिर्जिताः ।**
**प्रविशेम महारण्यमजिनैः प्रतिवासिताः ।।१२।।**

जुए में हार जाने पर वे अथवा हम मृगचर्म धारण

करके महान् वन में प्रवेश करें तथा बारह वर्ष तक वन में ही निवास करें।

**त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम्।**
**ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश ॥१३॥**
**निवसेम वयं ते वा तथा द्यूतं प्रवर्तताम्।**
**अक्षानुप्त्वा पुनर्द्यूतमिदं कुर्वन्तु पाण्डवाः ॥१४॥**

तेरहवें वर्ष में लोगों की जानकारी से दूर किसी नगर में रहें। यदि तेरहवें वर्ष किसी की जानकारी में आ जाएँ तो फिर दुबारा बारह वर्ष तक वनों में रहें। हम हारें तो हम ऐसा करें और उनकी हार हो तो वे। इसी शर्त पर पुनः जुए का खेल आरम्भ हो। पाण्डव पासे फेंक कर जुआ खेलें।

**दृढमूला वयं राज्ये मित्राणि परिगृह्य च।**
**सारवद् विपुलं सैन्यं सत्कृत्य च दुरासदम् ॥१५॥**

[हमारी विजय होने पर] हम लोग बहुत-से मित्रों का संग्रह करके बलशाली, दुर्धर्ष एवं विशाल सेना का पुरस्कार आदि द्वारा सत्कार करते हुए इस राज्य पर अपनी जड़ जमा लेंगे।

**ते च त्रयोदशं वर्षं पारयिष्यन्ति चेद् व्रतम्।**
**जेष्यामस्तान् वयं राजन् रोचतां ते परन्तप ॥१६॥**

यदि वे तेरहवें वर्ष के अज्ञातवास की प्रतिज्ञा पूरी कर लेंगे तो हम उन्हें युद्ध में हरा देंगे। शत्रु-संतापक राजन्! आप हमारे इस प्रस्ताव को स्वीकृति (अनुमति) दें।

धृतराष्ट्र उवाच

**तूर्णं प्रत्यानयस्वैतान् कामं व्यध्वगतानपि।**
**आगच्छन्तु पुनर्द्यूतमिदं कुर्वन्तु पाण्डवाः ॥१७॥**

**धृतराष्ट्र ने कहा**—पुत्र! पाण्डव लोग दूर भी चले गये हों, तो भी तुम्हारी इच्छा हो तो उन्हें तुरन्त बुलवा लो। समस्त पाण्डव यहाँ आयें तथा इस नये दाँव पर पुनः जुआ खेलें।

वैशम्पायन उवाच

**ततो द्रोणः सोमदत्तो बाह्लीकश्चैव गौतमः।**
**विदुरो द्रोणपुत्रश्च वैश्यापुत्रश्च वीर्यवान् ॥१८॥**
**भूरिश्रवाः शान्तनवो विकर्णश्च महारथः।**
**मा द्यूतमित्यभाषन्त शमोऽस्त्विति च सर्वशः ॥१९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! उस समय द्रोणाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक, कृपाचार्य, विदुर, अश्वत्थामा, पराक्रमी युयुत्सु, भूरिश्रवा, पितामह भीष्म तथा महारथी विकर्ण सबने एक स्वर से इस निर्णय का विरोध करते हुए कहा—"अब जुआ नहीं होना चाहिए, तभी सर्वत्र शान्ति बनी रह सकती है।"

**अकामानां च सर्वेषां सुहृदामर्थदर्शिनाम्।**
**अकरोत् पाण्डवाह्वानं धृतराष्ट्रः सुतप्रियः ॥२०॥**

भावी अर्थ (अनर्थ) को देखने और समझनेवाले सुहृद् अपनी अनिच्छा प्रकट करते ही रह गये परन्तु दुर्योधनादि पुत्रों के प्रेम में आकर धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को बुलाने का आदेश दे ही दिया।

**अथाब्रवीन्महाराज धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्।**
**पुत्रहार्दाद् धर्मयुक्ता गान्धारी शोककर्शिता ॥२१॥**

महाराज! उस समय भावी अनिष्ट की आशंका से धर्मपरायणा गान्धारी पुत्रस्नेह-वश शोक से सन्तप्त हो उठी तथा राजा धृतराष्ट्र से इस प्रकार बोली—

गान्धार्युवाच

**मा निमज्जीः स्वदोषेण महाप्सु त्वं हि भारत।**
**मा बालानामशिष्टानामभिमंस्था मतिं प्रभो ॥२२॥**

**गान्धारी बोली**—भरतकुलभूषण! आप अपने ही दोष से इस कुल को विपत्ति के महासमुद्र में मत डुबाइए। प्रभो! इन उद्दण्ड बालकों की हाँ-में-हाँ न मिलाइए।

**शास्त्रं न शास्ति दुर्बुद्धिं श्रेयसे चेतराय च।**
**न वै वृद्धो बालमतिर्भवेद् राजन् कथञ्चन ॥२३॥**

राजन्! जिसकी बुद्धि खोटी है, उसे शास्त्र भी अच्छा-बुरा कुछ नहीं सिखा सकता। मन्द-बुद्धि बालक वृद्धों-जैसा विवेकशील किसी प्रकार नहीं हो सकता।

**त्वन्नेत्राः सन्तु ते पुत्रा मा त्वां दीर्णाः प्रहासिषुः।**
**तस्मादयं मद्वचनात् त्यज्यतां कुलपांसनः ॥२४॥**

आप ऐसी चेष्टा कीजिए कि आपके पुत्र आपके ही नियन्त्रण में रहें। ऐसा न हो कि वे सभी मर्यादाओं को त्यागकर प्राणों से हाथ धो बैठें और आपको इस बुढ़ापे में छोड़कर चल बसें। आप मेरी बात मानकर इस कुल-कलंक दुर्योधन को त्याग दें।

वैशम्पायन उवाच

**अथाब्रवीन्महाराजो गान्धारीं धर्मदर्शिनीम् ।**
**अन्तः कामं कुलस्यास्तु न शक्नोमि निवारितुम् ॥२५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—तब महाराज धृतराष्ट्र ने धर्म पर दृष्टि रखनेवाली गान्धारी से कहा—"देवि ! इस कुल का अन्त भले ही हो जाए, परन्तु मैं दुर्योधन को नहीं रोक सकता ।

**यथेच्छन्ति तथैवास्तु प्रत्यागच्छन्तु पाण्डवाः ।**
**पुनर्द्यूतं च कुर्वन्तु मामकाः पाण्डवैः सह ॥२६॥**

"ये सब जैसा चाहते हैं, वैसा ही हो । पाण्डव लौट आएँ तथा मेरे पुत्र उनके साथ पुनः जुआ खेलें ।"

**ततो व्यध्वगतं पार्थं प्रातिकामी युधिष्ठिरम् ।**
**उवाच वचनाद्राज्ञो धृतराष्ट्रस्य धीमतः ॥२७॥**

राजन् ! धर्मराज युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ के मार्ग में बहुत दूर निकल गये थे । उस समय बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा से प्रातिकामी उनके पास गया और इस प्रकार बोला—

**उपास्तीर्णा सभा राजन्नक्षानुप्त्वा युधिष्ठिर ।**
**एहि पाण्डव दीव्येति पिता त्वाऽऽहेति भारत ॥२८॥**

भरतकुलतिलक पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर ! आपके पिता धृतराष्ट्र ने यह आदेश दिया है कि तुम लौट आओ । हमारी सभा पुनः सदस्यों से भर गई है और तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है । तुम पासे फेंककर जुआ खेलो ।

युधिष्ठिर उवाच

**धातुर्नियोगाद् भूतानि प्राप्नुवन्ति शुभाशुभम् ।**
**न निवृत्तिस्तयोरस्ति देवितव्यं पुनर्यदि ॥२९॥**

**युधिष्ठिर बोले**—समस्त प्राणी परमात्मा की प्रेरणा से शुभ और अशुभ फल प्राप्त करते हैं, उन्हें कोई टाल नहीं सकता । जान पड़ता है, मुझे फिर जुआ खेलना पड़ेगा ।

**अक्षद्यूते समाह्वानं नियोगात् स्थविरस्य च ।**
**जानन्नपि क्षयकरं नातिक्रमितुमुत्सहे ॥३०॥**

वृद्ध राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा से जुए के लिए यह बुलावा हमारे कुल के नाश का कारण है, यह जानते हुए भी मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता ।

वैशम्पायन उवाच

**इति ब्रुवन्निववृत्ते भ्रातृभिः सह पाण्डवः ।**
**जानँश्च शकुनेर्मायां पार्थो द्यूतमियात् पुनः ॥३१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—ऐसा कहते हुए पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर भाइयों के साथ पुनः लौट पड़े । वे शकुनि की माया को जानते थे, तो भी जुआ खेलने के लिए चले आये ।

**विविशुस्ते सभां तां तु पुनरेव महारथाः ।**
**व्यथयन्ति स्म चेतांसि सुहृदां भरतर्षभाः ॥३२॥**

महारथी भरतश्रेष्ठ पाण्डव पुनः उस सभा में प्रविष्ट हुए । उन्हें देखकर सुहृदों के मन में बड़ी व्यथा होने लगी ।

शकुनिरुवाच

**अमुञ्चत् स्थविरो यद् वो धनं पूजितमेव तत् ।**
**महाधनं ग्लहं त्वेकं शृणु भो भरतर्षभ ॥३३॥**

**शकुनि बोला**—भरतश्रेष्ठ ! राजन् ! हमारे वृद्ध महाराज ने आपको जो सारा धन लौटा दिया है, वह बहुत अच्छा किया है । अब जुए के लिए एक ही दाँव रखा जाएगा, उसे सुनिए ।

**वयं वा द्वादशाब्दानि युष्माभिर्द्यूतनिर्जिताः ।**
**प्रविशेम महारण्यं रौरवाजिनवाससः ॥३४॥**

यदि आपने हम लोगों को जुए में हरा दिया तो हम मृगचर्म धारण करके बारह वर्ष के लिए महान् वन में प्रवेश करेंगे ।

**त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम् ।**
**ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश ॥३५॥**

और बारह वर्ष वहाँ रहेंगे । तेरहवाँ वर्ष हम जन-समूह में लोगों से अज्ञात रहकर पूरा करेंगे । इस तेरहवें वर्ष में यदि लोगों ने हमें पहचान लिया, तो पुनः बारह वर्ष वन में रहेंगे ।

**अस्माभिर्निर्जिता यूयं वने द्वादश वत्सरान् ।**
**वसध्वं कृष्णया सार्धमजिनैः प्रतिवासिताः ॥३६॥**

यदि हम जीत गये तो आप लोगों को द्रौपदी के साथ बारह वर्षों तक मृग-चर्म धारण करके वन में रहना होगा ।

**त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम् ।**
**ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश ॥३७॥**

आपको भी तेरहवाँ वर्ष जन-समूह में लोगों से अज्ञात रहकर व्यतीत करना होगा और यदि पहचान लिये गये तो फिर बारह वर्ष वन में रहना होगा।

**त्रयोदशे च निर्वृत्ते पुनरेव यथोचितम् ।**
**स्वराज्यं प्रतिपत्तव्यमितरैरथवेतरैः ॥३८॥**

तेरहवाँ वर्ष पूर्ण होने पर हम या आप वन से लौटकर यथोचित रीति से अपना-अपना राज्य प्राप्त कर सकते हैं।

**अनेन व्यवसायेन सहास्माभिर्युधिष्ठिर ।**
**अक्षानुप्त्वा पुनर्द्यूतमेहि दीव्यस्व भारत ॥३९॥**

भरतवंशी युधिष्ठिर! इसी निश्चय के साथ आप आइए और पुनः पासा फेंककर हम लोगों के साथ जुआ खेलिए।

सभ्या ऊचुः

**अहो धिग्बान्धवा नैनं बोधयन्ति महद्भयम् ।**
**बुद्धचा बुध्येन्न वा बुध्येदयं वै भरतर्षभः ॥४०॥**

**सभासद् बोले**—अहो धिक्कार है! ये भाई-बन्धु भी युधिष्ठिर को उनके ऊपर आनेवाले महान् भय की बात नहीं समझाते। पता नहीं, ये भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर अपनी बुद्धि के द्वारा इस भय को समझें या न समझें।

वैशम्पायन उवाच

**जनप्रवादान् सुबहूञ्छृण्वन्नपि नराधिपः ।**
**ह्रिया च धर्मसंयोगात् पार्थो द्यूतमियात् पुनः ॥४१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! लोगों की अनेक प्रकार की बातें सुनते हुए भी राजा युधिष्ठिर लज्जा के कारण तथा धृतराष्ट्र की आज्ञा के पालन-रूप धर्म की दृष्टि से पुनः जुआ खेलने के लिए तैयार हो गये।

**जानन्नपि महाबुद्धिः पुनर्द्यूतमवर्तयत् ।**
**अप्यासन्नो विनाशः स्यात्कुरूणामिति चिन्तयन् ॥४२**

परम बुद्धिमान् युधिष्ठिर जुए का परिणाम जानते थे, तो भी यह सोचकर कि सम्भवतः कुरुकुल का विनाश बहुत निकट है, वे द्यूत-क्रीड़ा में प्रवृत्त हो गये।

युधिष्ठिर उवाच

**कथं वै मद्विधो राजा स्वधर्ममनुपालयन् ।**
**आहूतो विनिवर्तेत दीव्यामि शकुने त्वया ॥४३॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हे शकुनि! स्वधर्म-पालन में तत्पर रहनेवाला मेरे-जैसा राजा जुए के लिए बुलाये जाने पर पीछे कैसे हट सकता है, अतः मैं तुम्हारे साथ खेलता हूँ।

शकुनिरुवाच

**एष नो ग्लह एवैको वनवासाय पाण्डवाः ।**
**यूयं वयं वा विजिता वसेम वनमाश्रिताः ॥४४॥**

**शकुनि बोला**—पाण्डवो! एकमात्र वनवास का निश्चय ही हमारा दाँव है। आप लोग या हम जो भी हारेंगे, उन्हें वन में जाकर रहना होगा।

**त्रयोदशं च वै वर्षमज्ञाता सजने तथा ।**
**अनेन व्यवसायेन दीव्याम पुरुषर्षभाः ॥४५॥**

केवल तेरहवें वर्ष हमें किसी जन-समूह में अज्ञात-भाव से रहना होगा। नर-श्रेष्ठगण! हम इसी निश्चय के साथ जुआ खेलेंगे।

**समुत्क्षेपेण चैकेन वनवासाय भारत ।**
**प्रतिजग्राह तं पार्थो ग्लहं जग्राह सौबलः ।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥४६॥**

भारत! वनवास की शर्त रखकर केवल एक ही बार पासा फेंकने से जुए का खेल पूरा हो जाएगा। युधिष्ठिर ने उसकी बात स्वीकार कर ली। तत्पश्चात् सुबल-पुत्र शकुनि ने पासा हाथ में उठाया और उसे फेंककर युधिष्ठिर से कहा—"मेरी जीत हो गई।"

वैशम्पायन उवाच

**ततः पराजिताः पार्था वनवासाय दीक्षिताः ।**
**अजिनान्युत्तरीयाणि जगृहुश्च यथाक्रमम् ॥४७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन्! तत्पश्चात् जुए में हारे हुए कुन्ती-पुत्रों ने वनवास की दीक्षा ली और सबने क्रमशः मृगचर्म को उत्तरीय वस्त्र के रूप में धारण किया।

**अजिनैः संवृतान् दृष्ट्वा हृतराज्यानरिन्दमान् ।**
**प्रस्थितान् वनवासाय ततो दुःशासनोऽब्रवीत् ॥४८॥**

जिनका राज्य छिन गया था, वे शत्रुदमन पाण्डव जब मृगचर्म से अपने शरीर को ढककर वनवास के लिए प्रस्थित हुए, उस समय दुःशासन ने सभा में उनको लक्ष्य करके कहा—

दुःशासन उवाच

**प्रवृत्तं धार्तराष्ट्रस्य चक्रं राज्ञो महात्मनः ।**
**पराजिताः पाण्डुपुत्रा विपत्तिं परमां गताः ।।४९।।**

**दुःशासन बोला**—धृतराष्ट्र-पुत्र महात्मा राजा दुर्योधन का समस्त भूमण्डल पर एकछत्र राज्य हो गया। पाण्डव पराजित होकर बड़ी भारी विपत्ति में पड़ गये।

**नरकं पातिताः पार्था दीर्घकालमनन्तकम् ।**
**सुखाच्च हीना राज्याच्च विनष्टाः शाश्वतीः समाः ।।**
**धनेन मत्ता ये ते स्म धार्तराष्ट्रान् प्रहासिषुः ।**
**ते निर्जिता हृतधना वनमेष्यन्ति पाण्डवाः ।।५१।।**

कुन्ती के पुत्र दीर्घकाल के लिए अनन्त दुःखरूप नरक में गिरा दिये गये। वे सदा के लिए सुख से वञ्चित तथा राज्य से हीन हो गये हैं। जो लोग पहले अपने धन से उन्मत्त हो धृतराष्ट्र-पुत्रों की हँसी उड़ाया करते थे, वे ही पाण्डव आज पराजित हो अपने धन-वैभव से हाथ धोकर वन में जा रहे हैं।

**सूक्ष्मान्प्रावारानजिनोत्तरीयान्**
**दृष्ट्वा वने निर्धनानप्रतिष्ठान् ।**
**कां त्वं प्रीतिं लप्स्यसे याज्ञसेनि**
**पतिं वृणीष्व यमन्यमिच्छसि ।।५२।।**

द्रौपदि ! जो पाण्डव सुन्दर महीन रेशमी कपड़े पहना करते थे, उन्हीं को वन में निर्धन, अप्रतिष्ठित, और मृगचर्म की चादर ओढ़े देख तुम्हें क्या प्रसन्नता होगी ? अब तुम किसी अन्य पुरुष को, जिसे चाहो, अपना पति चुन लो !

**यथाफलाः षण्ढतिला यथा चर्ममया मृगाः ।**
**तथैव पाण्डवाः सर्वे यथा काकयवा अपि ।।५३।।**

जैसे थोथे तिल बोने पर फल नहीं देते, जैसे केवल चर्ममय मृग व्यर्थ है और जैसे काकयव=भूसी-रहित धान निष्प्रयोजन होते हैं, उसी प्रकार समस्त पाण्डवों का जीवन व्यर्थ हो गया है।

वैशम्पायन उवाच

**तद् वै श्रुत्वा भीमसेनोऽत्यमर्षी**
**निर्भर्त्स्योच्चैः संनिगृह्यैव रोषात् ।**
**उवाच तं सहसैवोपगम्य**
**सिंहो यथा हैमवतः शृगालम् ।।५४।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—यह सब सुनकर भीमसेन अत्यन्त क्रुद्ध हुए। जैसे हिमालय की गुफा में रहने-वाला सिंह गीदड़ के पास जाए, उसी प्रकार वे सहसा दुःशासन के पास जा पहुँचे और रोषपूर्वक उसे रोक-कर जोर-जोर से फटकारते हुए बोले—

भीमसेन उवाच

**क्रूर पापजनैर्जुष्टमकृतार्थं प्रभाषसे ।**
**गान्धारविद्यया हि त्वं राजमध्ये विकत्थसे ।।५५।।**

**भीमसेन बोले**—ओ क्रूर एवं नीच दुःशासन ! तू पापी मनुष्यों द्वारा कही जानेवाली ओछी बातें बक रहा है। अरे ! तू अपने बाहुबल से नहीं, शकुनि की छल-विद्या के प्रभाव से आज राजाओं के मध्य अपने मुँह से अपनी प्रशंसा कर रहा है।

**यथा तुदसि मर्माणि वाक्शरैरिह नो भृशम् ।**
**तथा स्मारयिता तेऽहं कृन्तन् मर्माणि संयुगे ।।५६।।**

जैसे यहाँ तू अपने वचनरूपी बाणों से हमारे मर्म-स्थानों में अत्यन्त पीड़ा पहुँचा रहा है, वैसे ही जब युद्ध में मैं तेरा हृदय विदीर्ण करने लगूँगा, उस समय तेरी कही हुई इन बातों का स्मरण कराऊँगा।

**ये च त्वामनुवर्तन्ते क्रोधलोभवशानुगाः ।**
**गोप्तारः सानुबन्धांस्तान् नेतास्मि यमसादनम् ।।५७।।**

जो लोग क्रोध और लोभ के वशीभूत हो, तुम्हारे रक्षक बनकर तुम्हारे पीछे-पीछे चलते हैं, उन्हें उनके सम्बन्धियोंसहित यमलोक भेज दूँगा।

वैशम्पायन उवाच

**एवं ब्रुवाणमजिनं वसानं**
**दुःशासनस्तं परिनृत्यति स्म ।**
**मध्ये स्थितो धर्मनिबद्धमार्गं**
**गौगौरिति प्राह विमुक्तलज्जः ।।५८।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! मृगचर्म धारण किये भीमसेन को ऐसी बातें करते देख निर्लज्ज दुःशासन कौरवों के मध्य में उनकी हँसी उड़ाते हुए नाचने लगा और 'ओ बैल, ओ बैल !' कहकर उन्हें पुकारने लगा। उस समय भीम का मार्ग धर्मराज युधिष्ठिर ने रोक रखा था [अन्यथा वे दुःशासन को जीता न छोड़ते]।

भीमसेन उवाच

**नृशंस परुषं वक्तुं शक्यं दुःशासन त्वया ।**
**निकृत्या हि धनं लब्ध्वा को विकत्थितुमर्हति ।।५६।।**

**भीमसेन बोले**—अरे नृशंस दुःशासन ! तेरे ही मुख से ऐसी कठोर बातें निकल सकती हैं। तेरे सिवा दूसरा कौन है, जो छल-कपट से प्राप्त धन को पाकर इस प्रकार आप ही अपनी प्रशंसा करेगा ?

**मैव स्म सुकृताँल्लोकान् गच्छेत्पार्थो वृकोदरः ।**
**यदि वक्षो हि ते भित्वा न पिबेच्छोणितं रणे ।।६०।।**

मेरी बात सुन ले ! यह कुन्तीपुत्र भीमसेन यदि युद्ध में तेरी छाती फाड़कर तेरा रक्त न पीए तो इसे पुण्य-लोकों की प्राप्ति न हो ।

**धार्तराष्ट्रान् रणे हत्वा मिषतां सर्वधन्विनाम् ।**
**शमं गन्तास्मि नचिरात् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।।६१।।**

मैं तुझसे सत्य बात कह रहा हूँ—शीघ्र ही वह समय आनेवाला है, जबकि समस्त धनुर्धरों के देखते-देखते मैं युद्ध में धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों का वध करके शान्ति प्राप्त करूँगा ।

वैशम्पायन उवाच

**ततो नृपः सिंहगतेः सखेलं**
**दुर्योधनो पाण्डुसुतस्य हर्षात् ।**
**गतिं स्वगत्यानुचकार मन्दो**
**निर्गच्छतां पाण्डवानां सभायाः ।।६२।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! जब पाण्डव लोग सभा-भवन से निकले, उस समय मन्द-बुद्धि राजा दुर्योधन हर्ष में भरकर सिंह के समान मस्तानी चाल से चलनेवाले भीमसेन की खिल्ली उड़ाते हुए उनकी चाल की नकल करने लगा ।

**नैतावता कृतमित्यब्रवीत् तं**
**वृकोदरः संनिवृत्तार्धकायः ।**
**शीघ्रं हि त्वां निहतं सानुबन्धं**
**संस्मार्याहं प्रतिवक्ष्यामि मूढ ।।६३**

यह देख भीमसेन ने अपने आधे शरीर को पीछे की ओर मोड़कर कहा—अरे मूढ़ ! केवल दुःशासन के रक्तपान द्वारा ही मेरा कार्य पूर्ण नहीं होगा। तुझे भी सम्बन्धियोंसहित मौत के घाट उतार कर तेरे इस परिहास का स्मरण कराते हुए इसका समुचित उत्तर दूँगा ।

**एवं समीक्ष्यात्मनि चावमानं**
**नियम्य मन्युं बलवान् स मानी ।**
**राजानुगः संसदि कौरवाणां**
**विनिष्क्रामन् वाक्यमुवाच भीमः ।।६४।।**

इस प्रकार अपना अपमान होता देख शक्तिशाली तथा स्वाभिमानी भीमसेन ने क्रोध को किसी प्रकार रोककर राजा युधिष्ठिर के पीछे कौरव-सभा से निकलते हुए इस प्रकार कहा—

भीमसेन उवाच

**अहं दुर्योधनं हन्ता कर्णं हन्ता धनञ्जयः ।**
**शकुनिं चाक्षकितवं सहदेवो हनिष्यति ।।६५।।**

**भीमसेन ने कहा**—मैं दुर्योधन का वध करूँगा, अर्जुन कर्ण का संहार करेंगे तथा इस जुएबाज़ शकुनि को सहदेव मार डालेगा ।

**इदं च भूयो वक्ष्यामि सभामध्ये बृहद् वचः ।**
**सत्यं देवाः करिष्यन्ति यन्नो युद्धं भविष्यति ।।६६।।**
**सुयोधनमिमं पापं हन्तास्मि गदया युधि ।**
**शिरः पादेन चास्याहमधिष्ठास्यामि भूतले ।।६७।।**

साथ ही इस भरी-सभा में मैं पुनः एक बहुत बड़ी बात कह रहा हूँ—मुझे विश्वास है कि देवता लोग भी मेरी यह बात सत्य करके दिखाएँगे—जब हम पाण्डवों और कौरवों में युद्ध होगा, उस समय इस पापी दुर्योधन को मैं गदा से मार गिराऊँगा तथा रण-भूमि में पड़े हुए इस पापी के मस्तक को पैर से ठुकराऊँगा ।

**वाक्यशूरस्य चैवास्य परुषस्य दुरात्मनः ।**
**दुःशासनस्य रुधिरं पातास्मि मृगराडिव ।।६८।।**

तथा यह जो केवल बात बनाने में शूर क्रूर-स्वभाववाला दुरात्मा दुःशासन है, इसकी छाती का खून उसी प्रकार पी लूँगा, जैसे सिंह मृग का रक्त-पान करता है ।

अर्जुन उवाच

**अर्जुनः प्रतिजानीते भीमस्य प्रियकाम्यया ।**
**कर्णं कर्णानुगांश्चैव रणे हन्तास्मि पत्रिभिः ।।६९।।**

**अर्जुन बोले**—अपने भाई भीमसेन का प्रिय करने की इच्छा से अर्जुन यह प्रतिज्ञा करता है कि "मैं युद्ध

में कर्ण और उसके अनुगामियों को बाणों द्वारा मार डालूँगा।"

**ये चान्ये प्रतियोत्स्यन्ति बुद्धिमोहेन मां नृपाः।**
**तांश्च सर्वानहं बाणैर्नेतास्मि यमसादनम् ॥७०॥**

दूसरे भी जो नरेश बुद्धि के व्यामोह-वश हमारे विपक्ष में होकर युद्ध करेंगे, उन सबको अपने तीक्ष्ण सायकों द्वारा यमलोक पठा दूँगा।

**चलेद्धि हिमवान्स्थानान्निष्प्रभः स्याद् दिवाकरः।□**
**शैत्यं सोमात् प्रणश्येत मत्सत्यं न चलिष्यति ॥७१॥**

चाहे हिमालय पर्वत अपने स्थान से हट जाए, सूर्य की प्रभा नष्ट हो जाए और चन्द्रमा से उसकी शीतलता दूर हो जाए—किन्तु मेरा यह सत्य-कथन नहीं टल सकता।

**न प्रदास्यति चेद् राज्यमितो वर्षे चतुर्दशे।**
**दुर्योधनो हि सत्कृत्य सत्यमेतद् भविष्यति ॥७२॥**

यदि आज से चौदहवें वर्ष में दुर्योधन सत्कार-पूर्वक हमारा राज्य हमें वापस नहीं देगा, तो ये सब बातें सत्य होकर रहेंगी।

सहदेव उवाच

**हन्तास्मि तरसा युद्धे त्वामेवेह सबान्धवम्।**
**यदि स्थास्यसि संग्रामे क्षात्रधर्मेण सौबल ॥७३॥**

**सहदेव बोला**—सुबलकुमार! यदि तू क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्ध में डटा रहेगा, तो मैं वेगपूर्वक तुझे तेरे बन्धु-बान्धवोंसहित मौत के घाट उतारूँगा।

नकुल उवाच

**सुतेयं यज्ञसेनस्य द्यूतेऽस्मिन् धृतराष्ट्रजैः।**
**यैर्वाचः श्राविता रूक्षाः स्थितैर्दुर्योधनप्रिये ॥७४॥**
**तान् धार्तराष्ट्रान् दुर्वृत्तान् मुमूर्षून् कालप्रेरितान्।**
**गमयिष्यामि भूयिष्ठानहं वैवस्वतक्षयम् ॥७५॥**

**नकुल बोले**—दुर्योधन के प्रिय-साधन में लगे हुए जिन धृतराष्ट्र-पुत्रों ने इस द्यूतसभा में द्रुपदकुमारी कृष्णा को कठोर वचन कहे हैं, काल से प्रेरित हो मृत्यु के मुख में जाने की इच्छा रखनेवाले उन दुराचारी बहुसंख्यक धृतराष्ट्र के पुत्रों को मैं यमलोक का अतिथि बना दूँगा।

**निदेशाद् धर्मराजस्य द्रौपद्याः पदवीं चरन्।**
**निर्धार्तराष्ट्रां पृथिवीं कर्तास्मि नचिरादिव ॥७६॥**

धर्मराज की आज्ञा से द्रौपदी का प्रिय करते हुए मैं सम्पूर्ण पृथिवी को धृतराष्ट्र के पुत्रों से सूनी कर दूँगा, इसमें बहुत देर नहीं है।

वैशम्पायन उवाच

**एवं ते पुरुषव्याघ्राः सर्वे व्यायतबाहवः।**
**प्रतिज्ञा बहुलाः कृत्वा धृतराष्ट्रमुपागमन् ॥७७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन्! इस प्रकार वे सभी पुरुषसिंह महाबाहु पाण्डव बहुत-सी प्रतिज्ञाएँ करके राजा धृतराष्ट्र के पास गये।

**इति महाभारते सभापर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥**

## अष्टादशोऽध्यायः

### युधिष्ठिर का धृतराष्ट्र आदि से विदा लेकर वन की ओर प्रस्थान करना; नगरवासियों का शोकातुर होना और वन-गमन के समय पाण्डवों की चेष्टाएँ

युधिष्ठिर उवाच

आमन्त्रयामि भरतांस्तथा वृद्धं पितामहम्।
राजानं सोमदत्तं च महाराजं च बाह्लिकम् ॥१॥
द्रोणं कृपं नृपांश्चान्यानश्वत्थामानमेव च।
विदुरं धृतराष्ट्रं च धार्तराष्ट्रांश्च सर्वशः ॥२॥
युयुत्सुं संजयं चैव तथैवान्यान् सभासदः।
सर्वानामन्त्र्य गच्छामि द्रष्टास्मि पुनरेत्य वः ॥३॥

**युधिष्ठिर बोले**—मैं भरतवंश के सभी गुरुजनों से वन में जाने की आज्ञा चाहता हूँ। वृद्ध पितामह भीष्म, राजा सोमदत्त, महाराज बाह्लिक, गुरुवर द्रोण और कृपाचार्य, अश्वत्थामा, अन्यान्य नृपतिगण, विदुर, राजा धृतराष्ट्र, उनके सभी पुत्र, युयुत्सु, संजय और अन्य सब सदस्यों की आज्ञा लेकर मैं वन में जाता हूँ, पुनः लौटकर आप लोगों का दर्शन करूँगा।

वैशम्पायन उवाच

**न च किञ्चिदथोचुस्तं ह्रिया सन्तो युधिष्ठिरम् ।**
**मनोभिरेव कल्याणं दध्युस्ते तस्य धीमतः ॥४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! युधिष्ठिर के इस प्रकार पूछने पर सब कौरव लज्जा के मारे मौन रह गये, वे कुछ भी उत्तर न दे सके। उन्होंने मन-ही-मन उन बुद्धिमान् युधिष्ठिर के कल्याण की कामना की।

विदुर उवाच

**आर्या पृथा राजपुत्री नारण्यं गन्तुमर्हति ।**
**सुकुमारी च वृद्धा च नित्यं चैव सुखोचिता ॥५॥**
**इह वत्स्यति कल्याणी सत्कृता मम वेश्मनि ।**
**इति पार्था विजानीध्वमगदं वोऽस्तु सर्वशः ॥६॥**

**विदुर बोले**—कुन्तीकुमारो ! राज-पुत्री आर्या कुन्ती वन में जाने के योग्य नहीं हैं। वे कोमल अङ्गों-वाली और वृद्धा हैं, सदा सुख और आराम के ही योग्य हैं, अतः वे मेरे गृह पर ही सत्कारपूर्वक रहेंगी। यह बात तुम सबलोग जान लो। मेरी शुभकामना है, तुम वन में सर्वथा नीरोग एवं सुखी रहो।

पाण्डवा ऊचुः

**यथाऽऽज्ञापयसे विद्वँस्त्वं हि नः परमो गुरुः ।**
**यच्चान्यदपि कर्तव्यं तद् विधत्स्व महामते ॥७॥**

**पाण्डवों ने कहा**—विद्वन् ! आप जैसी आज्ञा दें, वही हमें मान्य है, क्योंकि आप हमारे परम गुरु हैं। महामते ! इसके अतिरिक्त और भी जो हमारा कर्तव्य हो, वह हमें बताइए।

विदुर उवाच

**युधिष्ठिर विजानीहि ममेदं भरतर्षभ ।**
**नाधर्मेण जितः कश्चिद् व्यथते वै पराजये ॥८॥**

**विदुर बोले**—भरतकुलश्रेष्ठ ! तुम मेरी यह शिक्षा गाँठ बाँध लो कि अधर्म से पराजित होनेवाला कोई भी पुरुष अपनी उस पराजय के लिए दुःखी नहीं होता।

**त्वं वै धर्मान्विजानीषे युधां जेता धनञ्जयः ।**
**हन्तारीणां भीमसेनो नकुलस्त्वर्थसंग्रही ॥९॥**
**संयन्ता सहदेवस्तु धौम्यो ब्रह्मविदुत्तमः ।**
**धर्मार्थकुशला चैव द्रौपदी धर्मचारिणी ॥१०॥**

तुम धर्मों के ज्ञाता हो। अर्जुन युद्धों में विजय पानेवाले हैं। भीम शत्रुओं का नाश करने में समर्थ हैं। नकुल आवश्यक वस्तुओं के जुटाने में कुशल हैं। सहदेव संयमी हैं, ब्रह्मर्षि धौम्यजी ब्रह्मवेत्ताओं के शिरोमणि हैं और धर्मपरायणा द्रौपदी धर्म और अर्थ के सम्पादन में कुशल है।

**अन्योन्यस्य प्रियाः सर्वे तथैव प्रियदर्शनाः ।**
**परैरभेद्याः सन्तुष्टाः को वो न स्पृहयेदिह ॥११॥**

तुम सब लोग आपस में एक-दूसरे के प्रिय हो। तुम्हें देखकर सबको प्रसन्नता होती है। शत्रु तुम में फूट नहीं डाल सकते। इस संसार में कौन है जो तुम लोगों को न चाहता हो ?

**मा हासीः साम्पराये त्वं बुद्धिं तामृषिपूजिताम् ।**
**ऐन्द्रे जये धृतमना याम्ये कोपविधारणे ॥१२॥**
**तथा विसर्गे कौबेरे वारुणे चैव संयमे ।**
**आत्मप्रदानं सौम्यत्वमद्भ्यश्चैवोपजीवनम् ॥१३॥**
**भूमेः क्षमा च तेजश्च समग्रं सूर्यमण्डलात् ।**
**वायोर्बलं प्राप्नुहि त्वं भूतेभ्यश्चात्मसम्पदम् ॥१४॥**

ऋषियों द्वारा सम्मानित परलोक-विषयक ज्ञान का तुम कभी त्याग मत करना। हे युधिष्ठिर ! तुम इन्द्र से मन में विजय का उत्साह प्राप्त करो। क्रोध को वश में रखने का पाठ यमराज से सीखो। उदारता एवं दान में कुबेर का और संयम में वरुण का आदर्श ग्रहण करो। दूसरों के हित=परोपकार के लिए अपने आपको न्यौछावर करना, सौम्यभाव [नम्रता और शीतलता] तथा दूसरों को जीवन-दान देना—इन सब बातों की शिक्षा तुम्हें जल से लेनी चाहिए। तुम भूमि से क्षमा, सूर्य-मण्डल से तेज, वायु से बल तथा सम्पूर्ण भूतों से अपनी सम्पत्ति प्राप्त करो।

**अगदं वोऽस्तु भद्रं वो द्रष्टास्मि पुनरागतान् ।**
**आपद्धमार्थकृच्छ्रेषु सर्वकार्येषु वा पुनः ॥१५॥**
**यथावत् प्रतिपद्येथाः काले काले युधिष्ठिर ।**
**आपृष्टोऽसीह कौन्तेय स्वस्ति प्राप्नुहि भारत ॥१६॥**

तुम सदा स्वस्थ रहो, तुम्हें कोई रोग न हो ! तुम्हारा सदा कल्याण ही हो। कुशलतापूर्वक वन से लौटने पर मैं फिर तुम्हारे प्रिय दर्शन करूँगा। युधिष्ठिर ! आपत्ति-काल में, धर्म तथा अर्थ का

संकट उपस्थित होने पर अथवा सभी कार्यों में तुम समय-समय पर अपने उचित कर्त्तव्य का पालन करना। कुन्तीनन्दन ! भारत ! तुमसे आवश्यक बातें कर लीं। तुम्हें सम्पूर्ण मङ्गल की प्राप्ति हो !

**कृतार्थं स्वस्तिमन्तं त्वां द्रक्ष्यामः पुनरागतम् ।**
**न हि वो वृजिनं किञ्चिद् वेद कश्चित् पुराकृतम् ॥१७**

जब तुम वन से कुशलतापूर्वक कृतार्थ होकर लौटोगे, तब यहाँ आने पर फिर हम सब तुमसे मिलेंगे। युधिष्ठिर ! तुम्हारे पहले के किसी दोष को दूसरा कोई न जाने, इसका ध्यान रखना।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा पाण्डवः सत्यविक्रमः ।**
**भीष्मद्रोणौ नमस्कृत्य प्रातिष्ठत युधिष्ठिरः ॥१८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! विदुर के ऐसा कहने पर सत्यपराक्रमी पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर भीष्म और द्रोण को नमस्कार करके वहाँ से प्रस्थित हुए।

**तस्मिन् सम्प्रस्थिते कृष्णा पृथां प्राप्य यशस्विनीम् ।**
**अपृच्छद् भृशदुःखार्ता याश्चान्यास्तत्र योषितः ॥१९॥**

युधिष्ठिर के प्रस्थान करने पर द्रौपदी ने यशस्विनी कुन्ती के पास जाकर अत्यन्त दुःख से आतुर हो वन में जाने की आज्ञा माँगी। वहाँ जो अन्य स्त्रियाँ बैठी थीं, उनसे भी आज्ञा ली।

**कुन्ती च भृशसन्तप्ता द्रौपदीं प्रेक्ष्य गच्छतीम् ।**
**शोकविह्वलया वाचा कृच्छ्राद् वचनमब्रवीत् ॥२०॥**

द्रौपदी को जाती देख कुन्ती अत्यन्त सन्तप्त हो उठीं तथा शोकाकुल वाणी में बड़ी कठिनाई से इस प्रकार बोलीं—

कुन्त्युवाच

**वत्से शोको न ते कार्यः प्राप्येदं व्यसनं महत् ।**
**स्त्रीधर्माणामभिज्ञासि शीलाचारवती तथा ॥२१॥**

**कुन्ती बोली**—पुत्री ! इस महान् संकट में पड़कर भी तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। तुम नारी-धर्म को जानती हो तथा शील एवं सदाचार का पालन करनेवाली हो।

**न त्वां सन्देष्टुमर्हामि र्पात प्रति शुचिस्मिते। □**
**साध्वीगुणसमापन्ना भूषितं ते कुलद्वयम् ॥२२॥**

पवित्र मुस्कानवाली वधू ! इसीलिए पति के प्रति तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है, यह तुम्हें बताने की आवश्यकता मैं नहीं समझती। तुम सती-साध्वी नारियों के सद्‌गुणों से सुभूषित हो, तुमने पति और पिता दोनों के कुलों की शोभा बढ़ाई है।

**सभाग्याः कुरवश्चेमे ये न दग्धास्त्वयानघे ।**
**अरिष्टं व्रज पन्थानं मदनुध्यानबृंहिता ॥२३॥**

निष्पाप द्रौपदी ! ये कौरव बड़े सौभाग्यशाली हैं, जिन्हें तूने अपनी क्रोधाग्नि से जलाकर भस्म नहीं कर दिया। जाओ, तुम्हारा मार्ग विघ्न-बाधाओं से रहित हो, मेरे किये हुए शुभ-चिन्तन से तुम्हारा अभ्युदय हो।

वैशम्पायन उवाच

**तथेत्युक्त्वा तु सा देवी स्रवन्नेत्रजलाविला ।**
**शोणिताक्तैकवसना मुक्तकेशी विनिर्ययौ ॥२४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—कुन्ती के ऐसा कहने पर आँखों से आँसू बहाती हुई द्रौपदी ने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। उस समय उसके शरीर पर एक ही वस्त्र था, उसका भी कुछ भाग रज से सना हुआ था तथा उसके सिर के बाल बिखरे हुए थे। उसी दशा में वह अन्तःपुर से बाहर निकली।

**तां क्रोशन्तीं पृथा दुःखादनुवव्राज गच्छतीम् ।**
**अथापश्यत् सुतान् सर्वान् हृताभरणवाससः ॥२५॥**

रोती-बिलखती वन को जाती हुई द्रौपदी के पीछे-पीछे कुन्ती भी दुःख से व्याकुल हो कुछ दूर तक गईं। इतने में ही उन्होंने अपने सब पुत्रों को देखा, जिनके वस्त्र और आभूषण उतार लिये गये थे।

**रुरुचर्मावृततनून् ह्रिया किंचिदवाङ्मुखान् ।**
**परैः परीतान् संहृष्टैः सुहृद्भिश्चानुशोचितान् ॥२६॥**

उनके सभी अङ्ग मृगचर्म से ढके हुए थे। लज्जा के कारण वे नीचे मुख किये चले जा रहे थे। हर्ष में भरे हुए शत्रुओं ने उन्हें सब ओर से घेर रखा था तथा हितैषी सुहृद् उनके लिए शोक कर रहे थे।

**तदवस्थान् सुतान् सर्वानुपसृत्यातिवत्सला ।**
**स्वजमानावदच्छोकात् तत्तद् विलपती बहु ॥२७॥**

उस दशा में उन सभी पुत्रों के निकट पहुँचकर कुन्ती के हृदय में अत्यन्त वात्सल्य उमड़ आया। वे

उन्हें हृदय से लगाकर शोक-वश अत्यधिक विलाप करती हुई बोलीं—

कुन्त्युवाच

**कथं सद्धर्मचारित्रान् वृत्तस्थितिविभूषितान्।**
**अक्षुद्रान् दृढभक्तांश्च दैवतेज्यापरान् सदा ॥२८॥**
**व्यसनं वः समभ्यागात् कोऽयं विधिविपर्ययः।**
**कस्यापध्यानजं चेदं धिया पश्यामि नैव तत् ॥२९॥**

**कुन्ती बोली**—'पुत्रो ! तुम उत्तम धर्म का पालन करनेवाले तथा सदाचार की मर्यादा से समलंकृत हो। तुममें क्षुद्रता का लेश भी नहीं है। तुम परमात्मा के दृढ़ भक्त और देवयज्ञ करने में सदा तत्पर रहनेवाले हो, तो भी तुम्हारे ऊपर यह विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है। विधाता का यह कैसा विपरीत विधान है ? किसके अनिष्ट-चिन्तन से तुम्हारे ऊपर यह महान् दुःख आया है। इस विषय में बुद्धि से बार-बार विचार करने पर भी मुझे कुछ नहीं सूझ पड़ता।

**स्यात्तु मद्भाग्यदोषोऽयं याहं युष्मानजीजनम्।**
**दुःखायासभुजोऽत्यर्थं युक्तानप्युत्तमैर्गुणैः ॥३०॥**

यह सब मेरे ही भाग्य का दोष हो सकता है। तुम तो उत्तम गुणों से युक्त हो, तो भी अत्यन्त दुःख और कष्ट भोगने के लिए ही मैंने तुम्हें जन्म दिया है।

**कथं वत्स्यथ दुर्गेषु वने ऋद्धि विनाकृताः।**
**वीर्यसत्त्वबलोत्साहतेजोभिरकृशाः कृशाः ॥३१॥**

इस प्रकार सम्पत्ति से वंचित होकर तुम वन के दुर्गम स्थानों में कैसे रह सकोगे ? वीर्य, धैर्य, बल, उत्साह और तेज से परिपुष्ट होते हुए भी तुम दुर्बल बने रहोगे।

**पुत्रका न विहास्ये वः कृच्छ्रलब्धान् प्रियान् सतः।**
**साहं यास्यामि हि वनं हा कृष्णे किं जहासि माम् ॥३२**

पुत्रो ! तुम सदाचारी और मेरे लिए प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। मैंने बड़े कष्ट से तुम्हें प्राप्त किया है, अतः तुम्हें छोड़कर मैं अलग नहीं रहूँगी। मैं भी तुम्हारे साथ वन में चलूंगी। हा कृष्णे ! तुम मुझे क्यों छोड़े जाती हो ?

**अन्तवत्यसुधर्मेऽस्मिन् धात्रा किं नु प्रमादतः।**
**ममान्तो नैव विहितस्तेनायुर्न जहाति माम् ॥३३॥**

यह प्राण-धारणरूपी धर्म अनित्य है, एक-न-एक दिन इसका अन्त होना निश्चित है, फिर भी विधाता ने न जाने क्यों प्रमाद-वश मेरे जीवन का भी शीघ्र ही अन्त नहीं नियत कर दिया। तभी तो आयु मुझे छोड़ नहीं रही है।

वैशम्पायन उवाच

**एवं विलपन्तीं कुन्तीमभिवाद्य प्रणम्य च।**
**पाण्डवा विगतानन्दा वनायैव प्रवव्रजुः ॥३४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—इस प्रकार विलाप करती हुई माता कुन्ती को अभिवादन तथा प्रणाम करके पाण्डव लोग दुःखी हो वन को चले गये।

**विदुरश्चापि तामार्तां कुन्तीमाश्वास्य हेतुभिः।**
**प्रावेशयद् गृहं क्षत्ता स्वयमार्ततरः शनैः ॥३५॥**

विदुरजी शोक से व्याकुल कुन्ती को अनेक प्रकार की युक्तियों द्वारा धीरज बँधाकर धीरे-धीरे अपने घर ले आये। उस समय वे स्वयं भी अतिदुःखी थे।

**राजा च धृतराष्ट्रस्तु पुत्राणामनयं तदा।**
**ध्यायन्नुद्विग्नहृदयो न शान्तिमधिजग्मिवान् ॥३६॥**

उधर अपने पुत्रों के अन्याय का चिन्तन करके राजा धृतराष्ट्र का हृदय भी उद्विग्न हो उठा। उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिलती थी।

**स चिन्तयन्ननेकाग्रः शोकव्याकुलचेतनः।**
**क्षत्तुः सम्प्रेषयामास शीघ्रमागम्यतामिति ॥३७॥**

चिन्ता में पड़े-पड़े उनकी एकाग्रता नष्ट हो गई। उनका चित्त शोक से व्याकुल हो रहा था। उन्होंने विदुर के पास सन्देश भेजा कि तुम शीघ्र मेरे पास चले आओ।

**ततो जगाम विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम्।**
**तं पर्यपृच्छत् संविग्नो धृतराष्ट्रो जनाधिपः ॥३८॥**

तब विदुर राजा धृतराष्ट्र के महल में गये। उस समय महाराज धृतराष्ट्र ने अत्यन्त उद्विग्न होकर उनसे पूछा—

धृतराष्ट्र उवाच

**कथं गच्छति कौन्तेयो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।**
**भीमसेनः सव्यसाची माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥३९॥**
**धौम्यश्च कथं क्षत्तर्द्रौपदी च यशस्विनी।**
**श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वं तेषां शंस विचेष्टितम् ॥४०॥**

**धृतराष्ट्र ने पूछा**—विदुर ! कुन्तीनन्दन धर्मपुत्र युधिष्ठिर किस प्रकार जा रहे हैं ? भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव—ये चारों पाण्डव भी किस प्रकार यात्रा करते हैं ? पुरोहित धौम्य और यशस्विनी द्रौपदी भी कैसे जा रही है ? मैं उन सबकी पृथक्-पृथक् चेष्टाओं को सुनना चाहता हूँ, तुम मुझे सुनाओ ।

विदुर उवाच

**वस्त्रेण संवृत्य मुखं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।**
**बाहू विशालौ सम्पश्यन् भीमो गच्छति पाण्डवः ॥४१**

**विदुर ने कहा**—कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर वस्त्र से मुँह ढँककर जा रहे हैं । पाण्डुकुमार भीमसेन अपनी विशाल भुजाओं की ओर देखते हुए जा रहे हैं ।

**सिकता वपन् सव्यसाची राजानमनुगच्छति ।**
**माद्रीपुत्रः सहदेवो मुखमालिप्य गच्छति ॥४२॥**

सव्यसाची अर्जुन बालू-रेत बिखेरते हुए राजा युधिष्ठिर के पीछे-पीछे जा रहे हैं । माद्री-पुत्र सहदेव अपने मुँह पर मिट्टी पोतकर जा रहे हैं ।

**पांसूपलिप्तसर्वाङ्गो नकुलश्चित्तविह्वलः ।**
**दर्शनीयतमो लोके राजानमनुगच्छति ॥४३॥**

लोक में अति दर्शनीय, मनोहर रूपवाले नकुल अपने सब अङ्गों में धूल लपेटकर व्याकुल-चित्त हो राजा युधिष्ठिर का अनुसरण कर रहे हैं ।

**कृष्णा तु केशैः प्रच्छाद्य मुखमायतलोचना ।**
**दर्शनीया प्ररुदती राजानमनुगच्छति ॥४४॥**

परम सुन्दरी विशाललोचना (बड़ी-बड़ी आँखों-वाली) कृष्णा अपने केशों से ही मुँह ढँककर रोती हुई राजा के पीछे-पीछे जा रही है ।

**धौम्यो रौद्राणि सामानि याम्यानि च विशाम्पते ।**
**गायन् गच्छति मार्गेषु कुशानादाय पाणिना ॥४५॥**

महाराज ! पुरोहित धौम्यजी हाथ में कुशा लेकर रुद्र तथा यम देवता-सम्बन्धी साम-मन्त्रों का गान करते हुए आगे-आगे मार्ग पर चल रहे हैं ।

धृतराष्ट्र उवाच

**विविधानीह रूपाणि कृत्वा गच्छन्ति पाण्डवाः ।**
**तन्ममाचक्ष्व विदुर कस्मादेवं व्रजन्ति ते ॥४६**

**धृतराष्ट्र ने पूछा**—हे विदुर ! पाण्डव लोग जो विविध प्रकार की चेष्टाएँ करते हुए यात्रा कर रहे हैं, उसका क्या रहस्य है, यह मुझे बताओ ! वे इस प्रकार क्यों जा रहे हैं ?

विदुर उवाच

**योऽसौ राजा घृणी नित्यं धार्तराष्ट्रेषु भारत ।**
**निकृत्या भ्रंशितः क्रोधान्नोन्मीलयति लोचने ॥४७॥**

**विदुर बोले**—हे भारत ! राजा युधिष्ठिर आपके पुत्रों पर सदा दया-भाव बनाये रखते थे, परन्तु इन्होंने छलपूर्वक जुए का आश्रय लेकर उन्हें राज्य से वंचित किया है, इससे उनके मन में बड़ा क्रोध है, और इसी-लिए वे अपनी आँखों को नहीं खोलते हैं ।

**नाहं जनं निर्दहेयं दृष्ट्वा घोरेण चक्षुषा ।**
**स पिधाय मुखं राजा तस्माद् गच्छति पाण्डवः ॥४८**

"मैं अपनी भयंकर=रौद्र दृष्टि से देखकर किसी निरपराध मनुष्य को भस्म न कर डालूँ"—इसी भय से पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर अपना मुँह ढँककर जा रहे हैं ।

**बाह्वोर्बले नास्ति समो ममेति भरतर्षभ ।**
**बाहू विशालौ कृत्वासौ तेन भीमोऽपि गच्छति ॥४९॥**
**बाहू विदर्शयन् राजन् बाहुद्रविणदर्पितः ।**
**चिकीर्षन् कर्म शत्रुभ्यो बाहुद्रव्यानुरूपतः ॥५०॥**

भरतश्रेष्ठ ! भीमसेन को इस बात का अभिमान है कि बाहुबल में मेरे समान दूसरा कोई नहीं है, इसीलिए वे अपनी विशाल भुजाओं की ओर देखते हुए यात्रा कर रहे हैं । राजन् ! अपने बाहुबल-रूपी वैभव पर उन्हें गर्व है, अतः वे अपनी दोनों भुजाएँ दिखाते हुए शत्रुओं से बदला लेने के लिए अपने बाहुबल के अनुरूप ही पराक्रम प्रकट करना चाहते हैं ।

**प्रदिशञ्छरसम्पातान् कुन्तीपुत्रोऽर्जुनस्तदा ।**
**सिकता वपन् सव्यसाची राजानमनुगच्छति ॥५१॥**
**असक्ताः सिकतास्तस्य यथा सम्प्रति भारत ।**
**असक्तं शरवर्षाणि तथा मोक्ष्यति शत्रुषु ॥५२॥**

कुन्ती-पुत्र सव्यसाची अर्जुन इस समय राजा के पीछे-पीछे जो बालू बिखेरते हुए यात्रा कर रहे हैं, उसके द्वारा वे शत्रुओं पर बाण बरसाने की इच्छा प्रकट करते हैं । हे भारत ! इस समय उनके गिराये

हुए बालू के कण जैसे आपस में संसक्त न होते हुए लगातार गिरते हैं, उसी प्रकार वे शत्रुओं पर परस्पर संसक्त न होनेवाले असंख्य बाणों की वर्षा करेंगे।

**न मे कश्चिद् विजानीयान्मुखमद्येति भारत।**
**मुखमालिप्य तेनासौ सहदेवोऽपि गच्छति ॥५३॥**

हे भारत! "आज इस दुर्दिन में कोई मेरे मुख को पहचान न ले"—यही सोचकर सहदेव अपने मुख पर मिट्टी पोतकर जा रहे हैं।

**नाहं मनांस्याददेयं मार्गे स्त्रीणामिति प्रभो।**
**पांसूपलिप्तसर्वाङ्गो नकुलस्तेन गच्छति ॥५४॥**

प्रभो! "मार्ग में मैं स्त्रियों का चित्त न चुरा लूँ"—इस भय से नकुल अपने सारे अङ्गों में धूल लगाकर यात्रा कर रहे हैं।

**एकवस्त्रा प्ररुदती मुक्तकेशी रजस्वला।**
**शोणितेनाक्तवसना द्रौपदी वाक्यमब्रवीत् ॥५५॥**

द्रौपदी के शरीर पर एक ही वस्त्र था, उसके बाल खुले हुए थे, वह रजस्वला थी तथा उसके कपड़ों में रक्त का दाग लगा हुआ था। उसने रोते हुए कहा था—

**यत्कृतेऽहमिमां प्राप्ता तेषां वर्षे चतुर्दशे।**
**हतापत्यो हतसुता हतबन्धुजनप्रियाः ॥५६॥**
**बहुशोणितदिग्धाङ्ग्यो मुक्तकेश्यो रजस्वलाः।**
**एवं कृतोदका भार्याः प्रवेक्ष्यन्ति गजाह्वयम् ॥५७॥**

"जिनके अन्याय से आज मैं इस अवस्था को पहुँची हूँ, आज से चौदहवें वर्ष में उनकी स्त्रियाँ भी अपने पति, पुत्र तथा बन्धु-बान्धवों के मारे जाने से उनकी लाशों के पास लोट-लोटकर रोएँगी और अपने अङ्गों में रक्त तथा धूल लपेटे, बाल खोले हुए, अपने सगे-सम्बन्धियों को तिलाञ्जलि दे इसी प्रकार हस्तिनापुर में प्रवेश करेंगी।"

**कृत्वा तु नैर्ऋतान् दर्भान् धीरो धौम्यः पुरोहितः।**
**सामानि गायन् याम्यानि पुरतो याति भारत ॥५८॥**

हे भारत! धीर स्वभाववाले पुरोहित धौम्यजी कुशों का अग्रभाग नैर्ऋत्यकोण की ओर करके यमदेवता-सम्बन्धी सामवेदीय मन्त्रों का गान करते हुए पाण्डवों के आगे-आगे जा रहे हैं।

**हतेषु भारतेष्वाजौ कुरुणां गुरवस्तदा।**
**एवं सामानि गास्यन्तीत्युक्त्वा धौम्योऽपि गच्छति ॥**

इस प्रकार जाते हुए धौम्यजी यह सूचित कर रहे थे कि युद्ध में कौरवों के मारे जाने पर उनके गुरु भी कभी इसी प्रकार साम-गान करेंगे।

**एवमाकारलिङ्गैस्ते व्यवसायं मनोगतम्।**
**कथयन्तश्च कौन्तेया वनं जग्मुर्मनस्विनः ॥६०॥**

महाराज! इस प्रकार मनस्वी कुन्तीपुत्र अपनी आकृति एवं चिह्नों द्वारा अपने आन्तरिक निश्चय को प्रकट करते हुए वन को गये हैं।

**इति महाभारते सभापर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥**

# एकोनविंशोऽध्यायः

## धृतराष्ट्र की चिन्ता और उनका संजय के साथ वार्तालाप

वैशम्पायन उवाच

**वनं गतेषु पार्थेषु निर्जितेषु दुरोदरे।**
**धृतराष्ट्रं महाराज तदा चिन्ता समाविशत् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—महाराज! जब पाण्डव जुए में हारकर वन में चले गये, तब राजा धृतराष्ट्र को बड़ी चिन्ता हुई।

**तं चिन्तयन्तमासीनं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्।**
**निःश्वसन्तमनेकाग्रमिति होवाच सञ्जयः ॥२॥**

महाराज धृतराष्ट्र को लम्बी साँसें खींचते और उद्विग्न-चित्त होकर चिन्ता में डूबे हुए देख, संजय ने इस प्रकार कहा—

संजय उवाच

**अवाप्य वसुसम्पूर्णां वसुधां वसुधाधिप।**
**प्रव्राज्य पाण्डवान् राज्याद् राजन् किमनुशोचसि ॥३॥**

**सञ्जय बोले**—पृथिवीनाथ! धन-रत्नों से परिपूर्ण सम्पूर्ण वसुधा का राज्य पाकर और पाण्डवों को अपने देश से निर्वासित करके अब आप शोक-मग्न क्यों हो रहे हैं?

धृतराष्ट्र उवाच

**अशोच्यत्वं कुतस्तेषां येषां वैरं भविष्यति ।**
**पाण्डवैर्युद्धशौण्डैर्हि बलवद्भिर्महारथैः ॥४॥**

**धृतराष्ट्र ने कहा**—युद्ध-कुशल, बलवान् और महारथी पाण्डवों से जिन लोगों का वैर होगा, वे शोक-मग्न हुए बिना कैसे रह सकते हैं ?

संजय उवाच

**तवेदं स्वकृतं राजन् महद् वैरमुपस्थितम् ।**
**विनाशो येन लोकस्य सानुबन्धो भविष्यति ॥५॥**

**सञ्जय ने कहा**—राजन् ! यह आपकी अपनी ही की हुई करतूत है, जिससे यह महान् वैर उपस्थित हुआ है तथा इसी के कारण सारे संसार का सगे-सम्बन्धियोंसहित विनाश हो जाएगा ।

**यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् । □**
**बुद्धि तस्यापकर्षन्ति सोऽपाचीनानि पश्यति ॥६॥**
**बुद्धौ कलुषितायाञ्च विनाशे समुपस्थिते । □**
**अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ॥७॥**

देवता लोग जिस पुरुष को पराजय देना चाहते हैं, सबसे पूर्व उसकी बुद्धि का अपहरण कर लेते हैं, परिणामस्वरूप वह सब-कुछ उलटा ही देखने लगता है । विनाशकाल के उपस्थित होने पर जब बुद्धि मलिन हो जाती है, उस समय अन्याय ही न्याय के समान जान पड़ता है और वह हृदय से किसी प्रकार नहीं निकलता ।

**अनर्थाश्चार्थरूपेण अर्थाश्चानर्थरूपिणः ।**
**उत्तिष्ठन्ति विनाशाय नूनं तच्चास्य रोचते ॥८॥**

उस समय उस पुरुष के विनाश के लिए अनर्थ अर्थ-रूप से तथा अर्थ अनर्थ-रूप से उपस्थित होते हैं और निश्चय ही अर्थ-रूप में आया हुआ अनर्थ ही उसे अच्छा लगता है ।

**न कालो दण्डमुद्यम्य शिरः कृन्तति कस्यचित् ।**
**कालस्य बलमेतावद् विपरीतार्थ-दर्शनम् ॥९॥**

काल=मृत्यु डण्डा या तलवार लेकर किसी का सिर नहीं काटता । काल की शक्ति इतनी ही है कि वह प्रत्येक वस्तु के विषय में मनुष्य की बुद्धि को विपरीत कर देता है ।

**आसादितमिदं घोरं तुमुलं लोमहर्षणम् ।**
**पाञ्चालीमपकर्षद्भिः सभामध्ये तपस्विनीम् ॥१०॥**

तपस्विनी पाञ्चाल राजकुमारी द्रौपदी को भरी सभा में खींचकर लानेवाले दुष्टों ने भयंकर तथा लोम-हर्षक (रोंगटे खड़े कर देनेवाले) घमासान युद्ध की सम्भावना उत्पन्न कर दी है ।

**तस्य ते शम एवास्तु पाण्डवैर्भरतर्षभ ।**
**एवं कृते महाराज परं श्रेयस्त्वमाप्स्यसि ॥११॥**

भरतवंशशिरोमणे ! पाण्डवों के साथ आपको शान्ति ही बनाये रखनी चाहिए । महाराज ! ऐसा करने पर ही आप परम कल्याण के भागी होंगे ।

**इति महाभारते सभापर्वणि एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥**

**इति सभापर्व सम्पूर्णम् ॥२॥**

# वनपर्व

## प्रथमोऽध्यायः

### पाण्डवों का ब्राह्मणों के साथ वन-गमन

वैशम्पायन उवाच

**एवं द्यूतजिताः पार्थाः कोपिताश्च दुरात्मभिः ।**
**धार्तराष्ट्रैः सहामात्यैर्निर्ययुर्गजसाह्वयात् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन् ! इस प्रकार मन्त्रियोंसहित दुष्टात्मा धृतराष्ट्र-पुत्रों द्वारा जुए में पराजित करके क्रुद्ध किये हुए कुन्ती-पुत्र हस्तिनापुर से बाहर निकले ।

**वर्धमानपुरद्वारादभिनिष्क्रम्य पाण्डवाः ।**
**उदङ्मुखाः शस्त्रभृतः प्रययुः सह कृष्णया ॥२॥**

वर्धमानपुर की दिशा में स्थित नगर-द्वार से निकलकर शस्त्रधारी पाण्डवों ने द्रौपदी के साथ उत्तराभिमुख होकर यात्रा आरम्भ की ।

**गतानेतान्विदित्वा तु पौराः शोकाभिपीडिताः ।**
**ऊचुर्विगतसन्त्रासाः समागम्य परस्परम् ॥३॥**

पाण्डवों के वनवास का अशुभ समाचार पाकर हस्तिनापुर के निवासी शोक-पीड़ित एवं भयरहित हो, एक-दूसरे से मिलकर इस प्रकार कहने लगे—

पौरा ऊचुः

**नेदमस्ति कुलं सर्वं न वयं न च नो गृहाः ।**
**यत्र दुर्योधनः पापो राज्यमेतच्चिकीर्षति ॥४॥**

**पुरवासी बोले**—अहो ! हमारा यह समस्त कुल, हम और हमारे घर अब सुरक्षित नहीं हैं, क्योंकि पापी दुर्योधन इस राज्य का शासन करना चाहता है ।

**दुर्योधनो गुरुद्वेषी त्यक्ताचारसुहृज्जनः ।**
**अर्थलुब्धोऽभिमानी च नीचः प्रकृतिनिर्घृणः ॥५॥**

दुर्योधन गुरुजनों से द्वेष करनेवाला, अर्थ-लोलुप, अभिमानी, नीच और स्वभाव से ही निर्दय है ।

**नेयमस्ति मही कृत्स्ना यत्र दुर्योधनो नृपः ।**
**साधु गच्छामहे सर्वे यत्र गच्छन्ति पाण्डवाः ॥६॥**

जहाँ दुर्योधन राजा है, वहाँ की सारी पृथिवी नहीं के बराबर है, अतः अच्छा यही है कि हम सब लोग वहीं चलें, जहाँ पाण्डव जा रहे हैं ।

**सानुक्रोशा महात्मानो विजितेन्द्रियशत्रवः ।**
**ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च धर्माचारपरायणाः ॥७॥**

पाण्डवगण दयालु, महात्मा, जितेन्द्रिय, शत्रु-विजयी, लज्जाशील, यशस्वी, धर्मात्मा और सदाचार-परायण हैं ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वानुजग्मुस्ते पाण्डवाँस्तान् समेत्य च ।**
**ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे कौन्तेयान् माद्रिनन्दनान् ॥८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—ऐसा कहकर वे पुरवासी पाण्डवों के पास गये और उन कुन्ती तथा माद्रीपुत्रों से मिलकर, वे सबके सब हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले—

**क्व गमिष्यथ भद्रं वस्त्यक्त्वास्मान्दुःखभागिनः ।**
**वयमप्यनुयास्यामो यत्र यूयं गमिष्यथ ॥९॥**

हे पाण्डवो ! आपका कल्याण हो । आप हम सब दुःखी लोगों को छोड़कर कहाँ जा रहे हैं ? जहाँ आप जाएँगे, वहीं हम भी आपके साथ चलेंगे ।

**श्रूयतां चाभिधास्यामो गुणदोषान् नरर्षभाः ।**
**शुभाशुभाधिवासेन संसर्गः कुरुते यथा ॥१०॥**

नरश्रेष्ठ पाण्डवो! शुभ एवं अशुभ आश्रय में रहने पर वहाँ का संसर्ग मनुष्यों में जैसे गुण-दोषों की सृष्टि करता है, हम उनका वर्णन करते हैं, आप सुनिए !

**वस्त्रमापस्तिलान् भूमिं गन्धो वासयते यथा ।**
**पुष्पाणामधिवासेन तथा संसर्गजा गुणाः ॥११॥**

जैसे फूलों के संसर्ग में रहने पर उनकी सुगन्ध वस्त्र, जल, तिल और भूमि को सुवासित कर देती है, उसी प्रकार संसर्ग-जनित गुण भी अपना प्रभाव डालते हैं ।

**मोहजालस्य योनिर्हि मूढैरेव समागमः ।**
**अहन्यहनि धर्मस्य योनिः साधुसमागमः ॥१२॥**

मूढ़ मनुष्यों के साथ मेल-जोल मोह-जाल की उत्पत्ति का कारण होता है और साधु-सन्तों का सङ्ग प्रतिदिन धर्म की प्राप्ति करानेवाला है ।

**तस्मात्प्राज्ञैश्च वृद्धैश्च सुस्वभावैस्तपस्विभिः ।**
**सद्भिश्च सह संसर्गः कार्यः शमपरायणैः ॥१३॥**

अतः मनुष्य को विद्वानों, वृद्धपुरुषों, उत्तम स्वभाव वाले शान्तिपरायण, तपस्वी सत्पुरुषों का ही सत्सङ्ग करना चाहिए ।

**येषां त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च ।**
**ते सेव्यास्तैः समास्या हि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी ।१४**

जिन पुरुषों के विद्या, जन्म और कर्म—ये तीनों श्रेष्ठ हों, उनका सेवन करना चाहिए, क्योंकि उन महापुरुषों के साथ बैठना शास्त्रों के स्वाध्याय से भी बढ़कर है ।

**असतां दर्शनात् स्पर्शात्सञ्जल्पाच्च सहासनात् ।**
**धर्माचाराः प्रहीयन्ते सिद्ध्यन्ति च न मानवाः ॥१५॥**

दुष्ट मनुष्यों के दर्शन, स्पर्श, उनके साथ वार्तालाप अथवा उठने-बैठने से धार्मिक आचारों की हानि होती है, अतः वैसे मनुष्यों को कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होती ।

**बुद्धिश्च हीयते पुंसां नीचैः सह समागमात् ।**
**मध्यमैर्मध्यतां याति श्रेष्ठतां याति चोत्तमैः ॥१६॥**

नीच पुरुषों का सङ्ग करने से मनुष्यों की बुद्धि नष्ट होती है । मध्यम श्रेणी के मनुष्यों का सङ्ग करने से मध्यम तथा उत्तम पुरुषों का सङ्ग करने से बुद्धि उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होती है ।

**ये गुणाः कीर्तिता लोके ते युष्मासु व्यवस्थिताः ।**
**इच्छामो गुणवन्मध्ये वस्तुं श्रेयोऽभिकांक्षिणः ॥१७॥**

संसार में जो उत्तम गुण बताये गये हैं, वे सभी सद्गुण आप लोगों में विद्यमान हैं, अतः हम लोग कल्याण की इच्छा से आप-जैसे गुणवानों के मध्य में रहना चाहते हैं ।

युधिष्ठिर उवाच

**धन्या वयं यदस्माकं स्नेहकारुण्ययन्त्रिताः ।**
**असतोऽपि गुणानाहुर्ब्राह्मणप्रमुखाः प्रजाः ॥१८॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हम लोग धन्य हैं, क्योंकि ब्राह्मण आदि प्रजावर्ग के लोग हमारे प्रति स्नेह और करुणा के पाश में बँधकर, जो गुण हम में नहीं हैं, उन्हें भी हममें बता रहे हैं ।

**तदहं भ्रातृसहितः सर्वान् विज्ञापयामि वः ।**
**नान्यथा तद्धि कर्तव्यमस्मत्स्नेहानुकम्पया ॥१९॥**

परन्तु भाइयोंसहित मैं आप लोगों से कुछ निवेदन करता हूँ । आप लोग हमपर स्नेह और कृपा करके उसके पालन से मुख न मोड़ें ।

**भीष्मः पितामहो राजा विदुरो जननी च मे ।**
**सुहृज्जनश्च प्रायो मे नगरे नागसाह्वये ॥२०॥**

[आप लोगों को यह विदित ही है कि] हमारे पितामह भीष्म, राजा धृतराष्ट्र, विदुरजी, मेरी माता तथा प्रायः अन्य बन्धु-बान्धव भी हस्तिनापुर में ही हैं ।

**ते त्वस्मद्धितकामार्थं पालनीयाः प्रयत्नतः ।**
**युष्माभिः सहिताः सर्वे शोकसन्तापविह्वलाः ॥२१॥**

वे सब लोग आप लोगों के साथ ही शोक और सन्ताप से व्याकुल हैं, अतः आप लोग हमारे हित की इच्छा रखकर उन सबका यत्नपूर्वक पालन करें ।

**निवर्ततागता दूरं समागमनशापिताः ।**
**स्वजने न्यासभूते मे कार्या स्नेहान्विता मतिः ॥२२॥**

आप लोग बहुत दूर चले आये हैं, अब लौट जाइए । मैं अपनी शपथ दिलाकर अनुरोध करता हूँ कि आप लोग मेरे साथ न चलें । मेरे स्वजन आपके पास धरोहर के रूप में हैं, उनके प्रति आप लोगों के हृदय में स्नेहभाव रहना चाहिए ।

वैशम्पायन उवाच

**तथानुमन्त्रितास्तेन धर्मराजेन ताः प्रजाः ।**
**चक्रुरार्तस्वरं घोरं हा राजन्निति संहताः ॥२३॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—जनमेजय ! धर्मराज द्वारा

इस प्रकार विनयपूर्वक अनुरोध किये जाने पर उन समस्त प्रजाओं ने 'हा ! महाराज !' ऐसा कहकर एक साथ भयंकर आर्तनाद किया।

**गुणान् पार्थस्य संस्मृत्य दुःखार्ता परमातुराः।**
**अकामाः संन्यवर्तन्त समागम्याथ पाण्डवान् ॥२४॥**

कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के गुणों का स्मरण करके प्रजा दुःख से पीड़ित और अत्यन्त आतुर हो गई। उनकी पाण्डवों के साथ जाने की इच्छा पूर्ण न हो सकी। वे केवल उनसे मिलकर लौट आये।

**निवृत्तेषु तु पौरेषु रथानास्थाय पाण्डवाः।**
**आजग्मुर्जाह्नवीतीरे प्रमाणाख्यं महावटम् ॥२५॥**

पुरवासियों के लौट जाने पर पाण्डव बन्धु रथों पर बैठकर गङ्गा के किनारे प्रमाणकोटि नामक महान् वटवृक्ष के समीप आये।

**ते तं दिवसशेषेण वटं गत्वा तु पाण्डवाः।**
**ऊषुस्तां रजनीं वीराः संस्पृश्य सलिलं शुचि ॥२६॥**

सन्ध्या होते-होते उस वट के निकट पहुँचकर शूरवीर पाण्डवों ने पवित्र जल का स्पर्श—आचमन और सन्ध्या-वन्दन आदि करके वह रात्रि वहीं व्यतीत की।

**उदकेनैव तां रात्रिमूषुस्ते दुःखकर्षिताः।**
**अनुजग्मुश्च तत्रैतान् स्नेहात्केचिद् द्विजातयः ॥२७॥**

दुःख से पीड़ित हुए वे पाँचों पाण्डुपुत्र उस रात में केवल जल पीकर ही रह गये। कुछ ब्राह्मणलोग भी इन पाण्डवों के साथ स्नेहवश वहाँ तक चले आये थे।

**प्रभातायां तु शर्वर्यां तेषामक्लिष्टकर्मणाम्।**
**वनं यियासतां विप्रास्तस्थुर्भिक्षाभुजोऽग्रतः ॥२८॥**

जब रात बीती और प्रभात का उदय हुआ, तब महापराक्रमी पाण्डवों को वन की ओर जाने के लिए उद्यत देख कुछ भिक्षान्नभोजी ब्राह्मण साथ चलने के लिए उनके सामने आकर खड़े हो गये।

**तानुवाच ततो राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।**
**वयं हि हृतसर्वस्वा हृतराज्या हृतश्रियः ॥२९॥**
**फलमूलाशनाहारा वनं यास्याम दुःखिताः।**
**वनं च दोषबहुलं बहुव्यालसरीसृपम् ॥३०॥**

तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने उनसे कहा—"ब्राह्मणो ! हमारा राज्य, लक्ष्मी और सर्वस्व जुए में छीन लिया गया है। हम फल, मूल तथा कन्दाहार का निश्चय करके दुःखी होकर वन में जा रहे हैं। वन में बहुत-से दोष हैं। वहाँ सर्प-बिच्छू आदि अनेक भयंकर जन्तु हैं।

**परिक्लेशश्च वो मन्ये ध्रुवं तत्र भविष्यति।**
**ब्राह्मणानां परिक्लेशो दैवतान्यपि सादयेत्।**
**किं पुनर्मामितो विप्रा निवर्तध्वं यथेष्टतः ॥३१॥**

"मेरे विचार में वहाँ आप लोगों को अवश्य ही महान् कष्ट का सामना करना पड़ेगा। ब्राह्मणों को दिया हुआ क्लेश तो देवताओं का भी विनाश कर सकता है, फिर मेरी तो बात ही क्या है ? अतः हे ब्राह्मणो ! आप यहाँ से अपने अभीष्ट स्थान को लौट जाइए।

ब्राह्मणा ऊचुः

**गतिर्या भवतां राजँस्तां वयं गन्तुमुद्यताः।**
**नार्हस्यस्मान् परित्यक्तुं भक्तान् सद्धर्मदर्शिनः ॥३२॥**

**ब्राह्मणों ने कहा**—हे राजन् ! आपकी जो गति होगी, उसे भुगतने के लिए हम भी उद्यत हैं। हम आपके भक्त और श्रेष्ठधर्म पर दृष्टि रखनेवाले हैं, अतः हमारा परित्याग मत कीजिए।

युधिष्ठिर उवाच

**ममापि परमा भक्तिर्ब्राह्मणेषु सदा द्विजाः।**
**सहायविपरिभ्रंशस्त्वयं सादयतीव माम् ॥३३॥**
**आहरेयुरिमे येऽपि फलमूलमधूनि च।**
**त इमे शोकजैर्दुःखैर्भ्रातरो मे विमोहिताः ॥३४॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हे विप्रगण ! मेरे हृदय में भी ब्राह्मणों के प्रति अत्यन्त श्रद्धा है, किन्तु सब प्रकार के सहायक साधनों का अभाव ही मुझे दुःखमग्न किये दे रहा है। जो फल, मूल, शहद आदि पदार्थ जुटाकर ला सकते थे, वे ही मेरे भाई शोकजनित दुःख से मोहित हो रहे हैं।

**द्रौपद्या विप्रकर्षेण राज्यापहरणेन च।**
**दुःखार्दितानिमान् क्लेशैर्नाहं योक्तुमिहोत्सहे ॥३५॥**

द्रौपदी के अपमान तथा राज्य के अपहरण के कारण ये दुःख से पीड़ित हो रहे हैं, अतः मैं इन्हें

[आहार-संग्रह का आदेश देकर] अधिक क्लेश में नहीं डालना चाहता।

ब्राह्मणा ऊचुः

**अस्मत्पोषणजा चिन्ता मा भूत्ते हृदि पार्थिव।**
**स्वयमाहृत्य चान्नानि त्वानुयास्यामहे वयम् ॥३६॥**

**ब्राह्मण बोले**—हे पृथिवीनाथ! आपके हृदय में हमारे पालन-पोषण की चिन्ता नहीं होनी चाहिए। हम स्वयं ही अपने लिए अन्नादि की व्यवस्था करके आपके साथ चलेंगे।

**अनुध्यानेन जप्येन विधास्यामः शिवं तव।**
**कथाभिश्चाभिरम्याभिः सह रंस्यामहे वयम् ॥३७॥**

हम आपके अभीष्ट-चिन्तन और जप के द्वारा आपका कल्याण करेंगे तथा आपको सुन्दर-सुन्दर कथाएँ सुनाकर आपके साथ प्रसन्नतापूर्वक वन में विचरेंगे।

वैशम्पायन उवाच

**ततः कृतस्वस्त्ययना धौम्येन सह पाण्डवाः।**
**द्विजसंघैः परिवृताः प्रययुः काम्यकं वनम् ॥३८॥**

ब्राह्मणों के ऐसा कहने पर पाण्डव स्वस्तिवाचन कराकर ब्राह्मण-समुदाय से घिरे हुए, धौम्यजी के साथ काम्यक वन को चले गये।

**इति महाभारते वनपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥१॥**

# द्वितीयोऽध्यायः

## काम्यक वन में श्रीकृष्ण का पाण्डवों को आश्वासन

वैशम्पायन उवाच

**भोजाः प्रव्रजितान् श्रुत्वा वृष्णयश्चान्धकैः सह।**
**पाण्डवान् दुःखसंतप्तान् समाजग्मुर्महावने ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! जब भोज, वृष्णि और अन्धक-वंश के वीरों ने सुना कि पाण्डव दुःख से सन्तप्त हो राजधानी से निकलकर चले गये, तब वे उनसे मिलने के लिए विशाल वन में आये।

**पाञ्चालस्य च दायादो धृष्टकेतुश्च चेदिपः।**
**केकयाश्च महावीर्या भ्रातरो लोकविश्रुताः ॥२॥**
**वने द्रष्टुं ययुः पार्थान् क्रोधामर्षसमन्विताः।**
**गर्हयन्तो धार्तराष्ट्रान् किं कुर्म इति चाब्रुवन् ॥३॥**

पाञ्चाल राजकुमार धृष्टद्युम्न, चेदिराज धृष्टकेतु तथा महापराक्रमी लोकविख्यात केकय राजकुमार सभी भाई क्रोध और अमर्ष में भरकर धृतराष्ट्र-पुत्रों की निन्दा करते हुए कुन्तीपुत्रों से मिलने के लिए वन में गये और आपस में इस प्रकार कहने लगे—"अब हमें क्या करना चाहिए?"

**वासुदेवं पुरस्कृत्य सर्वे ते क्षत्रियर्षभाः।**
**परिवार्योपविविशुर्धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥४॥**

श्रीकृष्ण को आगे करके वे सभी क्षत्रियशिरोमणि धर्मराज युधिष्ठिर को चारों ओर से घेरकर बैठ गये। तब—

वासुदेव उवाच

**दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्च दुरात्मनः।**
**दुःशासनचतुर्थानां भूमिः पास्यति शोणितम् ॥५॥**

**श्रीकृष्ण ने कहा**—हे राजाओ! जान पड़ता है, यह पृथिवी दुर्योधन, कर्ण, दुरात्मा शकुनि और चौथे दुःशासन—इन सबके रक्त का पान करेगी।

**एतान् निहत्य समरे ये च तेषां पदानुगाः।**
**ततः सर्वेऽभिषिञ्चामो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥६॥**

युद्ध में इनको और इनके अनुयायी सेवकों और राजाओं को मारकर हम सब लोग धर्मराज युधिष्ठिर को पुनः चक्रवर्ती सम्राट् के पद पर अभिषिक्त करें।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्ते तु वचने केशवेन महात्मना।**
**पाञ्चाली पुण्डरीकाक्षमभिगम्याब्रवीत् रुषा ॥७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—महात्मा कृष्ण के ऐसा कहने पर क्रुद्ध हुई पाञ्चाल राजकुमारी द्रौपदी श्रीकृष्ण के पास जाकर उनसे बोली—

द्रौपद्युवाच

**धर्मराज्ञः कथं भार्या तव कृष्ण सखी विभो।□**
**धृष्टद्युम्नस्य भगिनी सभां कृष्येत मादृशी ॥८॥**

**द्रौपदी ने कहा**—महात्मन् कृष्ण! मुझ जैसी स्त्री जो धर्मराज युधिष्ठिर की पत्नी, आपकी सखी और

धृष्टद्युम्न जैसे वीर की बहिन हो, क्या उसके केश पकड़कर सभा में घसीटा जा सकता है ?

**चतुर्भिः कारणैः कृष्ण त्वया रक्ष्यास्मि नित्यशः । □**
**सम्बन्धात् गौरवात् सख्यात् प्रभुत्वेनैव केशव ॥६॥**

श्रीकृष्ण ! चार कारणों से आपको सदा मेरी रक्षा करनी चाहिए । एक तो आप मेरे सम्बन्धी हैं, दूसरे मैं गौरवशालिनी हूँ, तीसरे आपकी सच्ची सखी हूँ और चौथे आप मेरी रक्षा करने में समर्थ हैं ।

वासुदेव उवाच

**यत्समर्थं पाण्डवानां तत्करिष्यामि मा शुचः ।**
**सत्यं ते प्रतिजानामि राज्ञां राज्ञी भविष्यसि ॥१०॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—बहिन ! पाण्डवों के हित के लिए जो कुछ भी सम्भव है, मैं वह सब करूँगा, तुम शोक मत करो । मैं सत्य प्रतिज्ञापूर्वक कह रहा हूँ कि तुम राजरानी बनोगी ।

**पतेद् द्यौर्हिमवाञ्छीर्येत् पृथिवी शकली भवेत् ।**
**शुष्येत् तोयनिधिः कृष्णे न मे मोघं वचो भवेत् ॥११॥**

हे कृष्णे ! चाहे आसमान फट पड़े, हिमालयपर्वत विदीर्ण हो जाए, पृथिवी के टुकड़े-टुकड़े हो जाएँ और समुद्र सूख जाए, परन्तु मेरी यह बात झूठी नहीं हो सकती ।

**नैतत् कृच्छ्रमनुप्राप्तो भवान् स्याद् वसुधाधिप ।**
**यद्यहं द्वारकायां स्यां राजन् सन्निहितः पुरा ॥१२॥**
**आगच्छेयमहं द्यूतमनाहूतोऽपि कौरवैः ।**
**वारयेयमहं द्यूतं बहून् दोषान् प्रदर्शयन् ॥१३॥**

[द्रौपदी से ऐसा कह श्रीकृष्ण पुनः युधिष्ठिर से बोले] हे राजन् ! यदि मैं पहले द्वारका में या उसके निकट होता तो आप इस भारी संकट में नहीं पड़ते । मैं कौरवों के बिना बुलाये भी उस द्यूत-सभा में जाता और जुए के अनेक दोष दिखाकर उसे रोकने की पूरी चेष्टा करता ।[1]

**स्त्रियोऽक्षा मृगया पानमेतत् कामसमुत्थितम् । □**
**दुःखं चतुष्टयं प्रोक्तं यैर्नरो भ्रश्यते श्रियः ॥१४॥**

स्त्रियों के प्रति आसक्ति, जुआ खेलना, शिकार खेलने का शौक और मद्यपान—ये चार प्रकार के काम-जनित भोग दुःखरूप हैं । इनके कारण ही मनुष्य अपने धनैश्वर्य से भ्रष्ट हो जाता है ।

**न चेत् स मम राजेन्द्र गृह्णीयान्मधुरं वचः ।**
**पथ्यं च भरतश्रेष्ठ निगृह्णीयां बलेन तम् ॥१५॥**

राजेन्द्र ! भरतश्रेष्ठ ! यदि वह (दुर्योधन) मेरा मधुर और हितकारी वचन सुनकर भी उसे न मानता तो मैं उसे बलपूर्वक रोक देता ।

**अथैनमपनीतेन सुहृदो नाम दुर्हृदः ।**
**सभासदोऽनुवर्तेरँस्तांश्च हन्यां दुरोदरान् ॥१६॥**

यदि वहाँ मित्र नामधारी शत्रु अन्याय का आश्रय लेकर धृतराष्ट्र का साथ देते, तो मैं उन सभासद् जुआरियों को भी मार डालता ।

**असांनिध्यं तु कौरव्य ममानर्तेष्वभूत् तदा ।**
**येनेदं व्यसनं प्राप्ता भवन्तो द्यूतकारितम् ॥१७॥**

कुरुश्रेष्ठ ! मैं उन दिनों आनर्त देश में था ही नहीं, इसीलिए आप लोगों पर यह द्यूत-जनित संकट आ गया ।

**सोऽहमेत्य कुरुश्रेष्ठ द्वारकां पाण्डुनन्दन ।**
**अश्रौषं त्वां व्यसनिनं युयुधानाद् यथातथम् ॥१८॥**

कुरुश्रेष्ठ पाण्डुनन्दन ! जब मैं द्वारका में आया, तब सात्यकि से आपके संकट में पड़ने का यथावत् वृत्तान्त सुना ।

**श्रुत्वैव चाहं राजेन्द्र परमोद्विग्नमानसः ।**
**तूर्णमभ्यागतोऽस्मि त्वां द्रष्टुकामो विशाम्पते ॥१९॥**

हे नरनाथ ! राजेन्द्र ! यह समाचार सुनते ही मेरा मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठा और मैं तुरन्त ही आपसे मिलने के लिए चला आया ।

---

१. कौरव सभा में द्रौपदी का चीर नहीं खींचा गया था, यह बात इस स्थल से स्पष्ट है । श्रीकृष्णजी कह रहे हैं कि जिस समय जुआ खेला जा रहा था, मैं द्वारका में नहीं था ।

श्रीकृष्णजी आप्त पुरुष थे । आप्त किसे कहते हैं ? महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'आप्त' शब्द की परिभाषा इस प्रकार की है—

"जो यथार्थ वक्ता, धर्मात्मा, सबके सुख के लिए प्रयत्न करता है, उसी को 'आप्त' कहता हूँ ।"

—सत्यार्थप्रकाश, स्वमन्यव्यामन्तव्य

श्रीकृष्णजी कहते हैं कि मैं द्वारका में नहीं था और भक्तों ने साड़ी बढ़ाने की कल्पना कर डाली । श्रीकृष्णजी तो झूठ नहीं बोल सकते, अतः निश्चय ही उनके भक्त झूठ बोल रहे हैं ।

**अहो कृच्छ्रमनुप्राप्ताः सर्वे स्म भरतर्षभ।**
**अद्याहं किं करिष्यामि भिन्नसेतुरिवोदकम् ॥२०॥**

अहो! भरतकुलभूषण! आप सब लोग बड़ी कठिनाई में पड़ गये हैं। जैसे बाँध टूट जाने पर पानी को कोई नहीं रोक सकता, उसी प्रकार जब सब-कुछ बिगड़ गया है, तब मैं क्या कर सकता हूँ?

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वा महाबाहुः कौरवं पुरुषोत्तमः।**
**आमन्त्र्य प्रययौ श्रीमान् पाण्डवान् मधुसूदनः ॥२१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! ऐसा कह-कर पुरुषश्रेष्ठ महाबाहु श्रीकृष्ण कुरुनन्दन-युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर द्वारका की ओर चले।

**ततः प्रयाते दाशार्हे धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः।**
**द्रौपदेयानुपादाय प्रययौ स्वपुरं तदा ॥२२॥**

श्रीकृष्ण के चले जाने पर द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने भी द्रौपदीपुत्रों को साथ ले अपनी राजधानी की ओर प्रस्थान किया।

**धृष्टकेतुः स्वसारं समादायाथ चेदिराट्।**
**जगाम पाण्डवान्दृष्ट्वा रम्यां शुक्तिमतीं पुरीम् ॥२३॥**

चेदिराज धृष्टकेतु भी अपनी बहिन करेणुमती को, जो नकुल की भार्या थी, साथ लेकर पाण्डवों से मिल-जुलकर अपनी सुरम्य राजधानी शुक्तिमती पुरी को चले गये।

**केकयाश्चाप्यनुज्ञाताः कौन्तेयेनामितौजसा।**
**आमन्त्र्य पाण्डवान् सर्वान् प्रययुस्तेऽपि भारत ॥२४॥**

हे भारत! केकय राजकुमार भी अमित तेजस्वी कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर की आज्ञा पा समस्त पाण्डवों से विदा लेकर अपने नगर को चले गये।

**इति महाभारते वनपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥**

# तृतीयोऽध्यायः

## पाण्डवों का द्वैत वन में प्रवेश, दल्भपुत्र बक द्वारा ब्राह्मणों का महत्त्व-कथन

वैशम्पायन उवाच

**ततस्तेषु प्रयातेषु कौन्तेयः सत्यसङ्गरः।**
**अभ्यभाषत धर्मात्मा भ्रातॄन् सर्वान् युधिष्ठिरः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—श्रीकृष्ण आदि के चले जाने पर सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्मात्मा कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने अपने सब भाइयों से कहा—

**द्वादशेमानि वर्षाणि वस्तव्यं निर्जने वने।**
**समीक्षध्वं महारण्ये देशं बहुमृगद्विजम् ॥२॥**

"हम लोगों को आगामी बारह वर्षों तक निर्जन वन में निवास करना है, अतः इस महान् वन में कोई ऐसा स्थान ढूँढ़ो जहाँ बहुत-से पशु-पक्षी निवास करते हों।

**बहुपुष्पफलं रम्यं शिवं पुण्यजनावृतम्।**
**यत्रेमाः शरदः सर्वाः सुखं प्रतिवसेमहि ॥३॥**

जहाँ फल-फूलों की अधिकता हो, जो देखने में रमणीक और कल्याणकारी हो, जहाँ बहुत-से महात्मा रहते हों, वह स्थान ऐसा हो जहाँ हम बारह वर्ष तक सुख से रह सकें।

अर्जुन उवाच

**त्वमेव राजञ्जानासि श्रेयः कारणमेव च।**
**यत्रेच्छसि महाराज निवासं तत्र कुर्महे ॥४॥**

**अर्जुन बोले**—राजन्! आप ही श्रेय=मोक्ष के कारण का ज्ञान रखते हैं, अतः महाराज! जहाँ आपकी इच्छा हो, हम लोग वहीं निवास करेंगे।

**इदं द्वैतवनं नाम सरः पुण्यजलोचितम्।**
**बहुपुष्पफलं रम्यं नानाद्विजनिषेवितम् ॥५॥**

यह जो स्वच्छ जल से भरे हुए सरोवर युक्त है, इसका नाम द्वैत-वन है। यहाँ फल और फूलों की बहुलता है। यह स्थान रमणीय और अनेक ब्राह्मणों से सेवित है।

**अत्रेमा द्वादश समा विहरेमेति रोचये।**
**यदि तेऽनुमतं राजन् किमन्यन्मन्यते भवान् ॥६॥**

मेरी इच्छा है कि बारह वर्ष तक हम लोग यहीं निवास करें। राजन्! आपकी अनुमति हो तो यहीं निवास किया जाए अथवा आप दूसरे किसी स्थान को उत्तम समझते हैं?

युधिष्ठिर उवाच

**ममाप्येतन्मतं पार्थ त्वया यत् समुदाहृतम् ।**
**गच्छामः पुण्यविख्यातं महद् द्वैतवनं सरः ॥७॥**

**युधिष्ठिर ने कहा**—पार्थ ! तुमने जैसा बताया है, मेरा भी वही मत है। हम लोग स्वच्छ एवं पवित्र जलवाले सरोवर के कारण प्रसिद्ध 'द्वैत वन' नामक विशाल अरण्य-प्रदेश में चलें।

वैशम्पायन उवाच

**ततस्ते प्रययुः सर्वे पाण्डवा धर्मचारिणः ।**
**ब्राह्मणैर्बहुभिः सार्धं पुण्यं द्वैतवनं सरः ॥८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तदनन्तर वे सभी धर्मात्मा पाण्डव बहुत-से ब्राह्मणों के साथ पवित्र द्वैत-वन में स्थित सरोवर को चले गये।

**वसत्सु वै द्वैतवने पाण्डवेषु महात्मसु ।**
**अनुकीर्णं महारण्यं ब्राह्मणैः समपद्यत ॥९॥**

जब पाण्डव द्वैतवन में निवास करने लगे, तब वह विशाल वन ब्राह्मणों से भर गया।

**ईर्यमानेन सततं ब्रह्मघोषेण सर्वशः ।**
**ब्रह्मलोकसमं पुण्यमासीद् द्वैतवनं सरः ॥१०॥**

सदा और सब ओर उच्चारित होनेवाले वेद-मन्त्रों के घोष से सरोवर-सहित वह द्वैतवन ब्रह्मलोक के समान जान पड़ता था।

**ज्याघोषश्चैव पार्थानां ब्रह्मघोषश्च धीमताम् ।**
**संसृष्टं ब्रह्मणा क्षत्रं भूय एव व्यरोचत ॥११॥**

कुन्तीपुत्रों के धनुष की डोरी के टंकार शब्द और बुद्धिमान् ब्राह्मणों के वेदमन्त्रों का घोष—दोनों मिलकर ऐसे प्रतीत होते थे, मानो ब्राह्म और क्षात्र-शक्ति का संयोग हो रहा है।

**अथाब्रवीद् बको दाल्भ्यो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।**
**सन्ध्यां कौन्तेयमासीनमृषिभिः परिवारितम् ॥१२**

एक दिन कुन्तीपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर सन्ध्या-उपासना करके ऋषियों से घिरे हुए बैठे थे, उस समय दल्भ के पुत्र बक ने उनसे कहा—

**ब्रह्मक्षत्रेण संसृष्टं क्षत्रं च ब्रह्मणा सह ।**
**उदीर्णे दहतः शत्रून् वनानीवाग्निमारुतौ ॥१३॥**

जब ब्राह्मण क्षत्रिय से और क्षत्रिय ब्राह्मण से मिल जाएँ तब दोनों प्रचण्ड शक्तिशाली होकर उसी प्रकार अपने शत्रुओं को भस्म कर देते हैं, जैसे अग्नि और वायु मिलकर सारे वन को जला देते हैं।

**ब्राह्मण्यनुपमा दृष्टिः क्षात्रमप्रतिमं बलम् ।**
**तौ यदा चरतः सार्धं तदा लोकः प्रसीदति ॥१४॥**

ब्राह्मणों के पास अनुपम दृष्टि=विचारशक्ति होती है और क्षत्रिय के पास अनुपम बल होता है—ये दोनों जब साथ-साथ कार्य करते हैं, तब सारा संसार सुखी होता है।

**यथा हि सुमहानग्निः कक्षं दहति सानिलः ।**
**तथा दहति राजन्यो ब्राह्मणेन समं रिपुम् ॥१५॥**

जैसे प्रचण्ड अग्नि वायु का सहारा पाकर सूखे जंगल को जला डालती है, उसी प्रकार ब्राह्मण के बुद्धि-बल की सहायता से राजा अपने शत्रु को भस्म कर देता है।

**ब्राह्मणेषूत्तमा वृत्तिस्तव नित्यं युधिष्ठिर ।**
**तेन ते सर्वलोकेषु दीप्यते प्रथितं यशः ॥१६॥**

हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणों के प्रति तुम्हारे हृदय में सदा उत्तम भाव है, इसीलिए सब लोकों में तुम्हारा यश विख्यात एवं प्रकाशित है।

**इति महाभारते वनपर्वणि तृतीयोध्यायः ॥३॥**

# चतुर्थोऽध्यायः

## द्रौपदी द्वारा युधिष्ठिर का क्रोध उभाड़ने (भड़काने) का प्रयत्न और युधिष्ठिर द्वारा क्षमाभाव की प्रशंसा

वैशम्पायन उवाच

**ततो वनगताः पार्थाः सायाह्ने सह कृष्णया ।**
**उपविष्टाः कथाश्चक्रुर्दुःखशोकपरायणाः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! वन में निवास करते हुए पाण्डव एक दिन सायंकाल द्रौपदी के साथ बैठकर दुःख और शोक में मग्न हो कुछ बात-चीत कर रहे थे।

**प्रिया च दर्शनीया च पण्डिता च पतिव्रता ।**
**अथ कृष्णा धर्मराजमिदं वचनमब्रवीत् ॥२॥**

तभी विदुषी, पतिव्रता, दर्शनीया, एवं प्रिय-

वादिनी द्रौपदी धर्मराज युधिष्ठिर से बोली—

द्रौपद्युवाच

**न नूनं तस्य पापस्य दुःखमस्मासु किंचन।**
**विद्यते धार्तराष्ट्रस्य नृशंसस्य दुरात्मनः ॥३॥**

**द्रौपदी बोली**—हे राजन्! मैं समझती हूँ, उस क्रूर स्वभाववाले दुरात्मा धृतराष्ट्र-पुत्र पापी दुर्योधन के मन में हम लोगों के लिए वनवासी बनने पर तनिक भी दुःख नहीं हुआ होगा।

**आयसं हृदयं नूनं तस्य दुष्कृतकर्मणः।**
**यस्त्वां धर्मपरं श्रेष्ठं रूक्षाण्यश्रावयत्तदा ॥४॥**

निश्चय ही उस कुकर्मी का हृदय फौलाद का बना है, क्योंकि उसने आप-जैसे श्रेष्ठ धर्मात्मा पुरुष को भी वन-प्रस्थान के समय कटुवचन कहे थे।

**चतुर्णामेव पापानामस्त्रं न पतितं तदा।**
**त्वयि भारत निष्क्रान्ते वनायाजिनवाससि ॥५॥**

हे भारत! जब आप वल्कल-वस्त्र धारण करके वन में जाने के लिए निकले, उस समय दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनि—इन चारों ही पापात्माओं के नेत्रों से एक भी आँसू नहीं गिरा था।

**इतरेषां तु सर्वेषां कुरूणां कुरुसत्तम्।**
**दुःखेनाभिपरीतानां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥६॥**

कुरुश्रेष्ठ! अन्य सभी कुरुवंशी दुःख में डूबे हुए थे और उनके नेत्रों से आँसुओं की वर्षा हो रही थी।

**यदपश्यं सभायां त्वां राजभिः परिवारितम्।**
**तच्च राजन्नपश्यन्त्याः का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥७॥**

हे राजन्! मैं इन्द्रप्रस्थ की सभा में आपको राजाओं से घिरा हुआ देख चुकी हूँ, अतः आज आपको वर्तमान अवस्था में देखकर मेरे हृदय को क्या शान्ति मिल सकती है?

**यत्ते भ्रातॄन् महाराज युवानो मृष्टकुण्डलाः।**
**अभोजयन्त मिष्टान्नैः सूदाः परमसंस्कृतैः ॥८॥**

**सर्वांस्तानद्य पश्यामि वने वन्येन जीविनः।**
**अदुःखार्हान् मनुष्येन्द्र नोपशाम्यति मे मनः ॥९॥**

हे महाराज! आपके जिन भाइयों को कानों में सुन्दर कुण्डल पहने हुए युवक रसोइए उत्तम प्रकार से बनाये हुए स्वादिष्ट अन्न परोसकर भोजन कराया करते थे, उन सबको मैं आज वन में जंगली फल-फूलों से जीवन-निर्वाह करते देख रही हूँ। नरेन्द्र! आपके भाई दुःख भोगने के योग्य नहीं हैं, आज उन्हें दुःख में देखकर मेरा चित्त किसी प्रकार भी शान्त नहीं हो पाता है।

**भीमसेनमिमं चापि दुःखितं वनवासिनम्।**
**ध्यायतः किं न मन्युस्ते प्राप्तकाले विवर्धते ॥१०॥**

राजन्! वन में रहकर दुःख भोगते हुए अपने भाई भीमसेन का स्मरण करके समय आने पर क्या शत्रुओं के प्रति आपका क्रोध नहीं बढ़ेगा?

**योऽर्जुनेनार्जुनस्तुल्यो द्विबाहुर्बहुबाहुना।**
**ध्यायन्तमर्जुनं दृष्ट्वा कस्माद्राजन्न कुप्यसि ॥११॥**

राजन्! आपका जो भाई अर्जुन दो भुजाओं से युक्त होने पर भी सहस्र भुजाओं से विभूषित कार्तवीर्य अर्जुन के समान पराक्रमी है, उस अर्जुनको चिन्ता-मग्न देखकर आप-अपने शत्रुओं पर क्रोध क्यों नहीं करते?

**श्यामं बृहन्तं तरुणं चर्मिणामुत्तमं रणे।**
**नकुलं ते वनं दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्न वर्धते ॥१२॥**

जो युद्ध में ढाल और तलवार से लड़नेवाले वीरों में श्रेष्ठ हैं, जिनका कद ऊँचा है तथा जो श्यामवर्ण तरुण हैं, उन्हीं नकुल को आज वन में कष्ट उठाते देखकर आपका क्रोध क्यों नहीं बढ़ता?

**दर्शनीयं च शूरं च माद्रीपुत्रं युधिष्ठिर।**
**सहदेवं वने दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्न वर्धते ॥१३॥**

महाराज युधिष्ठिर! परम सुन्दर माद्रीपुत्र शूरवीर सहदेव को वनवास का दुःख भोगते देखकर आपका क्रोध क्यों नहीं बढ़ रहा है?

**द्रुपदस्य कुले जातां स्नुषां पाण्डोर्महात्मनः।**
**मां वै वनगतां दृष्ट्वा कस्मात् क्षमसि पार्थिव ॥१४॥**

द्रुपद के कुल में उत्पन्न हुई, महात्मा पाण्डु की पुत्रवधू मुझे वन में कष्ट उठाते देखकर भी आप शत्रुओं के प्रति क्षमाभाव कैसे धारण कर रहे हैं?

**नूनं च तव वै नास्ति मन्युर्भरतसत्तम।**
**यत्ते भ्रातॄंश्च मां चैव दृष्ट्वा न व्यथते मनः ॥१५॥**

भरतश्रेष्ठ! निश्चय ही आपके हृदय में क्रोध नहीं है, क्योंकि मुझे और अपने भाइयों को कष्ट में

पड़े देखकर भी आपके मन में व्यथा नहीं होती है।

**न निर्मन्युः क्षत्रियोऽस्ति लोके निर्वचनं स्मृतम्।**
**तदद्य त्वयि पश्यामि क्षत्रिये विपरीतवत्॥१६॥**

संसार में कोई भी क्षत्रिय क्रोधरहित नहीं होता, क्षत्रिय शब्द की व्युत्पत्ति ही ऐसी है जिससे उसका सक्रोध होना सूचित होता है [क्षरते इति क्षत्रम्—जो दुष्टों का क्षरण=नाश करता है, वह क्षत्रिय है] परन्तु आज आप-जैसे क्षत्रिय में मुझे क्रोध का यह अभाव क्षत्रियत्व के विपरीत-सा दिखाई देता है।

**यो न दर्शयते तेजः क्षत्रियः काल आगते।**
**सर्वभूतानि तं पार्थ सदा परिभवन्त्युत॥१७॥**

कुन्तीनन्दन ! जो क्षत्रिय समय आने पर अपने तेज को प्रकट नहीं करता, उसका सब प्राणी सदा तिरस्कार करते हैं।

**तदहं तेजसः कालं तव मन्ये नराधिप।**
**धार्तराष्ट्रेषु लुब्धेषु सततं चापकारिषु॥१८॥**

नरेश्वर ! धृतराष्ट्र के पुत्र लोभी तथा सदा आपका अपकार करनेवाले हैं, अतः उनके प्रति आपके पराक्रम करने का यह अवसर आया है, ऐसा मेरा मत है।

**न हि कश्चित् क्षमाकालो विद्यतेऽद्य कुरून् प्रति।**
**तेजसश्चागते काले तेज उत्स्रष्टुमर्हसि॥१९॥**

कौरवों के प्रति अब क्षमा का कोई अवसर नहीं है। अब पराक्रम दिखाने का अवसर प्राप्त है, अतः उनपर आपको अपना तेज प्रकट करना चाहिए।

युधिष्ठिर उवाच

**क्रोधो हन्ता मनुष्याणां क्रोधो भावयिता पुनः।**
**इति विद्धि महाप्राज्ञे क्रोधमूलौ भवाभवौ॥२०॥**

**युधिष्ठिर बोले**—महाबुद्धिमति ! क्रोध ही मनुष्य को मारनेवाला और वही मनुष्य का अभ्युदय करनेवाला है। तुम यह समझ लो कि उन्नति और अवनति दोनों क्रोधमूलक ही हैं [क्रोध के जीतने से उन्नति एवं उसके वशीभूत होने से अवनति होती है।]

**क्रोधमूलो विनाशो हि प्रजानामिह दृश्यते।**
**तत् कथं मादृशः क्रोधमुत्सृजेल्लोकनाशनम्॥२१॥**

इस जगत् में क्रोध के कारण लोगों का नाश होता दिखाई देता है, अतः मेरे-जैसा मनुष्य लोक-विनाशक क्रोध का उपयोग दूसरों पर कैसे करेगा ?

**क्रुद्धः पापं नरः कुर्यात् क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि। □**
**क्रुद्धः परुषया वाचा श्रेयसोऽप्यवमन्यते॥२२॥**

क्रोधी मनुष्य पाप कर डालता है, क्रोधी गुरुजनों की भी हत्या कर देता है तथा क्रोध में भरा हुआ मनुष्य अपनी कठोर वाणी द्वारा श्रेष्ठ मनुष्यों का भी अपमान कर देता है।

**तं क्रोधं वर्जितं धीरैः कथमस्मद्विधश्चरेत्।**
**एतद् द्रौपदि संधाय न मे मन्युः प्रवर्धते॥२३॥**

धीर पुरुषों ने जिस क्रोध का परित्याग कर दिया है, उस क्रोध को मेरे-जैसा मनुष्य कैसे उपयोग में ला सकता है ? द्रुपदकुमारी ! यही सोचकर मेरा क्रोध नहीं उभड़ता है।

**मन्योर्हि विजयं कृष्णे प्रशंसन्तीह साधवः।**
**क्षमावतो जयो नित्यं साधोरिह सतां मतम्॥२४॥**

हे कृष्णे ! साधु पुरुष क्रोध को जीतने की प्रशंसा करते हैं। सन्तों का यह मत है कि इस जगत् में क्षमाशील साधु पुरुष की सदा विजय होती है।

**यस्तु क्रोधं समुत्पन्नं प्रज्ञया प्रतिबाधते।**
**तेजस्विनं तं विद्वांसो मन्यन्ते तत्त्वदर्शिनः॥२५॥**

जो उत्पन्न हुए क्रोध को अपनी बुद्धि से दबा देता है, उसे तत्त्वदर्शी विद्वान् तेजस्वी मानते हैं।

**दाक्ष्यं ह्यमर्षः शौर्यं च शीघ्रत्वमिति तेजसः।**
**गुणाः क्रोधाभिभूतेन न शक्याः प्राप्तुमञ्जसा॥२६॥**

दक्षता, अमर्ष, शौर्य और शीघ्रता—ये तेज के गुण हैं। जो मनुष्य क्रोध से दबा हुआ है, वह इन गुणों को सहज में ही नहीं पा सकता।

**यदि न स्युर्मानुषेषु क्षमिणः पृथिवीसमाः।**
**नस्यात् सन्धिर्मनुष्याणां क्रोधमूलो हि विग्रहः॥२७॥**

यदि मनुष्यों में पृथिवी के समान क्षमाशील पुरुष न हों तो मनुष्यों में कभी सन्धि हो ही नहीं सकती, क्योंकि झगड़े की जड़ तो क्रोध ही है।

**क्षमा धर्मः क्षमा यज्ञः क्षमा वेदाः क्षमा श्रुतम्। □**
**य एतदेवं जानाति स सर्वं क्षन्तुमर्हति॥२८॥**

क्षमा धर्म है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा वेद है और क्षमा ही शास्त्र है। जो इस प्रकार जानता है, वह सबको क्षमा करने के योग्य हो जाता है।

**क्षमा ब्रह्म क्षमा सत्यं क्षमा भूतं च भावि च ।□**
**क्षमा तपः क्षमा शौचं क्षमयेदं धृतं जगत् ॥२९॥**

क्षमा ब्रह्म है, क्षमा सत्य है, क्षमा ही भूत और भविष्य है, क्षमा तप है तथा क्षमा शौच है। क्षमा ने ही सम्पूर्ण जगत् को धारण कर रखा है।

**क्षमा तेजस्विनां तेजः क्षमा ब्रह्म तपस्विनाम् ।□**
**क्षमा सत्यं सत्यवतां क्षमा दानं क्षमा शमः ॥३०॥**

क्षमा तेजस्वी पुरुषों का तेज है, क्षमा तपस्वियों का ब्रह्म है, क्षमा सत्यवादी पुरुषों का सत्य है। क्षमा दान है और क्षमा शम=मनोनिग्रह है।

**तां क्षमां तादृशीं कृष्णे कथमस्मद्विधस्त्यजेत् ।**
**यस्यां ब्रह्म च सत्यं च यज्ञा लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥३१॥**

हे कृष्णे ! ऐसी क्षमा को जिसमें ब्रह्म, सत्य, यज्ञ और लोक सभी प्रतिष्ठित हैं, मेरे-जैसा मनुष्य कैसे छोड़ सकता है ?

**क्षन्तव्यमेव सततं पुरुषेण विजानता । □**
**यदा हि क्षमते सर्वं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥३२॥**

ज्ञानी पुरुष को सदा क्षमा का ही आश्रय लेना चाहिए। जो मनुष्य क्षमाशील है, वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

**एतदात्मवतां वृत्तमेष धर्मः सनातनः ।**
**क्षमा चैवानृशंस्यं च तत् कर्तास्म्यहमञ्जसा ॥३३॥**

क्षमाशीलता और दयालुता—यही जितेन्द्रिय पुरुषों का सदाचार है और यही सनातन धर्म है, अतः मैं यथार्थरूप से क्षमा और दया को ही अपनाऊँगा।

द्रौपद्युवाच

**नमो धात्रे विधात्रे च यौ मोहं चक्रतुस्तव ।**
**नेह धर्मानृशंस्याभ्यां न क्षान्त्या नार्जवेन च ।**
**पुरुषः श्रियमाप्नोति न घृणित्वेन कर्हिचित् ॥३४॥**

**द्रौपदी बोली**—हे राजन् ! उस धाता=ईश्वर और विधाता=प्रारब्ध को नमस्कार है जिन्होंने आपकी बुद्धि में मोह उत्पन्न कर दिया। इस जगत् में धर्म, कोमलता, क्षमा, विनय और दया से कोई भी मनुष्य कभी धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं कर सकता।

**त्वां च व्यसनमभ्यागादिदं भारत दुःसहम् ।**
**यत् त्वं नार्हसि नापीमे भ्रातरस्ते महौजसः ॥३५॥**

हे भारत ! इसी कारण तो आपपर भी यह दुःसह संकट आ पड़ा है, जिसके योग्य न तो आप हैं और न आपके महातेजस्वी ये भाई ही हैं।

**न हि तेऽध्यगमज्जातु तदानीं नाद्य भारत ।**
**धर्मात् प्रियतरं किञ्चिदपि चेज्जीविताद‍िह ॥३६॥**

भरतकुलभूषण ! आपके भाइयों ने न तो पहले कभी और न आज ही किसी दूसरी वस्तु को धर्म से अधिक प्रिय समझा है अपितु सदा धर्म को ही जीवन से भी बढ़कर माना है।

**धर्मार्थमेव ते राज्यं धर्मार्थं जीवितं च ते ।**
**ब्राह्मणा गुरवश्चैव जानन्त्यपि च देवताः ॥३७॥**

आपका राज्य और जीवन भी धर्म के लिए ही है। ब्राह्मण, देवता और गुरुजन सभी इस बात को जानते हैं।

**भीमसेनार्जुनौ चोभौ माद्रेयौ च मया सह ।**
**त्यजेस्त्वमिति मे बुद्धिर्न तु धर्मं परित्यजेः ॥३८॥**

मुझे विश्वास है कि आप मेरे सहित भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को भी त्याग देंगे, परन्तु धर्म का त्याग नहीं करेंगे।

**राजानं धर्मगोप्तारं धर्मो रक्षति रक्षितः ।**
**इति मे श्रुतमार्याणां त्वां तु मन्ये न रक्षति ॥३९॥**

मैंने आर्यों के मुख से सुना है कि यदि धर्म की रक्षा की जाए तो वह धर्मरक्षक राजा की स्वयं भी रक्षा करता है, किन्तु मुझे प्रतीत होता है कि वह आपकी रक्षा नहीं कर रहा है।

**तवेमामापदं दृष्ट्वा समृद्धिं च सुयोधने ।**
**धातारं गर्हये पार्थ विषमं योऽनुपश्यति ॥४०॥**

हे कुन्तीनन्दन ! आपके कष्ट और दुर्योधन की समृद्धि को देखकर मैं उस विधाता की निन्दा करती हूँ जो [सज्जनों को दुःख और दुर्जनों को सुख देकर] विषम दृष्टिसे देख रहा है।

युधिष्ठिर उवाच

**वल्गु चित्रपदं श्लक्ष्णं याज्ञसेनि त्वया वचः ।**
**उक्तं तत् श्रुतमस्माभिर्नास्तिक्यं तु प्रभाषसे ॥४१॥**

**युधिष्ठिर बोले**—यज्ञसेनकुमारी ! तुमने जो बात कही है, वह सुनने में अति मनोहर है, विचित्र पदावली से युक्त और मधुर है। हमने उसे बड़े ध्यान

से सुना है परन्तु इस समय तुम नास्तिकता की बातें कर रही हो।

**नाहं कर्मफलान्वेषी राजपुत्रि चराम्युत ।**
**ददामि देयमित्येव यजे यष्टव्यमित्युत ।।४२।।**

राजकुमारी ! मैं कर्मों के फल की इच्छा रखकर उनका अनुष्ठान नहीं करता अपितु 'देना चाहिए' यह समझकर दान देता हूँ और यज्ञ का अनुष्ठान भी कर्तव्य समझकर ही करता हूँ।

**धर्मं चरामि सुश्रोणि न धर्मफलकारणात् ।**
**धर्मवाणिज्यको हीनो जघन्यो धर्मवादिनाम् ।।४३।।**

सुश्रोणि ! मैं धर्म का फल पाने के लोभ से धर्म का आचरण नहीं करता। जो मनुष्य कुछ पाने की इच्छा से धर्म का व्यापार करता है, वह धर्मवादी पुरुषों की दृष्टि में हीन और निन्दनीय है।

**न धर्मफलमाप्नोति यो धर्मं दोग्धुमिच्छति ।**
**यश्चैनं शङ्कते कृत्वा नास्तिक्यात् पापचेतनः ।।४४।।**

जो पापी मनुष्य नास्तिकतावश धर्म का अनुष्ठान करके उसके विषय में शंका करता है अथवा धर्म को दुहना चाहता है, उसे धर्म का फल बिल्कुल नहीं मिलता।

**अतिवादाद् वदाम्येष मा धर्ममभिशङ्किथाः ।**
**धर्माभिशङ्की पुरुषस्तिर्यग्गतिपरायणः ।।४५।।**

मैं सारे प्रमाणों से ऊपर उठकर केवल शास्त्र के आधार पर यह ज़ोर देकर कह रहा हूँ कि तुम धर्म के विषय में शंका मत करो, क्योंकि धर्म में सन्देह करनेवाला मनुष्य पशु-पक्षियों की योनि में जन्म लेता है।

**शिष्टैराचरितं धर्मं कृष्णे मा स्मातिशङ्किथाः ।**
**पुराणमृषिभिः प्रोक्तं सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः ।।४६।।**

देवि कृष्णे ! सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा महर्षियों द्वारा प्रतिपादित तथा शिष्ट पुरुषों द्वारा आचरित प्राचीन धर्म पर शंका नहीं करनी चाहिए।

**धर्म एव प्लवो नान्यः स्वर्गं द्रौपदि गच्छताम् ।**
**सैव नौः सागरस्येव वणिजः पारमिच्छतः ।।४७।।**

द्रौपदी ! जैसे समुद्र के पार जाने की इच्छावाले वणिक् के लिए जहाज़ की आवश्यकता है, वैसे ही स्वर्ग में जानेवालों के लिए धर्माचरण ही जहाज़ है, दूसरा नहीं।

**अफलो यदि धर्मः स्याच्चरितो धर्मचारिभिः ।**
**अप्रतिष्ठे तमस्येतज्जगन्मज्जेदनिन्दिते ।।४८।।**

साध्वी द्रौपदी ! यदि धर्मपरायण पुरुषों द्वारा पालित धर्म निष्फल होता तो यह सम्पूर्ण जगत् असीम अन्धकार में डूब जाता।

**ईश्वरं चापिभूतानां धातारं मा च वै क्षिप ।**
**शिक्षस्वैनं नमस्वैनं मा ते भूद् बुद्धिरीदृशी ।।४९।।**

समस्त प्राणियों का पालन-पोषण करनेवाले ईश्वर पर आक्षेप न करो। तुम शास्त्र और गुरुजनों के उपदेशानुसार ईश्वर को समझने का प्रयत्न करो और उसी को नमस्कार करो। आज जैसी तुम्हारी बुद्धि है, वैसी कभी नहीं होनी चाहिए।

द्रौपद्युवाच

**नावमन्ये न गर्हे च धर्मं पार्थ कथञ्चन ।**
**ईश्वरं कुत एवाहमवमंस्ये प्रजापतिम् ।।५०।।**

**द्रौपदी ने कहा**—कुन्तीनन्दन ! मैं धर्म की अवहेलना और निन्दा किसी प्रकार नहीं कर सकती फिर प्रजापति परमेश्वर की अवहेलना तो कर ही कैसे सकती हूँ ?

**आर्ताहं प्रलपामीदमिति मां विद्धि भारत ।**
**भूयश्च विलपिष्यामि सुमनास्त्वं निबोध मे ।।५१।।**

हे भारत ! आप ऐसा समझ लें कि मैं शोक से आर्त होकर प्रलाप कर रही हूँ। मैं इतने से ही चुप नहीं रहूँगी और भी प्रलाप करूँगी, आप प्रसन्नचित होकर मेरी बात सुनिए।

**कर्म खल्विह कर्तव्यं जानतामित्रकर्शन ।**
**अकर्माणो हि जीवन्ति स्थावरा नेतरे जनाः ।।५२।।**

शत्रुनाशन ! ज्ञानी पुरुष को भी इस संसार में कर्म अवश्य करना चाहिए। पर्वत और वृक्ष आदि स्थावर भूत ही कर्म किये बिना जी सकते हैं, दूसरे लोग नहीं।

**अकर्मणां वै भूतानां वृत्तिः स्यान्न हि काचन ।**
**तदेवाभिप्रपद्येत न विहन्यात् कदाचन ।।५३।।**

कर्म न करनेवाले प्राणियों की कोई जीविका भी सिद्ध नहीं होती, अतः मनुष्य भाग्य का भरोसा करके कभी कर्म का परित्याग न करे। सदा कर्म का ही आश्रय ले।

**स्वकर्म कुरु मा ग्लासीः कर्मणा भव दंशितः ।**
**कृत्यं हि योऽभिजानाति सहस्रे सोऽस्ति नास्ति च ॥५४॥**

आप अपना कर्म करें, उससे ग्लानि न करें। कर्म का कवच पहने रहें। जो ठीक प्रकार कर्म करना जानता है, ऐसा मनुष्य सहस्रों में एक भी है या नहीं—यह बताना कठिन है।

**वित्तस्यापि भवेत् कार्यं विवृद्धौ रक्षणे तथा ।**
**भक्ष्यमाणो ह्यनादानात् क्षीयेत हिमवानपि ॥५५॥**

धन की वृद्धि और रक्षा के लिए भी कर्म की आवश्यकता होती है। यदि धन का उपभोग=व्यय होता रहे और आय न हो तो हिमालय जैसी धनराशि भी समाप्त हो जाती है।

**यश्च दिष्टपरो लोके यश्चापि हठवादकः ।**
**उभावपि शठावेतौ कर्मबुद्धिः प्रशस्यते ॥५६॥**

संसार में जो केवल भाग्य के भरोसे कर्म नहीं करता और जो हठवादी है—वे दोनों ही मूर्ख हैं। जिसकी बुद्धि कर्म=पुरुषार्थ में रुचि रखती है, वही प्रशंसनीय है।

**यो हि दिष्टमुपासीनो निर्विचेष्टः सुखं स्वपेत् ।**
**अवसीदेत् स दुर्बुद्धिरामो घट इवोदके ॥५७॥**

जो खोटी बुद्धिवाला मनुष्य भाग्य का भरोसा रखकर उद्योग से मुख मोड़कर सुख से सोता रहता है, उसका जल में रखे हुए कच्चे घड़े की भाँति विनाश हो जाता है।

**कर्तव्यमेव कर्मेति मनोरेष विनिश्चयः ।**
**एकान्तेन ह्यनीहोऽयं पराभवति पूरुषः ॥५८॥**

महर्षि मनु का यह सिद्धान्त है कि कर्म करना ही चाहिए। जो मनुष्य कर्म छोड़कर निश्चेष्ट बैठा रहता है, वह पराभव को प्राप्त होता है।

**कुर्वतो हि भवत्येव प्रायेणेह युधिष्ठिर ।**
**एकान्तफलसिद्धिं तु न विन्दत्यलसः क्वचित् ॥५९॥**

महाराज युधिष्ठिर ! संसार में कर्म करनेवाले पुरुष को ही प्रायः फल की सिद्धि होती है जो आलसी है, जो ठीक-ठीक कर्तव्य का पालन नहीं करता, उसे सिद्धि नहीं मिलती।

**अलक्ष्मीराविशत्येनं शयानमलसं नरम् ।□**
**निःसंशयं फलं लब्ध्वा दक्षो भूतिमुपाश्नुते ॥६०॥**

जो मनुष्य आलसी बनकर सोता रहता है, उसे दरिद्रता प्राप्त होती है और कार्यकुशल मानव निश्चय ही अभीष्ट फल पाकर ऐश्वर्य का उपभोग करता है।

**एकान्तेन ह्यनर्थोऽयं वर्ततेऽस्मासु साम्प्रतम् ।**
**स तु निःसंशयं न स्यात् त्वयि कर्मण्यवस्थिते ॥६१॥**

इस समय हम लोगों पर राज्यापहरणरूप भारी आपत्ति आ पड़ी है। यदि आप तत्परता से पुरुषार्थ में लग जाएँ तो निश्चय ही यह संकट टल सकता है।

**कुर्वतो नार्थसिद्धिर्मे भवतीति ह भारत ।□**
**निर्वेदो नात्र कर्तव्यो द्वावन्यौ ह्यत्र कारणम् ॥६२॥**

हे भारत! 'पुरुषार्थ करने पर भी मुझे सिद्धि प्राप्त नहीं हो रही है', ऐसा सोचकर खिन्न=दुःखी नहीं होना चाहिए, क्योंकि फल की सिद्धि में पुरुषार्थ के अतिरिक्त दो और भी कारण हैं—प्रारब्ध और ईश्वर-कृपा।

**न चैवात्मावमन्तव्यः पुरुषेण कदाचन ।□**
**न ह्यात्मपरिभूतस्य भूतिर्भवति शोभना ॥६३॥**

मनुष्य कभी अपने आपका अनादर न करे—अपने आपको दीन-हीन एवं तुच्छ न समझे। जो स्वयं ही अपना अनादर करता है, उसे उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं होती।

**इति महाभारते वनपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥**

## पञ्चमोऽध्यायः

### भीमसेन द्वारा पुरुषार्थ की प्रशंसा और युधिष्ठिर का उन्हें समझाना

वैशम्पायन उवाच

**याज्ञसेन्या वचः श्रुत्वा भीमसेनो ह्यमर्षणः ।**
**निश्वसन्नुपसङ्गम्य क्रुद्धो राजानमब्रवीत् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! द्रुपद-कुमारी का वचन सुनकर अमर्ष में भरे हुए भीम क्रोधपूर्वक उच्छ्वास लेते हुए राजा के पास आये और इस प्रकार कहने लगे—

भीम उवाच

**राज्यस्य पदवीं धर्म्यां व्रज सत्पुरुषोचिताम् ।**
**धर्मकामार्थहीनानां किं नो वस्तुं तपोवने ॥२॥**

**भीमसेन बोले**—महाराज ! श्रेष्ठ पुरुषों के लिए उचित और धर्मानुकूल जो राज्य-प्राप्ति का मार्ग=उपाय हो, आप उसका आश्रय लीजिए । धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों से वञ्चित होकर इस तपोवन में निवास करने पर हमारा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा ?

**नैव धर्मेण तद् राज्यं नार्जवेन न चौजसा ।**
**अक्षकूटमधिष्ठाय हृतं दुर्योधनेन वै ॥३॥**

दुर्योधन ने धर्म से, सरलता से और बल से भी हमारा राज्य नहीं लिया है, उसने तो कपटपूर्ण जुए का आश्रय लेकर हमारा राज्य छीना है ।

**गोमायुनेव सिंहानां दुर्बलेन बलीयसाम् ।**
**आमिषं विघसाशेन तद्वत् राज्यं हि नो हृतम् ॥४॥**

बचे हुए अन्न को खानेवाला दुर्बल गीदड़ जैसे अत्यन्त बलवान् सिंहों का भोजन हर ले, उसी प्रकार शत्रुओं ने हमारे राज्य का अपहरण किया है ।

**स भवान् दृष्टिमाञ्छक्तः पश्यन्नस्मासु पौरुषम् ।**
**आनृशंस्यपरो राजन् नानर्थमवबुध्यसे ॥५॥**

राजन् ! आप समझदार, दूरदर्शी और शक्तिशाली हैं । हमारे पुरुषार्थ को देखते हुए भी इस प्रकार दया को अपनाकर आप इससे होनेवाले अनर्थ को नहीं समझ रहे हैं ।

**अस्मानमी धार्तराष्ट्राः क्षममाणानलं सतः ।**
**अशक्तानिव मन्यन्ते तद् दुःखं नाहवे वध ॥६॥**

हम शत्रुओं के अपराध को क्षमा करते जा रहे हैं, इसलिए धृतराष्ट्र के पुत्र हम समर्थों को निर्बल मानने लगे हैं, यही हमारे लिए महान् दुःख है, युद्ध में मारा जाना कोई दुःख नहीं है ।

**सर्वथा कार्यमेतन्नः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ।**
**कांक्षतां विपुलां कीर्तिं वैरं प्रतिचिकीर्षताम् ॥७॥**

हम क्षत्रिय धर्म के अनुष्ठान में संलग्न हो वैर का बदला लेना चाहते हैं तथा संसार में महान् यश के विस्तार करने की इच्छा रखते हैं, अतः हमारे लिए सब प्रकार से युद्ध करना ही उचित है ।

**कर्शनार्थो हि यो धर्मो मित्राणामात्मनस्तथा ।**
**व्यसनं नाम तद् राजन् न धर्मः कुधर्म तत् ॥८॥**

महाराज ! जो धर्म अपने तथा अपने मित्रों के लिए क्लेश उत्पन्न करनेवाला हो, वह तो संकट ही है । वह धर्म नहीं, कुधर्म है ।

**सर्वथा धर्मनित्यं तु पुरुषं धर्मदुर्बलम् ।**
**त्यजतस्तात धर्मार्थौ प्रेतं दुःखसुखे यथा ॥९॥**

हे तात ! जैसे मुर्दों को दुःख और सुख दोनों नहीं होते, उसी प्रकार जो सर्वदा और सर्वथा धर्म में ही तत्पर रहकर उसके अनुष्ठान से दुर्बल हो गया है, उसे धर्म और अर्थ दोनों त्याग देते हैं ।

**यस्य धर्मो हि धर्मार्थं क्लेशभाङ् न स पण्डितः । □**
**न स धर्मस्य वेदार्थं सूर्यस्यान्धः प्रभामिव ॥१०॥**

जिसका धर्म केवल धर्म के लिए ही होता है, धर्म के नाम पर क्लेश उठानेवाला वह मनुष्य बुद्धिमान् नहीं है । जैसे अन्धा सूर्य-प्रभा को नहीं जानता उसी प्रकार वह धर्म के अर्थ को भी नहीं समझता ।

**यस्य चार्थार्थमेवार्थः स च नार्थस्य कोविदः । □**
**रक्षते भृतकोऽरण्यं यथा गास्तादृगेव सः ॥११॥**

जिसका धन केवल धन के लिए है, दान आदि के लिए नहीं, वह धन के तत्त्व को नहीं जानता । जैसे ग्वाला वन में गौओं की रक्षा करता है, उसी प्रकार वह भी उस धन का दूसरे के लिए रक्षकमात्र है ।

**अतिवेलं हि योऽर्थार्थी नेतरावनुतिष्ठति । □**
**स वध्यः सर्वभूतानां ब्रह्महेव जुगुप्सितः ॥१२॥**

जो केवल धन के संग्रह की अत्यधिक इच्छा रखता है परन्तु धर्म और काम का अनुष्ठान नहीं करता, वह ब्रह्महत्यारे के समान घृणा का पात्र है और सभी प्राणियों के लिए वध्य है ।

**सततं यश्च कामार्थी नेतरावनुतिष्ठति । □**
**मित्राणि तस्य नश्यन्ति धर्मार्थाभ्यां च हीयते ॥१३॥**

इसी प्रकार जो निरन्तर काम की ही अभिलाषा रखकर धर्म और अर्थ का सेवन नहीं करता, उसके मित्र नष्ट हो जाते हैं, उसे त्याग देते हैं और वह धर्म और अर्थ दोनों से वञ्चित हो जाता है ।

**न धर्मपर एव स्यान्न चार्थपरमो नरः ।**
**न कामपरमो वा स्यात् सर्वान् सेवेत सर्वदा ॥१४॥**
**धर्मं पूर्वं धनं मध्ये चान्तिमे काममाचरेत् ।**
**अहन्यनुचरेदेवमेष शास्त्रकृतो विधिः ॥१५॥**

मनुष्य केवल धर्म, केवल अर्थ अथवा केवल काम के ही सेवन में तत्पर न रहे अपितु उन सबका सदा इस प्रकार सेवन करे जिससे इनमें विरोध न हो। इस विषय में शास्त्रों का यह विधान है कि दिन के पूर्व भाग में धर्म का, दूसरे भाग में अर्थ का और अन्तिम भाग में काम का सेवन करे।

**धर्ममूलं जगद्राजन् नान्यद् धर्माद् विशिष्यते ।**
**धर्मश्चार्थेन महता शक्यो राजन् निषेवितुम् ॥१६॥**

हे राजन् ! इस संसार का मूल कारण धर्म ही है। इस संसार में धर्म से बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है परन्तु उस धर्म का अनुष्ठान भी पर्याप्त धन से ही हो सकता है।

**न चार्थो भैक्ष्यचर्येण नापि क्लैब्येन कर्हिचित् ।**
**वेतुं शक्यः सदा राजन् केवलं धर्मबुद्धिना ॥१७॥**

राजन् ! भीख माँगने से, कायरता दिखाने से अथवा केवल धर्म में ही मन लगाये रहने से धन की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती।

**प्रतिषिद्धा हि ते याञ्चा यया सिद्ध्यति वै द्विजः ।**
**तेजसैवार्थलिप्सायां यतस्व पुरुषर्षभ ॥१८॥**

नरश्रेष्ठ ! ब्राह्मण जिस याचना=भिक्षा के द्वारा कार्य-सिद्धि कर लेता है, वह तो आप कर नहीं सकते, क्योंकि क्षत्रियों के लिए उसका निषेध है, अतः आप अपने तेज द्वारा ही धन प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए।

**भैक्ष्यचर्या न विहिता न च विट्शूद्रजीविका ।**
**क्षत्रियस्य विशेषेण धर्मस्तु बलमौरसम् ॥१९॥**

क्षत्रिय के लिए न तो भीख माँगने का विधान है और न वैश्य तथा शूद्र की जीविका अपनाने का। उसके लिए तो बल और उत्साह ही विशेष धर्म है।

**स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व जहि शत्रून् समागतान् ।**
**धार्तराष्ट्रवनं पार्थ मया पार्थेन नाशय ॥२०॥**

हे पार्थ ! अपने धर्म का आश्रय लीजिए और प्राप्त हुए शत्रुओं का वध कीजिए। मेरे तथा अर्जुन के द्वारा धृतराष्ट्रपुत्र रूपी वन को कटवा डालिए।

**स क्षात्रं हृदयं कृत्वा त्यक्त्वेदं शिथिलं मनः ।**
**वीर्यमास्थाय कौरव्य धुरमुद्वह धुर्यवत् ॥२१॥**

कुरुनन्दन ! अपने हृदय को क्षत्रियोचित उत्साह से भरकर, मन की शिथिलता को दूर करके पराक्रम का आश्रय ले आप एक धुरन्धर वीर पुरुष की भाँति युद्ध का भार वहन कीजिए।

**न हि केवलधर्मात्मा पृथिवीं जातु कश्चन ।**
**पार्थिवो व्यजयद् राजन् न भूतिं न पुनः श्रियम् ॥२२॥**

राजन् ! केवल धर्म में ही लगे रहनेवाले किसी भी नरेश ने आजतक न तो कभी पृथिवी पर विजय पाई है और न ऐश्वर्य तथा लक्ष्मी ही प्राप्त की है।

**एवं बलवतः सर्वमिति बुद्ध्वा महीपते ।**
**जहि शत्रून् महाबाहो परां निकृतिमास्थितः ॥२३॥**

महाबाहो ! महाराज ! इस प्रकार बलवान् का ही सबपर अधिकार होता है, यह समझकर आप भी कूटनीति का आश्रय ले अपने शत्रुओं को मार डालिए।

**न हि गाण्डीवमुक्तानां शराणां गार्ध्रवाससाम् ।**
**स्पर्शमाशीविषाभानां मर्त्यः कश्चन संसहेत् ॥२४॥**

मनुष्यों में कोई ऐसा नहीं है जो गाण्डीव धनुष से छूटे हुए विषैले सर्पों के समान भयंकर गृध्रपंख-युक्त बाणों का स्पर्श सह सके।

**न स वीरो न मातङ्गो न च सोऽश्वोऽस्ति भारत ।**
**यः सहेत गदावेगं मम क्रुद्धस्य संयुगे ॥२५॥**

हे भारत ! इसी प्रकार संसार में ऐसा कोई वीर या अश्व अथवा हाथी भी नहीं है, जो रणभूमि में क्रोधपूर्वक विचरनेवाले मुझ भीमसेन की गदा का वेग (प्रहार) सह सके

**सृञ्जयैः सह कैकेयैर्वृष्णीनां वृषभेण च ।**
**कथं स्विद् युधि कौन्तेय न राज्यं प्राप्नुयामहे ॥२६॥**

कुन्तीनन्दन ! सृंजय और केकेयवंशी वीरों और वृष्णिवंशावतंस श्रीकृष्ण का आश्रय लेकर हम संग्राम में अपना राज्य कैसे प्राप्त नहीं कर लेंगे ?

**अस्माभिरुषिताः सम्यग् वने मासास्त्रयोदश ।**
**परिमाणेन तान् पश्य तावतः परिवत्सरान् ॥२७॥**

हमने अबतक वन में ठीक तेरह मास व्यतीत

कर लिये हैं, आप इन्हीं को परिमाण में तेरह वर्ष समझ लीजिए।

**अस्ति मासः प्रतिनिधिर्यथा प्राहुर्मनीषिणः।**
**पूतिकामिव सोमस्य तथेदं क्रियतामिति ॥२८॥**

मनीषी पुरुषों का कहना है कि मास संवत्सर का प्रतिनिधि है। जैसे पूतिका सोमलता के स्थान पर काम देती है, उसी प्रकार आप इन तेरह मासों को ही तेरह वर्षों का प्रतिनिधि स्वीकार कर लीजिए।

**तस्माच्छत्रुवधे राजन् क्रियतां निश्चयस्त्वया।**
**क्षत्रियस्य हि सर्वस्य नान्यो धर्मोऽस्ति संयुगात् ॥२९**

महाराज! आप शत्रुओं के वध करने का निश्चय कीजिए, क्योंकि समस्त क्षत्रियों के लिए युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है।

युधिष्ठिर उवाच

**एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत।**
**इदमन्यत् समाधत्स्व वाच्यं मे वाक्यकोविद ॥३०॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हे महाबाहो! वाक्यविशारद भीम! तुम जैसा कह रहे हो, वह ठीक है, तथापि मेरी यह दूसरी बात भी मानो।

**महापापानि कर्माणि यानि केवलसाहसात्।**
**आरभ्यन्ते भीमसेन व्यथन्ते तानि भारत ॥३१॥**

हे भरतनन्दन भीम! जो महान् पापमय कर्म केवल साहस के भरोसे आरम्भ किये जाते हैं, वे सभी कष्टदायक होते हैं।

**सुमन्त्रिते सुविक्रान्ते सुकृते सुविचारिते।**
**सिध्यन्त्यर्था महाबाहो दैवं चात्र प्रदक्षिणम् ॥३२॥**

महाबाहो! अच्छी प्रकार परामर्श और विचार करके पूरा पराक्रम प्रकट करते हुए सुन्दररूप से जो कार्य किये जाते हैं, वे सफल होते हैं और उनमें दैव भी अनुकूल हो जाता है।

**यत्तु केवलचापल्याद् बलदर्पोत्थितः स्वयम्।**
**आरब्धव्यमिदं कार्यं मन्यसे शृणु तत्र मे ॥३३॥**

तुम स्वयं बल के घमण्ड में उन्मत्त हो जो केवल चपलतावश स्वयं इस युद्धरूपी कार्य को अभी आरम्भ करने के योग्य मान रहे हो, उसके विषय में मेरी बात सुनो!

**भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च द्रोणपुत्रश्च वीर्यवान्।**
**धार्तराष्ट्रा दुराधर्षाः कृतास्त्राः सर्व एव हि ॥३४॥**

भीष्म, द्रोण, कर्ण, बलवान् अश्वत्थामा और दुर्धर्ष धृतराष्ट्र के पुत्र—ये सभी अस्त्रविद्या के ज्ञाता हैं।

**समा यद्यपि भीष्मस्य वृत्तिरस्मासु तेषु च।**
**द्रोणस्य च महाबाहो कृपस्य च महात्मनः ॥३५॥**
**अवश्यं राजपिण्डस्तैर्निर्वेश्य इति मे मतिः।**
**तस्मात्त्यक्ष्यन्ति संग्रामे प्राणानपि सुदुस्त्यजान् ॥३६॥**

हे महाबाहो! यद्यपि पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण तथा महामना कृपाचार्य का आन्तरिक स्नेह धृतराष्ट्र के पुत्रों तथा हम लोगों पर एक-सा ही है, तथापि वे राजा दुर्योधन का दिया हुआ अन्न खाते है, अतः उसका ऋण अवश्य चुकाएँगे, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। युद्ध आरम्भ होने पर वे दुर्योधन के पक्ष से लड़कर अपने दुस्त्यज प्राणों का भी परित्याग कर देंगे।

**सर्वे दिव्यास्त्रविद्वांसः सर्वे धर्मपरायणाः।**
**अजेयाश्चेति मे बुद्धिरपि देवैः सवासवैः ॥३७॥**

वे सब-के-सब दिव्यास्त्रों के ज्ञाता और धर्मपरायण हैं। मेरा तो विचार है कि इन्द्र-सहित देवता भी उन्हें परास्त नहीं कर सकते।

**अमर्षी नित्यसंरब्धस्तत्र कर्णो महारथः।**
**सर्वास्त्रविदनाधृष्यो ह्यभेद्यकवचावृतः ॥३८॥**

उस पक्ष में महारथी कर्ण भी है जो हमारे प्रति सदा अमर्ष और क्रोध से भरा रहता है। वह सब अस्त्रों का ज्ञाता, अजेय तथा अभेद्य कवच से सुरक्षित है।

**अनिर्जित्य रणे सर्वानेतान् पुरुषसत्तमान्।**
**अशक्यो ह्यसहायेन हन्तुं दुर्योधनस्त्वया ॥३९॥**

इन समस्त वीर पुरुषों को युद्ध में परास्त किये बिना तुम अकेले दुर्योधन को नहीं मार सकते।

**न निद्रामभिगच्छामि चिन्तयानो वृकोदर।**
**अतिसर्वान् धनुर्ग्राहान् सूतपुत्रस्य लाघवम् ॥४०॥**

वृकोदर! सूतपुत्र कर्ण के हाथ की फुर्ती और उसका समस्त धनुर्धरों से बढ़-चढ़कर होने का स्मरण करके मुझे अच्छी प्रकार नींद नहीं आती है।

वैशम्पायन उवाच

**एतद् वचनमाज्ञाय भीमसेनोऽत्यमर्षणः ।**
**बभूव विमनास्त्रस्तो न चैवोवाच किञ्चन ॥४१॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—जनमेजय ! युधिष्ठिर का यह वचन सुनकर अत्यन्त क्रोधी भीम उदास और शंकायुक्त हो गये, फिर उनके मुँह से कोई बात नहीं निकली ।

**तयोः संवदतोरेवं तदा पाण्डवयोर्द्वयोः ।**
**आजगाम महायोगी व्यासः सत्यवतीसुतः ॥४२॥**

दोनों पाण्डवों में जब इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी तभी महायोगी सत्यवतीपुत्र व्यासजी वहाँ आ पहुँचे ।

**सोऽभिगम्य यथान्यायं पाण्डवैः प्रतिपूजितः ।**
**युधिष्ठिरमिदं वाक्यमुवाच वदतां वर ॥४३॥**

पाण्डवों ने उठकर उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया । तत्पश्चात् वक्ताओं में श्रेष्ठ व्यासजी युधिष्ठिर से इस प्रकार बोले—

व्यास उवाच

**श्रेयसस्ते परः कालः प्राप्तो भरतसत्तम ।**
**येनाभिभविता शत्रून् रणे पार्थो धनुर्धरः ॥४४॥**

**व्यासजी बोले**—हे भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे कल्याण का समय आ गया है जिससे धनुर्धर अर्जुन युद्ध में शत्रुओं को पराजित कर देंगे ।

**गृहाणेमां मया प्रोक्तां सिद्धिं मूर्तिमतीमिव ।**
**विद्यां प्रतिस्मृतिं नाम प्रपन्नाय ब्रवीमि ते ॥४५॥**

मेरे द्वारा प्रदत्त 'प्रतिस्मृति' नामक विद्या को ग्रहण करो जो मूर्त्तिमती सिद्धि के समान है । तुम मेरे शरणागत हो, अतः मैं तुम्हें इस विद्या का उपदेश करता हूँ ।

**यामवाप्य महाबाहुरर्जुनः साधयिष्यति ।**
**अस्त्रहेतोर्महेन्द्रं च रुद्रं चैवाभिगच्छतु ॥४६॥**
**वरुणं च कुबेरं च धर्मराजं च पाण्डव ।**
**शक्तो ह्येष सुरान् द्रष्टुं तपसा विक्रमेण च ॥४७॥**

महाबाहु अर्जुन इस विद्या को तुमसे प्राप्त करके अपना सब कार्य सिद्ध करेंगे । पाण्डुनन्दन ! ये अर्जुन दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिए देवराज इन्द्र, रुद्र, वरुण, कुबेर तथा धर्मराज के पास जाएँ । ये अपनी तपस्या और पराक्रम से देवताओं को देखने=उनसे मिलने में समर्थ होंगे ।

**अस्त्राणीन्द्राच्च रुद्राच्च लोकपालेभ्य एव च ।**
**समादाय महाबाहुर्महत् कर्म करिष्यति ॥४८॥**

महाबाहु अर्जुन इन्द्र, रुद्र तथा अन्य लोकपालों से दिव्यास्त्र प्राप्त करके महान् कार्य करेंगे ।

**वनादस्माच्च कौन्तेय वनमन्यद् विचिन्त्यताम् ।**
**निवासार्थञ्च यद् युक्तं भवेद् वः पृथिवीपते ॥४९॥**

हे कुन्तीपुत्र ! नरेश ! अब तुम अपने निवास के लिए, इस वन से किसी दूसरे वन में, जो तुम्हारे लिए उपयोगी हो, जाने की बात सोचो ।

**एकत्र चिरवासो हि न प्रीतिजनको भवेत् ।**
**तापसानां च सर्वेषां भवेदुद्वेगकारकः ॥५०॥**

एक ही स्थान पर अधिक समय तक रहना प्रायः रुचिकारक नहीं होता । इसके अतिरिक्त, यहाँ तुम्हारा चिर-निवास समस्त तपस्वियों के लिए तप में विघ्न पड़ने के कारण उद्वेगकर होगा ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वा धर्मराजं व्यासः सत्यवतीसुतः ।**
**प्रोवाच योगतत्त्वज्ञो योगी विद्यामनुत्तमाम् ॥५१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! ऐसा कहकर योगतत्त्व के ज्ञाता, महायोगी, सत्यवतीपुत्र व्यास ने धर्मराज युधिष्ठिर को उस अत्युत्तम विद्या का उपदेश किया ।

**युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा तद् ब्रह्म मनसा यतः ।**
**धारयामास मेधावी काले काले सदाभ्यसन् ॥५२॥**

धर्मात्मा, मेधावी और एकाग्रचित युधिष्ठिर ने उस वेदोक्त विद्या को मनोयोग से हृदय में धारण किया और समय-समय पर सदा उसका अभ्यास करने लगे ।

**स व्यासवाक्यमुदितो वनाद् द्वैतवनात् ततः ।**
**ययौ सरस्वतीकूले काम्यकं नाम काननम् ॥५३॥**

तदनन्तर वे व्यासजी की आज्ञा से प्रसन्नतापूर्वक द्वैत वन से काम्यक वन में चले गये, जो सरस्वती के तट पर सुशोभित है ।

**इति महाभारते वनपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥**

# षष्ठोऽध्याय।

## अर्जुन का दिव्य अस्त्र-शस्त्र-प्राप्ति के लिए प्रस्थान, शंकर से अस्त्र-प्राप्ति

वैशम्पायन उवाच

**कस्यचित् त्वथ कालस्य धनञ्जयं युधिष्ठिरः।**
**संस्मृत्य मुनिसन्देशं रहसीदमुवाच ह ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! कुछ समय पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर को व्यास मुनि का सन्देश स्मरण हो आया, तब उन्होंने एकान्त में अर्जुन से इस प्रकार कहा—

युधिष्ठिर उवाच

**भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे द्रोणपुत्रे च भारत।**
**धनुर्वेदश्चतुष्पाद एतेष्वद्य . प्रतिष्ठितः ॥२॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हे भारत ! आजकल पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और अश्वत्थामा —इन सब में चारों पादों से युक्त सम्पूर्ण धनुर्वेद प्रतिष्ठित है।

**ते सर्वे धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण परिसान्त्विताः।**
**संविभक्ताश्च तुष्टाश्च गुरुवत्तेषु वर्तते ॥३॥**

उन सबको धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन ने बड़े आश्वासन के साथ रखा है और उपभोग की सामग्री देकर सन्तुष्ट किया है। इतना ही नहीं, वह उनके प्रति गुरुवत् व्यवहार करता है।

**आचार्या मानितास्तुस्टाः शान्ति व्यवहरन्त्युत।**
**शक्ति न हापयिष्यन्ति ते काले प्रतिपूजिताः ॥४॥**

उसके द्वारा सम्मानित, समादृत और सन्तुष्ट किये हुए आचार्यगण उसके लिए सदा शान्ति स्थिर रखने का प्रयत्न करते हैं, वे उसकी शक्ति को कभी क्षीण नहीं होने देंगे।

**अद्य चेयं मही कृत्स्ना दुर्योधनवशानुगा।**
**सग्रामनगरा पार्थ ससागरवनाकरा ॥५॥**

हे पार्थ ! आज यह सारी पृथिवी ग्रामों, नगरों, समुद्र, वन तथा खानोंसहित दुर्योधन के वश में है।

**भवानेव प्रियोऽस्माकं त्वयि भारः समाहितः।**
**अत्र कृत्यं प्रवक्ष्यामि प्राप्तकालमरिन्दम ॥६॥**
**कृष्णद्वैपायनात् तात गृहीतोपनिषन्मया।**
**तया प्रयुक्तया सम्यग् जगत् सर्वं प्रकाशते ॥७॥**

शत्रुदमन ! तुम्हीं हम सब लोगों के अत्यन्त प्रिय हो। हमारे उद्धार का सारा भार तुम्हीं पर है। अब इस समय के योग्य जो कर्त्तव्य मुझे उचित प्रतीत होता है, उसे सुनो। तात ! मैंने श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजी से एक रहस्यमयी विद्या प्राप्त की है जिसका विधिवत् प्रयोग करने पर समस्त जगत् सम्यक् रूप से ज्यों-का-त्यों स्पष्ट दीखने लगता है।

**तेन त्वं ब्रह्मणा तात संयुक्तः सुसमाहितः।**
**देवतानां यथाकालं प्रसादं प्रतिपालय ॥८॥**

तात ! इस मन्त्र-विद्या से युक्त एवं एकाग्रचित होकर तुम यथा-समय देवताओं की प्रसन्नता प्राप्त करो।

**शक्रमेव प्रपद्यस्व स तेऽस्त्राणि प्रदास्यति।**
**दीक्षितोऽद्यैव गच्छ त्वं द्रष्टुं देवं पुरन्दरम् ॥९॥**

तुम इन्द्र के पास जाओ। वही तुम्हें सब अस्त्र प्रदान करेंगे। आज ही दीक्षा ग्रहण करके तुम देवराज इन्द्र के दर्शन की इच्छा से यात्रा करो।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वा धर्मराजस्तमध्यापयत . प्रभुः।**
**अनुजज्ञे तदा वीरं भ्राता भ्रातरमग्रजः ॥१०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! ऐसा कहकर धर्मराज युधिष्ठिर ने अर्जुन को 'प्रतिस्मृति' नामक विद्या का उपदेश किया और अपने वीर भाई अर्जुन को वहाँ से प्रस्थान करने की आज्ञा दी।

**ततः प्रदक्षिणं कृत्वा भ्रातॄन् धौम्यं च पाण्डवः।**
**प्रातिष्ठत महाबाहुः प्रगृह्य रुचिरं धनुः ॥११॥**

तदनन्तर पाण्डुनन्दन महाबाहु अर्जुन ने अपना सुन्दर धनुष हाथ में लेकर सभी भाइयों और आचार्य धौम्य मुनि की प्रदक्षिणा कर वहाँ से प्रस्थान किया।

**अगच्छत् पर्वतं पुण्यमेकाह्नेव महामनाः।**
**मनोजवगतिर्भूत्वा योगयुक्तो यथानिलः ॥१२॥**

महामना अर्जुन योग-युक्त होने के कारण मन के समान तीव्र वेग से चलने में समर्थ हो गये थे, अतः

वे वायु के समान एक ही दिन में पुण्य पर्वत हिमालय पर पहुँच गये ।

**इन्द्रकीलं समासाद्य ततोऽतिष्ठद् धनञ्जयः ।**
**अन्तरिक्षेऽतिशुश्राव तिष्ठेति स वचस्तदा ॥१३॥**

तदनन्तर इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचकर अर्जुन ने आकाश में उच्च स्वर से गूँजती एक वाणी सुनी—'तिष्ठ=ठहरो !' तब वे वहीं ठहर गये ।

**तत् श्रुत्वा सर्वतो दृष्टिं चारयामास पाण्डवः ।**
**अथापश्यत् सव्यसाची वृक्षमूले तपस्विनम् ॥१४॥**

उस वाणी को सुनकर पाण्डुनन्दन अर्जुन ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। इतने में ही उन्हें वृक्ष के मूल भाग में बैठे हुए एक तपस्वी दिखाई दिये ।

**ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानं पिङ्गलं जटिलं कृशम् ।**
**सोऽब्रवीदर्जुनं तत्र स्थितं दृष्ट्वा महातपाः ॥१५॥**

वे ब्रह्मतेज से प्रदीप्त हो रहे थे, उनकी अङ्ग-कान्ति पिंगलवर्ण की थी। वे जटाजूट और अति दुर्बल थे। उन महातपस्वी ने अर्जुन को वहाँ खड़े देखकर पूछा—

**कस्त्वं तातेह सम्प्राप्तो धनुष्मान् कवची शरी ।**
**निक्षिपैतद् धनुस्तात नेहास्ति धनुषा कृतम् ॥१६॥**

तात ! तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? इस धनुष को यहीं फेंक दो, क्योंकि यहाँ इस धनुष का कोई प्रयोजन नहीं है ।

**तथा हसन्निवाभीक्ष्णं ब्राह्मणोऽर्जुनमब्रवीत् ।**
**न चैनं चालयामास धैर्यात् सुधृतनिश्चयम् ॥१७॥**

इस प्रकार उस ब्रह्मर्षि ने हँसते हुए-से बार-बार अर्जुन से धनुष को त्यागने की बात कही, परन्तु वे ब्रह्मर्षि दृढ़-निश्चयी अर्जुन को अपने धैर्य से विचलित नहीं कर सके ।

**तमुवाच ततः प्रीतः स द्विजः प्रहसन्निव ।**
**वरं वृणीष्व भद्रं ते शक्रोऽहमरिसूदन ॥१८॥**

तब उस ब्रह्मर्षि ने प्रसन्न हो हँसते हुए कहा—"हे शत्रुनाशक ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं इन्द्र हूँ, तुम मुझसे कोई वर माँगो ।"

**एवमुक्तः सहस्राक्षं प्रत्युवाच धनञ्जयः ।**
**प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा शूरः कुरुकुलोद्वहः ॥१९॥**

यह सुनकर कुरुकुल-भूषण शूरवीर अर्जुन ने सहस्रनेत्रधारी इन्द्र से हाथ जोड़कर प्रणामपूर्वक कहा—

**ईप्सितो ह्येष वै कामो वरं चैनं प्रयच्छ मे ।**
**त्वत्तोऽद्य भगवन्नस्त्रं कृत्स्नमिच्छामि वेदितुम् ॥२०॥**

'भगवन् ! मैं आपसे सम्पूर्ण अस्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ, यही मेरा अभीष्ट मनोरथ है, अतः मुझे यही वर दीजिए ।"

**प्रत्युवाच महेन्द्रस्तं प्रीतात्मा प्रहसन्निव ।**
**इह प्राप्तस्य किं कार्यमस्त्रैस्तव धनञ्जयः ॥२१॥**
**कामान्वृणीष्व लोकाँस्त्वं प्राप्तोऽसि परमां गतिम् ।**
**एवमुक्तः प्रत्युवाच सहस्राक्षं धनञ्जयः ॥२२॥**

तब इन्द्र ने प्रसन्नचित्त हो हँसते हुए कहा—"धनञ्जय ! जब तुम यहाँ तक आ ही गये हो, तब तुम अस्त्रों को लेकर क्या करोगे ? अब तुम इच्छा-अनुसार उत्तमलोक माँग लो, क्योंकि तुम्हें उत्तम गति प्राप्त हुई है ।" यह सुनकर धनञ्जय ने पुनः देवराज इन्द्र से कहा—

**न लोभान्न पुनः कामान् न देवत्वं पुनः सुखम् ।**
**न च सर्वामरैश्वर्यं कामये त्रिदशाधिप ॥२३॥**
**भ्रातॄंस्तान् विपिने त्यक्त्वा वैरमप्रतियात्य च ।**
**अकीर्तिं सर्वलोकेषु गच्छेयं शाश्वतीः समाः ॥२४॥**

"देवेश्वर ! मैं अपने भाइयों को वन में छोड़कर, शत्रुओं से वैर का बदला लिये बिना लोभ या कामना के वशीभूत हो, न तो देवत्व चाहता हूँ, न सुख और न सम्पूर्ण देवताओं का ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहता हूँ। यदि मैंने वैसा किया, तो सदा के लिए सम्पूर्ण लोकों में मुझे महान् अपयश प्राप्त होगा ।"

**एवमुक्तः प्रत्युवाच वृत्रहा पाण्डुनन्दनम् ।**
**सान्त्वयञ्छ्लक्ष्णया वाचा सर्वलोकनमस्कृतः ॥२५॥**

पाण्डुनन्दन अर्जुन के ऐसा कहने पर विश्ववन्द्य, वृत्र-विनाशक इन्द्र ने अर्जुन को सान्त्वना देते हुए मधुर वाणी में कहा—

**यदा द्रक्ष्यसि भूतेशं शूलवन्तं महेश्वरम् ।**
**तदा दातास्मि ते तात दिव्यान्यस्त्राणि सर्वशः ॥२६॥**

"तात ! जब तुम त्रिशूलधारी, भूतनाथ, महादेव का दर्शन कर लोगे, तब मैं तुम्हें सम्पूर्ण दिव्यास्त्र प्रदान करूँगा ।

**रमणीये वनोद्देशे रममाणोऽर्जुनस्तदा ।**
**तपस्युग्रे स्थितस्तत्र उग्रतेजा महामनाः ॥२७॥**

इन्द्र के चले जाने पर उग्र तेजस्वी महामना अर्जुन वहाँ वन के रमणीय प्रदेशों में घूम-फिरकर अत्यन्त कठोर तपस्या में संलग्न हो गये ।

**अथ कदाचित् वराहं ददर्शाद्भुतदर्शनम् ।**
**गाण्डीवं धनुरादाय तमुवाचाथ फाल्गुनः ॥२८॥**

कुछ काल पश्चात् अर्जुन ने एक अद्भुत सूअर को देखा । उसे देख गाण्डीव धनुष हाथ में ले अर्जुन ने उसे लक्ष्य करके कहा—

**यन्मां प्रार्थयसे हन्तुमनागसमिहागतम् ।**
**तस्मात् त्वां पूर्वमेवाहं नेताद्य यमसादनम् ॥२९॥**

"अरे ! तू यहाँ आये हुए मुझ निरपराध को मारने की घात में लगा हुआ है, अतः मैं आज पहले ही तुझे यमलोक पठा दूँगा ।"

**दृष्ट्वा तं प्रहरिष्यन्तं फाल्गुनं दृढधन्विनम् ।**
**किरातरूपी सहसा वारयामास शङ्करः ॥३०॥**

सुदृढ़ धनुषवाले अर्जुन को प्रहार के लिए उद्यत देख किरातरूपधारी शङ्कर ने उन्हें सहसा रोका ।

**मयैष प्रार्थितः पूर्वमिन्द्रकीलसमप्रभः ।**
**अनादृत्य च तद् वाक्यं प्रजहाराथ फाल्गुनः ॥३१॥**

और कहा—"इन्द्रकील पर्वत के समान कान्तिवाले इस सूअर को पहले से ही मैंने अपना लक्ष्य बना रखा है, अतः तुम इसे मत मारो ।" परन्तु अर्जुन ने किरात=भील के वचन की अवहेलना करके उसपर प्रहार कर ही दिया ।

**किरातश्च समं तस्मिन्नेकलक्ष्ये महाद्युतिः ।**
**प्रमुमोचाशनिप्रख्यं शरमग्निशिखोपमम् ॥३२॥**

साथ ही महातेजस्वी किरात ने भी उसी एकमात्र लक्ष्य पर विद्युत् और अग्नि-शिखा के समान एक तेजस्वी बाण छोड़ा ।

**तौ मुक्तौ सायकौ ताभ्यां समं तत्र निपेततुः ।**
**शूकरगात्रे विस्तीर्णे शैलसंहनने तदा ॥३३॥**

उन दोनों द्वारा छोड़े गये वे दोनों बाण एक ही साथ शूकर के पर्वत के समान विशाल शरीर में लगे ।

**तमब्रवीत् प्रीतमनाः कौन्तेयः प्रहसन्निव ।**
**किरातवेषसंच्छन्नं पुरुषं काञ्चनप्रभम् ॥३४॥**

तब प्रसन्नमन कुन्तीपुत्र अर्जुन ने किरात-वेश में छिपे हुए उस सुवर्ण के समान कान्तिमान् पुरुष से हँसते हुए-से कहा—

**किमर्थं च त्वया विद्धो वराहो मत्परिग्रहः ।**
**न ह्येष मृगयाधर्मो यस्त्वयाद्य कृतो मयि ।**
**तेन त्वां भ्रंशयिष्यामि जीवितात् पर्वताश्रय ॥३५॥**

यह सूअर तो मेरा लक्ष्य था । आपने उसपर बाण क्यों मारा ? यह मृगया का धर्म नहीं है जो आपने मेरे साथ किया है । हे पर्वतवासी ! इस अपराध के कारण मैं आज आपको जीवन से वञ्चित कर दूँगा ।

किरात उवाच

**मयैष धन्वनिर्मुक्तैस्ताडितः पूर्वमेव हि ।**
**बाणैरभिहतः शेते नीतश्च यमसादनम् ॥३६॥**

**किरात बोला**—मैंने अपने धनुष द्वारा छोड़े हुए बाणों से इसे पहले ही घायल कर दिया था । मेरे ही बाणों की चोट खाकर यह सदा के लिए सो रहा है और यमलोक पहुँच चुका है ।

**दोषान् स्वान् नार्हसेऽन्यस्मै वक्तुं स्वबलदर्पितः ।**
**अवलिप्तोऽसि मन्दात्मन् न मे जीवन् विमोक्ष्यसे ॥३७**

मूर्ख ! तुम अपने बल के घमण्ड में आकर अपने दोष दूसरों पर नहीं मढ़ सकते । तुम्हें अपनी शक्ति पर बड़ा गर्व है परन्तु आज तुम मेरे हाथ से जीवित नहीं बच सकते ।

**स्थिरो भव विमोक्ष्यामि सायकानशनीनिव ।**
**घटस्व परया शक्त्या मुञ्च त्वमपि सायकान् ॥३८॥**

धैर्यपूर्वक सामने डटे रहो, मैं वज्र के समान भयानक बाण छोड़ूँगा । तुम भी अपनी पूरी शक्ति लगाकर मुझे जीतने का प्रयास करो, मेरे ऊपर अपने बाण छोड़ो ।

वैशम्पायन उवाच

**तस्य तद् वचनं श्रुत्वा किरातस्यार्जुनस्तदा ।**
**रोषमाहारयामास ताडयामास चेषुभिः ॥३९॥**

किरात की बात सुनकर उस समय अर्जुन बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने बाणों से उस [किरात] पर प्रहार आरम्भ किया ।

**ततो हृष्टेन मनसा प्रतिजग्राह सायकान् ।**
**भूयो भूय इति प्राह मन्दमन्देत्युवाच ह ॥४०॥**

**प्रहरस्व शरानेतान् नाराचान् मर्मभेदिनः ।**
**इत्युक्तो बाणवर्षं स मुमोच सहसार्जुनः ॥४१॥**

तब किरात ने प्रसन्नचित्त से अर्जुन के छोड़े हुए सभी बाणों को पकड़ लिया और कहा—"ओ मूर्ख ! और बाण मार ! और बाण मार ! इन मर्म-भेदी नाराचों का प्रहार कर।" उसके ऐसा कहने पर अर्जुन ने सहसा बाणों की झड़ी लगा दी ।

शिव उवाच

**भो भो फाल्गुन तुष्टोऽस्मि कर्मणाप्रतिमेन ते ।**
**शौर्येणानेन धृत्या च क्षत्रियो नास्ति ते समः ॥४२॥**

**शिवजी ने कहा**—हे फाल्गुन ! मैं तुम्हारे इस अनुपम पराक्रम, शौर्य और धैर्य से बहुत संतुष्ट हूँ । तुम्हारे समान दूसरा कोई क्षत्रिय नहीं है ।

**प्रीतिमानस्मि ते पार्थ भवान् सत्यपराक्रमः ।**
**गृहाण वरमस्मत्तः कांक्षितं पुरुषोत्तम ॥४३॥**

हे पार्थ ! तुम्हारा पराक्रम यथार्थ है, अतः मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ । पुरुषोत्तम ! तुम मुझसे मनो-वाञ्छित वर ग्रहण करो ।

अर्जुन उवाच

**वरं ददासि चेन्मह्यं कामं प्रीत्या वृषध्वज ।**
**कामये दिव्यमस्त्रं तद् घोरं पाशुपतं प्रभो ॥४४॥**

**अर्जुन ने कहा**—वृषध्वज ! यदि आप प्रसन्नता-पूर्वक मुझे इच्छानुसार वर देते हैं तो हे प्रभो ! मैं पाशुपत नामक भयंकर दिव्यास्त्र को प्राप्त करना चाहता हूँ ।

शिव उवाच

**ददामि तेऽस्त्रं दयितमहं पाशुपतं विभो ।**
**समर्थो धारणे मोक्षे संहारे चासि पाण्डव ॥४५॥**

**शिवजी ने कहा**—पराक्रमशाली पाण्डुकुमार ! मैं अपना परमप्रिय पाशुपतास्त्र तुम्हें प्रदान करता हूँ । तुम इसके धारण, प्रयोग और उपसंहार में समर्थ हो ।

**नैतद् वेद महेन्द्रोऽपि न यमो न च यक्षराट् ।**
**वरुणोऽप्यथवा वायुः कुतो वेत्स्यन्ति मानवाः ॥४६॥**

इस अस्त्र को देवराज इन्द्र, यम, यक्षराज कुबेर, वरुण अथवा वायुदेव भी नहीं जानते फिर साधारण मनुष्य तो जान ही कैसे सकेंगे ?

**न त्वेतत् सहसा पार्थ मोक्तव्यं पुरुषे क्वचित् ।**
**जगद् विनाशयेत् सर्वमल्पतेजसि पातितम् ॥४७॥**

परन्तु पार्थ ! तुम सहसा किसी पुरुष पर इसका प्रयोग मत करना । यदि किसी अल्पशक्ति योद्धा पर इसका प्रयोग किया गया तो यह सम्पूर्ण जगत् का नाश कर डालेगा ।

**अवध्यो नाम नास्त्यत्र त्रैलोक्ये सचराचरे ।**
**मनसा चक्षुषा वाचा धनुषा च निपातयेत् ॥४८॥**

चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकी में ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो इस अस्त्र के द्वारा न मारा जा सके । इसका प्रयोग करनेवाला पुरुष अपने मानसिक संकल्प से, दृष्टि से, वाणी से तथा धनुष-बाण द्वारा भी शत्रुओं को नष्ट कर सकता है ।

वैशम्पायन उवाच

**स्वर्गं गच्छेत्यनुज्ञातस्त्र्यम्बकेन तदार्जुनः ।**
**प्रणम्य शिरसा राजन् प्राञ्जलिर्देवमैक्षत ॥४९॥**

**वैशम्पायनजी ने कहा**—अस्त्र देकर शिवजी ने अर्जुन को आज्ञा दी—'अब तुम स्वर्गलोक को जाओ।' राजन् ! तब अर्जुन ने हाथ जोड़कर उनकी ओर देखा और चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया ।

**इति महाभारते वनपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥६॥**

# सप्तमोऽध्यायः

## अर्जुन का स्वर्गलोक में गमन और अस्त्र तथा संगीत की शिक्षा

वैशम्पायन उवाच

**ततोऽर्जुनः परं चक्रे विस्मयं परवीरहा ।**
**मया साक्षान्महादेवो दृष्ट इत्येव भारत ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! शिव के चले जाने पर शत्रुवीरों का संहार करनेवाले अर्जुन को यह सोचकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि आज मुझे महादेवजी का साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ है ।

**कृतार्थं चावगच्छामि परमात्मानमाहवे ।**
**शत्रूंश्च विजितान् सर्वान् निर्वृत्तं च प्रयोजनम् ॥२॥**

आज मैं अपने-आपको परम कृतार्थ मानता हूँ, साथ ही यह विश्वास करता हूँ कि महासमर में अपने समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करूँगा। अब मेरा अभीष्ट प्रयोजन सिद्ध हो गया है।

**इत्येवं चिन्तयानस्य पार्थस्यामिततेजसः।**
**रथो मातलिसंयुक्त आजगाम महाप्रभः ॥३॥**

अमित तेजस्वी कुन्तीनन्दन के ऐसा चिन्तन करते ही इन्द्र द्वारा प्रेषित मातलिसहित जगमगाता हुआ रथ वहाँ आ पहुँचा।

**तथा तर्कयतस्तस्य फाल्गुनस्याथ मातलिः।**
**संनतः प्रस्थितो भूत्वा वाक्यमर्जुनमब्रवीत् ॥४॥**

इस प्रकार विचार करते हुए अर्जुन के सम्मुख उपस्थित हो मातलि ने विनीत भाव से कहा—

मातलिरुवाच

**भो भो शक्रात्मज श्रीमाञ्छक्रस्त्वां द्रष्टुमिच्छति।**
**आरोहतु भवाञ्छीघ्रं रथमिन्द्रस्य सम्मतम् ॥५॥**

**मातलि ने कहा**—इन्द्रकुमार! श्रीमान् देवराज इन्द्र आपको देखना चाहते हैं। यह उनका प्रिय रथ है। आप शीघ्र इसपर आरूढ़ हो जाइए।

वैशम्पायन उवाच

**तस्य तद् वचनं श्रुत्वाऽर्जुनस्तु परवीरहा।**
**आरुरोह रथं दिव्यं द्योतयन्निव भास्करः ॥६॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—हे जनमेजय! मातलि का यह वचन सुनकर शत्रुवीरों का संहार करनेवाले अर्जुन उस दिव्य रथ पर ऐसे आरूढ़ हुए, मानो सूर्य सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित कर रहा हो।

**स तेनादित्यरूपेण दिव्येनाद्भुतकर्मणा।**
**प्रविवेश महाबाहुः शक्रस्य दयितां पुरीम् ॥७॥**

महाबाहु अर्जुन उस अद्भुत चाल से चलनेवाले सूर्य के समान दीप्त दिव्य रथ के द्वारा देवराज इन्द्र की प्रिय नगरी अमरावती में प्रविष्ट हुए।

**ततोऽभिगम्य देवेशं शिरसाभ्यगमद् बली। □**
**स चैनं वृत्तपीनाभ्यां बाहुभ्यां प्रत्यगृह्णत ॥८॥**

इन्द्रपुरी में पहुँच और सभा में प्रविष्ट होकर महाबली अर्जुन ने निकट जाकर देवराज इन्द्र के चरणों में मस्तक रख दिया। इन्द्र ने भी अपनी गोल-गोल मोटी भुजाओं से उसे उठाकर अपने हृदय से लगा लिया।

**ततः शक्रासने पुण्ये देवर्षिगणसेविते। □**
**शक्रः पाणौ गृहीत्वैनमुपावेशयदन्तिके ॥९॥**

तत्पश्चात् इन्द्र ने अर्जुन का हाथ पकड़कर अपने देवर्षिगण से सेवित पवित्र सिंहासन पर उन्हें अपने पास ही बैठा लिया।

**एवं सम्पूजितो जिष्णुरुवास भवने पितुः।**
**उपशिक्षन् महास्त्राणि ससंहाराणि पाण्डवः ॥१०॥**

इस प्रकार पूजित होकर पाण्डुकुमार अर्जुन अपने पिता के घर में रहने और उनसे उपसंहारसहित महान् अस्त्रों की शिक्षा ग्रहण करने लगे।

**शक्रस्य हस्ताद् दयितं वज्रमस्त्रं च दुःसहम्।**
**अशनीश्च महानादा मेघबर्हिणलक्षणाः ॥११॥**

उन्होंने इन्द्र के हाथ से उनके प्रिय एवं दुःसह अस्त्र वज्र और भारी गड़गड़ाहट पैदा करनेवाली उन अशनियों को ग्रहण किया, जिनका प्रयोग करने पर जगत् में मेघों की घटा घिर आती है और मोर नाचने लगते हैं।

**गृहीतास्त्रस्तु कौन्तेयो भ्रातॄन् संस्मार पाण्डवः। □**
**पुरन्दरनियोगाच्च पञ्चाब्दानवसत् सुखी ॥१२॥**

सब अस्त्रों की शिक्षा ग्रहण कर लेने पर अर्जुन ने अपने भाइयों का स्मरण किया। परन्तु इन्द्र के विशेष अनुरोध से वे पाँच वर्षों तक वहाँ सुखपूर्वक ठहरे रहे।

**ततः शक्रोऽब्रवीत् पार्थं कृतास्त्रं काल आगते।**
**नृत्यं गीतं च कौन्तेय चित्रसेनादवाप्नुहि ॥१३॥**

अस्त्र शिक्षा में पारंगत हो जाने पर एक दिन उपयुक्त अवसर आने पर इन्द्र ने कुन्तीनन्दन अर्जुन से कहा—"कुन्तीनन्दन! तुम चित्रसेन से नृत्य और गीत की शिक्षा ग्रहण करो।

**वादित्रं देवविहितं नृलोके यन्न विद्यते।**
**तदर्जयस्व कौन्तेय श्रेयो वै ते भविष्यति ॥१४॥**

"कुन्तीपुत्र! मनुष्यलोक में जो अबतक प्रचलित नहीं है, देवताओं की उस वाद्य-कला का ज्ञान प्राप्त कर लो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।"

**सखायं प्रददौ चास्य चित्रसेनं पुरन्दरः।**
**स तेन सह संगम्य रेमे पार्थो निरामयः ॥१५॥**

पुरन्दर ने अर्जुन को संगीत की शिक्षा देने के लिए उन्हीं के मित्र चित्रसेन को नियुक्त कर दिया। मित्र से मिलकर दुःख-शोक से रहित अर्जुन बड़े प्रसन्न हुए।

**गीतवादित्रनृत्यानि भूय एवादिदेश ह।**
**गान्धर्वमतुलं नृत्यं वादित्रं चोपलब्धवान् ।।१६।।**

चित्रसेन ने उन्हें गीत, वाद्य और नृत्य की बार-बार शिक्षा दी तथा अर्जुन ने भी गीत, वाद्य और नृत्य की उस अनुपम कला को पूर्णरूप से प्राप्त कर लिया।

**इति महाभारते वनपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ।।७।।**

# अष्टमोऽध्यायः

## अर्जुन का आदर्श चरित, उर्वशी का उन्हें शाप देना

वैशम्पायन उवाच

**आदावेवाथ तं शक्रश्चित्रसेनं रहोऽब्रवीत्।**
**पार्थस्य चक्षुरुर्वश्यां सक्तं विज्ञाय वासवः ।।१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! एक समय इन्द्र ने अर्जुन के नेत्र उर्वशी के प्रति आसक्त जानकर चित्रसेन गन्धर्व को बुलाया और एकान्त में उनसे यह बात कही—

**गन्धर्वराज गच्छाद्य प्रहितोऽप्सरसां वराम्।**
**उर्वशीं पुरुषव्याघ्र सोपातिष्ठतु फाल्गुनम् ।।२।।**

गन्धर्वराज! तुम मेरी आज्ञा से अप्सराओं में श्रेष्ठ उर्वशी के पास जाओ। पुरुषश्रेष्ठ! तुम्हें वहाँ भेजने का उद्देश्य यह है कि उर्वशी अर्जुन की सेवा में उपस्थित हो।

**एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सोऽनुज्ञां प्राप्य वासवात्।**
**गन्धर्वराजोऽप्सरसमभ्यगादुर्वशीं वराम् ।।३।।**

इन्द्र के ऐसा कहने पर 'तथास्तु' कहकर उनसे आज्ञा ले गन्धर्वराज चित्रसेन सुन्दरी अप्सरा उर्वशी के पास गये।

**तां दृष्ट्वा विदितो हृष्टः स्वागतेनार्चितस्तया।**
**सुखासीनः सुखासीनां स्मितपूर्वं वचोऽब्रवीत् ।।४।।**

उससे मिलकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उर्वशी ने चित्रसेन को आया जान स्वागतपूर्वक उसका सत्कार किया। जब वे आराम से बैठ गये, तब वे सुखपूर्वक सुन्दर आसन पर बैठी हुई उर्वशी से मुस्करा कर बोले—

**यस्तु देवमनुष्येषु प्रख्यातः सहजैर्गुणैः।**
**श्रिया शीलेन रूपेण व्रतेन च दमेन च ।।५।।**
**वर्चस्वी तेजसा युक्तः क्षमावान् वीतमत्सरः।**
**विदितस्तेऽर्जुनो वीरः स स्वर्गफलमाप्नुयात् ।।६।।**
**त्वं तु शक्राभ्यनुज्ञाता तस्य पादान्तिकं व्रज।**
**तदेवं कुरु कल्याणि प्रसन्नस्त्वां धनञ्जयः ।।७।।**

सुन्दरि! जो अपने स्वाभाविक सद्गुण श्री, शील स्वभाव, मनोहर रूप, उत्तम-व्रत और इन्द्रिय-संयम के कारण देवताओं तथा मनुष्यों में विख्यात हैं, जो वर्चस्वी, तेजस्वी, क्षमाशील और ईर्ष्यारहित हैं, उन वीरवर अर्जुन को तुम अच्छी प्रकार जानती हो। उन्हें स्वर्ग में आने का फल अवश्य मिलना चाहिए। देवराज की आज्ञानुसार तुम आज अर्जुन की सेवा में उपस्थित होओ। कल्याणि! तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे कुन्तीपुत्र अर्जुन तुम पर प्रसन्न हों।

**एवमुक्ता स्मितं कृत्वा सम्मानं बहु मन्य च।**
**प्रत्युवाचोर्वशी प्रीता चित्रसेनमनिन्दिता ।।८।।**

चित्रसेन के ऐसा कहने पर और इस आदेश को अपने लिए बहुत बड़ा सम्मान समझकर अनिन्द्य सुन्दरी उर्वशी मुस्करा कर चित्रसेन से यों बोली—

**महेन्द्रस्य नियोगेन त्वत्तः सम्प्रणयेन च।**
**तस्य चाहं गुणौघेन फाल्गुने जातमन्यथा।**
**गच्छ त्वं हि यथाकाममागमिष्याम्यहं सुखम् ।।९।।**

महेन्द्र की आज्ञा से, तुम्हारे प्रेमपूर्ण अनुरोध से तथा अर्जुन के गुण-समूह से मेरी उनके प्रति बड़ी प्रणयासक्ति हो गई है। तुम जाओ। मैं इच्छानुसार यथासमय उनके स्थान पर जाऊँगी।

**ततो विसृज्य गन्धर्वं कृतकृत्यं शुचिस्मिता।**
**उर्वशी चाकरोत् स्नानं पार्थदर्शनलालसा ।।१०।।**

तदनन्तर कृतकृत्य हुए गन्धर्वराज चित्रसेन को विदा करके पवित्र मुस्कानवाली उर्वशी ने अर्जुन से मिलने के लिए उत्सुक हो स्नान किया।

**निर्गम्य चन्द्रोदयने विगाढे रजनीमुखे।**
**प्रस्थिता सा पृथुश्रोणी पार्थस्य भवनं प्रति ॥११॥**

सन्ध्या-समय चन्द्रोदय होने पर जब चारों ओर चाँदनी छिटक गई तब स्थूल कटि-प्रदेशवाली वह अप्सरा अपने भवन से निकलकर अर्जुन के निवास-स्थान की ओर चली।

**सीधुपानेन चाल्पेन तुष्टचाथ मदनेन च।**
**विलासनैश्च विविधैः प्रेक्षणीयतराभवत् ॥१२॥**

वह अल्प सुरापान से, तुष्टि की कामना से, काम से और नाना प्रकार की विलास-भंगिमाओं से युक्त होने के कारण अत्यन्त दर्शनीय हो रही थी।

**ततः प्राप्ता क्षणेनैव मनःपवनगामिनी।**
**भवनं पाण्डुपुत्रस्य फाल्गुनस्य शुचिस्मिता ॥१३॥**

मन और वायु के समान तीव्र वेग से चलनेवाली पवित्र मुस्कान से शोभायमान वह अप्सरा क्षणभर में पाण्डुपुत्र अर्जुन के आवास में जा पहुँची।

**तत्र द्वारमनुप्राप्ता द्वारस्थैश्च निवेदिता।**
**अर्जुनस्य नरश्रेष्ठ उर्वशी शुभलोचना ॥१४॥**
**उपातिष्ठत तद् वेश्म निर्मलं सुमनोहरम्।**
**स शंकितमना राजन् प्रत्युदगच्छत् तां निशि ॥१५॥**

नरश्रेष्ठ जनमेजय! महल के द्वार पर पहुँचकर वह ठहर गई। उस समय द्वारपालों ने अर्जुन को उसके आगमन की सूचना दी। तब सुन्दर नेत्रोंवाली उर्वशी रात्रि में अर्जुन के अत्यन्त मनोहर तथा उज्ज्वल भवन में प्रविष्ट हुई। राजन्! अर्जुन सशङ्क हृदय से उसके सामने गये।

**दृष्ट्वैव चोर्वशीं पार्थो लज्जासंवृतलोचनः।**
**तदाभिवादनं कृत्वा गुरुपूजां प्रयुक्तवान् ॥१६॥**

उर्वशी को आई देख अर्जुन के नेत्र लज्जा से नत हो गये। उस समय उन्होंने उर्वशी के चरणों में प्रणाम करके उसका गुरुजनोचित सत्कार किया।

अर्जुन उवाच

**अभिवादये त्वां शिरसा प्रवराप्सरसां वरे।**
**किमाज्ञापयसे देवि प्रेष्यस्तेऽहमुपस्थितः ॥१७॥**

**अर्जुन ने कहा**—देवि! श्रेष्ठ अप्सराओं में भी तुम्हारा स्थान सबसे ऊँचा है। मैं तुम्हारे चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम करता हूँ। बताओ, मेरे लिए क्या आज्ञा है? मैं तुम्हारा सेवक हूँ और तुम्हारी आज्ञा-पालन करने के लिए उपस्थित हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**फाल्गुनस्य वचः श्रुत्वा गतसंज्ञा तदोर्वशी।**
**गन्धर्ववचनं सर्वं श्रावयामास तं तदा ॥१८॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—अर्जुन की यह बात सुनकर उर्वशी के होश-हवास गुम हो गये। उस समय उसने गन्धर्वराज चित्रसेन की कही हुई सारी बातें कह सुनाईं।

उर्वश्युवाच

**उपस्थाने महेन्द्रस्य वर्तमाने मनोरमे।**
**तवागमनतो वृत्ते स्वर्गस्य परमोत्सवे ॥१९॥**
**वीणासु वाद्यमानासु गन्धर्वैः शक्रनन्दन।**
**दिव्ये मनोरमे गेये प्रवृत्ते पृथुलोचन ॥२०॥**
**सर्वाप्सरःसु मुख्यासु प्रनृत्तासु कुरूद्वह।**
**त्वं किलानिमिषः पार्थ मामेकां तत्र दृष्टवान् ॥२१॥**

**उर्वशी ने कहा**—कुरुनन्दन पार्थ! देवराज इन्द्र के इस मनोरम निवास-स्थान में तुम्हारे शुभागमन के उपलक्ष्य में एक महान् उत्सव का आयोजन किया गया था। स्वर्ग-लोक के उस सबसे बड़े उत्सव में उस समय गन्धर्वों द्वारा अनेक वीणाएँ बजायी जा रही थीं। दिव्य मनोरम संगीत छिड़ा हुआ था और सभी प्रमुख अप्सराएँ नाच रहीं थीं। विशाल नेत्र-वाले इन्द्रकुमार! उस समय तुम मेरी ओर निर्निमेष नयनों से निहार रहे थे।

**ततोऽहं समनुज्ञाता तेन पित्रा च तेऽनघ।**
**तवान्तिकमनुप्राप्ता शुश्रूषितुमरिन्दम ॥२२॥**

अनघ! शत्रुनाशक! तदनन्तर चित्रसेन और तुम्हारे पिता देवराज इन्द्र की आज्ञा शिरोधार्य करके मैं तुम्हारी सेवा के लिए तुम्हारे पास आई हूँ।

**त्वद् गुणाकृष्टचित्ताहमनङ्गवशमागता।**
**चिराभिलषितो वीर ममाप्येष मनोरथः ॥२३॥**

तुम्हारे गुणों ने मेरे चित्त को अपनी ओर खींच लिया है। मैं कामदेव के वश में हो गई हूँ। वीर!

मेरे हृदय में भी चिर-काल से यह मनोरथ चला आ रहा था।

वैशम्पायन उवाच

**तां तथा ब्रुवतीं श्रुत्वा भृशं लज्जाऽऽवृतोऽर्जुनः।**
**उवाच कर्णौ हस्ताभ्यां पिधाय त्रिदशालये ॥२४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! स्वर्गलोक में उर्वशी की यह बात सुनकर अर्जुन अत्यन्त लज्जा से गड़ गये और हाथों से दोनों कान मूँदकर बोले—

अर्जुन उवाच

**दुःश्रुतं मेऽस्तु सुभगे यन्मां वदसि भामिनि।**
**गुरुदारैः समाना मे निश्चयेन वरानने ॥२५॥**

**अर्जुन बोले**—हे सौभाग्यशीले ! भामिनि ! तुम जैसी बात कहरही हो, उसे सुनना भी मेरे लिए बड़े दुःख की बात है। वरानने ! निश्चय ही मेरी दृष्टि में तुम गुरु-पत्नियों के समान पूजनीया हो।

**यच्चेक्षितासि विस्पष्टं विशेषेण मया शुभे।**
**तच्च कारणपूर्वं हि शृणु सत्यं शुचिस्मिते ॥२६॥**

शुभे ! पवित्र मुस्कानवाली उर्वशी ! मैंने उस समय सभा में तुम्हारी ओर एकटक दृष्टि से देखा था, उसका एक विशेष कारण था, उसे बताता हूँ, सुनो !

**इयं पौरववंशस्य जननी मुदितेति च।**
**त्वामहं दृष्टवाँस्तत्र विज्ञायोत्फुल्ललोचनः ॥२७॥**

तुम आनन्दमयी उर्वशी ही पूरुवंश की जननी हो, ऐसा जानकर मेरे नेत्र खिल उठे और इसी पूज्य-भाव को लेकर ही मैंने तुम्हें वहाँ एकटक देखा था।

**यथा कुन्ती च माद्री च शची चैव ममानघे।**
**तथा च वंशजननी त्वं हि मेऽद्य गरीयसी ॥२८॥**

हे अनघे ! मेरी दृष्टि में कुन्ती, माद्री और शची का जो स्थान है, वही तुम्हारा भी है। तुम पूरुवंश की जननी होने के कारण आज भी मेरे लिए परम गौरवमयी हो।

**गच्छ मूर्ध्ना प्रपन्नोऽस्मि पादौ ते वरवर्णिनि।**
**त्वं हि मे मातृवत् पूज्या रक्ष्योऽहं पुत्रवत् त्वया ॥२९**

वरवर्णिनि ! मैं तुम्हारे चरणों में मस्तक रखकर तुम्हारी शरण में प्रणत हूँ। तुम लौट जाओ। मेरी दृष्टि में तुम माता के समान पूजनीया हो और तुम्हें पुत्र के समान मेरी रक्षा करनी चाहिए।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्ता तु पार्थेन उर्वशी क्रोधमूर्च्छिता।**
**वेपन्ती भ्रुकुटीवक्त्रा शशापाथ धनञ्जयम् ॥३०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! कुन्तीपुत्र अर्जुन के ऐसा कहने पर उर्वशी क्रोध से व्याकुल हो उठी। उसका शरीर काँपने लगा और भौंहें टेढ़ी हो गईं। उसने अर्जुन को शाप देते हुए कहा—

उर्वश्युवाच

**तव पित्राभ्यनुज्ञातां स्वयं च गृहमागताम्।**
**यस्मान्मां नाभिनन्देथाः कामबाणवशंगताम् ॥३१॥**
**तस्मात् त्वं नर्तनः पार्थ स्त्रीमध्ये मानवर्जितः।**
**अपुमानिति विख्यातः षण्ढवद् विचरिष्यसि ॥३२॥**

**उर्वशी बोली**—अर्जुन ! तुम्हारे पिता इन्द्र के कहने से मैं स्वयं तुम्हारे घर पर आई और काम-बाण से घायल हो रही हूँ, फिर भी तुम मेरा आदर नहीं करते, अतः तुम्हें स्त्रियों के बीच में सम्मान-रहित होकर नर्तक बनकर रहना पड़ेगा। तुम नपुंसक कहलाओगे और तुम्हारा सारा आचार-व्यवहार हिजड़ों के ही समान रहेगा।

वैशम्पायन उवाच

**एवं दत्त्वार्जुने शापं स्फुरदोष्ठी श्वसन्त्यथ।**
**पुनः प्रत्यागता क्षिप्रमुर्वशी गृहमात्मनः ॥३४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—फड़कते होठों से इस प्रकार शाप देकर उर्वशी लम्बी साँसें खींचती हुई शीघ्र ही अपने घर को लौट गई।

**ततोऽर्जुनस्त्वरमाणः चित्रसेनमरिन्दमः।**
**सम्प्राप्य रजनीवृत्तं तदुर्वश्या यथातथम् ॥३४॥**
**निवेदयामास तदा चित्रसेनाय पाण्डवः।**
**तत्र चैवं यथावृत्तं शापं चैव पुनः पुनः ॥३५॥**

उधर शत्रुदमन पाण्डुकुमार अर्जुन बड़ी उतावली के साथ चित्रसेन के समीप गये तथा रात्रि में उर्वशी के साथ जो घटना जिस प्रकार घटित हुई, वह सब उन्होंने उस समय चित्रसेन को ज्यों-की-त्यों कह सुनाई। साथ ही उसके शाप देने की बात भी बार-बार दोहराई।

**अवेदयच्च शक्रस्य चित्रसेनोऽपि सर्वशः।**
**तत आनाय्य तनयं विविक्ते हरिवाहनः ॥३६॥**

**सान्त्वयित्वा शुभैर्वाक्यैः स्मयमानोऽभ्यभाषत ।**
**सुपुत्राद्य पृथा तात त्वया पुत्रेण सत्तम ॥३७॥**

चित्रसेन ने भी सारी घटना देवराज इन्द्र को बताई। तब इन्द्र ने अपने पुत्र को बुलाकर एकान्त में कल्याणमय वचनों द्वारा सान्त्वना देते हुए मुस्करा-कर कहा—"तात ! तुम सत्पुरुषों के शिरोमणि हो। तुम जैसे पुत्र को पाकर कुन्ती वास्तव में पुत्रवती है।

**ऋषयोऽपि हि धैर्येण जिता वै ते महाभुज ।**
**यत्तु दत्तवती शापमुर्वशी तव मानद ॥३८॥**
**स चापि तेऽर्थकृत् तात साधकश्च भविष्यति ।**
**अज्ञातवासो वस्तव्यो भवद्भिर्भूतलेऽनघ ।**
**वर्षे त्रयोदशे वीर तत्र त्वं क्षपयिष्यसि ॥३९॥**

"महाबाहो ! तुमने अपने धैर्य=इन्द्रिय-संयम द्वारा ऋषियों को भी पराजित किया है। मानद ! उर्वशी ने तुम्हें जो शाप दिया है, वह तुम्हारे अभीष्ट अर्थ का साधक होगा। अनघ ! तुम्हें पृथिवी पर तेरहवें वर्ष में अज्ञातवास करना है। वीर ! उर्वशी के दिये हुए शाप को तुम उसी वर्ष में पूर्ण कर दोगे।"

**एवमुक्तस्तु शक्रेण फाल्गुनः परवीरहा ।**
**मुदं परमिकां लेभे न च शापं व्यचिन्तयत् ॥४०॥**

इन्द्र के ऐसा कहने पर शत्रुवीरों का संहार करने-वाले अर्जुन को बड़ी प्रसन्नता हुई और उनके शाप की चिन्ता छूट गई।

**इति महाभारते वनपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥८॥**

# नवमोऽध्यायः

## भीमसेन-युधिष्ठिर संवाद

जनमेजय उवाच

**अस्त्रहेतोर्गते पार्थे शक्रलोकं महात्मनि ।**
**युधिष्ठिरप्रभृतयः किमकुर्वत पाण्डवाः ॥१॥**

**जनमेजय ने पूछा**—हे ब्रह्मन् ! महात्मा अर्जुन के अस्त्र-विद्या की प्राप्ति के लिए इन्द्रलोक चले जाने पर युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने क्या किया ?

वैशम्पायन उवाच

**अस्त्रहेतोर्गते पार्थे शक्रलोकं महात्मनि ।**
**आवसन् कृष्णया सार्धं काम्यके भरतर्षभाः ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! महात्मा अर्जुन के अस्त्र-विद्या की प्राप्ति के लिए इन्द्रलोक चले जाने पर भरतकुलभूषण पाण्डव द्रौपदी के साथ काम्यक वन में रहने लगे।

**धनञ्जयवियोगाच्च राज्यभ्रंशाच्च दुःखिताः ।**
**अथ भीमो महाबाहुर्युधिष्ठिरमभाषत ॥३॥**

पाण्डव राज्य के अपहरण हो जाने से तो दुःखी थे ही, अर्जुन के वियोग से वे और भी क्लेश में पड़ गये थे। उस समय महाबाहु भीम ने युधिष्ठिर से कहा—

**क्षात्रं धर्मं महाराज त्वमवेक्षितुमर्हसि ।**
**न हि धर्मो महाराज क्षत्रियस्य वनाश्रयः ॥४॥**

"महाराज ! आप क्षत्रियधर्म की ओर देखिए। इस प्रकार वन में रहना क्षत्रियों का धर्म कदापि नहीं है।

**राज्यमेव परं धर्मं क्षत्रियस्य विदुर्बुधाः ।**
**स क्षत्रधर्मविद् राजा मा धर्म्यान्नीनशः पथः ॥५॥**

"विद्वानों ने राज्य को ही क्षत्रिय का सर्वोत्तम धर्म माना है। आप क्षत्रियधर्म के ज्ञाता नरेश हैं, अतः धर्म के मार्ग से विचलित मत होइए।

**प्राग् द्वादशसमा राजन् धार्तराष्ट्रान् निहन्महि ।**
**निवर्त्य च वनात् पार्थमानाय्य च जनार्दनम् ॥६॥**

"राजन् ! हम लोग बारह वर्ष व्यतीत होने से पहले ही अर्जुन को वन से लौटाकर और श्रीकृष्ण को बुलाकर धृतराष्ट्र के पुत्रों का संहार कर सकते हैं।

**निकृत्या निकृतिप्रज्ञा हन्तव्या इति निश्चयः ।**
**न हि नैकृतिकं हत्वा निकृत्या पापमुच्यते ॥७॥**

"शठता करने या जाननेवाले शत्रुओं को शठता के द्वारा ही मारना चाहिए, यह एक सिद्धान्त है। जो दूसरों के साथ छल-कपट करता है, उसे छल से मार डालने में पाप नहीं है।

**तथा भारत धर्मेषु धर्मज्ञैरिह दृश्यते ।**
**अहोरात्रं महाराज तुल्यं संवत्सरेण ह ॥८॥**

"भरतवंशी महाराज ! धर्मशास्त्र में धर्मपरायण धर्मज्ञ पुरुषों द्वारा यहाँ एक दिन-रात एक संवत्सर के समान देखा जाता है ।

**यदि वेदाः प्रमाणास्ते दिवसादूर्ध्वमच्युत ।**
**त्रयोदश समाः कालो ज्ञायतां परिनिष्ठितः ॥६॥**

"अच्युत ! यदि आप वेद को प्रमाण मानते हैं तो तेरहवें दिन के बाद ही तेरह वर्षों का समय बीत गया, ऐसा समझ लीजिए ।

**कालो दुर्योधनं हन्तुं सानुबन्धमरिन्दम ।**
**एकाग्रां पृथिवीं सर्वां पुरा राजन् करोति सः ॥१०॥**

"शत्रुदमन ! सगे-सम्बन्धियोंसहित दुर्योधन को मारने का समय आ गया है । राजन् ! जबतक वह सारी पृथिवी को एक सूत्र में बाँधे, उससे पूर्व ही उसे मार डालना चाहिए ।"

**एवं ब्रुवाणं भीमं तु धर्मराजो युधिष्ठिरः ।**
**उवाच सान्त्वयन् राजा मूर्ध्न्युपाघ्राय पाण्डवम् ॥११**

धर्मराज महाराज युधिष्ठिर ने उपर्युक्त बातें कहनेवाले पाण्डुनन्दन भीम का मस्तक सूँघकर उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—

**असंशयं महाबाहो हनिष्यसि सुयोधनम् ।**
**वर्षात् त्रयोदशादूर्ध्वं सह गाण्डीवधन्वना ॥१२॥**

"महाबाहो ! इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि तुम तेरह वर्ष पश्चात् गाण्डीवधारी अर्जुन के साथ मिलकर युद्ध में सुयोधन को मार डालोगे ।

**यत्त्वमाभाषसे पार्थ प्राप्तः काल इति प्रभो ।**
**अनृतं नोत्सहे वक्तुं न ह्येतन्मम विद्यते ॥१३॥**

"परन्तु कुन्तीकुमार वीर ! तुम जो यह कहते हो कि दुर्योधन के मारने का अवसर आ गया है, वह ठीक नहीं है । मैं झूठ नहीं बोल सकता, यह मेरा स्वभाव नहीं है ।

**अन्तरेणापि कौन्तेय निकृतं पापनिश्चयम् ।**
**हन्ता त्वमसि दुर्धर्ष सानुबन्धं सुयोधनम् ॥१४॥**

"कुन्तीनन्दन ! दुर्धर्ष वीर ! तुम छल-कपट का आश्रय लिये बिना भी पापपूर्ण विचार रखनेवाले सुयोधन को सम्बन्धियोंसहित नष्ट कर सकते हो ।"

**एवं ब्रुवति भीमं तु धर्मराजे युधिष्ठिरे ।**
**आजगाम महाभागो बृहदश्वो महानृषिः ॥१५॥**

धर्मराज युधिष्ठिर जब भीमसेन से ऐसी बातें कह रहे थे, उसी समय महाभाग महर्षि बृहदश्व वहाँ आ पहुँचे ।

**तमभिप्रेक्ष्य सम्प्राप्तं पूजयामास धर्मराट् ।**
**आश्वस्तं चैनमासीनं कृपणं बह्वभाषत ॥१६॥**

उन्हें आया देख धर्मराज युधिष्ठिर ने उनका स्वागत किया और जब वे विश्राम कर चुके, तब धर्मराज युधिष्ठिर दीनतापूर्वक बोले—

**अक्षद्यूते तु भगवन् धनं राज्यं च मे हृतम् ।**
**आहूय निकृतिप्रज्ञैः कितवैरक्षकोविदैः ॥१७॥**

"भगवन् ! मुझे जुए में बुलाकर छल-कपट में कुशल तथा पासा फेंकने की कला में निपुण धूर्त जुआरी शकुनि ने मेरे सारे धन तथा राज्य का अपहरण कर लिया ।

**अनक्षज्ञस्य हि सतो निकृत्या पापनिश्चयैः । □**
**भार्या च मे सभां नीता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥१८॥**

"मैं जुए का मर्मज्ञ नहीं हूँ । मुझे जुए में हराकर पापपूर्ण विचार रखनेवाले वे दुष्ट मेरी प्राणों से भी अधिक गौरवशालिनी पत्नी द्रौपदी को केश पकड़कर सभा में ले गये ।

**पुनर्द्यूतेन मां जित्वा वनवासं सुदारुणम् ।**
**प्राव्राजयन् महारण्यमजिनैः परिवारितम् ॥१६॥**

"एक बार जुए के संकट से बच जाने पर पुनः द्यूत का आयोजन कर उन्होंने मुझे जीत लिया और मृगचर्म पहनाकर वनवास का दारुण दुःख भोगने के लिए इस महान् वन में निर्वासित कर दिया ।

**अहं वने दुर्वसतीर्वसन् परमदुःखितः ।**
**अक्षद्यूताधिकारे च गिरः शृण्वन् सुदारुणाः ॥२०॥**
**आर्तानां सुहृदां वाचो द्यूतप्रभृति शंसताम् ।**
**अहं हृदि श्रिताः स्मृत्वा सर्वरात्रीर्विचिन्तयन् ॥२१॥**

"मैं अत्यन्त दुःखी हो, अति कठिनाई से वन में निवास करता हूँ । जिस सभा में जुआ खेलने का आयोजन किया गया था, वहाँ प्रतिपक्षियों के मुख से मुझे अत्यन्त कठोर बातें सुननी पड़ी थीं । इसके अतिरिक्त द्यूत आदि कार्यों का उल्लेख करते हुए मेरे

दुःखातुर सुहृदों ने जो सन्ताप-सूचक बातें कही थीं, वे सब मेरे हृदय में स्थित हैं। उन बातों को याद करके मैं सारी रात चिन्ता में मग्न रहता हूँ।

**यस्मिश्चैव समस्तानां प्राणा गाण्डीवधन्वनि।**
**विना महात्मना तेन गतसत्त्व इवाभवम् ॥२२॥**

"इधर जिस गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन में हम सबके प्राण बसते हैं, वह भी हमसे अलग है। महात्मा अर्जुन के बिना मैं निष्प्राण-सा हो गया हूँ।

**कदा द्रक्ष्यामि बीभत्सुं कृतास्त्रं पुनरागतम्।**
**प्रियवादिनमक्षुद्रं दयायुक्तमतन्द्रितः ॥२३॥**

"मैं सदा निरालस्य भाव से यही सोचा करता हूँ कि श्रेष्ठ, प्रियवादी और दयालु अर्जुन कब अस्त्र-विद्या सीखकर फिर यहाँ आएगा, और मैं निरन्तर उसके प्रिय दर्शन करूँगा।

**नृपोऽस्ति मद्विधः कश्चिदल्पभाग्यतरो भुवि।**
**भवता दृष्टपूर्वो वा श्रुतपूर्वोऽपि वा क्वचित्।**
**न मत्तो दुःखिततरः पुमानस्तीति मे मतिः ॥२४॥**

"क्या मेरे जैसा अत्यन्त भाग्यहीन राजा इस पृथिवी पर कोई दूसरा भी है? अथवा आपने कहीं मेरे जैसे किसी राजा को पहले कभी देखा या सुना है? मेरा तो यह विश्वास है कि मुझसे बढ़कर अत्यन्त दुःखी दूसरा कोई नहीं है।"

बृहदश्व उवाच

**यद् ब्रवीषि महाराज न मत्तो विद्यते क्वचित्।**
**अल्पभाग्यतरः कश्चित् पुमानस्तीति पाण्डव ॥२५॥**
**अत्र ते वर्णयिष्यामि यदि शुश्रूषसेऽनघ।**
**यस्त्वत्तो दुःखिततरो राजासीत् पृथिवीपते ॥२६॥**

**बृहदश्व बोले**—महाराज पाण्डुनन्दन! तुम जो यह कह रहे हो कि मुझसे बढ़कर अत्यन्त भाग्यहीन कोई पुरुष कहीं भी नहीं है, उसके विषय में मैं तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाऊँगा। निष्पाप पृथिवी-पते! यदि तुम सुनना चाहो तो मैं उस व्यक्ति का परिचय देता हूँ, जो इस पृथिवी पर तुम से भी अधिक दुःखी राजा था।

**निषधेषु महीपालो वीरसेन इति श्रुतः।**
**तस्य पुत्रोऽभवन्नाम्ना नलो धर्मार्थकोविदः ॥२७॥**

निषध देश में वीरसेन नाम के प्रसिद्ध भूपाल हो गये हैं। उनके पुत्र का नाम नल था। राजा नल धर्म और अर्थ के तत्त्वज्ञ थे।

**स निकृत्या जितो राजा पुष्करेणेति नः श्रुतम्।**
**वनवासं सुदुःखार्तो भार्यया न्यवसत् सह ॥२८॥**

हमने सुना है कि राजा नल को उसके भाई पुष्कर ने छल द्वारा जुए में जीत लिया था और वे अत्यन्त दुःख से आतुर हो अपनी पत्नी के साथ वनवास का दुःख भोगने लगे थे।

**न तस्य दासा न रथो न भ्राता न च बान्धवाः।**
**वने निवसतो राजञ्छेष्यन्ते स्म कदाचन ॥२९॥**

राजन्! उसके पास न सेवक थे, न रथ, न भाई थे, न बान्धव। वन में रहते समय उनके पास इन वस्तुओं में से कुछ भी शेष नहीं था।

**भवान् हि संवृतो वीरैर्भ्रातृभिर्देवसम्मितैः।**
**ब्रह्मकल्पैर्द्विजाग्र्यैश्च तस्मान्नार्हसि शोचितुम् ॥३०॥**

तुम तो देव-तुल्य पराक्रमी वीर भाइयों से घिरे हुए हो। ब्रह्माजी के समान तेजस्वी श्रेष्ठ ब्राह्मण तुम्हारे चारों ओर बैठे हुए हैं, अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए।

**इति महाभारते सभापर्वणि नवमोऽध्यायः ॥९॥**

# दशमोऽध्यायः

## अर्जुन के लिए पाण्डवों की चिन्ता

जनमेजय उवाच

**भगवन् काम्यकात् पार्थे गते मे प्रपितामहे।**
**पाण्डवाः किमकुर्वंस्ते तमृते सव्यसाचिनम् ॥१॥**

**जनमेजय ने पूछा**—भगवन्! मेरे पितामह अर्जुन के काम्यक वन से चले जाने पर उनसे अलग रहते हुए शेष पाण्डवों ने कौन-सा कार्य किया?

वैशम्पायन उवाच

**गते तु पाण्डवे तात काम्यकात् सत्यविक्रमे।**
**पितामहसमं धौम्यं प्राह राजा युधिष्ठिरः ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे तात! सत्यपराक्रमी

पाण्डुकुमार अर्जुन के काम्यक वन से चले जाने पर राजा युधिष्ठिर ने पितामह के समान प्रभावशाली पुरोहित धौम्यजी से कहा—

**वयं तु तमृते वीरं वनेऽस्मिन् द्विपदां वर ।**
**अवधानं न गच्छामः काम्यके सह कृष्णया ॥३॥**

"नरश्रेष्ठ ! इस काम्यकवन में वीर अर्जुन के बिना द्रौपदीसहित हम पाण्डवों का मन बिल्कुल नहीं लग रहा है ।

**भवानन्यद् वनं साधु बह्वन्नं फलवच्छुचि ।**
**आख्यातु रमणीयं च सेवितं पुण्यकर्मभिः ॥४॥**

"अतः आप हमें किसी ऐसे रमणीय वन का पता बताएँ, जो बहुत अच्छा, पवित्र, प्रचुर अन्न और फलों से सम्पन्न तथा पुण्यात्माओं द्वारा सेवित हो ।

**विविधानाश्रमान् कांश्चिद् द्विजातिभ्यः प्रतिश्रुतान् ।**
**सरांसि सरितश्चैव रमणीयांश्च पर्वतान् ॥५**
**आचक्ष्व न हि मे ब्रह्मन् रोचते तमृतेऽर्जुनम् ।**
**वनेऽस्मिन्काम्यके वासो गच्छामोऽन्यां दिशं प्रति ॥६**

"हे ब्रह्मन् ! आप दूसरे ब्राह्मणों से सुने हुए नाना प्रकार के कतिपय आश्रमों, सरोवरों, सरिताओं तथा रमणीय पर्वतों का पता बताइए । अर्जुन के बिना अब काम्यक वन में रहना हमें अच्छा नहीं लगता, अतः अब दूसरी दिशा को चलेंगे ।"

**एवं सम्भाषमाणे तु लोमश आजगाम ह ।**
**समभ्यर्च्य यथान्यायं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।**
**पप्रच्छागमने हेतुमटने च प्रयोजनम् ॥७॥**

जब इस प्रकार वार्तालाप चल रहा था, तभी महर्षि लोमश वहाँ आये । धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने उनका यथायोग्य पूजन किया तथा वहाँ आने और वन में घूमने का प्रयोजन पूछा ।

**स पृष्टः पाण्डुपुत्रेण प्रीयमाणो महामनाः ।**
**उवाच श्लक्ष्णया वाचा हर्षयन्निव पाण्डवान् ॥८॥**

युधिष्ठिर के इस प्रकार पूछने पर महामना महर्षि लोमश बड़े प्रसन्न हुए तथा अपनी मधुर वाणी द्वारा पाण्डवों का हर्ष बढ़ाते हुए बोले—

**संचरन्नस्मि कौन्तेय सर्वांल्लोकान् यदृच्छया ।**
**गतः शक्रस्य भवनं तत्रापश्यं सुरेश्वरम् ॥९॥**

"कुन्तीनन्दन ! मैं यों ही इच्छानुसार सम्पूर्ण लोकों में विचरण करता हूँ । एक दिन मैं देवराज इन्द्र के भवन में गया और वहाँ इन्द्र से मिला ।

**तव च भ्रातरं वीरमपश्यं सव्यसाचिनम् ।**
**शक्रस्यार्धासनगतं तत्र मे विस्मयो महान् ॥१०॥**
**आसीत् पुरुषशार्दूल दृष्ट्वा पार्थं तथागतम् ।**
**आह मां तत्र देवेशो गच्छ पाण्डुसुतान् प्रति ॥११॥**

"वहाँ मैंने तुम्हारे भ्राता सव्यसाची अर्जुन को भी देखा, जो इन्द्र के आधे सिंहासन पर बैठे हुए थे । पुरुषसिंह युधिष्ठिर ! तुम्हारे भाई अर्जुन को इन्द्र के सिंहासन पर बैठा देख जब मैं आश्चर्यचकित हो रहा था, उसी समय इन्द्र ने मुझसे कहा—"हे मुने ! तुम पाण्डवों के पास जाओ ।"

**सोऽहमभ्यागतः क्षिप्रं दिदृक्षुस्त्वां सहानुजम् ।**
**वचनात् पुरुहूतस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥१२॥**

"देवराज इन्द्र के आदेश से मैं भाइयोंसहित तुम्हें देखने के लिए शीघ्रतापूर्वक यहाँ आया हूँ । इसके लिए इन्द्र ने तो मुझे कहा ही था, महात्मा अर्जुन ने भी अनुरोध किया था ।

**आख्यास्ये ते प्रियं तात महत् पाण्डवनन्दन ।**
**ऋषिभिः सहितो राजन् कृष्णया चैव तच्छृणु ॥१३॥**
**यत् त्वयोक्तो महाबाहुरस्त्रार्थं भरतर्षभ ।**
**तदस्त्रमाप्तं पार्थेन रुद्रादप्रतिमं विभो ॥१४॥**

"हे तात ! पाण्डवों को आनन्दित करनेवाले युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें अत्यन्त प्रिय समाचार सुनाता हूँ । हे राजन् ! तुम इन महर्षियों और द्रौपदी के साथ मेरी बात सुनो । भरतकुलभूषण विभो ! तुमने महाबाहु अर्जुन को दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिए जो आदेश दिया था, उसके विषय में यह निवेदन करना है कि अर्जुन ने शंकर से उनका अनुपम पाशुपत नामक प्रसिद्ध अस्त्र प्राप्त कर लिया है ।

**यमात् कुबेराद् वरुणादिन्द्राच्च कुरुनन्दन ।**
**अस्त्राण्यधीतवान् पार्थो दिव्यान्यमितविक्रमः ॥१५॥**

"हे कुरुनन्दन ! अमित पराक्रमी अर्जुन ने यम, कुबेर, वरुण और इन्द्र से भी दिव्यास्त्रों का अध्ययन पूर्ण कर लिया है ।

**विश्वावसोस्तु तनयाद् गीतं नृत्यं च साम च ।**
**वादित्रं च यथान्यायं प्रत्यविन्दद् यथाविधि ॥१६॥**

"इतना ही नहीं, अपितु उन्होंने विश्वावसु के पुत्र चित्ररथ से नृत्य, गीत, सामगान वाद्य कला की भी विधिपूर्वक यथोचित शिक्षा प्राप्त कर ली है।

**आगमिष्यति ते भ्राता कृतास्त्रः क्षिप्रमर्जुनः ।**
**तपसापि त्वमात्मानं योजय भ्रातृभिः सह ॥१७॥**

"राजन् ! तुम्हारे भाई अर्जुन अस्त्रविद्या में निपुण हो चुके हैं, वे शीघ्र ही लौटेंगे । तबतक तुम भी भाइयों के साथ स्वयं को तपस्या में लगाओ ।"

युधिष्ठिर उवाच

**न हर्षात् सम्प्रपश्यामि वाक्यस्यास्योत्तरं क्वचित् ।**
**स्मरेद्धि देवराजोऽयं को नामाभ्यधिकस्ततः ॥१८॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हे महर्षे ! आपके दर्शन और बातें सुनने से मुझे इतना हर्ष हुआ है कि मुझे इन वचनों का कोई उत्तर नहीं सूझता। देवराज इन्द्र जिसका स्मरण करते हों, उससे बढ़कर इस संसार में कौन भाग्यशाली होगा !

**भवता संगमो यस्य भ्राता चैव धनञ्जयः ।**
**वासवः स्मरते यस्य को नामाभ्यधिकस्ततः ॥१९॥**

जिसे आपका सङ्ग प्राप्त हो, जिसके अर्जुन जैसा भाई हो और जिसे देवराज इन्द्र याद करते हों, उससे बढ़कर भाग्यशाली और कौन है ?

वैशम्पायन उवाच

**धौम्येन सहिता वीरास्तथा तैर्वनवासिभिः ।**
**प्राङ्मुखाः प्रययुः सर्वे पाण्डवा जनमेजय ॥२०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! तदनन्तर वे सभी वीर पाण्डव वनवासी ब्राह्मणों और पुरोहित धौम्य के साथ पूर्वदिशा की ओर मुख करके वहाँ से प्रस्थित हुए।

**ते तथा सहिता वीरा वसन्तस्तत्र तत्र ह ।**
**कथां प्रचक्रिरे पुण्यां सदसिस्था महात्मनाम् ॥२१॥**

वे वीर पाण्डव भिन्न-भिन्न स्थानों में बसते हुए, सभा में बैठकर महात्मा पुरुषों की कथाएँ करते थे।

**इति महाभारते वनपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥१०॥**

# एकादशोऽध्यायः

## गन्धमादन पर्वत पर

युधिष्ठिर उवाच

**पञ्चवर्षाण्यहं वीरं सत्यसन्धं धनञ्जयम् ।**
**यन्न पश्यामि बीभत्सुं तेने तप्ये वृकोदर ॥१॥**

**युधिष्ठिर बोले**—भीमसेन ! आज पाँच वर्ष हो गये, मैं अपने वीर भाई सत्यप्रतिज्ञ अर्जुन के दर्शन से वञ्चित हो गया हूँ । इस कारण मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है।

**वासुदेवसमं वीर्ये कार्तवीर्यसमं युधि ।**
**अजेयममितं युद्धे तं न पश्यामि फाल्गुनम् ॥२॥**

जो पराक्रम में श्रीकृष्ण के समान और युद्ध में कार्तवीर्य अर्जुन के समान है, जो समर-भूमि में एक होकर भी असंख्य-सा प्रतीत होता है, उस अजेय वीर अर्जुन को मैं बहुत दिनों से नहीं देख पा रहा हूँ ।

**यस्य बाहुबले तुल्यः प्रभावे च पुरन्दरः ।**
**जवे वायुर्मुखे सोमः क्रोधे मृत्युः सनातनः ॥३॥**
**ते वयं तं नरव्याघ्रं सर्वे वीर दिदृक्षवः ।**
**प्रवेक्ष्यामो महाबाहो पर्वतं गन्धमादनम् ॥४॥**

महाबाहो ! जो बाहुबल और प्रभाव में देवराज इन्द्र के समान है, जिसके वेग में वायु, मुख में चन्द्रमा और क्रोध में सनातन मृत्यु का निवास है, उसी नर-श्रेष्ठ अर्जुन को (देखने) मिलने के लिए उत्सुक होकर हम सब लोग आज गन्धमादन पर्वत की घाटियों में प्रवेश करेंगे।

वैशम्पायन उवाच

**ते शूरास्ततधन्वानस्तूणवन्तः समार्गणाः ।**
**बद्धगोधांगुलित्राणाः खड्गवन्तोऽमितौजसः ॥५॥**
**परिगृह्य द्विजश्रेष्ठाञ्ज्येष्ठाः सर्वधनुष्मताम् ।**
**पाञ्चालीसहिता राजन् प्रययुर्गन्धमादनम् ॥६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! तदनन्तर सम्पूर्ण धनुर्धरों में अग्रगण्य वे अमित तेजस्वी शूरवीर पाण्डव विशाल धनुष, बाण, तरकश, ढाल और तलवार लिये, हाथों में गोह के चमड़े के दस्ताने पहने और श्रेष्ठ ब्राह्मणों को आगे किये द्रौपदी के साथ गन्धमादन पर्वत की ओर प्रस्थित हुए (चले) '

**प्रविशत्स्वथ वीरेषु पर्वतं गन्धमादनम् ।**
**चण्डवातं महद्वर्षं प्रादुरासीत् विशाम्पते ॥७॥**

राजन् ! वीर पाण्डवों के गन्धमादन पर्वत पर पदार्पण करते ही प्रचण्ड आँधी के साथ बड़े जोर की वर्षा होने लगी ।

**द्यौः स्वित् पतति किं भूमिर्दीर्यते पर्वतो नु किम् ।**
**इति ते मेनिरे सर्वे पवनेनापि मोहिताः ॥८॥**

हवा के झोंकों से अति क्षुब्ध [मोहित] होकर वे सब-के-सब मन-ही-मन सोचने लगे कि आकाश तो नहीं फट पड़ा है, पृथिवी तो विदीर्ण नहीं हो रही है अथवा कोई पर्वत तो नहीं फट रहा है ।

**ते पथानन्तरान् वृक्षान् वल्मीकान् विषमाणि च ।**
**पाणिभिः परिमार्गन्तो भीता वायोर्निलिल्यिरे ॥९॥**

तत्पश्चात् वे मार्ग के आस-पास के वृक्षों, मिट्टी के ढेरों और ऊँचे-नीचे स्थानों को हाथ से टटोलते हुए हवा के डर से यत्र-तत्र छिपने लगे ।

**तस्मिन्नुपरते शब्दे वाते च समतां गते ।**
**गते ह्यम्भसि निम्नानि प्रादुर्भूते दिवाकरे ॥१०॥**
**निर्जग्मुस्ते शनैः सर्वे समाजग्मुश्च भारत ।**
**प्रतस्थिरे पुनर्वीराः पर्वतं गन्धमादनम् ॥११॥**

हे भारत ! थोड़ी देर पश्चात् जब तूफान का वेग शान्त हुआ, वायु का वेग कम और सम हो गया, पर्वत का सारा जल बहकर नीचे चला गया और बादलों का आवरण दूर हो जाने से सूर्य प्रकाशित हो उठा, तब वे समस्त पाण्डव वीर धीरे-धीरे अपने स्थान से निकले और गन्धमादन पर्वत की ओर चल पड़े ।

**क्रोशमात्रं प्रयातेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।**
**सौकुमार्याच्च पाञ्चाली सम्मुमोह तपस्विनी ॥१२॥**

महात्मा पाण्डव अभी कोस-भर ही गये होंगे कि तपस्विनी द्रौपदी सुकुमारता के कारण मूर्च्छित होने लगी ।

**तां पतन्तीं वरारोहां भज्यमानां लतामिव ।**
**नकुलः समभिद्रुत्य परिजग्राह वीर्यवान् ॥१३॥**

सुन्दर अङ्गोंवाली द्रौपदी को टूटी हुई लता की भाँति गिरती देख बलशाली नकुल ने दौड़कर उसे थाम लिया ।

नकुल उवाच

**राजन् पाञ्चालराजस्य सुतेयमसितेक्षणा ।**
**श्रान्ता निपतिता भूमौ तामवेक्षस्व भारत ॥१४॥**

**नकुल ने कहा**—भरतकुलभूषण महाराज ! यह श्यामलोचना पाञ्चाल राजकुमारी द्रौपदी थककर पृथिवी पर गिर पड़ी है, आप आकर इसे देखिए ।

वैशम्पायन उवाच

**तामवेक्ष्य तु कौन्तेयो विवर्णवदनां कृशाम् ।**
**अङ्कमानीय धर्मात्मा पर्यदेवयदातुरः ॥१५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—धर्मात्मा कुन्तीनन्दन ने देखा—द्रौपदी के मुख की कान्ति फीकी पड़ गई है और उसका शरीर कृश हो गया है । तब वे उसे गोद में लेकर शोकातुर हो विलाप करने लगे ।

**स्पृश्यमाना करैः शीतैः पाण्डवैश्च मुहुर्मुहुः ।**
**पाञ्चाली सुखमासाद्य लेभे चेतः शनैः शनैः ॥१६॥**

पाण्डवों ने अपने शीतल हाथों से बार-बार द्रौपदी के अङ्गों को सहलाया । इस प्रकार कुछ आराम मिलने पर द्रौपदी को धीरे-धीरे चेत हुआ ।

**पर्याश्वासयदप्येनां धर्मराजो युधिष्ठिरः ।**
**उवाच च कुरुश्रेष्ठो भीमसेनमिदं वचः ॥१७॥**

फिर कुरुश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर ने भी द्रौपदी को बहुत आश्वासन दिया और भीमसेन से इस प्रकार कहा—

**बहवः पर्वता भीम विषमा हिमदुर्गमाः ।**
**तेषु कृष्णा महाबाहो कथं नु विचरिष्यति ॥१८॥**

"महाबाहु भीम ! यहाँ बहुत-से ऊँचे-नीचे पर्वत हैं । बर्फ के कारण उनपर चलना कठिन है । द्रौपदी उन पर्वतों पर कैसे चल सकेगी ?"

भीमसेन उवाच

**त्वां राजन् राजपुत्रीं च यमौ च पुरुषर्षभ ।**
**स्वयं नेष्यामि राजेन्द्र मा विषादे मनः कृथाः ॥१९॥**

**भीमसेन ने कहा**—पुरुषरत्न राजन् ! आप चिन्ता न करें । मैं स्वयं राजकुमारी द्रौपदी, नकुल, सहदेव और आपको भी ले चलूँगा ?

**हैडिम्बश्च महावीर्यो विहगो मद्बलोपमः ।**
**वहेदनघ सर्वान्नो वचनात् ते घटोत्कचः ॥२०॥**

हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कच भी महापराक्रमी है ।

वह मेरे ही समान बलवान् और आकाशचारी है। हे अनघ ! आपकी आज्ञा होने पर वह हम सबको ले चलेगा।

वैशम्पायन उवाच

**आज्ञप्तो धर्मराजेन पुत्रं सस्मार राक्षसम्।**
**घटोत्कचस्तु धर्मात्मा बद्धाञ्जलिरुपस्थितः ॥२१॥**
**उवाच भीमसेनं स पितरं भीमविक्रमम्।**
**आज्ञापय महाबाहो सर्वं कर्तास्म्यसंशयम् ॥२२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर भीमसेन ने अपने राक्षसपुत्र का स्मरण किया। स्मरण करते ही धर्मात्मा घटोत्कच हाथ जोड़े हुए वहाँ उपस्थित हुआ। फिर उसने भयंकर पराक्रमी अपने पिता भीमसेन से कहा—महाबाहो ! आज्ञा दीजिए। मैं आपका सब कार्य अवश्य ही पूरा करूँगा।

भीमसेन उवाच

**हैडिम्बेय परिश्रान्ता तव मातापराजित।**
**त्वं च कामगमस्तात स्कन्धमारोप्य तां वह ॥२३॥**

**भीमसेन बोले**—अपराजित हिडिम्बानन्दन ! तुम्हारी माता द्रौपदी बहुत थक गई हैं। तुम इच्छानुसार सर्वत्र जाने में समर्थ हो, अतः इन्हें कन्धे पर बैठाकर ले चलो।

घटोत्कच उवाच

**धर्मराजं च धौम्यं च कृष्णां च यमजौ तथा।**
**एकोऽप्यहमलं वोढुं किमुताद्य सहायवान् ॥२४॥**

**घटोत्कच बोला**—तात ! मैं अकेला रहूँ तो भी धर्मराज युधिष्ठिर, पुरोहित धौम्य, माता द्रौपदी और चाचा नकुल-सहदेव को भी वहन कर सकता हूँ। फिर आज तो मेरे और भी बहुत-से संगी-साथी विद्यमान हैं, अतः आप लोगों को ले चलना कौन बड़ी बात है ?

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वा ततः कृष्णामुवाह स घटोत्कचः।**
**पाण्डूनां मध्यगो वीरः पाण्डवानपि चापरे ॥२५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—ऐसा कहकर पाण्डवों के मध्य में स्थित वीर घटोत्कच ने द्रौपदी को और दूसरे राक्षसों ने पाण्डवों को अपने-अपने कन्धों पर बिठा लिया।

**एवं सुरमणीयानि वनान्युपवनानि च।**
**आलोकयन्तस्ते जग्मुर्विशालां बदरीं प्रति ॥२६॥**

इस प्रकार राक्षसों के कन्धों पर चढ़े वे सब लोग अत्यन्त रमणीक वनों और उपवनों का अवलोकन करते हुए विशाल बदरीक्षेत्र=बदरिकाश्रम की ओर चले।

**ते त्वाशुगतिभिर्वीरा राक्षसैस्तैर्महाजवैः।**
**उह्यमाना ययुः शीघ्रं दीर्घमध्वानमल्पवत् ॥२७॥**

उन महावेगशाली और तीव्र गति से चलनेवाले राक्षसों पर सवार हो वीर पाण्डवों ने उस विशाल मार्ग को इतनी तीव्रता से पार कर लिया, मानो वह बहुत छोटा हो।

**समदैश्चापि विहगैः पादपैरन्वितास्तथा।**
**तेऽवतीर्य बहून् देशानुत्तमर्द्धि-समन्वितान् ॥२८॥**
**ददृशुर्विविधाश्चर्यं कैलासं पर्वतोत्तमम्।**
**तस्याभ्याशे तु ददृशुर्नरनारायणाश्रमम् ॥२९॥**
**उपेतं पादपैर्दिव्यैः सदापुष्पफलोपगैः।**
**ददृशुस्तां च बदरीं वृत्तस्कन्धां मनोरमाम् ॥३०॥**

वह पर्वतीय प्रदेश मतवाले पक्षियों और अगणित वृक्षों से युक्त था। पाण्डवों ने उत्तम समृद्धि से सम्पन्न बहुत-से प्रदेशों को लाँघकर भाँति-भाँति के आश्चर्यजनक दृश्यों से सुशोभित पर्वतश्रेष्ठ कैलास का दर्शन किया। उसकी सीमा के निकट ही उन्हें नर-नारायण का आश्रम दिखाई दिया जो नित्य फल-फूल देनेवाले दिव्य वृक्षों से सुशोभित था। वहीं वह विशाल एवं मनोरम बदरी का वृक्ष था जिसका स्कन्ध=तना गोल था।

**तामुपेत्य महात्मानः सह तैर्ब्राह्मणर्षभैः।**
**अवतेरुस्ततः सर्वे रक्षःस्कन्धेभ्य एव च ॥३१॥**

उस बदरीवृक्ष के पास पहुँचकर ये सब महात्मा पाण्डव उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ राक्षसों के कन्धों से धीरे-धीरे उतरे।

**पादपैः पुष्पविकचैः फलभारावनामिभिः।**
**शोभिते सर्वतो रम्यैः पुंस्कोकिलगणायुतैः ॥३२॥**

उस वन में सब ओर सुरम्य वृक्ष दिखाई देते थे जो विकसित फूलों से युक्त थे। उनकी शाखाएँ फलों के बोझ से झुकी हुई थीं। कोकिल पक्षियों से युक्त

बहुसंख्यक वृक्षों के कारण उस वन की बड़ी शोभा होती थी।

**सरांसि च विचित्राणि प्रसन्नसलिलानि च।**
**कमलैः सोत्पलैश्चैव भ्राजमानानि सर्वशः ॥३३॥**

उस वन में कितने ही विचित्र सरोवर भी थे जो स्वच्छ जल से भरे हुए थे। खिले हुए उत्पल और कमल सब ओर से उनकी शोभा बढ़ा रहे थे।

**पुण्यगन्धः सुखस्पर्शो ववौ तत्र समीरणः।**
**ह्लादयन्पाण्डवान्सर्वान्द्रौपद्या सहितान् प्रभो ॥३४॥**

जनमेजय! गन्धमादन पर्वत पर पवित्र सुगन्ध से सुवासित सुखदायिनी वायु चल रही थी जो द्रौपदी सहित पाण्डवों को आनन्दमग्न कर रही थी।

**इति महाभारते वनपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥११॥**

# द्वादशोऽध्यायः

## भीमसेन का सौगन्धिक कमल लाने के लिए प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

**तत्र ते पुरुषव्याघ्राः परमं शौचमास्थिताः।**
**षड्रात्रमवसन् वीरा धनञ्जयदिदृक्षवः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! वे पुरुषसिंह वीर पाण्डव अर्जुन के दर्शन के लिए उत्सुक हो, परम पवित्रता के साथ वहाँ छह रात रहे।

**ततः पूर्वोत्तरे वायुः प्लवमानो यदृच्छया।**
**सहस्रपत्रमर्काभं दिव्यं पद्ममुपाहरत् ॥२॥**

एक दिन अकस्मात् ईशानकोण की ओर से वायु चली। उसने सूर्य के समान तेजस्वी एक दिव्य सहस्र-दलवाला कमल लाकर वहाँ डाल दिया।

**तदवैक्षत पाञ्चाली दिव्यगन्धं मनोरमम्।**
**अतीव मुदिता राजन् भीमसेनमथाब्रवीत् ॥३॥**

राजन्! उस दिव्य गन्ध से युक्त मनोरम कमल को देखकर द्रौपदी बहुत प्रसन्न होकर भीमसेन से यों बोली—

**यदि तेऽहं प्रिया पार्थ बहूनीमान्युपाहर।**
**तान्यहं नेतुमिच्छामि काम्यकं पुनराश्रमम् ॥४॥**

हे कुन्तीनन्दन! यदि मेरे ऊपर तुम्हारा प्रेम है, तो मेरे लिए ऐसे बहुत-से पुष्प ले आओ। मैं इन्हें काम्यक वन में अपने आश्रम पर ले चलना चाहती हूँ।

**अभिप्रायं तु विज्ञाय महिष्याः पुरुषर्षभः।**
**द्रौपद्याः प्रियकामः स प्रायाद् भीमो महाबलः ॥५॥**

तब नरश्रेष्ठ महाबली भीम महारानी द्रौपदी के मनोभाव को जानकर उनका प्रिय करने की इच्छा से वहाँ से चल दिये।

**वातं तमेवाभिमुखो यतस्तत् पुष्पमागतम्।**
**आजिहीर्षुर्जगामाशु स पुष्पाण्यपराण्यपि ॥६॥**

वे उसी प्रकार के और पुष्प ले आने की अभिलाषा से तुरन्त प्रवाहित वायु की ओर मुख करके ईशान-कोण में आगे बढ़े, जिधर से वह फूल आया था।

**चालयन्नूरुवेगेन लताजालान्यनेकशः।**
**आक्रीडमानो हृष्टात्मा श्रीमान् वायुसुतो ययौ ॥७॥**

शोभाशाली पवनपुत्र भीमसेन अपने महान् वेग से अनेक लता-समूहों को विचलित करते हुए हर्षपूर्ण हृदय से खेल-सा करते हुए चले जा रहे थे।

**परिवृत्तेऽहनि ततः प्रकीर्णहरिणे वने।**
**काञ्चनैर्विमलैः पद्मैर्ददर्श विपुलां नदीम् ॥८॥**

दिन बीतते-बीतते भीमसेन ने एक वन में जहाँ चारों ओर बहुत-से हरिण विचर रहे थे, सुन्दर सुवर्णमय कमलों से सुशोभित एक विशाल नदी देखी।

**तस्यां नद्यां महासत्त्वः सौगन्धिकवनं महत्।**
**अपश्यत् प्रीतिजननं बालार्कसदृशद्युतिः ॥९॥**

महान् धैर्य और उत्साह से सम्पन्न भीम ने उसी नदी से आवेष्टित एक विशाल सौगन्धिक वन देखा जो प्रसन्नता को बढ़ानेवाला था। यह वन प्रभातकालीन सूर्य-प्रभा की भाँति शोभित था।

**स गत्वा नलिनीं रम्यां राक्षसैरभिरक्षिताम्।**
**ददर्श विमलं तोयं पिबंश्च बहु पाण्डवः ॥१०॥**

पाण्डुपुत्र भीम ने आगे बढ़कर राक्षसों से रक्षित एक अत्यन्त रमणीय सरोवर को भी देखा। उसका

जल अत्यन्त निर्मल था। भीम ने उसका तृप्त होकर पान किया।

**ते तु दृष्ट्वैव कौन्तेयमजिनैः प्रतिवासितम्।**
**पुष्करेष्सुमुपायान्तमन्योन्यमभिचुक्रुशुः ॥११॥**

मृगचर्म लपेटे हुए कुन्तीकुमार भीम को कमल लेने की इच्छा से वहाँ आते देख वे पहरा देनेवाले राक्षस आपस में कोलाहल करने लगे।

**ततः सर्वे महाबाहुं समासाद्य वृकोदरम्।**
**तेजोयुक्तमपृच्छन्त कस्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥१२॥**

तत्पश्चात् वे सब राक्षस परम तेजस्वी महाबाहु भीम के पास आकर पूछने लगे—"तुम कौन हो और यहाँ क्यों आये हो ?" यह सब बताओ।

भीम उवाच

**पाण्डवो भीमसेनोऽहं धर्मराजादनन्तरः।**
**विशालां बदरीं प्राप्तो भ्रातृभिः सह राक्षसाः ॥१३॥**
**अपश्यत् तत्र पाञ्चाली सौगन्धिकमनुत्तमम्।**
**पुष्पाहारमिह प्राप्तं सा बहूनि परीप्सति ॥१४॥**

**भीमसेन बोले**—राक्षसो ! मैं धर्मराज युधिष्ठिर का छोटा भाई पाण्डुपुत्र भीमसेन हूँ और भाइयों के साथ विशाल बदरी नामक तीर्थ में आकर ठहरा हूँ। वहाँ पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदी ने सौगन्धिक नामक एक परम उत्तम कमल देखा। वह उसी प्रकार के और भी बहुत-से कमल चाहती हैं, मैं उनके लिए सौगन्धिक पुष्पों को संचय कर ले जाने के लिए यहाँ आया हूँ।

राक्षसा ऊचुः

**आक्रीडोऽयं कुबेरस्य दयितः पुरुषर्षभ।**
**नेह शक्यं मनुष्येण विहर्तुं मर्त्यधर्मिणा ॥१५॥**

**राक्षसों ने कहा**—नरश्रेष्ठ ! यह सरोवर कुबेर देव की परमप्रिय क्रीड़ास्थली है। इसमें मरणधर्मा मनुष्य विहार नहीं कर सकता।

**आमन्त्र्य यक्षराजं वै ततः पिब हरस्व च।**
**नातोऽन्यथा त्वया शक्यं किञ्चित् पुष्करमीक्षितुम् ॥**

तुम पहले यक्षराज की आज्ञा ले लो, तत्पश्चात् सरोवर का जलपान करो और कमल-पुष्प ले जाओ। ऐसा किये बिना तुम यहाँ के किसी कमल की ओर देख भी नहीं सकते।

भीम उवाच

**राक्षसास्तं न पश्यामि यक्षेश्वरमिहान्तिके।**
**दृष्ट्वापि च महाराजं नाहं याचितुमुत्सहे ॥१७॥**
**न हि याचन्ति राजान एष धर्मः सनातनः।**
**न चाहं हातुमिच्छामि क्षात्रधर्मं कथञ्चन ॥१८॥**

**भीमसेन बोले**—हे राक्षसो ! प्रथम तो मैं यहाँ आस-पास कहीं भी यक्षेश कुबेर को देख नहीं रहा हूँ, दूसरे यदि मैं उन्हें देख भी लूँ तो भी उनसे याचना नहीं कर सकता, क्योंकि क्षत्रिय कभी किसी से कुछ माँगते नहीं। यह उनका सनातनधर्म है और मैं किसी भी प्रकार क्षात्रधर्म को छोड़ना नहीं चाहता।

**इयं च नलिनी रम्या जाता पर्वतनिर्झरे।**
**नेयं भवनमासाद्य कुबेरस्य महात्मनः ॥१९॥**

यह रमणीय सरोवर पर्वतीय झरनों से प्रकट हुआ है, यह महात्मा कुबेर के घर में नहीं है।

**तुल्या हि सर्वभूतानामियं वैश्रवणस्य च।**
**एवंगतेषु द्रव्येषु कः कं याचितुमर्हति ॥२०॥**

इस सरोवर पर अन्य सब प्राणियों और कुबेर का समान अधिकार है। ऐसी सार्वजनिक वस्तुओं के लिए कौन किसकी याचना करेगा ?

वैशम्पायन उवाच

**इत्युक्त्वा राक्षसान् सर्वान् भीमसेनो ह्यमर्षणः।**
**व्यगाहत महातेजास्ते तं सर्वे न्यवारयन् ॥२१॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—जनमेजय ! सभी राक्षसों से ऐसा कहकर अमर्ष में भरे हुए महातेजस्वी भीम उस सरोवर में उतर पड़े। यह देख सब राक्षस उन्हें रोकने की चेष्टा करते हुए चिल्ला उठे—

**गृह्णीत बध्नीत विकर्ततेमं**
**पचाम खादाम च भीमसेनम्।**
**क्रुद्धा ब्रुवन्तोऽभिययुर्द्रुतं ते**
**शस्त्राणि चोद्यम्य विवृत्तनेत्राः ॥२२॥**

"अरे ! इसे पकड़ो, बाँध लो, काट डालो ! हम सब लोग इस भीम को पकाएँगे और खा जाएँगे।" क्रोधपूर्वक ऐसा कहते और आँखें फाड़-फाड़कर देखते हुए वे सभी राक्षस शस्त्र उठाकर तुरन्त भीम की ओर दौड़े।

**ततः स गुर्वीं यमदण्डकल्पां**
**महागदां काञ्चनपट्टनद्धाम् ।**
**प्रगृह्य तानभ्यपतत् तरस्वी**
**ततोऽब्रवीत् तिष्ठत तिष्ठतेति ।।२३।।**

तब भीम ने यम-दण्ड के समान विशाल और भारी गदा, जिसपर सोने का पत्र मढ़ा हुआ था, उठा ली। उसे लेकर वे वेग से उन राक्षसों पर टूट पड़े और ललकारते हुए बोले—"खड़े रहो, खड़े रहो!"

**ते तं तदा तोमरपट्टिशाद्यै-**
**र्व्याविद्धशस्त्रैः सहसा निपेतुः ।**
**जिघांसवः क्रोधवशाः सुभीमा**
**भीमं समन्तात् परिवव्रुरुग्राः ।।२४।।**

यह देख क्रोध के वशीभूत हुए वे भयंकर राक्षस भीमसेन को मार डालने की इच्छा से शत्रुओं के शस्त्रों को नष्ट कर देनेवाले तोमर, पट्टिश आदि आयुधों को लेकर सहसा उनकी ओर दौड़े और उन्हें चारों ओर से घेरकर खड़े हो गये।

**तेषां स मार्गान् विविधान् महात्मा**
**निहत्य शस्त्राणि च शात्रवाणाम् ।**
**यथा प्रवीरान् निजघान भीमः**
**परं शतं पुष्करिणीसमीपे ।।२५।।**

महामना भीम ने शत्रुओं के भाँति-भाँति के पैंतरो तथा अस्त्र-शस्त्रों को विफल करके उनके सौ से भी अधिक प्रमुख वीरों को उस सरोवर के समीप मार गिराया।

**ते तस्य वीर्यं च बलं च दृष्ट्वा**
**विद्याबलं बाहुबलं तथैव ।**
**अशक्नुवन्तः सहितं समन्ताद्**
**द्रुतं प्रवीराः सहसा निवृत्ताः ।।२६।।**

भीमसेन का पराक्रम, शारीरिक बल, विद्याबल और बाहुबल देखकर वे वीर राक्षस एक-साथ संगठित होकर भी उनका वेग सहने में असमर्थ हो गये और सहसा सब ओर से युद्ध छोड़कर निवृत्त हो गये।

**ततस्तानि महार्हाणि दिव्यानि भरतर्षभ ।**
**बहूनि बहुरूपाणि विरजांसि समाददे ।।२७।।**

भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर भीमसेन ने अनेक प्रकार के बहुमूल्य, दिव्य और निर्मल बहुत-से सौगन्धिक कमल-पुष्प एकत्र कर लिये।

**अपश्यमानो भीमं तु धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।**
**ततः कृष्णां यमौ चापि समीपस्थावरिन्दमः ।।२८।।**
**पप्रच्छ भ्रातरं भीमं भीमकर्माणमाहवे ।**
**कच्चित्क्व भीमः पाञ्चालि किंचित्कृत्यं चिकीर्षति ।।**

इधर, जब भीम कहीं दिखाई न पड़े, तब शत्रु-दमन धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने द्रौपदी तथा पास ही बैठे हुए नकुल-सहदेव से युद्ध-भूमि में भयंकर कर्म करने-वाले अपने भाई भीम के सम्बन्ध में पूछा—"पाञ्चाल कुमारी! भीम कहाँ हैं? क्या वे कोई काम करने की इच्छा से कहीं गये हैं?"

**तं तथावादिनं कृष्णा प्रत्युवाच मनस्विनी ।**
**प्रिया प्रियं चिकीर्षन्ती महिषी चारुहासिनी ।।३०।।**

धर्मराज युधिष्ठिर को ऐसा बोलते देख मनोहर मुस्कानवाली, मनस्विनी पतिप्रिया महारानी द्रौपदी ने उनका प्रिय करने की इच्छा से इस प्रकार उत्तर दिया।

द्रौपद्युवाच

**यत् तत् सौगन्धिकं राजन्नाहृतं मातरिश्वना ।**
**तन्मया भीमसेनस्य प्रीतयाद्योपपादितम् ।।३१।।**
**अपि चोक्तो मया वीरो यदि पश्येर्बहून्यपि ।**
**तानि सर्वाण्युपादाय शीघ्रमागम्यतामिति ।।३२।।**

**द्रौपदी बोली**—राजन्! आज जो सौगन्धिक पुष्प वायु से उड़कर आया था, उसे मैंने प्रसन्नता-पूर्वक भीमसेन को दिया और उन वीर से यह भी कहा कि यदि इसी प्रकार के अन्य बहुत-से पुष्प तुम्हें दिखाई दें, तो उन सबको लेकर शीघ्र यहाँ लौट आओ।

**स तु नूनं महाबाहुः प्रियार्थं मम पाण्डवः ।**
**प्रागुदीचीं दिशं राजँस्तान्याहर्तुमितो गतः ।।३३।।**

महाराज! प्रतीत होता है कि वे महाबाहु पाण्डुकुमार निश्चय ही मेरा प्रिय करने की इच्छा से उन्हीं फूलों को लाने के निमित्त यहाँ से पूर्वोत्तर दिशा की ओर गये हैं।

वैशम्पायन उवाच

**उक्तस्त्वेवं तया राजा यमाविदमथाब्रवीत् ।**
**गच्छाम सहितास्तूर्णं येन यातो वृकोदरः ।।३४।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—द्रौपदी के ऐसा कहने पर राजा युधिष्ठिर ने नकुल और सहदेव से कहा—आओ, हम लोग भी एक साथ शीघ्र ही उसी मार्ग पर चलें जिससे भीमसेन गये हैं।

**ते सर्वे त्वरिता गत्वा ददृशुः शुभकाननम्।**
**पद्मसौगन्धिकवतीं नलिनीं सुमनोरमाम् ॥३५॥**

उन सबने शीघ्रतापूर्वक जाकर सुन्दर वनस्थली से सुशोभित वह अत्यन्त मनोरम सरोवर देखा जिसमें सौगन्धिक कमल-पुष्प खिले थे।

**तं च भीमं महात्मानं तस्यास्तीरे मनस्विनम्।**
**ददृशुर्निहतांश्चैव यक्षांश्च विपुलेक्षणान् ॥३६॥**

उस सरोवर के तट पर उन्होंने मनस्वी महामना भीम को तथा उनके द्वारा मारे गये बड़े-बड़े नेत्रों-वाले यक्षों को भी देखा।

**तं दृष्ट्वा धर्मराजस्तु परिष्वज्य पुनः पुनः।**
**उवाच श्लक्षणया वाचा कौन्तेय किमिदं कृतम् ॥३७॥**
**साहसं बत भद्रं ते देवानामथ चाप्रियम्।**
**पुनरेवं न कर्तव्यं मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥३८॥**

भीमसेन को देखकर धर्मराज युधिष्ठिर ने उन्हें बार-बार हृदय से लगाया और नम्र वाणी में कहा—"कुन्तीनन्दन! तुमने यह क्या कर डाला? तुम्हारा कल्याण हो! खेद से कहना पड़ता है कि तुम्हारा यह कार्य साहसपूर्ण तो है, परन्तु विद्वानों की दृष्टि में अनुचित है। यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो फिर ऐसा काम मत करना।"

**अनुशास्य तु कौन्तेयं पद्मानि प्रतिगृह्य च।**
**तस्यामेव नलिन्यां तु विजह्रुरमरोपमाः ॥३९॥**

भीमसेन को ऐसा उपदेश करके उन्होंने पूर्वोक्त सौगन्धिक पुष्प ले लिये तथा वे देवोपम पाण्डव उसी सरोवर के तट पर इधर-उधर भ्रमण करने लगे।

**ऊषुर्नातिचिरं कालं रममाणाः कुरूद्वहाः।**
**प्रतीक्षमाणा बीभत्सुं गन्धमादनसानुषु ॥४०॥**

तदनन्तर वे कुरु-प्रवर पाण्डव थोड़े समय तक वहाँ आनन्दपूर्वक विचरते रहे और गन्धमादन पर्वत के शिखरों पर अर्जुन के आगमन की प्रतीक्षा करते रहे।

**तस्मिन् निवसमानोऽथ धर्मराजो युधिष्ठिरः।**
**कृष्णया सहितान् भ्रातॄनित्युवाच सहद्विजान् ॥४१॥**

उस सौगन्धिक सरोवर के तट पर निवास करते हुए धर्मराज युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों तथा द्रौपदीसहित अपने भाइयों से इस प्रकार कहा—

**इमं वैश्रवणावासं पुण्यं सिद्धनिषेवितम्।**
**कथं वयं प्रवेक्ष्यामो गतिरन्तरधीयताम् ॥४२॥**

"यह सिद्धों से सेवित पुण्य प्रदेश कुबेर का निवासस्थान है। अब हम कुबेर के भवन में कैसे प्रवेश करें, इसका उपाय सोचो।"

**एवं ब्रुवति राजेन्द्रे द्विजो धौम्योऽब्रवीद्वचः।**
**न शक्यो दुर्गमो गन्तुमितो वैश्रवणाश्रमात् ॥४३॥**

महाराज युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर पुरोहित धौम्य ने कहा—"कुबेर के इस आश्रम से आगे जाना सम्भव नहीं है। यह मार्ग अतिदुर्गम है।

**अनेनैव पथा राजन् प्रतिगच्छ यथागतम्।**
**नरनारायणस्थानं बदरीत्यभिविश्रुतम् ॥४४॥**

"राजन्! तुम जिस मार्ग से आये हो, उसी मार्ग से विशाला बदरी नाम से विख्यात नर-नारायण के आश्रम को लौट चलो।"

**ततो युधिष्ठिरो राजा प्रतिजग्राह तद् वचः।**
**प्रत्यागम्य पुनस्तं तु नरनारायणाश्रमम् ॥४५॥**
**भीमसेनादिभिः सर्वैर्भ्रातृभिः परिवारितः।**
**पाञ्चाल्या ब्राह्मणाश्चैव न्यवसन्त सुखं तदा ॥४६॥**

तब महाराज युधिष्ठिर ने महर्षि धौम्य की बात स्वीकार कर ली और पुनः नर-नारायण आश्रम में लौटकर भीम आदि सब भाइयों और द्रौपदी के साथ वहीं रहने लगे। उनके साथ आये हुए ब्राह्मण भी वहीं सुखपूर्वक निवास करने लगे।

**इति महाभारते वनपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥**

# त्रयोदशोऽध्यायः

## जटासुर का वध

वैशम्पायन उवाच

**ततस्तान् परिविश्वस्तान् वसतस्तत्र पाण्डवान् ।**
**पर्वतेन्द्रे द्विजैः सार्धं पार्थागमनकाङ्क्षया ॥१॥**
**रहितान् भीमसेनेन कदाचित्तान् यदृच्छया ।**
**धर्मराजं यमौ कृष्णां जहार स जटासुरः ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! सब पाण्डव अर्जुन के आने की प्रतीक्षा करते हुए ब्राह्मणों के साथ गन्धमादन पर्वत पर निःशंक होकर रहते थे। एक दिन की बात है, भीमसेन की अनुपस्थिति में अकस्मात् जटासुर नामक राक्षस ने धर्मराज युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और द्रौपदी को हर लिया।

**सहदेवस्तु यत्नेन ततोऽपक्रम्य पाण्डवः ।**
**आक्रन्दद् भीमसेनं वै येन यातो महाबलः ॥३॥**

उस समय सहदेव प्रयत्न करके उस राक्षस की पकड़ से छूट गये। फिर वह, महाबली भीमसेन जिस मार्ग से गये थे, उधर ही आगे बढ़कर उन्हें ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगे।

**तमब्रवीद् धर्मराजो ह्रियमाणो युधिष्ठिरः ।**
**धर्मस्ते हीयते मूढ न तत्त्वं समवेक्षसे ॥४॥**

इधर जटासुर द्वारा हरण किये जाते हुए राजा युधिष्ठिर ने उससे कहा—"अरे मूर्ख ! विश्वासघात करने के कारण तेरे धर्म का नाश हो रहा है, किन्तु उधर तेरी दृष्टि नहीं जाती।

**वयं राष्ट्रस्य गोप्तारो रक्षितारश्च राक्षस ।**
**राष्ट्रस्यारक्ष्यमाणस्य कुतो भूतिः कुतो सुखम् ॥५॥**

"राक्षस ! हम लोग राष्ट्र के पालक और रक्षक हैं। हमारे द्वारा रक्षित न होने पर राष्ट्र को कैसे तो समृद्धि प्राप्त होगी और कैसे उसे सुख मिलेगा ?

**द्रोग्धव्यं न च मित्रेषु न विश्वस्तेषु कर्हिचित् ।□**
**येषां चान्नानि भुञ्जीत यत्र च स्यात् प्रतिश्रयः ॥६॥**

"किसी भी मनुष्य को अपने मित्रों एवं विश्वासी पुरुषों के साथ द्रोह नहीं करना चाहिए। जिनका अन्न खाये और जहाँ अपने को आश्रय मिला हो, उनके साथ भी द्रोह या विश्वासघात नहीं करना चाहिए।"

**स त्वं प्रतिश्रयेऽस्माकं पूज्यमानः सुखोषितः ।**
**भुक्त्वा चान्नानि दुष्प्रज्ञ कथमस्मान् जिहीर्षसि ॥७॥**

"खोटी बुद्धिवाले राक्षस ! तू हमारे आश्रय में हम लोगों से सम्मानित होकर सुखपूर्वक रहा है। तू हमारा अन्न खाकर हमें ही हर ले जाने की इच्छा कैसे करता है ?"

**सहदेवस्तु तं दृष्ट्वा राक्षसं मूढचेतनम् ।**
**उवाच वचनं राजन् कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥८॥**
**राजन् किं नाम सत्कृत्यं क्षत्रियस्यास्त्यतोऽधिकम् ।**
**यद् युद्धेऽभिमुखः प्राणाँस्त्यजेच्छत्रुं जयेत् वा ॥९॥**

इधर सहदेव ने उस मूढ राक्षस की ओर देखते हुए युधिष्ठिर से कहा—"राजन् ! क्षत्रिय के लिए इससे बढ़कर सत्कर्म क्या होगा कि वह युद्ध में शत्रु का सामना करते हुए अपने प्राणों को त्याग दे या शत्रु को जीत ले।

**राक्षसे जीवमानेऽद्य रविरस्तमियाद् यदि ।**
**नाहं ब्रूयां पुनर्जातु क्षत्रियोऽस्मीति भारत ॥१०॥**

"हे भारत ! यदि इस राक्षस के जीते-जी सूर्यास्त हो गया तो मैं फिर कभी अपने आपको क्षत्रिय नहीं कहूँगा।

**भो भो राक्षस तिष्ठस्व सहदेवोऽस्मि पाण्डवः ।**
**हत्वा वा मां नयस्वैनां हतो वाद्येह स्वप्स्यसि ॥११॥**

"अरे ओ राक्षस ! खड़ा रह। मैं पाण्डुकुमार सहदेव हूँ। या तो तू मुझे मारकर द्रौपदी को ले जा या स्वयं मेरे हाथों मारा जाकर आज यहीं सदा के लिए सो जा।"

**तथा ब्रुवति माद्रेये भीमसेनो यदृच्छया ।**
**प्रत्यदृश्यद् गदाहस्तः सवज्र इव वासवः ॥१२॥**

माद्रीकुमार सहदेव जब ऐसी बात कह ही रहे थे, उसी समय अकस्मात् वज्रधारी इन्द्र के समान गदा हाथ में लिये भीमसेन वहाँ दिखाई दिये।

**भ्रातॄंस्तान् ह्रियतो दृष्ट्वा द्रौपदीं च महाबलः ।**
**क्रोधमाहारयद् भीमो राक्षसं चेदमब्रवीत् ॥१३॥**

**विज्ञातोऽसि मया पूर्वं पाप शस्त्रपरीक्षणे ।**
**अपक्वस्य च कालेन वधस्तव न विद्यते ॥१४॥**

भाइयों और द्रौपदी का अपहरण होता देख महाबली भीम क्रुद्ध हो उठे और जटासुर से बोले—ओ पापी ! पहले जब तू शस्त्रों की परीक्षा कर रहा था, तभी मैंने तुझे पहचान लिया था। परन्तु तेरा समय तब पूरा नहीं हुआ था, इसीलिए आज से पूर्व तेरा वध नहीं किया जा सकता था।

**नूनमद्यासि सम्पक्वो यथा ते मतिरीदृशी ।**
**दत्ता कृष्णापहरणे कालेनाद्भुतकर्मणा ॥१५॥**

आज निश्चय ही तेरी आयु पूर्ण हो चुकी है तभी तो अद्भुत कर्म करनेवाले काल ने तुझे इस प्रकार द्रौपदी के अपहरण करने की कुबुद्धि दी है।

**यं चासि प्रस्थितो देशं मनः पूर्वं गतं च ते ।**
**न तं गन्तासि गन्तासि मार्गं बकहिडिम्बयोः ॥१६॥**

जिस देश की ओर तू चला है और जहाँ तेरा मन पहले ही जा पहुँचा है, अब तू वहाँ न जा सकेगा। तुझे तो अब बक और हिडिम्ब के मार्ग पर जाना है।

**एवमुक्तस्तु भीमेन राक्षसः कालप्रेरितः ।**
**भीत उत्सृज्य तान् सर्वान् युद्धाय समुपस्थितः ॥१७॥**

भीम के ऐसा कहने पर वह राक्षस भयभीत हो उन सबको छोड़कर काल की प्रेरणा से युद्ध के लिए तैयार हो गया।

**अब्रवीच्च पुनर्भीमं रोषात् प्रस्फुरिताधरः ।**
**न मे मूढा दिशः पाप त्वदर्थं मे विलम्बितम् ॥१८॥**

उस समय उसके होंठ क्रोध से फड़क रहे थे। उसने भीमसेन को उत्तर देते हुए कहा—"ओ पापी ! मुझे दिग्भ्रम नहीं हुआ था। मैंने तेरे ही लिए विलम्ब किया था।

**श्रुता मे राक्षसा ये ये त्वया विनिहता रणे ।**
**तेषामद्य करिष्यामि तवास्रेणोदकक्रियाम् ॥१९॥**

"तूने जिन-जिन राक्षसों को युद्ध में मारा है, उन सबके नाम मैंने सुने हैं। आज तेरे रक्त से ही मैं उन सबका तर्पण करूँगा।"

**इत्येवमुक्त्वा तौ वीरौ स्पर्धमानौ परस्परम् ।**
**बाहुभ्यां समसज्जेतामुभौ रक्षोवृकोदरौ ॥२०॥**

ऐसा कहकर वे दोनों वीर—राक्षस और भीम—एक-दूसरे से स्पर्धा रखते हुए बाँहों-से-बाँहें मिलाकर गुँथ गये।

**तयोरासीत् सम्प्रहारः क्रुद्धयोर्भीमरक्षसोः ।**
**अमृष्यमाणयोः संख्ये देवदानवयोरिव ॥२१॥**

भीमसेन और राक्षस दोनों में देवों और दानवों के समान युद्ध होने लगा। वे दोनों ही रोष और अमर्ष में भरकर एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे।

**मुष्टिभिश्च महाघोरैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।**
**ततः कटकटाशब्दो बभूव सुमहात्मनोः ॥२२॥**

वे अपने भयानक मुक्कों द्वारा एक-दूसरे पर चोट करने लगे। तब उन दोनों महाकाय वीरों में ज़ोर-ज़ोर से टकराने की आवाज़ होने लगी।

**ततः संहृत्य मुष्टिं तु पञ्चशीर्षमिवोरगम् ।**
**वेगेनाभ्यहनद् भीमो राक्षसस्य शिरोधराम् ॥२३॥**

तत्पश्चात् भीमसेन ने पाँच सिरवाले सर्प की भाँति अपनी पाँचों अंगुलियों से युक्त हाथ की मुट्ठी बाँधकर उसे राक्षस की गर्दन पर बड़े जोर से दे मारा।

**तत एनं महाबाहुर्बाहुभ्याममरोपमः ।**
**समुत्क्षिप्य बलाद् भीमो निष्पिपेष महीतले ॥२४॥**

तदनन्तर देवों के समान तेजस्वी महाबाहु भीम ने उस राक्षस को दोनों भुजाओं से बलपूर्वक उठा लिया और उसे पृथिवी पर पटक कर पीस डाला।

**तस्य गात्राणि सर्वाणि चूर्णयामास पाण्डवः ।**
**अरत्निना चाभिहत्य शिरः कायादपाहरत् ॥२५॥**

पाण्डुनन्दन भीम ने उसके समस्त अङ्गों को दबा कर चूर-चूर कर डाला और थप्पड़ मार-मारकर उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया।

**इति महाभारते वनपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥**

# चतुर्दशोऽध्यायः

## राजर्षि आर्ष्टिषेण के आश्रम पर

वैशम्पायन उवाच

**निहते राक्षसे तस्मिन् पुनर्नारायणाश्रमम् ।**
**अभ्येत्य राजा कौन्तेयो निवासमकरोत् प्रभुः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—उस राक्षस के मारे जाने पर कुन्तीपुत्र पराक्रमी राजा युधिष्ठिर पुनः नर-नारायण आश्रम में आकर रहने लगे ।

**ततो युधिष्ठिरो राजा बहून् क्लेशान् विचिन्तयन् ।**
**सिंहव्याघ्रगजाकीर्णामुदीचीं प्रययौ दिशम् ॥२॥**

कुछ समय पश्चात् राजा युधिष्ठिर अनेक कष्ट-क्लेशों का चिन्तन करते, सिंह, व्याघ्र और हाथियों से भरी हुई उत्तर दिशा की ओर चल दिये ।

**अवेक्षमाणः कैलासं मैनाकं चैव पर्वतम् ।**
**पृष्ठं हिमवतः पुण्यं ययौ सप्तदशेऽहनि ॥३॥**

वे कैलास-मैनाक आदि पर्वतों का दर्शन करते हुए सत्रहवें दिन हिमालय के एक पृष्ठवर्ती पुण्य-स्थान पर जा पहुँचे ।

**पृष्ठे हिमवतः पुण्ये पुष्पितैश्च महीरुहैः ।**
**समावृतं पुण्यतममाश्रमं वृषपर्वणः ॥४॥**
**तमुपागम्य राजर्षि धर्मात्मानमरिन्दमाः ।**
**पाण्डवा वृषपर्वाणमवन्दन्त गतक्लमाः ॥५॥**

हिमालय के उस पावन पृष्ठ-भाग पर पुष्पित वृक्षों से घिरा हुआ वृषपर्वा का परम पवित्र आश्रम था । शत्रुदमन पाण्डवों ने उन धर्मात्मा राजर्षि वृषपर्वा के पास जाकर स्वस्थ हो उन्हें प्रणाम किया ।

**अभ्यनन्दत् स राजर्षिः पुत्रवद् भरतर्षभान् ।**
**पूजिताश्चावसंस्तत्र सप्तरात्रमरिन्दमाः ॥६॥**

उन राजर्षि ने भरतकुल-भूषण पाण्डवों का पुत्रों के समान अभिनन्दन किया । उनसे सम्मानित होकर वे शत्रुदमन पाण्डव सात दिन तक वहाँ रहे ।

**अष्टमेऽहनि सम्प्राप्ते तमृषिं लोकविश्रुतम् ।**
**आमन्त्र्य वृषपर्वाणं प्रस्थानं प्रत्यरोचयन् ॥७॥**

आठवें दिन उन विश्वविख्यात राजर्षि वृषपर्वा की आज्ञा ले उन्होंने वहाँ से प्रस्थान करने का विचार किया ।

**अन्वशासत् स धर्मज्ञः पुत्रवद् भरतर्षभान् ।**
**तेऽनुज्ञाता महात्मानः प्रययुर्दिशमुत्तराम् ॥८॥**

उस धर्मज्ञ राजर्षि ने भरतकुल-भूषण पाण्डवों को पुत्र की भाँति उपदेश किया । उनकी आज्ञा पाकर महामना पाण्डव उत्तर दिशा की ओर चले ।

**ते समासाद्य पन्थानं यथोक्तं वृषपर्वणा ।**
**अनुसस्रुर्यथोद्देशं पश्यन्तो विविधान्नगान् ॥९॥**

वे पाण्डव वृषपर्वा के बताये हुए मार्ग का अनुसरण तथा नाना-प्रकार के वृक्षों का अवलोकन करते हुए अपने गन्तव्य स्थान की ओर बढ़ रहे थे ।

**ततः किम्पुरुषावासं सिद्धचारणसेवितम् ।**
**ददृशुर्हृष्टरोमाणः पर्वतं गन्धमादनम् ॥१०॥**

आगे बढ़ने पर उन्हें किम्पुरुषों का निवास-स्थान गन्धमादन पर्वत दिखाई दिया । सिद्ध और चारण भी इस पर निवास करते थे । उसे देखकर पाण्डव हर्ष-विभोर हो गये ।

**उपेतमथ माल्यैश्च फलवद्भिश्च पादपैः ।**
**आर्ष्टिषेणस्य राजर्षेराश्रमं ददृशुस्तदा ॥११॥**

वहाँ से आगे जाने पर परन्तप पाण्डवों ने पुष्पों और फलों से लदे हुए वृक्षों से सुशोभित राजर्षि आर्ष्टिषेण का आश्रम देखा ।

**ततस्ते तिग्मतपसं कृशं धमनिसंततम् ।**
**पारगं सर्वधर्माणामार्ष्टिषेणमुपागमन् ॥१२॥**

तत्पश्चात् वे पाण्डव कठोर तपस्वी, दुर्बल-काय तथा नस-नाड़ियों के ढाँचेमात्र राजर्षि आर्ष्टिषेण के समीप गये जो सम्पूर्ण धर्मों के पारंगत विद्वान् थे ।

**युधिष्ठिरस्तमासाद्य तपसा दग्धकिल्बिषम् ।**
**अभ्यवादयत् प्रीतः शिरसा नाम कीर्तयन् ॥१३॥**

राजा युधिष्ठिर ने तप द्वारा दग्ध-दोष आर्ष्टिषेण के पास जाकर बड़ी प्रसन्नता के साथ अपना नाम बताते हुए उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया ।

**कुरूणामृषभं पार्थं पूजयित्वा महातपाः ।**
**सह भ्रातृभिरासीनं पर्यपृच्छदनामयम् ॥१४॥**

महातपस्वी आर्ष्टिषेण ने भाइयोंसहित कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर का यथोचित आदर-सत्कार किया और जब वे बैठ गये, तब उनसे कुशल-समाचार पूछा—

**नानृते कुरुषे भावं कच्चित् धर्मे प्रवर्तसे ।**
**मातापित्रोश्च ते वृत्तिः कच्चित् पार्थ न सीदति ॥१५**

"हे कुन्तीनन्दन ! कभी झूठ की ओर तो तुम्हारा मन नहीं जाता ? तुम धर्म में ही लगे रहते हो न ? माता-पिता के प्रति जो सेवावृत्ति होनी चाहिए, वह है न ? उसमें शिथिलता तो नहीं आई ?

**कच्चित्ते गुरवः सर्वे वृद्धा वैद्याश्च पूजिताः ।**
**कच्चिन्न कुरुषे भावं पार्थ पापेषु कर्मसु ॥१६॥**

क्या तुमने सभी गुरुजनों, बड़े-बूढ़ों और विद्वानों का सदा समादर किया है ? हे पार्थ ! कभी पापकर्मों में तो तुम्हारी रुचि नहीं होती ?

**सुकृतं प्रतिकर्तुं च कच्चिद्धातुं च दुष्कृतम् ।**
**यथान्यायं कुरुश्रेष्ठ जानासि न विकत्थसे ॥१७॥**

"हे कुरुश्रेष्ठ ! क्या तुम अपने उपकारी को उसके उपकार का बदला देना जानते हो ? क्या तुम्हें अपना अपकार करनेवाले मनुष्य की उपेक्षा कर देने की कला का ज्ञान है ? कभी तुम अपने मुख से अपनी बड़ाई तो नहीं करते ?

**यथार्हं मानिताः कच्चित् त्वया नन्दन्ति साधवः ।**
**वनेष्वपि वसन् कच्चिद् धर्ममेवानुवर्तसे ॥१८॥**

"क्या तुम्हारे द्वारा यथायोग्य सम्मानित होकर साधु-पुरुष तुम पर प्रसन्न रहते हैं ? क्या तुम वन में रहते हुए भी सदा धर्म का पालन करते हो ?

**कच्चिद् धौम्यस्त्वदाचारैर्न पार्थ परितप्यते ।**
**दान-धर्म-तपःशौचैरार्जवेन तितिक्षया ॥१९॥**
**पितृपैतामहं वृत्तं कच्चित् पार्थानुवर्तसे ।**
**कच्चिद् राजर्षियातेन पथा गच्छसि पाण्डव ॥२०॥**

"हे पार्थ ! तुम्हारे आचार-व्यवहार से पुरोहित धौम्य को तो क्लेश नहीं पहुँचता है ? कुन्तीपुत्र ! क्या तुम दान, धर्म, तप, शौच, सरलता और क्षमा आदि के द्वारा अपने पितामह आदि के आचार-व्यवहार का अनुकरण करते हो ? पाण्डुनन्दन ! प्राचीन राजर्षि जिस मार्ग से गये हैं, तुम भी उसी मार्ग पर चलते हो न ?

**पिता माता तथैवाग्निर्गुरुरात्मा च पञ्चमः ।□**
**यस्यैते पूजिताः पार्थ तेन लोकावुभौ जितौ ॥२१॥**

"पार्थ! जो मनुष्य माता, पिता, अग्नि, परमात्मा गुरु और आत्मा—इन पाँचों का आदर करता है, वह इहलोक और परलोक दोनों को जीत लेता है।"

युधिष्ठिर उवाच

**भगवन्नार्यमाहैतद् यथावद् धर्मनिश्चयम् ।**
**यथाशक्ति यथान्यायं क्रियते विधिवन्मया ॥२२॥**

**युधिष्ठिर ने कहा**—हे भगवन् ! आर्य ! आपने मुझे यह धर्म का निचोड़ बतलाया है। मैं अपनी शक्ति के अनुसार यथोचित रीति से विधिपूर्वक इस धर्म का अनुष्ठान करता हूँ।

आर्ष्टिषेण उवाच

**भुञ्जाना मुनिभोज्यानि रसवन्ति फलानि च ।**
**वसध्वं पाण्डवश्रेष्ठा यावदर्जुनदर्शनात् ॥२३॥**

**आर्ष्टिषेण बोले**—हे श्रेष्ठ पाण्डवो ! जबतक तुम्हारी अर्जुन से भेंट न हो, तबतक तुम मुनियों के खाने योग्य रसवाले फलों का उपभोग करते हुए यहीं निवास करो।

**न तात चपलैर्भाव्यमिह प्राप्तैः कथञ्चन ।**
**उषित्वेह यथाकामं यथाश्रद्धं विहृत्य च ॥**
**ततः शस्त्रजितां तात पृथिवीं पालयिष्यसि ॥२४॥**

हे तात ! यहाँ आनेवाले लोगों को किसी प्रकार की चपलता नहीं करनी चाहिए। तुम यहाँ अपनी इच्छा के अनुसार रहकर और श्रद्धा के अनुसार घूम-फिरकर लौट जाओगे तथा शस्त्रों द्वारा जीती हुई इस पृथिवी का पालन करोगे।

वैशम्पायन उवाच

**आर्ष्टिषेणाश्रमे तेषां वसतां वै महात्मनाम् ।**
**अगच्छन् बहवो मासाः पश्यतां महदद्भुतम् ॥२५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—आर्ष्टिषेण के आश्रम में निवास करते हुए एवं अत्यन्त अद्भुत दृश्यों को देखते हुए महामना पाण्डवों के अनेक मास व्यतीत हो गये।

**इति महाभारते वनपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥**

# पञ्चदशोऽध्यायः

## अर्जुन का आगमन और पाण्डवों का पुनः द्वैतवन में लौटना

वैशम्पायन उवाच

**उषित्वा पञ्चवर्षाणि सहस्राक्षनिवेशने ।**
**अवाप्य दिव्यान्यस्त्राणि सर्वाणि विबुधेश्वरात् ॥१॥**
**अनुज्ञातस्तदा तेन कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।**
**आगच्छदर्जुनः प्रीतः प्रहृष्टो गन्धमादनम् ॥२॥**

**वैशम्पयानजी कहते हैं**—पाँच वर्ष तक इन्द्र-भवन में रहकर तथा देवेश्वर इन्द्र से सम्पूर्ण अस्त्र प्राप्त करके उनसे अपने भाइयों के पास लौटने की आज्ञा ले तथा उनकी परिक्रमा कर अर्जुन अति प्रसन्न हुए, फिर वे हर्ष में भरकर गन्धमादन पर्वत पर लौट आये ।

**अभिवादयमानं तं मूर्ध्न्युपाघ्राय पाण्डवम् ।**
**हर्षगद्गदया वाचा प्रहृष्टोऽर्जुनमब्रवीत् ॥३॥**

पाण्डुनन्दन अर्जुन को प्रणाम करते देख युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए और उनका मस्तक सूँघकर हर्ष-गद्गद वाणी में इस प्रकार बोले—

युधिष्ठिर उवाच

**दिष्ट्या धनञ्जयास्त्राणि त्वया प्राप्तानि भारत ।**
**दिष्ट्या चाराधितो राजा देवानामीश्वरः प्रभुः ॥४॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हे धनंजय ! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुमने दिव्यास्त्र प्राप्त कर लिये । हे भारत ! यह और भी सौभाग्य की बात है कि तुमने देवों के स्वामी इन्द्र को अपनी आराधना द्वारा प्रसन्न कर लिया ।

**अद्य कृत्स्नां महीं देवीं विजितां पुरमालिनीम् ।**
**मन्ये च धृतराष्ट्रस्य पुत्रानपि वशीकृतान् ॥५॥**

आज मुझे यह विश्वास हो गया कि हम नगरों से सुशोभित सम्पूर्ण पृथिवी को जीत लेंगे । अब मैं धृतराष्ट्र के पुत्रों को भी अपने वश में पड़ा हुआ ही मानता हूँ ।

वैशम्पायन उवाच

**तस्यां रजन्यां व्युष्टायां धर्मराजो युधिष्ठिरः ।**
**उत्थायावश्यकार्याणि कृतवान् भ्रातृभिः सह ॥६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! जब वह रात्रि व्यतीत हो गई, तब धर्मराज युधिष्ठिर ने भाइयोंसहित उठकर आवश्यक नित्यकर्म पूरे किये ।

**ततः संप्रेरयामास सोऽर्जुनं भ्रातृनन्दनम् ।**
**दर्शयास्त्राणि कौन्तेय त्वया प्राप्तानि भारत ॥७॥**

तदन्तर उन्होंने भाइयों को सुख पहुँचानेवाले अर्जुन को आज्ञा दी—"कुरुकुल-भूषण कुन्तीनन्दन ! अब तुम उन दिव्यास्त्रों का प्रदर्शन करके दिखाओ, जिन्हें तुमने प्राप्त किया है ।"

**ततो धनञ्जयो राजन् देवैर्दत्तानि पाण्डवः ।**
**अस्त्राणि तानि दिव्यानि दर्शयामास भारत ॥८॥**

राजन् ! तब पाण्डुनन्दन अर्जुन ने देवताओं के दिये वे दिव्य अस्त्र-शस्त्र सब भाइयों को दिखलाए ।

जनमेजय उवाच

**तस्मिन् कृतास्त्रे रथिनां प्रवीरे**
**प्रत्यागते वेश्मनः वृत्रहन्तुः ।**
**अतः परं किमकुर्वन्त पार्थाः**
**समेत्य शूरेण धनञ्जयेन ॥९॥**

**जनमेजय ने पूछा**—हे भगवन् ! रथियों में श्रेष्ठ अर्जुन जब इन्द्र-भवन से दिव्यास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके लौट आये, तब उनसे मिलकर कुन्तीकुमारों ने पुनः कौन-सा कार्य किया ?

वैशम्पायन उवाच

**वनेषु तेष्वेव तु ते नरेन्द्राः**
**सहार्जुनेनेन्द्रसमेन वीराः ।**
**तस्मिंश्च शैलप्रवरे सुरम्ये**
**धनेश्वराक्रीडयता विजह्रुः ॥१०॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—हे राजन् ! नरश्रेष्ठ वीर पाण्डव इन्द्र-तुल्य पराक्रमी अर्जुन के साथ उस अति रमणीय शैल-शिखर पर कुबेर की क्रीड़ास्थली के उन्हीं वनों में सुख से विहार करने लगे ।

**समेत्य पार्थेन यथैकरात्र-**
**मूषुः समास्तत्र तदा चतस्रः ।**
**पूर्वाश्च षट् ता दश पाण्डवानां**
**शिवा बभूवुर्वसतां वनेषु ॥११॥**

वे अर्जुन के साथ वहाँ चार वर्ष तक रहे परन्तु वह समय उन्हें एक रात के समान ही प्रतीत हुआ। पहले के छह वर्ष तथा यहाँ के चार वर्ष इस प्रकार सब मिलाकर पाण्डवों के वनवास के दस वर्ष आनन्द-पूर्वक व्यतीत हो गये।

**वृतश्च सर्वैरनुजैर्द्विजैश्च**
**तेनैव मार्गेण पतिः कुरूणाम्।**
**उवाह चैतान् गणशस्तथैव**
**घटोत्कचः पर्वतनिर्झरेषु ॥१२॥**

तत्पश्चात् समस्त भाइयों और ब्राह्मणों से घिरे हुए कुरुराज युधिष्ठिर जिस मार्ग से गये थे, उसी मार्ग से नीचे उतरने लगे। जहाँ दुर्गम पर्वत और झरने पड़ते थे, वहाँ घटोत्कच अपने गणोंसहित आकर पहले की भाँति उन्हें अपने कन्धों पर चढ़ाकर वहाँ से पार कर देता था।

**वनानि रम्याणि सरित्सरांसि**
**गुहा गिरीणां गिरिगह्वराणि।**
**एते निवासाः सततं बभूवु-**
**र्दिवानिशं प्राप्य नरर्षभाणाम् ॥१३॥**

नररत्न पाण्डव कभी रमणीय वनों में, कभी सरोवरों के किनारे, कभी नदियों के तटों पर और कभी पर्वतों की छोटी-बड़ी गुफाओं में दिन या रात्रि के समय ठहरते हुए जाते थे। सदा ऐसे ही स्थानों में उनका निवास होता था।

**ते दुर्गवासं बहुधा निरुष्य**
**व्यतीत्य कैलासमचिन्त्यरूपम्।**
**आसेदुरत्यर्थमनोरमं ते**
**तमाश्रमाग्र्यं वृषपर्वणस्तु ॥१४॥**

अनेक बार दुर्गम स्थानों में निवास करके अचिन्त्यरूप कैलास पर्वत को पीछे छोड़कर वे पुनः वृषपर्वा के अत्यन्त मनोरम एवं श्रेष्ठ आश्रम में आ पहुँचे।

**सुखोषितास्तत्र त एकरात्र**
**अभ्याययुस्ते बदरीं विशालाम्।**
**विहृत्य मासं सुखिनो बदर्यां**
**किरातराजस्य पदं सुबाहोः ॥१५॥**

उस आश्रम में एक रात्रि सुखपूर्वक रहकर वे विशालापुरी के बदरिकाश्रम में चले आये। बदरिकाश्रम में एक मास तक सुखपूर्वक विहार करके उन्होंने किरातनरेश सुबाहु के राज्य की ओर प्रस्थान किया।

**सुखोषितास्तत्र त एकरात्रं**
**सूतान् समादाय रथांश्च सर्वान्।**
**घटोत्कचं सानुचरं विसृज्य**
**ततोऽभ्ययुर्यामुनमद्रिराजम् ॥१६॥**

वहाँ उन सबने एक रात्रि बड़े सुख से निवास किया। यहाँ पाण्डवों ने अपने सारे सारथियों और रथों को साथ ले लिया एवं अनुचरोंसहित घटोत्कच को विदा करके वहाँ से पर्वतराज को प्रस्थान किया, जहाँ यमुना का उद्गम-स्थान है।

**तस्मिन् गिरौ प्रस्रवणोपपन्ने-**
**हिमोत्तरीयारुण-पाण्डुसानौ ।**
**विशाखयूपं समुपेत्य पार्थाः**
**संवत्सरं तत्र वने विजह्रुः ॥१७॥**

झरनों से युक्त हिमराशि उस पर्वतरूपी पुरुष के लिए उत्तरीय का काम करती थी और उसका अरुण तथा श्वेत रंग का शिखर बालसूर्य की किरणें पड़ने से श्वेत एवं लाल उष्णीश (पगड़ी) के समान शोभा पा रहा था। उसके ऊपर विशाखयूप नामक वन में पहुँचकर पाण्डव वीर एक वर्ष तक वहाँ सुखपूर्वक विचरते रहे।

**ते द्वादशं वर्षमुपोपयातं**
**वने विहर्तुं कुरवः प्रतीताः।**
**तस्माद् वनाच्चैत्ररथप्रकाशात्**
**श्रिया ज्वलन्तस्तपसा च युक्ताः ॥१८॥**
**ततश्च यात्वा मरुधन्वपार्श्वं**
**सदा धनुर्वेदरतिप्रधानाः।**
**सरस्वतीमेत्य निवासकामाः**
**सरस्ततो द्वैतवनं प्रतीयुः ॥१९॥**

अब पाण्डवों के वनवास का बारहवाँ वर्ष आ पहुँचा था। उसे भी वन में आनन्दपूर्वक व्यतीत करने के लिए उनके मन में बड़ा उत्साह था। अपनी

अद्भुत कान्ति से प्रकाशित होते हुए तपस्वी पाण्डव चैत्ररथ वन के समान शोभा पानेवाले उस वन से निकलकर मरुभूमि के निकट सरस्वती-तट पर गये। और वहीं निवास करने की इच्छा से द्वैतवनस्थ द्वैत सरोवर के निकट आये। उस समय पाण्डवों का विशेष अनुराग धनुर्वेद में ही दिखाई देता था।

**इति महाभारते वनपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥**

## षोडशोऽध्यायः

### पाण्डवों का समाचार सुनकर धृतराष्ट्र का खेद और दुर्योधन की घोष-यात्रा

जनमेजय उवाच

**एवं वनस्थाश्च हि ते नराग्र्याः**
**शीतोष्णवातातप-कर्शिताङ्गाः ।**
**सरस्तदासाद्य वनं च पुण्यं**
**ततः परं किमकुर्वन्त पार्थाः ॥१॥**

**जनमेजय ने पूछा**—हे मुने ! इस प्रकार वन में रहते हुए सर्दी, गर्मी, वायु और धूप का कष्ट सहन करने के कारण जिनके शरीर अत्यन्त कृश हो गये थे, उन नरश्रेष्ठ पाण्डवों ने पुण्य द्वैतवन में पूर्वोक्त सरोवर के पास पहुँचकर फिर कौन-सा कार्य किया ?

वैशम्पायन उवाच

**सरस्तदासाद्य तु पाण्डुपुत्राः**
**जनं समुत्सृज्य विधाय वेश्म ।**
**वनानि रम्याण्यथ पर्वतांश्च**
**नदी प्रदेशांश्च तदा विचेरुः ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! उस रमणीक सरोवर पर पहुँचकर पाण्डवों ने वहाँ आये हुए जन-समुदाय को विदा कर दिया और अपने रहने के लिए कुटी बनाकर वे आस-पास के रमणीक वनों, पर्वतों तथा नदी के तट-प्रदेशों में विचरने लगे।

**ततः कदाचित् कुशलः कथासु**
**विप्रोऽभ्यगच्छद् भुवि कौरवेयान् ।**
**स तैः समेत्याथ यदृच्छयैव**
**वैचित्रवीर्यं नृपमभ्यगच्छत् ॥३॥**

तदनन्तर किसी समय धर्मादि कथाएँ कहने में कुशल एक ब्राह्मण उस वन्यभूमि में पाण्डवों के पास आया। उनसे मिलकर वह घूमता-घामता अकस्मात् राजा धृतराष्ट्र की राज-सभा में जा पहुँचा।

**अथोपविष्टः प्रतिसत्कृतश्च**
**वृद्धेन राज्ञा कुरुसत्तमेन ।**
**सम्प्रेरितः सन्कथयाम्बभूव**
**धर्मानिलेन्द्रप्रभवान् यमौ च ॥४॥**

कुरुकुल के श्रेष्ठ एवं वयोवृद्ध राजा धृतराष्ट्र ने उसका बहुत आदर-सत्कार किया। जब वह आसन पर बैठ गया तब महाराज के पूछने पर वह युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और नकुल-सहदेव के समाचार सुनाने लगा।

**कृशांश्च वातातपकर्शिताङ्गान्**
**दुःखस्य चोग्रस्य मुखे प्रपन्नान् ।**
**तां चाप्यनाथामिव वीरनाथां**
**कृष्णां परिक्लेशगुणेन युक्ताम् ॥५॥**

उसने बताया—"इस समय पाण्डव शीत-उष्ण तथा वायु और धूप आदि का कष्ट सहने के कारण अत्यन्त कृश हो गये हैं। वे सब भयंकर दुःखों के मुख में पड़ गये हैं। वीरपत्नी द्रौपदी भी अनाथ की भाँति सब ओर से क्लेश-ही-क्लेश भोग रही है।"

**ततः कथास्तस्य निशम्य राजा**
**वैचित्रवीर्यः करुणाभितप्तः ।**
**प्रोवाच दैन्याभिहतान्तरात्मा**
**तत्सर्वमात्मप्रभवं विचिन्त्य ॥६॥**

ब्राह्मण की ये बातें सुनकर विचित्रवीर्यनन्दन राजा धृतराष्ट्र करुणा से द्रवीभूत हो बहुत दुःखी हो गये। उनका हृदय करुणा से भर आया और इस सबको अपनी ही कृति का दुष्फल समझकर वे यों बोले—

**कथं नु सत्यः शुचिरार्यवृत्तो**
**ज्येष्ठः सुतानां मम धर्मराजः ।**

**अजातशत्रुः पृथिवीतलस्थः**
**शेते पुरा राङ्कवकूटशायी ॥७॥**

"अहो ! जो मेरे सभी पुत्रों में ज्येष्ठ, सत्यवादी, पवित्र तथा सदाचारी हैं एवं जो पहले रङ्कु मृग के रोम्रों से बने हुए नरम बिछौनों पर सोया करते थे, वे अजातशत्रु धर्मराज युधिष्ठिर आजकल भूमि पर कैसे शयन करते होंगे ?

**कथं नु वातातपकर्शिताङ्गो**
**वृकोदरः कोपपरिप्लुताङ्गः ।**
**शेते पृथिव्यामतथोचिताङ्गः**
**कृष्णासमक्षं वसुधातलस्थः ॥८॥**

"भीमसेन का शरीर हवा और धूप का कष्ट सहन करने से अत्यन्त दुर्बल हो गया होगा। उनका अङ्ग-अङ्ग क्रोध से काँपता और फड़कता होगा। वे द्रौपदी के सामने धरती पर कैसे सोते होंगे ? उनका शरीर ऐसे कष्ट भोगने योग्य नहीं है।

**तथार्जुनो देहमृदुः मनस्वी**
**वशे स्थितो धर्मसुतस्य राज्ञः ।**
**विदूयमानैरिव सर्वगात्रैः**
**ध्रुवं न शेते वसतीरमर्षात् ॥९॥**

"इसी प्रकार सुकोमल देहवाले मनस्वी अर्जुन, जो सदा धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा में रहते हैं, के सारे अङ्गों में क्रोध के कारण सन्ताप हो रहा होगा और निश्चय ही उन्हें अपनी कुटिया में अच्छी प्रकार नींद भी नहीं आती होगी।

**तथा यमौ चाप्यसुखौ सुखार्हौ**
**समृद्धरूपावमरौ दिवीव ।**
**प्रजागरस्थौ ध्रुवमप्रशान्तौ**
**धर्मेण सत्येन च वार्यमाणौ ॥१०॥**

"इसी प्रकार स्वर्ग के देवता अश्विनीकुमारों की भाँति रूपवान्, सुख भोगने योग्य नकुल और सहदेव का भी सुख छिन गया है। वे भी निश्चय ही अशान्त भाव से सारी रात जागते हुए ही भूमि पर सोते होंगे ? धर्म और सत्य ही उन्हें तत्काल आक्रमण करने से रोके हुए है।

**अजातशत्रौ तु जिते निकृत्या**
**दुःशासनो यत् परुषाण्यवोचत् ।**
**तानि प्रविष्टानि वृकोदराङ्गं**
**दहन्ति कक्षाग्निरिवेन्धनानि ॥११॥**

"अजातशत्रु युधिष्ठिर को जुए में छल, दुःशासन ने जो कड़वी बातें कहीं थीं, वे भीम के शरीर में घुसकर उसे उसी प्रकार दग्ध कर रही होंगीं, जैसे आग तृण और काष्ठ के समूह को जला डालती है।

**न पापकं ध्यास्यति धर्मपुत्रो**
**धनञ्जयश्चाप्यनुवर्त्स्यते तम् ।**
**अरण्यवासेन विवर्धते तु**
**भीमस्य कोपोऽग्निरिवानिलेन ॥१२॥**

"धर्मपुत्र युधिष्ठिर मेरे अपराध पर ध्यान नहीं देंगे। अर्जुन भी उन्हीं का अनुकरण करेंगे। परन्तु इस वनवास से भीमसेन का क्रोध तो उसी प्रकार बढ़ रहा होगा जैसे हवा लगने से अग्नि भभक उठती है।

**गाण्डीवधन्वा च वृकोदरश्च**
**संरम्भिणावन्तककालकल्पौ ।**
**न शेषयेतां युधि शत्रुसेनां**
**शरान् किरन्तावशनिप्रकाशान् ॥१३॥**

"गाण्डीवधारी अर्जुन और भीम जब क्रोध में भर जाएँगे, तब वे यमराज और काल के समान हो जाएँगे। वे रण-भूमि में विद्युत् के समान चमचमाते बाणों की वर्षा करके शत्रु-सेना में से किसी को भी जीवित न छोड़ेंगे।

**दुर्योधनः सौबलसूतपुत्रौ**
**दुःशासनश्चापि सुमन्दचेताः ।**
**मधु प्रपश्यन्ति न तु प्रपातं**
**यद् द्यूतमालम्ब्य हरन्ति राज्यम् ॥१४॥**

"दुर्योधन, शकुनि, सूतपुत्र कर्ण और दुःशासन—ये चारों बड़े ही मन्दबुद्धि हैं, क्योंकि ये जुए के सहारे दूसरे के राज्य को हड़प रहे हैं। [इन्हें अपने ऊपर आनेवाला संकट दिखाई नहीं देता] इन्हें केवल वृक्ष की शाखा से टपकता हुआ मधु ही दिखाई देता है, वहाँ से गिरने का जो भारी भय है, उधर उनकी बुद्धि या दृष्टि नहीं है।

**धृतराष्ट्रस्य तद् वाक्यं निशम्य शकुनिस्तदा ।**
**दुर्योधनमिदं काले कर्णेन सहितोऽब्रवीत् ॥१५॥**

धृतराष्ट्र का पूर्वोक्त वचन सुनकर उस समय कर्णसहित शकुनि ने अवसर देखकर दुर्योधन से इस प्रकार कहा—

**प्रव्राज्य पाण्डवान् वीरान् स्वेन वीर्येण भारत ।**
**भुङ्क्ष्वेमां पृथिवीमेको दिवि शम्बरहा यथा ॥१६॥**

"भरतनन्दन ! तुमने अपने पराक्रम से पाण्डवों को वन में निर्वासित कर दिया है। अब तुम स्वर्ग में इन्द्र की भाँति अकेले ही इस सम्पूर्ण पृथिवी का राज्य भोगो।

**यैः स्म ते नाद्रियेताज्ञा न च ये शासने स्थिताः ।**
**पश्यामस्तान् श्रिया हीनान् पाण्डवान् वनवासिनः॥१७**

"जिन्होंने तुम्हारी आज्ञा का आदर नहीं किया था तथा जो तुम्हारी आज्ञा में नहीं थे, उन पाण्डवों की दशा हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। वे राज्य-लक्ष्मी से हीन होकर वन में निवास करते हैं।

**श्रूयते हि महाराज सरो द्वैतवनं प्रति ।**
**वसन्तः पाण्डवाः सार्धं ब्राह्मणैर्वनवासिभिः ॥१८॥**

"महाराज ! सुनने में आया है कि पाण्डव लोग द्वैतवन में सरोवर के तट पर वनवासी ब्राह्मणों के साथ रहते हैं।

**स प्रयाहि महाराज श्रिया परमया युतः ।**
**तापयन् पाण्डुपुत्राँस्त्वं रश्मिवानिव तेजसा ॥१९॥**

"महाराज ! आप उत्कृष्ट राज्य-लक्ष्मी से युक्त होकर वहाँ चलो और जैसे सूर्य अपने तेज से संसार को संतप्त करते हैं, उसी प्रकार तुम भी पाण्डुपुत्रों को सन्तप्त करो।

**स्थितो राज्ये च्युतान् राज्याच्छ्रिया हीनाञ्छ्रिया वृतः ।**
**असमृद्धान् समृद्धार्थः पश्य पाण्डुसुतान् नृप ॥२०॥**

"आप इस समय राज्य पर प्रतिष्ठित एवं पाण्डव राज्य से भ्रष्ट हैं। आप श्रीसम्पन्न और वे श्रीहीन हैं। आप ऐश्वर्ययुक्त और वे निर्धन हैं। हे नरेश्वर ! तुम इस दशा में चलकर पाण्डवों को देखो।

**समस्थो विषमस्थान् हि दुर्हृदो योऽभिवीक्षते ।**
**जगतीस्थानिवाद्रिस्थः किमतः परमं सुखम् ॥२१॥**

"जैसे पर्वत की चोटी पर खड़ा हुआ कोई व्यक्ति पृथिवी पर स्थित सभी वस्तुओं को नीची और छोटी देखता है, उसी प्रकार जो मनुष्य स्वयं सुख में रहकर शत्रुओं को संकट में पड़ा हुआ देखता है, उसके लिए इससे बढ़कर सुख की बात और क्या होगी ?

**न पुत्रधनलाभेन न राज्येनापि विन्दति ।**
**प्रीतिं नृपतिशार्दूल याममित्राघदर्शणात् ॥२२॥**

"नरश्रेष्ठ ! मनुष्य को अपने शत्रुओं की दुर्दशा देखकर जो प्रसन्नता होती है, वह धन, पुत्र और राज्य मिलने से भी नहीं होती।

**सुवाससो हि ते भार्या वल्कलाजिनसंवृताम् ।**
**पश्यन्तु दुःखितां कृष्णां सा च निर्विद्यतां पुनः ॥२३॥**

"आपकी रानियाँ सुन्दर साड़ियाँ पहनकर चलें तथा वन में वल्कल एवं मृगचर्म लपेटकर दुःख में डूबी हुई द्रौपदी को देखें। वह भी इन्हें देखकर बार-बार सन्ताप करे।"

दुर्योधन उवाच

**ब्रवीषि यदिदं कर्ण सर्वं मनसि मे स्थितम् ।**
**न त्वभ्यनुज्ञां लप्स्यामि गमने यत्र पाण्डवाः ॥२४॥**

**दुर्योधन बोला**—हे कर्ण ! तुम जो कुछ कह रहे हो, वह सब मेरे मन में भी है, परन्तु जहाँ पाण्डव रहते हैं, वहाँ जाने के लिए मैं पिताजी की आज्ञा नहीं पा सकूँगा।

**ममापि हि महान् हर्षो यदहं भीमफाल्गुनौ ।**
**क्लिष्टावरण्ये पश्येयं कृष्णया सहिताविति ॥२५॥**

यदि मैं भीम और अर्जुन को द्रौपदी के साथ वन में क्लेश उठाते देखूँ, तो मुझे भी बड़ी प्रसन्नता होगी।

**न तथा ह्याप्नुयां प्रीतिमवाप्य वसुधामिमाम् ।**
**दृष्ट्वा यथा पाण्डुसुतान् वल्कलाजिनवाससः ॥२६॥**

पाण्डवों को वल्कल-वस्त्र पहने और मृगचर्म ओढ़े देखकर मुझे जितनी प्रसन्नता होगी, उतनी इस समूची पृथिवी का राज्य पाकर भी नहीं होगी।

**किं नु स्यादधिकं तस्माद् यदहं द्रुपदात्मजाम् ।**
**द्रौपदीं कर्ण पश्येयं काषायवसनां वने ॥२७॥**

"कर्ण ! मैं द्रुपदकुमारी कृष्णा को वन में गेरुए कपड़े पहने देखूँ, इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है ?

**यदि मां धर्मराजश्च भीमसेनश्च पाण्डवः ।**
**युक्तं परमया लक्ष्म्या पश्येतां जीवितं भवेत् ॥२८॥**

यदि धर्मराज युधिष्ठिर एवं पाण्डुनन्दन भीमसेन मुझे परमोत्कृष्ट राज्य-लक्ष्मी से सम्पन्न देख लें, तो मेरा जीवन सफल हो जाए।

**उपायं न तु पश्यामि येन गच्छेम तद् वनम् ।**
**यथा चाभ्यनुजानीयाद् गच्छन्तं मां महीपतिः ॥२९॥**

परन्तु मुझे कोई उपाय दिखाई नहीं देता जिससे हम लोग द्वैतवन में जा सकें, अथवा महाराज मुझे वहाँ जाने की अनुमति दे दें।

**त्वं सौबलेन सहितस्तथा दुःशासनेन च ।**
**उपायं पश्य निपुणं येन गच्छेम तद् वनम् ॥३०॥**

तुम मामा शकुनि और भाई दुःशासन के साथ परामर्श करके कोई अच्छा-सा उपाय ढूंढ़ निकालो, जिससे हम लोग द्वैतवन में चल सकें।

वैशम्पायन उवाच

**ततो दुर्योधनं कर्णः प्रहसन्निदमब्रवीत् ।**
**उपायः परिदृष्टोऽयं तं निबोध जनेश्वरः ॥३१॥**

**वैशम्पायन बोले**—तब कर्ण ने हँसकर दुर्योधन से कहा—"हे राजन् ! मुझे जो उपाय सूझा है, उसे बताता हूँ, सुनो—

**घोषा द्वैतवने सर्वे त्वत्प्रतीक्षा नराधिप ।**
**घोषयात्रापदेशेन गमिष्यामो न संशयः ॥३२॥**

"महाराज! इस समय हमारी गौओं के रहने के सभी स्थान द्वैतवन के समीप ही हैं और वहाँ आपके पधारने की सदा प्रतीक्षा की जाती है, अतः घोषयात्रा के बहाने हम वहाँ निःसन्देह चल सकेंगे।

**उचितं हि सदा गन्तुं घोषयात्रां विशाम्पते ।**
**एवं च त्वां पिता राजन् समनुज्ञातुमर्हति ॥३३॥**

"राजन् ! अपनी गौओं को देखने के लिए यात्रा करना सदा उचित ही है, ऐसा बहाना लेने पर पिताजी तुम्हें अवश्य ही जाने की आज्ञा दे सकते हैं।"

**ततः प्रहसिताः सर्वे तेऽन्योन्यस्य तलान् ददुः ।**
**तदेव च विनिश्चित्य ददृशुः कुरुसत्तमम् ॥३४॥**

तदनन्तर वे सबके-सब अपनी योजना को सफल होती देख हँसने और एक-दूसरे के हाथ पर हाथ रखकर प्रसन्नता प्रकट करने लगे। फिर यही निश्चय करके वे तीनों कुरुश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र से मिले।

**ततस्तैर्विहितः पूर्वं समङ्गो नाम बल्लवः ।**
**समीपस्थास्तदा गावो धृतराष्ट्रे न्यवेदयत् ॥३५॥**

उन लोगों ने समङ्ग नामक एक ग्वाले को पहले ही सिखा-पढ़ाकर ठीक कर लिया। उसने धृतराष्ट्र की सेवा में निवेदन किया—"महाराज ! आजकल आपकी गौएँ समीप ही आई हुई हैं।"

**अनन्तरं च राधेयः शकुनिश्च विशाम्पते ।**
**आहतुः पार्थिवश्रेष्ठं धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ॥३६॥**

हे जनमेजय ! ग्वाले के निवेदन करने पर कर्ण और शकुनि ने राजाओं में श्रेष्ठ नरेश्वर धृतराष्ट्र से कहा—

**रमणीयेषु देशेषु घोषाः सम्प्रति कौरव ।**
**स्मारणे समयः प्राप्तो वत्सानामपि चाङ्कनम् ॥३७॥**

"हे कुरुराज ! इस समय हमारी गौओं के स्थान रमणीय प्रदेशों में हैं। यह समय गौओं और बछड़ों की गणना करने तथा उनकी आयु, रंग, जाति एवं नाम का ब्यौरा लिखने के लिए भी अति उपयुक्त है।

**मृगया चोचिता राजन्नस्मिन् काले सुतस्य ते ।**
**दुर्योधनस्य गमनं समनुज्ञातुमर्हसि ॥३८॥**

"हे राजन् ! यह समय आपके पुत्र दुर्योधन के लिए हिंसक पशुओं का शिकार करने के लिए भी अत्युपयुक्त अतः आप इन्हें द्वैतवन में जाने की आज्ञा दीजिए।"

धृतराष्ट्र उवाच

**मृगया शोभना तात गवां हि समवेक्षणम् ।**
**विश्रम्भस्तु न कर्त्तव्यो बल्लवानामिति स्मरे ॥३९॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—हे तात ! शिकार खेलने और गौओं की देख-भाल का प्रस्ताव उत्तम है, परन्तु 'ग्वालों की बात पर विश्वास नहीं करना चाहिए।' यह नीति-वचन मुझे अभी स्मरण हो आया है।

**ते तु तत्र नरव्याघ्राः समीप इति नः श्रुतम् ।**
**अतो नाभ्यनुजानामि गमनं तत्र वः स्वयम् ॥४०॥**

मैंने सुना है कि नरश्रेष्ठ पाण्डव भी इन दिनों में वहीं कहीं निकट ही ठहरे हुए हैं, अतः मैं तुम लोगों को वहाँ जाने की अनुमति नहीं दे सकता।

**छद्मना निर्जितास्ते तु कर्शिताश्च महावने ।**
**तपोनित्याश्च राधेय समर्थाश्च महारथाः ॥४१॥**

राधानन्दन ! पाण्डव छलपूर्वक हराये गये है। घोर वन में रहकर उन्हें महान् कष्ट सहना पड़ा है। वे निरन्तर तपस्या में रत रहे हैं, अतः अब विशेष शक्ति-सम्पन्न हो गये हैं, महारथी तो वे हैं ही।

**धर्मराजो न संक्रुध्येद् भीमसेनस्त्वमर्षणः।**
**यज्ञसेनस्य दुहिता तेज एव तु केवलम् ॥४२॥**

यह ठीक है कि धर्मराज युधिष्ठिर क्रोध नहीं करेंगे परन्तु भीमसेन तो सदा ही क्रोध में भरे रहते हैं और द्रुपदपुत्री कृष्णा तो साक्षात् अग्नि की ही मूर्ति है।

**यूयं चाप्यपराध्येयुर्दर्पमोहसमन्विताः।**
**ततो विनिर्दहेयुस्ते तपसा हि समन्विताः ॥४३॥**

तुम लोग तो अहंकार और मोह में चूर रहते ही हो, अतः उनका अपराध अवश्य करोगे, उस अवस्था में वे तुम्हें भस्म किये बिना न छोड़ेंगे क्योंकि वे तपः-शक्ति से सम्पन्न हैं।

**अथ वा सैनिकाः केचिदपकुर्युर्युधिष्ठिरम्।**
**तदबुद्धिकृतं कर्म दोषमुत्पादयेच्च वः ॥४४॥**

अथवा यह भी सम्भव है कि तुम्हारे सैनिक ही युधिष्ठिर का अपमान कर बैठें और तुम्हारे अनजाने में किया गया यह अपराध तुम लोगों के लिए विपत्ति (हानिकारक) बन जाए।

**तस्माद् गच्छन्तु पुरुषाः स्मारणायाप्तकारिणः।**
**न स्वयं तत्र गमनं रोचये तव भारत ॥४५॥**

अतः भरतनन्दन ! दूसरे विश्वसनीय पुरुष गौओं की गणना के लिए वहाँ चले जाएँगे। स्वयं तुम्हारा वहाँ जाना मुझे ठीक नहीं जान पड़ता।

शकुनिरुवाच

**धर्मज्ञः पाण्डवो ज्येष्ठः प्रतिज्ञातं च संसदि।**
**तेन द्वादशवर्षाणि वस्तव्यानीति भारत ॥**

**शकुनि बोला**—हे भारत ! ज्येष्ठ पाण्डव राजा युधिष्ठिर धर्मात्मा हैं। उन्होंने भरी सभा में यह प्रतिज्ञा की थी कि हम बारह वर्ष तक वनों में रहेंगे।

**अनुव्रताश्च ते सर्वे पाण्डवा धर्मचारिणः।**
**युधिष्ठिरस्तु कौन्तेयो न नः कोपं करिष्यति ॥४७॥**

अन्य चारों पाण्डव भी धर्म पर ही चलनेवाले हैं, अतः वे सबके-सब युधिष्ठिर का ही अनुसरण करते हैं। कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर हम लोगों पर कभी क्रोध नहीं करेंगे।

**मृगयां चैव नो गन्तुमिच्छा संवर्तते भृशम्।**
**स्मारणं तु चिकीर्षामो न तु पाण्डवदर्शनम् ॥४८॥**

हमारी विशेष इच्छा केवल शिकार खेलने की है, दूसरे हम लोग स्मरण के लिए केवल गौओं की गणना करना चाहते हैं। पाण्डवों से मिलने की इच्छा हमारी बिल्कुल नहीं है।

**न चानार्यसमाचारः कश्चित् तत्र भविष्यति।**
**न च तत्र गमिष्यामो यत्र तेषां प्रतिश्रयः ॥४९॥**

हमारी ओर से वहाँ कोई भी अनार्य-आचरण (नीचतापूर्ण व्यवहार) नहीं होगा। जहाँ पाण्डवों का निवास होगा, वहाँ हम लोग जाएँगे ही नहीं।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तः शकुनिना धृतराष्ट्रो जनेश्वरः।**
**दुर्योधनं सहामात्यमनुजज्ञे न कामतः ॥५०॥**

**वैशम्पायन जी कहते हैं**—जनमेजय ! शकुनि के ऐसा कहने पर राजा धृतराष्ट्र ने इच्छा न होते हुए भी मन्त्रियोंसहित दुर्योधन को वहाँ जाने की अनुमति दे दी।

**अनुज्ञातस्तु गान्धारिः कर्णेन सहितस्तदा।**
**निर्ययौ भरतश्रेष्ठो बलेन महता वृतः ॥५१॥**

धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर गान्धारी-पुत्र भरत-श्रेष्ठ दुर्योधन कर्ण और विशाल सेना के साथ नगर से बाहर निकला।

**दुःशासनेन च तथा सौबलेन च धीमता।**
**संवृतो भ्रातृभिश्चान्यैः स्त्रीभिश्चापि सहस्रशः ॥५२**

दुःशासन, बुद्धिमान् शकुनि, अन्य अनेक भाइयों और सहस्रों स्त्रियों से घिरे हुए दुर्योधन ने वहाँ से प्रस्थान किया।

**गव्यूतिमात्रे न्यवसद् राजा दुर्योधनस्तदा।**
**प्रयातो वाहनैः सर्वैस्ततो द्वैतवनं सरः ॥५३॥**

नगर से दो कोस दूर जाकर राजा दुर्योधन ने पड़ाव डाल दिया। फिर वहाँ से समस्त वाहनों के साथ द्वैतवन एवं सरोवर की ओर प्रस्थान किया।

**इति महाभारते वनपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥१६॥**

# सप्तदशोऽध्यायः

## दुर्योधन द्वारा गौओं की देखभाल, गन्धर्वों के साथ मुठभेड़, कर्ण की पराजय और दुर्योधन का अपहरण

वैशम्पायन उवाच

**अथ दुर्योधनो राजा तत्रतत्र वने वसन्।**
**जगाम घोषानभितस्तत्र चक्रे निवेशनम् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! तदनन्तर राजा दुर्योधन वन में जहाँ-तहाँ पड़ाव डालता हुआ उन घोषों=गोशालाओं के पास पहुँच गया और वहीं अपनी छावनी डाल दी।

**ददर्श स तदा गावः शतशोऽथ सहस्रशः।**
**अङ्कैर्लक्षैश्च ताः सर्वा लक्षयामास पार्थिवः ॥२॥**

[ठहरने की सुव्यवस्था हो जाने पर] राजा दुर्योधन ने अपनी सैकड़ों और सहस्रों गौओं का निरीक्षण करना आरम्भ किया। उन सबपर संख्या और निशानी डलवा दी।

**अङ्कयामास वत्सांश्च जज्ञे चोपसृतांस्त्वपि।**
**बालवत्साश्च या गावः कालयामास ता अपि ॥३॥**

तत्पश्चात् बछड़ों पर भी संख्या और निशानी डलवाई। जो नाथने योग्य थे, उन सबकी गणना कराकर उनपर भी पहचान डाल दी। जिन गौओं के बछड़े बहुत छोटे थे, उनकी अलग गणना करवाई।

**अथ स स्मारणं कृत्वा लक्षयित्वा त्रिहायनान्।**
**वृतो गोपालकैः प्रीतो व्यहरत् कुरुनन्दनः ॥४॥**

इस प्रकार जाँच-पड़ताल का काम पूरा करके कुरुनन्दन दुर्योधन ने तीन वर्ष के बछड़ों की पृथक् गणना करवाई। स्मारण का काम कर वह बड़ी प्रसन्नता के साथ ग्वालों से घिरकर उस वन में विहार करने लगा।

**ततस्ते सहिताः सर्वे तरक्षून् महिषान् मृगान्।**
**गवयर्क्षवराहांश्च समन्तात् पर्यकालयन् ॥५॥**

तत्पश्चात् वे सब तरक्षुओं=जरखों, जंगली भैंसों, मृगों, गवयों, रीछों, शूकरों और अन्य जंगली पशुओं का चारों ओर से शिकार करने लगे।

**गोरसानुपयुञ्जानः पश्यन् रम्यवनानि च।**
**आगच्छदानुपूर्व्येण पुण्यं द्वैतवनं सरः ॥६॥**

दुर्योधन अपने साथियोंसहित दूध आदि गोरसों का पान करता हुआ और क्रमशः आगे बढ़ता हुआ पवित्र द्वैतवन नामक सरोवर के समीप जा पहुँचा।

**ततो दुर्योधनः प्रेष्यानादिदेश सहस्रशः।**
**आक्रीडावसथाः क्षिप्रं क्रियन्तामिति भारत ॥७॥**

भारत! वहाँ पहुँचकर दुर्योधन ने अपने सहस्रों सेवकों को आदेश दिया—"तुम लोग बहुत-से क्रीड़ा-मण्डप तैयार करो।"

**ते तथेत्येव कौरव्यमुक्त्वा वचनकारिणः।**
**चिकीर्षन्तस्तदाऽऽक्रीडाञ्जग्मुर्द्वैतवनं सरः ॥८॥**

आज्ञाकारी सेवक दुर्योधन से 'बहुत अच्छा' कह-कर क्रीड़ाभवन बनाने की इच्छा से द्वैतवन-सरोवर के निकट गये।

**तत्र गन्धर्वराजो वै पूर्वमेव विशाम्पते।**
**कुबेरभवनाद् राजन्नाजगाम गणावृतः ॥९॥**

प्रजानाथ राजन्! वहाँ गन्धर्वराज चित्रसेन पहले से ही अपने सेवकगणों के साथ कुबेर-भवन से आया हुआ था।

**गणैरप्सरसां चैव त्रिदशानां तथाऽऽत्मजैः।**
**विहारशीलः क्रीडार्थं तेन तत् संवृतं सरः ॥१०॥**

वे उन दिनों अप्सराओं और देवकुमारों के साथ विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते थे। उन्होंने स्वयं ही क्रीड़ा-विहार के लिए उस सरोवर को सब ओर से घेर लिया था।

**तेन तत्संवृतं दृष्ट्वा ते राजपरिचारकाः।**
**प्रतिजग्मुस्ततो राजन् यत्र दुर्योधनो नृपः ॥११॥**
**स तु तेषां वचः श्रुत्वा सैनिकान् युद्धदुर्मदान्।**
**प्रेषयामास कौरव्य उत्सारयत तानिति ॥१२॥**

राजन्! उस सरोवर को गन्धर्वों से घिरा देख-कर वे राजसेवक दुर्योधन के पास लौटकर आये। हे जनमेजय! सेवकों का कथन सुनकर राजा दुर्योधन ने युद्ध के लिए उन्मत्त रहनेवाले उन सैनिकों को यह

आदेश देकर वापस भेजा कि—"गन्धर्वों को वहाँ से मार भगाओ!"

**तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राज्ञः सेनाग्रयायिनः ।**
**सरो द्वैतवनं गत्वा गन्धर्वानिदमब्रुवन् ॥१३॥**

राजा की यह आज्ञा पाकर उसकी सेना के नायक द्वैतवन-सरोवर के समीप जाकर गन्धर्वों से इस प्रकार बोले—

**राजा दुर्योधनो नाम धृतराष्ट्रसुतो बली ।**
**विजिहीर्षुरिहायाति तदर्थमपसर्पत ॥१४॥**

"गन्धर्वो! महाराज धृतराष्ट्र के शक्तिशाली पुत्र राजा दुर्योधन विहार करने की इच्छा से यहाँ पधार रहे हैं। तुम लोग यह स्थान उनके लिए खाली करके दूर हट जाओ।"

**एवमुक्तास्तु गन्धर्वाः प्रहसन्तो विशाम्पते ।**
**प्रत्यब्रुवंस्तान् पुरुषानिदं हि परुषं वचः ॥१५॥**

राजन्! उनके ऐसा कहने पर गन्धर्वों ने जोर-जोर से हँसते हुए और उन राजसेवकों को उत्तर देते हुए कठोर वाणी में कहा—

**न चेतयति वो राजा मन्दबुद्धिः सुयोधनः ।**
**योऽस्मानाज्ञापयत्येवं वैश्यानिव दिवौकसः ॥१६॥**

"तुम्हारे राजा मन्दबुद्धि दुर्योधन को तनिक भी होश नहीं है, क्योंकि वह हम देवलोकवासी गन्धर्वों को भी बनियों के समान समझकर आज्ञा दे रहा है।

**यूयं मुमूर्षवश्चापि मन्दप्रज्ञा न संशयः ।**
**ये तस्य वचनादेवमस्मान् ब्रूत विचेतसः ॥१७॥**

"तुम लोग भी मरना चाहते हो और तुम्हारी भी बुद्धि मारी गई, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, तभी तो तुम दुर्योधन के कहने से हमसे इस प्रकार विवेक-हीन (विचारहीन) होकर बातें कर रहे हो।

**गच्छत त्वरिताः सर्वे यत्र राजा स कौरवः ।**
**न चेदद्यैव गच्छध्वं धर्मराजनिवेशनम् ॥१८॥**

"या तो तुम सब लोग शीघ्रतापूर्वक अपने राजा दुर्योधन के पास लौट जाओ अन्यथा अभी यमलोक की राह लो।"

**एवमुक्तास्तु गन्धर्वै राज्ञः सेनाग्रयायिनः ।**
**सम्प्राद्रवन् यतो राजा धृतराष्ट्रतोभवत् ॥१९॥**

गन्धर्वों के ऐसा कहने पर दुर्योधन की सेना के हरावल योद्धा वहीं भाग गये जहाँ राजा दुर्योधन स्वयं टिका हुआ था।

**ततस्ते सहिताः सर्वे दुर्योधनमुपागमन् ।**
**अब्रुवँश्च महाराज यदूचुः कौरवं प्रति ॥२०॥**

जनमेजय! तब वे सब लोग एक साथ कुरुराज दुर्योधन के पास गये और गन्धर्वों ने दुर्योधन के प्रति जो कुछ कहा था, वह सब-कुछ कह सुनाया।

**गन्धर्वैर्वारिते सैन्ये धार्तराष्ट्रः प्रतापवान् ।**
**अमर्षपूर्णः सैन्यानि प्रत्यभाषत भारत ॥२१॥**

हे भारत! गन्धर्वों द्वारा अपने सैनिकों के रोक दिये जाने पर प्रतापी दुर्योधन ने क्रुद्ध होकर समस्त सैनिकों से कहा—

**शासनैतानधर्मज्ञान् मम विप्रियकारिणः ।**
**यदि प्रक्रीडते देवैः सर्वैः सह शतक्रतुः ॥२२॥**

"अरे! यदि समस्त देवों के साथ इन्द्र भी वहाँ आकर क्रीड़ा करते हों, तो भी मेरा अप्रिय करनेवाले उन पापात्माओं को तुम लोग दण्ड दो।"

**दुर्योधनवचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रा महाबलाः ।**
**सर्व एवाभिसंनद्धा योधाश्चापि सहस्रशः ॥२३॥**

दुर्योधन की आज्ञा पाकर महाबली कौरव और उनके सहस्रों योद्धा सबके-सब युद्ध के लिए कमर कसकर तैयार हो गये।

**ततः प्रमथ्य सर्वांस्ताँस्तद् वनं विविशुर्बलात् ।**
**सिंहनादेन महता पूरयन्तो दिशो दश ॥२४॥**

तत्पश्चात् वे सब अपने महान् सिंहनाद से दसों दिशाओं को गुँजाते हुए उन समस्त गन्धर्वों को रौंदकर बलपूर्वक द्वैतवन में घुस गये।

**गन्धर्वराजस्तान् सर्वानब्रवीत् कौरवान् प्रति ।**
**अनार्याञ्छासतेत्येतान् चित्रसेनोऽत्यमर्षणः ॥२५॥**

यह देखकर गन्धर्वराज चित्रसेन बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने कौरवों को लक्ष्य करके समस्त गन्धर्वों को आज्ञा दी—"अरे, इन दुष्टों का दमन करो!"

**अनुज्ञाताश्च गन्धर्वाश्चित्रसेनेन भारत ।**
**प्रगृहीतायुधाः सर्वे धार्तराष्ट्रानभिद्रवन् ॥२६॥**

हे भारत! गन्धर्वराज चित्रसेन का आदेश पाते ही सब गन्धर्व अस्त्र-शस्त्र लेकर कौरवों की ओर दौड़े।

**तान् दृष्ट्वा पततः शीघ्रं गन्धर्वानुद्यतायुधान् ।**
**प्राद्रवंस्ते दिशः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः ॥२७॥**

गन्धर्वों को अस्त्र-शस्त्र लेकर तीव्र वेग से अपनी ओर आते देख सभी कौरव सैनिक दुर्योधन के देखते-देखते चारों ओर भागने लगे ।

**आपततों तु सम्प्रेक्ष्य गन्धर्वाणां महाचमूम् ।**
**राधेयस्तु तदा वीरो नासीत् तत्र पराङ्मुखः ॥२८॥**

गन्धर्वों की उस विशाल सेना को आती देखकर [और धृतराष्ट्र के पुत्रों को युद्ध से विमुख हो भागते देखकर भी] राधानन्दन कर्ण ने युद्ध में पीठ नहीं दिखाई ।

**क्षुरप्रैर्विशिखैर्भल्लैर्वत्सदन्तैस्तथाऽऽयसैः ।**
**गन्धर्वाञ्छतशोऽभ्यघ्नँल्लघुत्वात् सूतनन्दनः ॥२९॥**

सूतपुत्र कर्ण ने अपने हाथ की फुर्ती के कारण लोहे के क्षुरप्र, विशिख, भल्ल और वत्सदन्त नामक बाणों की वर्षा करके सैकड़ों गन्धर्वों को घायल कर दिया ।

**गन्धर्वांस्त्रासितान् दृष्ट्वा चित्रसेनो ह्यमर्षणः ।**
**उत्पपातासनात् क्रुद्धो वधे तेषां समाहितः ॥३०॥**

गन्धर्वों को भयभीत देख चित्रसेन प्रचण्ड क्रोध में भर गये । वे शत्रुओं के वध का दृढ़-संकल्प करके अपने आसन से उछल पड़े ।

**ततो मायास्त्रमास्थाय युयुधे चित्रमार्गवित् ।**
**तयामुह्यन्त कौरव्याश्चित्रसेनस्य मायया ॥३१॥**

युद्ध की विचित्र पद्धतियों के ज्ञाता चित्रसेन ने मायामय अस्त्रका आश्रय लेकर युद्ध आरम्भ किया । चित्रसेन की उस माया से समस्त कौरव मूर्च्छा से मोह-ग्रस्त हो गये ।

**सर्व एव तु गन्धर्वाः शतशोऽथ सहस्रशः ।**
**जिघांसमानाः सहिताः कर्णमभ्यद्रवन् रणे ॥३२॥**

उधर सभी गन्धर्व संगठित हो कर्ण को मार डालने की इच्छा से सौ-सौ और हजार-हजार का दल बाँधकर रणभूमि में कर्ण के ऊपर टूट पड़े ।

**असिभिः पट्टिशैः शूलैर्गदाभिश्च महाबलाः ।**
**सूतपुत्रं जिघांसन्तः समन्तात् पर्यवाकिरन् ॥३३॥**

उन बलशाली वीरों ने सूतपुत्र कर्ण के वध की इच्छा करके उसपर चारों ओर से तलवार, पट्टिश, शूलों और गदाओं द्वारा प्रहार किये ।

**अन्येऽस्य युगमच्छिन्दन् ध्वजमन्ये न्यपातयन् ।**
**ईषामन्ये हयानन्ये सूतमन्ये न्यपातयन् ॥३४॥**

किन्हीं ने उसके रथ का जुआ काट दिया, दूसरों ने ध्वजा काट गिराई । कुछ ने ईषादण्ड के टुकड़े-टुकड़े कर दिये, कुछ ने घोड़ों को यमलोक पठा दिया तो दूसरों ने सारथि को मार गिराया ।

**ततो रथादवप्लुत्य सूतपुत्रोऽसिचर्मभृत् ।**
**विकर्णरथमास्थाय मोक्षायाश्वान् सुप्रैरयत् ॥३५॥**

तब सूत्रपुत्र कर्ण हाथ में ढाल और तलवार लिये अपने रथ से कूद पड़ा और विकर्ण के रथ पर बैठकर अपने प्राण बचाने के लिए उसके घोड़ों को शीघ्रता से हाँककर युद्ध-क्षेत्र से निकल गया ।

**गन्धर्वैस्तु महाराज भग्ने कर्णे महारथे ।**
**सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः ॥३६॥**

जनमेजय ! गन्धर्वों ने जब महारथी कर्ण को भगा दिया, तब दुर्योधन के देखते-देखते उसकी सारी सेना भाग चली ।

**तान्दृष्ट्वा द्रवतः सर्वान्धार्तराष्ट्रान्पराङ्मुखान् ।**
**दुर्योधनो महाराजो नासीत् तत्र पराङ्मुखः ॥३७॥**

धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों को युद्ध से पीठ दिखाकर भागते देखकर भी राजा दुर्योधन वहीं डटा रहा [उसने युद्ध में पीठ नहीं दिखाई] ।

**तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य गन्धर्वाणां महाचमूम् ।**
**महता शरवर्षेण सोऽभ्यवर्षदरिन्दमः ॥३८॥**

गन्धर्वों की उस विशाल सेना को अपनी ओर आते देख शत्रुओं का दमन करनेवाले दुर्योधन ने उस पर बाणों की भारी वृष्टि आरम्भ कर दी ।

**अचिन्त्य शरवर्षं तु गन्धर्वास्तस्य तं रथम् ।**
**दुर्योधनं जिघांसन्तः समन्तात् पर्यवारयन् ॥३९॥**

परन्तु गन्धर्वों ने बाणवर्षा की कुछ भी परवाह नहीं की । उन्होंने दुर्योधन को मार डालने की इच्छा से उसके रथ को चारों ओर से घेर लिया ।

**युगमीषां वरूथं च तथैव ध्वजसारथी ।**
**अश्वांस्त्रिवेणुं तल्पं च तिलशोऽभ्यहनन् रथम् ॥४०॥**

और उसके रथ के युग=जुआ, ईषादण्ड, वरूथ, ध्वजा, सारथि, घोड़ों, तीन वेणुदण्डवाले छत्र और

तल्प=[बैठने के स्थान] के भी टुकड़े-टुकड़े होकर पृथिवी पर गिर पड़े।

**दुर्योधनं चित्रसेनो विरथं पतितं भुवि।**
**अभिद्रुत्य महाबाहुर्जीवग्राहमथाग्रहीत् ॥४१॥**

उस समय जब दुर्योधन रथहीन होकर पृथिवी पर गिर पड़ा, तो यह देख महाबाहु चित्रसेन ने दौड़कर उसे जीते-जी ही बन्दी बना लिया।

**तस्मिन् गृहीते राजेन्द्र स्थितं दुःशासनं रथे।**
**पर्यगृह्णन्त गन्धर्वा राजदारांश्च सर्वशः ॥४२॥**

राजन्! दुर्योधन के पकड़े जाने पर गन्धर्वों ने रथ पर बैठे हुए दुःशासन को और राजकुल की समस्त महिलाओं को भी अपने अधिकार में ले लिया।

**सैन्यं तद् धार्तराष्ट्रस्य गन्धर्वैः समभिद्रुतम्।**
**पूर्वं प्रभग्नाः सहिताः पाण्डवानभ्ययुस्तदा ॥४३॥**

गन्धर्वों ने दुर्योधन की सारी सेना को मार भगाया था। वह सेना और उसके वे सैनिक जो पहले से ही मैदान छोड़कर भाग गये थे, सब मिलकर पाण्डवों की शरण में गये।

सैनिका ऊचुः

**प्रियदर्शी महाबाहुर्धार्तराष्ट्रो महाबलः।**
**गन्धर्वैर्ह्रियते राजा पार्थास्तमनुधावत ॥४४॥**
**दुःशासनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुर्जयस्तथा।**
**बद्ध्वा ह्रियन्ते गन्धर्वै राजदाराश्च सर्वशः ॥४५॥**

**सैनिक बोले**—हे कुन्तीपुत्रो! हमारे प्रियदर्शी, महाबाहु, महाबली धृतराष्ट्रकुमार राजा दुर्योधन को गन्धर्व बाँधकर लिये जाते हैं। आप लोग उनकी रक्षा के लिए दौड़िए। वे दुःशासन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुर्जय और कुरुकुल की सब स्त्रियों को भी बन्दी बनाकर [कैद करके] लिये जाते हैं।

वैशम्पायन उवाच

**इति दुर्योधनामात्याः क्रोशन्तो राजगृद्धिनः।**
**आर्ता दीनास्तथा सर्वे युधिष्ठिरमुपागमन् ॥४६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजा को हृदय से चाहनेवाले दुर्योधन के सभी मन्त्री आर्त एवं दीन होकर उपर्युक्त बातें जोर-जोर से कहते हुए युधिष्ठिर के समीप गये।

**ताँस्तथा व्यथितान्दीनान्भिक्षमाणान्युधिष्ठिरम्।**
**वृद्धान् दुर्योधनामात्यान् भीमसेनोऽभ्यभाषत ॥४७॥**

दुर्योधन के उन बूढ़े मन्त्रियों को इस प्रकार दीन और दुःखी होकर युधिष्ठिर से सहायता की भीख माँगते देख भीमसेन ने कहा—

भीमसेन उवाच

**महता हि प्रयत्नेन संनह्य गजवाजिभिः।**
**अस्माभिर्यदनुष्ठेयं गन्धर्वैस्तदनुष्ठितम् ॥४८॥**

**भीमसेन बोले**—हमें हाथी-घोड़ों आदि द्वारा बहुत प्रयत्न करके कमर कसकर जो काम करना चाहिए था, उसे गन्धर्वों ने ही पूरा कर दिया।

**अन्यथा वर्तमानानामर्थो जातोऽयमन्यथा।**
**दुर्मन्त्रितमिदं तावद् राज्ञो दुर्द्यूतदेविनः ॥४९॥**

ये कौरव कुछ और ही करना चाहते थे, परन्तु इन्हें उलटा परिणाम देखना पड़ा। छलपूर्वक जुआ खेलनेवाले दुर्योधन का यह दुर्मन्त्रणापूर्ण षड्यन्त्र था, जो सफल न हो सका।

**द्वेष्टारमन्ये क्लीबस्य पातयन्तीति नः श्रुतम्।**
**इदं कृतं नः प्रत्यक्षं गन्धर्वैरतिमानुषम् ॥५०॥**

हमने सुना है कि जो लोग निर्बलों से द्वेष करते हैं, उन्हें दूसरे ही लोग नीचा दिखा देते हैं। गन्धर्वों ने आज अलौकिक पराक्रम करके हमारी इस सुनी हुई बात को प्रत्यक्ष कर दिखाया है।

**दिष्टया लोके पुमानस्ति कश्चिदस्मत्प्रिये स्थितः।**
**येनास्माकं हृतो भार आसीनानां सुखावहः ॥५१॥**

सौभाग्य की बात है कि संसार में कोई ऐसा भी पुरुष है जो हमारे हितसाधन में लगा हुआ है। उसने हम लोगों का भार उतार दिया और हमें बैठे-ही-बैठे सुख पहुँचाया है।

**शीतवातातपसहाँस्तपसा चैव कर्शितान्।**
**समस्थो विषमस्थान् हि द्रष्टुमिच्छति दुर्मतिः ॥५२॥**

हम सरदी, गरमी तथा वर्षा का कष्ट सहते हैं, तपस्या से दुर्बल हो गये हैं और विषम परिस्थिति में पड़े हैं तो भी राजसिंहासन पर बैठकर मौज उड़ानेवाला दुर्बुद्धि दुर्योधन हमें इस दुर्दशा में देखने की इच्छा रखता है।

**इति महाभारते वनपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥**

# अष्टादशोऽध्यायः

## युधिष्ठिर का भीमसेन को कौरवों को छुड़ाने का आदेश, पाण्डवों का गन्धर्वों के साथ युद्ध और दुर्योधन का छुटकारा

युधिष्ठिर उवाच

**अस्मानभिगताँस्तात भयार्ताञ्छरणैषिणः ।**
**कौरवान् विषमप्राप्तान् कथं ब्रूयास्त्वमीदृशम् ॥१॥**

युधिष्ठिर ने कहा—हे तात ! ये लोग भय से पीड़ित हो शरण लेने के लिए हमारे पास आये हैं। इस समय कौरव भारी संकट में पड़ गये हैं, फिर तुम ऐसी कड़वी बातें क्यों बोल रहे हो ?"

**भवन्ति भेदा ज्ञातीनां कलहाश्च वृकोदर ।□**
**प्रसक्तानि च वैराणि कुलधर्मो न नश्यति ॥२॥**

हे भीम ! भाई-बन्धुओं में मतभेद और लड़ाई-झगड़े होते ही रहते हैं। कभी-कभी उनमें वैर भी बँध जाते हैं परन्तु इससे कुलधर्म (अपनापन) नष्ट नहीं होता।

**यदा तु कश्चिज्ज्ञातीनां बाह्यः प्रार्थयते कुलम् ।□**
**न मर्षयन्ति तत् सन्तो बाह्येनाभिप्रधर्षणम् ॥३॥**

जब कोई बाहर का मनुष्य उनके कुल पर आक्रमण करता है, तब श्रेष्ठ पुरुष उस बाहरी व्यक्ति द्वारा होनेवाले अपने कुल के अपमान को सहन नहीं करते।

**परैः परिभवे प्राप्ते वयं पञ्चोत्तरं शतम् ।□**
**परस्परं विरोधे तु वयं पञ्च शतं च ते ॥४॥**

दूसरों के द्वारा पराभव प्राप्त होने पर उसका सामना करने के लिए हम एकसौ पाँच हैं और आपस में विरोध होने पर हम पाँच हैं और वे सौ हैं।

**दुर्योधनस्य ग्रहणाद् गन्धर्वेण बलात् प्रभो ।**
**स्त्रीणां बाह्याभिमर्शाच्च हतं भवति नः कुलम् ॥५॥**

हे बलशाली भीम ! गन्धर्व के द्वारा बलपूर्वक दुर्योधन के पकड़े जाने से और बाहरी पुरुष द्वारा कुरुकुल की स्त्रियों का अपहरण होने से हमारे कुल का जो तिरस्कार हुआ है, वह हमारे कुल के लिए मृत्यु के तुल्य है।

**शरणं हि प्रपन्नानां त्राणार्थं च कुलस्य नः ।**
**उत्तिष्ठत नरव्याघ्राः सज्जीभवत मा चिरम् ॥६॥**

हे नरश्रेष्ठो ! शरणागतों की रक्षा करने और कुल की लाज बचाने के लिए तुम लोग शीघ्र उठो और युद्ध के लिए तैयार हो जाओ, विलम्ब न करो।

**अर्जुनश्च यमौ चैव त्वं च वीरापराजितः ।**
**मोक्षयध्वं नरव्याघ्रा ह्रियमाणं सुयोधनम् ॥७॥**

हे वीर ! अर्जुन, नकुल, सहदेव और तुम किसी से परास्त होनेवाले नहीं हो। शूरवीरो ! गन्धर्वों द्वारा अपहृत होनेवाले दुर्योधन को छुड़ा लाओ।

**एते रथा नरव्याघ्राः सर्वशस्त्रसमन्विताः ।**
**धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां विमलाः काञ्चनध्वजाः ॥८॥**
**एतानास्थाय वै तात गन्धर्वान् योद्धुमाहवे ।**
**सुयोधनस्य मोक्षाय प्रयतध्वमतन्द्रिताः ॥९॥**

नरसिंहो ! कौरवों के ये सुनहरी ध्वजाओंवाले उत्तम रथ सामने खड़े हैं। इनमें सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्र विद्यमान हैं। तात ! तुम लोग इन रथों पर सवार हो गन्धर्वों से युद्ध करने के लिए तैयार हो जाओ और सावधान होकर दुर्योधन को छुड़ाने का प्रयत्न करो।

**वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च पाण्डवाः ।**
**शत्रोश्च मोक्षणं क्लेशात् त्रीणि चैकं च तत्समम् ॥१०**

हे पाण्डवो ! वरदान, राज्यप्रदान और पुत्र की प्राप्ति, ये तीनों बातें एक ओर और शत्रु का संकट से उद्धार करना दूसरी ओर—इनकी तुलना करें तो ये एक समान हैं।

**किं चाप्यधिकमेतस्माद् यदापन्नः सुयोधनः ।**
**त्वद्बाहुबलमाश्रित्य जीवितं परिमार्गते ॥११॥**

तुम्हारे लिए इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात और क्या होगी कि दुर्योधन विपत्ति में पड़कर तुम्हारे बाहुबल के भरोसे अपने जीवन की रक्षा करना चाहता है ?

**साम्नैव तु यथा भीम मोक्षयेथाः सुयोधनम् ।**
**तथा सर्वैरुपायैस्त्वं यतेथाः कुरुनन्दन ॥१२॥**

हे कुरुनन्दन भीम ! शान्तिपूर्ण ढंग से समझा-

बुझाकर जिस प्रकार भी तुम दुर्योधन को छुड़ा सको, सभी उपायों से वैसा ही प्रयत्न करना।

**न साम्ना प्रतिपद्येत यदि गन्धर्वराडसौ।**
**पराक्रमेण मृदुना मोक्षयेथाः सुयोधनम् ॥१३॥**

यदि समझाने-बुझाने से वह गन्धर्वराज चित्रसेन तुम्हारी बात न माने तो कोमलतापूर्ण पराक्रम द्वारा दुर्योधन को छुड़ाने का यत्न करना।

**अथासौ मृदुयुद्धेन न मुञ्चेद् भीम कौरवान्।**
**सर्वोपायैर्विमोच्यास्ते निगृह्य परिपन्थिनः ॥१४॥**

भीम! यदि कोमलतापूर्ण युद्ध से भी वह कौरवों को न छोड़े तो तुम सभी उपायों से उन लुटेरे गन्धर्वों को कैद करके कौरवों को छुड़वाना।

वैशम्पायन उवाच

**अजातशत्रोर्वचनं तत् श्रुत्वा तु धनञ्जयः।**
**प्रतिजज्ञे गुरोर्वाक्यं कौरवाणां विमोक्षणम् ॥१५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! अजातशत्रु युधिष्ठिर का वह वचन सुनकर अर्जुन ने अपने बड़े भाई की आज्ञा के अनुसार कौरवों को छुड़ाने की प्रतिज्ञा की।

अर्जुन उवाच

**यदि साम्ना न मोक्ष्यन्ति गन्धर्वा धृतराष्ट्रजान्।**
**अद्य गन्धर्वराजस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ॥१६॥**

**अर्जुन बोले**—यदि गन्धर्व लोग समझाने-बुझाने से कौरवों को नहीं छोड़ेंगे, तो आज यह पृथिवी गन्धर्वराज का रक्तपान करेगी।

वैशम्पायन उवाच

**अर्जुनस्य तु तां श्रुत्वा प्रतिज्ञां सत्यवादिनः।**
**कौरवाणां तदा राजन् पुनः प्रत्यागतं मनः ॥१७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन्! सत्यशील अर्जुन की वह प्रतिज्ञा सुनकर कौरवों के जी में जी आया।

**अभेद्यानि ततः सर्वे समनह्यन्त भारत।**
**जाम्बूनदविचित्राणि कवचानि महारथाः ॥१८॥**
**आयुधानि च दिव्यानि विविधानि समादधुः।**
**रथानास्थाय शार्दूलाः शीघ्रमेव ययुस्ततः ॥१९॥**

हे भारत! तदनन्तर उन समस्त महारथियों ने जाम्बूनद नामक सुवर्ण से विभूषित और विचित्र शोभा धारण करनेवाले अभेद्य कवच धारण किये, फिर नाना प्रकार के दिव्य आयुध हाथ में लिये और रथों पर आरूढ़ हो वे पाण्डव-श्रेष्ठ वहाँ से तुरन्त ही चल दिये।

**प्रयातान्सहितान्दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रान्महारथान्।**
**जितकाशिनः खचरास्त्वरिताश्च महारथाः ॥२०॥**
**क्षणेनैव वने तस्मिन् समाजग्मुरभीतवत्।**
**न्यवर्तन्त ततः सर्वे गन्धर्वा जितकाशिनः ॥२१॥**

महारथी पाण्डवों को एक साथ धावा बोलते देख विजयश्री से समलंकृत होनेवाले आकाशचारी महारथी गन्धर्व बड़ी उतावली के साथ क्षण-भर में उस वन के भीतर ऐसे एकत्र हो गये, मानो उन्हें किसी का भय न हो। फिर अपनी विजयश्री से आनन्दित होते हुए सारे गन्धर्व शत्रुओं का सामना करने के लिए लौट पड़े।

**दृष्ट्वा रथगतान्वीरान्पाण्डवाँश्चतुरो रणे।**
**व्यूढानीका व्यतिष्ठन्त गन्धमादनवासिनः ॥२२॥**

चारों पाण्डवों को युद्ध के लिए उद्यत हो रथों पर बैठकर आते देख गन्धमादन-वासी गन्धर्व अपनी सेना की व्यूह-रचना करके खड़े हो गये।

**ततस्तान् युधि दुर्धर्षान् सव्यसाची परन्तपः।**
**सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यमुवाच खचरान् रणे।**
**विसर्जयत राजानं भ्रातरं मे सुयोधनम् ॥२३॥**

उन्हें व्यूह में खड़े देख शत्रुओं को सन्ताप देनेवाले सव्यसाची अर्जुन ने उन रणदुर्जय आकाशचारी गन्धर्वों को समझाते हुए कहा—"तुम सब लोग मेरे भाई राजा दुर्योधन को छोड़ दो।"

**एवमुक्तास्तु गन्धर्वाः पाण्डवेन यशस्विना।**
**उत्स्मयन्तस्तदा पार्थमिदं वचनमब्रुवन् ॥२४॥**

यशस्वी पाण्डुनन्दन अर्जुन के ऐसा कहने पर गन्धर्वों ने मुस्कराकर उनसे इस प्रकार कहा—

**एकस्यैव वयं तात कुर्याम वचनं भुवि।**
**यस्य शासनमाज्ञाय चरामो विगतज्वराः ॥२५॥**
**तेनैकेन यथाऽऽदिष्टं तथा वर्ताम भारत।**
**न शास्ता विद्यतेऽस्माकमन्यस्तस्मात्सुरेश्वरात् ॥२६॥**

"तात! हम भूमण्डल में एक ही व्यक्ति की आज्ञा का पालन करते हैं। हे भारत! जिनके शासन को मानकर हम लोग निश्चिन्त हो सर्वत्र विचरते हैं,

हमारे उन्हीं एकमात्र स्वामी ने हमें जैसी आज्ञा दी, हम वैसा ही बर्ताव कर रहे हैं। इन देवेश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो हम लोगों पर शासन कर सके।"

**एवमुक्तः स गन्धर्वैः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः।**
**गन्धर्वान् पुनरेवेदं वचनं प्रत्यभाषत ॥२७॥**

गन्धर्वों के ऐसा कहने पर कुन्तीनन्दन अर्जुन ने पुनः उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—

**नैतद् गन्धर्वराजस्य युक्तं कर्म जुगुप्सितम्।**
**परदाराभिमर्शश्च मानुषैश्च समागमः ॥२८॥**

"हे गन्धर्वो ! परायी स्त्रियों का अपहरण और मनुष्यों के साथ युद्ध—ये घृणित कर्म गन्धर्वराज चित्रसेन को शोभा नहीं देते।

**उत्सृज्यध्वं महावीर्यान् धृतराष्ट्रसुतानिमान्।**
**दारांश्चैषां विमुञ्चध्वं धर्मराजस्य शासनात् ॥२९॥**

"अतः तुम लोग धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा से इन महापराक्रमशाली धृतराष्ट्र के पुत्रों तथा इनकी स्त्रियों को छोड़ दो।

**यदि साम्ना न मोक्षध्वं गन्धर्वा धृतराष्ट्रजान्।**
**मोक्षयिष्यामि विक्रम्य स्वयमेव सुयोधनम् ॥३०॥**

"गन्धर्वो ! यदि इस प्रकार समझाने-बुझाने से भी तुम लोग धृतराष्ट्र के पुत्रों को नहीं छोड़ोगे तो मैं अपने पराक्रम से भी दुर्योधन को छुड़ा लूंगा।"

**ततः सुतुमुलं युद्धं गन्धर्वाणां तरस्विनाम्।**
**बभूव भीमवेगानां पाण्डवानं च भारत ॥३१॥**

हे भारत ! तदनन्तर बलशाली गन्धर्वों तथा भयानक वेगवाले पाण्डवों में अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया।

**अभिक्रुद्धानभिक्रुद्धो गन्धर्वानर्जुनस्तदा।**
**लक्षयित्वाथ दिव्यानि महास्त्राण्युपचक्रमे ॥३२॥**

उस समय गन्धर्वों को क्रोध में भरे हुए देखकर अर्जुन ने भी कुपित होकर महान् दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया।

**तथा भीमो महेष्वासः संयुगे बलिनां वरः।**
**गन्धर्वाञ्छतशो राजञ्जघान निशितैः शरैः ॥३३॥**

राजन् ! इसी प्रकार बलवानों में श्रेष्ठ महाधनुर्धर भीमसेन ने भी अपने तीक्ष्ण सायकों द्वारा सैकड़ों गन्धर्वों को भूमि पर सुला दिया।

**माद्रीपुत्रावपि तथा युध्यमानौ बलोत्कटौ।**
**परिगृह्याग्रतो राजञ्जघ्नतुः शतशः परान् ॥३४॥**

उत्कट बलशाली माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव ने भी युद्ध में तत्पर होकर सैकड़ों शत्रुओं को आगे से पकड़कर मार डाला।

**ते वध्यमाना गन्धर्वा दिव्यैरस्त्रैर्महारथैः।**
**उत्पेतुः खमुपादाय धृतराष्ट्रसुतांस्ततः ॥३५॥**

महारथी पाण्डवों के चलाये दिव्यास्त्रों की मार खाकर गन्धर्व धृतराष्ट्र के पुत्रों को लिये हुए आकाश में उड़ गये।

**स तानुत्पतितान् दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः।**
**महता शरजालेन समन्तात् पर्यवारयत् ॥३६॥**

कुन्तीनन्दन अर्जुन ने उन्हें आकाश में उड़ते देख चारों ओर बाणों का विस्तृत जाल-सा फैलाकर गन्धर्वों को घेरे में डाल दिया।

**ते बद्धाः शरजालेन शकुन्ता इव पञ्जरे।**
**ववर्षुरर्जुनं क्रोधाद् गदाशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ॥३७॥**

वे उस जाल में ऐसे बँध गये जैसे पिंजरे में पक्षी, अतः वे अत्यन्त क्रुद्ध हो अर्जुन पर गदा, शक्ति और ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगे।

**तेषां तु शरवर्षाणि सव्यसाची परन्तपः।**
**अस्त्रैः संवार्य तेजस्वी गन्धर्वान् प्रत्यविध्यत ॥३८॥**

शत्रुओं को तपानेवाले तेजस्वी अर्जुन ने अपने अस्त्रों द्वारा गन्धर्वों की बाणवर्षा को रोककर उन्हें फिर से घायल कर दिया।

**ते दह्यमाना गन्धर्वाः कुन्तीपुत्रस्य सायकैः।**
**दैतेया इव शक्रेण विषादमगमन् परम् ॥३९॥**

कुन्तीपुत्र अर्जुन के सायकों से वे गन्धर्व उसी प्रकार दग्ध होने लगे जैसे इन्द्र के बाणों द्वारा दैत्य। इससे उनको बड़ा विषाद हुआ।

**गन्धर्वांस्त्रासितान् दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रेण भारत।**
**चित्रसेनो गदां गृह्य सव्यसाचिनमाद्रवत् ॥४०॥**

हे भारत ! इस प्रकार कुन्तीकुमार के द्वारा गन्धर्वों को भयभीत हुआ देख गन्धर्वराज चित्रसेन ने गदा हाथ में लेकर सव्यसाची अर्जुन पर आक्रमण किया।

**तस्याभिपततस्तूर्णं गदाहस्तस्य संयुगे।**
**गदां सर्वायसीं पार्थः शरैश्चिच्छेद सप्तधा ॥४१॥**

गदा हाथ में लिये बड़े वेग से युद्ध के लिए आते हुए चित्रसेन की उस गदा के, जो सारी लोहे की बनी हुई थी, अर्जुन ने अपने बाणों द्वारा सात टुकड़े कर दिये।

**स गदां बहुधा दृष्ट्वा कृत्तां बाणैस्तरस्विना।**
**संवृत्य विद्ययाऽऽत्मानं योधयामास पाण्डवम् ॥४२॥**

वेगशाली अर्जुन के द्वारा अपनी गदा के अनेक टुकड़े हुए देख चित्रसेन अन्तर्धान विद्या द्वारा अपने आपको छिपाकर उन पाण्डुपुत्रों के साथ युद्ध करने लगा।

**अन्तर्धानवधं चास्य चक्रे क्रुद्धोऽर्जुनस्तदा।**
**शब्दवेधं समाश्रित्य बहुरूपो धनञ्जयः ॥४३॥**

तब अर्जुन ने कुपित होकर शब्दवेध का सहारा ले चित्रसेन की अन्तर्धानरूप-माया को भी नष्ट कर दिया। [रणभूमि में चहुँ ओर विचरण करने के कारण] उस समय अर्जुन अनेक रूप धारण किये हुए जान पड़ते थे।

**स वध्यमानस्तैरस्त्रैरर्जुनेन महात्मना।**
**ततोऽस्य दर्शयामास तदाऽऽत्मानं प्रियः सखा ॥४४॥**

चित्रसेन अर्जुन के प्यारे सखा थे। उन्होंने महात्मा अर्जुन के बाणों से अत्यन्त घायल होने पर अपने आपको उनके समक्ष प्रकट कर दिया।

**चित्रसेनमथालक्ष्य सखायं युधि दुर्बलम्।**
**संजहारास्त्रमथ तत् प्रसृष्टं पाण्डवर्षभः ॥४५॥**

अपने मित्र चित्रसेन को युद्ध में अत्यन्त घायल और दुर्बल हुआ देख पाण्डवप्रवर अर्जुन ने अपने धनुष पर चढ़ाये हुए उस दिव्यास्त्र को उतार लिया।

**ततोऽर्जुनश्चित्रसेनं प्रहसन्निदमब्रवीत्।**
**मध्ये गन्धर्वसैन्यानां महेष्वासो महाद्युतिः ॥४६॥**
**किं ते व्यवसितं वीर कौरवाणां विनिग्रहे।**
**किमर्थं च सदारोऽयं निगृहीतः सुयोधनः ॥४७॥**

तत्पश्चात् परम कान्तिमान् महाधनुर्धर अर्जुन ने गन्धर्वों की सेना के बीच चित्रसेन से हँसते हुए पूछा—"वीर! कौरवों को बन्दी बनाने में तुम्हारा क्या उद्देश्य था? स्त्रियोंसहित दुर्योधन को किस लिए कैद किया है?"

चित्रसेन उवाच

**वनस्थान् भवतो ज्ञात्वा क्लिश्यमानाननाथवत्।**
**इमेऽवहसितुं प्राप्ता द्रौपदीं च यशस्विनीम् ॥४८॥**
**ज्ञात्वा चिकीर्षितं चैषां ततोऽस्मीहागतो द्रुतम्।**
**अयं दुरात्मा बद्धश्च गमिष्यामि सुरालयम् ॥४९॥**

**चित्रसेन ने कहा**—धनंजय! ये पापात्मा आप लोगों को वन में रहकर अनाथों की भाँति क्लेश उठाते देख आपकी और यशस्विनी द्रौपदी की हँसी उड़ाने के लिए वन में आये थे। इनकी आप लोगों का अनिष्ट करने की इच्छा को जानकर मैं तुरन्त यहाँ चला आया। यह दुष्ट दुर्योधन मेरी कैद में आ गया है, अब मैं इसे लेकर देवलोक में जाऊँगा।

अर्जुन उवाच

**उत्सृज्यतां चित्रसेन भ्रातास्माकं सुयोधनः।**
**धर्मराजस्य सन्देशान्मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥५०॥**

**अर्जुन बोले**—चित्रसेन! दुर्योधन हम लोगों का भाई है। यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो, तो धर्मराज की आज्ञा से इसे छोड़ दो।

चित्रसेन उवाच

**पापोऽयं नित्यसन्तुष्टो न विमोक्षणमर्हति।**
**प्रलब्धा धर्मराजस्य कृष्णायाश्च धनञ्जय ॥५१॥**

**चित्रसेन ने कहा**—धनञ्जय! यह पापी सदा राज्य-सुख भोगने के कारण हर्ष से मतवाला हो उठा है, अतः इसे छोड़ना उचित नहीं है। इसने धर्मराज युधिष्ठिर तथा द्रौपदी को धोखा दिया है।

**नेदं चिकीर्षितं तस्य कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।**
**जानाति धर्मराजो हि श्रुत्वा कुरु यथेच्छसि ॥५२॥**

कुन्तीनन्दन धर्मराज युधिष्ठिर इसके इस कुटिल अभिप्राय को नहीं जानते हैं, अतः यह सब सुनकर तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो।

वैशम्पायन उवाच

**ते सर्व एव राजानमभिजग्मुर्युधिष्ठिरम्।**
**अभिगम्य च तत्सर्वं शशंसुस्तस्य चेष्टितम् ॥५३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन्! तत्पश्चात् वे सब लोग राजा युधिष्ठिर के पास गये। वहाँ जाकर

गन्धर्वों ने दुर्योधन की सारी कुचेष्टा कह सुनाई ।

**अजातशत्रुस्तत् श्रुत्वा गन्धर्वस्य वचस्तदा ।**
**मोक्षयामास तान् सर्वान्गन्धर्वान् प्रशशंस च ॥५४॥**

अजातशत्रु युधिष्ठिर ने गन्धर्वों का वह कथन सुनकर भी उस समय समस्त कौरवों को छुड़वा दिया और गन्धर्वों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

**ततो दुर्योधनं मुक्तं भ्रातृभिः सहितस्तदा ।**
**युधिष्ठिरस्तु प्रणयादिदं वचनमब्रवीत् ॥५५॥**

फिर बन्धनमुक्त हुए दुर्योधन से भाइयोंसहित युधिष्ठिर ने प्रेमपूर्वक यह कहा—

**मा स्म तात पुनः कार्षीरीदृशं साहसं क्वचित् ।**
**न हि साहसकर्तारः सुखमेधन्ति भारत ॥५६॥**

"तात ! फिर कभी ऐसा दुःसाहस मत करना । हे भारत ! दुःसाहस करनेवाले मनुष्य कभी सुखी नहीं होते ।

**स्वस्तिमान् सहितः सर्वैर्भ्रातृभिः कुरुनन्दन ।**
**गृहान् व्रज यथाकामं वैमनस्यं च मा कृथाः ॥५७॥**

"कुरुनन्दन ! अब तुम अपने सभी भाइयोंसहित कुशलपूर्वक इच्छानुसार घर जाओ । हम लोगों के प्रति मन में वैमनस्य मत रखना ।"

**पाण्डवेनाभ्यनुज्ञातो राजा दुर्योधनस्तदा ।**
**विदीर्यमाणो व्रीडावाञ्जगाम नगरं प्रति ॥५८॥**

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर राजा दुर्योधन ने अपने नगर की ओर प्रस्थान किया । उस समय उसका हृदय व्यथा से विदीर्ण हो रहा था और वह अपने कुकृत्य पर अत्यन्त लज्जित था ।

**तस्मिन् गते कौरवेये कुन्तीपुत्रोऽब्रवीदिदम् ।**
**साष्टमासं हि नो वर्षं यदेतदुपयुङ्क्ष्महे ॥५९॥**

दुर्योधन के चले जाने पर युधिष्ठिर ने कहा— अब तक हम लोगों को इस द्वैतवन में रहते हुए एक वर्ष और आठ मास व्यतीत हो चुके हैं ।

**पुनर्बहुमृगं रम्यं काम्यकं काननोत्तमम् ।**
**मरुभूमेः शिरःस्थानं तृणविन्दुसरः प्रति ॥६०॥**
**तत्रेमां वसतिं शिष्टां विहरन्तो रमेमहि ।**
**ततस्ते पाण्डवाः शीघ्रं प्रययुर्धर्मकोविदाः ॥६१॥**

अतः अब हम पुनः असंख्य मृगों से युक्त, रमणीक तथा उत्तम काम्यक वन में तृणबिन्दु नामक सरोवर के पास चलें । काम्यक वन मरुभूमि के शीर्ष-स्थान में पड़ता है । वहीं विहार करते हुए हम वनवास का शेष समय व्यतीत करेंगे । धर्मराज के ऐसा कहने पर धर्मज्ञ पाण्डवों ने शीघ्र ही उस वन से प्रस्थान कर दिया ।

**विविशुस्ते स्म कौरव्या वृता विप्रर्षभैस्तदा ।**
**तद्वनं भरतश्रेष्ठाः स्वर्गं सुकृतिनो यथा ॥६२॥**

जैसे पुण्यात्मा पुरुष स्वर्ग में जाते हैं, वैसे ही उन भरतश्रेष्ठ पाण्डवों ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ काम्यक वन में प्रवेश किया ।

**इति महाभारते वनपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥**

# एकोनविंशोऽध्यायः

## दुर्योधन की ग्लानि, आमरण अनशन का निश्चय, कर्ण और दुःशासन के समझाने पर नगर को लौटना

जनमेजय उवाच

**शत्रुभिर्जितबद्धस्य पाण्डवैश्च महात्मभिः ।**
**मोक्षितस्य युधा पश्चान्मानिनः सुदुरात्मनः ॥१॥**
**दुर्योधनस्य पापस्य नित्याहङ्कारवादिनः ।**
**प्रवेशो हास्तिनपुरे दुष्करः प्रतिभाति मे ॥२॥**
**तस्य लज्जान्वितस्यैव शोकव्याकुलचेतसः ।**
**प्रवेशं विस्तरेण त्वं वैशम्पायन कीर्तय ॥३॥**

**जनमेजय ने पूछा**—हे मुने ! दुर्योधन को शत्रुओं ने जीता और बाँध लिया फिर महात्मा पाण्डवों ने गन्धर्वों के साथ युद्ध करके उसे छुड़वाया । ऐसी अवस्था में उस अभिमानी और दुरात्मा दुर्योधन का हस्तिनापुर में प्रवेश करना मुझे तो अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है । पापी दुर्योधन सदा अहंकार की ही बातें करता था । पाण्डवों की सहायता से मेरे जीवन की रक्षा हुई, यह सोचकर वह लज्जित हो गया होगा, उसका हृदय शोक से व्याकुल हो उठा होगा ।

वैशम्पायनजी ! ऐसी दशा में उसने अपनी राजधानी में कैसे प्रवेश किया ? आप यह सब विस्तारपूर्वक कहिए ।

वैशम्पायन उवाच

**धर्मराजनिसृष्टस्तु धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ।**
**लज्जयाधोमुखः सीदन्नुपासर्पत् सुदुःखितः ।।४।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! धर्मराज से विदा होकर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन लज्जा से मुख नीचा किये अत्यन्त दुःखी और खिन्न होकर वहाँ से चल दिया ।

**स्वपुरं प्रययौ राजा चतुरङ्गबलानुगः ।**
**शोकोपहतया बुद्ध्या चिन्तयानः पराभवम् ।।५।।**

शोक के कारण उसकी बुद्धि मारी गई थी । वह अपने अपमान पर विचार करता हुआ चतुरङ्गिणी सेना के साथ नगर की ओर चल पड़ा ।

**विमुच्य पथि यानानि देशे सुयवसोदके ।**
**संनिविष्टः शुभे रम्ये भूमिभागे यथेप्सितम् ।।६।।**

मार्ग में एक स्थान पर जहाँ घास और जल की सुविधा थी, दुर्योधन अपने वाहनों को वहीं छोड़कर एक सुन्दर एवं रमणीक भूमि-भाग में अपनी रुचि के अनुसार ठहर गया ।

**अथोपविष्टं राजानं पर्यङ्के ज्वलनप्रभे ।**
**उपागम्याब्रवीत् कर्णो दुर्योधनमिदं तदा ।।७।।**

जब राजा दुर्योधन अग्नि के समान देदीप्यमान सोने के पलंग पर बैठ गया, तब कर्ण ने उसके पास जाकर इस प्रकार कहा—

**दिष्ट्या जीवसि गान्धारे दिष्ट्या नः संगमः पुनः ।**
**दिष्ट्या त्वया जिताश्चैव गन्धर्वाः कामरूपिणः ।।८।।**

"गान्धारीनन्दन ! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम जीवित हो । सौभाग्यवश हम लोग पुनः एक-दूसरे से मिल गये । यह और भी सौभाग्य और प्रसन्नता की बात है कि आपने इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले गन्धर्वों पर विजय पायी ।

**अहं त्वभिद्रुतः सर्वैर्गन्धर्वैः पश्यतस्तव ।**
**नाशक्नुवं स्थापयितुं दीर्यमाणां च वाहिनीम् ।।९।।**

"मैं तो तुम्हारे देखते-देखते ही समस्त गन्धर्वों से पराजित होकर भाग आया था । मैं तितर-बितर होकर भागती हुई सेना को स्थिर न रख सका ।

**नैतस्य कर्ता लोकेऽस्मिन् पुमान् भारत विद्यते ।**
**यत् कृतं ते महाराज सह भ्रातृभिराहवे ।।१०।।**

"भरतनन्दन महाराज ! इस युद्ध में भाइयोंसहित आपने जो पराक्रम कर दिखाया है, उसे करनेवाला कोई दूसरा पुरुष इस संसार में नहीं है ।"

**एवमुक्तस्तु कर्णेन राजा दुर्योधनस्तदा ।**
**उवाचावाक्शिरा राजन् बाष्पगद्गदया गिरा ।।११।।**

राजन् ! कर्ण के ऐसा कहने पर उस समय राजा दुर्योधन ने नीचे सिर किये हुए अश्रुगद्गद वाणी में इस प्रकार कहा—

दुर्योधन उवाच

**अजानतस्ते राधेय नाभ्यसूयाम्यहं वचः ।**
**जानासि त्वं जिताञ्छत्रून् गन्धर्वांस्तेजसा मया ।।१२।।**

**दुर्योधन बोला**—राधानन्दन ! तुम सब बातें नहीं जानते हो, इसी से मैं तुम्हारे कथन का बुरा नहीं मानता । तुम समझते हो कि मैंने अपने पराक्रम से गन्धर्वरूपी शत्रुओं को जीता है, परन्तु ऐसी बात है नहीं ।

**आयोधितास्तु गन्धर्वाः सुचिरं सोदरैर्मम ।**
**मया सह महाबाहो कृतश्चोभयतः क्षयः ।।१३।।**

महाबाहो ! मेरे भाइयों ने मेरे साथ रहकर बहुत देर तक युद्ध किया और उसमें दोनों ओर के बहुत-से सैनिक मारे गये ।

**मायाधिकास्त्वयुध्यन्त यदा शूरा वियद्गताः ।**
**तदा नो न समं युद्धमभवत् खेचरैः सह ।।१४।।**

परन्तु जब माया के कारण अधिक शक्तिशाली शूरवीर गन्धर्व आकाश में ठहरकर युद्ध करने लगे, तब उनके साथ हमारा युद्ध समान स्थिति में नहीं रह सका ।

**पराजयं च प्राप्ताः स्म रणे बन्धनमेव च ।**
**सभृत्यामात्यपुत्राश्च सदारबलवाहनाः ।।१५।।**

युद्ध में हमारी पराजय हुई तथा हम सेवक, मन्त्री, पुत्र, स्त्री, सेना और सवारियोंसहित बन्दी बना लिये गये ।

**अथ नः सैनिकाः केचिदमात्याश्च महारथाः ।**
**उपगम्याब्रुवन् दीनाः पाण्डवाञ्छरणप्रदान् ।।१६।।**

तब हमारे कुछ सैनिकों, महारथियों और मन्त्रियों ने अत्यन्त दीन हो शरणदाता पाण्डवों के पास जाकर कहा—

**एष दुर्योधनो राजा धार्तराष्ट्रः सहानुजः ।**
**सामात्यदारो ह्रियते गन्धर्वैर्दिवमाश्रितैः ॥१७॥**

हे कुन्तीपुत्रो ! धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन अपने भाइयों, मन्त्रियों और स्त्रियों के साथ गन्धर्वों द्वारा अपहृत होकर आकाशमार्ग द्वारा ले जाए जा रहे हैं।

**तं मोक्षयत भद्रं वः सहदारं नराधिपम् ।**
**पराभवो मा भविष्यत् कुरुदारेषु सर्वशः ॥१८॥**

आप लोगों का कल्याण हो। आप रानियोंसहित महाराज दुर्योधन को छुड़ाइए। कहीं ऐसा न हो कि कुरुकुल की स्त्रियों का तिरस्कार हो जाए।

**एवमुक्ते तु धर्मात्मा ज्येष्ठः पाण्डुसुतस्तदा ।**
**प्रसाद्य पाण्डवान् सर्वानाज्ञापयत मोक्षणे ॥१९॥**

उनके ऐसा कहने पर ज्येष्ठ पाण्डुपुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिर ने अन्य सब पाण्डवों को प्रसन्न करके हम सब लोगों को छुड़ाने के लिए आज्ञा दी।

**अथागम्य तमुद्देशं पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ।**
**सान्त्वपूर्वमयाचन्त शक्ताः सन्तो महारथाः ॥२०॥**

तब पुरुषसिंह महारथी पाण्डव उस स्थान पर आकर समर्थ होते हुए भी गन्धर्वों से सान्त्वनापूर्ण शब्दों में हमें छोड़ देने के लिए याचना करने लगे।

**यदा चास्मान्न मुमुचुर्गन्धर्वाः सान्त्विता अपि ।**
**ततोऽर्जुनश्च भीमश्च यमजौ च बलोत्कटौ ।**
**मुमुचुः शरवर्षाणि गन्धर्वान् प्रत्यनेकशः ॥२१॥**

उनके समझाने-बुझाने पर भी जब गन्धर्वों ने हमें नहीं छोड़ा तब अर्जुन, भीम तथा उत्कट बलशाली नकुल-सहदेव ने उन गन्धर्वों को लक्ष्य करके बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।

**अथ सर्वे रणं मुक्त्वा प्रयाताः खेचरा दिवम् ।**
**ततः समन्तात् पश्यामः शरजालेन वेष्टितम् ॥२२॥**

फिर तो सारे गन्धर्व रणभूमि छोड़कर आकाश में उड़ गये। इसी समय हमने देखा कि चारों ओर बाणों का एक जाल-सा तन गया है।

**समावृता दिशो दृष्ट्वा पाण्डवेन शितैः शरैः ।**
**धनञ्जयसखाऽऽत्मानं दर्शयामास वै तदा ॥२३॥**

पाण्डुनन्दन अर्जुन ने अपने तीखे बाणों से समस्त दिशाओं को ढँक दिया है—यह देखकर उनके सखा चित्रसेन ने अपने आपको उनके सामने प्रकट कर दिया।

**चित्रसेनं समागम्य प्रहसन्नर्जुनस्तदा ।**
**इदं वचनमक्लीबमब्रवीत् परवीरहा ॥२४॥**

कर्ण ! चित्रसेन से मिलकर उस समय शत्रु-संहारक अर्जुन ने हँसते हुए-से यह वीरोचित वचन कहा—

**भ्रातॄनर्हसि मे वीर मोक्तुं गन्धर्वसत्तम ।**
**अनर्हधर्षणा हीमे जीवमानेषु पाण्डुषु ॥२५॥**

"वीर गन्धर्वश्रेष्ठ ! तुम्हें मेरे इन भाइयों को मुक्त कर देना चाहिए। पाण्डवों के जीते-जी ये इस प्रकार अपमान सहन करने के योग्य नहीं हैं।"

**एवमुक्तस्तु गन्धर्वः पाण्डवेन महात्मना ।**
**उवाच यत् कर्ण वयं मन्त्रयन्तो विनिर्गताः ।**
**द्रष्टारः स्म सुखाद्धीनान् सदारान् पाण्डवानिति ॥२६**

कर्ण ! महात्मा पाण्डुनन्दन अर्जुन के ऐसा कहने पर गन्धर्व ने वह बात कह दी, जिसके लिए परामर्श करके हम लोग घर से चले थे। उसने बताया कि—'ये कौरव सुख से वञ्चित तुम पाण्डवों तथा द्रौपदी की दुर्दशा देखने के लिए आये थे।'

**तस्मिन्नुच्चार्यमाणे तु गन्धर्वेण वचस्यथ ।**
**भूमेर्विवरमन्वैच्छं प्रवेष्टुं व्रीडयान्वितः ॥२७॥**

गन्धर्व द्वारा उपर्युक्त बात कही जाने पर मैं अत्यन्त लज्जित हो गया। मेरी इच्छा हुई कि धरती फटे और मैं उसमें समा जाऊँ।

**युधिष्ठिरमथागम्य गन्धर्वाः सह पाण्डवैः ।**
**अस्मद्दुर्मन्त्रितं तस्मै बद्धांश्चास्मान् न्यवेदयन् ॥२८॥**

तत्पश्चात् गन्धर्वों ने पाण्डवों के साथ युधिष्ठिर के पास आकर हम लोगों की दुर्मन्त्रणा उन्हें बताई और हमें उन्हें सौंप दिया। उस समय हम सब लोग बँधे हुए थे।

**स्त्रीसमक्षमहं दीनो बद्धः शत्रुवशं गतः ।**
**युधिष्ठिरायोपहृतः किं नु दुःखमतः परम् ॥२९॥**

स्त्रियों के सामने मैं दीनभाव से बँधकर शत्रुओं के वश में पड़ गया और उसी अवस्था में युधिष्ठिर

को अर्पित किया गया। मेरे लिए इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या हो सकती है ?

**ये मे निराकृता नित्यं रिपुर्येषामहं सदा ।**
**तैर्मोक्षितोऽहं दुर्बुद्धिर्दत्तं तैरेव जीवितम् ॥३०॥**

जिनका मैंने सदा अपमान किया और जिनका मैं सदा शत्रु बना रहा, उन्हीं लोगों ने मुझ दुर्बुद्धि को शत्रुओं के बन्धन से छुड़ाया और उन्होंने ही मुझे जीवन प्रदान किया है।

**प्राप्तः स्यां यद्यहं वीर वधं तस्मिन् महारणे ।**
**श्रेयस्तद् भविता मह्यं नैवंभूतस्य जीवितम् ॥३१॥**

हे वीर! यदि मैं उस युद्ध में मारा जाता तो यह मेरे लिए कल्याणकारी होता, परन्तु इस अवस्था में जीवित रहना मेरे लिए कदापि अच्छा नहीं है।

**यत् त्वद्य मे व्यवसितं तच्छृणुध्वं नरर्षभाः ।**
**इह प्रायमुपासिष्ये यूयं व्रजत वै गृहान् ॥३२॥**

नरश्रेष्ठ वीरो! अब मैंने जो निश्चय किया है, उसे सुनो। मैं यहाँ आमरण अनशन करूँगा। तुम सब लोग घर लौट जाओ।

**भ्रातरश्चैव मे सर्वे सुहृदो बान्धवाश्च ये ।**
**दुःशासनं पुरस्कृत्य प्रयान्त्वद्य पुरं प्रति ॥३३॥**

मेरे सब भाई, मेरे मित्र और बान्धवगण भी दुःशासन को आगे करके आज ही हस्तिनापुर को लौट जाएँ।

**भीष्मद्रोणौ कृपद्रौणी ये चान्ये वृद्धसम्मताः ।**
**किं मां वक्ष्यन्ति किं चापि प्रतिवक्ष्यामि तानहम् ॥३४**

भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा अन्य जो सम्मानित वृद्धजन हैं वे मुझे क्या कहेंगे और मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा ?

**रिपूणां शिरसि स्थित्वा तथा विक्रम्य चोरसि ।**
**आत्मदोषात् परिभ्रष्टः कथं वक्ष्यामि तानहम् ॥३५॥**

मैं पराक्रम करके शत्रुओं के मस्तक और छाती पर खड़ा हो गया था, परन्तु अब अपने ही दोष से नीचे गिर गया। ऐसी अवस्था में उन आदरणीय महानुभावों से मैं कैसे वार्तालाप करूँगा ?

**दुर्विनीताः श्रियं प्राप्य विद्यामैश्वर्यमेव च ।□**
**तिष्ठन्ति न चिरं भद्रे यथाहं मदगर्वितः ॥३६॥**

उद्दण्ड मनुष्य लक्ष्मी, विद्या और ऐश्वर्य पाकर भी दीर्घकाल तक कल्याणमय पद पर प्रतिष्ठित नहीं रह सकते, जैसे मैं मिथ्या अहंकार के मद में चूर होकर अपनी प्रतिष्ठा खो बैठा हूँ।

**अहो नार्हमिदं कर्म कष्टं दुश्चरितं कृतम् ।**
**स्वयं दुर्बुद्धिना मोहाद् येन प्राप्तोऽस्मि संशयम् ॥३७॥**

अहो! यह कुकर्म मेरे योग्य नहीं था। मुझ दुर्बुद्धि ने स्वयं ही मोहवश यह दुःखदायक दुष्कर्म कर डाला, जिससे [बन्दी होने के कारण] मेरा जीवन संदिग्ध हो गया।

**तस्मात्प्रायमुपासिष्ये न हि शक्ष्यामि जीवितुम् ।**
**चेतयानो हि को जीवेत् कृच्छ्राच्छत्रुभिरुद्धृतः ॥३८**

अतः अब मैं आमरण उपवास करूँगा। अब मैं जीवित नहीं रह सकूँगा। जिसका शत्रुओं ने संकट से उद्धार किया हो, ऐसा कौन विचारशील मनुष्य जीवित रहना चाहेगा ?

**शत्रुभिश्चोपहसितो मानी पौरुषवर्जितः ।**
**पाण्डवैर्विक्रमाढ्यैश्च सावमानमवेक्षितः ॥३९॥**

शत्रुओं ने मेरा उपहास किया है। मुझे अपने पौरुष का अभिमान था परन्तु यहाँ मैं कुछ भी पुरुषार्थ न दिखा सका। पराक्रमी पाण्डवों ने मुझे अवहेलनापूर्ण दृष्टि से देखा है, अतः मुझे जीवन से वैराग्य हो गया है।

वैशम्पायन उवाच

**एवं चिन्तापरिगतो दुःशासनमथाब्रवीत् ।**
**दुःशासन निबोधेदं वचनं मम भारत ॥४०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! इस प्रकार चिन्तामग्न हुए दुर्योधन ने दुःशासन से कहा—"दुःशासन! मेरी यह बात सुनो।

**प्रतीच्छ त्वं मया दत्तमभिषेकं नृपो भव ।**
**प्रशाधि पृथिवीं स्फीतां कर्णसौबलपालिताम् ॥४१॥**

"मैं तुम्हारा राज्याभिषेक करता हूँ। तुम मेरे द्वारा प्रदत्त इस राज्य को ग्रहण करो और राजा बनो। कर्ण और शकुनि की सहायता से सुरक्षित तथा धन-धान्य से समृद्ध इस पृथिवी का पालन करो।

**ब्राह्मणेषु सदा वृत्तिं कुर्वीथाश्चाप्रमादतः ।**
**बन्धूनां सुहृदां चैव भवेथास्त्वं गतिः सदा ॥४२॥**

"तुम प्रमाद छोड़कर सदा ब्राह्मणों की जीविका

की व्यवस्था एवं रक्षा में सचेष्ट रहना तथा बन्धुओं और सुहृदों का सदा आदर करना।"

**तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दीनो दुःशासनोऽब्रवीत्।**
**विदीर्येत् सकला भूमिर्द्यौश्चापि शकली भवेत् ॥४३॥**
**रविरात्मप्रभां जह्यात् सोमः शीतांशुतां त्यजेत्।**
**वायुः शैघ्र्यमथो जह्याद्धिमवांश्च परिव्रजेत् ॥४४॥**
**शुष्यात् तोयं समुद्रेषु वह्निरप्युष्णतां त्यजेत्।**
**न चाहं त्वदृते राजन् प्रशासेयं वसुन्धराम् ॥४५॥**

दुर्योधन की यह बात सुनकर दुःशासन ने दीन-भाव से कहा—"चाहे सारी पृथिवी फट जाए, आकाश के टुकड़े-टुकड़े हो जाएँ, सूर्य अपनी प्रभा और चन्द्रमा अपनी शीतलता त्याग दें, वायु अपनी तीव्र गति छोड़ दे, हिमालय अपना स्थान छोड़कर विचलित हो जाए, समुद्र का जल सूख जाए और अग्नि अपनी उष्णता त्याग दे, परन्तु मैं आपके बिना इस पृथिवी का शासन नहीं करूँगा।

**त्वमेव नः कुले राजा भविष्यति शतं समाः।**
**एवमुक्त्वा स राजानं सुस्वरं प्ररुरोद च ॥४६॥**

"भैया ! आप ही हमारे कुल में सौ वर्ष तक राजा बने रहेंगे।" ऐसा कहकर दुःशासन फूट-फूटकर रोने लगा।

**तथा तौ दुःखितौ दृष्ट्वा दुःशासनसुयोधनौ।**
**अधिगम्य व्यथाविष्टः कर्णस्तौ प्रत्यभाषत ॥४७॥**

दुःशासन और दुर्योधन को इस प्रकार दुःखी होते देखकर कर्ण के मन में बड़ी व्यथा हुई। उसने निकट जाकर उन दोनों से कहा—

कर्ण उवाच

**विषीदथः किं कौरव्यौ बालिश्यात् प्राकृताविव।**
**न शोकः शोचमानस्य विनिवर्तेत कर्हिचित् ॥४८॥**

**कर्ण बोला**—कुरुकुलभूषणो ! तुम दोनों गँवारों की भाँति नासमझी के कारण इतना विषाद क्यों कर रहे हो ? शोक में डूबे रहने से किसी मनुष्य का शोक कभी दूर नहीं होता।

**कर्तव्यं हि कृतं राजन् पाण्डवैस्तव मोक्षणम्।**
**नित्यमेव प्रियं कार्यं राज्ञो विषयवासिभिः ॥४९॥**

हे राजन् ! पाण्डवों ने तुम्हें गन्धर्वों के हाथ से छुड़ाकर अपने कर्तव्य का ही पालन किया है। राजा के राज्य में रहनेवालों को सदा राजा का प्रिय करना चाहिए।

**यद्येवं पाण्डवै राजन् भवद्विषयवासिभिः।**
**यदृच्छया मोक्षितोऽसि तत्र का परिदेवना ॥५०॥**

राजन् ! यदि तुम्हारे राज्य में निवास करने-वाले पाण्डवों ने इसी नीति के अनुसार दैववश तुम्हें शत्रुओं के हाथों से छुड़ा दिया है, तो इसमें दुःखी होने की कौन-सी बात है ?

**शूराश्च बलवन्तश्च संयुगेष्वपलायिनः।**
**भवतस्ते सहाया वै प्रेष्यतां पूर्वमागताः ॥५१॥**

पाण्डव शौर्यसम्पन्न, बलवान् तथा युद्ध में पीठ न दिखानेवाले हैं। वे आपके दास तो पहले ही हो चुके थे, अतः उन्हें आपकी सहायता करनी ही चाहिए थी।

**पाण्डवेयानि रत्नानि त्वमद्याप्युपभुञ्जसे।**
**सत्त्वस्थान् पाण्डवान् पश्य न ते प्रायमुपाविशन्।**
**उत्तिष्ठ राजन् भद्रं ते न चिरं कर्तुमर्हसि ॥५२॥**

पाण्डवों के पास जितने भी रत्न थे, उन सबका उपभोग आज तुम्हीं कर रहे हो, फिर भी देखो, पाण्डव कितने धैर्यवान् हैं कि उन्होंने कभी आमरण अनशन नहीं किया, अतः राजन् ! उठो। तुम्हारा कल्याण हो। अब यहाँ अधिक विलम्ब नहीं करना चाहिए।

**मद्वाक्यमेतद् राजेन्द्र यद्येवं न करिष्यसि।**
**स्थास्यामीह भवत्पादौ शुश्रूषन्नरिमर्दन ॥५३॥**

शत्रुओं का मान-मर्दन करनेवाले महाराज ! यदि तुम मेरी यह बात नहीं मानोगे तो मैं भी तुम्हारे चरणों की सेवा करते हुए यहीं रहूँगा।

**नोत्सहे जीवितुमहं त्वद्विहीनो नरर्षभ।**
**प्रायोपविष्टस्तु नृप राज्ञां हास्यो भविष्यसि ॥५४॥**

नरश्रेष्ठ ! तुम से अलग होकर मैं जीवित नहीं रहना चाहता। हे राजन् ! आमरण अनशन के लिए बैठ जाने पर तुम सब राजाओं के उपहास-पात्र हो जाओगे।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तस्तु कर्णेन राजा दुर्योधनस्तदा।**
**नैवोत्थातुं मनश्चक्रे स्वर्गाय कृतनिश्चयः ॥५५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! कर्ण के ऐसा कहने पर भी स्वर्गलोक में ही जाने का निश्चय

करनेवाले राजा दुर्योधन ने उस समय वहाँ से उठने का विचार नहीं किया ।

**प्रायोपविष्टं राजानं दुर्योधनममर्षणम् ।**
**उवाच सान्त्वयन् राजञ्छकुनिः सौबलस्तदा ॥५६॥**

राजन् ! तदनन्तर अमर्ष (दुःख व क्रोधभरी आत्म-ग्लानि) में भरकर आमरण उपवास के लिए बैठे हुए उस राजा दुर्योधन को सान्त्वना देते हुए सुबलपुत्र शकुनि ने कहा—

शकुनिरुवाच

**सम्यगुक्तं हि कर्णेन तत् श्रुतं कौरव त्वया ।**
**मया हृतां श्रियं स्फीतां तां मोहाद् विजहासि किम्॥५७**

**शकुनि बोला**—कुरुनन्दन ! कर्ण ने अत्युत्तम बात कही है, वह तुमने सुन ही ली है। मैंने पाण्डवों से तुम्हारे लिए जिस वैभवपूर्ण राज्य-लक्ष्मी का अपहरण किया है, मोह-वश तुम उसे क्यों त्याग रहे हो ?

**त्वमल्पबुद्ध्या नृपते प्राणानुत्सृष्टुमर्हसि ।**
**अथवाप्यवगच्छामि न वृद्धाः सेवितास्त्वया ॥५८॥**

नरेश्वर ! तुम अपनी अल्प-बुद्धि के कारण ही आज प्राण त्यागने पर उतारू हो गये हो; अथवा मैं समझता हूँ कि तुमने कभी वृद्ध पुरुषों का संग नहीं किया है ।

**यः समुत्पतितं हर्षं दैन्यं वा न नियच्छति ।**
**स नश्यति श्रियं प्राप्य पात्रमामभिवाम्भसि ॥५९॥**

जो मनुष्य सहसा उत्पन्न हुए हर्ष अथवा शोक पर नियन्त्रण नहीं कर पाता, वह राज्य-लक्ष्मी को पाकर भी वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे मिट्टी का कच्चा बर्तन पानी में गल जाता है।

**अतिभीरुमतिक्लीबं दीर्घसूत्रं प्रमादिनम् ।**
**व्यसनाद् विषयाक्रान्तं न भजन्ति नृपं प्रजाः ॥६०॥**

जो राजा अति डरपोक, अत्यन्त कायर, दीर्घ-सूत्री (आलसी), प्रमादी तथा दुर्व्यसनवश विषयों में फँसा होता है, उसे प्रजा अपना स्वामी स्वीकार नहीं करती ।

**सत्कृतस्य हि ते शोको विपरीते कथं भवेत् ।**
**मा कृतं शोभनं पार्थैः शोकमालम्ब्य नाशय ॥६१॥**

पाण्डवों ने तुम्हारा सत्कार किया है, तो भी तुम्हें शोक हो रहा है। यदि उन्होंने तुम्हारा तिरस्कार किया होता तो न जाने तुम्हारी क्या अवस्था होती। कुन्तीपुत्रों ने तुम्हारे साथ जो सद्व्यवहार किया है, तुम शोक का आश्रय लेकर उसे नष्ट मत करो ।

**यत्र हर्षस्त्वया कार्यः सत्कर्तव्याश्च पाण्डवाः ।**
**तत्र शोचसि राजेन्द्र विपरीतमिदं तव ॥६२॥**

हे राजन् ! जहाँ तुम्हें हर्ष मनाना और पाण्डवों का सत्कार करना चाहिए था, वहाँ तुम शोक कर रहे हो ! तुम्हारा यह व्यवहार सर्वथा उलटा ही है ।

**प्रसीद मा त्यजात्मानं तुष्टश्च सुकृतं स्मर ।**
**प्रयच्छ राज्यं पार्थानां यशो धर्ममवाप्नुहि ॥६३॥**

प्रसन्न हो जाओ ! शरीर का त्याग मत करो । पाण्डवों ने तुम्हारे साथ जो सद्व्यवहार किया है, उसे स्मरण करो और उससे सन्तुष्ट होकर उनका राज्य उन्हें लौटा दो । ऐसा करके यश और धर्म के भागी बनो ।

दुर्योधन उवाच

**न धर्मधनसौख्येन नैश्वर्येण न चाज्ञया ।**
**नैव भोगैश्च मे कार्यं मा विहन्यत गच्छत ॥६४॥**
**निश्चितेयं मम मतिः स्थिता प्रायोपवेशने ।**
**गच्छध्वं नगरं सर्वे पूज्याश्च गुरवो मम ॥६५॥**

**दुर्योधन बोला**—मुझे धर्म, धन, सुख, ऐश्वर्य, शासन और भोग—किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। तुम लोग मेरे निश्चय में बाधा मत डालो ! यहाँ से चले जाओ। आमरण अनशन करने के सम्बन्ध में मेरी बुद्धि का निश्चय अटल है। तुम सब लोग नगर को जाओ और वहाँ मेरे गुरुजनों का सदा आदर-सत्कार करो ।

वैशम्पायन उवाच

**त एवमुक्ताः प्रत्यूचू राजानमरिमर्दनम् ।**
**या गतिस्तव राजेन्द्र सास्माकमपि भारत ।**
**कथं वा सम्प्रवेक्ष्यामस्त्वद्विहीनाः पुरं वयम् ॥६६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—ऐसा उत्तर पाकर सब सुहृदों ने शत्रुदमन राजा दुर्योधन से कहा—"राजेन्द्र ! तुम्हारी जो गति होगी, वही हमारी भी होगी। भारत ! तुम्हारे बिना हम हस्तिनापुर में कैसे प्रवेश करेंगे ?"

**स सुहृद्भिरमात्यैश्च भ्रातृभिः स्वजनेन च ।**
**बहुप्रकारमप्युक्तो निश्चयान्न विचाल्यते ।।६७।।**

जनमेजय ! दुर्योधन को उसके सुहृद, मन्त्री, भाई तथा स्वजनों ने बहुतेरा समझाया, परन्तु कोई भी उसे उसके निश्चय से विचलित न कर सका ।

**दर्भास्तरणमास्तीर्य निश्चयाद् धृतराष्ट्रजः ।**
**संस्पृश्यापः शुचिर्भूत्वा भूतले समुपस्थितः ।।६८।।**

धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन अपने निश्चय पर अटल रहकर, आचमन कर और पवित्र होकर पृथिवी पर कुशा का आसन बिछाकर आमरण अनशन के लिए बैठ गया ।

**दुर्योधनं निशान्ते च कर्णो वैकर्तनोऽब्रवीत् ।**
**स्मयन्निवाञ्जलिं कृत्वा पार्थिवं हेतुमद्वचः ।।६९।।**

वह रात्रि बीत जाने पर सूर्यपुत्र कर्ण ने आकर हाथ जोड़ मुस्कराते हुए-से राजा दुर्योधन से यह युक्तियुक्त वचन कहा—

कर्ण उवाच

**न मृतो जयते शत्रूञ्जीवन् भद्राणि पश्यति ।**
**कुतो मृतस्य भद्राणि कौरवेय कुतो जयः ।।७०।।**

**कर्ण बोला**—कुरुनन्दन ! मरा हुआ मनुष्य कभी शत्रुओं पर विजय नहीं पाता । जो जीवित रहता है, वह कभी सुख के दिन भी देखता है । मरे हुए को सुख और विजय कहाँ ?

**न कालोऽद्य विषादस्य भयस्य मरणस्य वा ।**
**परिष्वज्याब्रवीच्चैनं भुजाभ्यां स महाभुजः ।।७१।।**

यह समय शोक मनाने, भयभीत होने अथवा मरने का नहीं है' यह कहकर महाबाहु कर्ण ने दुर्योधन को दोनों भुजाओं से खींचकर अपने हृदय से लगा लिया और कहा—

**उत्तिष्ठ राजन् किं शेषे कस्माच्छोचसि शत्रुहन् ।**
**शत्रून् प्रताप्य वीर्येण कथं त्वं मृत्युमिच्छसि ।।७२।।**

शत्रुनाशक नरेश ! उठो, सो क्यों रहे हो ? शोक क्यों करते हो ? अपने पराक्रम से शत्रुओं को सन्तप्त करके अब मृत्यु की इच्छा क्यों करते हो ?

**अथ वा ते भयं जातं दृष्ट्वार्जुन-पराक्रमम् ।**
**सत्यं ते प्रति जानामि वधिष्यामि रणेऽर्जुनम् ।।७३।।**

अथवा, यदि तुम्हें अर्जुन का पराक्रम देखकर भय हो गया हो तो मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि मैं युद्ध में अर्जुन को अवश्य परास्त कर मार डालूँगा ।

**पादौ न धावये तावद् यावन्न निहतोऽर्जुनः ।**
**कीलालजं न खादेयं करिष्ये चासुरव्रतम् ।**
**नास्तीति नैव वक्ष्यामि याचितो येन केनचित् ।।७४।।**

जबतक अर्जुन मेरे हाथ से मारा नहीं जाता तबतक मैं दूसरों से पैर नहीं धुलवाऊँगा, जल-सिंचन से उत्पन्न पवित्र अन्न नहीं खाऊँगा तथा असुरव्रत [क्रूरता आदि] धारण नहीं करूँगा । किसी के भी कुछ भी माँगने पर 'नहीं है' ऐसी बात नहीं कहूँगा ।

**गते त्रयोदशे वर्षे सत्येनायुधमालभे ।**
**आनयिष्याम्यहं पार्थान् वशं तव जनाधिप ।।७५।।**

महाराज ! मैं धनुष छूकर सचाई के साथ यह शपथ ग्रहण करता हूँ कि तेरहवाँ वर्ष व्यतीत होते-होते पाण्डवों को तुम्हारे वश में ला दूँगा ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तस्तु कर्णेन भ्रातृणां वचनात् तथा ।**
**प्रणिपातेन चाप्येषामुदतिष्ठत् सुयोधनः ।।७६।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—कर्ण के ऐसा कहने पर और दुःशासन आदि भाइयों के प्रणामपूर्वक अनुनय-विनय करने पर दुर्योधन अपने आसन से उठ खड़ा हुआ ।

**ततो मनुजशार्दूलो योजयामास वाहिनीम् ।**
**गङ्गौघप्रतिमा राजन् सा प्रयाता महाचमूः ।।७७।।**

तदनन्तर नरश्रेष्ठ दुर्योधन ने अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा दी । हे राजन् ! वह विशाल वाहिनी गङ्गा के प्रवाह के समान चलने लगी ।

**प्रयान्तं नृपसिंहं तमनुजग्मुः कुरूद्वहाः ।**
**कालेनाल्पेन राजेन्द्र स्वपुरं विविशुस्तदा ।।७८।।**

राजसिंह दुर्योधन के प्रस्थान करने पर सभी कुरुकुलरत्न उसके पीछे-पीछे चलने लगे । जनमेजय ! थोड़े ही समय में उन सबने अपनी राजधानी हस्तिनापुर में प्रवेश किया ।

**इति महाभारते वनपर्वणि एकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।**

# विंशोऽध्यायः

## जयद्रथ द्वारा द्रौपदी का हरण

जनमेजय उवाच

**दुर्योधनं मोक्षयित्वा पाण्डुपुत्रा महाबलाः ।**
**किमकार्षुर्वने तस्मिंस्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥१॥**

**जनमेजय ने पूछा**—दुर्योधन को गन्धर्वों के बन्धन से छुड़ाकर महाबली पाण्डवों ने उस वन में कौन-सा कार्य किया, मुझे यह बताने की कृपा करें ।

वैशम्पायन उवाच

**तस्मिन् बहुमृगेऽरण्ये अटमाना महारथाः ।**
**काम्यके भरतश्रेष्ठा विजहरुस्ते यथामराः ॥२॥**

**वैशम्यायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! काम्यक वन में नाना प्रकार के वन्य पशु रहते थे । वहाँ भरतकुलभूषण महारथी पाण्डव इधर-उधर घूमते हुए देवताओं के समान विहार करने लगे ।

**प्रेक्षमाणा बहुविधान् वनोद्देशान् समन्ततः ।**
**यथर्तुकालरम्याश्च वनराजीः सुपुष्पिताः ॥३॥**

वे चारों ओर घूम-घूमकर नाना प्रकार के वन्य प्रदेशों तथा ऋतु-काल-अनुसार सुविकसित पुष्पों से सुशोभित रमणीय वन-श्रेणियों की शोभा देखते थे ।

**ततस्ते यौगपद्येन नृसिंहा मृगयाश्रिताः ।**
**द्रौपदीमाश्रमे न्यस्य ययुः सर्वे चतुर्दिशम् ॥४॥**

एक दिन की बात है, पुरुषसिंह पाण्डव द्रौपदी को आश्रम में छोड़ हिंसक पशुओं का शिकार करने के लिए एक साथ चारों दिशाओं में [पृथक्-पृथक्] चले गये ।

**ततस्तु राजा सिन्धूनां वार्द्धक्षत्रिर्महायशाः ।**
**राजभिर्बहुभिः सार्धमुपायात् काम्यकं च सः ॥५॥**

उसी समय वृद्धक्षत्र का पुत्र सिन्धुदेश का महायशस्वी राजा जयद्रथ अनेक राजाओं के साथ यात्रा करता हुआ काम्यक-वन में आ पहुँचा ।

**तिष्ठन्तीमाश्रमद्वारि तत्रापश्यत् स द्रौपदीम् ।**
**भ्राजयन्तीं वनोद्देशं विद्युन्नीलाम्बरं यथा ॥६॥**

वहाँ उसने आश्रम के द्वार पर खड़ी द्रौपदी को देखा । जैसे विद्युत् अपनी स्वर्णिम प्रभा से नीले मेघ-समूह को प्रकाशित करती है, वैसे ही वह सुन्दरी अपनी स्वर्णिम सौन्दर्य-छवि (कान्ति) से प्रदेश को देदीप्यमान कर रही थी ।

**अप्सरा देवकन्या वा माया वा देवनिर्मिता ।**
**इति कृत्वाञ्जलिं सर्वे ददृशुस्तामनिन्दिताम् ॥७॥**

जयद्रथ और उसके सभी साथियों ने उस अनिन्द्य सुन्दरी की ओर देखा और वे सब हाथ जोड़कर मन-ही-मन यह विचार करने लगे—'यह कोई अप्सरा है, या देवकन्या है अथवा देवताओं की रची हुई माया है ।'

**ततः स राजा सिन्धूनां वार्द्धक्षत्रिर्जयद्रथः ।**
**विस्मितस्त्वनवद्याङ्गीं दृष्ट्वा तां दुष्टमानसः ॥८॥**

उस अनिन्द्य सुन्दरी को देखकर वृद्धक्षत्रकुमार सिन्धुराज जयद्रथ चकित रह गया । फिर उसके मन में दूषित-भाव का उदय हुआ ।

**स कोटिकाश्यं राजानमब्रवीत् काममोहितः ।**
**कस्य त्वेषानवद्याङ्गी यदि वापि न मानुषी ॥९॥**

उसने काम-मोहित होकर राजा कोटिकाश्य से कहा—"कोटिक ! तनिक जाकर पता तो करो, यह सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्री किसकी है ? अथवा यह मानुषी स्त्री है भी या नहीं ?

**गच्छ जानीहि सौम्येमां कस्य वात्र कुतोऽपि वा ।**
**किमर्थमागता सुभ्रूरिदं कण्टकितं वनम् ॥१०॥**

"सौम्य ! जाओ, पता लगाओ, यह किसकी स्त्री है, और इस वन में कहाँ से आई है । यह सुन्दर भौंहोंवाली युवती काँटों से भरे हुए इस जंगल में किसलिए आई है ।

**स कोटिकाश्यस्तत् श्रुत्वा रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली ।**
**तामुपेत्य च पप्रच्छ क्रोष्टा व्याघ्रवधूमिव ॥११॥**

जयद्रथ का यह वचन सुनकर कुण्डलमण्डित कोटिकाश्य रथ से उतर पड़ा और जैसे गीदड़ सिंहनी से बात करे उसी प्रकार उसने द्रौपदी के पास जाकर पूछा—

कोटिक उवाच

**का त्वं कदम्बस्य विनाम्य शाखा-**
**मेकाश्रमे तिष्ठसि शोभमाना ।**
**देवी नु यक्षी यदि दानवी वा**
**वराप्सरा दैत्यवराङ्गना वा ॥१२॥**

**कोटिक ने पूछा**—हे सुन्दरि ! तुम कौन हो, जो कदम्ब की डाली झुकाकर उसके सहारे इस आश्रम में अकेली खड़ी हो और अपनी सौन्दर्य-छवि बिखेर रही हो। तुम किसी देवता, यक्ष, दानव अथवा दैत्य की स्त्री तो नहीं हो या कोई श्रेष्ठ अप्सरा हो ?

**धातुर्विधातुः सवितुर्विभोर्वा**
**शक्रस्य वा त्वं सदनात् प्रपन्ना ।**
**आचक्ष्व बन्धूंश्च पतिं कुलं च**
**तत्त्वेन यच्चेह करोषि कार्यम् ॥१३॥**

अथवा तुम धाता, विधाता, सविता, विभु या इन्द्र के भवन से यहाँ आई हो ? भद्रे ! तुम अपने बन्धु-बान्धव, पति और कुल का यथार्थ परिचय दो और यह भी बताओ कि तुम यहाँ क्या करती हो ?

वैशम्पायन उवाच

**अथाब्रवीत्तं द्रुपदात्मजा सा**
**पृष्टा शिबीनां प्रवरेण तेन ।**
**अवेक्ष्य मन्दं प्रविमुच्य शाखां**
**संगृह्णती कौशिकमुत्तरीयम् ॥१४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! शिबिदेश के प्रमुख वीर कोटिकाश्य के इस प्रकार पूछने पर राजकुमारी द्रौपदी उस कदम्ब की डाली को छोड़कर अपनी रेशमी ओढ़नी को सँभालती हुई संकोचपूर्वक उसकी ओर देखकर बोली—

**बुद्ध्याभिजानामि नरेन्द्रपुत्र**
**न मादृशी त्वामभिभाष्टुमर्हा ।**
**न चापि वाक्यस्य तवास्ति वक्तु-**
**मन्यो नरो वाप्यथ वापि नारी ॥१५॥**

"राजकुमार ! मैं बुद्धि से सोच-विचारकर भली भाँति समझती हूँ कि मुझ जैसी पति-परायणा स्त्री को तुम जैसे पर-पुरुष से वार्तालाप नहीं करना चाहिए किन्तु यहाँ कोई दूसरा ऐसा पुरुष अथवा स्त्री नहीं है, जो तुम्हारी बात का उत्तर दे सके, और—

**एका ह्यहं सम्प्रति तेन वाचं**
**ददामि वै भद्र निबोध चेदम् ।**
**अपत्यमस्मि द्रुपदस्य राज्ञः**
**कृष्णेति मां शैब्य विदुर्मनुष्याः ॥१६॥**

"इस समय मैं यहाँ अकेली हूँ, अतः विवश होकर मुझे तुमसे बोलना पड़ रहा है। भद्रपुरुष ! मेरी बात सुनो। शिबिदेश के राजकुमार ! मैं राजा द्रुपद की पुत्री हूँ तथा सब मनुष्य मुझे कृष्णा के नाम से जानते हैं।"

**तथाऽऽसीनेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत ।**
**यदुक्तं कृष्णया सार्धं तत् सर्वं प्रत्यवेदयत् ॥१७॥**

हे भारत ! पूर्वोक्त प्रकार से रथों पर बैठे हुए उन राजाओं के पास जाकर कोटिकाश्य ने द्रौपदी के साथ उसकी जो-जो बातें हुईं थीं, वे सब कह सुनाईं।

कोटिक उवाच

**एषा वै द्रौपदी कृष्णा राजपुत्री यशस्विनी ।**
**तया समेत्य सौवीर सौवीराभिमुखो व्रज ॥१८॥**

**कोटिक बोला**—सौवीर नरेश ! यह यशस्विनी राजकुमारी द्रुपदपुत्री कृष्णा है। तुम उससे मिलकर सौवीर देश की राह लो।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तः प्रत्युवाच पश्यामि द्रौपदीमिति ।**
**पतिः सौवीरसिन्धूनां दुष्टभावो जयद्रथः ॥१९॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—हे राजन् ! कोटिकाश्य के ऐसा कहने पर सौवीर और सिन्धु आदि देशों के स्वामी जयद्रथ ने मन में दुर्भावना लेकर उससे कहा—"अच्छा, मैं भी द्रौपदी से मिल लेता हूँ।"

**स प्रविश्याश्रमं कृष्णामिदं वचनमब्रवीत् ।**
**एहि मे रथमारोह सुखमाप्नुहि केवलम् ॥२०॥**

वह आश्रम में प्रविष्ट होकर द्रौपदी से बोला—"आओ, चलो। मेरे साथ रथ पर बैठो और अखण्ड सुख का उपभोग करो।

**गतश्रीकाँश्च्युतान् राज्यात् कृपणान् गतचेतसः ।**
**अरण्यवासिनः पार्थान् नानुरोद्धुं त्वमर्हसि ॥२१॥**
**नैव प्राज्ञा गतश्रीकं भर्तारमुपयुञ्जते ।**
**युञ्जानमनुयुञ्जीत न श्रियः संक्षये वसेत् ॥२२॥**

"अब पाण्डव धन और राज्य से हीन हैं। वे दीन और उत्साहहीन हैं, अतः इन वनवासी कुन्ती-पुत्रों का अनुसरण करना तुम्हें शोभा नहीं देता। विदुषी स्त्रियाँ निर्धन पति की उपासना नहीं करतीं। स्वामी के पास जबतक धन रहे तभी तक उसके पास रहना चाहिए। जब उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाए तब उसके पास नहीं रहना चाहिए।

**भार्या मे भव सुश्रोणि त्यजैतान् सुखमाप्नुहि।**
**अखिलान् सिन्धुसौवीरानाप्नुहि त्वं मया सह ॥२३॥**

"सुन्दरि! तुम मेरी भार्या बनो। इन पाण्डवों को छोड़कर मेरे साथ सुख भोगो। मेरे साथ रहने से तुम्हें सम्पूर्ण सिन्धु और सौवीर देश का राज्य प्राप्त होगा और तुम महारानी बनोगी।"

**इत्युक्ता सिन्धुराजेन वाक्यं हृदयकम्पनम्।**
**कृष्णा तस्मादपाक्रामद् देशात् सभ्रुकुटीमुखी ॥२४॥**

सिन्धुराज जयद्रथ के मुख से यह हृदय कँपा देने-वाली बात सुनकर द्रौपदी उस स्थान से दूर हट गई। उसके मुख पर रोष छा गया और उसकी भौंहें तन गयीं।

**अवमत्यास्य तद् वाक्यमाक्षिप्य च सुमध्यमा।**
**मैवमित्यब्रवीत् कृष्णा लज्जस्वेति च सैन्धव ॥२५॥**

उसके इस प्रस्ताव को ठुकराकर सुन्दरी द्रौपदी ने उसे फटकारते हुए कहा—"खबरदार, फिर कभी ऐसी बात मुँह से मत निकालना। सिन्धुराज! तुम्हें लज्जा आनी चाहिए।"

**जग्राह तामुत्तरवस्त्रदेशे**
**जयद्रथस्तं समवाक्षिपत् सा।**
**तया समाक्षिप्ततनुः स पापः**
**पपात शाखीव निकृत्तमूलः ॥२६॥**

इतने में ही जयद्रथ ने आगे बढ़कर द्रौपदी की ओढ़नी का छोर पकड़ लिया, परन्तु द्रौपदी ने उसे जोर का धक्का दिया। उसका धक्का लगते ही पापी जयद्रथ का शरीर जड़ से कटे हुए वृक्ष की भाँति भूमि पर गिर पड़ा।

**प्रगृह्यमाणा तु महाजवेन**
**मुहुर्विनिःश्वस्य च राजपुत्री।**
**सा कृष्यमाणा रथमारुरोह**
**धौम्यस्य पादावभिवाद्य कृष्णा ॥२७॥**

परन्तु उसने बड़े वेग से उठकर राजकुमारी द्रौपदी को पकड़ लिया। तब बार-बार लम्बी साँसें छोड़ती हुई द्रौपदी ने धौम्य मुनि के चरणों में प्रणाम किया और फिर जयद्रथ के द्वारा खींची जाने के कारण वह बाध्य होकर उसके रथ पर बैठ गई।

धौम्य उवाच

**नेयं शक्या त्वया नेतुमविजित्य महारथान्।**
**धर्मं क्षत्रस्य पौराणमवेक्षस्व जयद्रथ ॥२८॥**

**धौम्य बोले**—जयद्रथ! तू क्षत्रियों के प्राचीन धर्म पर दृष्टिपात कर। महारथी पाण्डवों को परास्त किये बिना तुझे इसे ले जाने का कोई अधिकार नहीं है।

**क्षुद्रं कृत्वा फलं पापं त्वं प्राप्स्यसि न संशयः।**
**आसाद्य पाण्डवान् वीरान् धर्मराजपुरोगमान् ॥२९॥**

तू धर्मराज युधिष्ठिर आदि वीर पाण्डवों के सामने पड़ने पर इस खोटे कर्म का बुरा फल अवश्य प्राप्त करेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

वैशम्पायन उवाच

**इत्युक्त्वा ह्रियमाणां तां राजपुत्रीं यशस्विनीम्।**
**अन्वगच्छत् तदा धौम्यः पदातिगणमध्यगः ॥३०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! ऐसा कहकर धौम्यमुनि अपहरण की जाती हुई यशस्विनी राजकुमारी द्रौपदी के पीछे-पीछे पैदल-सेना के बीच में होकर चलने लगे।

**इति महाभारते वनपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥२०॥**

# एकविंशोऽध्यायः

## पाण्डवों द्वारा जयद्रथ का पीछा करके उसे पकड़ना और उसकी दुर्गति करके जीवन-दान देना

वैशम्पायन उवाच

**यदा तु पार्था वनमाविशन्तो**
**महत्यरण्ये मृगयां चरित्वा ।**
**बालामपश्यन्त तदा रुदन्तीं**
**धात्रेयिकां प्रेष्यवधूं प्रियायाः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—विशाल वन में शिकार खेलकर जब पाण्डव आश्रम के समीपवर्ती वन में प्रवेश करने लगे, तब उन्होंने देखा कि उनकी प्रिया द्रौपदी की दासी धात्रेयिका, जो उन्हीं के एक सेवक की स्त्री थी, रो रही है ।

**तामिन्द्रसेनस्त्वरितोऽभिसृत्य**
**रथादवप्लुत्य ततोऽभ्यधावत् ।**
**प्रोवाच चैनां वचनं नरेन्द्र**
**धात्रेयिकामार्ततरस्तदानीम् ॥२॥**

नरेन्द्र जनमेजय ! उसे रोती देख सारथि इन्द्रसेन तुरन्त रथ से कूद पड़ा और वहाँ से दौड़कर धाय के पास जाकर अत्यन्त व्याकुल हुआ धाय से इस प्रकार बोला—

**किं रोदिषि त्वं पतिता धरण्यां**
**किं ते मुखं शुष्यति दीनवर्णम् ।**
**अथाब्रवीच्चारुमुखं प्रमृज्य**
**धात्रेयिका सारथिमिन्द्रसेनम् ॥३॥**

"तू इस प्रकार धरती पर पड़ी क्यों रो रही है ? तेरा मुख दीन होकर क्यों सूख रहा है ?" सारथि के ऐसा पूछने पर धात्रेयिका ने अपने सुन्दर मुख पर बहते हुए आँसुओं को दोनों हाथों से पोंछकर इन्द्रसेन से कहा—

**जयद्रथेनापहृता प्रमथ्य**
**पञ्चेन्द्रकल्पान् परिभूय कृष्णा ।**
**आवर्तयध्वं ह्यनुयात शीघ्रं**
**न दूरयातैव हि राजपुत्री ॥४॥**

"इन्द्रसेन ! इन्द्र के समान पराक्रमी इन पाँचों पाण्डवों का तिरस्कार करके जयद्रथ ने बलपूर्वक द्रौपदी का अपहरण किया है । पाण्डव वीरो ! आप लोग अपने रथों को लौटाइए और शीघ्र ही शत्रुओं का पीछा कीजिए । अभी राजकुमारी द्रौपदी दूर नहीं गई होंगी ।"

**एतद् निशम्य प्रययुर्हि शीघ्रं**
**तान्येव वर्त्मान्यनुवर्तमानाः ।**
**मुहुर्मुहुर्व्यालवदुच्छ्वसन्तो**
**ज्यां विक्षिपन्तश्च महाधनुर्भ्यः ॥५॥**

यह सुनकर समस्त पाण्डव अपने विशाल धनुषों की डोरी खींचते और बार-बार सर्पों के समान फुफकारते हुए उन्हीं मार्गों पर चलते हुए बड़े वेग से आगे बढ़े ।

**ते ददृशुस्तस्य दलस्य रेणुं**
**समुद्गतं वाजिखुरप्रणुन्नम् ।**
**पदातिषु मध्यगतं च धौम्यं**
**भीमं विक्रोशन्तमभिद्रवेति ॥६॥**

कुछ दूर जाने पर उन्हें जयद्रथ की सेना के घोड़ों की टाप से आहत होकर उड़ती हुई धूल दिखाई दी । उसके साथ ही पैदल सेना के मध्य में होकर चलते हुए पुरोहित धौम्य भी दृष्टिगोचर हुए जो 'भीमसेन, दौड़ो'—बार-बार ऐसा पुकार रहे थे ।

**ते सान्त्व्य धौम्यं परिदीनसत्त्वाः**
**सुखं भवानेत्विति राजपुत्राः ।**
**श्येना यथैवामिषसम्प्रयुक्ता**
**जवेन तत् सैन्यमथाभ्यधावन् ॥७॥**

असाधारण पराक्रमी राजकुमार पाण्डव धौम्य मुनि को आश्वासन देते हुए बोले—"आप निश्चिन्त होकर चलिए [हम लोग आ पहुँचे हैं] ।" फिर जैसे बाज पक्षी मांस की ओर झपटते हैं, उसी प्रकार पाण्डव जयद्रथ की सेना के पीछे बड़े वेग से दौड़े ।

**ततः पार्थाः पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पा-**
**स्त्यक्त्वा त्रस्तान् प्राञ्जलींस्तान् पदातीन् ।**
**रथानीकं शरवर्षान्धकारं**
**चक्रुः क्रुद्धाः सर्वतः संनिगृह्य ॥८॥**

उनके निकट पहुँचने पर पाँच इन्द्रों के समान

पराक्रमी पाँचों पाण्डव भयभीत होकर हाथ जोड़नेवाले पैदल सैनिकों को छोड़कर क्रुद्ध हो रथ, हाथी तथा घोड़ों से युक्त अवशिष्ट सेना को सब ओर से घेर कर खड़े हो गये और बाणों की ऐसी घनघोर वर्षा करने लगे कि चारों ओर अन्धकार छा गया।

**सन्तिष्ठत प्रहरत तूर्णं विपरिधावत।**
**इति स्म सैन्धवो राजा प्रेरयामास तान् नृपान् ॥६॥**

जनमेजय ! तब सिन्धुराज जयद्रथ 'ठहरो, मारो, शीघ्र दौड़ो !'—ऐसा कहकर अपने साथ में आये हुए राजाओं को युद्ध के लिए उत्साहित करने लगा।

**हेमचित्रसमुत्सेधां सर्वशैक्यायसीं गदाम्।**
**प्रगृह्याभ्यद्रवद् भीमः सैन्धवं कालप्रेरितम् ॥१०॥**

उधर भीमसेन एक विशाल गदा को, जिसका ऊपरी भाग स्वर्ण-पत्र से जटित होने के कारण विचित्र शोभा पाता था, जिसका सब-कुछ शैक्य नामक लोहे से बनाया गया था, हाथ में लेकर काल-प्रेरित जयद्रथ की ओर दौड़े।

**गजं तु सगजारोहं पदातींश्च चतुर्दश।**
**जघान गदया भीमः सैन्धवध्वजिनीमुखे ॥११॥**

उन्होंने जयद्रथ की सेना के अग्र-भाग में जाकर अपनी गदा की चोट से सवारसहित एक हाथी और चौदह पैदलों को मार डाला।

**पार्थः पञ्चदशान् शूरान् पर्वतीयान् महारथान्।**
**परीप्समानः सौवीरं जघान ध्वजिनीमुखे ॥१२॥**

इसी प्रकार अर्जुन ने भी सौवीरराज जयद्रथ को पकड़ने की इच्छा रखकर सेना के अग्र-भाग में स्थित पन्द्रह शूरवीर पर्वतीय महारथियों को मार डाला।

**राजा स्वयं सुवीराणां प्रवराणां प्रहारिणाम्।**
**निमेषमात्रेण शतं जघान समरे तदा ॥१३॥**

स्वयं राजा युधिष्ठिर ने भी उस समय अपने ऊपर प्रहार करनेवाले सौवीर क्षत्रियों के सैकड़ों प्रमुख वीरों को पलक मारते-मारते युद्ध-क्षेत्र में मार गिराया।

**ददृशे नकुलस्तत्र रथात् प्रस्कन्द्य खड्गधृक्।**
**शिरांसि पादरक्षाणां बीजवत् प्रवपन् मुहुः ॥१४॥**

महावीर नकुल हाथ में तलवार लिये रथ से कूद पड़े। वे ऐसे दिखाई देते थे मानो पाद-रक्षक सैनिकों के मस्तकों को काट-काटकर बार-बार धरती पर बोते हों।

**सहदेवस्तु संयाय रथेन गजयोधिनः।**
**पातयामास नाराचैर्द्रुमेभ्य इव बर्हिणः ॥१५॥**

सहदेव रथ द्वारा आगे बढ़कर हाथी पर सवार योद्धाओं से भिड़ गये तथा नाराच नामक बाणों से मार-मारकर उन्हें नीचे गिराने लगे, जैसे कोई व्याध वृक्षों पर से मोरों को घायल करके गिरा रहा हो।

**भीमस्त्वापततो राज्ञः कोटिकाश्यस्य सङ्गरे।**
**सूतस्य नुदतो वाहान् क्षुरेणापाहरच्छिरः ॥१६॥**

इधर भीम ने युद्ध में अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले राजा कोटिकाश्य के रथ के घोड़ों का सञ्चालन करनेवाले सारथि के सिर को छुरे से उड़ा दिया।

**विमुखं हतसूतं तं भीमः प्रहरतां वरः।**
**जघान तलयुक्तेन प्रासेनाभ्येत्य पाण्डवः ॥१७॥**

सारथि के नष्ट हो जाने से कोटिकाश्य को रण से विमुख हुआ देखकर योद्धाओं में श्रेष्ठ पाण्डनन्दन भीम ने उसके निकट जाकर प्रास नामक मूठदार शस्त्र से उसे मार गिराया।

**द्वादशानां तु सर्वेषां सौवीराणां धनञ्जय।**
**चकर्त निशितैर्भल्लैर्धनूंषि च शिरांसि च ॥१८॥**

उधर अर्जुन ने सौवीर देश के जो बारह राजकुमार थे, उन सबके धनुष और मस्तक अपने भल्ल नामक तीखे बाणों से काट गिराये।

**हतेषु तेषु वीरेषु सिन्धुराजो जयद्रथः।**
**कृष्णां विमुच्य संत्रस्तः पलायनपरोऽभवत् ॥१६॥**

उन वीरों के मारे जाने पर सिन्धुराज जयद्रथ भय से थर्रा उठा और द्रौपदी को वहीं छोड़कर उसने भाग जाने का निश्चय किया।

**स तस्मिन् संकुले सैन्ये द्रौपदीमवतार्य ताम्।**
**प्राणप्रेप्सुरुपाधावद् वनायैव नराधमः ॥२०॥**

उस तितर-बितर हुई सेना के बीच द्रौपदी को रथ से उतारकर नीच जयद्रथ अपने प्राण बचाने के लिए वन की ओर भागा।

**द्रौपदीं धर्मराजस्तु दृष्ट्वा धौम्यपुरस्कृताम्।**
**माद्रीपुत्रेण वीरेण रथमारोपयत् तदा ॥२१॥**

जब धर्मराज युधिष्ठिर ने देखा कि द्रौपदी धौम्य

मुनि के पीछे-पीछे चली आ रही है, तब उन्होंने वीर माद्रीनन्दन सहदेव द्वारा उसे रथ पर चढ़वा लिया।

**ततस्तद् विद्रुतं सैन्यमपयाते जयद्रथे।**
**आदिश्यादिश्य नाराचैराजघान वृकोदरः ॥२२॥**

जयद्रथ के भाग जाने पर सारी सेना इधर-उधर भाग चली, परन्तु भीमसेन अपने नाराच बाणों द्वारा अपना नाम बता-बताकर उन सैनिकों का वध करने लगे।

**सव्यसाची तु तं दृष्ट्वा पलायन्तं जयद्रथम्।**
**वारयामास निघ्नन्तं भीमं सैन्धवसैनिकान् ॥२३॥**

जयद्रथ को भागते देख अर्जुन ने उसके सैनिकों के संहार में लगे हुए भीमसेन को रोका।

अर्जुन उवाच

**यस्यापचारात्प्राप्तोऽयमस्मान्क्लेशो दुरासदः।**
**तमस्मिन् समरोद्देशे न पश्यामि जयद्रथम् ॥२४॥**

**अर्जुन ने कहा**—जिसके अत्याचार से हम लोगों को यह दुःसह क्लेश सहन करना पड़ा है, उस जयद्रथ को मैं समरभूमि में नहीं देख पा रहा हूँ।

**तमेवान्विष भद्रं ते किं ते योधैर्निपातितैः।**
**अनामिषमिदं कर्म कथं वा मन्यते भवान् ॥२४॥**

भैया! आपका कल्याण हो। आप जयद्रथ की ही खोज करें। इन निरीह सैनिकों के मारने से क्या लाभ? यह कार्य तो निष्फल दिखाई देता है? अथवा आप इसे कैसा समझते हैं?

वैशम्पायन उवाच

**इत्युक्तो भीमसेनस्तु गुडाकेशेन धीमता।**
**युधिष्ठिरमभिप्रेक्ष्य वाग्मी वचनमब्रवीत् ॥२६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! बुद्धिमान् अर्जुन के ऐसा कहने पर वार्तालाप में कुशल भीमसेन ने युधिष्ठिर की ओर देखकर कहा—

**यमाभ्यां सह राजेन्द्र धौम्येन च महात्मना।**
**प्राप्याश्रमपदं राजन् द्रौपदीं परिसान्त्वय ॥२७॥**

"महाराज! आप नकुल, सहदेव तथा महात्मा धौम्य के साथ आश्रम पर पहुँचकर देवी द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान कीजिए।

**न हि स मोक्ष्यते जीवन् मूढः सैन्धवको नृपः।**
**पातालतलसंस्थोऽपि यदि शक्रोऽस्य सारथिः ॥२८॥**

"मूर्ख सिन्धुराज जयद्रथ यदि पाताल में घुस जाए अथवा इन्द्र भी उसका सारथि या सहायक बनकर आ जाए, तो भी आज वह मेरे हाथों से जीवित नहीं बच सकता।"

युधिष्ठिर उवाच

**न हन्तव्यो महाबाहो दुरात्मापि स सैन्धवः।**
**दुःशलामभिसंस्मृत्य गान्धारीं च यशस्विनीम् ॥२९॥**

**युधिष्ठिर बोले**—महाबाहो! सिन्धुराज जयद्रथ यद्यपि अत्यन्त दुरात्मा है तथापि बहिन दुःशला और यशस्विनी माता गान्धारी का स्मरण करके उसका वध न करना।

वैशम्पायन उवाच

**तत् श्रुत्वा द्रौपदी भीममुवाच व्याकुलेन्द्रिया।**
**कर्तव्यं चेत् प्रियं मह्यं वध्यः स पुरुषाधमः ॥३०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—युधिष्ठिर की यह बात सुनकर द्रौपदी की सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं और वह भीम से बोली—"यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो उस नीच को अवश्य मार डालना।

**भार्याभिहर्ता वैरी यो यश्च राज्यहरो रिपुः।□**
**याचमानोऽपि संग्रामे न मोक्तव्यः कथञ्चन ॥३१॥**

"जो पत्नी का अपहरण करनेवाला तथा राज्य को हड़प लेनेवाला हो—ऐसे शत्रु को युद्ध में पाकर, यदि वह प्राणों की भीख भी माँगे तो भी जीवित नहीं छोड़ना चाहिए।"

**श्रुत्वेदं तौ नरव्याघ्रौ ययतुर्यत्र सैन्धवः।**
**स्वयमश्वाँस्तुदन्तौ तौ जवेनैवाभ्यधावताम् ॥३२॥**

द्रौपदी की बात सुनकर वे दोनों (भीम-अर्जुन) नरश्रेष्ठ उधर ही चल दिये जिधर जयद्रथ गया था। वे स्वयं अपने घोड़ों को हाँकते हुए बड़ी तेज़ी से उसके पीछे दौड़े।

**सैन्धवं त्वभिसम्प्रेक्ष्य पराक्रान्तं पलायने।**
**अनुयाय महाबाहुः फाल्गुनो वाक्यमब्रवीत् ॥३३॥**

सिन्धुराज को केवल भागने में ही पराक्रम दिखाता देख महाबाहु अर्जुन उसका पीछा करते हुए बोले—

**अनेन वीर्येण कथं स्त्रियं प्रार्थयसे बलात्।**
**राजपुत्र निवर्तस्व न ते युक्तं पलायनम् ॥३४॥**

**कथं ह्यनुचरान् हित्वा शत्रुमध्ये पलायसे ।**
**इत्युच्यमानः पार्थेन सैन्धवो न न्यवर्तत ॥३५॥**

"राजकुमार ! लौटो, तुझे पीठ दिखाकर भागना शोभा नहीं देता । अपने सेवकों को शत्रुओं के मध्य में छोड़कर तू कैसे भागा जा रहा है ? क्या इसी बल पर तू दूसरों की स्त्री को बलपूर्वक हरकर ले जाना चाहता था ?" अर्जुन के इस प्रकार ताना देने पर भी जयद्रथ नहीं लौटा ।

**तिष्ठ तिष्ठेति तं भीमः सहसाभ्यद्रवद् बली ।**
**मा वधीरिति पार्थस्तं दयावान् प्रत्यभाषत ॥३६॥**

तब महाबली भीम 'ठहरो, ठहरो !' कहते हुए सहसा उसके पीछे दौड़े । तब दयालु अर्जुन ने उनसे कहा—"भैया ! इसका वध मत करना ।"

**अभिद्रुत्य निजग्राह केशपक्षे ह्यमर्षणः ।**
**समुद्यम्य च तं भीमो निष्पिपेष महीतले ॥३७॥**

अमर्ष में भरे हुए भीमसेन ने बड़े वेग से दौड़कर उसके केश पकड़ लिये, फिर उसे ऊपर उठाकर धरती पर पटक दिया और रौंदने लगे ।

**शिरो गृहीत्वा राजानं ताडयामास चैव ह ।**
**पदा मूर्ध्नि महाबाहुः प्राहरद् विलपिष्यतः ॥३८॥**
**तस्य जानू ददौ भीमो जघ्ने चैनमरत्निना ।**
**स मोहमगमद् राजा प्रहारवरपीडितः ॥३९॥**

तत्पश्चात् भीम ने जयद्रथ का सिर पकड़कर उसे कई थप्पड़ लगाये, फिर उसके सिर में एक लात मारी । इससे वह रोने और चिल्लाने लगा तो भी भीमसेन ने उसे गिराकर उसके शरीर पर अपने दोनों घुटने रख दिये और उसे घूँसों से मारने लगे । इस प्रकार भीषण मार पड़ने से पीड़ा के कारण जयद्रथ मूर्च्छित हो गया ।

**सरोषं भीमसेनं तु वारयामास फाल्गुनः ।**
**दुःशलायाः कृते राजा यत् तदाहेति कौरव ॥४०॥**

क्रोध में भरे हुए भीम को अर्जुन ने रोका और कहा—"कुरुनन्दन ! दुःशला के वैधव्य का विचार करके महाराज ने जो आज्ञा दी थी, उसका भी तो विचार कीजिए ।"

भीमसेन उवाच

**नायं पापसमाचारो मत्तो जीवितुमर्हति ।**
**कृष्णायास्तदनर्हायाः परिक्लेष्टा नराधमः ॥४१॥**

**भीमसेन ने कहा**—इस नीच ने क्लेश सहने के सर्वथा अयोग्य महारानी द्रौपदी को कष्ट पहुँचाया है, अतः अब मेरे हाथों से इस पापी जयद्रथ का जीवित बचना कठिन ही है ।

**किं नु शक्यं मया कर्तुं यद् राजा सततं घृणी ।**
**त्वं च बालिशया बुद्धया सदैवास्मान् प्रबाधसे ॥४२॥**

परन्तु मैं क्या कर सकता हूँ ? राजा युधिष्ठिर सदा दयालु ही बने रहते हैं और तुम भी अपनी बाल-बुद्धि के कारण मेरे ऐसे कार्यों में सदा ही बाधा डाला करते हो ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वा सटास्तस्य पञ्च चक्रे वृकोदरः ।**
**अर्धचन्द्रेण बाणेन किंचिदब्रुवतस्तदा ॥४३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—ऐसा कहकर भीम ने जयद्रथ के लम्बे-लम्बे बालों को अर्धचन्द्राकार बाण से मूँड़कर पाँच चोटियाँ बना दीं । उस समय दुष्ट जयद्रथ भय के मारे कुछ भी बोल नहीं पाता था ।

**विकत्थयित्वा राजानं ततः प्राह वृकोदरः ।**
**जीवितुं चेच्छसे मूढ हेतुं मे गदतः शृणु ॥४४॥**

फिर अति कटुवचनों से सिन्धुराज का तिरस्कार करते हुए भीम ने उससे कहा—"मूढ़ ! यदि तू जीवित रहना चाहता है, तो जीवनरक्षा का हेतुभूत मेरा यह वचन सुन—

**दासोऽस्मीति तथा वाच्यं संसत्सु च सभासु च ।**
**एवं ते जीवितं दद्यामेष युद्धजितो विधिः ॥४५॥**

"तू राजाओं की सभा-समितियों में जाकर सदा अपने आपको [महाराज युधिष्ठिर] का दास बताना । यह शर्त स्वीकार हो तो मैं तुझे जीवनदान दे सकता हूँ । युद्ध में विजयी पुरुष की ओर से हारे हुए के लिए ऐसा ही विधान है ।"

**एवमस्त्विति तं राजा कृष्यमाणो जयद्रथः ।**
**प्रोवाच पुरुषव्याघ्रं भीममाहवशोभिनम् ॥४६॥**

उस समय जयद्रथ धरती पर घसीटा जा रहा था । उसने उपर्युक्त शर्त स्वीकार कर ली और युद्ध में शोभा पानेवाले पुरुषसिंह भीम को अपनी स्वीकृति स्पष्ट बता दी ।

**तत एनं विचेष्टन्तं बद्ध्वा पार्थो वृकोदरः ~**
**रथमारोपयामास विसंज्ञं पांसुगुण्ठितम् ॥४७॥**

तदनन्तर उठने की चेष्टा करनेवाले उस जयद्रथ को कुन्तीपुत्र वृकोदर ने बाँधकर रथ पर डाल लिया। उस समय वह बेचारा धूल से लथपथ और अचेत हो रहा था।

**ततस्तं रथमास्थाय भीमः पार्थानुगस्तदा ।**
**अभ्येत्याश्रममध्यस्थमभ्यगच्छद् युधिष्ठिरम् ॥४८॥**

उसे रथ पर डालकर आगे-आगे भीम चले और पीछे-पीछे अर्जुन। आश्रम में पहुँचकर भीमसेन वहाँ मध्यभाग में बैठे हुए राजा युधिष्ठिर के पास गये।

**दर्शयामास भीमस्तु तदवस्थं जयद्रथम् ।**
**तं राजा प्राहसद् दृष्ट्वा मुच्यतामिति चाब्रवीत् ॥४९**

भीम ने उसी अवस्था में जयद्रथ को महाराज के सामने उपस्थित किया। उसे देखकर राजा युधिष्ठिर जोर-जोर से हँसने लगे और फिर बोले—"अब इसे छोड़ दो।"

**राजानं चाब्रवीद् भीमो द्रौपद्याः कथ्यतामिति ।**
**दासभावगतो ह्येष पाण्डूनां पापचेतनः ॥५०॥**

तब भीमसेन ने राजा युधिष्ठिर से कहा—"आप द्रौपदी को यह सूचित कर दीजिए कि यह पापात्मा जयद्रथ पाण्डवों का दास बन चुका है।"

**तमुवाच ततो ज्येष्ठो भ्राता सप्रणयं वचः ।**
**मुञ्चैनमधमाचारं प्रमाणा यदि ते वयम् ॥५१॥**

तब ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर ने प्रेमपूर्वक भीमसेन से कहा—"यदि तुम मेरी आज्ञा मानते हो, तो इस पापाचारी को छोड़ दो।"

**द्रौपदी चाब्रवीद् भीममभिप्रेक्ष्य युधिष्ठिरम् ।**
**दासोऽयं मुच्यतां राज्ञस्त्वया पञ्चसटः कृतः ॥५२॥**

उस समय द्रौपदी ने भी युधिष्ठिर की ओर देख भीमसेन से कहा—"आपने इसका सिर मूँड़कर पाँच चोटियाँ रख दी हैं और यह महाराज का दास हो गया है, अतः अब इसे छोड़ दीजिए!"

**स मुक्तोऽभ्येत्य राजानमभिवाद्य युधिष्ठिरम् ।**
**ववन्दे विह्वलो राजँस्तांश्च दृष्ट्वा मुनींस्तदा ॥५३॥**

हे राजन्! मुक्त होने पर उसने विह्वल होकर राजा युधिष्ठिर के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् वहाँ बैठे अन्यान्य मुनियों को देखकर उनके चरणों में भी मस्तक झुकाया।

**तमुवाच घृणी राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।**
**तथा जयद्रथं दृष्ट्वा गृहीतं सव्यसाचिना ॥५४॥**

उस समय [आदर देते हुए] अर्जुन ने जयद्रथ का हाथ थाम लिया। तब दयालु राजा धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने जयद्रथ की ओर देखकर कहा—

**अदासो गच्छ मुक्तोऽसि मैवं कार्षीः पुनः क्वचित् ।**
**स्त्रीकामं वा धिगस्तु त्वां क्षुद्रः क्षुद्रसहायवान् ॥५५**

"सिन्धुराज! तू मुक्त कर दिया गया है, अब तू दास नहीं रहा। फिर कभी ऐसा मत करना। अरे! तू परायी स्त्री की इच्छा करता है! तुझे धिक्कार है! तू स्वयं तो नीच है ही, तेरे सहायक भी नीच हैं।"

**गतसत्त्वमिव ज्ञात्वा कर्तारमशुभस्य तम् ।**
**सम्प्रेक्ष्य भरतश्रेष्ठः कृपां चक्रे नराधिपः ॥५६॥**
**धर्मे ते वर्धतां बुद्धिर्मा चाधर्मे मनः कृथाः ।**
**साश्वः सरथपादातः स्वस्ति गच्छ जयद्रथ ॥५७॥**

अशुभ कर्म करनेवाला जयद्रथ मृतप्राय-सा हो गया है, यह देख और समझकर भरतश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने उसपर कृपा की और कहा—"तेरी बुद्धि धर्म में उत्तरोत्तर बढ़ती रहे, तू कभी अधर्म में मन मत लगाना। जयद्रथ! अपने रथ, घोड़े और पैदल सबको साथ लिये हुए तू कुशलपूर्वक चला जा।"

**एवमुक्तस्तु सव्रीडं तूष्णीं किंचिदवाङ्मुखः ।**
**जगाम राजन् दुःखार्तो गङ्गाद्वाराय भारत ॥५८॥**

जनमेजय! युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर जयद्रथ बहुत लज्जित हुआ। वह नीचा मुँह किये चुपचाप गंगाद्वार=हरद्वार को चला गया।

**इति महाभारते वनपर्वणि एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥**

# द्वाविंशोऽध्यायः

## दुःखी युधिष्ठिर को मार्कण्डेय मुनि का आश्वासन

जनमेजय उवाच

**एवं हृतायां कृष्णायां प्राप्य क्लेशमनुत्तमम् ।**
**अत ऊर्ध्वं नरव्याघ्राः किमकुर्वत पाण्डवाः ॥१॥**

**जनमेजय ने पूछा**—मुने ! इस प्रकार द्रौपदी का अपहरण होने पर अति दुःख उठाने के पश्चात् पुरुष-सिंह पाण्डवों ने कौन-सा कार्य किया ?

वैशम्पायन उवाच

**एवं कृष्णां मोक्षयित्वा विनिर्जित्य जयद्रथम् ।**
**आसाञ्चक्रे मुनिगणैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥२॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—हे जनमेजय ! इस प्रकार जयद्रथ को जीत और द्रौपदी को छुड़ा लेने के पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर मुनिमण्डली के साथ बैठे हुए थे ।

**तेषां मध्ये महर्षीणां शृण्वतामनुशोचताम् ।**
**मार्कण्डेयमिदं वाक्यमब्रवीत् पाण्डुनन्दनः ॥३॥**

महर्षि लोग भी पाण्डवों पर आये हुए संकट को सुनते हुए उसके लिए बारम्बार दुःख प्रकट कर रहे थे । उन्हीं महर्षियों में मार्कण्डेय को लक्ष्य करके पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर ने कहा—

युधिष्ठिर उवाच

**भगवन् देवर्षीणां त्वं ख्यातो भूतभविष्यवित् ।**
**संशयं परिपृच्छामि छिन्धि मे हृदि संस्थितम् ॥४॥**

**युधिष्ठिर ने पूछा**—भगवन् ! आप भूत, वर्तमान और भविष्यत्—तीनों कालों के ज्ञाता हैं । देवर्षियों में भी आपका नाम विख्यात है, अतः मैं आपसे अपने हृदय का एक सन्देह पूछता हूँ । कृपाकर उसका निवारण कीजिए ।

**द्रुपदस्य सुता ह्येषा स्नुषा पाण्डोर्महात्मनः ।**
**न हि पापं कृतं किञ्चित् तां जहार जयद्रथः ॥५॥**

यह कृष्णा महाराज द्रुपद की पुत्री है, महात्मा पाण्डु की पुत्रवधू है । इसने कभी कोई पाप नहीं किया है । ऐसी देवी का भी जयद्रथ ने बलपूर्वक अपहरण किया ।

**तद् दारहरणं प्राप्तमस्माभिरवितर्कितम् ।**
**ज्ञातिभिर्विप्रवासश्च मिथ्या व्यवसितैरयम् ॥६॥**

जिसके सम्बन्ध में हमने कभी सोचा भी न था, वह पत्नी का अपहरण-रूप अपमान हमें प्राप्त हुआ और मिथ्या व्यवसाय में लगे हुए बान्धवों ने हमें देश से निकाल दिया है ।

**अस्ति समं मया कश्चिदल्पभाग्यतरो नरः ।**
**भवता दृष्टपूर्वो वा श्रुतपूर्वोऽपि वा भवेत् ॥७॥**

मैं पूछता हूँ, क्या संसार में मेरे-जैसा मन्दभाग्य मनुष्य कोई और भी है ? अथवा, आपने पहले कभी कहीं मुझ-जैसा भाग्यहीन देखा या सुना है ?

मार्कण्डेय उवाच

**प्राप्तमप्रतिमं दुःखं रामेण भरतर्षभ ।**
**रक्षसा जानकी तस्य हृता भार्या बलीयसा ॥८॥**
**आश्रमाद् राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ।**
**मायामास्थाय तरसा हत्वा गृध्रं जटायुषम् ॥९॥**

**मार्कण्डेयजी बोले**—भरतश्रेष्ठ ! श्रीराम को भी वनवास तथा स्त्रीवियोग का दारुण दुःख सहन करना पड़ा था । महाबली दुरात्मा राक्षसराज रावण अपनी माया फैलाकर आश्रम से उनकी पत्नी सीता को वेगपूर्वक हरकर ले गया तथा अपने कार्य में बाधा डालनेवाले गृध्रराज जटायु को भी उसने वहीं मार गिराया था ।

**प्रत्याजहार तां रामः सुग्रीवबलमाश्रितः ।**
**बद्ध्वा सेतुं समुद्रस्य दग्ध्वा लंकां शितैः शरैः ॥१०॥**

तब श्रीराम सुग्रीव की सेना का सहारा ले समुद्र पर पुल बाँधकर लंका में गये और अपने आग्नेय आदि तीखे बाणों से लंका को भस्म करके सीता को वापस लाये ।

**मा शुचः पुरुषव्याघ्र क्षत्रियोऽसि परन्तप ।**
**न हि ते वृजिनं किञ्चिद् वर्तते परमण्वपि ॥११॥**

शत्रुसन्तापक पुरुषसिंह ! तुम क्षत्रिय हो, अतः शोक मत करो । श्रीराम के कष्ट के समक्ष तुम्हारा कष्ट अणुमात्र भी नहीं है ।

**सहायवति सर्वार्थाः सन्तिष्ठन्तीह सर्वशः ।**
**किं नु तस्याजितं संख्ये यस्य भ्राता धनञ्जयः ॥१२॥**

जो सहायकों से सम्पन्न है, इस जगत् में उसके सभी मनोरथ सब प्रकार से सिद्ध होते हैं। फिर जिसके पास धनंजय-जैसा भाई हो, वह युद्ध में किसे परास्त नहीं कर सकता ?

**अयं च बलिनां श्रेष्ठो भीमो भीमपराक्रमः ।**
**युवानौ च महेष्वासौ वीरौ माद्रवतीसुतौ ॥१३॥**

ये भयंकर पराक्रमी भीमसेन बलवानों में श्रेष्ठ हैं। माद्रीनन्दन वीर नकुल और सहदेव भी महान् धनुर्धर तथा नवयुवक हैं।

**एभिः सहायैः कस्मात् त्वं विषीदसि परन्तप ।**
**य इमे वज्रिणः सेनां जयेयुः समरुद्गणाम् ॥१४॥**

परन्तप ! इन सब सहायकों के होते हुए तुम विषाद क्यों करते हो ? तुम्हारे ये भाई तो मरुद्गणों-सहित वज्रधारी इन्द्र की सेना को भी परास्त कर सकते हैं।

**त्वमप्येभिर्महेष्वासैः सहायैर्देवरूपिभिः ।**
**विजेष्यसे रणे सर्वानमित्रान् भरतर्षभ ॥१५॥**

भरतश्रेष्ठ ! तुम भी इन देवस्वरूप महाधनुर्धर भाइयों की सहायता से अपने समस्त शत्रुओं को युद्ध में जीत लोगे।

**असहायेन रामेण वैदेही पुनराहृता ।**
**हत्वा संख्ये दशग्रीवं राक्षसं भीमविक्रमम् ॥१६॥**

श्रीराम तो सहायकों से हीन थे, तो भी उन्होंने युद्ध में भयंकर पराक्रमी राक्षस रावण का वध करके विदेहकुमारी सीता को पुनः लौटा लिया। [तुम्हारे तो चार शूरवीर भाई सहायक हैं।]

**तस्मात् स त्वं कुरुश्रेष्ठ मा शुचो भरतर्षभ ।**
**त्वद्विधा हि महात्मानो न शोचन्ति परन्तप ॥१७॥**

कुरुश्रेष्ठ ! भरतकुलभूषण ! तुम शोक न करो। परन्तप ! तुम्हारे जैसे महापुरुष कभी शोक नहीं करते।

**इति महाभारते वनपर्वणि द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥**

# त्रयोविंशोऽध्यायः

### ब्राह्मण की अरणि एवं मन्थन-काष्ठ का पता लगाने के लिए पाण्डवों का मृग के पीछे दौड़ना; नकुल आदि चारों भाइयों का सरोवर के तट पर अचेत होना

जनमेजय उवाच

**एवं हृतायां भार्यायां प्राप्य क्लेशमनुत्तमम् ।**
**प्रतिपद्य ततः कृष्णां किमकुर्वत पाण्डवाः ॥१॥**

**जनमेजय ने पूछा**—हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार अपनी पत्नी द्रौपदी का अपहरण होने पर अत्यन्त क्लेश उठाकर जब पाण्डवों ने उसे पुनः प्राप्त कर लिया, तत्पश्चात् उन्होंने क्या किया ?

वैशम्पायन उवाच

**एवं हृतायां कृष्णायां प्राप्य क्लेशमनुत्तमम् ।**
**विहाय काम्यकं राजा सह भ्रातृभिरच्युतः ॥२॥**
**पुनर्द्वैतवनं रम्यमाजगाम युधिष्ठिरः ।**
**स्वादुमूलफलं रम्यं विचित्रबहुपादपम् ॥३॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—राजन् ! पूर्वोक्त प्रकार से द्रौपदी का हरण होने पर भारी क्लेश उठाने के पश्चात् जब पाण्डवों ने उसे पा लिया, तब धर्म से च्युत न होनेवाले राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ काम्यक वन छोड़कर पुनः द्वैतवन में आ गये। वहाँ स्वादिष्ट फल-मूलों की प्रचुरता थी तथा बहुत-से विचित्र वृक्ष उस वन की शोभा बढ़ाते थे।

**तस्मिन् प्रतिवसन्तस्ते यत् प्रापुः कुरुसत्तमाः ।**
**वने क्लेशं सुखोदर्कं तत् प्रवक्ष्यामि ते शृणु ॥४॥**

हे राजन् ! उस वन में रहते हुए उन कुरुश्रेष्ठ पाण्डवों ने भविष्य में सुख देनेवाला जो क्लेश उठाया, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो !

**अरणीसहितं मन्थं ब्राह्मणस्य तपस्विनः ।**
**मृगस्य घर्षमानस्य विषाणे समसज्जत ॥५॥**

एक तपस्वी ब्राह्मण का [रस्सी में बँधा] अरणी-सहित मन्थनकाष्ठ एक वृक्ष पर टँगा था। एक मृग वहाँ आकर उस वृक्ष से अपना शरीर रगड़ने लगा। उस समय वे दोनों काष्ठ उसके सींग में अटक गये।

**तदादाय गतो राजँस्त्वरमाणो महामृगः ।**
**आश्रमान्तरितः शीघ्रं प्लवमानो महाजवः ।।६।।**

राजन् ! उस काष्ठ को लेकर वह महामृग अति शीघ्रता से भागा और बड़े वेग से चौकड़ी भरता हुआ शीघ्र ही आश्रम से ओझल हो गया ।

**ह्रियमाणं तु तं दृष्ट्वा स विप्रः कुरुसत्तम ।**
**त्वरितोऽभ्यागमत् तत्र अग्निहोत्रपरीप्सया ।।७।।**

कुरुश्रेष्ठ ! वह ब्राह्मण अपने मन्थनठकाष्ठ को हरण होता हुआ देख, अपने अग्निहोत्र की रक्षा के लिए तुरन्त पाण्डवों के आश्रम में आया ।

**अजातशत्रुमासीनं भ्रातृभिः सहितं वने ।**
**आगम्य ब्राह्मणस्तूर्णं संतप्तश्चेदमब्रवीत् ।।८।।**

वन में अपने भाइयों के साथ बैठे हुए अजातशत्रु युधिष्ठिर के पास पहुँचकर सन्तप्त हुए ब्राह्मण ने इस प्रकार कहा—

**अरणीसहितं मन्थं समासक्तं वनस्पतौ ।**
**मृगस्य घर्षमाणस्य विषाणे समसज्जत ।।९।।**
**तदादाय गतो राजँस्त्वरमाणो महामृगः ।**
**आश्रमात् त्वरितः शीघ्रं प्लवमानो महाजवः ।।१०।।**

"हे राजन् ! मैंने अपनी अरणी और मथानी एक वृक्ष पर रख दी थी । एक हरिण वहाँ आकर उस वृक्ष से अपना शरीर रगड़ने लगा और वे दोनों काष्ठ उसके सींग में फँस गये । वह महामृग उन काष्ठों को लेकर बड़ी उतावली के साथ भाग गया है । अत्यन्त वेगशाली होने के कारण चौकड़ी भरता हुआ वह आश्रम से बहुत दूर निकल गया है ।

**तस्य गत्वा पदं राजन्नासाद्य च महामृगम् ।**
**अग्निहोत्रं न लुप्येत तदानयत पाण्डवाः ।।११।।**

"महाराज युधिष्ठिर ! वीर पाण्डवो ! तुम सब लोग उसके पदचिह्नों को देखते हुए उस महामृग के पास पहुँचो और वे दोनों काष्ठ ला दो, जिससे मेरा यज्ञकर्म लुप्त न हो ।"

**ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा संतप्तोऽथ युधिष्ठिरः ।**
**धनुरादाय कौन्तेयः प्राद्रवत् भ्रातृभिः सह ।।१२।।**

ब्राह्मण की बात सुनकर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर बहुत दुःखी हुए और मृग का पता लगाने के लिए वे धनुष लेकर भाइयोंसहित दौड़े ।

**तेषां प्रयतमानानां नादृश्यत महामृगः ।**
**अपश्यन्तो मृगं श्रान्ता दुःखं प्राप्ता मनस्विनः ।।१३।।**

घोर प्रयत्न करने पर भी वह महामृग उनके हाथ न लगा । वह सहसा अदृश्य हो गया । उस मृग को न देखकर वे मनस्वी वीर निराश और दुःखी हो गये ।

**शीतलच्छायमागम्य न्यग्रोधं गहने वने ।**
**क्षुत्पिपासापरीताङ्गाः पाण्डवाः समुपाविशन् ।।१४।।**

तत्पश्चात् भूख-प्यास से व्याकुल वे पाण्डव उस गहन वन में एक शीतल छायावाले बरगद के नीचे आकर बैठ गये ।

**ततो युधिष्ठिरो राजा नकुलं वाक्यमब्रवीत् ।**
**आरुह्य वृक्षं माद्रेय निरीक्षस्व दिशो दश ।।१५।।**
**पानीयमन्तिके पश्य वृक्षाँश्चाप्युदकाश्रितान् ।**
**एते हि भ्रातरः श्रान्तास्तव तात पिपासिताः ।।१६।।**

कुछ देर पश्चात् राजा युधिष्ठिर ने नकुल से कहा—"माद्रीनन्दन ! किसी वृक्ष पर चढ़कर सब दिशाओं में दृष्टिपात करो । कहीं आस-पास पानी हो तो देखो । अथवा जल के किनारे होनेवाले वृक्षों पर भी दृष्टि डालो, क्योंकि तात ! तुम्हारे ये भाई थके-माँदे और प्यासे हैं ।"

**नकुलस्तु तथेत्युक्त्वा शीघ्रमारुह्य पादपम् ।**
**अब्रवीद् भ्रातरं ज्येष्ठमभिवीक्ष्य समन्ततः ।।१७।।**

तब नकुल 'बहुत अच्छा' कहकर शीघ्र ही एक वृक्ष पर चढ़ गये और चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर अपने भाई से बोले—

**पश्यामि बहुलान् राजन् वृक्षानुदकसंश्रयान् ।**
**सारसानां च निर्ह्रादमत्रोदकमसंशयम् ।।१८।।**

"राजन् ! मैं ऐसे बहुत-से वृक्ष देख रहा हूँ जो जल के किनारे ही होते हैं । सारसों की आवाज़ भी सुनाई देती है, अतः निःसन्देह यहाँ आस-पास ही कोई सरोवर है ।"

**ततोऽब्रवीत् सत्यधृतिः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।**
**गच्छ सौम्य ततः शीघ्रं तूणैः पानीयमानय ।।१९।।**

तब सत्य का पालन करनेवाले कुन्तीकुमार युधिष्ठिर ने नकुल से कहा—'सौम्य ! शीघ्र जाओ और तरकस में पानी ले आओ ।'

**नकुलस्तु तथेत्युक्त्वा भ्रातुर्ज्येष्ठस्य शासनात् ।**
**प्राद्रवद् यत्र पानीयं शीघ्रं चैवान्वपद्यत ॥२०॥**

नकुल 'बहुत अच्छा' कहकर बड़े भाई की आज्ञा से शीघ्रतापूर्वक गये और तुरन्त वहाँ पहुँच गये, जहाँ जलाशय था ।

**स दृष्ट्वा विमलं तोयं सारसैः परिवारितम् ।**
**पातुकामस्ततो वाचमन्तरिक्षात् स शुश्रुवे ॥२१॥**

सारसों से घिरे हुए उस जलाशय के निर्मल जल को देखकर नकुल को उसे पीने की इच्छा हुई । इतने में ही आकाश से उनके कानों में एक स्पष्ट वाणी सुनाई दी ।

यक्ष उवाच

**मा तात साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः ।**
**प्रश्नानुक्त्वा तु माद्रेय ततः पिब हरस्व च ॥२२॥**

**यक्ष बोला**—हे तात ! इस सरोवर का पानी पीने का साहस मत करो । इस पर पहले से ही मेरा अधिकार है । हे माद्रीकुमार ! पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, फिर तुम पानी पीओ और ले भी जाओ ।

वैशम्पायन उवाच

**अनादृत्य तु तद् वाक्यं नकुलः सुपिपासितः ।**
**अपिबच्छीतलं तोयं पीत्वा च निपपात ह ॥२३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**---प्यास से व्याकुल नकुल ने यक्ष के उस कथन की अवहेलना करके वहाँ का शीतल जल पी लिया । जल पीते ही वे अचेत होकर गिर पड़े ।

**चिरायमाणे नकुले कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।**
**अब्रवीद् भ्रातरं वीरं सहदेवमरिन्दमम् ॥२४॥**

जब नकुल के लौटने में विलम्ब हो गया, तब कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने अपने शत्रुहन्ता वीरभ्राता सहदेव से कहा—

**भ्राता हि चिरयातो नः सहदेव तवाग्रजः ।**
**तथैवानय सोदर्यं पानीयं च त्वमानय ॥२५॥**

"सहदेव ! हमारे अनुज और तुम्हारे अग्रज भ्राता नकुल को यहाँ से गये बहुत देर हो गई, अतः तुम जाकर अपने सहोदर भाई को बुला लाओ और पानी भी ले आओ ।"

**सहदेवस्तथेत्युक्त्वा तां दिशं प्रत्यपद्यत ।**
**ददर्श च हतं भूमौ भ्रातरं नकुलं तदा ॥२६॥**

तब सहदेव 'बहुत अच्छा' कहकर उसी दिशा की ओर चल दिये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि भाई नकुल भूमि पर मरे पड़े हैं ।

**भ्रातृशोकाभिसंतप्तस्तृषया च प्रपीडितः ।**
**अभिदुद्राव पानीयं ततो वागभ्यभाषत ॥२७॥**

भाई की मृत्यु के शोक से सन्तप्त साथ ही प्यास के कारण अत्यन्त व्याकुल वह पानी की ओर दौड़ा, उसी समय आकाशवाणी सुनाई पड़ी—

**मा तात साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः ।**
**प्रश्नानुक्त्वा यथाकामं ततः पिब हरस्व च ॥२८॥**

"तात ! पानी पीने का साहस मत करो । यहाँ पहले से ही मेरा अधिकार हो चुका है । पहले तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, फिर इच्छानुसार जल-पान करो और ले जाओ ।"

**अनादृत्य तु तद् वाक्यं सहदेवः पिपासितः ।**
**अपिबच्छीतलं तोयं पीत्वा च निपपात ह ॥२९॥**

प्यास से व्याकुल सहदेव उस वचन की अवहेलना करके वहाँ का ठण्डा जल पीने लगे, परन्तु जल पीते ही अचेत होकर गिर पड़े ।

**अथाब्रवीत् स विजयं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।**
**भ्रातरौ ते चिरगतौ बीभत्सो शत्रुकर्शन ॥३०॥**

तत्पश्चात् कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा, "शत्रुनाशन अर्जुन ! तुम्हारे दोनों भाइयों को गये बहुत समय हो गया ।

**तौ चैवानय भद्रं ते पानीयं च त्वमानय ।**
**त्वं हि नस्तात सर्वेषां दुःखितानामपाश्रयः ॥३१॥**

"तुम्हारा कल्याण हो ! तुम उन दोनों भाइयों को बुला लाओ और साथ ही पानी भी ले आओ । तात ! तुम्हीं हम सब दुःखी बन्धुओं के सहारे हो ।"

**एवमुक्तो गुडाकेशः प्रगृह्य सशरं धनुः ।**
**आमुक्तखड्गो मेधावी तत्सरः प्रतिपद्यत ॥३२॥**

युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर निद्रा को विजय करनेवाले बुद्धिमान् अर्जुन धनुष-बाण एवं खुला खड्ग लेकर उस सरोवर के तट पर गये ।

**ततः पुरुषशार्दूलौ पानीयहरणे गतौ ।**
**तौ ददर्श हतौ तत्र भ्रातरौ श्वेतवाहनः ।।३३।।**

श्वेतवाहन अर्जुन ने जल लाने के लिए गये हुए उन दोनों पुरुषसिंह भाइयों को वहाँ मरे हुए देखा ।

**प्रसुप्ताविव तौ दृष्ट्वा नरसिंहः सुदुःखितः ।**
**धनुरुद्यम्य कौन्तेयो व्यलोकयत तद् वनम् ।।३४।।**

दोनों भाइयों को प्रगाढ़ निद्रा में सोये हुए-से देखकर पुरुषसिंह अर्जुन को बहुत दुःख हुआ । फिर उन्होंने धनुष उठाकर उस वन का अच्छी प्रकार निरीक्षण किया ।

**नापश्यत् तत्र किंचित् स भूतमस्मिन् महावने ।**
**सव्यसाची ततः श्रान्तः पानीयं सोऽभ्यधावत ।।३५।।**

उस विशाल वन में जब उन्हें कोई हिंसक प्राणी दिखाई नहीं दिया, तब सव्यसाची अर्जुन थककर पानी की ओर दौड़े ।

**अभिधावँस्ततो वाक्यमन्तरिक्षात् स शुश्रुवे ।**
**किमासीदसि पानीयं नैतच्छक्यं बलात् त्वया ।।३६।।**
**कौन्तेय यदि प्रश्नाँस्तान् मयोक्तान् प्रतिपत्स्यसे ।**
**ततः पास्यसि पानीयं हरिष्यसि च भारत ।।३७।।**

पानी की ओर दौड़ते हुए उन्हें आकाशवाणी सुनाई दी—"कुन्तीनन्दन ! क्यों पानी की ओर दौड़ रहे हो ? तुम बलपूर्वक जल नहीं पी सकते । भारत! यदि मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सको, तभी तुम पानी पी सकोगे और ले जा भी सकोगे ।"

**वारितस्त्वब्रवीत् पार्थो दृश्यमानो निवारय ।**
**यावद् बाणैर्विनिर्भिन्नः पुनर्नैवं वदिष्यसि ।।३८।।**

इस प्रकार मना किये जाने पर अर्जुन ने कहा—"तनिक सामने आकर रोको । सामने आते ही बाणों से तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे फिर तुम इस प्रकार नहीं बोल सकोगे ।"

**एवमुक्त्वा ततः पार्थः शरैरस्त्रानुमन्त्रितैः ।**
**प्रववर्ष दिशः कृत्स्नाः शब्दवेधं च दर्शयन् ।।३९।।**

ऐसा कहकर अर्जुन ने अपनी शब्दवेधी बाण-विद्या का परिचय देते हुए सब ओर दिव्यास्त्रों से अभिमन्त्रित बाणों की झड़ी लगा दी ।

यक्ष उवाच

**किं विघातेन ते पार्थ प्रश्नानुक्त्वा ततः पिब ।**
**अनुक्त्वा च पिबन् प्रश्नान् पीत्वैव न भविष्यसि ।।४०।।**

**यक्ष ने कहा**—पार्थ ! इस प्रकार प्राणियों की हिंसा से क्या लाभ ? पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, फिर जल पीओ । यदि तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना जल पीओगे तो पीते ही मर जाओगे ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तस्ततः पार्थः सव्यसाची धनञ्जयः ।**
**अवज्ञायैव तां वाचं पीत्वैव निपपात ह ।।४१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—उसके ऐसा कहने पर कुन्तीपुत्र सव्यसाची धनञ्जय उसके वचनों का अनादर करके पानी पीने लगे और पीते ही अचेत होकर गिर पड़े ।

**अथाब्रवीद् भीमसेनं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।**
**नकुलः सहदेवश्च बीभत्सुश्च परन्तप ।।४२।।**
**चिरं गतास्तोयहेतोर्न चागच्छन्ति भारत ।**
**ताँश्चैवानय भद्रं ते पानीयं च त्वमानय ।।४३।।**

अर्जुन के न लौटने पर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा—"परन्तप ! भरतनन्दन ! नकुल, सहदेव और अर्जुन को पानी के लिए गये हुए बहुत देर हो गई । वे अभी तक नहीं लौटे हैं । तुम्हारा कल्याण हो । तुम जाकर उन्हें बुला लाओ और पानी भी ले आओ ।"

**भीमसेनस्तथेत्युक्त्वा तं देशं प्रत्यपद्यत ।**
**यत्र ते पुरुषव्याघ्रा भ्रातरोऽस्य निपातिताः ।।४४।।**

तब भीमसेन 'बहुत अच्छा' कहकर उस स्थान पर गये जहाँ वे पुरुषसिंह तीनों भाई पृथिवी पर मरे पड़े थे ।

**तान् दृष्ट्वा दुःखितो भीमस्तृषया च प्रपीडितः ।**
**अमन्यत महाबाहुः कर्म तद् यक्षरक्षसाम् ।।४५।।**

अपने भाइयों को उस दशा में देखकर प्यास से व्याकुल भीमसेन को बड़ा दुःख हुआ । महाबाहु भीम ने सोचा—'यह यक्षों या राक्षसों का काम है ।'

**स चिन्तयामास तदा योद्धव्यं ध्रुवमद्य वै ।**
**पास्यामि तावत् पानीयमिति पार्थो वृकोदरः ।**
**ततोऽभ्यधावत् पानीयं पिपासुः पुरुषर्षभः ।।४६।।**

फिर उन्होंने सोचा—'आज मुझे निश्चय ही शत्रु से युद्ध करना पड़ेगा, अतः पहले जल पी लूं ।'

ऐसा निश्चय करके प्यासे नरश्रेष्ठ कुन्तीकुमार भीमसेन जल की ओर दौड़े।

यक्ष उवाच

**मा तात साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः।**
**प्रश्नानुक्त्वा तु कौन्तेय ततः पिब हरस्व च ॥४७॥**

**यक्ष बोला**—हे तात ! पानी पीने का साहस न करना। इस सरोवर पर पहले से ही मेरा अधिकार स्थापित हो चुका है। कुन्तीपुत्र ! पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, फिर पानी पीओ और ले भी जाओ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तस्तदा भीमो यक्षेणामिततेजसा।**
**अनुक्त्वैव तु तान् प्रश्नान् पीत्वैव निपपात ह ॥४८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—अमित तेजस्वी यक्ष के ऐसा कहने पर भी भीमसेन उन प्रश्नों का उत्तर दिये बिना ही जल पीने लगे और पीते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

**ततः कुन्तीसुतो राजा प्रविवेश महावनम्।**
**ददर्श तत् सरः श्रीमान् विश्वकर्मकृतं यथा ॥४९॥**

तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने स्वयं उस विशाल वन में प्रवेश किया और उस सरोवर को देखा जो साक्षात् विश्वकर्मा द्वारा निर्मित किया जान पड़ता था।

**इति महाभारते वनपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥**

# चतुर्विंशोऽध्यायः

## यक्ष-युधिष्ठिर संवाद

वैशम्पायन उवाच

**स ददर्श हतान् भ्रातॄन् सर्वांश्चिन्तासमन्वितः।**
**धर्मपुत्रो महाबाहुर्विललाप सुविस्तरम् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! अपने भाइयों को मरा हुआ देखकर महाबाहु धर्मपुत्र युधिष्ठिर गहरी चिन्ता में पड़ गये और देर तक विलाप करते रहे—

**कथं रिपुवशं यातौ कुन्तीपुत्रौ महाबलौ।**
**यौ सर्वास्त्राप्रतिहतौ भीमसेनधनञ्जयौ ॥२॥**

"कुन्तीदेवी के ये दोनों महाबली पुत्र भीम और अर्जुन, जो किसी भी अस्त्र द्वारा अवध्य थे, वे आज सहसा शत्रु के अधीन कैसे हो गये ?

**अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम दुर्हृदः।**
**यमौ यदेतौ दृष्ट्वाद्य पतितौ नावदीर्यते ॥३॥**

"मुझ दुष्ट का हृदय निश्चय ही पत्थर एवं लोहे का बना हुआ है जो आज इन दोनों भाई नकुल और सहदेव को भूमि पर पड़ा देखकर भी टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाता।

**शास्त्रज्ञा देशकालज्ञास्तपोयुक्ताः क्रियान्विताः।**
**अकृत्वा सदृशं कर्म किं शेध्वं पुरुषर्षभाः ॥४॥**

"पुरुषसिंह बन्धुओ ! तुम सभी शास्त्रों के जाननेवाले, देशकाल को समझनेवाले, तपस्वी और कर्मठ वीर थे फिर अपने योग्य पराक्रम किये बिना ही तुम लोग प्राणहीन होकर कैसे सो रहे हो ?

**अविक्षतशरीराश्चाप्यप्रमृष्टशरासनाः।**
**असंज्ञा भुवि संगम्य किं शेध्वमपराजिताः ॥५॥**

"तुम्हारे शरीरों पर कोई घाव नहीं है। तुमने धनुष-बाण का स्पर्श तक नहीं किया है तथा तुम किसी से परास्त होनेवाले भी नहीं हो, फिर इस पृथिवी पर अचेत होकर क्यों पड़े हो ?"

**एवं विलप्य बहुधा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।**
**बुद्ध्या विचिन्तयामास वीराः केन निपातिताः ॥६॥**

धर्मपुत्र युधिष्ठिर इस प्रकार बहुत देर तक विलाप करने के पश्चात् अपनी बुद्धि द्वारा यह विचार करने लगे—'इन वीरों को किसने मार गिराया है ?

**एकैकशश्चौघबलानिमान् पुरुषसत्तमान्।**
**कोऽन्यः प्रतिसमासेत कालान्तकयमादृते ॥७॥**

'मेरे इन पुरुषरत्न भाइयों में से प्रत्येक के शरीर में बल का अगाध सागर लहराता था। आयु पूर्ण होने पर सबका अन्त कर देनेवाले यमराज के सिवाय दूसरा कौन इनसे भिड़ सकता था ?'

**एतेन व्यवसायेन तत् तोयं व्यवगाढवान् ।**
**गाहमानश्च तत् तोयमन्तरिक्षात् स शुश्रुवे ।।८।।**

ऐसा सोचते-विचारते युधिष्ठिर जल में उतरे। पानी में प्रवेश करते ही उन्हें अलक्ष्य आकाशवाणी सुनाई दी—

यक्ष उवाच

**इमे ते भ्रातरो राजन् वार्यमाणा मयासकृत् ।**
**बलात् तोयं जिहीर्षन्तस्ततो वै मृदिता मया ।।९।।**
**पार्थ मा साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः ।**
**प्रश्नानुक्त्वा तु कौन्तेय ततः पिब हरस्व च ।।१०।।**

**यक्ष बोला**—हे राजन् ! तुम्हारे इन भाइयों को मैंने बार-बार रोका था, फिर भी ये बलपूर्वक जल ले जाना चाहते थे, इसी से मैंने इन्हें मार डाला। पार्थ ! तुम भी पानी पीने का साहस मत करना। यह सरोवर पहले से मेरे अधिकार में है। हे कुन्ती-नन्दन ! पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, फिर जल पीओ और ले भी जाओ।

युधिष्ठिर उवाच

**न चाहं कामये यक्ष तव पूर्वपरिग्रहम् ।**
**यथाप्रज्ञं तु ते प्रश्नान् प्रतिवक्ष्यामि पृच्छ माम् ।।११।।**

**युधिष्ठिर ने कहा**—यक्ष ! मैं तुम्हारे अधिकार की वस्तु को नहीं लेना चाहता। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूंगा। तुम मुझसे प्रश्न करो।

यक्ष उवाच

**किं स्विदादित्यमुन्नयति के च तस्याभितश्चराः ।**
**कश्चैनमस्तं नयति कस्मिंश्च प्रतितिष्ठति ।।१२।।**

**यक्ष ने पूछा**—सूर्य को कौन उदित करता है ? उसके चारों ओर कौन चलते हैं ? उसे अस्त कौन करता है ? और वह किसमें प्रतिष्ठित है ?

युधिष्ठिर उवाच

**ब्रह्मादित्यमुन्नयति देवास्तस्याभितश्चराः ।□**
**धर्मश्चास्तं नयति च सत्ये च प्रतितिष्ठति ।।१३।।**

**युधिष्ठिर बोले**—ब्रह्म सूर्य को उदित करता है। देवगण उसके चारों ओर चलते हैं। धर्म उसे अस्त करता है और वह सत्य में प्रतिष्ठित है।

यक्ष उवाच

**केनस्विच्छ्रोत्रियो भवति केनस्विद् विन्दते महत् ।**
**केन द्वितीयवान् राजन् केन भवति बुद्धिमान् ।।१४।।**

**यक्ष ने पूछा**—हे राजन् ! मनुष्य श्रोत्रिय किससे होता है ? महत् पद को किसके द्वारा प्राप्त करता है ? वह किसके द्वारा द्वितीयवान् होता है और बुद्धिमान् किससे होता है ?

युधिष्ठिर उवाच

**श्रुतेन श्रोत्रियो भवति तपसा विन्दते महत् ।□**
**धृत्या द्वितीयवान् यक्ष बुद्धिमान् वृद्धसेवया ।।१५।।**

**युधिष्ठिर ने उत्तर दिया**—मनुष्य वेदाध्ययन से श्रोत्रिय बनता है ! तप से महान् पद पाता है। हे यक्ष ! धैर्य से मनुष्य दूसरे साथी से युक्त होता है और वृद्ध पुरुषों की सेवा से बुद्धिमान् होता है।

यक्ष उवाच

**किं ब्राह्मणानां देवत्वं कश्च धर्मः सतामिव ।**
**कश्चैषां मानुषो भावः किमेषामसतामिव ।।१६।।**

**यक्ष ने पूछा**—ब्राह्मणों में देवत्व क्या है ? उनमें सत्पुरुषों का-सा धर्म क्या है ? उनका मनुष्यभाव क्या है ? तथा उनमें असत्पुरुषों का-सा आचरण क्या है ?

युधिष्ठिर उवाच

**स्वाध्याय एषां देवत्वं तप एषां सतामिव ।□**
**मरणं मानुषो भावः परिवादोऽसतामिव ।।१७।।**

**युधिष्ठिर बोले**—वेदों का स्वाध्याय ही ब्राह्मणों में देवत्व है, तप सत्पुरुषों का-सा धर्म है, मरना मनुष्य भाव है और निन्दा करना असत्पुरुषों का-सा आचरण है।

यक्ष उवाच

**किं क्षत्रियाणां देवत्वं कश्च धर्मः सतामिव ।**
**कश्चैषां मानुषो भावः किमेषामसतामिव ।।१८।।**

**यक्ष ने पूछा**—क्षत्रियों में देवत्व क्या है ? उनमें सत्पुरुषों का-सा धर्म क्या है ? उनका मनुष्यभाव क्या है ? तथा उनमें असत्पुरुषों का-सा आचरण क्या है ?

युधिष्ठिर उवाच

**इष्वस्त्रमेषां देवत्वं यज्ञ एषां सतामिव ।□**
**भयं वै मानुषो भावः परित्यागोऽसतामिव ।।१९।।**

**युधिष्ठिर बोले**—बाणविद्या क्षत्रियों का देवत्व है, यज्ञ उनका सत्पुरुषों का-सा धर्म है, भय मानवीय भाव है तथा शरणागत दुःखियों का परित्याग असत्पुरुषों का-सा आचरण है।

यक्ष उवाच

**किमेकं यज्ञियं साम किमेकं यज्ञियं यजुः ।**
**का चैषां वृणुते यज्ञं कां यज्ञो नातिवर्तते ।।२०।।**

**यक्ष ने पूछा**—कौन-सी एक वस्तु यज्ञीय साम है? कौन एक वस्तु यज्ञीय यजु है? कौन एक वस्तु यज्ञ का वरण करती है? किस एक का यज्ञ अतिक्रमण नहीं करता।

युधिष्ठिर उवाच

**प्राणो वै यज्ञियं साम मनो वै यज्ञियं यजुः ।**
**ऋगेका वृणुते यज्ञं तां यज्ञो नातिवर्तते ।।२१।।**

**युधिष्ठिर बोले**—प्राण ही यज्ञीय साम है, मन ही यज्ञसम्बन्धी यजु है। एकमात्र ऋचा ही यज्ञ का वरण करती है और उसी का यज्ञ अतिक्रमण नहीं करता।

यक्ष उवाच

**किं स्विदावपतां श्रेष्ठं किं स्विन्निवपतां वरम् ।**
**किं स्वित् प्रतिष्ठमानानां किं स्वित् प्रसवतां वरम् ।।२२**

**यक्ष ने पूछा**—खेती करनेवालों के लिए कौन-सी वस्तु श्रेष्ठ है? बोनेवालों के लिए क्या श्रेष्ठ है? प्रतिष्ठा-प्राप्त धनियों के लिए कौन-सी वस्तु श्रेष्ठ है? सन्तान उत्पन्न करनेवालों के लिए क्या श्रेष्ठ है?

युधिष्ठिर उवाच

**वर्षमावपतां श्रेष्ठं बीजं निवपतां वरम् ।□**
**गावः प्रतिष्ठमानानां पुत्रः प्रसवतां वरः ।।२३।।**

**युधिष्ठिर बोले**—खेती करनेवालों के लिए वर्षा श्रेष्ठ है। बोनेवालों के लिए बीज श्रेष्ठ है। प्रतिष्ठा प्राप्त धनिकों के लिए गोपालन श्रेष्ठ है तथा सन्तान उत्पन्न करनेवालों के लिए पुत्र श्रेष्ठ है।

यक्ष उवाच

**इन्द्रियार्थाननुभवन् बुद्धिमाँल्लोकपूजितः ।**
**सम्मतः सर्वभूतानामुच्छ्वसन् को न जीवति ।।२४।।**

**यक्ष ने पूछा**—ऐसा कौन मनुष्य है जो बुद्धिमान्, लोक में सम्मानित तथा सब प्राणियों का माननीय होकर और इन्द्रियों के विषयों का अनुभव करते हुए एवं श्वास लेते हुए भी वास्तव में जीवित नहीं है?

युधिष्ठिर उवाच

**देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः ।**
**न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति ।।२५।।**

**युधिष्ठिर ने उत्तर दिया**—जो देवता, अतिथि, भरणीय कुटुम्बीजन, पितर और आत्मा—इन पाँचों का पोषण नहीं करता, वह श्वास लेने पर भी जीवित नहीं है।

यक्ष उवाच

**किं स्विद् गुरुतरं भूमेः किं स्विदुच्चतरं च खात् ।**
**किं स्विच्छीघ्रतरं वायोः किं स्विद् बहुतरं तृणात् ।।२६**

**यक्ष ने पूछा**—पृथिवी से भारी क्या है? आकाश से भी ऊँचा क्या है? वायु से भी तीव्र चलनेवाला क्या है और तृणों से भी असंख्य (असीम, विस्तृत) एवं अनन्त क्या है?

युधिष्ठिर उवाच

**माता गुरुतरा भूमेः पिता चोच्चतरश्च खात् ।□**
**मनः शीघ्रतरं वाताच्चिन्ता बहुतरी तृणात् ।।२७।।**

**युधिष्ठिर ने कहा**—माता पृथिवी से भी भारी है। पिता आकाश से भी ऊँचा है। मन वायु से भी अधिक तीव्रगामी है और चिन्ता तिनकों से भी अधिक, असंख्य (असीम, विस्तृत) एवं अनन्त है।

यक्ष उवाच

**किन्न निमिषति सुप्तं किं स्विज्जातं न चोपति ।**
**कस्य स्विद् हृदयं नास्ति किं स्विद् वेगेन वर्धते ।।२८।।**

**यक्ष ने पूछा**—कौन नींद में भी आँखें बन्द नहीं करता? कौन उत्पन्न होकर भी चेष्टा नहीं करता? किसमें हृदय नहीं है? वेग से कौन बढ़ता है?

युधिष्ठिर उवाच

**मत्स्यः सुप्तो न निमिषत्यण्डं जातं न चोपति । □**
**अश्मनो हृदयं नास्ति नदी वेगेन वर्धते ।।२९।।**

**युधिष्ठिर बोले**—मछली सोने पर भी आँखें नहीं मूँदती। अण्डा उत्पन्न होकर भी चेष्टा नहीं करता। पत्थर में हृदय नहीं होता और नदी वेग से बढ़ती है।

यक्ष उवाच

**किं स्वित् प्रवसतो मित्रं किं स्विन्मित्रं गृहे सतः ।**
**आतुरस्य च किं मित्रं किं स्विन्मित्रं मरिष्यतः ।।३०**

**यक्ष ने पूछा**—प्रवासी का मित्र कौन है ? गृहस्थ का मित्र कौन है ? रोगी का मित्र कौन है ? मृत्यु के निकट पहुँचे हुए मनुष्य का मित्र कौन है ?

युधिष्ठिर उवाच

**सार्थः प्रवसतो मित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः ।**
**आतुरस्य भिषङ् मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः ।।३१।।**

**युधिष्ठिर ने कहा**—सहयात्री (साथ में यात्रा करनेवाला साथी ही) प्रवासी का मित्र है। पत्नी गृहस्थ की मित्र है। वैद्य रोगी का मित्र है और दान मरनेवाले मनुष्य का मित्र है।

यक्ष उवाच

**कोऽतिथिः सर्वभूतानां किं स्विद्धर्मः सनातनः ।**
**अमृतं किं स्विद् राजेन्द्र किं स्वित् सर्वमिदं जगत् ।।३२।।**

**यक्ष ने पूछा**—हे राजेन्द्र ! समस्त प्राणियों का अतिथि कौन है ? सनातन धर्म क्या है ? अमृत क्या है और यह सारा जगत् क्या है ?

युधिष्ठिर उवाच

**अतिथिः सर्वभूतानामग्निः सोमो गवामृतम् ।**
**सनातनोऽमृतो धर्मो वायुः सर्वमिदं जगत् ।।३३।।**

**युधिष्ठिर बोले**—अग्नि ही समस्त प्राणियों का अतिथि है। गो का दूध अमृत है। अविनाशी नित्य धर्म ही सनातन धर्म है। वायु यह सारा जगत् है।

यक्ष उवाच

**किं स्विदेको विचरते जातः को जायते पुनः ।**
**किं स्विद्धिमस्य भेषज्यं किं स्विदावपनं महत् ।।३४।।**

**यक्ष ने पूछा**—अकेला कौन विचरता है ? एक बार उत्पन्न होकर पुनः कौन उत्पन्न होता है ? शीत की औषध क्या है ? बीज बोने का बहुत बड़ा क्षेत्र कौन-सा है ?

युधिष्ठिर उवाच

**सूर्य एको विचरति चन्द्रमा जायते पुनः ।**
**अग्निर्हिमस्य भेषज्यं भूमिरावपनं महत् ।।३५।।**

**युधिष्ठिर बोले**—सूर्य ही अकेला विचरता है। चन्द्रमा एक बार जन्म लेकर पुनः जन्म लेता है। अग्नि शीत की औषध है। पृथिवी बीज बोने का बहुत बड़ा स्थान है।

यक्ष उवाच

**किं स्विदेकपदं धर्म्यं किं स्विदेकपदं यशः ।**
**किं स्विदेकपदं स्वर्ग्यं किं स्विदेकपदं सुखम् ।।३६।।**

**यक्ष ने पूछा**—धर्म का मुख्य स्थान क्या है ? यश का मुख्य स्थान क्या है ? स्वर्ग का मुख्य स्थान क्या है ? सुख का मुख्य स्थान क्या है ?

युधिष्ठिर उवाच

**दाक्ष्यमेकपदं धर्म्यं दानमेकपदं यशः ।**
**सत्यमेकपदं स्वर्ग्यं शीलमेकपदं सुखम् ।।३७।।**

**युधिष्ठिर ने उत्तर दिया**—धर्म का मुख्य स्थान दक्षता है। यश का मुख्य स्थान दान है। स्वर्ग का मुख्य स्थान सत्य है और सुख का मुख्य स्थान शील है।

यक्ष उवाच

**किं स्विदात्मा मनुष्यस्य किं स्विद् दैवकृतः सखा ।**
**किञ्चोपजीवनमस्य किं स्विदस्य परायणम् ।।३८।।**

**यक्ष ने पूछा**—मनुष्य की आत्मा क्या है ? इसका दैवकृत सखा कौन है ? इसके जीवन का सहारा क्या है ? इसका परम आश्रय क्या है ?

युधिष्ठिर उवाच

**पुत्र आत्मा मनुष्यस्य भार्या दैवकृतः सखा ।**
**उपजीवनं पर्जन्यो दानमस्य परायणम् ।।३९।।**

**युधिष्ठिर बोले**—पुत्र मनुष्य की आत्मा है, स्त्री इसकी दैवकृत सहचरी (जीवन-संगिनी) है। मेघ उसका उप-जीवन=सहारा है और दान इसका आश्रय है।

यक्ष उवाच

**धन्यानामुत्तमं किं स्विद् धनानां स्यात् किमुत्तमम् ।**
**लाभानामुत्तमं किं स्यात् सुखानां स्यात् किमुत्तमम् ।।४०**

**यक्ष ने पूछा**—धन्य पुरुषों में उत्तम गुण क्या है ? धनों में उत्तम धन क्या है ? लाभों में प्रधान लाभ क्या है ? तथा सुखों में उत्तम सुख क्या है ?

युधिष्ठिर उवाच

**धन्यानामुत्तमं दाक्ष्यं धनानामुत्तमं श्रुतम् ।**
**लाभानां श्रेय आरोग्यं सुखानां तुष्टिरुत्तमा ।।४१।।**

**युधिष्ठिर बोले**—धन्य पुरुषों में दक्षता ही उत्तम गुण है। धनों में शास्त्र-ज्ञान प्रधान है। लाभों में आरोग्य लाभ श्रेष्ठ है और सुखों में सन्तोष ही सबसे उत्तम सुख है।

यक्ष उवाच

**कश्च धर्मः परो लोके कश्च धर्मः सदाफलः।**
**किं नियम्य न शोचन्ति कैश्च सन्धिर्न जीर्यते ॥४२॥**

**यक्ष ने पूछा**—लोक में श्रेष्ठ धर्म क्या है? नित्य फल देनेवाला धर्म क्या है? किसको वश में रखने से मनुष्य शोक नहीं करते? किनके साथ की हुई मित्रता नष्ट नहीं होती?

युधिष्ठिर उवाच

**आनृशंस्यं परो धर्मस्त्रयीधर्मः सदाफलः।□**
**मनो यम्य न शोचन्ति सन्धिः सद्भिर्न जीर्यते ॥४३॥**

**युधिष्ठिर बोले**—संसार में दया श्रेष्ठ धर्म है। वेदोक्त-धर्म नित्य फल देनेवाला है। मन को वश में रखने से मनुष्य शोक नहीं करते और सत्पुरुषों के साथ की हुई मित्रता नष्ट नहीं होती।

यक्ष उवाच

**किं नु हित्वा प्रियो भवेत्किं नु हित्वा न शोचति।**
**किं नु हित्वार्थवान् भवेत्किं नु हित्वा सुखी भवेत् ॥४४**

**यक्ष ने पूछा**—किस वस्तु को त्यागकर मनुष्य प्रिय होता है? किस वस्तु को त्यागकर मनुष्य शोक नहीं करता? किसको त्यागकर वह अर्थवान् होता है और किसको त्यागकर सुखी होता है?

युधिष्ठिर उवाच

**मानं हित्वा प्रियो भवेत्क्रोधं हित्वा न शोचति।□**
**कामं हित्वार्थवान् भवेल्लोभं हित्वा सुखी भवेत् ॥४५॥**

**युधिष्ठिर बोले**—मान को त्याग देने पर मनुष्य प्रिय होता है, क्रोध को त्यागने पर शोक नहीं करता, काम को त्यागकर वह अर्थवान् होता है तथा लोभ को त्यागकर सुखी होता है।

यक्ष उवाच

**किमर्थं ब्राह्मणे दानं किमर्थं नटनर्तके।**
**किमर्थं चैव भृत्येषु किमर्थं चैव राजसु ॥४६॥**

**यक्ष ने पूछा**—ब्राह्मण को दान क्यों दिया जाता है? नट और नर्तकों को दान क्यों देते हैं? सेवकों को दान देनें का क्या प्रयोजन है? राजाओं को दान क्यों दिया जाता है?

युधिष्ठिर उवाच

**धर्मार्थं ब्राह्मणे दानं यशोऽर्थं नटनर्तके।□**
**भृत्येषु भरणार्थं वै भयार्थं चैव राजसु ॥४७॥**

**युधिष्ठिर बोले**—ब्राह्मणों को धर्म के लिए दान दिया जाता है, नट-नर्तकों को यश के लिए धन देते हैं, सेवकों को उनके भरण-पोषण के लिए दान=वेतन दिया जाता है और राजाओं को भय के कारण दान=कर देते हैं।

यक्ष उवाच

**केन स्विदावृतो लोकः केन स्विन्न प्रकाशते।**
**केन त्यजति मित्राणि केन स्वर्गं न गच्छति ॥४८॥**

**यक्ष ने पूछा**—जगत् किस वस्तु से ढका हुआ है? किसके कारण वह प्रकाशित नहीं होता? मनुष्य मित्रों को किस लिए त्याग देता है और स्वर्ग में किस कारण नहीं जा पाता?

युधिष्ठिर उवाच

**अज्ञानेनावृतो लोकस्तमसा न प्रकाशते।**
**लोभात्त्यजति मित्राणि संगात्स्वर्गं न गच्छति॥४९॥**

**युधिष्ठिर बोले**—जगत् अज्ञान से ढका हुआ है, तमोगुण के कारण वह प्रकाशित नहीं होता। लोभ के कारण मनुष्य मित्रों को त्याग देता है और आसक्ति के कारण स्वर्ग=सुख की स्थिति में नहीं जा पाता।

यक्ष उवाच

**मृतः कथं स्यात् पुरुषः कथं राष्ट्रं मृतं भवेत्।**
**दानं मृतं कथं वा स्यात् कथं यज्ञो मृतो भवेत् ॥५०॥**

**यक्ष ने पूछा**—पुरुष किस प्रकार मरा कहा जाता है? राष्ट्र किस प्रकार मर जाता है? दान किस प्रकार मृत हो जाता है? यज्ञ कैसे मृत=नष्ट हो जाता है?

युधिष्ठिर उवाच

**मृतो दरिद्रः पुरुषो मृतं राष्ट्रमराजकम्।□**
**मृतमश्रोत्रिये दानं मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः ॥५१॥**

**युधिष्ठिर बोले**—दरिद्र पुरुष मरा हुआ है। राजा से रहित राष्ट्र मर जाता है। अश्रोत्रिय

(वेदज्ञानविरहित) ब्राह्मण को दिया गया दान मृत के समान है और दक्षिणारहित यज्ञ नष्ट हो जाता है।

यक्ष उवाच

**तपः किं लक्षणं प्रोक्तं को दमश्च प्रकीर्तितः।**
**क्षमा च का परा प्रोक्ता का च ह्रीः परिकीर्तिता ॥५२**

**यक्ष ने पूछा**—तप का क्या लक्षण बताया गया है ? दम किसे कहा गया है ? उत्तम क्षमा क्या बताई गई है तथा लज्जा किसे कहते हैं ?

युधिष्ठिर उवाच

**तपः स्वधर्मवर्तित्वं मनसो दमनं दमः।□**
**क्षमा द्वन्द्वसहिष्णुत्वं ह्रीरकार्यनिवर्तनम् ॥५३॥**

**युधिष्ठिर बोले**—अपने धर्म में स्थिर रहना तप है। मन को वश में करने का नाम दम है। सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा, गरमी-सरदी आदि द्वन्द्वों को सहन करना क्षमा है और न करने योग्य कामों से दूर रहना लज्जा है।

यक्ष उवाच

**किं ज्ञानं प्रोच्यते राजन् कः शमश्च प्रकीर्तितः।**
**दया का च परा प्रोक्ता किं चार्जवमुदाहृतम् ॥५४॥**

**यक्ष ने पूछा**—राजन्! ज्ञान किसे कहते हैं ? शम क्या कहलाता है ? उत्तम दया किसका नाम है और आर्जव=सरलता किसे कहते हैं ?

युधिष्ठिर उवाच

**ज्ञानं तत्त्वार्थसम्बोधः शमश्चित्तप्रशान्तता।□**
**दया सर्वसुखैषित्वमार्जवं समचित्तता ॥५५॥**

**युधिष्ठिर बोले**—परमात्म-तत्त्व का यथार्थ बोध ही ज्ञान है, चित्त की शान्ति ही शम है, सबके सुख की इच्छा रखना उत्तम दया है और समचित्त होना आर्जव=सरलता है।

यक्ष उवाच

**कः शत्रुर्दुर्जयः पुंसां कश्च व्याधिरनन्तकः।**
**कीदृशश्च स्मृतः साधुरसाधुः कीदृशः स्मृतः ॥५६॥**

**यक्ष ने पूछा**—मनुष्यों का दुर्जय शत्रु कौन-सा है ? अनन्त व्याधि क्या है ? साधु कौन माना जाता है और असाधु किसे कहते हैं ?

युधिष्ठिर उवाच

**क्रोधः सुदुर्जयः शत्रुर्लोभो व्याधिरनन्तकः।□**
**सर्वभूतहितः साधुरसाधुर्निर्दयः स्मृतः ॥५७॥**

**युधिष्ठिर बोले**—क्रोध दुर्जय शत्रु है। लोभ अनन्त व्याधि है। जो समस्त प्राणियों का हित करनेवाला है, वही साधु है, जो निर्दय (दयाहीन) है उसे ही असाधु माना गया है।

यक्ष उवाच

**को मोहः प्रोच्यते राजन् कश्च मानः प्रकीर्तितः।**
**किमालस्यं च विज्ञेयं कश्च शोकः प्रकीर्तितः ॥५८॥**

**यक्ष ने पूछा**—राजन्! मोह किसे कहते हैं ? मान क्या कहलाता है ? आलस्य किसे जानना चाहिए और शोक किसे कहते हैं ?

युधिष्ठिर उवाच

**मोहो हि धर्ममूढत्वं मानस्त्वात्माभिमानिता।□**
**धर्मनिष्क्रियताऽऽलस्यं शोकस्त्वज्ञानमुच्यते ॥५९॥**

**युधिष्ठिर बोले**—धर्ममूढता ही मोह है, आत्म-अभिमान ही मान है। धर्म का पालन न करना ही आलस्य है और अज्ञान को ही शोक कहते हैं।

यक्ष उवाच

**किं स्थैर्यमृषिभिः प्रोक्तं किं च धैर्यमुदाहृतम्।**
**स्नानं च किं परं प्रोक्तं दानं च किमिहोच्यते ॥६०॥**

**यक्ष ने पूछा**—ऋषियों ने स्थिरता किसे कहा है ? धैर्य क्या कहलाता है ? परम स्नान किसे कहते हैं और दान किसका नाम है ?

युधिष्ठिर उवाच

**स्वधर्मे स्थिरता स्थैर्यं धैर्यमिन्द्रियनिग्रहः।□**
**स्नानं मनोमलत्यागो दानं वै भूतरक्षणम् ॥६१॥**

**युधिष्ठिर बोले**—अपने धर्म में स्थिर रहना ही स्थिरता है ? इन्द्रिय-निग्रह धैर्य है, मानसिक मलों का त्याग करना स्नान है और प्राणियों की रक्षा करना ही दान है।

यक्ष उवाच

**कः पण्डितः पुमाञ्ज्ञेयो नास्तिकः कश्च उच्यते।**
**को मूर्खः कश्च कामः स्यात् को मत्सर इति स्मृतः ॥६२**

**यक्ष ने पूछा**—किस मनुष्य को पण्डित समझना

चाहिए, नास्तिक कौन कहलाता है ? मूर्ख कौन है ? काम क्या है ? मत्सर किसे कहते हैं ?

युधिष्ठिर उवाच

**धर्मज्ञः पण्डितो ज्ञेयो नास्तिको मूर्ख उच्यते ।□**
**कामः संसारहेतुश्च हृत्तापो मत्सरः स्मृतः ॥६३॥**

**युधिष्ठिर बोले**—धर्मज्ञ को पण्डित समझना चाहिए। वेदनिन्दक नास्तिक है और नास्तिक ही मूर्ख कहलाता है, जन्म-मरण रूप संसार का कारण जो वासना है, वही काम है तथा हृदय की जलन ही मत्सर है ।

यक्ष उवाच

**कोऽहंकार इति प्रोक्तः कश्च दम्भः प्रकीर्तितः ।**
**किं तद् दैवं परं प्रोक्तं किं तत् पैशुन्यमुच्यते ॥६४॥**

**यक्ष ने पूछा**—अहंकार किसे कहते हैं ? दम्भ क्या कहलाता है ? जिसे परम दैव कहते हैं, वह क्या है और पैशुन्य किसका नाम है ?

युधिष्ठिर उवाच

**महाऽज्ञानमहङ्कारो दम्भो धर्मध्वजोच्छ्रयः ।□**
**दैवं दानफलं प्रोक्तं पैशुन्यं परदूषणम् ॥६५॥**

**युधिष्ठिर बोले**—महा-अज्ञान अहंकार है, अपने को झूठ-मूठ बड़ा धर्मात्मा प्रसिद्ध करना दम्भ है । दान का फल दैव कहलाता है और दूसरों को दोष लगाना पैशुन्य=चुगली है ।

यक्ष उवाच

**धर्मश्चार्थश्च कामश्च परस्परविरोधिनः ।**
**एषां नित्यविरुद्धानां कथमेकत्र सङ्गमः ॥६६॥**

**यक्ष ने पूछा**—धर्म, अर्थ और काम—ये सब परस्पर-विरोधी हैं । इन नित्य-विरुद्ध पुरुषार्थों का एक स्थान पर संयोग कैसे हो सकता है ?

युधिष्ठिर उवाच

**यदा धर्मश्च भार्या च परस्परवशानुगौ ।□**
**तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि सङ्गमः ॥६७॥**

**युधिष्ठिर बोले**—जब धर्म और भार्या—ये दोनों परस्पर-अविरोधी होकर मनुष्य के वश में हो जाते हैं, उस समय धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों परस्पर विरोधी पुरुषार्थों का भी एक साथ रहना सहज हो जाता है ।

यक्ष उवाच

**अक्षयो नरकः केन प्राप्यते भरतर्षभ ।**
**एतन्मे पृच्छतः प्रश्नं तच्छीघ्रं वक्तुमर्हसि ॥६८॥**

**यक्ष ने पूछा**—भरतश्रेष्ठ ! अक्षय नरक=दुःख किस पुरुष को प्राप्त होता है ? मेरे इस प्रश्न का शीघ्र उत्तर दो ।

युधिष्ठिर उवाच

**ब्राह्मणं स्वयमाहूय याचमानमकिञ्चनम् ।□**
**पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ॥६९॥**

**युधिष्ठिर बोले**—जो पुरुष भिक्षा माँगनेवाले किसी अकिञ्चन ब्राह्मण को स्वयं बुलाकर फिर उसे 'न' कर देता है, वह अक्षय नरक को प्राप्त होता है ।

**वेदेषु धर्मशास्त्रेषु मिथ्या यो वै द्विजातिषु ।□**
**देवेषु पितृधर्मेषु सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ॥७०॥**

जो पुरुष वेद, धर्मशास्त्र, ब्राह्मण, देवता और पितृधर्मों में मिथ्या बुद्धि रखता है वह अक्षय नरक को प्राप्त होता है ।

**विद्यमाने धने लोभाद् दानभोगविवर्जितः ।□**
**पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात् सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ॥७१॥**

धन पास रहते हुए भी जो लोभवश दान और भोग नहीं करता और [माँगनेवाले ब्राह्मण आदि तथा न्याययुक्त भोग के लिए स्त्री-पुरुषों को] पीछे से यह कह देता है कि मेरे पास देने को कुछ नहीं है, वह भी अक्षय नरक में जाता है ।

यक्ष उवाच

**राजन् कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा ।**
**ब्राह्मण्यं केन भवति प्रब्रूह्येतत् सुनिश्चितम् ॥७२॥**

**यक्ष ने पूछा**—राजन् ! कुल, आचार, स्वाध्याय और शास्त्रश्रवण—इसमें से किसके द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है ? यह बात निश्चय करके बताओ ।

युधिष्ठिर उवाच

**शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम् ।□**
**कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः ॥७३॥**

**युधिष्ठिर बोले**—तात यक्ष ! सुनो, न तो कुल ब्राह्मणत्व का कारण है, न स्वाध्याय और न शास्त्र-श्रवण । ब्राह्मणत्व का हेतु केवल सदाचार ही है, इसमें संशय नहीं है ।

**वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः ।**
**अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥७४॥**

ब्राह्मण को तो विशेषरूप से प्रयत्नपूर्वक सदाचार की ही रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि जिसका सदाचार अक्षुण्ण है उसका ब्राह्मणत्व भी बना हुआ है और जिसका सदाचार नष्ट हो गया वह तो स्वयं भी नष्ट हो गया ।

**पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः ।**
**सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पण्डितः ॥७५॥**

पढ़नेवाले, पढ़ानेवाले तथा शास्त्र का विचार करनेवाले—ये सब तो व्यसनी और मूर्ख ही हैं। पण्डित तो वही है, जो अपने शास्त्रोक्त कर्तव्य का पालन करता है ।

**चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादतिरिच्यते ।**
**योऽग्निहोत्रपरो दान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥७६॥**

चारों वेद पढ़ा होने पर भी जो दुराचारी है, वह नीचता में शूद्र से भी बढ़कर है। जो नित्य अग्निहोत्र में तत्पर और जितेन्द्रिय है, वही ब्राह्मण है ।

यक्ष उवाच

**प्रियवचनवादी किं लभते**
**विमृशितकार्यकरः किं लभते ।**
**सुबहुमित्रकरः किं लभते**
**धर्मरतः कथय किं लभते ॥७७॥**

**यक्ष ने पूछा**—बताओ, मधुर बोलनेवाले को क्या मिलता है ? सोच-विचारकर काम करनेवाले को क्या प्राप्त होता है ? जो बहुत-से मित्र बना लेता है, उसे क्या लाभ होता है ? और जो धर्मनिष्ठ है, वह क्या पाता है ?

युधिष्ठिर उवाच

**प्रियवचनवादी प्रियो भवति**
**विमृशितकार्यकरोऽति जयति ।**
**बहुमित्रकरश्च सुखं लभते**
**यश्च धर्मरतः स गतिं लभते ॥७८॥**

**युधिष्ठिर बोले**—मधुरवचन बोलनेवाला सबका प्रिय हो जाता है। सोच-विचारकर काम करनेवाले को अधिकतर सफलता मिलती है। बहुत-से मित्र बना लेनेवाला सुख से रहता है। जो धर्मनिष्ठ है, वह सद्गति पाता है ।

यक्ष उवाच

**को मोदते किमाश्चर्यं कः पन्थाः का च वार्तिका ।**
**ममैतांश्चतुरः प्रश्नान् कथयित्वा जलं पिब ॥७९॥**

**यक्ष ने पूछा**—सुखी कौन है ? आश्चर्य क्या है ? जीवनपथ—[जीवन का मार्ग] क्या है ? और वार्ता क्या है ? मेरे इन चार प्रश्नों का उत्तर दो और जल पीओ ।

युधिष्ठिर उवाच

**पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति स्वे गृहे ।**
**अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते ॥८०॥**

**युधिष्ठिर बोले**—जलचर यक्ष ! जिस पुरुष पर ऋण नहीं है, जो परदेश में नहीं है, ऐसा व्यक्ति पाँचवें या छठे दिन अपने घर के भीतर साग-पात पकाकर खाने पर भी सुखी है।

**अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम् ।**
**शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥८१॥**

संसार से प्रतिदिन प्राणी यमलोक में जा रहे हैं परन्तु जो बचे हुए हैं, वे सर्वथा जीने की इच्छा करते हैं, इससे बढ़कर और आश्चर्य क्या हो सकता है ?

**तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना**
**नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम् ।**
**धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां**
**महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥८२॥**

तर्क की कहीं स्थिति नहीं है, मनुष्यों की श्रुतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। ऐसा कोई एक ऋषि भी नहीं है जिसका मत प्रमाण माना जाए तथा धर्म का तत्त्व हृदयगुहा में निहित [अत्यन्त गूढ़] है अतः जिस मार्ग से महापुरुष जाते रहे हैं, वही मार्ग है ।

**अस्मिन् महामोहमहे कटाहे**
**सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन ।**
**मासर्तुदर्वीपरिघट्टनेन**
**भूतानि कालः पचतीति वार्ता ॥८३॥**

संसाररूपी महामोहरूप तैल-भरे कड़ाह में काल समस्त प्राणियों को मास और ऋतु-रूप कलछी से उलट-पुलटकर सूर्यरूप अग्नि और रात-दिनरूप

ईंधन के द्वारा पका रहा है, यही वार्ता है।

यक्ष उवाच

**व्याख्याता मे त्वया प्रश्ना याथातथ्यं परन्तप।**
**पुरुषं त्विदानीं व्याख्याहि यश्च सर्वधनी नरः ॥८४॥**

**यक्ष ने पूछा**—परंतप! तुमने मेरे समस्त प्रश्नों के उत्तर ठीक-ठीक दे दिये। अब तुम पुरुष की भी व्याख्या कर दो और यह बताओ कि सबसे बड़ा धनी कौन है?

युधिष्ठिर उवाच

**दिवं स्पृशति भूमिं च शब्दः पुण्येन कर्मणा।**
**यावत् स शब्दो भवति तावत् पुरुष उच्चते ॥८५॥**

**युधिष्ठिर बोले**—जिस पुरुष के पुण्य कर्मों की कीर्ति का जय-निनाद जबतक स्वर्ग और भूमि को स्पर्श करता है, तबतक वह पुरुष कहलाता है।

**तुल्ये प्रियाप्रिये यस्य सुखदुःखे तथैव च।**
**अतीतानागते चोभे स वै सर्वधनी नरः ॥८६॥**

जो मनुष्य प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख और भूत-भविष्यत्—इन द्वन्द्वों में सम [समान] है, वही सबसे बड़ा धनी है।

यक्ष उवाच

**व्याख्यातः पुरुषो राजन् यश्च सर्वधनी नरः।**
**तस्मात् त्वमेकं भ्रातॄणां यमिच्छसि स जीवतु ॥८७॥**

**यक्ष ने कहा**—हे राजन्! तुमने पुरुष और सबसे बढ़कर धनी की ठीक-ठीक व्याख्या कर दी, अतः तुम अपने भाइयों में से जिस एक को चाहो, वही जीवित हो सकता है।

युधिष्ठिर उवाच

**श्यामो य एष रक्ताक्षो बृहच्छाल इवोत्थितः।**
**व्यूढोरस्को महाबाहुर्नकुलो यक्ष जीवतु ॥८८॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हे यक्ष! यह जो श्यामवर्ण, अरुणनयन, विशाल शालवृक्ष के समान उन्नत (ऊँचा) और चौड़ी छातीवाला महाबाहु नकुल है, वह जीवित हो जाए।

यक्ष उवाच

**प्रियस्ते भीमसेनोऽयमर्जुनो वः परायणम्।**
**स कस्मान्नकुलं राजन् सापत्नं जीवमिच्छसि ॥८९॥**

**यक्ष ने कहा**—हे राजन्! यह महाबली भीम तुम्हारा प्रिय है और यह अर्जुन तुम सबका सहारा है। इन्हें छोड़कर तुम सौतेले भाई नकुल को क्यों जिलाना चाहते हो?

युधिष्ठिर उवाच

**धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।**
**तस्माद्धर्मं न त्यजामि मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥९०॥**

**युधिष्ठिर बोले**—नष्ट किया हुआ धर्म मनुष्य को मार देता है और रक्षा किया हुआ धर्म मनुष्य की रक्षा करता है, अतः मैं धर्म का त्याग नहीं करता कि कहीं नष्ट होकर वह धर्म मेरा ही नाश न कर दे।

**आनृशंस्यं परो धर्मः परमार्थाच्च मे मतम्।**
**आनृशंस्यं चिकीर्षामि नकुलो यक्ष जीवतु ॥९१॥**

हे यक्ष! मेरा विचार है कि अनृशंसता=दया और समता ही परम धर्म है। यही सोचकर मैं सबके प्रति दया और समभाव ही रखना चाहता हूँ, अतः नकुल ही जीवित हो जाए।

**धर्मशीलः सदा राजा इति मां मानवा विदुः।**
**स्वधर्मान्न चलिष्यामि नकुलो यक्ष जीवतु ॥९२॥**

हे यक्ष! लोग मेरे विषय में ऐसा समझते हैं कि राजा युधिष्ठिर धर्मात्मा है, अतः मैं अपने धर्म से विचलित नहीं होऊँगा। मेरा भाई नकुल जीवित हो जाए।

**कुन्ती चैव तु माद्री च द्वे भार्ये तु पितुर्मम।**
**उभे सपुत्रे स्यातां वै इति मे धीयते मतिः ॥९३॥**

मेरे पिता के कुन्ती और माद्री नामक दो भार्याएँ थीं। वे दोनों ही पुत्रवती बनी रहें, यही मेरी स्थिर धारणा है।

**यथा कुन्ती तथा माद्री विशेषो नास्ति मे तयोः।**
**मातृभ्यां सममिच्छामि नकुलो यक्ष जीवतु ॥९४॥**

हे यक्ष! मेरे लिए जैसी माँ कुन्ती है वैसी ही माद्री, उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। मैं दोनों माताओं के प्रति समभाव ही रखना चाहता हूँ, अतः नकुल ही जीवित हो।

यक्ष उवाच

**यस्य तेऽर्थाच्च कामाच्च आनृशंस्यं परं मतम्।**
**तस्मात् ते भ्रातरः सर्वे जीवन्तु भरतर्षभ ॥९५॥**

**यक्ष ने कहा**—हे भरतश्रेष्ठ ! तुमने दया और समभाव का अर्थ और काम से भी अधिक आदर किया है, अतः तुम्हारे सभी भाई जीवित हो जाएँ।

वैशम्पायन उवाच

**ततस्ते यक्षवचनादुदतिष्ठन्त पाण्डवाः।**
**क्षुत्पिपासे च सर्वेषां क्षणेन व्यपगच्छताम् ॥९६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन् ! तदनन्तर यक्ष के कहते ही सब पाण्डव उठकर खड़े हो गये तथा एक क्षण में ही उनकी भूख और प्यास जाती रही।

**इति महाभारते वनपर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥**

# पञ्चविंशोऽध्यायः

## यक्ष का वरदान देना और पाण्डवों का ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर अज्ञातवास के लिए जाना

युधिष्ठिर उवाच

**सरस्येकेन पादेन तिष्ठन्तमपराजितम्।**
**पृच्छामि को भवान् देवो न मे यक्षो मतो भवान् ॥१॥**

**युधिष्ठिर बोले**—इस सरोवर में एक पैर से खड़े हुए, किसी से भी पराजित न होनेवाले हे देव ! आपसे मैं पूछता हूँ—आप कौन श्रेष्ठ देव हैं ? मुझे आप यक्ष तो प्रतीत नहीं होते ?

यक्ष उवाच

**अहं ते जनकस्तात धर्मोऽमृदुपराक्रम।**
**त्वां दिदृक्षुरनुप्राप्तो विद्धि मां भरतर्षभ ॥२॥**

**यक्ष ने कहा**—प्रचण्ड पराक्रमी भरतश्रेष्ठ तात युधिष्ठिर ! मैं तुम्हारा जन्मदाता पिता धर्मराज हूँ। तुम्हें देखने की इच्छा से ही मैं यहाँ आया हूँ, मुझे पहचानो।

**यशः सत्यं दमः शौचमार्जवं ह्रीरचापलम्। □**
**दानं तपो ब्रह्मचर्यमित्येतास्तनवो मम ॥३॥**

यश, सत्य, दम, शौच=पवित्रता, सरलता, लज्जा (आत्म-लज्जा), अचञ्चलता, दान, तप और ब्रह्मचर्य—ये सब मेरे शरीर हैं।

**अहिंसा समता शान्तिरानृशंस्यममत्सरः।**
**द्वाराण्येतानि मे विद्धि प्रियो ह्यसि सदा मम ॥४॥**

अहिंसा, समता, शान्ति, दया और अमत्सर=डाह का न होना—इन्हें मेरे पास पहुँचने के द्वार समझो। तुम मुझे सदा प्रिय हो।

**दिष्ट्या पञ्चसु रक्तोऽसि दिष्ट्या ते षट्पदी जिता।**
**द्वे पूर्वे मध्यमे द्वे च द्वे चान्ते साम्परायिके ॥५॥**

सौभाग्यवश तुम्हारा शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान—इन पाँचों साधनों पर अनुराग है तथा सौभाग्य से तुमने भूख-प्यास, शोक-मोह तथा जरा-मृत्यु—इन छह दोषों को भी जीत लिया है। इनमें से पहले दो आरम्भ से ही रहते हैं, मध्य के दो यौवन-अवस्था आने पर प्राप्त होते हैं और अन्तिम दो दोष जीवन के अन्त में आते हैं।

**धर्मोऽहमिति भद्रं ते जिज्ञासुस्त्वामिहागतः।**
**आनृशंस्येन तुष्टोऽस्मि वरं दास्यामि तेऽनघ ॥६॥**

निष्पाप राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं धर्म हूँ और तुम्हारा व्यवहार जानने की इच्छा से ही यहाँ आया हूँ। तुम्हारी दयालुता और समदर्शिता से मैं तुम पर प्रसन्न हूँ और तुम्हें वर देना चाहता हूँ।

**वरं वृणीष्व राजेन्द्र दाता ह्यस्मि तवानघ।**
**ये हि मे पुरुषा भक्ता न तेषामस्ति दुर्गतिः ॥७॥**

पाप-शून्य राजेन्द्र ! तुम मनोऽनुकूल वर माँग लो। मैं तुम्हें अवश्य दूँगा। जो मनुष्य मेरे भक्त हैं, उनकी कभी दुर्गति नहीं होती।

युधिष्ठिर उवाच

**अरणीसहितं यस्य मृगो ह्यादाय गच्छति।**
**तस्याग्नयो न लुप्येरन् प्रथमोऽस्तु वरो मम ॥८॥**

**युधिष्ठिर बोले**—भगवन् ! पहला वर तो मैं यही माँगता हूँ कि जिस ब्राह्मण के अरणीसहित मन्थन-काष्ठ को लेकर मृग भाग गया है, उसके अग्निहोत्र का लोप न हो।

यक्ष उवाच

**अरणीसहितं तस्य ब्राह्मणस्य हृतं मया।**
**मृगवेषेण कौन्तेय जिज्ञासार्थं तव प्रभो ॥९॥**

**यक्ष ने कहा**—कुन्तीनन्दन महाराज युधिष्ठिर ! उस ब्राह्मण के अरणीसहित मन्थनकाष्ठ को तुम्हारी परीक्षा के लिए मैं ही मृग-रूप से लेकर भागा था।

वैशम्पायन उवाच

**ददानीत्येव भगवानुत्तरं प्रत्यपद्यत।**
**अन्यं वरय भद्रं ते वरं त्वममरोपम ॥१०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—इसके पश्चात् भगवान् धर्म ने उत्तर दिया कि लो, अरणी और मन्थनकाष्ठ मैं तुम्हें दे ही देता हूँ। देवोपम नरेश ! तुम्हारा मङ्गल हो ! अब तुम कोई दूसरा वर माँगो।

युधिष्ठिर उवाच

**वर्षाणि द्वादशारण्ये त्रयोदशमुपस्थितम्।**
**तत्र नो नाभिजानीयुर्वसतो मनुजाः क्वचित् ॥११॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हम बारह वर्ष तक वन में रह चुके। अब तेरहवाँ वर्ष आ पहुँचा है, अतः आप ऐसा वर दीजिए कि इस वर्ष में कहीं भी रहने पर लोग हमें पहचान न सकें।

वैशम्पायन उवाच

**ददानीत्येव भगवानुत्तरं प्रत्यपद्यत।**
**भूयश्चाश्वासयामास कौन्तेयं सत्यविक्रमम् ॥१२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! यह सुनकर भगवान् धर्म ने उत्तर में कहा—"मैं तुम्हें यह वर भी देता हूँ।" तत्पश्चात् धर्मराज ने सत्य-पराक्रमी युधिष्ठिर को आश्वासन देते हुए कहा—

**स्वेन यद्यपि रूपेण चरिष्यथ महीमिमाम्।**
**न वो विज्ञास्यते कश्चित् त्रिषु लोकेषु भारत ॥१३॥**

"भरतनन्दन ! यदि तुम इस पृथिवी पर इसी रूप में भी विचरोगे तो भी तीनों लोकों में तुम्हें कोई नहीं पहचान सकेगा।

**वर्षं त्रयोदशमिदं मत्प्रसादात् कुरूद्वहाः।**
**विराटनगरे गूढा अविज्ञाताश्चरिष्यथ ॥१४॥**

"कुरुनन्दन पाण्डवो ! मेरी कृपा से तुम लोग तेरहवें वर्ष में गुप्तरूप से विराट नगर में रहते हुए किसी से भी न पहचाने जाकर विचरण करोगे।

**प्रवृणीष्वापरं सौम्य वरमिष्टं ददामि ते।**
**न तृप्यामि नरश्रेष्ठ प्रयच्छन् वै वरांस्तव ॥१५॥**

"सौम्य ! इसके अतिरिक्त तुम एक और भी अभीष्ट वर माँग लो। वह मैं तुम्हें दूँगा। नरश्रेष्ठ ! तुम्हें वर देते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।"

युधिष्ठिर उवाच

**जयेयं लोभमोहौ च क्रोधं चाहं सदा विभो।**
**दाने तपसि सत्ये च मनो मे सततं भवेत् ॥१६॥**

**युधिष्ठिर बोले**—प्रभो ! मुझे यह वर दीजिए कि मैं लोभ, मोह और क्रोध को जीत सकूँ तथा दान, तप और सत्य में मेरा मन सदा लगा रहे।

धर्म उवाच

**उपपन्नो गुणैरेतैः स्वभावेनासि पाण्डव।**
**भवान् धर्मः पुनश्चैव यथोक्तं ते भविष्यति ॥१७॥**

**धर्मराज ने कहा**—हे पाण्डुपुत्र ! तुम तो स्वयं धर्म-स्वरूप ही हो। तुम इन गुणों से स्वभाव से ही सम्पन्न हो। फिर भी तुम्हारे कथनानुसार तुममें ये सब धर्म बने रहेंगे।

वैशम्पायन उवाच

**उपेत्य चाश्रमं वीराः सर्व एव गतक्लमाः।**
**आरणेयं ददुस्तस्मै ब्राह्मणाय तपस्विने ॥१८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—धर्मराज से वर प्राप्त करके सब पाण्डव श्रमरहित हुए आश्रम में लौट आये। वहाँ आकर उन्होंने अरणी एवं मन्थन-काष्ठ उस तपस्वी ब्राह्मण को दे दिये।

**अज्ञातवासवासार्थं चिन्तयन्तः परस्परम्।**
**ये तद्भक्ता वसन्ति स्म तानब्रुवन् महात्मनः ॥१९॥**

तेरहवें वर्ष में अज्ञातवास की इच्छा से विद्वान् पाण्डव विचार-विमर्श के लिए आस-पास बैठे। कुछ परामर्श कर वनवास के समय अपने साथ रहनेवाले स्नेही ब्राह्मणों से महात्मा पाण्डवों ने कहा—

**उषिताश्च वने कृच्छ्रे वयं द्वादश वत्सरान्।**
**तद्वसामो वयं छन्नास्तदनुज्ञातुमर्हथ ॥२०॥**

हम लोग कष्टप्रद वनों में बारह वर्ष तक रह चुके। इस वर्ष हम छिपकर रहना चाहते हैं, इसके लिए आप हमें आज्ञा प्रदान करें।

**अपि नस्तद् भवेद् भूयो यद् वयं ब्राह्मणैः सह।**
**समस्ताः स्वेषु राष्ट्रेषु स्वराज्यस्था भवेमहि ॥२१॥**

क्या हमारे सामने फिर कभी ऐसा शुभ अवसर आएगा जबकि हम सब भाई ब्राह्मणों के साथ अपने

राष्ट्र में रहेंगे, अपने राज्य पर प्रतिष्ठित होंगे ?

**इत्युक्त्वा दुःखशोकार्तः शुचिर्धर्मसुतस्तदा ।**
**सम्मूर्च्छितोऽभवद् राजा साश्रुकण्ठो युधिष्ठिरः ।।२२।।**

ऐसा कहकर वे पवित्र अन्तःकरणवाले धर्मराज युधिष्ठिर दुःख और शोक से आतुर हो मूर्च्छित हो गये। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह रही थी और कण्ठ अवरुद्ध हो गया था।

**तमथाश्वासयन् सर्वे ब्राह्मणा भ्रातृभिः सह ।**
**अथ धौम्योऽब्रवीद् वाक्यं महार्थं नृपतिं तदा ।।२३।।**

उस समय उनके भाइयोंसहित सब ब्राह्मणों ने उन्हें आश्वासन दिया। तदनन्तर महर्षि धौम्य ने राजा युधिष्ठिर से यह गम्भीर अर्थयुक्त वचन कहा—

**राजन्विद्वान्भवान्दान्तः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।**
**नैवंविधाः प्रमुह्यन्ते नराः कस्याञ्चिदापदि ।।२४।।**

"राजन् ! आप विद्वान्, मन को वश में रखनेवाले, सत्य-प्रतिज्ञ और जितेन्द्रिय हैं। आप जैसे मनुष्य किसी भी आपत्ति में मोहित नहीं होते, अपना धैर्य और विवेक नहीं खोते।

**देवैरप्यापदः प्राप्ताश्छन्नैश्च बहुशस्तथा ।**
**तत्र तत्र सपत्नानां निग्रहार्थं महात्मभिः ।।२५।।**

"महात्माओं [देवताओं] को भी जहाँ-तहाँ शत्रुओं के निग्रह के लिए अनेक बार छिपकर रहना और आपत्तियों को भोगना पड़ा है।

**इन्द्रेण निषधान् प्राप्य गिरिप्रस्थाश्रमे तदा ।**
**छन्नेनोष्य कृतं कर्म द्विषतां च विनिग्रहे ।।२६।।**

"देवराज इन्द्र शत्रुओं का दमन करने के लिए गुप्तरूप से निषध-देश में गये तथा गिरिप्रस्थ आश्रम में छिपे रहकर उन्होंने अपना कार्य सिद्ध किया।

**एवमेव महात्मानः प्रच्छन्नास्तत्र तत्र वै ।**
**अजयञ्छात्रवान् युद्धे तथा त्वमपि जेष्यसि ।।२७।।**

"इसी प्रकार कितने ही महामना वीर पुरुषों ने यत्र-तत्र छिपे रहकर युद्ध में शत्रुओं पर विजय पायी है, इसी प्रकार तुम भी विजय प्राप्त करोगे।"

**अथाब्रवीन्महाबाहुर्भीमसेनो महाबलः ।**
**राजानं बलिनां श्रेष्ठो गिरा सम्परिहर्षयन् ।।२८।।**

तत्पश्चात् बलवानों में श्रेष्ठ महाबाहु महाबली भीमसेन अपनी वाणी से राजा युधिष्ठिर का हर्ष और उत्साह बढ़ाते हुए बोले—

**अवेक्षया महाराज तव गाण्डीवधन्वना ।**
**धर्मानुगतया बुद्ध्या न किंचित् साहसं कृतम् ।।२९।।**

"महाराज ! गाण्डीवधारी अर्जुन ने आपके आदेश की प्रतीक्षा तथा अपनी धर्मानुगामिनी बुद्धि के कारण ही अबतक कोई साहस का कार्य नहीं किया है।

**सहदेवो मया नित्यं नकुलश्च निवारितौ ।**
**शक्तौ विध्वंसने तेषां शत्रूणां भीमविक्रमौ ।।३०।।**

"भयंकर पराक्रमी नकुल और सहदेव उन सब शत्रुओं का विध्वंस करने में समर्थ हैं। इन दोनों को मैं सदा ही रोकता आया हूँ।

**न वयं तत् प्रहास्यामो यस्मिन् योक्ष्यति नो भवान् ।**
**भवान् विधत्तां तत् सर्वं क्षिप्रं जेष्यामहे रिपून् ।।३१।**

"आप हमें जिस कार्य में लगा देंगे, हम लोग उसे पूरा किये बिना नहीं छोड़ेंगे, अतः आप युद्ध की सारी व्यवस्था कीजिए। हम शत्रुओं पर शीघ्र ही विजय प्राप्त करेंगे।"

**इत्युक्ते भीमसेनेन ब्राह्मणाः परमाशिषा ।**
**उक्त्वा चापृच्छ्य भरतांस्तान्यथास्वान्ययुर्गृहान् ।।३२**

भीमसेन के ऐसा कहने पर सब ब्राह्मण पाण्डवों को उत्तम आशीर्वाद देकर तथा उन भरतवंशियों से अनुमति लेकर अपने-अपने घरों को चले गये।

**सह धौम्येन विद्वांसस्तथा पञ्च च पाण्डवाः ।**
**उत्थाय प्रययुर्वीराः कृष्णामादाय धन्विनः ।।३३।।**

धौम्यसहित विद्वान् एवं वीर वे पाँचों पाण्डव द्रौपदी को लेकर धनुष-बाण धारण किये हुए वहाँ से उठकर चल दिये।

**श्वोभूते मनुजव्याघ्राश्छन्नवासार्थमुद्यताः ।**
**क्रोशमात्रमुपागम्य मन्त्राय समुपाविशन् ।।३४।।**

आगामी दूसरे दिन से अज्ञातवास आरम्भ करने के लिए उद्यत नरश्रेष्ठ पाण्डव एक कोस जाकर परस्पर मन्त्रणा करने के लिए आस-पास बैठ गये।

**इति महाभारते वनपर्वणि पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।**

**इति वनपर्व सम्पूर्णम्**

# विराटपर्व

## प्रथमोऽध्यायः

### विराटनगर में अज्ञातवास के लिए पाण्डवों के भावी कार्यक्रम का दिग्दर्शन

जनमेजय उवाच

**कथं विराटनगरे मम पूर्वपितामहाः।**
**अज्ञातवासमुषिता दुर्योधनभयार्दिताः ॥१॥**
**पतिव्रता महाभागा सततं ब्रह्मवादिनी।**
**द्रौपदी च कथं ब्रह्मन्नज्ञाता दुःखितावसत् ॥२॥**

**जनमेजय ने पूछा**—हे ब्रह्मन्! मेरे पितामह पाण्डवों ने दुर्योधन के भय से कष्ट उठाते हुए विराटनगर में अपने अज्ञातवास का समय कैसे व्यतीत किया और दुःख में पड़ी हुई ब्रह्मवादिनी, परम सौभाग्यवती पतिव्रता द्रौपदी अपने को अज्ञात रखकर वहाँ कैसे निवास कर सकी?

वैशम्पायन उवाच

**यथा विराटनगरे तव पूर्वपितामहाः।**
**अज्ञातवासमुषितास्तच्छृणुष्व नराधिप ॥३॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—राजन्! तुम्हारे पितामहों ने विराटनगर में जिस प्रकार अज्ञातवास का समय पूरा किया था, वह बताता हूँ, सुनो!

**अथ युधिष्ठिरो राजा धर्मपुत्रो महामनाः।**
**संनिवर्त्यानुजान् सर्वानिति होवाच भारत ॥४॥**

हे भारत! सब ब्राह्मणों को विदाकर धर्मपुत्र महामनस्वी राजा युधिष्ठिर ने अपने सब भाइयों को एकत्र कर उनसे कहा—

**द्वादशेमानि वर्षाणि राज्यविप्रोषिता वयम्।**
**त्रयोदशोऽयं सम्प्राप्तः कृच्छ्रात् परमदुर्वसः ॥५॥**

"अपने राज्य से प्रवासित होकर वन-वास करते हुए हमें आज बारह वर्ष बीत गये। यह तेरहवाँ वर्ष आरम्भ हुआ है। इसमें कठिनाइयों का सामना करते हुए अत्यन्त गुप्त रूप में रहना होगा।

**स साधु कौन्तेय इतो वासमर्जुन रोचय।**
**संवत्सरमिमं यत्र वसेमाविदिताः परैः ॥६॥**

"कुन्तीनन्दन अर्जुन! तुम अपनी रुचि के अनुसार कोई उत्तम स्थान चुनो, जहाँ जाकर हम एक वर्ष तक इस प्रकार रह सकें कि शत्रुओं को हमारा पता न लगे।"

अर्जुन उवाच

**सन्ति रम्या जनपदा बह्वन्नाः परितः कुरून्।**
**पाञ्चालश्चेदिमत्स्याश्च सौराष्ट्रावन्तयस्तथा ॥७॥**

**अर्जुन ने कहा**—कुरुदेश के चारों ओर बहुत-से सुरम्य जनपद हैं, जहाँ बहुत अन्न होता है। उनके नाम हैं—पाञ्चाल, चेदि, मत्स्य, सौराष्ट्र और अवन्ती।

**एतेषां कतमो राजन् निवासस्तव रोचते।**
**यत्र वत्स्यामहे राजन् संवत्सरमिमं वयम् ॥८॥**

हे राजन्! इनमें से कौन-सा राष्ट्र आपको निवास करने के लिए उत्तम रहेगा, जिसमें हम सब इस वर्ष निष्कण्टक निवास कर सकें।

युधिष्ठिर उवाच

**मत्स्यो विराटो बलवानभिरक्तोऽथ पाण्डवान्।**
**धर्मशीलो वदान्यश्च वृद्धश्च सततं प्रियः ॥९॥**

**युधिष्ठिर बोले**—[तुम्हारे कहे देशों में] मत्स्य देश के राजा विराट बहुत बलवान् हैं। पाण्डवों के प्रति उनका अनुराग भी है। वे स्वभावतः धर्मात्मा, वृद्ध, उदार तथा हमें सदैव प्रिय हैं।

**विराटनगरे तात संवत्सरमिमं वयम् ।**
**कुर्वन्तस्तस्य कर्माणि विहरिष्याम भारत ।।१०।।**

तात ! भरतकुलभूषण ! इस तेरहवें वर्ष में हम लोग राजा विराट के नगर में उनका कार्य-साधन करते हुए विचरण करें ।

**यानि यानि च कर्माणि तस्य वक्ष्यामहे वयम् ।**
**आसाद्य मत्स्यं तत् कर्म प्रब्रूत कुरुनन्दनाः ।।११।।**

किन्तु कुरुनन्दनो ! तुम लोग यह तो बताओ कि हम मत्स्यराज के पास पहुँचकर किन-किन कार्यों का भार सँभाल सकेंगे ?

अर्जुन उवाच

**मृदुर्वदान्यो ह्रीमांश्च धार्मिकः सत्यविक्रमः ।**
**राजँस्त्वमापदाऽऽकृष्टः किं करिष्यसि पाण्डव ।।१२।।**

**अर्जुन ने पूछा**—हे राजन् ! आपका स्वभाव कोमल है । आप उदार, लज्जाशील, धर्मपरायण और सत्य-पराक्रमी हैं, तथापि विपत्ति में पड़ गये हैं । पाण्डुनन्दन ! आप वहाँ क्या करेंगे ?

युधिष्ठिर उवाच

**सभास्तारो भविष्यामि तस्य राज्ञो महात्मनः ।**
**कङ्को नाम द्विजो भूत्वा मताक्षः प्रियदेवनः ।।१३।।**

**युधिष्ठिर बोले**—मैं जुआ खेलना जानता हूँ और यह खेल मुझे प्रिय भी है, अतः मैं 'कङ्क' नामक ब्राह्मण बनकर महामना राजा विराट की राजसभा का एक सदस्य हो जाऊँगा ।

**विराटराजं रमयन् सामात्यं सहबान्धवम् ।**
**न च मां वेत्स्यते कश्चित् तोषयिष्ये च तं नृपम् ।।१४।।**

मैं राजा विराट को उनके मन्त्रियों तथा बन्धु-बान्धवोंसहित पासों के खेल से प्रसन्न करता रहूँगा । इस रूप में मुझे कोई नहीं पहचान सकेगा और मैं मत्स्य-नरेश को सन्तुष्ट रखूँगा ।

**आसं युधिष्ठिरस्याहं पुरा प्राणसमः सखा ।**
**इति वक्ष्यामि राजानं यदि मां सोऽनुयोक्ष्यते ।।१५।।**

यदि राजा मुझसे पूछेंगे कि आप कौन हैं, तो मैं उन्हें बताऊँगा कि मैं पहले महाराज युधिष्ठिर का प्राणों के समान प्रिय सखा था ।

वैशम्पायन उवाच

**एवं निर्दिश्य चात्मानं भीमसेनमुवाच ह ।**
**वृकोदर विराटे त्वं रंस्यसे केन हेतुना ।।१६।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! इस प्रकार अज्ञातवास में अपने कार्य का निर्देश कर उन्होंने भीम से पूछा—"वृकोदर ! विराट के यहाँ तुम कौन-सा कार्य करके प्रसन्नतापूर्वक रह सकोगे ?"

भीमसेन उवाच

**पौरोगवो ब्रुवाणोऽहं बल्लवो नाम भारत ।**
**उपस्थास्यामि राजानं विराटमिति मे मतिः ।।१७।।**

**भीमसेन ने कहा**—हे भरतकुल-तिलक ! मैं 'पौरोगव'=पाकशाला (रसोईघर) का अध्यक्ष बनकर और 'बल्लव' नाम से अपना परिचय देकर राजा विराट के दरबार में उपस्थित होऊँगा, ऐसा मेरा विचार है ।

**सूपानस्य करिष्यामि कुशलोऽस्मि महानसे ।**
**कृतपूर्वाणि यान्यस्याभिभविष्यामि तान्यपि ।।१८।।**

मैं भोजन बनाने में चतुर हूँ । मैं राजा के लिए सूप (दाल-कढ़ी) आदि तैयार करूँगा । महाराज के लिए पहले जो-जो व्यञ्जन बनाये गये होंगे, स्वनिर्मित व्यञ्जनों के द्वारा मैं उन्हें भी तुच्छ सिद्ध कर दूँगा ।

**द्विपा वा बलिनो राजन् वृषभा वा महाबलाः ।**
**विनिग्राह्या यदि मया निग्रहीष्यामि तानपि ।।१९।।**

हे राजन् ! बलवान् हाथी अथवा महाबली साँड भी यदि वश में करने के लिए मुझे सौंपे जाएँगे, तो मैं उन्हें भी बाँधकर अपने वश में कर लूंगा ।

**ये च केचिन्नियोत्स्यन्ति समाजेषु नियोधकाः ।**
**तानहं हि नियोत्स्यामि रतिं तस्य विवर्धयन् ।।२०।।**

तथा जो कोई भी मल्लयुद्ध करनेवाले पहलवान जन-समाज में दंगल करना चाहेंगे, राजा का प्रेम बढ़ाने के लिए मैं उनसे भी भिड़ जाऊंगा ।

**आरालिको गोविकर्ता सूपकर्ता नियोधकः ।**
**आसं युधिष्ठिरस्याहमिति वक्ष्यामि पृच्छतः ।।२१।।**

महाराज के पूछने पर मैं बताऊँगा कि मैं राजा युधिष्ठिर के यहाँ आरालिक=मदमस्त हाथियों को वश में करनेवाला गज-शिक्षक, गोविकर्ता=महाबली साँड़ों को पछाड़कर उन्हें नाथनेवाला, सूपकर्ता तथा नियोधक=दंगली पहलवान रहा हूँ ।

युधिष्ठिर उवाच

**मृगाणामिव शार्दूलो गरुडः पततामिव ।**
**वरः संनह्यमानानां सोऽर्जुनः किं करिष्यति ॥२२॥**

**युधिष्ठिर ने पूछा**—जैसे मृगों में सिंह तथा पक्षियों में गरुड़ श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार कवचधारी वीरों में जिनका स्थान सबसे ऊँचा है, वह अर्जुन विराटनगर में जाकर क्या करेंगे ?

अर्जुन उवाच

**प्रतिज्ञां षण्ढकोऽस्मीति करिष्यामि महीपते ।**
**कर्णयोः प्रतिमुच्याहं कुण्डले ज्वलनप्रभे ॥२३॥**
**पिनद्धकम्बुः पाणिभ्यां तृतीयां प्रकृतिं गतः ।**
**वेणीकृतशिरा राजन् नाम्ना चैव बृहन्नला ॥२४॥**

**अर्जुन बोले**—महाराज ! मैं विराट की सभा में दृढ़तापूर्वक यह कहूँगा कि मैं नपुंसक हूँ । मैं दोनों कानों में अग्नि के समान कान्तिमान कुण्डल और हाथों में शंख की चूड़ियाँ धारण कर लूंगा । इस प्रकार नपुंसकभाव को अपनाकर मैं सिर पर चोटी गूंथ लूंगा और अपना नाम 'बृहन्नला' बताऊँगा ।

**पठन्नाख्यायिकारश्चैव स्त्रीभावेन पुनः पुनः ।**
**रमयिष्ये महीपालमन्याँश्चान्तःपुरे जनान् ॥२५॥**

स्त्री-भाव से अपने रूप को छिपाकर और बारम्बार पूर्ववर्ती राजाओं के चरित्रों का गान करके मैं महाराज विराट तथा अन्तःपुर की अन्यान्य स्त्रियों का मनोरंजन करूँगा ।

**गीतं नृत्यं विचित्रं च वादित्रं विविधं तथा ।**
**शिक्षयिष्याम्यहं राजन् विराटस्य पुरस्त्रियः ॥२६॥**

राजन् ! मैं विराटनगर की स्त्रियों को गीत गाने, विचित्र प्रकार से नृत्य करने तथा नाना प्रकार के वाद्य=बाजे बजाने की शिक्षा प्रदान करूँगा ।

**युधिष्ठिरस्य गेहे वै द्रौपद्याः परिचारिका ।**
**उषितास्मीति वक्ष्यामि पृष्टो राज्ञा च पाण्डव ॥२७॥**

पाण्डुनन्दन ! यदि राजा विराट ने मेरा परिचय पूछा तो मैं कहूँगा कि पहले मैं महाराज युधिष्ठिर के घर महारानी द्रौपदी की परिरिचाका रह चुकी हूँ ।"

युधिष्ठिर उवाच

**किं त्वं नकुल कुर्वाणस्तत्र तात चरिष्यसि ।**
**सुकुमारश्च शूरश्च दर्शनीयः सुखोचितः ॥२८॥**

**युधिष्ठिर ने पूछा**—नकुल ! तुम राजा विराट के राज्य में कौन-सा कार्य करते हुए निवास करोगे ? तात ! तुम शूरवीर होने के साथ ही अति सुकुमार, दर्शनीय और सुख भोगने के योग्य हो ।

नकुल उवाच

**अश्वबन्धो भविष्यामि विराटनृपतेरहम् ।**
**सर्वथा ज्ञानसम्पन्नः कुशलः परिरक्षणे ॥२९॥**

**नकुल ने कहा**—हे राजन् ! मैं राजा विराट के यहाँ अश्वबन्ध=घोड़ों को वश में रखनेवाला सेवक बनकर रहूँगा । मैं अश्व-विज्ञान में निपुण और घोड़ों की रक्षा के कार्य में कुशल हूँ ।

**ग्रन्थिको नाम नाम्नाहं कर्मैतत् सुप्रियं मम ।**
**कुशलोऽस्म्यश्वशिक्षायां तथैवाश्वचिकित्सने ॥३०॥**

मैं राजसभा में 'ग्रन्थिक' नाम से अपना परिचय दूंगा । घोड़ों की देखभाल का काम मुझे अत्यन्त प्रिय है । मैं उन्हें अनेक प्रकार की चालें सिखाने और उनकी चिकित्सा करने में भी निपुण हूँ ।

**ये मामामन्त्रयिष्यन्ति प्रवक्ष्यामि च तानहम् ।**
**पाण्डवेन पुरा तात अश्वेष्वधिकृतः पुरा ॥३१॥**

विराटनगर में जो लोग मेरा परिचय पूछेंगे, मैं उन्हें कहूँगा—"तात ! पहले राजा युधिष्ठिर ने मुझे अश्वों का अध्यक्ष बना रखा था ।"

युधिष्ठिर उवाच

**सहदेव कथं तस्य समीपे विहरिष्यसि ।**
**किं वा त्वं कर्म कुर्वाणः प्रच्छन्नो विचरिष्यसि ॥३२॥**

**युधिष्ठिर ने पूछा**—भैया सहदेव ! तुम राजा विराट के समीप कैसे जाओगे और उनके यहाँ क्या काम करते हुए गुप्तरूप से निवास करोगे ?

सहदेव उवाच

**गोसंख्याता भविष्यामि विराटस्य महीपतेः ।**
**प्रतिषेद्धा च दोग्धा च संख्याने कुशलो गवाम् ॥३३॥**

**सहदेव ने कहा**—"महाराज ! मैं राजा विराट के यहाँ गौओं की गिनती=जाँच-पड़ताल करनेवाला गोशालाध्यक्ष होकर रहूँगा । मैं गौओं को नियन्त्रण में रखने और उन्हें दुहने का काम भली प्रकार जानता हूँ । मैं उन्हें गिनने और उनकी परख करने में भी कुशल हूँ ।

**तन्तिपाल इति ख्यातो नाम्नाहं विदितस्त्वथ ।**
**निपुणं विचरिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥३४॥**

मैं वहाँ 'तन्तिपाल' नाम से प्रसिद्ध होऊँगा। इसी नाम से सब लोग मुझे जानेंगे। मैं अति चतुराई से अपने को छिपाये रखकर वहाँ विचरूँगा, अतः मेरे लिए आप मानसिक चिन्ता दूर कर दें।

युधिष्ठिर उवाच

**केन स्म द्रौपदी कृष्णा कर्मणा विचरिष्यति ।**
**न हि किञ्चिद् विजानाति कर्म कर्तुं यथा स्त्रियः ॥३५**

**युधिष्ठिरजी बोले**—द्रुपदकुमारी कृष्णा अन्य स्त्रियों की भाँति कोई काम-काज भी नहीं जानती फिर यह वहाँ किस कर्म का आश्रय लेकर निवास करेगी?

**सुकुमारी च बाला च राजपुत्री यशस्विनी ।**
**पतिव्रता महाभागा कथं नु विचरिष्यति ॥३६॥**

इसका शरीर सुकोमल है। नव युवावस्था है। यह यशस्विनी राजकुमारी परम सौभाग्यवती और पतिव्रता है। यह विराटनगर में किस प्रकार रहेगी?

द्रौपद्युवाच

**सैरंध्र्यो रक्षिता लोके भुजिष्याः सन्ति भारत ।**
**साहं ब्रुवाणा सैरन्ध्री कुशला केशकर्मणि ॥३७**
**युधिष्ठिरस्य गेहे वै द्रौपद्याः परिचारिका ।**
**उषितास्मीति वक्ष्यामि पृष्टा राज्ञा च भारत ॥३८**

**द्रौपदी ने कहा**—हे भारत! जगत् में बहुत-सी ऐसी स्त्रियाँ हैं जिनका दूसरों के घरों में पालन-पोषण होता है। वे शिल्प-कर्मों द्वारा जीवन-निर्वाह करती हैं। उन्हें 'सैरन्ध्री' कहते हैं। मैं 'सैरन्ध्री' कहकर अपना परिचय दूँगी। मैं बालों के सँवारने और वेणी-रचना आदि कार्यों में अति निपुण हूँ। यदि राजा मुझसे पूछेंगे तो मैं बताऊँगी कि मैं महाराज युधिष्ठिर के महल में महारानी द्रौपदी की परिचारिका बनकर रही हूँ।

**इति महाभारते विराटपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥१॥**

# द्वितीयोऽध्यायः

## धौम्य का पाण्डवों को राजा के यहाँ रहने का ढँग बताना और सबका अपने-अपने अभीष्ट स्थानों को गमन

वैशम्पायन उवाच

**एवं तेऽन्योन्यमामन्त्र्य कर्माण्युक्त्वा पृथक् पृथक् ।**
**धौम्यमामन्त्रयामासुः स च तान् मन्त्रमब्रवीत् ॥१।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! इस प्रकार आपस में एक-दूसरे की सलाह लेकर और अपने पृथक्-पृथक् कर्म बताकर पाण्डवों ने पुरोहित धौम्य की भी सम्मति ली। तब पुरोहित धौम्य ने उन्हें इस प्रकार परामर्श दिया—

धौम्य उवाच

**विदितं वो यथा सर्वं लोकवृत्तमिदं तव ।**
**विदिते चापि वक्तव्यं सुहृद्भिरनुरागतः ॥२॥**

**धौम्य बोले**—पाण्डवो! लोक-व्यवहार की सभी बातें आप लोगों को विदित हैं, फिर भी हितैषी सुहृदों का कर्तव्य है कि वे स्नेह-वश हित की बातें बताएँ।

**अतोऽहमपि वक्ष्यामि हेतुमत्र निबोधत ।**
**हन्तेमां राजवसतिं राजपुत्रा ब्रवीम्यहम् ॥३॥**
**यथा राजकुलं प्राप्य सर्वान् दोषाँस्तरिष्यथ ।**
**दुर्वसं चैव कौरव्य जानता राजवेश्मनि ॥४॥**

मैं जो युक्तियुक्त बातें बताऊँगा, उन्हें ध्यान देकर सुनो! राजपुत्रो! मैं यह बता रहा हूँ कि राजा के घर में रहकर कैसे बर्ताव करना चाहिए। उसके अनुसार राजकुल में रहते हुए भी तुम लोग वहाँ के सब दोषों से पार हो जाओगे। कुरुनन्दन! ज्ञानी पुरुष के लिए भी राजमहल में निवास करना अत्यन्त कठिन है।

**दृष्टद्वारो लभेद् द्रष्टुं राजस्वेषु न विश्वसेत् ।**
**तदेवासनमन्विच्छेद् यत्र नाभिपतेत् परः ॥५॥**

राजा से मिलना हो तो पहले द्वारपाल से मिलकर राजा को सूचना देनी चाहिए और मिलने

के लिए उनकी आज्ञा ले लेनी चाहिए। इन राजाओं पर पूर्ण विश्वास कभी न करे। अपने लिए वही आसन पसन्द करे जिसपर दूसरा कोई बैठनेवाला न हो।

**यो न यानं न पर्यङ्कं न पीठं न गजं रथम्।**
**आरोहेत् सम्मतोऽस्मीति स राजवसतिं वसेत् ॥६॥**

'मैं राजा का प्रीति-पात्र हूँ'—ऐसा मानकर भी जो राजा की सवारी, पलंग, पादुका, हाथी एवं रथ आदि पर नहीं चढ़ता है, वही राजा के घर में कुशलपूर्वक रह सकता है।

**यत्र यत्रैनमासीनं शङ्केरन् दुष्टचारिणः।**
**न तत्रोपविशेद् यो वै स राजवसतिं वसेत् ॥७॥**

जिन-जिन स्थानों पर बैठने से दुराचारी मनुष्य सन्देह करते हों, उन-उन स्थानों पर जो कभी नहीं बैठता, वही राज-भवन में निवास कर सकता है।

**न चानुशिष्याद् राजानमपृच्छन्तं कदाचन।**
**तूष्णीं त्वेनमुपासीत काले समभिपूजयेत् ॥८॥**

बिना पूछे राजा को कभी कर्तव्य का उपदेश न दे। मौन-भाव से ही उसकी सेवा करे और उपयुक्त अवसर पर राजा की प्रशंसा भी करे।

**असूयन्ति हि राजानो जनाननृतवादिनः।**
**तथैव चावमन्यन्ते मन्त्रिणं वादिनं मृषा ॥९॥**

झूठ बोलनेवाले मनुष्यों के प्रति राजा लोग दोष-दृष्टि कर लेते हैं। इसी प्रकार वे मिथ्यावादी मन्त्री का भी अपमान कर डालते हैं।

**नैषां दारेषु कुर्वीत मैत्रीं प्राज्ञः कदाचन।**
**अन्तःपुरचरा ये च द्वेष्टि यानहिताश्च ये ॥१०॥**

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह राजा की स्त्रियों से मेल-जोल न करे। जो रनिवास में आते-जाते हों, राजा जिनसे द्वेष रखता हो तथा जो लोग राजा का अहित चाहनेवाले हों, उनसे भी मैत्री स्थापित न करे।

**विदिते चास्य कुर्वीत कार्याणि सुलघून्यपि।**
**एवं विचरतो राज्ञि न क्षतिर्जायते क्वचित् ॥११॥**

छोटे-से-छोटा कार्य भी राजा को जताकर ही करे। राजसभा में ऐसा आचरण करनेवाले मनुष्य को कभी हानि नहीं उठानी पड़ती।

**यद् यद् भर्तानुयुञ्जीत तत् तदेवानुवर्तयेत्।**
**प्रमादमवलेपं च कोपं च परिवर्जयेत् ॥१२॥**

राजा जिस-जिस कार्य के लिए आज्ञा दे, उसी का पालन करे। लापरवाही, अहंकार और क्रोध को सर्वथा त्याग दे।

**शूरोऽस्मीति न दृप्तः स्याद् बुद्धिमानिति वा पुनः।**
**प्रियमेवाचरन् राज्ञः प्रियो भवति भोगवान् ॥१३॥**

'मैं शूरवीर हूँ अथवा बड़ा बुद्धिमान् हूँ'—ऐसा घमण्ड न करे। जो सदा राजा को प्रिय लगनेवाले कार्य ही करता है, वही उसका प्रेम-पात्र तथा ऐश्वर्य-भोग से सम्पन्न होता है।

**न चोष्ठौ न भुजौ जानू न च वाक्यं समाक्षिपेत्।**
**सदा क्षुतं च वातं च ष्ठीवनं चाचरेच्छनैः ॥१४**

राजा के समक्ष अपने दोनों हाथ, ओठ और घुटनों को व्यर्थ न हिलाए, बकवास न करे। धीरे-से छींके और थूके तथा दूसरों को पता न लगे, इस प्रकार अधोवायु छोड़े।

**राजानं राजपुत्रं वा संवर्णयति यः सदा।**
**अमात्यः पण्डितो भूत्वा स चिरं तिष्ठति प्रियः ॥१५॥**

जो बुद्धिमान् सचिव सदा राजा अथवा राज-कुमार की प्रशंसा करता रहता है, वही राजा के यहाँ उसका प्रीति-पात्र होकर दीर्घ समय तक टिक सकता है।

**अम्लानो बलवाञ्छूरश्छायेवानुगतः सदा।**
**सत्यवादी मृदुर्दान्तः स राजवसतिं वसेत् ॥१६॥**

जो उत्साह-सम्पन्न, बुद्धि-बल से युक्त, शूरवीर, सत्यवादी, कोमल-स्वभाव और जितेन्द्रिय होकर सदा छाया की भाँति राजा का अनुसरण करता है, वही राज-दरबार में टिक सकता है।

**समवेषं न कुर्वीत नोच्चैः संनिहितो वसेत्।**
**न मन्त्रं बहुधा कुर्यादेवं राज्ञः प्रियो भवेत् ॥१७॥**

राजा के समान वेश-भूषा कभी धारण न करे। उसके अत्यन्त निकट न रहे। [अति निकटता से राजा शंकाशील होता है।] उसके सामने ऊँचे आसन पर न बैठे। अपने साथ हुई राजा की गुप्त मन्त्रणा को दूसरों पर प्रकट न करे। ऐसा करने से मनुष्य राजाओं का प्रिय होता है।

**न कर्मणि नियुक्तः सन् धनं किञ्चिदपि स्पृशेत् ।**
**प्राप्नोति हि हरन् द्रव्यं बन्धनं यदि वा वधम् ।।१८**

राजा ने यदि किसी काम पर नियुक्त किया है तो उसमें तनिक भी घूस न ले, क्योंकि घूस लेनेवाले को एक दिन बन्धन या वध का दण्ड भोगना पड़ता है।

**एवं संयम्य चित्तानि यत्नतः पाण्डुनन्दनाः ।**
**संवत्सरमिमं तात तथाशीला बुभूषत ।।१९।।**

तात युधिष्ठिर तथा पाण्डवो ! तुम इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक अपने मन को वश में रखकर पूर्वोक्त रीति से उत्तम-व्यवहार करते हुए इस तेरहवें वर्ष को व्यतीत करो और इसी रूप में रहकर ऐश्वर्य पाने की इच्छा करो।

युधिष्ठिर उवाच

**अनुशिष्टाः स्म भद्रं ते नैतद् वक्तास्ति कश्चन ।**
**कुन्तीमृते मातरं नो विदुरं वा महामतिम् ।।२०।।**

**युधिष्ठिर बोले**—हे ब्रह्मन् ! आपका कल्याण हो। आपने हमें अत्युत्तम शिक्षा दी। हमारी माता कुन्ती तथा महाबुद्धिमान् विदुर को छोड़कर दूसरा कोई हमें ऐसी शिक्षा नहीं दे सकता था।

**यदेवानन्तरं कार्यं तद् भवान् कर्तुमर्हति ।**
**तारणायास्य दुःखस्य प्रस्थानाय जयाय च ।।२१।।**

अब हमें इस दुःखसागर से पार होने, यहाँ से प्रस्थान करने और विजय पाने के लिए जो कर्तव्य आवश्यक हो, उसे आप पूर्ण करें।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तस्ततो राज्ञा धौम्योऽथ द्विजसत्तमः ।**
**अकरोद् विधिवत्सर्वं प्रस्थाने यद् विधीयते ।।२२।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! राजा युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर विप्रवर धौम्य ने यात्रा के समय जो आवश्यक शास्त्र-विहित कर्तव्य था, वह सब विधिपूर्वक सम्पन्न किया।

**तेषां समिध्य तानग्नीन् मन्त्रवच्च जुहाव सः ।**
**समृद्धिवृद्धिलाभाय पृथिवीविजयाय च ।।२३।।**

पाण्डवों की अग्निहोत्र-सम्बन्धी अग्नि को प्रज्वलित करके धौम्य ने उनकी समृद्धि, वृद्धि, राज्य-लाभ तथा पृथिवी पर विजय-प्राप्ति के लिए वेद-मन्त्रों द्वारा होम किया।

**अग्नीन् प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाँश्च तपोधनान् ।**
**याज्ञसेनीं पुरस्कृत्य षडेवाथ प्रवव्रजुः ।।२४।।**

तत्पश्चात् पाण्डवों ने अग्नि तथा तपस्वी ब्राह्मणों की परिक्रमा करके द्रौपदी को आगे रखकर वहाँ से प्रस्थान किया। कुल छह व्यक्ति ही आसन छोड़कर एक साथ चले थे।

**गतेषु तेषु वीरेषु धौम्योऽथ जपतां वरः ।**
**अग्निहोत्राण्युपादाय पाञ्चालानभ्यगच्छत ।।२५।।**

वीर पाण्डवों के चले जाने पर जप-यज्ञ करनेवालों में श्रेष्ठ धौम्यजी उस अग्निहोत्र-सम्बन्धी अग्नि को साथ लेकर पाञ्चाल देश में चले गये।

**इति महाभारते विराटपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।**

# तृतीयोऽध्यायः

**पाण्डवों का विराटनगर के समीप पहुँचकर अपने अस्त्र-शस्त्रों को श्मशान-स्थित एक शमीवृक्ष पर रखना और प्रत्येक का क्रमशः राज-सभा में प्रवेश करना**

वैशम्पायन उवाच

**ते वीरा बद्धनिस्त्रिंशास्तथा बद्धकलापिनः ।**
**बद्धगोधाङ्गुलित्राणाः कालिन्दीमभितो ययुः ।।१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! वीर पाण्डव तलवार बाँधे, पीठ पर तूणीर कसे, गोह-चर्म से निर्मित दस्ताने पहने (पैदल चलते-चलते) यमुना नदी के समीप जा पहुँचे।

**ततस्ते दक्षिणं तीरमन्वगच्छन् पदातयः ।**
**निवृत्तवनवासा हि स्वराष्ट्रं प्रेप्सवस्तदा ।।२।।**

तत्पश्चात् वे यमुना के दक्षिण किनारे पर पैदल ही चलने लगे। उस समय उनके मन में यह इच्छा जाग उठी थी कि अब हम वनवास के कष्ट से शीघ्र

मुक्त हो अपना राज्य प्राप्त कर लेंगे।

**ततो जनपदं प्राप्य कौन्तेयोऽर्जुनमब्रवीत्।**
**क्वायुधानि समासज्य प्रवेक्ष्यामः पुरं वयम् ॥३॥**

चलते-चलते विराट की राजधानी के समीप पहुँचकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—"भैया! हम अपने अस्त्र-शस्त्र कहाँ रखकर नगर में प्रवेश करें?

**सायुधाश्च प्रवेक्ष्यामो वयं तात पुरं यदि।**
**समुद्वेगं जनस्यास्य करिष्यामो न संशयः ॥४॥**

"तात! यदि हम अपने आयुधों के साथ नगर में प्रवेश करेंगे, तो निःसन्देह यहाँ के निवासियों को उद्वेग [भय] में डाल देंगे।"

अर्जुन उवाच

**इयं कूटे मनुष्येन्द्र गहना महती शमी।**
**भीमशाखा दुरारोहा श्मशानस्य समीपतः ॥५॥**

**अर्जुन ने कहा**—हे राजन्! श्मशान-भूमि के समीप एक टीले पर स्थित यह शमी का बहुत बड़ा सघन वृक्ष है। इसकी शाखाएँ बड़ी भयानक हैं, अतः इस पर चढ़ना कठिन है।

**न चापि विद्यते कश्चिन्मनुष्य इति मे मतिः।**
**योऽस्मान् निदधतो द्रष्टा भवेच्छस्त्राणि पाण्डव ॥६॥**

पाण्डुनन्दन! मेरा विश्वास है कि यहाँ कोई ऐसा मनुष्य भी नहीं है, जो हमें अपने अस्त्र-शस्त्रों को इसके मध्य रखते समय देख रहा हो।

**उत्पथे हि वने जाता मृगव्यालनिषेविते।**
**समाधायायुधं शम्यां गच्छामो नगरं प्रति ॥७॥**

यह वृक्ष मार्ग से बहुत दूर जंगल में है। इसके आस-पास हिंसक जीव और सर्प आदि रहते हैं, यहाँ किसी के आने की भी सम्भावना नहीं, अतः हम इसी शमी वृक्ष पर अपने अस्त्र-शस्त्र रखकर नगर में चलें।

वैशम्पायन उवाच

**अथान्वशासन्नकुलं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।**
**आरुह्योमां शमीं वीर धनूंष्येतानि निक्षिप ॥८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! अर्जुन की बात सुनकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने नकुल को आज्ञा दी—"वीर! तुम इस शमीवृक्ष पर चढ़कर ये धनुष आदि अस्त्र-शस्त्र रख दो।"

**तामुपारुह्य नकुलो धनूंषि निदधे स्वयम्।**
**यानि तस्यावकाशानि दिव्यरूपाण्यमन्यत ॥९॥**

तब नकुल ने उस वृक्ष पर चढ़कर उसके खोखलों में वे धनुष आदि आयुध स्वयं अपने हाथ से रखे। उसके जो खोखले थे, वे नकुल को दिव्यरूप जान पड़े।

**शरीरं च मृतस्यैकं समबध्नन्त पाण्डवाः।**
**विवर्जयिष्यन्ति नरा दूरादेव शमीमिमाम् ॥१०॥**

तत्पश्चात् पाण्डवों ने एक मृतक का शरीर [शव] लाकर उस वृक्ष की शाखा में बाँध दिया, जिससे लोग इस शमी वृक्ष को दूर से ही त्याग दें।

**जयो जयन्तो विजयो जयत्सेनो जयद्बलः।**
**इति गुह्यानि नामानि चक्रे तेषां युधिष्ठिरः ॥११॥**

तब युधिष्ठिर ने पाँचों भाइयों के क्रमशः जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल—ये गुप्त नाम रखे।

**ततो यथाप्रतिज्ञाभिः प्राविशन् नगरं महत्।**
**अज्ञातचर्यां वत्स्यन्तो राष्ट्रे वर्षं त्रयोदशम् ॥१२॥**

तत्पश्चात् उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तेरहवें वर्ष का अज्ञातवास पूर्ण करने के लिए मत्स्य राष्ट्र के उस विशाल नगर में प्रवेश किया।

**ततो विराटं प्रथमं युधिष्ठिरो**
**राजा सभायामुपविष्टमाव्रजत्।**
**वैदूर्यरूपान् प्रतिमुच्य काञ्चना-**
**नक्षान् स कक्षे परिगृह्य वाससा ॥१३॥**

तब वैदूर्य के समान हरी, स्वर्ण के समान पीली [तथा लाल और काली] चौसर की गोटियोंसहित पासों को कपड़े में बाँधकर बगल में दबाये हुए राजा युधिष्ठिर सबसे पहले राजा के दरबार में गये। उस समय राजा विराट सभा में बैठे थे।

**तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य पाण्डवं**
**विराटराडिन्दुमिवाभ्रसंवृतम्।**
**पप्रच्छ कोऽयं प्रथमं समेयिवान्**
**नृपोपमोऽयं समवेक्षते सभाम् ॥१४॥**

बादलों से ढके हुए चन्द्रमा की भाँति शोभायमान

पाण्डुनन्दन को आते देखकर विराट ने सभासदों से पूछा—"ये कौन हैं, जो पहले-पहले यहाँ पधारे हैं? ये तो किसी राजा की भाँति मेरी सभा का अवलोकन कर रहे हैं।

**न तु द्विजोऽयं भविता नरोत्तमः**
**पतिः पृथिव्या इति मे मनोगतम्।**
**न चास्य दासा न रथा न कुञ्जरा**
**समीपतो भ्राजति चायमिन्द्रवत् ॥१५॥**

"इनका वेश तो ब्राह्मण जैसा है, परन्तु ये ब्राह्मण नहीं हो सकते। ये नरश्रेष्ठ तो कहीं के राजा ही होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। इनके साथ दास, रथ और हाथी-घोड़े आदि कुछ भी नहीं हैं, फिर भी ये निकट से इन्द्र के समान देदीप्यमान हो रहे हैं!"

**वितर्कयन्तं तु नरर्षभस्तथा**
**युधिष्ठिरोऽभ्येत्य विराटमब्रवीत्।**
**सम्राड् विजानात्विह जीवनार्थिनं**
**विनष्टसर्वस्वमुपागतं द्विजम् ॥१६॥**

इस प्रकार तर्क-वितर्क में पड़े हुए राजा विराट के पास पहुँचकर नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने कहा—"महाराज! आपको विदित हो, मैं एक ब्राह्मण हूँ। मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया है, अतः मैं आपके यहाँ जीवन-निर्वाह के लिए आया हूँ।"

**तमब्रवीत् स्वागतमित्यनन्तरं**
**कस्यासि राज्ञो विषयादिहागतः।**
**गोत्रं च नामापि च शंस तत्त्वतः**
**किं चापि शिल्पं तव विद्यते कृतम् ॥१७॥**

युधिष्ठिर की बात सुनकर विराट ने कहा—"ब्रह्मन्! आपका स्वागत है!" फिर उन्होंने पूछा—"आप इस समय किस राजा के यहाँ से आये हैं? अपना गोत्र और नाम भी ठीक-ठीक बताइए। साथ ही यह भी बताइए कि आपने किस विद्या या कला में कुशलता प्राप्त की है?"

युधिष्ठिर उवाच

**युधिष्ठिरस्यासमहं पुरा सखा**
**वैयाघ्रपद्यः पुनरस्मि ब्राह्मणः।**
**अक्षान् प्रयोक्तुं कुशलोऽस्मि देविनां**
**कङ्केति नाम्नास्मि विराट विश्रुतः ॥१८॥**

**युधिष्ठिर बोले**—महाराज विराट! मैं वैयाघ्रपदगोत्र-उत्पन्न ब्राह्मण हूँ। मैं 'कङ्क' के नाम से प्रसिद्ध हूँ। मैं पहले राजा युधिष्ठिर के साथ रहता था। वे मुझे अपना मित्र मानते थे। मैं चौसर खेलनेवालों के बीच पासे फेंकने की कला में कुशल हूँ।

विराट उवाच

**समानयानो भवितासि मे सखा**
**प्रभूतवस्त्रो बहुपानभोजनः।**
**पश्येस्त्वमन्तश्च बहिश्च सर्वदा**
**कृतं च ते द्वारमपावृतं मया ॥१९॥**

**विराट ने कहा**—कङ्क! आज से आप मेरे मित्र हैं। आपको मेरे जैसी ही सवारी मिलेगी। वस्त्र और भोजन आदि का प्रबन्ध भी आपके लिए पर्याप्त मात्रा में रहेगा। बाहर और भीतर के राज्य की देख-भाल भी आप ही करें। मेरे आदेश से आपके लिए राजमहल का द्वार सदा खुला रहेगा।

वैशम्पायन उवाच

**अथापरो भीमबलः श्रिया ज्वल-**
**न्नुपाययौ सिंहविलासविक्रमः।**
**खजं च दर्वीं च करेण धारय-**
**न्नसिं च कालाङ्गमकोशमव्रणम् ॥२०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—तत्पश्चात् द्वितीय पाण्डव भयंकर बलशाली, अपने तेज से प्रकाशित भीमसेन सिंह की-सी मस्त चाल से चलते हुए राजा विराट के दरबार में आये। उन्होंने हाथ में मथानी, कलछी और शाक काटने के लिए एक काले रंग का तीखी धारवाला छुरा ले रखा था। वह छुरा न तो टूटा-फूटा था और न उसपर कोई आवरण ही था।

**ततो विराटं समुपेत्य पाण्डव-**
**स्त्वदीनरूपं वचनं महामनाः।**
**उवाच सूदोऽस्मि नरेन्द्र बल्लवो**
**भजस्व मां व्यञ्जनकारमुत्तमम् ॥२१॥**

महामना पाण्डुनन्दन भीम विराट के अत्यन्त समीप जाकर दीनता-रहित वाणी में बोले—"हे नरेन्द्र! मैं रसोइया हूँ। मेरा नाम बल्लव है। मैं बहुत उत्तम व्यञ्जन बनाना जानता हूँ। आप मुझे अपने यहाँ इस कार्य के लिए रख लीजिए!"

विराट उवाच

**न सूदतां बल्लव श्रद्दधामि ते**
**सहस्रनेत्रप्रतिमो विराजसे।**
**श्रिया च रूपेण च विक्रमेण च**
**प्रभाससे त्वं नृवरो नरेष्विव ॥२२॥**

**विराट ने कहा**—हे बल्लव ! तुम रसोइए हो, इस बात पर मुझे विश्वास नहीं होता। तुम तो इन्द्र के समान तेजस्वी दिखाई देते हो। अपने अद्भुत रूप, दिव्य शोभा और महान् पराक्रम से तुम मनुष्यों में कोई श्रेष्ठ पुरुष अथवा राजा प्रतीत होते हो।

भीम उवाच

**नरेन्द्र सूदः परिचारकोऽस्मि ते**
**जानामि सूपान् प्रथमं च केवलान्।**
**आस्वादिता ये नृपते पुराभवन्**
**युधिष्ठिरेणापि नृपेण सर्वशः ॥२३॥**

**भीमसेन बोले**—महाराज ! मैं भोजन बनानेवाला आपका सेवक हूँ। मैं नाना-प्रकार के व्यञ्जन बनाना जानता हूँ, जिनका बनाना केवल मुझे ही ज्ञात है। मेरे बनाये व्यञ्जन उत्तम-कोटि के होते हैं। राजन् ! पहले राजा युधिष्ठिर ने भी मेरे बनाये सब प्रकार के व्यञ्जनों का आस्वादन किया है।

**बलेन तुल्यश्च न विद्यते मया**
**नियुद्धशीलश्च सदैव पार्थिव।**
**गजैश्च सिंहैश्च समेयिवानहं**
**सदा करिष्यामि तवानघ प्रियम् ॥२४॥**

हे अनघ ! इसके सिवा शारीरिक बल में भी मेरा सामना करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। मैं सदा कुश्ती लड़नेवाला पहलवान हूँ, हाथियों और सिंहों से भी भिड़ जाता हूँ। हे नरेश ! मैं सदा आपको प्रिय लगनेवाले कार्य करूँगा।

विराट उवाच

**ददामि ते हन्त वरान् महानसे**
**तथा च कुर्याः कुशलं प्रभाषसे।**
**न चैव मन्ये तव कर्म यत् समं**
**समुद्रनेमिं पृथिवीं त्वमर्हसि ॥२५॥**

**विराट ने कहा**—बल्लव ! मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें अभीष्ट वर देता हूँ। तुम अपने को भोजन-कला में कुशल बताते हो तो मेरी पाकशाला में रहकर वही करो, परन्तु मैं इस कार्य को तुम्हारे योग्य नहीं समझता। तुम तो समुद्र से घिरी समस्त पृथिवी का शासन करने योग्य हो।

**तथा हि कामो भवतस्तथा कृतं**
**महानसे त्वं भव मे पुरस्कृतः।**
**नराश्च ये तत्र समाहिताः पुरा**
**भवाँश्च तेषामधिपो मया कृतः ॥२६॥**

तथापि जैसी तुम्हारी रुचि है, मैंने वैसा ही किया है। तुम मेरी पाकशाला में अग्रणी होकर रहो। जो लोग वहाँ पहले से नियुक्त हैं, मैंने तुम्हें उन सबका स्वामी बना दिया।

वैशम्पायन उवाच

**वासश्च परिधायैकं कृष्णा सुमलिनं महत्।**
**कृत्वा वेषं च सैरन्ध्र्यास्ततो व्यचरदार्तवत् ॥२७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—उधर द्रौपदी एक अत्यन्त मलिन वस्त्रधारण करके 'सैरन्ध्री' का वेश बनाये दीन-दुखियों की भाँति नगर में विचरने लगी।

**तां नराः परिधावन्तीं स्त्रियश्च समुपाद्रवन्।**
**अपृच्छँश्चैव तां दृष्ट्वा का त्वं किं च चिकीर्षसि ॥२८**

उसे इधर-उधर भटकती देख बहुत-सी स्त्रियाँ और पुरुष उसके पास दौड़े आये और उससे पूछने लगे—"तुम कौन हो और क्या चाहती हो ?"

**सा तानुवाच राजेन्द्र सैरन्ध्र्यहमिहागता।**
**कर्म चेच्छामि वै कर्तुं तस्य यो मां पुपुक्षति ॥२९॥**
**तस्या रूपेण वेषेण श्लक्ष्णया च तथा गिरा।**
**न श्रद्दधत तां दासीमन्नहेतोरुपस्थिताम् ॥३०॥**

हे राजेन्द्र ! उनके इस प्रकार पूछने पर द्रौपदी ने उनसे कहा—"मैं सैरन्ध्री हूँ। जो मुझे अपने यहाँ रखना चाहे, उसी के यहाँ सैरन्ध्री का काम करना चाहती हूँ और इसीलिए यहाँ आई हूँ।" उसके रूप, वेश और मधुर वाणी से किसी को यह विश्वास नहीं हुआ कि यह दासी है और अन्न-वस्त्र के लिए यहाँ उपस्थित हुई है।

**विराटस्य तु कैकेयी भार्या परमसम्मता।**
**आलोकयन्ती ददृशे प्रासादाद् द्रुपदात्मजाम् ॥३१॥**

इतने में ही नृप विराट की अत्यन्त प्यारी भार्या

केकय की राजकुमारी सुदेष्णा ने, जो अपने महल पर खड़ी हुई नगर की शोभा निहार रही थी, वहीं से द्रुपदकुमारी को देखा ।

**सा समीक्ष्य तथारूपामनाथामेकवाससाम् ।**
**समाहूयाब्रवीद् भद्रे का त्वं किं च चिकीर्षसि ॥३२॥**

उस दिव्यरूपवाली, एक वस्त्रधारिणी और अनाथा-सी दीखनेवाली तरुणी को उस अवस्था में देखकर रानी ने अपने पास बुलाकर पूछा—"भद्रे ! तुम कौन हो और क्या चाहती हो ?"

**सा तामुवाच राजेन्द्र सैरन्ध्र्यहमुपागता ।**
**कर्म चेच्छाम्यहं कर्तुं तस्य यो मां पुपुक्षति ॥३३॥**

हे राजेन्द्र ! तब द्रौपदी ने सुदेष्णा से कहा—"मैं सैरन्ध्री हूँ । जो मुझे अपने यहाँ रखना चाहे, उसके यहाँ रहकर सैरन्ध्री का कार्य करना चाहती हूँ तथा इसीलिए यहाँ आई हूँ ।"

सुदेष्णोवाच

**नैवंरूपा भवन्त्येवं यथा वदसि भामिनि ।**
**प्रेषयन्तीव वै दासीर्दासाँश्च विविधान् बहून् ॥३४॥**

**सुदेष्णा ने कहा**—हे भामिनि ! तुम जैसा कह रह रही हो उसपर विश्वास नहीं होता, क्योंकि तुम जैसी रूपवती स्त्रियाँ सैरन्ध्री (दासी) नहीं हुआ करतीं । तुम तो बहुत-से दास-दासियों को आज्ञा देनेवाली रानी जैसी जान पड़ती हो ।

**का त्वं ब्रूहि यथा भद्रे नासि दासी कथञ्चन ।**
**यक्षी वा यदि वा देवी गन्धर्वी यदि वाप्सराः ॥३५॥**
**देवकन्या भुजङ्गी वा नगरस्याथ देवता ।**
**विद्याधरी किन्नरी वा यदि वा रोहिणी स्वयम् ॥३६॥**

भद्रे ! तुम वास्तव में कौन हो ? सच बताओ । तुम दासी तो किसी प्रकार नहीं हो सकतीं । तुम यक्षिणी हो या देवी ? गन्धर्व-कन्या हो या अप्सरा ? देव-कन्या हो या नाग-कन्या ? अथवा तुम इस नगर की अधिष्ठात्री देवी तो नहीं हो ? तुम विद्याधरी, किन्नरी या साक्षात् चन्द्रदेव की पत्नी रोहिणी तो नहीं हो ?

द्रौपद्युवाच

**नास्मि देवी न गन्धर्वी नासुरी न च राक्षसी ।**
**सैरन्ध्री तु भुजिष्यास्मि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥३७॥**

**द्रौपदी बोली**—हे महारानी ! मैं न तो देवी हूँ, न गन्धर्वी, न असुर-पत्नी हूँ, न राक्षसी । मैं तो सेवा करनेवाली सैरन्ध्री हूँ—यह मैं आपसे सच-सच कह रही हूँ ।

**केशाञ्जानाम्यहं कर्तुं पिंषे साधु विलेपनम् ।**
**मल्लिकोत्पलपद्मानां चम्पकानां तथा शुभे ।**
**ग्रथयिष्ये विचित्राश्च स्रजः परमशोभनाः ॥३८॥**

मैं केशों का शृङ्गार करना जानती हूँ तथा उबटन या अङ्गराग भी बहुत अच्छा पीस लेती हूँ । शुभे ! मैं मल्लिका (चमेली) उत्पल, कमल और चम्पा आदि फूलों के अति सुन्दर एवं विचित्र हार भी गूँथ सकती हूँ ।

सुदेष्णोवाच

**मूर्ध्नि त्वां वासयेयं वै संशयो मे न विद्यते ।**
**न चेदिच्छति राजा त्वां गच्छेत्सर्वेण चेतसा ॥३९॥**

**सुदेष्णा ने कहा**—"हे सुन्दरि ! यदि राजा तुम्हें चाहने न लगें—सम्पूर्ण चित्त से तुमपर आसक्त न हो जाएँ—तो तुम्हें रखने में मुझे कोई आपत्ति न होगी । मैं तुम्हें अपने सिर-माथे पर धारण करूँगी ।

**स्त्रियो राजकुले याश्च याश्चेमा मम वेश्मनि ।**
**प्रसक्तास्त्वां निरीक्षन्ते पुमांसं कं न मोहयेः ॥४०॥**

इस राजकुल में तथा मेरे महल में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब एकटक तुम्हारी ओर निहार रही हैं । फिर ऐसा कौन पुरुष होगा जिसे तुम मोहित न कर सको ?

**वृक्षाँश्चावस्थितान् पश्य य इमे मम वेश्मनि ।**
**तेऽपि त्वां संनमन्तीव पुमांसं कं न मोहयेः ॥४१॥**

देखो ! मेरे भवन में ये जो वृक्ष खड़े हैं, वे भी तुम्हें देखने के लिए मानो झुके-से पड़ते हैं । फिर ऐसा कौन पुरुष होगा जिसे तुम मोहित न कर लो ?

**राजा विराटः सुश्रोणि दृष्ट्वा वपुरमानुषम् ।**
**विहाय मां वरारोहे गच्छेत्त्वां सर्वचेतसा ॥४२॥**

सुन्दर नितम्बोंवाली सुन्दरि ! तुम्हारे सम्पूर्ण अङ्ग सुन्दर हैं । राजा विराट तुम्हारा यह दिव्य रूप देखते ही मुझे छोड़कर सम्पूर्ण चित्त से तुम्हीं में आसक्त हो जाएँगे।

**यथा च कर्कटी गर्भमाधत्ते मृत्युमात्मनः ।**
**तथाविधमहं मन्ये वासं तव शुचिस्मिते ॥४३॥**

शुचिस्मिते [सुन्दर व पावन मुस्कानवाली] ! जैसे केकड़े की मादा अपनी मृत्यु के लिए ही गर्भ धारण करती है, उसी प्रकार तुम्हें इस घर में ठहराना मैं अपने लिए मरण के तुल्य मानती हूँ ।"

द्रौपद्युवाच

**नास्मि लभ्या विराटेन न चान्येन कदाचन ।**
**न चाप्यहं चालयितुं शक्या केनचिदङ्गने ॥४४॥**

**द्रौपदी ने कहा**—कल्याणि ! मुझे राजा विराट या दूसरा कोई पुरुष कभी नहीं पा सकता । न ही मुझे कोई भी सतीत्व से विचलित कर सकता है ।

**यो हि मां पुरुषो गृध्येद्यथान्याः प्राकृताः स्त्रियः ।**
**तामेव निवसेद् रात्रिं प्रविश्य च परां तनुम् ॥४५॥**

जो पुरुष मुझे अन्य साधारण स्त्रियों के समान समझकर बलपूर्वक प्राप्त करना चाहता है, उसका उसी रात में परलोकवास हो जाता है ।

सुदेष्णोवाच

**एवं त्वां वासयिष्यामि यथा त्वं नन्दिनीच्छसि ।**
**न च पादौ न चोच्छिष्टं स्प्रक्ष्यसि त्वं कथञ्चन ॥४६**

**सुदेष्णा बोली**—आनन्ददायिनि सुन्दरि ! यदि ऐसा है तो मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार तुम्हें अवश्य अपने घर में ठहराऊँगी । तुम्हें किसी प्रकार भी किसी के पैर या जूठन नहीं छूने पड़ेंगे ।

वैशम्पायन उवाच

**एवं कृष्णा विराटस्य भार्यया परिसान्त्विता ।**
**उवास नगरे तस्मिन् पतिधर्मवती सती ॥४७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—विराट की रानी ने जब इस प्रकार आश्वासन दिया, तब पतिव्रत-धर्म का पालन करनेवाली सती द्रौपदी उस नगर में रहने लगी ।

**सहदेवोऽपि गोपानां कृत्वा वेषमनुत्तमम् ।**
**भाषां चैषां समास्थाय विराटमुपयादथ ॥४८॥**

तत्पश्चात् सहदेव भी ग्वालों का-सा उत्तम वेष बनाकर उन्हीं की भाषा में बोलते हुए राजा विराट के यहाँ गये ।

**तमायान्तमभिप्रेक्ष्य भ्राजमानं नरर्षभम् ।**
**समुपस्थाय वै राजा पप्रच्छ कुरुनन्दनम् ॥४९॥**

दिव्य कान्ति से सुशोभित नरश्रेष्ठ सहदेव को राजसभा की ओर आते देखकर राजा विराट स्वयं उठकर उनके पास गये और कुरुकुल को आनन्द देनेवाले सहदेव से पूछने लगे—

**कस्य वा त्वं कुतो वा त्वं किं वा त्वं तु चिकीर्षसि ।**
**न हि मे दृष्टपूर्वस्त्वं तत्त्वं ब्रूहि नरर्षभ ॥५०॥**

"पुरुषप्रवर ! तुम किसके पुत्र हो, कहाँ से आये हो और क्या करना चाहते हो ? मैंने आज से पहले तुम्हें कभी नहीं देखा, अतः अपना ठीक-ठीक परिचय दो ।"

सहदेव उवाच

**पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो भ्राता युधिष्ठिरः ।**
**गोसंख्याता ह्यहं तस्य तन्तिपालेति मां विदुः ॥५१॥**

**सहदेव ने कहा**—हे राजन् ! मैं, पाँचों पाण्डवों में सबसे बड़े भाई युधिष्ठिर की गौओं का गणक एवं निरीक्षक था । मुझे लोग 'तन्तिपाल' के नाम से जानते हैं ।

**क्षिप्रं च गावो बहुला भवन्ति**
**न तासु रोगो भवतीह कश्चित् ।**
**तैस्तैरुपायैर्विदितं ममैत-**
**देतानि शिल्पानि मयि स्थितानि ॥५२**

किन-किन उपायों से गौओं की संख्या शीघ्र बढ़ जाती है तथा उनमें कोई रोग पैदा नहीं होता, यह सब मुझे ज्ञात है । महाराज ! ये ही कलाएँ मुझमें विद्यमान हैं ।

**वृषभाँश्चापि जानामि राजन् पूजितलक्षणान् ।**
**येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते ॥५३**

मैं उन उत्तम लक्षणोंवाले बैलों को भी जानता हूँ जिनके मूत्र को सूँघ लेने से ही वन्ध्या स्त्री भी गर्भ-धारण एवं सन्तान उत्पन्न करने योग्य हो जाती है ।

विराट उवाच

**शतं सहस्राणि समाहितानि च**
**सवर्णवर्णस्य विमिश्रितान् गुणैः ।**
**पशून् सपालान् भवते ददाम्यहं**
**त्वदाश्रया मे पशवो भवन्त्विह ॥५४॥**

**विराट ने कहा**—हे तन्तिपाल ! मेरे यहाँ एक लाख पशु हैं। उनमें कुछ तो एक ही रंग के हैं और कुछ मिश्रित रंग के। वे सब विभिन्न गुणों से युक्त हैं। मैं उन पशुओं और पशुपालों को आज से तुम्हारे हाथ में सौंपता हूँ। मेरे पशु अब तुम्हारे ही अधीन रहेंगे।

वैशम्पायन उवाच

**अथापरोऽदृश्यत रूपसम्पदा**
**स्त्रीणामलंकारधरो बृहत्पुमान्।**
**प्राकारवप्रे प्रतिमुच्य कुण्डले**
**दीर्घे च कम्बू परिहाटके शुभे ॥५५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—तत्पश्चात् नगर की चारदीवारी के पीछे मिट्टी के ऊँचे टीले के समीप रूप-सम्पदा से सुशोभित, ऊँचे डील-डौलवाला एक दूसरा पुरुष दिखाई दिया। उसने स्त्रियों के लिए उचित आभूषण धारण कर रखे थे। उसने कानों में बड़े-बड़े कुण्डल और हाथों में शंख की चूड़ियाँ पहनकर उनके ऊपर सोने के सुन्दर कंगन धारण कर रखे थे।

**बहूँश्च दीर्घान् प्रविकीर्य मूर्धजान्**
**महाभुजो वारणतुल्यविक्रमः।**
**गतेन भूमिं प्रतिकम्पयँस्तदा**
**विराटमासाद्य सभासमीपतः ॥५६॥**

अपने घने बड़े-बड़े केशों की लटों को फैलाये वह महाबाहु पुरुष उस समय हाथी के समान मस्तानी चाल से चलता और पग-पग पर मानो पृथिवी को कँपाता हुआ राजसभा के समीप राजा विराट के पास आकर खड़ा हुआ।

**तं प्रेक्ष्य राजोपगतं सभातले**
**सर्वानपृच्छच्च सभानुचारिणः।**
**न चैनमूचुर्विदितं तदा नराः**
**सविस्मयं वाक्यमिदं नृपोऽब्रवीत् ॥५७**

उसे सभा-भवन में आया हुआ देखकर राजा ने समस्त सभासदों से उसके सम्बन्ध में पूछा। राजा के पूछने पर उन मनुष्यों में से किसी ने भी उसे अपना परिचित नहीं बताया। तब राजा ने आश्चर्ययुक्त होकर यह बात कही—

**सत्त्वोपपन्नः पुरुषोऽमरोपमः**
**श्यामो युवा वारणयूथपोपमः।**
**नैवंविधाः क्लीबरूपा भवन्ति**
**कथञ्चनेति प्रतिभाति मे मनः ॥५८॥**

"तात ! तुम शक्ति और धैर्य से सम्पन्न देवोपम पुरुष हो। तुम्हारी अङ्ग-कान्ति श्याम है। तुम तरुण हो और हाथियों के यूथपति महान् गजराज के समान शोभा पा रहे हो। तुम्हारे जैसे रूपवाले किसी भी प्रकार नपुंसक नहीं हो सकते। मेरे मन को ऐसा ही प्रतीत होता है।"

अर्जुन उवाच

**गायामि नृत्याम्यथ वादयामि च**
**भद्रोऽस्मि नृत्ये कुशलोऽस्मि गायने।**
**त्वमुत्तरायै प्रदिशस्व मां स्वयं**
**भवामि देव्या नरदेव नर्तकः ॥५९॥**

**अर्जुन बोला**—नरदेव ! मैं गाता, नाचता और वाद्य बजाता हूँ। मैं नृत्यकला में कुशल और संगीत में निपुण हूँ। आप राजकुमारी उत्तरा को शिक्षा देने के लिए मुझे रख लें। मैं स्वयं राजकुमारी उत्तरा को नृत्य सिखाऊँगा।

**इदं तु रूपं मम येन किं तव**
**प्रकीर्तयित्वा भृशशोकवर्धनम्।**
**बृहन्नलां मां नरदेव विद्धि त्वं**
**सुतं सुतां वा पितृमातृवर्जिताम् ॥६०॥**

मेरा ऐसा रूप जिस कारण से हुआ है, उसे आपके समक्ष कहने से क्या लाभ ? वह अधिक शोक बढ़ानेवाली बात है। राजन् ! आप मुझे 'बृहन्नला' समझें और पिता-माता से रहित पुत्र या पुत्री मान लें।

विराट उवाच

**ददामि ते हन्त वरं बृहन्नले**
**सुतां च मे नर्तय याश्च तादृशीः।**
**इदं तु ते कर्म समं न मे मतं**
**समुद्रनेमिं पृथिवीं त्वमर्हसि ॥६१॥**

**विराट बोले**—बृहन्नले ! मैं तुम्हें अभीष्ट वर देता हूँ। तुम मेरी पुत्री को तथा उसके समान अवस्थावाली अन्य राजकुमारियों को नृत्य-कला

सिखाओ, परन्तु मुझे यह कार्य तुम्हारे योग्य नहीं जान पड़ता। तुम तो समुद्र से घिरी समस्त पृथिवी का शासन करने योग्य हो।

वैशम्पायन उवाच

**बृहन्नलां तामभिवीक्ष्य मत्स्यराट्**
**कलासु नृत्येषु तथैव वादिते।**
**सम्मंत्र्य राजा विविधैः स्वमन्त्रिभिः**
**परीक्ष्य चैनं प्रमदाभिराशु वै ॥६२॥**
**अपुंस्त्वमप्यस्य निशम्य च स्थिरं**
**ततः कुमारीपुरमुत्ससर्ज तम्।**
**स शिक्षयामास च गीतवादितं**
**सुतां विराटस्य धनञ्जयः प्रभुः ॥६३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! तत्पश्चात् मत्स्य-नरेश ने बृहन्नला की गीत, नृत्य और बाजे बजाने की कलाओं में परीक्षा करके अपने मन्त्रियों से उसे अन्तःपुर में रखने के विषय में विचार-विमर्श किया। फिर तरुणी स्त्रियों द्वारा उसके नपुंसकत्व की जाँच कराई। जब सब प्रकार से उसका नपुंसक होना प्रमाणित हो गया, तब यह सुन-समझकर उन्होंने बृहन्नला को कन्याओं के अन्तःपुर में जाने की आज्ञा दे दी। तब शक्तिशाली अर्जुन विराट-कन्या उत्तरा को गीत, वाद्य एवं नृत्य की शिक्षा देने लगे।

**अथापरोऽदृश्यत पाण्डवः प्रभु-**
**र्विराटराजं तरसा समेयिवान्।**
**तमापतन्तं ददृशे पृथग्जनो**
**विमुक्तमभ्रादिव सूर्यमण्डलम् ॥६४॥**

राजन्! तदनन्तर अन्य पाण्डुपुत्र शक्तिशाली नकुल बड़े वेग से चलते हुए राजा विराट के यहाँ आये। उन्हें आते समय साधारण लोगों ने देखा। उस समय वे मेघमाला की ओट से निकले हुए सूर्य-मण्डल के समान तेजस्वी जान पड़ते थे।

**स वै हयानैक्षत तांस्ततस्ततः**
**समीक्षमाणं स ददर्श मत्स्यराट्।**
**ततोऽब्रवीत्ताननुगान् नरेश्वरः**
**कुतोऽयमायाति नरोऽमरोपमः ॥६५॥**
**स्वयं हयान्वीक्षति मामकान् दृढं**
**ध्रुवं हयज्ञो भविता विचक्षणः।**
**प्रवेश्यतामेष समीपमाशु मे**
**विभाति वीरो हि यथामरस्तथा ॥६६॥**

आते ही उन्होंने इधर-उधर घूमकर घोड़ों को देखना आरम्भ किया। इस प्रकार अश्वों का निरीक्षण करते समय उन्हें मत्स्य-नरेश विराट ने देखा। तब उस नरेश ने वहाँ बैठे हुए अनुचरों से कहा—"पता तो लगाओ, यह देवोपम पुरुष कहाँ से आ रहे हैं? यह बिना कहे-सुने मेरे घोड़ों को बड़े ध्यान से देख रहा है, अतः यह निश्चय ही घोड़ों को पहचाननेवाला और अश्व-विद्या का विशेषज्ञ (विद्वान्) होगा। इसे शीघ्र मेरे पास ले आओ। यह वीर देवों की भाँति सुशोभित हो रहा है।"

**अभ्येत्य राजानममित्रहाब्रवी-**
**ज्जयोऽस्तु ते पार्थिव भद्रमस्तु वः।**
**हयेषु युक्तो नृप सम्मतः सदा**
**तवाश्वसूतो निपुणो भवाम्यहम् ॥६७॥**

तदनन्तर राजसेवकों के साथ राजा के समीप आकर शत्रुहन्ता नकुल ने कहा—"हे राजन्! आपकी जय हो, आपका कल्याण हो! मैं घोड़ों को शिक्षा देने में निपुण हूँ और अनेक राजाओं से सम्मानित हूँ। मैं सदा आपके घोड़ों का चतुर सारथि हो सकता हूँ।"

विराट उवाच

**ददामि यानानि धनं निवेशनं**
**ममाश्वसूतो भवितुं त्वमर्हसि।**
**कुतोऽसि कस्यासि कथं त्वमागतः**
**प्रब्रूहि शिल्पं तव विद्यते च यत् ॥६८॥**

**विराट ने कहा**—भद्र पुरुष! मैं तुम्हें सवारी, धन और रहने के लिए घर देता हूँ। तुम मेरे घोड़ों को शिक्षा देनेवाले सारथि हो सकते हो, परन्तु पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम कहाँ से आये हो, किसके पुत्र हो और यहाँ तुम्हारा आगमन किस लिए हुआ है? तुममें जो-जो कला-कौशल हों, वे भी बताओ।

नकुल उवाच

**पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो भ्राता युधिष्ठिरः।**
**तेन पुराऽहमश्वेषु नियुक्तः शत्रुकर्शन ॥६९॥**

**अश्वानां प्रकृतिं वेद्मि विनयं चापि सर्वशः ।**
**दुष्टानां प्रतिपत्तिं च कृत्स्नं चैव चिकित्सितम् ॥७०॥**

**नकुल बोले**—शत्रुदमन ! सुनिए, पाँचों पाण्डवों में जो बड़े भ्राता युधिष्ठिर हैं, उन्होंने पहले मुझे अपने घोड़ों की देख-रेख पर लगा रखा था । मैं घोड़ों की जाति पहचानता हूँ तथा उन्हें सब प्रकार की शिक्षा देने की कला भी जानता हूँ । दुष्ट घोड़ों की दुष्टता दूर करने के उपाय भी मुझे ज्ञात हैं और घोड़ों की चिकित्सा भी मैं पूर्णरूपेण जानता हूँ ।

**न कातरं स्यान्मम जातु वाहनं**
**न मेऽस्ति दुष्टा वडवा कुतो हयाः ।**
**जनस्तु मामाह स चापि पाण्डवो**
**युधिष्ठिरो ग्रन्थिकमेव नामतः ॥७१॥**

मेरा सिखाया हुआ घोड़ा कभी कायर नहीं हो सकता । मेरी सिखाई हुई घोड़ी में भी कोई ऐब नहीं आता, फिर घोड़े तो बिगड़ ही कैसे सकते हैं ? मुझे जन-साधारण तथा पाण्डुनन्दन महाराज युधिष्ठिर 'ग्रन्थिक' नाम से पुकारते थे ।

विराट उवाच

**यदस्ति किंचिन्मम वाजिवाहनं**
**तदस्तु सर्वं त्वदधीनमद्य वै ।**
**ये चापि केचिन्मम वाजियोजका-**
**स्त्वदाश्रयाः सारथयश्च सन्तु मे ॥७२॥**

**विराट ने कहा**—ग्रन्थिक ! मेरे पास जो भी घोड़े और अन्य वाहन हैं, वे सब आज से तुम्हारे अधीन हो जाएँगे । इसके अतिरिक्त जो कोई भी मेरे घोड़ों को जोतनेवाले सारथि हैं, वे सब भी तुम्हारे अधिकार में रहेंगे ।

वैशम्पायन उवाच

**तथा स गन्धर्ववरोपमो युवा**
**विराटराजेन मुदा प्रपूजितः ।**
**न चैनमन्येऽपि विदुः कथञ्चन**
**प्रियाभिरामं विचरन्तमन्तरा ॥७३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन् ! इस प्रकार प्रसन्न हुए राजा विराट के द्वारा सम्मानित हो, श्रेष्ठ गन्धर्व के समान शोभा पानेवाले युवावस्था-सम्पन्न नकुल वहाँ रहने लगे । उनका स्वरूप बड़ा ही प्रिय तथा नयनाभिराम था । वे नगर के भीतर विचरते रहते थे, तो भी उन्हें राजा और अन्य पुरुष किसी प्रकार न पहचान सके ।

**एवं हि मत्स्ये न्यवसन्त पाण्डवा**
**यथा प्रतिज्ञाभिरमोघदर्शनाः ।**
**अज्ञातचर्यां व्यचरन् समाहिताः**
**समुद्रनेमीपतयोऽतिदुःखिताः ॥७४॥**

अमोघ-दर्शन पाँचों पाण्डव इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मत्स्य देश में रहने और एकाग्रता-पूर्वक अज्ञातवास का समय बिताने लगे । वे सागर से घिरी हुई सम्पूर्ण पृथिवी के स्वामी होकर भी महान् कष्ट उठा रहे थे ।

**इति महाभारते विराटपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥३॥**

# चतुर्थोऽध्यायः

## भीमसेन द्वारा जीमूत मल्ल का वध

जनमेजय उवाच

**एवं ते मत्स्यनगरे प्रच्छन्नाः कुरुनन्दनाः ।**
**अत ऊर्ध्वं महावीर्याः किमकुर्वत वै द्विज ॥१॥**

**जनमेजय ने पूछा**—हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार मत्स्य-देश की राजधानी में गुप्तरूप से निवास करनेवाले महापराक्रमी वीर पाण्डुपुत्रों ने इसके पश्चात् क्या किया ?

वैशम्पायन उवाच

**एवं मत्स्यस्य नगरे प्रच्छन्नाः कुरुनन्दनाः ।**
**आराधयन्तो राजानं यदकुर्वत तच्छृणु ॥२॥**

**वैशम्पायनजी बोले**—हे राजन् ! इस प्रकार मत्स्यदेश की राजधानी में गुप्तरूप से रहनेवाले पाण्डवों ने राजा विराट की सेवा करते हुए जो-जो कार्य किये, उन्हें सुनो ।

**युधिष्ठिरः सभास्तारो मत्स्यानामभवत्प्रियः ।**
**स ह्यक्षहृदयज्ञस्तान् क्रीडयामास पाण्डवः ॥३॥**

महाराज युधिष्ठिर राजसभा के प्रमुख सदस्य और मत्स्यदेश की प्रजा के अत्यन्त प्रिय थे । वे पासों के मर्मज्ञ थे, अतः वे राजा आदि को जुआ खिलाया करते थे ।

**अथ मासे चतुर्थे तु ब्रह्मणः सुमहोत्सवः ।**
**आसीत् समृद्धो मत्स्येषु पुरुषाणां सुसम्मतः ॥४॥**
**तत्र मल्लाः समापेतुर्दिग्भ्यो राजन् सहस्रशः ।**
**समाजे ब्रह्मणो राजन् यथा पशुपतेरिव ॥५॥**

पाण्डवों के वहाँ रहते हुए चौथा मास आरम्भ होने पर मत्स्यदेश में ब्रह्माजी की पूजा का महान् उत्सव मनाया जाने लगा । इसमें बड़ा समारोह होता था । हे जनमेजय ! उस समय विराटनगर में चारों दिशाओं से सहस्रों कुश्ती लड़नेवाले मल्ल जुटने लगे । इस अवसर पर ब्रह्माजी और शिवजी की सभा के समान उस राजधानी में लोगों का जमघट होता था ।

**तेषामेको महानासीत् सर्वमल्लानथाह्वयत् ।**
**आवल्गमानं तं रङ्गे नोपतिष्ठति कश्चन ॥६॥**

उन मल्लों में एक बहुत बड़ा पहलवान था, जो दूसरे सब पहलवानों को अपने साथ लड़ने के लिए ललकारता था । जब वह अखाड़े में उतरकर उछलने लगा, तब कोई भी उसके समीप खड़ा न हो सका ।

**यदा सर्वे विमनसस्ते मल्ला हतचेतसः ।**
**अथ सूदेन तं मल्लं योधयामास मत्स्यराट् ॥७॥**

जब अन्य सभी मल्ल उदासीन होकर हिम्मत हार बैठे, तब मत्स्यनरेश ने अपने रसोइये से उस पहलवान को लड़ाने का निश्चय किया ।

**नोद्यमानस्तदा भीमो दुःखेनैवाकरोन्मतिम् ।**
**न हि शक्नोति विवृते प्रत्याख्यातुं नराधिपम् ॥८॥**

उस समय राजा द्वारा प्रेरित किये जाने पर भीम ने [पहचाने जाने के भय से] दुःखी होकर ही उससे लड़ने का विचार किया । वे राजा की आज्ञा को प्रकट रूप में टाल नहीं सकते थे ।

**ततः स पुरुषव्याघ्रः शार्दूलशिथिलश्चरन् ।**
**प्रविवेश महारङ्गं विराटमभिपूजयन् ॥९॥**

तत्पश्चात् पुरुषसिंह भीमसेन ने सिंह के समान धीमी चाल से चलते हुए राजा विराट का मान रखने के लिए उस विशाल रङ्गभूमि में प्रवेश किया ।

**बबन्ध कक्ष्यां कौन्तेयस्ततः संहर्षयञ्जनान् ।**
**जीमूतं वृत्रसंकाशं भीमो मल्लं समाह्वयत् ॥१०॥**

कुन्तीपुत्र भीम ने लोगों में हर्ष का संचार करते हुए लंगोट कसा । फिर वृत्रासुर के समान दिखाई देनेवाले उस जीमूत नामक मल्ल को युद्ध के लिए ललकारा ।

**तावुभौ सुमहोत्साहावुभौ भीमपराक्रमौ ।**
**मत्ताविव महाकायौ वारणौ षष्टिहायनौ ॥११॥**

वे दोनों बड़े उत्साह में भरे थे । दोनों ही प्रचण्ड पराक्रमी थे । ऐसा प्रतीत होता था, मानो साठ वर्ष के दो मतवाले एवं विशालकाय गजराज एक-दूसरे से भिड़ने को उद्यत हों ।

**ततस्तौ नरशार्दूलौ बाहुयुद्धं समीयतुः ।**
**वीरौ परमसंहृष्टावन्योन्यजयकाङ्क्षिणौ ॥१२॥**

अत्यन्त हर्ष में भरकर एक-दूसरे को जीत लेने की इच्छावाले वे दोनों नरश्रेष्ठ वीर बाहुयुद्ध करने लगे ।

**चकर्ष दोर्भ्यामुत्पात्य भीमो मल्लममित्रहा ।**
**निनदन्तमभिक्रोशन् शार्दूल इव वारणम् ॥१३॥**
**समुद्यम्य महाबाहुर्भ्रामयामास वीर्यवान् ।**
**ततो मल्लाश्च मत्स्याश्च विस्मयं चक्रिरे परम् ॥१४**

महापराक्रमी शत्रुहन्ता महाबाहु भीम ने गर्जना करते हुए जैसे सिंह हाथी पर झपटे, उसी प्रकार झपटकर जीमूत को दोनों हाथों से पकड़कर खींचा और ऊपर उठाकर उसे घुमाना आरम्भ किया । यह देख वहाँ आये हुए पहलवानों तथा मत्स्य देश की प्रजा को बड़ा आश्चर्य हुआ ।

**भ्रामयित्वा शतगुणं गतसत्त्वमचेतनम् ।**
**प्रत्यपिषन्महाबाहुर्मल्लं भुवि वृकोदरः ॥१५॥**

सौ बार घुमाने पर जब वह धैर्य, साहस और चेतना से भी हाथ धो बैठा, तब महाबाहु वृकोदर ने उसे पृथिवी पर गिराकर मसल डाला ।

**तस्मिन् विनिहते वीरे जीमूते लोकविश्रुते ।**
**विराटः परमं हर्षमगच्छद् बान्धवैः सह ॥१६॥**

उस लोक-प्रसिद्ध वीर जीमूत मल्ल के मारे जाने

पर राजा विराट को अपने बन्धु-बान्धवों के साथ अति प्रसन्नता हुई।

**प्रहर्षात् प्रददौ वित्तं बहुराजा महामनाः।**
**बल्लवाय महारङ्गे यथा वैश्रवणस्तथा ॥१७॥**

उस समय कुबेर के समान महामनस्वी राजा विराट ने अत्यन्त हर्ष में भरकर बल्लव को उस विशाल रङ्गभूमि में ही बहुत-सा धन दिया।

**एवं स सुबहून् मल्लान् पुरुषाँश्च महाबलान्।**
**विनिघ्नन् मत्स्यराजस्य प्रीतिमाहरदुत्तमाम् ॥१८॥**

इसी प्रकार बहुत से पहलवानों और महाबली पुरुषों को मारकर भीमसेन ने मत्स्यराज विराट का उत्तम प्रेम प्राप्त किया।

**यदास्य तुल्यः पुरुषो न कश्चित् तत्र विद्यते।**
**ततो व्याघ्रैश्च सिंहैश्च द्विरदैश्चाप्ययोधयत् ॥१९॥**

जब वहाँ उनकी जोड़ का कोई पहलवान नहीं रह गया, तब विराट ने भीम को व्याघ्रों, सिंहों और हाथियों से लड़ाया।

**पुनरन्तःपुरगतः स्त्रीणां मध्ये वृकोदरः।**
**योध्यते स्म विराटेन सिंहैर्मत्तैर्महाबलैः ॥२०॥**

कभी-कभी विराट की प्रेरणा से भीमसेन स्त्रियों के अन्तःपुर में जाकर उनके मनोरंजन के लिए महाबली और मतवाले सिंहों के साथ लड़ा करते थे।

**बीभत्सुरपि गीतेन स्वनृत्येन च पाण्डवः।**
**विराटं तोषयामास सर्वाश्चान्तःपुरस्त्रियः ॥२१॥**

पाण्डुनन्दन अर्जुन ने भी अपने गीत और नृत्य से राजा विराट और अन्तःपुर की सभी स्त्रियों को सन्तुष्ट कर लिया था।

**अश्वैर्विनीतैर्जवनैस्तत्र तत्र समागतैः।**
**तोषयामास राजानं नकुलो नृपसत्तमम् ॥२२॥**

नकुल ने जहाँ-तहाँ से आये हुए वेगवान् घोड़ों को सुशिक्षित करके नृपश्रेष्ठ विराट को प्रसन्न कर लिया।

**विनीतान् वृषभान् दृष्ट्वा सहदेवस्य चाभितः।**
**धनं ददौ बहुविधं विराटः पुरुषर्षभः ॥२३॥**

सहदेव के द्वारा शिक्षित एवं विनीत किये हुए बैलों को देखकर नरश्रेष्ठ विराट ने उन्हें पुरस्कार में बहुत-सा धन दिया।

**द्रौपदी प्रेक्ष्य तान्सर्वान्क्लिश्यमानान्महारथान्।**
**नातिप्रीतमना राजन् निःश्वासपरमाभवत् ॥२४॥**

राजन्! उन सब महारथियों को कष्ट उठाते देख द्रौपदी के मन में खेद होता था और वह लम्बी साँसें भरती रहती थी।

**एवं ते न्यवसँस्तत्र प्रच्छन्नाः पुरुषर्षभाः।**
**कर्माणि तस्य कुर्वाणा विराटनृपतेस्तदा ॥२५॥**

इस प्रकार वे पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डव उस समय राजा विराट के भिन्न-भिन्न कार्य सँभालते हुए वहाँ छिपकर रहते थे।

**इति महाभारते विराटपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥**

## पञ्चमोऽध्यायः

### कीचक का द्रौपदी पर आसक्त होकर प्रणय-प्रार्थना करना और द्रौपदी का उसे फटकारना

वैशम्पायन उवाच

**वसत्सु तत्र पार्थेषु मत्स्यस्य नगरे तदा।**
**महारथेषु छन्नेषु मासा दश समाययुः ॥१॥**
**याज्ञसेनी सुदेष्णां तु शुश्रूषन्ती विशाम्पते।**
**आवसत् परिचारार्हा सुदुःखं जनमेजय ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! कुन्ती के उन महारथी पुत्रों को मत्स्यराज के नगर में छिपकर रहते हुए धीरे-धीरे दस मास व्यतीत हो गये। हे राजन्! यज्ञसेन-कुमारी द्रौपदी, जो स्वयं स्वामिनी की भाँति सेवा के योग्य थी, रानी सुदेष्णा की सेवा करती हुई बड़े कष्ट से वहाँ रहती थी।

**तथा चरन्ती पाञ्चाली सुदेष्णाया निवेशने।**
**तां देवीं तोषयामास तथा चान्तःपुरस्त्रियः ॥३॥**

सुदेष्णा के महल में पूर्वोक्त प्रकार से सेवा करती हुई पाञ्चाली ने महारानी सुदेष्णा तथा अन्तःपुर की अन्य स्त्रियों को पूर्णरूप से प्रसन्न कर लिया।

**तस्मिन् वर्षे गतप्राये कीचकस्तु महाबलः ।**
**सेनापतिर्विराटस्य ददर्श द्रुपदात्मजाम् ।।४।।**

जब वह वर्ष समाप्त होने में कुछ ही समय शेष रह गया, उस समय की बात है। एक दिन राजा विराट के सेनापति महाबली कीचक ने द्रुपदकुमारी को देखा।

**तां दृष्ट्वा देवगर्भाभां चरन्तीं देवतामिव ।**
**कीचकः कामयामास कामबाणप्रपीडितः ।।५।।**

राजमहल में देवाङ्गनाओं की भाँति विचरती हुई, देवकन्या के समान कान्तिवाली द्रौपदी को देखकर कीचक कामबाण से अत्यन्त पीड़ित हो उसे चाहने लगा।

**स तु कामाग्निसंतप्तः सुदेष्णामभिगम्य वै ।**
**प्रहसन्निव सेनानीरिदं वचनमब्रवीत् ।।६।।**

कामवासना की आग में जलता हुआ सेनापति कीचक अपनी बहिन रानी सुदेष्णा के पास गया और हँसता हुआ-सा उससे इस प्रकार बोला—

**नेयं पुरा जातु मयेह दृष्टा**
**राज्ञो विराटस्य निवेशने शुभा ।**
**रूपेण चोन्मादयतीव मां भृशं**
**गन्धेन जाता मदिरेव भामिनी ।।७।।**

"सुदेष्णे ! यह सुन्दरी, जो अपने रूप से मुझे अत्यन्त उन्मत्त-सा किये देती है, पहले कभी राजा विराट के इस महल में मैंने नहीं देखी थी। यह भामिनी अपनी दिव्य गन्ध से मेरे लिए मदिरा-सी मादक सिद्ध हो रही है।

**का देवरूपा हृदयङ्गमा शुभे**
**ह्याचक्ष्व मे कस्य कुतोऽत्र शोभने ।**
**चित्तं हि निर्मथ्य करोति मां वशे**
**न चान्यदत्रौषधमस्ति मे मतम् ।।८।।**

"शुभे ! यह कौन है ? इसका रूप देवाङ्गनाओं के समान है। यह मेरे हृदय में बस गई है। शोभने ! मुझे बताओ, यह किसकी स्त्री है और कहाँ से आई है ? यह मेरे मन को मथकर मुझे वश में किये लेती है। मेरे इस रोग की ओषधि इसकी प्राप्ति के सिवा और कोई नहीं जान पड़ती।

**अहो तवेयं परिचारिका शुभा**
**प्रत्यग्ररूपा प्रतिभाति मामियम् ।**
**अयुक्तरूपं हि करोति कर्म ते**
**प्रशास्तु मां यच्च ममास्ति किञ्चन ।।६**

"अहो ! आश्चर्य है, यह सुन्दरी तुम्हारे यहाँ दासी का काम कर रही है ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है, इसका रूप नित्य-नवीन है। तुम्हारे यहाँ यह जो काम करती है, वह इसके योग्य कदापि नहीं है। मैं चाहता हूँ यह मेरी पत्नी बनकर मुझपर और मेरी सम्पत्ति पर एकछत्र शासन करे।

**प्रभूतनागाश्वरथं महाजनं**
**समृद्धियुक्तं बहुपानभोजनम् ।**
**मनोहरं काञ्चनचित्रभूषणं**
**गृहं महच्छोभयतामियं मम ।।१०।।**

"मेरे घर में बहुत-से हाथी, घोड़े और रथ हैं, सेवा करनेवाले बहुत-से परिजन हैं तथा उसमें प्रचुर सम्पत्ति भरी है। विविध प्रकार के भोजन और पेयों की उसमें अधिकता है। देखने में भी वह मनोहर है। सुवर्णमय चित्र उसकी शोभा बढ़ाते हैं। यह सुन्दरी मेरे उस विशाल भवन को सुशोभित करे।"

**ततः सुदेष्णामनुमन्त्र्य कीचक-**
**स्ततः समभ्येत्य नराधिपात्मजाम् ।**
**उवाच कृष्णामभिसान्त्वयँस्तदा**
**मृगेन्द्रकन्यामिव जम्बुको वने ।।११।।**

ऐसा कह और रानी सुदेष्णा की सम्मति ले कीचक राजकुमारी द्रौपदी के पास आकर उसे सान्त्वना देता हुआ ऐसे बोला, मानो वन में कोई शृगाल [स्यार] किसी सिंहिनी को फुसला रहा हो।

कीचक उवाच

**का त्वं कस्यासि कल्याणि कुतो वा त्वं वरानने ।**
**प्राप्ता विराटनगरे तत् त्वमाचक्ष्व शोभने ।।१२।।**

कीचक ने पूछा—हे कल्याणी ! तुम कौन हो और किसकी कन्या हो ? अथवा सुमुखि ! तुम इस विराटनगर में कहाँ से आई हो ? शोभने ! ये सब बातें मुझे सच-सच बताओ।

**रूपमग्र्यं तथा कान्तिः सौकुमार्यमनुत्तमम् ।**
**कान्त्या विभाति वक्त्रं ते शशाङ्क इव निर्मलम् ।।१३**

तुम्हारा यह श्रेष्ठ एवं सुन्दर रूप, दिव्य कान्ति और सुकुमारता संसार में सबसे उत्तम है। तुम्हारा निर्मल मुख अपनी छवि से निष्कलंक चन्द्रमा की भाँति शोभा पा रहा है।

**नेत्रे सुविपुले सुभ्रु पद्मपत्रनिभे शुभे।**
**वाक्यं ते चारुसर्वाङ्गि परपुष्टरुतोपमम् ॥१४॥**

सुन्दर भौंहोंवाली सर्वाङ्ग सुन्दरि! तुम्हारे ये उत्तम एवं विशाल नेत्र कमलपत्र के समान सुशोभित हैं। तुम्हारी वाणी क्या है, कोकिल की कूक है।

**एवंरूपा मया नारी काचिदन्या महीतले।**
**न दृष्टपूर्वा सुश्रोणि यादृशी त्वमनिन्दिते ॥१५॥**

सुश्रोणी! अनिन्दिते! जैसी तुम हो, ऐसे मनोहर रूपवाली कोई अन्य स्त्री आज से पहले मैंने इस पृथिवी पर कभी नहीं देखी थी।

**लक्ष्मीः पद्मालया का त्वमथ भूतिः सुमध्यमे।**
**ह्रीः श्रीः कीर्तिरथो कान्तिरासां का त्वं वरानने ॥१६**

सुमध्यमे! तुम कमलों में निवास करनेवाली लक्ष्मी हो अथवा साकार विभूति? सुमुखि! लज्जा, श्री, कीर्ति और कान्ति—इन देवियों में से तुम कौन हो?

**नार्हसीहासुखं वस्तुं सर्वाभरणभूषिता।**
**कामं प्रकामं सेवस्व मया सह विलासिनि ॥१७॥**

यहाँ अनेक प्रकार के कष्ट हैं, अतः तुम यहाँ निवास करने के योग्य नहीं हो। विलासिनि! तुम समस्त आभूषणों से विभूषित होकर मेरे साथ अतिशय काम-भोग का सेवन करो।

**त्यजामि दारान् मम ये पुरातना**
**भवन्तु दास्यस्तव चारुहासिनि।**
**अहं च ते सुन्दरि दासवत्स्थितः**
**सदा भविष्याम्यनुगो वरानने ॥१८॥**

चारुहासिनी! यदि तुम चाहो तो मैं अपनी पहली स्त्रियों को त्याग दूँगा अथवा वे सब तुम्हारी दासी बनकर रहेंगी। सुन्दरि! सुमुखि! मैं स्वयं भी दास की भाँति सदा तुम्हारे अधीन रहूँगा।

द्रौपद्युवाच

**अप्रार्थनीयामिह मां सूतपुत्राभिमन्यसे।**
**निहीनवर्णां सैरन्ध्रीं बीभत्सां केशकारिणीम् ॥१९॥**

**द्रौपदी ने कहा**—सूतपुत्र! तुम मुझे चाहते हो? छिः-छिः, मुझसे ऐसी याचना करना तुम्हें कदापि योग्य नहीं। एक तो मैं हीन-वर्ण की हूँ, दूसरे दासी हूँ, तीसरे बीभत्स वेशवाली हूँ, चौथे केश सँवारने का काम करनेवाली मैं एक तुच्छ सेविका हूँ।

**परदारास्मि भद्रं ते न युक्तं तव साम्प्रतम्।**
**दयिताः प्राणिनां दारा धर्मं समनुचिन्तय ॥२०॥**

तुम्हारा कल्याण हो! मैं दूसरे की पत्नी हूँ। मुझसे ऐसी बात करना अनुचित है। जगत् के सब प्राणियों के लिए अपनी ही स्त्री प्रिय होती है। तुम धर्म का विचार करो।

**परदारे न ते बुद्धिर्जातु कार्या कथञ्चन।**
**विवर्जनं ह्यकार्याणामेतत् सत्पुरुषव्रतम् ॥२१॥**

पराई स्त्री में तुम्हें कभी किसी प्रकार भी मन नहीं लगाना चाहिए। न करने योग्य अनुचित कर्मों का सर्वथा त्याग करना—यही श्रेष्ठ पुरुषों का व्रत है।

**मिथ्याभिगृध्नो हि नरः पापात्मा मोहमास्थितः।**
**अयशः प्राप्नुयाद् घोरं महद्वा प्राप्नुयाद् भयम् ॥२२॥**

मिथ्या [झूठे] विषयों में आसक्त होनेवाला पापात्मा पुरुष मोह में पड़कर भयंकर अपयश पाता है अथवा उसे बड़े भारी भय [मृत्यु] का सामना करना पड़ता है।

कीचक उवाच

**नार्हस्येवं वरारोहे प्रत्याख्यातुं वरानने।**
**मां मन्मथसमाविष्टं त्वत्कृते चारुहासिनि ॥२३॥**

**कीचक ने कहा**—वरारोहे! सुमुखी, तुम्हें इस प्रकार मेरी प्रणय-याचना नहीं ठुकरानी चाहिए। मनोहर मुस्कानवाली! मैं तुम्हारे लिए काम-वेदना से पीड़ित हूँ।

**प्रत्याख्याय च मां भीरु वशगं प्रियवादिनम्।**
**नूनं त्वमसितापाङ्गि पश्चात्तापं करिष्यसि ॥२४॥**

भीरु! मैं तुम्हारे वश में हूँ और प्रियवचन बोल रहा हूँ। कजरारे नयनोंवाली सैरन्ध्री! मुझे ठुकराकर तुम निश्चय ही पश्चात्ताप करोगी।

**अहं हि सुभ्रु राज्यस्य कृत्स्नस्यास्य सुमध्यमे।**
**प्रभुर्वासयिता चैव वीर्ये चाप्रतिमः क्षितौ ॥२५॥**

हे सुभ्रु ! सुमध्यमे ! मैं इस सम्पूर्ण राज्य का स्वामी और इसे बसानेवाला हूँ। बल और पराक्रम में इस पृथिवी पर मेरी समता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है।

**मया दत्तमिदं राज्यं स्वामिन्यसि शुभानने ।**
**भजस्व मां वरारोहे भुङ्क्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥२६॥**

शुभानने ! मैंने यह सम्पूर्ण राज्य तुम्हें समर्पित कर दिया। अब तुम्हीं इसकी स्वामिनी हो। वरारोहे ! मुझे अपना लो और मेरे साथ उत्तमोत्तम भोगों को भोगो।

सैरन्ध्री-उवाच

**मा सूतपुत्र मुह्यस्व माद्य त्यक्षस्व जीवितम् ।**
**जानीहि पञ्चभिर्घोरैर्नित्यं मामभिरक्षिताम् ॥२७॥**

**सैरन्ध्री बोली**—सूतपुत्र ! तू आज इस प्रकार मोह के फंदे में मत फँस। अपने प्राण मत गँवा। तुझे ज्ञात होना चाहिए कि पाँच भयंकर गन्धर्व सदा मेरी रक्षा करते हैं।

**न चाप्यहं त्वया लभ्या गन्धर्वाः रक्षका मम ।**
**ते त्वां निहन्युः कुपिताः साध्वलं मा व्यनीनशः ॥२८**

वे गन्धर्व मेरे रक्षक हैं। तू मुझे कदापि नहीं पा सकता। वे गन्धर्व कुपित होकर तुझे मार डालेंगे, अतः सँभल जा ! इस पाप-बुद्धि का त्याग कर दे ! अपना सर्वनाश न करा !

**त्वं कालरात्रीमिव कश्चिदातुरः**
**किं मां दृढं प्रार्थयसेऽद्य कीचक ।**
**किं मातुरङ्के शयितो यथा शिशु-**
**श्चन्द्रं जिघृक्षुरिव मन्यसे हि माम् ॥२९**

कीचक ! जैसे कोई मुमूर्षु रोगी कालरात्रि का आह्वान करे, उसी प्रकार मुझे प्राप्त करने के लिए तू क्यों आज दुराग्रहपूर्ण प्रार्थना कर रहा है ? अरे ! जैसे माता की गोद में सोया हुआ शिशु चन्द्रमा को ग्रहण करना चाहता है, क्या तू उसी प्रकार मुझे पाना चाहता है ?

**इति महाभारते विराटपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥**

# षष्ठोऽध्यायः

## कीचक द्वारा द्रौपदी का अपमान द्रौपदी द्वारा सुदेष्णा को सूचना

वैशम्पायन उवाच

**प्रत्याख्यातो राजपुत्र्या सुदेष्णां कीचकोऽब्रवीत् ।**
**अमर्यादेन कामेन घोरेणाभिपरिप्लुतः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! राजकुमारी द्रौपदी के द्वारा इस प्रकार ठुकराये जाने पर कीचक असीम एवं भयंकर काम से विवश होकर अपनी बहिन रानी सुदेष्णा से बोला—

**येनोपायेन सैरन्ध्री भजेन्मां गजगामिनी ।**
**तं सुदेष्णे परीप्सस्व प्राणान् मोहात् प्रहासिषम् ॥२॥**

"सुदेष्णे ! वह गजगामिनी सैरन्ध्री जिस उपाय से मुझे अङ्गीकार कर ले, वह उपाय खोजो, जिससे मुझे मोह-वश होकर प्राणों का त्याग न करना पड़े।"

**तस्य सा बहुशः श्रुत्वा वाचं विलपतस्तदा ।**
**विराटमहिषी देवी सुदेष्णा सूतमब्रवीत् ॥३॥**

जनमेजय ! इस प्रकार बारम्बार विलाप करते हुए कीचक की बात सुनकर उस समय राजा विराट की महारानी सुदेष्णा ने सूत से कहा—

**पर्वणि त्वं समुद्दिश्य सुरामन्नं च कारय ।**
**तत्रैनां प्रेषयिष्यामि सुरादानाय चान्तिकम् ॥४॥**

"हे कीचक ! तुम किसी पर्व या त्यौहार के दिन अपने घर में मदिरा तथा अन्न-भोजन की सामग्री तैयार कराओ, तब मैं इस सैरन्ध्री को वहाँ से सुरा लाने के बहाने तुम्हारे पास भेजूंगी—

**तत्र सम्प्रेषितामेनां विजने निरवग्रहे ।**
**सान्त्वयेथा यथाकामं सान्त्व्यमाना रमेद् यदि ॥५॥**

"वहाँ भेजी हुई इस सेविका को तुम एकान्त में जहाँ कोई विघ्न-बाधा न हो, अपनी इच्छा के अनुसार समझाना-बुझाना। सम्भव है, तुम्हारी सान्त्वना मिलने पर वह रमण के लिए तैयार हो जाए।"

**इत्युक्तः स विनिष्क्रम्य भगिन्या वचनात् तदा ।**
**सुरामाहारयामास राजार्हां सुपरिष्कृताम् ॥६॥**
**भक्ष्याँश्च विविधाकारान् बहूँश्चोच्चावचाँस्तदा ।**
**कारयामास कुशलैरन्नं पानं सुशोभनम् ॥७॥**

बहिन द्वारा इस प्रकार आश्वासन मिलने पर कीचक उस समय वहाँ से चला गया। घर जाकर उसने यथासमय चतुर रसोइयों द्वारा राजाओं के उपयोग में आने योग्य उत्तम एवं परिष्कृत मदिरा मँगवाई तथा भाँति-भाँति के अनेक विशिष्ट और साधारण भक्ष्य पदार्थ एवं परम उत्तम अन्न-पान तैयार कराये ।

**तस्मिन् कृते तदा देवी कीचकेनोपमन्त्रिता ।**
**सुदेष्णा प्रेषयामास सैरन्ध्रीं कीचकालयम् ॥८॥**

सब व्यवस्था होजाने पर कीचक ने अपनी बहिन रानी सुदेष्णा को भोजन के लिए आमन्त्रित किया। तब रानी ने सैरन्ध्री को अपने भाई कीचक के घर जाने को कहा ।

सुदेष्णोवाच

**उत्तिष्ठ गच्छ सैरन्ध्रि कीचकस्य निवेशनम् ।**
**पानमानय कल्याणि पिपासा मां प्रबाधते ॥९॥**

**सुदेष्णा बोली**—सैरन्ध्री ! उठो और कीचक के घर जाओ। कल्याणि ! मुझे प्यास व्याकुल कर रही है, अतः वहाँ से मेरे पीने योग्य रस ले आओ ।

सैरन्ध्री-उवाच

**न गच्छेयमहं तस्य राजपुत्रि निवेशनम् ।**
**त्वमेव राज्ञि जानासि यथा स निरपत्रपः ॥१०॥**

**सैरन्ध्री ने कहा**—राजकुमारी ! मैं उसके घर में नहीं जा सकती। हे महारानी ! आप तो जानती ही हैं कि वह कैसा निर्लज्ज है ।

**कीचकस्तु सुकेशान्ते मूढो मदनदर्पितः ।**
**सोऽवमंस्यति मां दृष्ट्वा न यास्ये तत्र शोभने ॥११॥**

कमनीय केशोंवाली सुन्दरि ! मूर्ख कीचक तो काम के मद से उन्मत्त हो रहा है। वह मुझे देखते ही अपमानित कर देगा, अतः मैं वहाँ नहीं जाऊँगी ।

**सन्ति बह्व्यस्तव प्रेष्या राजपुत्रि वशानुगाः ।**
**अन्यां प्रेषय भद्रं ते स हि मामवमंस्यते ॥१२॥**

राजपुत्री ! आपके अधीन तो और भी बहुत-सी दासियाँ हैं। आपका कल्याण हो। आप उन्हीं में से किसी [अन्य] को भेज दीजिए। वहाँ जाने पर कीचक मेरा अपमान करेगा ।

सुदेष्णोवाच

**नैव त्वां जातु हिंस्यात् स इतः सम्प्रेषितां मया ।**
**इत्युक्त्वा प्रददौ पात्रं सपिधानं हिरण्मयम् ॥१३॥**

**सुदेष्णा बोली**—"शुभे ! मैंने तुम्हें यहाँ से भेजा है, अतः वह तुम्हें कोई कष्ट नहीं देगा"—ऐसा कहकर सुदेष्णा ने द्रौपदी के हाथ में ढक्कनसहित एक सुवर्ण-पात्र दे दिया ।

वैशम्पायन उवाच

**सा शङ्कमाना रुदती दैवं शरणमीयुषी ।**
**प्रातिष्ठत सुराहारी कीचकस्य निवेशनम् ॥१४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—द्रौपदी मदिरा लाने के लिए पात्र को लेकर शंकित हो रोती हुई कीचक के घर की ओर चली। अपने सतीत्व की रक्षा के लिए वह मन-ही-मन परमात्मा से रक्षा की प्रार्थना करती रही ।

**तां मृगीमिव संत्रस्तां दृष्ट्वा कृष्णां समीपगाम् ।**
**उदतिष्ठन् मुदा सूतो नावं लब्ध्वेव पारगः ॥१५॥**

डरी हुई हरिणी की भाँति भयभीत द्रौपदी को समीप आई देख सूत कीचक प्रसन्न होकर खड़ा हो गया, मानो नदी के पास जानेवाला पथिक नौका पाकर प्रसन्न हो गया हो ।

कीचक उवाच

**स्वगतं ते सुकेशान्ते सुव्युष्टा रजनी मम ।**
**स्वामिनी त्वमनुप्राप्ता प्रकुरुष्व मम प्रियम् ॥१६॥**

**कीचक बोला**—सुन्दर अलकोंवाली सैरन्ध्री ! तुम्हारा स्वागत है। आज की रात का प्रभात मेरे लिए बड़ा मङ्गलमय है। अब तुम मेरी स्वामिनी होकर मेरा प्रिय कार्य करो ।

द्रौपद्युवाच

**अप्रैषीद् राजपुत्री मां सुरादानाय तेऽन्तिकम् ।**
**पानमाहर मे क्षिप्रं पिपासा मेऽति चाब्रवीत् ॥१७॥**

**द्रौपदी बोली**—राजकुमारी सुदेष्णा ने मुझे मदिरा लाने के लिए तुम्हारे पास भेजा है। उसने कहा था—"मुझे बड़े ज़ोर की प्यास लगी है, अतः

मेरे लिए पीने योग्य रस शीघ्र ले आओ।"

कीचक उवाच

**अन्या भद्रे नयिष्यन्ति राजपुत्र्याः प्रतिश्रुतम्।**
**इत्येतां दक्षिणे पाणौ सूतपुत्रः परामृशत् ॥१८॥**

**कीचक ने कहा**—"कल्याणि! राजपुत्री सुदेष्णा की मँगाई हुई वस्तु दूसरी दासियाँ पहुँचा देंगी।"—ऐसा कहकर सूतपुत्र ने द्रौपदी का दाहिना हाथ पकड़ लिया।

वैशम्पायन उवाच

**सा गृहीता विधुन्वाना भूमावाक्षिप्य कीचकम्।**
**सभां शरणमागच्छद् यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥१९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—पकड़ में आने पर वह कीचक को धक्का मार और उसे भूमि पर गिराकर भय से काँपती हुई राज-सभा की शरण में आई, जहाँ राजा युधिष्ठिर विद्यमान थे।

**तां कीचकः प्रधावन्तीं केशपाशे परामृशत्।**
**अथैनां पश्यतो राज्ञः पातयित्वा पदावधीत् ॥२०॥**

कीचक ने भी तुरन्त ही उठकर भागती हुई द्रौपदी का पीछा किया और राज-सभा में जाकर उसने राजा के देखते-देखते उसे पृथिवी पर गिराकर उसके लात मारी।

**तां चासीनौ ददृशतुर्भीमसेनयुधिष्ठिरौ।**
**अमृष्यमाणौ कृष्णायाः कीचकेन पराभवम् ॥२१॥**

राज-सभा में बैठे हुए भीमसेन और युधिष्ठिर ने कीचक के द्वारा द्रौपदी का यह अपमान अपनी आँखों से देखा, जिसे वे सहन न कर सके।

**तस्य भीमो वधं प्रेप्सुः कीचकस्य दुरात्मनः।**
**दन्तैर्दन्तांस्तदा रोषान्निष्पिपेष महामनाः ॥२२॥**

महामना भीमसेन दुरात्मा कीचक को मार डालने की इच्छा से उस समय रोषावेश में दाँत-से-दाँत पीसने लगे।

**अथावमृद्नादङ्गुष्ठमङ्गुष्ठेन युधिष्ठिरः।**
**प्रबोधनभयाद् राजा भीमं तं प्रत्यषेधयत् ॥२३॥**

तब रहस्य प्रकट हो जाने के भय से राजा युधिष्ठिर ने अपने अँगूठे से भीमसेन का अँगूठा दबाकर उन्हें इस प्रकार उत्तेजित होने से रोका।

**तं मत्तमिव मातङ्गं वीक्षमाणं वनस्पतिम्।**
**स तमावारयामास भीमसेनं युधिष्ठिरः ॥२४॥**

भीमसेन मतवाले गजराज की भाँति एक वृक्ष की ओर देख रहे थे। युधिष्ठिर ने उन्हें रोकते हुए कहा—

**आलोकयसि किं वृक्षं सूद दारुकृतेन वै।**
**यदि ते दारुभिः कृत्यं बहिर्वृक्षान्निगृह्यताम् ॥२५॥**

"बल्लव! क्या तुम ईंधन के लिए वृक्ष की ओर देख रहे हो? यदि तुम्हें रसोई के लिए सूखी लकड़ी चाहिए तो बाहर जाकर किसी वृक्ष से ले लो।

**यस्य चार्द्रस्य वृक्षस्य शीतच्छायां समाश्रयेत्।**
**न तस्य पर्णं द्रुह्येत पूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥२६॥**

"जिस हरे-भरे-वृक्ष की शीतल छाया का आश्रय लिया जाए, उसके पहले उपकारों का स्मरण करते हुए, उसके किसी एक पत्ते को भी हानि नहीं पहुँचानी चाहिए।"

**सम्प्रेक्ष्य च वरारोहा सर्वांस्तत्र सभासदः।**
**विराटं चाह पाञ्चाली दुःखेनाविष्टचेतना ॥२७॥**

सुन्दर नितम्बोंवाली द्रौपदी उस राजसभा में विद्यमान राजा विराट और समस्त सभासदों की ओर देखकर दुःखी हृदय से इस प्रकार बोली—

**अहं त्वनपराध्यन्ती कीचकेन दुरात्मना।**
**पश्यतस्ते महाराज हता पादेन दासवत् ॥२८॥**

"महाराज! मैंने कोई अपराध नहीं किया है, फिर भी दुरात्मा कीचक ने आपके देखते-देखते मुझे लात मारकर मेरे साथ दासों का-सा व्यवहार किया है।

**दस्यूनामिव धर्मस्ते न हि संसदि शोभते।**
**नाहमेतेन युक्तं वै हन्तुं मत्स्य तवान्तिके ॥२९॥**

"मत्स्यराज! तुम्हारा यह लुटेरों का-सा धर्म इस राज-सभा में शोभा नहीं देता। तुम्हारे समक्ष कीचक द्वारा मुझपर मार पड़ी, यह कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।

**कीचको न च धर्मज्ञो न च मत्स्यः कथञ्चन।**
**सभासदोऽप्यधर्मज्ञा य एनं पर्युपासते ॥३०॥**

"कीचक को धर्म का ज्ञान नहीं है। मत्स्यराज

भी किसी प्रकार धर्मज्ञ नहीं हैं तथा जो अधर्मी इस राजा के पास बैठते हैं, वे सभासद् भी धर्म के ज्ञाता नहीं हैं।"

**वचोभिर्विविधैरेवं तदा कृष्णाश्रुलोचना ।**
**उपालभत राजानं मत्स्यानां वरवर्णिनी ॥३१॥**

हे जनमेजय ! कान्तिमयी द्रौपदी ने उस समय आँखों में आँसू भरकर ऐसे वचनों द्वारा मत्स्यराज को बहुत फटकारा और उलाहना दिया।

विराट उवाच

**परोक्षं नाभिजानामि विग्रहं युवयोरहम् ।**
**अर्थतत्त्वमविज्ञाय किं नु स्यात् कौशलं मम ॥३२॥**

**विराट ने कहा**—सैरन्ध्री ! परोक्ष में तुम दोनों में क्या झगड़ा हुआ है, इसे मैं नहीं जानता और वास्तविक बात को जाने बिना न्याय करने में मेरा क्या कौशल प्रकट होगा ?

वैशम्पायन उवाच

**ततस्तु सभ्या विज्ञाय कृष्णां भूयोऽभ्यपूजयन् ।**
**साधु साध्विति चाप्याहुः कीचकं च व्यगर्हयन् ॥३३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन् ! तत्पश्चात् सभासदों ने सारा रहस्य जानकर द्रौपदी की बारम्बार प्रशंसा की। उसे अनेक बार साधुवाद दिया और कीचक की निन्दा करते हुए उसे बहुत धिक्कारा।

**अथाब्रवीद् राजपुत्रीं कौरव्यो महिषीं प्रियाम् ।**
**गच्छ सैरन्ध्रि माऽत्र स्थाः सुदेष्णाया निवेशनम् ॥३४॥**

जब सभासद् द्रौपदी की प्रशंसा कर रहे थे, तब कुरुनन्दन युधिष्ठिर ने अपनी प्रिया महारानी द्रौपदी से इस प्रकार कहा—"सैरन्ध्री ! अब तू यहाँ मत ठहर ! रानी सुदेष्णा के महल में चली जा।

**भर्तारमनुरुन्धन्त्यः क्लिश्यन्ते वीरपत्नयः ।□**
**शुश्रूषया क्लिश्यमानाः पतिलोकं जयन्त्युत ॥३५॥**

"पति का अनुसरण करनेवाली वीर पत्नियाँ सब क्लेश चुपचाप सहन कर लेती हैं। जो साध्वी देवियाँ पति की सेवा करते हुए क्लेश उठाती हैं, वे पति-लोक पर विजय पा लेती हैं।

**गच्छ सैरन्ध्रि गन्धर्वाः करिष्यन्ति तव प्रियम् ।**
**व्यपनेष्यन्ति ते दुःखं येन ते विप्रियं कृतम् ॥३६॥**

"हे सैरन्ध्री ! तुम अब जाओ। गन्धर्व तुम्हारा प्रिय करेंगे। जिसने तुम्हारा अपकार किया है, वे उसे मारकर तुम्हारा दुःख दूर कर देंगे।"

**इत्युक्ता प्राद्रवत् कृष्णा सुदेष्णाया निवेशनम् ।**
**केशान् मुक्त्वा च सुश्रोणी संरम्भाल्लोहितेक्षणा ॥३७॥**

ऐसा कहे जाने पर सुन्दर कटिप्रान्तवाली द्रौपदी तीव्र गति से रानी सुदेष्णा के महल को चली गई। उसके केश खुले हुए थे और क्रोध से उसकी आँखें लाल हो रही थीं।

सुदेष्णोवाच

**कस्त्वावधीद् वरारोहे कस्माद् रोदिषि शोभने ।**
**कस्याद्य न सुखं भद्रे केन ते विप्रियं कृतम् ॥३८॥**

**सुदेष्णा ने कहा**—हे वरारोहे ! तुम्हें किसने मारा है ? हे शोभने ! तुम क्यों रोती हो ? भद्रे ! आज किसका सुख समाप्त हो गया ? किसने तुम्हारा अपराध किया है ?

द्रौपद्युवाच

**कीचको मावधीत् तत्र सुरादानगतां तव ।**
**सभायां पश्यतो राज्ञो यथैव विजने वने ॥३९॥**

**द्रौपदी बोली**—मैं तुम्हारे लिए मदिरा लाने गई थी। वहाँ कीचक ने राज-सभा में महाराज के देखते हुए मुझपर ऐसे प्रहार किया है जैसे कोई निर्जन वन में किसी असहाय अबला पर आघात करता हो।"

सुदेष्णोवाच

**घातयामि सुकेशान्ते कीचकं यदि मन्यसे ।**
**योऽसौ त्वां कामसम्मत्तो दुर्लभामवमन्यते ॥४०॥**

**सुदेष्णा ने कहा**—घुँघराले बालोंवाली सुन्दरि ! यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं कीचक को मरवा डालूँ, जो काम से उन्मत्त होकर तुम जैसी दुर्लभ देवी का अपमान कर रहा है ?

सैरन्ध्री-उवाच

**अन्ये चैनं वधिष्यन्ति येषामागः करोति सः ।**
**मन्ये चैवाद्य सुव्यक्तं यमलोकं गमिष्यति ॥४१॥**

**सैरन्ध्री बोली**—महारानी ! दूसरे ही लोग, जिनका कि वह अपराध कर रहा है, उसे मार डालेंगे। मैं तो समझती हूँ, अब वह निश्चय ही यमलोक की यात्रा करेगा।

**इति महाभारते विराटपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥६॥**

# सप्तमोऽध्यायः

## द्रौपदी का भीमसेन के पास जाना और भीम द्वारा कीचक का वध करना

वैशम्पायन उवाच

**सा हता सूतपुत्रेण राजपुत्री यशस्विनी।**
**वधं कृष्णा परीप्सन्ती सेनावाहस्य भामिनी ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! सूतपुत्र सेनापति कीचक ने जब से लात मारी थी, तभी से यशस्विनी राजपत्नी भामिनी द्रौपदी उसके वध की बात सोचने लगी—

**किं करोमि क्व गच्छामि कथं कार्यं भवेन्मम।**
**इत्येवं चिन्तयित्वा सा भीमं वै मनसागमत् ॥२॥**

'मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? मेरा अभीष्ट कार्य कैसे सिद्ध होगा ?'—ऐसा सोचकर उसने मन-ही-मन भीमसेन का स्मरण किया।

**नान्यः कर्ता ऋते भीमान्ममाद्य मनसः प्रियम्।**
**तत उत्थाय रात्रौ सा विहाय शयनं स्वकम् ॥३॥**
**प्राद्रवन्नाथमिच्छन्ती कृष्णा नाथवती सती।**
**भवनं भीमसेनस्य क्षिप्रमायतलोचना ॥४॥**

'भीमसेन के अतिरिक्त दूसरा कोई मेरे मन को प्रिय लगनेवाला कार्य नहीं कर सकता'—ऐसा निश्चय करके वह विशाल नेत्रोंवाली सती-साध्वी सनाथा कृष्णा रात्रि में अपनी शय्या छोड़कर उठी और अपने रक्षक से मिलने की इच्छा रखकर शीघ्रतापूर्वक भीमसेन के भवन में गई। [वहाँ पहुँचकर—]

सैरन्ध्री-उवाच

**तस्मिञ्जीवति पापिष्ठे सेनावाहे मम द्विषि।**
**तत् कर्म कृतवानद्य कथं निद्रां निषेवसे ॥५॥**

**सैरन्ध्री बोली**—भीम ! मुझसे द्वेष रखनेवाले उस महापापी सेनापति के जीते हुए, जिसने मेरे साथ ऐसा अपमानजनक व्यवहार किया है, तुम आज कैसे नींद ले रहे हो ?

वैशम्पायन उवाच

**बाहुभ्यां परिरभ्यैनं प्राबोधयदनिन्दिता।**
**सिंहं सुप्तं वने दुर्गे मृगराजवधूरिव ॥६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—द्रौपदी ने भीमसेन की दोनों बाँहों को पकड़कर उसे जगाया, ठीक वैसे ही, जैसे दुर्गम वन में सोये हुए सिंह को सिंहिनी जगाती है।

**उपातिष्ठत मेघाभो राजपुत्र्या प्रबोधितः।**
**अथाब्रवीद् राजपुत्रीं किमर्थं मामुपागता ॥७॥**
**न ते प्रकृतिमान् वर्णः कृशा पाण्डुश्च लक्ष्यसे।**
**आचक्ष्व परिशेषेण सर्वं विद्यामहं यथा ॥८॥**

राजकुमारी द्रौपदी के जगाने पर मेघ के समान श्याम वर्णवाले भीमसेन उठ बैठे और द्रौपदी से बोले—"हे देवि ! तुम यहाँ किसलिए आई हो ? तुम्हारे शरीर की कान्ति स्वाभाविक नहीं है। तुमपर उदासी छायी हुई है। तुम दुबली और पीली दिखाई देती हो। तुम सम्पूर्ण वृत्तान्त कहो, जिससे मैं पूरी बात जान सकूँ।

**सुखं वा यदि वा दुःखं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम्।**
**यथावत् सर्वमाचक्ष्व श्रुत्वा ज्ञास्यामि यत् क्षमम् ॥९॥**

"तुम्हें दुःख हुआ हो या सुख, बुरा हुआ हो या भला, सब बातें ठीक-ठीक कह सुनाओ। वह सब सुनकर मैं उसके निवारण के लिए उचित उपाय सोचूँगा।

**अहमेव हि ते कृष्णे विश्वास्यः सर्वकर्मसु।**
**अहमापत्सु चापि त्वां मोक्षयामि पुनः पुनः ॥१०॥**

"हे कृष्णे ! सब कार्यों के लिए मैं ही तुम्हारा विश्वास-पात्र हूँ। मैं ही सब प्रकार की विपत्तियों में बार-बार सहायता करके तुम्हें संकट से मुक्त करता हूँ।

**शीघ्रमुक्त्वा यथाकामं यत् ते कार्यं विवक्षितम्।**
**गच्छ वै शयनायैव पुरा नान्येन बुध्यते ॥११॥**

"अतः जैसी तुम्हारी रुचि हो और जिस कार्य के लिए कुछ कहना चाहती हो, उसे शीघ्र कहकर किसी को पता लगने से पूर्व ही अपने शयन-गृह में चली जाओ।"

द्रौपद्युवाच

**अशोच्यत्वं कुतस्तस्या यस्या भर्ता युधिष्ठिरः।**
**जानन् सर्वाणि दुःखानि किं मां त्वं परिपृच्छसि ॥१२॥**

**द्रौपदी बोली**—हे वीर ! जिस स्त्री का पति राजा युधिष्ठिर हो, उसे कोई शोक न हो, यह कैसे सम्भव हो सकता है ? तुम मेरे सारे दुःखों को जानते हुए भी मुझसे क्या पूछते हो ?

**योऽयं राज्ञो विराटस्य कीचको नाम भारत ।**
**सेनानीः पुरुषव्याघ्र श्यालः परमदुर्मतिः ॥१३॥**
**स मां सैरन्ध्रिवेषेन वसन्तीं राजवेश्मनि ।**
**नित्यमेवाह दुष्टात्मा भार्या मम भवेति वै ॥१४॥**

हे भारत ! पुरुषसिंह ! राजा विराट का यह जो कीचक नामक सेनापति है, वह उनका साला लगता है । उसकी बुद्धि बड़ी खोटी है । राजमहल में सैरन्ध्री के वेश में निवास करती हुई मुझे देखकर वह दुरात्मा प्रतिदिन ही आकर मुझसे कहता है—"तुम मेरी पत्नी बन जाओ !

**तेनोपमन्त्र्यमाणाया वधार्हेण सपत्नहन् ।**
**कालेनेव फलं पक्वं हृदयं मे विदीर्यते ॥१५॥**

शत्रुनाशक ! उस मार डालने योग्य पापी के द्वारा प्रतिदिन यह घृणित प्रस्ताव सुनते-सुनते समय से पके हुए फल की भाँति मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है ।

**कीचको राजवाल्लभ्याच्छोककृन्मम भारत ।**
**तमेवं कामसम्मत्तं भिन्धि कुम्भमिवाश्मनि ॥१६॥**

हे भारत ! राजा का प्रिय होने के कारण ही वह कीचक मेरे लिए शोक-कारक हो रहा है । उस कामोन्मत्त पापी को तुम उसी प्रकार नष्ट कर दो जैसे पत्थर पर पटककर घड़े को फोड़ दिया जाता है ।

**यो निमित्तमनर्थानां बहूनां मम भारत ।**
**तं चेज्जीवन्तमादित्यः प्रातरभ्युदयिष्यति ॥१७॥**
**विषमालोडय पास्यामि मा कीचकवशं गमम् ।**
**श्रेयो हि मरणं मह्यं भीमसेन तवाग्रतः ॥१८॥**

हे भारत ! जो मेरे लिए बहुत-से अनर्थों का कारण बना हुआ है, उसके जीवित रहते यदि कल सूर्य उदय हो जाएगा तो मैं विष घोलकर पी लूंगी, परन्तु कीचक के अधीन नहीं होऊँगी । भीम ! कीचक के वश में होने की अपेक्षा तुम्हारे समक्ष प्राण त्याग देना मेरे लिए अधिक कल्याणकारी होगा ।

भीमसेन उवाच

**तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे ।**
**अद्य तं सूदयिष्यामि कीचकं सहबान्धवम् ॥१९॥**

**भीमसेन बोले**—हे भद्रे ! तुम जैसा कह रही हो, मैं वैसा ही करूँगा । भीरु ! मैं आज कीचक को उसके भाई-बन्धुओंसहित मार डालूंगा ।

**अस्याः प्रदोषे शर्वर्याः कुरुष्वानेन सङ्गतम् ।**
**दुःखं शोकं च निर्धूय याज्ञसेनि शुचिस्मिते ॥२०॥**

हे पवित्र मुस्कानवाली देवी ! तुम दुःख-शोक भुलाकर आगामी रात्रि के प्रदोषकाल में कीचक से मिलो और उसे नृत्यशाला में आने के लिए कह दो ।

**तत्रास्ति शयनं दिव्यं दृढाङ्गं सुप्रतिष्ठितम् ।**
**तत्रास्य दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान् पितामहान् ॥२१॥**

उस नृत्यशाला में एक अति सुन्दर और दृढ़ पलंग बिछा हुआ है । वहाँ आने पर मैं कीचक को उसके मरे हुए बाप-दादों का दर्शन कराऊँगा ।

**यथा च त्वां न पश्येयुः कुर्वाणां तेन संविदम् ।**
**कुर्यास्तथा त्वं कल्याणि यथा संनिहितो भवेत् ॥२२**

तुम ऐसी चेष्टा करना जिससे उसके साथ गुप्त वार्तालाप करते समय कोई तुम्हें देखे नहीं । कल्याणि! तुम ऐसी बात करना, जिससे वहाँ दिये हुए संकेत के अनुसार वह मेरे पास अवश्य पहुँच जाए ।

वैशम्पायन उवाच

**तथा तौ कथयित्वा तु बाष्पमुत्सृज्य दुःखितौ ।**
**रात्रिशेषं तमत्युग्रं धारयामासतुर्हृदि ॥२३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन् ! इस प्रकार वार्तालाप करके वे दोनों दुःखी-जन आँसू बहाकर अलग हुए । रात्रि के शेष भाग को उन्होंने बड़ी व्याकुलता से व्यतीत किया और अपनी बातचीत को मन में ही गुप्त रखा ।

**तस्या रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरुत्थाय कीचकः ।**
**गत्वा राजकुलायैव द्रौपदीमिदमब्रवीत् ॥२४॥**

वह रात्रि व्यतीत होने पर कीचक प्रातःकाल उठा और राजमहल में जाकर द्रौपदी से इस प्रकार बोला—

**सभायां पश्यतो राज्ञः पातयित्वा पदाहनम् ।**
**न चैवालभसे त्राणमभिपन्ना बलीयसा ॥२५॥**

"सैरन्ध्री ! मैंने राजसभा में महाराज विराट के देखते-देखते तुम्हें भूमि पर गिराकर लात मारी थी। तुम मुझ-जैसे महाबली के पाले पड़ी हो, अतः यहाँ तुम्हें कोई बचा नहीं सकता।

**प्रवादेनेह मत्स्यानां राजा नाम्नायमुच्यते।**
**अहमेव हि मत्स्यानां राजा वै वाहिनीपतिः ॥२६॥**

"राजा विराट तो कहने के लिए ही मत्स्यदेश के राजा हैं। वास्तव में मैं ही यहाँ का राजा हूँ, क्योंकि सेना का स्वामी तो मैं हूँ।

**मां सुखं प्रतिपद्यस्व दासो भीरु भवामि ते।**
**अह्नाय तव सुश्रोणि शतं निष्कान् ददाम्यहम् ॥२७॥**

"भीरु ! प्रीतिपूर्वक तुम मुझे स्वीकार कर लो, फिर तो मैं तुम्हारा दास बन जाऊँगा। सुश्रोणि ! मैं तुम्हारे दैनिक व्यय के लिए प्रतिदिन सौ मोहरें देता रहूँगा।

**दासी शतं च ते दद्यां दासानामपि चापरम्।**
**रथं चाश्वतरीयुक्तमस्तु नौ भीरु सङ्गमम् ॥२८॥**

"मैं तुम्हारी सेवा के लिए सौ दासियाँ और उतने ही दास भी दूँगा। तुम्हारी सवारी के लिए श्रेष्ठ खच्चरों से जुता रथ भी तैयार रहेगा। भीरु ! अब हम दोनों का परस्पर समागम होना चाहिए।"

द्रौपद्युवाच

**एवं मे समयं त्वद्य प्रतिपद्यस्व कीचक।**
**न त्वां सखा वा भ्राता वा जानीयात् सङ्गतं मया ॥२९**

**द्रौपदी बोली**—हे कीचक ! यदि ऐसी बात है, तो आज मेरी एक शर्त स्वीकार करो। तुम मुझसे मिलने आते हो—यह बात तुम्हारा मित्र अथवा भाई कोई भी न जाने।

**अनुप्रवादाद् भीतास्मि गन्धर्वाणां यशस्विनाम्।**
**एवं मे प्रतिजानीहि ततोऽहं वशगा तव ॥३०॥**

मैं यशस्वी गन्धर्वों के अपवाद [निन्दा] से डरती हूँ। 'हमारा समागम गुप्त रहेगा'—यदि तुम इस बात के लिए प्रतिज्ञा करो तो मैं तुम्हारे अधीन हो सकती हूँ।

कीचक उवाच

**एवमेतत् करिष्यामि यथा सुश्रोणि भाषसे।**
**एको भद्रे गमिष्यामि शून्यमावसथं तव ॥३१॥**

**कीचक ने कहा**—ठीक है। सुश्रोणी ! तुम जैसा कहती हो, मैं वैसा ही करूँगा। भद्रे ! तुम्हारे सूने घर में मैं अकेला ही आऊँगा।

द्रौपद्युवाच

**यदेतन्नर्तनागारं मत्स्यराजेन कारितम्।**
**दिवात्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम् ॥३२॥**

**द्रौपदी बोली**—कीचक ! मत्स्यराज ने जो यह नृत्यशाला बनवाई है, उसमें दिन के समय कन्याएँ नृत्य करती हैं तथा रात में वे अपने-अपने घर चली जाती हैं।

**तमिस्रे तत्र गच्छेथा गन्धर्वास्तन्न जानते।**
**तत्र दोषः परिहृतो भविष्यति न संशयः ॥३३॥**

वहाँ अँधेरा रहता है, अतः मुझसे मिलने के लिए तुम वहीं आना। उस स्थान को गन्धर्व भी नहीं जानते। वहाँ मिलने से सब दोष दूर हो जाएगा, इसमें संशय नहीं है।

वैशम्पायन उवाच

**तमर्थमपि जलपन्त्याः कृष्णायाः कीचकेन ह।**
**दिवसार्धं समभवन्मासेनैव समं नृप ॥३४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! इस प्रकार कीचक के साथ वार्तालाप के पश्चात् द्रौपदी को अवशिष्ट आधा दिन [भीम से वह बात कहने की प्रतीक्षा में] एक मास के समान भारी प्रतीत हुआ।

**कीचकोऽथ गृहं गत्वा भृशं हर्षपरिप्लुतः।**
**सैरन्ध्रीरूपिणं मूढो मृत्युं तं नावबुद्धवान् ॥३५॥**

इधर कीचक अत्यन्त हर्ष में भरा हुआ अपने घर को गया। उस मूर्ख को यह पता नहीं था कि सैरन्ध्री के रूप में आज उसकी मृत्यु ही चली आ रही है।

**गन्धाभरणमाल्येषु व्यासक्तः स विशेषतः।**
**अलञ्चक्रे तदात्मानं सत्वरः काममोहितः ॥३६॥**

वह काम से मोहित हो रहा था, अतः घर जाकर शीघ्र ही वह अपने आपको सजाने लगा। वह विशेषतः सुगन्धित पदार्थों, आभूषणों तथा मालाओं के सेवन में संलग्न रहा।

**ततस्तु द्रौपदी गत्वा तदा भीमं महानसे।**
**तमुवाच सुकेशान्ता कीचकस्य मया कृतः।**
**सङ्गमो नर्तनागारे यथावोचः परन्तप ॥३७॥**

सूर्यास्त के समय द्रौपदी पाकशाला में भीम के पास गई। वहाँ पहुँचकर सुन्दर अलकोंवाली कृष्णा ने कहा—"शत्रुतापक! जैसा तुमने कहा था, उसके अनुसार मैंने कीचक को नृत्यशाला में मिलने का संकेत कर दिया है।

**शून्यं स नर्तनागारमागमिष्यति कीचकः।**
**एको निशि महाबाहो कीचकं तं निषूदय ॥३८॥**

"हे महाबाहो! कीचक रात्रि के समय उस सूनी नृत्यशाला में अकेला आएगा। तुम उसे वहीं मार डालना।"

भीमसेन उवाच

**एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे।**
**अद्य तं सूदयिष्यामि कीचकं सह बान्धवैः ॥३९॥**

**भीमसेन ने कहा**—हे भीरु! ठीक है। तुम जैसा कहती हो, मैं वैसा ही करूँगा। आज मैं उस कीचक को उसके बन्धु-बान्धवोंसहित मार डालूँगा।

वैशम्पायन उवाच

**भीमोऽथ प्रथमं गत्वा रात्रौ छन्न उपाविशत्।**
**मृगं हरिरिवादृश्यः प्रत्याकाङ्क्षत कीचकम् ॥४०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन्! भीमसेन रात्रि में पहले ही नृत्यशाला में पहुँचकर छिपकर बैठ गये और कीचक की इस प्रकार प्रतीक्षा करने लगे, जैसे सिंह अदृश्य रहकर हरिण की घात में बैठ जाता है।

**कीचकश्चाप्यलंकृत्य यथाकाममुपागमत्।**
**तां वेलां नर्तनागारं पाञ्चालीसङ्गमाशया ॥४१॥**

इधर कीचक भी इच्छानुसार वस्त्राभूषणों से सज-धजकर द्रौपदी के साथ समागम की अभिलाषा से उसी समय नृत्यशाला के समीप आया।

**मन्यमानः स संङ्केतमागारं प्राविशच्च तत्।**
**प्रविश्य च स तद् वेश्म तमसा संवृतं महत् ॥४२॥**

उस गृह को संकेत-स्थान मानकर उसने निःशङ्क होकर भीतर प्रवेश किया। वहाँ प्रविष्ट होकर देखा तो वह विशाल भवन सब ओर से अन्धकार से ढका हुआ था।

**पूर्वागतं ततस्तत्र भीममप्रतिमौजसम्।**
**एकान्तावस्थितं चैनमाससाद स दुर्मतिः ॥४३॥**
**शयानं शयने तत्र सूतपुत्रः परामृशत्।**
**जाज्वल्यमानं कोपेन कृष्णाधर्षजेन च ॥४५॥**

महाबली भीमसेन वहाँ पहले से ही आकर एकान्त में एक शय्या पर लेटे हुए थे। खोटी बुद्धि-वाला सूतपुत्र कीचक वहीं पहुँच गया और द्रौपदी के अपमान के कारण क्रोध से प्रज्वलित भीमसेन को हाथ से टटोलने लगा।

**उपसङ्गम्य चैवैनं कीचकः काममोहितः।**
**हर्षोन्मथितचित्तात्मा स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥४५॥**

उसके पास पहुँचते ही काममोहित कीचक हर्ष से उन्मत्तचित्त हो मुस्कराते हुए बोला—

**रूपलावण्ययुक्ताभिर्युवतीभिरलङ्कृतम्।**
**गृहं चान्तःपुरं सुभ्रु क्रीडारतिविराजितम्।**
**तत्सर्वं त्वां समुद्दिश्य सहसाहमुपागतः ॥४६॥**

"सुभ्रु! मेरा गृह एवं अन्तःपुर धन-रत्नादि से सम्पन्न, सैकड़ों दासी आदि उपकरणों से युक्त, रूप-लावण्यवती युवतियों से अलंकृत तथा क्रीडा-विलास से सुशोभित है, वह सब तुम्हारे लिए ही न्यौछावर करके मैं सहसा तुम्हारे पास चला आया हूँ।

**अकस्मान्मां प्रशंसन्ति सदा गृहगताः स्त्रियः।**
**सुवासा दर्शनीयश्च नान्योऽस्ति त्वादृशः पुमान् ॥४७**

"मेरे घर की स्त्रियाँ अकस्मात् मेरी प्रशंसा करने लगती हैं और कहती हैं—आपके समान सुन्दर वस्त्रधारी और दर्शनीय दूसरा कोई पुरुष नहीं है।"

भीमसेन उवाच

**दिष्ट्या त्वं दर्शनीयोऽथ दिष्ट्याऽऽत्मानं प्रशंससि।**
**ईदृशस्तु त्वया स्पर्शः स्पृष्टपूर्वो न कर्हिचित् ॥४८॥**

**भीमसेन बोले**—सौभाग्य की बात है कि तुम ऐसे दर्शनीय हो। यह भी सौभाग्य की बात है कि तुम स्वयं अपनी प्रशंसा कर रहे हो, परन्तु ऐसा कोमल स्पर्श भी तुम्हें पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ होगा।

**स्पर्शं वेत्सि विदग्धस्त्वं कामधर्मविचक्षणः।**
**स्त्रीणां प्रीतिकरो नान्यस्त्वत्समः पुरुषस्त्विह ॥४९॥**

स्पर्श को तुम खूब पहचानते हो। इस कला में अति चतुर भी हो। कामशास्त्र के विलक्षण ज्ञाता प्रतीत होते हो। संसार में स्त्रियों को प्रसन्न करने-

वाला तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुष नहीं है।

वैशम्पायन उवाच

**इत्युक्त्वा तं महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः।**
**सहसोत्पत्य कौन्तेयः प्रहस्येदमुवाच ह ॥५०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन्! कीचक से ऐसा कहकर भयंकर पराक्रमी कुन्तीपुत्र महाबाहु भीमसेन सहसा उछलकर खड़े हो गये और हँसते हुए इस प्रकार बोले—

**अद्य त्वां भगिनी पापं कृष्यमाणं मया भुवि।**
**द्रक्ष्यतेऽद्रिप्रतीकाशं सिंहेनेव महागजम् ॥५१॥**

"पर्वत के समान विशालकाय होने पर भी, आज मैं तुझ पापी को पृथिवी पर पटककर वैसे ही घसीटूँगा जैसे सिंह महान् गजराज को घसीटता है, और तेरी बहिन यह सब देखेगी।"

**ततो जग्राह केशेषु माल्यवत्सु महाबलः।**
**स केशेषु परामृष्टो बलेन बलिनां वरः ॥५२॥**
**आक्षिप्य केशान् वेगेन बाहोर्जग्राह पाण्डवम्।**
**बाहुयुद्धं तयोरासीत् क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ॥५३॥**

ऐसा कहकर महाबली भीम ने उसके केश पकड़ लिये। कीचक भी बलवानों में श्रेष्ठ था। सिर के बाल पकड़ लिये जाने पर उसने बलपूर्वक झटका देकर उन्हें छुड़ा लिया तथा बड़ी फुर्ती से पाण्डुनन्दन भीम को दोनों भुजाओं में भर लिया। तत्पश्चात् क्रोध में भरे हुए उन दोनों पुरुषसिंहों में बाहु-युद्ध होने लगा।

**तावन्योन्यं समाश्लिष्य प्रकर्षन्तौ परस्परम्।**
**उभावपि प्रकाशेते प्रवृद्धौ वृषभाविव ॥५४॥**

वे दोनों आपस में गुँथ गये और एक-दूसरे को खींचने लगे। उस समय वे हृष्ट-पुष्ट दो साँड़ों के समान सुशोभित हो रहे थे।

**भीमेन च परामृष्टो दुर्बलो बलिना रणे।**
**प्रास्पन्दत यथा प्राणं विचकर्ष च पण्डवम् ॥५५॥**

उस युद्ध में बलवान् भीम की पकड़ में आकर यद्यपि कीचक बलहीन हो रहा था, तो भी वह यथाशक्ति उन्हें परास्त करने की चेष्टा करते हुए उन्हें अपनी ओर खींचने लगा।

**ईषदाकलितं चापि क्रोधाद् द्रुतपदं स्थितम्।**
**कीचको बलवान् भीमं जानुभ्यामाक्षिपद् भुवि ॥५६॥**

जब वे कुछ-कुछ वश में आ गये और उनके पैर कुछ लड़खड़ाने लगे, तब बलवान् कीचक ने क्रोधपूर्वक दोनों घुटने मारकर भीमसेन को पृथिवी पर गिरा दिया।

**पातितो भुवि भीमस्तु कीचकेन बलीयसा।**
**उत्पपाताथ वेगेन दण्डपाणिरिवान्तकः ॥५७॥**

महाबली कीचक द्वारा इस प्रकार भूमि पर गिराये जाने पर भीमसेन हाथ में दण्ड धारण करनेवाले यमराज की भाँति बड़े वेग से उछलकर खड़े हो गये।

**स्पर्धया च बलोन्मत्तौ तावुभौ सूतपाण्डवौ।**
**निशीथे पर्यकर्षेतां बलिनौ निर्जने स्थले ॥५८॥**

सूतपुत्र और पाण्डुनन्दन दोनों बल से उन्मत्त हो रहे थे। वे दोनों बलशाली वीर स्पर्धा के कारण आधी रात के समय उस निर्जन स्थान में एक-दूसरे को खींचते और धक्के देते रहे।

**तलाभ्यां स तु भीमेन वक्षस्यभिहतो बली।**
**कीचको रोषसन्तप्तः पदान्न चलितः पदम् ॥५९॥**

भीम ने दोनों हथेलियों से कीचक की छाती पर प्रहार किया। चोट खाकर बलशाली कीचक क्रोध से जल उठा, परन्तु अपने स्थान से एक पग भी विचलित नहीं हुआ।

**मुहूर्तं तु स तं वेगं प्रसह्य भुवि दुःसहम्।**
**बलादहीयत तदा सूतो भीमबलार्दितः ॥६०॥**

भूमि पर खड़े रहकर दो घड़ी तक उस दुःसह वेग को सह लेने के पश्चात् भीमसेन के बल से पीड़ित हो सूतपुत्र कीचक अपनी शक्ति खो बैठा।

**तं हीयमानं विज्ञाय भीमसेनो महाबलः।**
**वक्षस्यानीय वेगेन ममर्दैनं विचेतसम् ॥६१॥**

महाबली भीमसेन उसे निर्बल एवं अचेत होते देख उसकी छाती पर चढ़ बैठे और बड़े वेग से उसे रौंदने लगे।

**क्रोधाविष्टो विनिःश्वस्य पुनश्चैनं वृकोदरः।**
**जग्राह जयतां श्रेष्ठः केशेष्वेव तदा भृशम् ॥६२॥**

विजयी वीरों में श्रेष्ठ भीमसेन का क्रोधावेश

अभी उतरा नहीं था। उन्होंने पुनः बारंबार उच्छ्वास लेकर कीचक के केश पकड़ लिये।

**तत एनं परिश्रान्तमुपलभ्य वृकोदरः।**
**योक्त्रयामास बाहुभ्यां पशुं रशनया यथा ॥६३॥**

तत्पश्चात् उसे अत्यन्त थका जानकर भीम ने अपनी भुजाओं में इस प्रकार कस लिया, जैसे पशु को रस्सी से बाँध दिया जाता है।

**प्रगृह्य तरसा दोर्भ्यां कण्ठं तस्य वृकोदरः।**
**अपीडयत कृष्णायास्तदा कोपोपशान्तये ॥६४॥**

फिर द्रौपदी का कोप शान्त करने के लिए उन्होंने दोनों हाथों से उसका गला पकड़कर बड़े जोर से दबाया।

**अथ तं भग्नसर्वाङ्गं व्याविद्धनयनाम्बरम्।**
**आक्रम्य च कटीदेशे जानुना कीचकाधमम्।**
**अपीडयत बाहुभ्यां पशुमारममारयत् ॥६५॥**

इस प्रकार जब उसके सब अङ्ग टूट गये, आँखों की पुतलियाँ बाहर निकल आईं और वस्त्र फट गये, तब उन्होंने उस नीच कीचक की कमर को अपने घुटनों से दबाकर दोनों भुजाओं द्वारा उसका गला घोंट दिया तथा उसे पशु की भाँति मारने लगे।

**तं विषीदन्तमाज्ञाय कीचकं पाण्डुनन्दनः।**
**भूतलं भ्रामयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥६६॥**

मृत्यु के समय कीचक को दुःखी होते देख पाण्डु-नन्दन भीम ने उसे धरती पर घसीटा और इस प्रकार कहा—

**अद्याहमनृणो भूत्वा[1] भ्रातुर्भार्यापहारिणम्। □**
**शान्ति लब्धास्मि परमां हत्वा सैरन्ध्रिकण्टकम् ॥६७॥**

"अपने बड़े भाई की पत्नी का अपहरण करने-वाले, सैरन्ध्री के लिए कण्टकरूप दुष्ट कीचक को मारकर आज मैं उऋण हो जाऊँगा और मुझे अत्य-धिक शान्ति प्राप्त होगी।"

**निष्पिष्य पाणिना पाणिं संदष्टौष्ठपुटं बली।**
**समाक्रम्य च संक्रुद्धो बलेन बलिनां वरः ॥६८॥**

[ऐसा कहकर] बलवानों में श्रेष्ठ क्रुद्ध भीमसेन हाथ-से-हाथ मलते हुए दाँतों से होंठ दबाकर पुनः बलपूर्वक कीचक के ऊपर चढ़ गये।

**तस्य पादौ च पाणी च शिरो ग्रीवां च सर्वशः।**
**काये प्रवेशयामास पशोरिव पिनाकधृक् ॥६९॥**

फिर जैसे महादेवजी ने गयासुर के सब अङ्गों को उसके शरीर में घुसेड़ दिया था, उसी प्रकार उन्होंने भी कीचक के हाथ, पैर, सिर और गर्दन आदि सब अङ्गों को उसके धड़ में घुसा दिया।

**तं सम्मथितसर्वाङ्गं मांसपिण्डोपमं कृतम्।**
**कृष्णायै दर्शयामास भीमसेनो महाबलः ॥७०॥**

महाबली भीम ने उसका सारा शरीर मथ डाला तथा उसे मांस का लौंदा-सा बना दिया। तत्पश्चात् उन्होंने उसे द्रौपदी को दिखाया।

**उवाच स महातेजा द्रौपदीं योषितां वराम्।**
**पश्यैनमेहि पाञ्चालि कामुकोऽयं यथा कृतः ॥७१॥**

उस समय महातेजस्वी भीम ने युवतियों में श्रेष्ठ द्रौपदी से कहा—"पाञ्चालि! यहाँ आओ और इसे देखो! मैंने इस कामी की कैसी दुर्गति बना दी है।"

**एवमुक्त्वा महाराज भीमो भीमपराक्रमः।**
**पादेन पीडयामास तस्य कायं दुरात्मनः ॥७२॥**

महाराज! भयंकर पराक्रमी भीम ने ऐसा कहकर उस दुरात्मा की लाश को पैरों से ठुकराया।

**तत्कृत्वा दुष्करं कर्म कृष्णायाः प्रियमुत्तमम्।**
**आमन्त्र्य द्रौपदीं कृष्णां क्षिप्रमायान्महानसम् ॥७३॥**

द्रौपदी को प्रिय लगनेवाले उस उत्तम एवं दुष्कर कर्म को करके भीमसेन द्रौपदी से आज्ञा लेकर पाक-शाला में चले गये।

---

१. इस श्लोक से यह सिद्ध है कि द्रौपदी केवल युधिष्ठिर की पत्नी थी। यदि वह सबकी पत्नी होती, तो भीम उसे 'भ्रातुर्भार्या' न कहकर 'आत्मभार्या' कहते। एक बात और, हम डिण्डिम-घोष के साथ कहना चाहते हैं कि सारे संस्कृत-साहित्य में 'भ्रातुर्भार्या' शब्द का प्रयोग छोटे भाई की पत्नी के लिए कहीं भी नहीं हुआ है, अतः द्रौपदी अर्जुन की पत्नी नहीं हो सकती।

**कीचकं घातयित्वा तु द्रौपदी योषितां वरा ।**
**कीचकोऽयं हतः शेते सभापालानुवाच ह ॥७४॥**

युवतियों में श्रेष्ठ द्रौपदी कीचक को मरवाकर अति प्रसन्न हुई । फिर वह सभा-भवन के रक्षकों के पास जाकर बोली—"आओ, देखो ! यह कीचक मरा पड़ा है ।"

**तत् श्रुत्वा भाषितं तस्या नर्तनागाररक्षिणः ।**
**सहसैव समाजग्मुरादायोल्काः सहस्रशः ॥७५॥**

उसका यह कथन सुनकर नृत्यशाला के बहुत-से रक्षक हाथों में मशाशें ले-लेकर तुरन्त वहाँ आये ।

**अमानुषं कृतं कर्म तं दृष्ट्वा विनिपातितम् ।**
**क्वास्य ग्रीवा क्व चरणौ क्व पाणी क्व शिरस्तथा ।**
**इति स्म तं परीक्षन्ते गन्धर्वेण हतं तदा ॥७६॥**

कीचक को इस प्रकार मारा गया देख वे परस्पर बोले—"यह किसी मनुष्य का काम नहीं हो सकता । देखो न, इसकी ग्रीवा, हाथ, पैर और सिर आदि सब अङ्ग कहाँ चले गये ?" यों कहकर और परीक्षा करने पर वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि हो-न-हो, इसे गन्धर्व ने ही मारा है ।

**इति महाभारते विराटपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥७॥**

# अष्टमोऽध्यायः

## उपकीचकों द्वारा सैरन्ध्री को बाँधकर श्मशान-भूमि में ले जाना, भीम का उन्हें मारकर सैरन्ध्री को छुड़ाना और द्रौपदी का राजमहल में लौटना

वैशम्पायन उवाच

**तस्मिन् काले समागम्य सर्वे तत्रास्य बान्धवाः ।**
**रुरुदुः कीचकं दृष्ट्वा परिवार्य समन्ततः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! उसी समय यह समाचार पाकर कीचक के सब बन्धु-बान्धव वहाँ आ गये । कीचक की यह दुर्दशा देख, उसे चारों ओर से घेरकर वे सब विलाप करने लगे ।

**सर्वे संहृष्टरोमाणः संत्रस्ताः प्रेक्ष्य कीचकम् ।**
**तथा सम्भिन्नसर्वाङ्गं कूर्मं स्थल इवोद्धृतम् ॥२॥**

उसके सारे अवयव शरीर में घुस गये थे, अतः वह जल से निकालकर स्थल में रखे हुए, कछुए के समान जान पड़ता था । कीचक के शव की यह दुर्गति देखकर वे सब थर्रा उठे, उनके रोंगटे खड़े हो गये ।

**पातितं भीमसेनेन तमिन्द्रेणेव दानवम् ।**
**संस्कारयितुमिच्छन्तो बहिर्नेतुं प्रचक्रमुः ॥३॥**

इन्द्र के द्वारा वृत्रासुर दानव के वध की भाँति भीम के द्वारा मारे गये उस कीचक का दाह-संस्कार करने की इच्छा से उसके बान्धव उसे श्मशान-भूमि में ले जाने की तैयारी करने लगे ।

**ददृशुस्ते ततः कृष्णां सूतपुत्राः समागताः ।**
**अदूराच्चानवद्याङ्गीं स्तम्भमालिङ्ग्य तिष्ठतीम् ॥४॥**

उसी समय वहाँ आये हुए सूतपुत्रों ने देखा कि निर्दोष अङ्गोंवाली द्रौपदी थोड़ी ही दूर पर एक खंभे का सहारा लिये खड़ी है ।

**समवेतेषु सर्वेषु तामूचुरुपकीचकाः ।**
**हन्यतां शीघ्रमसती यत्कृते कीचको हतः ॥५॥**

जब सब लोग जुट गये, तब उन उपकीचकों=कीचक के भाइयों ने द्रौपदी को लक्ष्य करके कहा—"इस दुष्टा को शीघ्र मार डाला जाए, क्योंकि इसी के कारण कीचक मारा गया है ।

**अथवा नैव हन्तव्या दह्यतां कामिना सह ।**
**मृतस्यापि प्रियं कार्यं सूतपुत्रस्य सर्वथा ॥६॥**

"अथवा मारा न जाए । कामी कीचक के साथ ही इसे भी जला दिया जाए । मर जाने पर भी हमें सूतपुत्र का प्रिय कार्य, जिससे उसकी आत्मा प्रसन्न हो, अवश्य करना चाहिए ।"

**ततो विराटमूचुस्ते कीचकोऽस्याः कृते हतः ।**
**सहानेनाद्य दह्येम तदनुज्ञातुमर्हसि ॥७॥**

तब उन्होंने विराट से कहा—"इस सैरन्ध्री के कारण ही कीचक मारा गया है, अतः आज हम कीचक के शव के साथ इसे भी जला देना चाहते हैं । आप इसके लिए हमें आज्ञा प्रदान करें ।"

पराक्रमं तु सूतानां मत्वा राजान्वमोदत ।
सैरन्ध्र्याः सूतपुत्रेण सह दाहं विशाम्पतिः ॥८॥

राजा ने सूतपुत्रों के पराक्रम का विचार करके सैरन्ध्री को कीचक के साथ जला डालने की अनुमति प्रदान कर दी ।

तां समासाद्य वित्रस्तां कृष्णां कमललोचनाम् ।
मोमुह्यमानां ते तत्र जगृहुः कीचका भृशम् ॥९॥

फिर क्या था, उपकीचकों ने उसके पास जाकर भयभीत एवं मूर्च्छित हुई कमल-लोचना कृष्णा को बलपूर्वक पकड़ लिया ।

ततस्तु तां समारोप्य निबध्य च सुमध्यमाम् ।
जग्मुरुद्यम्य ते सर्वे श्मशानाभिमुखास्तदा ॥१०॥

तब उन्होंने सुन्दर कटिभागवाली उस देवी को टिकटी पर चढ़ाकर शव के साथ ही बाँध दिया । तत्पश्चात् वे सब लोग मृतक को उठाकर श्मशान-भूमि की ओर ले चले ।

ह्रियमाणा तु सा राजन् सूतपुत्रैरनिन्दिता ।
प्राक्रोशन्नाथमिच्छन्ती कृष्णा नाथवती सती ॥११॥

राजन् ! सूतपुत्रों द्वारा इस प्रकार ले जाई जाती हुई सती द्रौपदी सनाथा होकर भी [उस समय अनाथा-सी होने के कारण] नाथ=रक्षक की इच्छा करती हुई जोर-जोर से पुकारने लगी ।

द्रौपद्युवाच

जयो जयन्तो विजयो जयत्सेनो जयद्बलः ।
ते मे वाचं विजानन्तु सूतपुत्रा नयन्ति माम् ॥१२॥

**द्रौपदी बोली**—सूतपुत्र मुझे श्मशान-भूमि में लिये जा रहे हैं—जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल जहाँ भी हों, मेरी इस आर्त वाणी को सुनें और समझें ।

वैशम्पायन उवाच

तस्यास्ताः कृपणा वाचः कृष्णायाः परिदेवितम् ।
श्रुत्वैवाभ्यापतद् भीमः शयनादविचारयन् ॥१३॥

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! द्रौपदी की वह दीनवाणी और करुण-विलाप सुनते ही भीमसेन बिना कोई विचार किये शय्या से कूद पड़े ।

भीमसेन उवाच

अहं शृणोमि ते वाचं त्वया सैरन्ध्रि भाषिताम् ।
तस्मात् ते सूतपुत्रेभ्यो भयं भीरु न विद्यते ॥१४॥

**भीमसेन ने कहा**—सैरन्ध्रि ! तुम जो कुछ कह रही हो, तुम्हारी उस वाणी को मैं सुन रहा हूँ, अतः भीरु ! अब सूतपुत्रों से तुम्हें कोई भय नहीं होना चाहिए ।

वैशम्पायन उवाच

ततः स व्यायतं कृत्वा वेषं विपरिवर्त्य च ।
अद्वारेणाभ्यवस्कन्द्य निर्जगाम बहिस्तदा ॥१५॥

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—तत्पश्चात् अपने शरीर को बढ़ाकर और प्रयत्नपूर्वक वेष बदलकर वे बिना दरवाजे के ही दीवार फाँदकर पाकशाला से बाहर निकल गये ।

स भीमसेनः प्राकारादारुह्य तरसा द्रुमम् ।
श्मशानाभिमुखः प्रायाद् निःसृत्य च पुरोत्तमात् ॥१६॥

फिर वे नगर का परकोटा लाँघकर अति शीघ्रता से एक वृक्ष पर चढ़ गये [यह देखने के लिए कि उपकीचक द्रौपदी को किधर ले जा रहे हैं] । चारदीवारी को लाँघने के पश्चात् उस श्रेष्ठ नगर से निकलकर भीमसेन श्मशान-भूमि की दिशा में चल दिये ।

चिता समीपे गत्वा स तत्रापश्यद् वनस्पतिम् ।
तालमात्रं महास्कन्धं मूर्धशुष्कं विशाम्पते ॥१७॥

राजन् ! चिता के समीप पहुँचकर उन्होंने वहाँ ताड़ के बराबर एक वृक्ष देखा, जिसकी शाखाएँ बहुत बड़ी थीं और वह ऊपर से सूख गया था ।

तं नागवदुपक्रम्य बाहुभ्यां परिरभ्य च ।
स्कन्धमारोपयामस दशव्यामं परन्तपः ॥१८॥

उस वृक्ष की ऊँचाई दस व्याम[1] थी । शत्रुनाशक भीम ने उसे दोनों भुजाओं में भरकर और हाथी के समान जोर लगाकर उखाड़ा तथा अपने कन्धे पर रख लिया ।

स तं वृक्षं दशव्यामं सस्कन्धविटपं बली ।
प्रगृह्याभ्यद्रवत् सूतान् दण्डपाणिरिवान्तकः ॥१९॥

---

१. दोनों हाथों के फैलाने पर एक हाथ की अंगुलियों के सिरे से दूसरे हाथ की अंगुलियों की दूरी तक की लम्बाई को व्याम कहते हैं ।

शाखा-प्रशाखाओं के सहित उस दस व्याम ऊँचे वृक्ष को लेकर महाबली भीम दण्डपाणि यमराज के समान उन सूतपुत्रों की ओर दौड़े।

**ते तु दृष्ट्वा तदाऽऽविद्धं भीमसेनेन पादपम्।**
**विमुच्य द्रौपदीं तत्र प्राद्रवन्नगरं प्रति ॥२०॥**

इतने में ही भीमसेन के द्वारा घुमाये जाते हुए उस वृक्ष को देखकर, वे द्रौपदी को वहीं छोड़ नगर की ओर भागने लगे।

**द्रवतस्तांस्तु सम्प्रेक्ष्य वृक्षेणैतेन भूमिप।**
**शतं पञ्चाधिकं भीमः प्राहिणोद् यमसादनम् ॥२१॥**

हे पृथिवीनाथ! उन्हें भागते देख भीम ने उस वृक्ष से एक सौ पाँच उपकीचकों को यमराज के घर भेज दिया।

**तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं नरा नार्यश्च सङ्गताः।**
**विस्मयं परमं गत्वा नोचुः किञ्चन भारत ॥२२॥**

हे भारत! उस समय श्मशानभूमि में एकत्र बहुत-से पुरुष और स्त्रियों ने यह महान् आश्चर्यजनक दृश्य देखा, परन्तु भारी विस्मय में पड़कर किसी ने कहा कुछ नहीं।

**ते दृष्ट्वा निहतान्सूतान् राज्ञे गत्वा न्यवेदयन्।**
**गन्धर्वैर्निहता राजन् सूतपुत्रा महाबलाः ॥२३॥**

राजन्! सूतपुत्रों का यह संहार देख नगरवासियों ने राजा विराट के पास जाकर कहा—"महाराज! गन्धर्वों ने महाबली सूतपुत्रों को मार डाला।

**सैरन्ध्री च विमुक्तासौ पुनरायाति ते गृहम्।**
**सर्वं संशयितं राजन् नगरं ते भविष्यति ॥२४॥**

"सैरन्ध्री बन्धनमुक्त हो गई है। वह पुनः आपके महल की ओर आ रही है। उसके रहने से आपके सम्पूर्ण नगर का जीवन संकट में पड़ जाएगा।

**यथा सैरन्ध्रिदोषेण न ते राजन्निदं पुरम्।**
**विनाशमेति वै क्षिप्रं तथा नीतिर्विधीयताम् ॥२५॥**

"हे राजन्! आप शीघ्र ही कोई ऐसी नीति अपनाएँ, जिससे सैरन्ध्री के दोष से आपका यह नगर नष्ट न हो जाए।"

**तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विराटो वाहिनीपतिः।**
**अब्रवीत् क्रियतामेषां सूतानां परमक्रिया ॥२६॥**

उनकी यह बात सुनकर सेनाओं के स्वामी राजा विराट ने कहा—"इन सूतपुत्रों का अन्त्येष्टि-संस्कार किया जाए।"

**सुदेष्णामब्रवीद् राजा महिषीं जातसाध्वसः।**
**सैरन्ध्रीमागतां ब्रूया ममैव वचनादिदम् ॥२७॥**

तत्पश्चात् राजा ने भयभीत होकर रानी सुदेष्णा के पास जाकर कहा—"देवि! जब सैरन्ध्री यहाँ आये तो मेरी ओर से उसे यह कहना—

**गच्छ सैरन्ध्रि भद्रं ते यथाकामं वरानने।**
**बिभेति राजा सुश्रोणि गन्धर्वेभ्यः पराभवात् ॥२८॥**

"सैरन्ध्री! तुम्हारा कल्याण हो। वरानने! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, तुम वहाँ चली जाओ। सुश्रोणी! गन्धर्वों के तिरस्कार से राजा डरते हैं।

**न हि त्वामुत्सहते वक्तुं स्वयं गन्धर्वरक्षिताम्।**
**स्त्रियास्त्वदोषस्तां वक्तुमतस्त्वां प्रब्रवीम्यहम् ॥२९॥**

"तुम गन्धर्वों से सुरक्षित हो, अतः पुरुष होने के कारण मैं स्वयं तुम से कोई बात नहीं कह सकता, परन्तु स्त्री के मुख से तुम्हारे प्रति यह सब कहलाने में दोष नहीं है, अतः अपनी पत्नी द्वारा मैं स्वयं ही तुमसे यह बात कह रहा हूँ।"

**अथ मुक्ता भयात् कृष्णा सूतपुत्रान् निरस्य च।**
**मोक्षिता भीमसेनेन जगाम नगरं प्रति ॥३०॥**

उधर जब वीर भीमसेन ने सूतपुत्रों को मारकर द्रौपदी के बन्धन खोल दिये, तब वह भयमुक्त होकर नगर की ओर चली।

**तां दृष्ट्वा पुरुषा राजन् प्राद्रवन्त दिशो दश।**
**गन्धर्वाणां भयत्रस्ताः केचिद् दृष्ट्वा न्यमीलयन् ॥३१**

हे जनमेजय! उस समय उस द्रौपदी को देखकर गन्धर्वों के भय से भयभीत मनुष्य दशों दिशाओं में भागने लगे। किसी-किसी ने उसे देखकर अपनी आँखें मूँद लीं।

**ततः सा नर्तनागारे धनञ्जयमपश्यत।**
**राज्ञः कन्या विराटस्य नर्तयानं महाभुजम् ॥३२॥**

राजन्! नगर की ओर बढ़ते हुए द्रौपदी ने नृत्यशाला में पहुँचकर महाबाहु अर्जुन को देखा जो राजा विराट की कन्याओं को नृत्य सिखा रहे थे।

**ततस्ता नर्तनागाराद् विनिष्क्रम्य सहार्जुनाः ।**
**कन्या ददृशुरायान्तीं क्लिष्टां कृष्णामनागसाम् ॥३३**

उसके आने का समाचार पाकर अर्जुनसहित वे सब कन्याएँ नृत्यशाला से बाहर निकलीं और वहाँ आती हुई निरपराध तथा सतायी गई द्रौपदी को देखने लगीं ।

कन्या ऊचुः

**दिष्टचा सैरन्ध्रि मुक्तासि दिष्टचासि पुनरागता ।**
**दिष्टचा विनिहताः सूता ये त्वां क्लिश्यन्त्यनागसाम्**

**कन्याएँ बोलीं**—हे सैरन्ध्री ! सौभाग्य की बात है कि तुम संकट-मुक्त हो गईं तथा सौभाग्य से पुनः यहाँ लौट आईं । जो सूतपुत्र निरपराध तुझे कष्ट दे रहे थे, वे मार दिये गये—यह भी सौभाग्य की बात है ।

बृहन्नलोवाच

**कथं सैरन्ध्रि मुक्तासि कथं पापाश्च ते हताः ।**
**इच्छामि वै तव श्रोतुं सर्वमेव यथातथम् ॥३५॥**

**बृहन्नला ने पूछा**—सैरन्ध्री ! तू उन पापियों के हाथ से कैसे छूटी ? वे पापी कैसे मारे गये ? मैं ये सब बातें तेरे मुख से ज्यों-की-त्यों सुनना चाहती हूँ ।

सैरन्ध्री-उवाच

**बृहन्नले नु किं तेऽद्य सैरन्ध्रचा कार्यमस्ति वै ।**
**या त्वं वससि कल्याणि सदा कन्यापुरे सुखम् ॥३६॥**

**सैरन्ध्री बोली**—बृहन्नले ! अब तुम्हें सैरन्ध्री से क्या काम है ? हे कल्याणी ! तुम तो मौज से इन कन्याओं के अन्तःपुर में रहती हो ।

**न हि दुःखं समाप्नोषि सैरन्ध्री यदुपाश्नुते ।**
**तेन मां दुःखितामेवं पृच्छसि प्रहसन्निव ॥३७॥**

सैरन्ध्री जो दुःख भोग रही है, तुम उसे दूर तो करोगी नहीं अथवा उसका अनुभव तो तुम्हें होता नहीं, केवल मुझ दुखिया की हँसी उड़ाने के लिए ऐसा प्रश्न पूछ रही हो ?

बृहन्नलोवाच

**बृहन्नला सुकल्याणि दुःखमाप्नोत्यनुत्तमम् ।**
**तिर्यग्योनिगता बाले न चैनामवबुध्यसे ॥३८॥**

**बृहन्नला ने कहा**—हे कल्याणी ! पशुओं की-सी नीच अथवा नपुंसक योनि में पड़कर बृहन्नला भी महान् दुःख भोग रही है । तू भोली-भाली है, अतः बृहन्नला को नहीं समझ पाती ।

**न तु केनचिदत्यन्तं कस्यचिद्धृदयं क्वचित् ।**
**वेदितुं शक्यते नूनं तेन मां नावबुध्यसे ॥३९॥**

निश्चय ही, कोई अन्य व्यक्ति किसी दूसरे के हृदय को पूर्णरूप से नहीं समझ सकता, यही कारण है कि तुम मुझे नहीं समझ पातीं, मेरे कष्ट का अनुभव नहीं कर पातीं ।

वैशम्पायन उवाच

**ततः सहैव कन्याभिर्द्रौपदी राजवेश्म तत् ।**
**प्रविवेश सुदेष्णायाः समीपमुपगामिनी ॥४०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तत्पश्चात् उन कन्याओं के साथ ही द्रौपदी राज-भवन में गई और रानी सुदेष्णा के पास जाकर खड़ी हो गई ।

**तामब्रवीद् राजपुत्री विराटवचनादिदम् ।**
**सैरन्ध्रि गम्यतां शीघ्रं यत्र कामयसे गतिम् ॥४१॥**

तब राजपुत्री सुदेष्णा ने विराट के कथनानुसार उससे कहा—"हे सैरन्ध्री ! तुम जहाँ जाना चाहो, शीघ्र चली जाओ ।

**राजा बिभेति ते भद्रे गन्धर्वेभ्यः पराभवात् ।**
**त्वं चापि तरुणी सुभ्रु रूपेणाप्रतिमा भुवि ।**
**पुंसामिष्टश्च विषयो गन्धर्वाश्चातिकोपनाः ॥४२॥**

"हे भद्रे ! तुम्हारे गन्धर्वों द्वारा प्राप्त होनेवाले पराभव से महाराज डरते हैं । सुभ्रु ! तुम अभी तरुणी हो । रूप-सौंदर्य में तुम्हारी समता करनेवाली कोई भी स्त्री इस भू-मण्डल में नहीं है । पुरुषों को विषय-भोग प्रिय होता है [उनसे प्रमाद होना सम्भव है] उधर तुम्हारे गन्धर्व बड़े क्रोधी हैं [पता नहीं, कब क्या कर बैठें] ।

सैरन्ध्री-उवाच

**त्रयोदशाहमात्रं मे राजा क्षाम्यतु भामिनि ।**
**कृतकृत्या भविष्यन्ति गन्धर्वास्ते न संशयः ॥४३॥**

**सैरन्ध्री ने कहा**—भामिनी ! केवल तेरह दिन के लिए महाराज मुझे और क्षमा कर दें । निःसन्देह तबतक गन्धर्वों का अभीष्ट कार्य पूर्ण हो जाएगा—वे कृतकृत्य हो जाएँगे ।

**ततो मामुपनेष्यन्ति करिष्यन्ति च ते प्रियम् ।**
**ध्रुवं च श्रेयसे राजा योक्ष्यते सह बान्धवैः ।।४४।।**

इसके पश्चात् वे मुझे ले जाएँगे और आपका भी प्रिय करेंगे। गन्धर्वों की प्रसन्नता से राजा विराट निश्चय ही अपने भाई-बन्धुओंसहित परम कल्याण के भागी होंगे ।

**इति महाभारते विराटपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ।।८।।**

# नवमोऽध्यायः

## पाण्डवों का पता लगाने के सम्बन्ध में दुर्योधन की राज-सभा में विचार-विमर्श

वैशम्पायन उवाच

**अथ वै धार्तराष्ट्रेण प्रयुक्ता ये बहिश्चराः ।**
**मृगयित्वा बहून् ग्रामान् राष्ट्राणि नगराणि च ।।१।।**
**संविधाय यथादृष्टं यथादेशप्रदर्शनम् ।**
**कृतकृत्या न्यवर्तन्त ते चरा नगरं प्रति ।।२।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—इधर अज्ञातवास की अवस्था में पाण्डवों का पता लगाने के लिए दुर्योधन ने जो बाहर देशों में विचरनेवाले गुप्तचर लगा रखे थे, वे अनेक ग्राम, राष्ट्र और नगरों में उन्हें ढूँढ़कर, जैसा वे देख या पता लगा सकते थे, अथवा जिन-जिन देशों में छान-बीन कर सकते थे, उन सभी देशों में देख-भालकर तथा अपना कार्य सम्पन्न करके हस्तिनापुर में लौट आये ।

**तत्र दृष्ट्वा तु राजानं कौरव्यं धृतराष्ट्रजम् ।**
**दुर्योधनं सभामध्ये आसीनमिदमब्रुवन् ।।३।।**

वहाँ वे राज-सभा के मध्य में विराजमान धृतराष्ट्र-पुत्र कुरुनन्दन दुर्योधन से मिले। उससे मिलकर गुप्तचरों ने कहा—

चरा ऊचुः

**नरेन्द्र बहुशोऽन्विष्टा नैव विद्मश्च पाण्डवान् ।**
**अत्यन्तं वा विनष्टास्ते भद्रं तुभ्यं नरर्षभ ।।४।।**

हे नरश्रेष्ठ महाराज ! हमने पाण्डवों की बहुत खोज की, परन्तु उनका कहीं भी पता नहीं लगा। आपका कल्याण हो । सम्भव है वे सर्वथा नष्ट ही हो गये हों ।

**मृगयित्वा यथान्यायं वेदितार्थाः स्म तत्त्वतः ।**
**प्राप्ता द्वारवतीं सूता विना पार्थैः परन्तप ।।५।।**

हे शत्रुसंतापक ! अच्छी प्रकार खोज करके हमने एक यथार्थ बात का ठीक-ठीक पता लगा लिया है वह यह कि पाण्डवों के सब सारथि उनके बिना ही द्वारकापुरी में पहुँच गये हैं ।

**सर्वथा विप्रणष्टास्ते नमस्ते भरतर्षभ ।**
**न हि विद्मो गतिं तेषां वासं वापि महात्मनाम् ।।६।।**
**पाण्डवानां प्रवृत्तिं च विद्मः कर्मापि वा कृतम् ।**
**स नः शाधि मनुष्येन्द्र अत ऊर्ध्वं विशाम्पते ।।७।।**

प्रतीत होता है, वे सर्वथा नष्ट हो गये । भरत-श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है । हम महात्मा पाण्डवों के मार्ग, निवास-स्थान, प्रवृत्ति अथवा उनके द्वारा किये हुए कार्य के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त नहीं कर सके । प्रजापालक नरेश ! अब आगे हमारे लिए क्या आज्ञा है ?

**इमां च नः प्रियां वीर वाचं भद्रवतीं शृणु ।**
**येन त्रिगर्ता निहता बलेन महता नृप ।।८।।**
**सूतेन राज्ञो मत्स्यस्य कीचकेन बलीयसा ।**
**स हतः पतितः शेते गन्धर्वैर्निशि भारत ।।९।।**

हमारी एक और बात सुनिए। यह आपको प्रिय लगेगी। इसमें आपके लिए एक मङ्गलदायक समाचार है । हे राजन् ! मत्स्यराज विराट के जिस महाबली सेनापति सूतपुत्र कीचक ने बहुत बड़ी सेना के द्वारा त्रिगर्त देश और वहाँ के निवासियों को तहस-नहस कर दिया था, हे भारत ! वह रात्रि में गन्धर्वों के द्वारा मारा जाकर श्मशान-भूमि में सो रहा है।

वैशम्पायन उवाच

**ततो दुर्योधनो राजा ज्ञात्वा तेषां वचस्तदा ।**
**चिरमन्तर्मना भूत्वा प्रत्युवाच सभासदः ।।१०।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—दूतों की बात सुनकर राजा दुर्योधन उनकी बात पर मन-ही-मन बहुत देर तक विचारता रहा । फिर उसने सभासदों से कहा—

**अल्पावशिष्टं कालस्य गतभूयिष्ठमन्ततः ।**
**तेषामज्ञातचर्यायामस्मिन् वर्षे त्रयोदशे ।।११।।**

"इस तेरहवें वर्ष में भी पाण्डवों के अज्ञातवास का अधिकांश समय व्यतीत हो चुका है, अब थोड़े ही दिन शेष हैं।

**अस्य वर्षस्य शेषं चेद् व्यतीयुरिह पाण्डवाः ।**
**निवृत्तसमयास्ते हि सत्यव्रतपरायणाः ।।१२।।**
**क्षरन्त इव नागेन्द्राः सर्वे ह्याशीविषोपमाः ।**
**दुःखा भवेयुः संरब्धाः कौरवान् प्रति ते ध्रुवम् ।।१३।।**

"यदि पाण्डवों ने शेष समय इसी प्रकार व्यतीत कर लिया तो वे प्रतिज्ञा-पालन के भार से मुक्त हो जाएँगे। फिर तो वे सत्यव्रती पाण्डव मद की धारा बहानेवाले गजराजों और विषधर सर्पों के समान क्रोध में भरकर कौरवों के लिए निश्चय ही दुःखदायी हो जाएँगे।

**तस्मात् क्षिप्रं बुभूषध्वं यथा तेऽत्यन्तमव्ययम् ।**
**राज्यं निर्द्वन्द्वमव्यग्रं निःसपत्नं चिरं भवेत् ।।१४।।**

"वे ऐसा वेश धारण करके छिपे होंगे जिससे उन्हें पहचानना कठिन हो गया है। आप लोग शीघ्र उनका पता लगाने की चेष्टा करें। ऐसा होने पर ही मेरा यह राज्य दीर्घ समय के लिए निर्द्वन्द्व, व्यग्रताशून्य और निष्कण्टक हो सकेगा।"

**अथाब्रवीत् ततः कर्णः क्षिप्रं गच्छन्तु भारत ।**
**अन्ये धूर्ता नरा दक्षा निभृताः साधुकारिणः ।।१५।।**

यह सुनकर कर्ण ने कहा—"हे भारत! तब शीघ्र ही अन्य कार्यकुशल गुप्तचर भेजे जाएँ जो धूर्त होने के साथ ही छिपे रहकर अपना कार्य अच्छी प्रकार कर सकें।"

दुःशासन उवाच

**येषु नः प्रत्ययो राजँश्चारेषु मनुजाधिप ।**
**ते यान्तु दत्त देया वै भूयस्तान् परिमार्गितुम् ।।१६।।**

**दुःशासन बोला**—हे राजन्! नरेश्वर! जिन गुप्तचरों पर हमारा अधिक विश्वास हो, उन्हें देने योग्य सब साधन प्रदान करके पुनः पाण्डवों की खोज के लिए भेजा जाए।

**अत्यन्तं वा निगूढास्ते पारं चोर्मिमतो गताः ।**
**व्यालश्चापि महारण्ये भक्षिताः शूरमानिनः ।।१७।।**

या तो वे अत्यधिक गुप्त स्थान में जा छिपे हैं अथवा समुद्र के पार चले गये हैं। यह भी सम्भव है कि अपने को शूरवीर माननेवाले उन पाण्डवों को किसी महान् वन में अजगर निगल गये हों।

द्रोण उवाच

**न तादृशा विनश्यन्ति न प्रयान्ति पराभवम् ।**
**शूराश्च कृतविद्याश्च बुद्धिमन्तो जितेन्द्रियाः ।**
**धर्मज्ञाश्च कृतज्ञाश्च धर्मराजमनुव्रताः ।।१८।।**

**द्रोणाचार्य ने कहा**—पाण्डव शूरवीर, विद्वान्, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ, कृतज्ञ तथा अपने बड़े भाई धर्मराज की आज्ञा का पालन करनेवाले हैं। ऐसे महापुरुष न तो नष्ट हो सकते हैं और न किसी से पराजित या तिरस्कृत ही हो सकते हैं।

**सर्वे यत्नात् प्रतीक्षन्ते कालस्योदयमागतम् ।**
**न हि ते नाशमृच्छेयुरिति पश्याम्यहं धिया ।।१९।।**

मैं अपने अनुभव और बुद्धि की दृष्टि से देख रहा हूँ कि पाण्डव लोग अपने अनुकूल समय आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, वे नष्ट नहीं हो सकते।

**साम्प्रतं चैव यत्कार्यं तच्च क्षिप्रमकालिकम् ।**
**क्रियतां साधु संचिन्त्य वासश्चैषां प्रचिन्त्यताम् ।।२०।।**

इस समय जो कुछ करना है, वह खूब सोच-विचार कर शीघ्र करना चाहिए। पाण्डवों के निवास-स्थान का ही ठीक-ठीक पता लगाना चाहिए।

**विज्ञाय क्रियतां तस्माद् भूयश्च मृगयामहे ।**
**ब्राह्मणैश्चारकैः सिद्धैर्ये चान्ये तद्विदो जनाः ।।२१।।**

खूब सोच-विचारकर ही हमें कोई कार्य करना चाहिए। ब्राह्मण, गुप्तचर, सिद्ध-पुरुष अथवा अन्य जो लोग उन्हें पहचानते हों, उनके द्वारा पुनः उनकी खोज करानी चाहिए।

भीष्म उवाच

**सर्वलक्षणसम्पन्नाः साधुव्रतसमन्विताः ।**
**श्रुतव्रतोपपन्नाश्च नानाश्रुतिसमन्विताः ।।२२।।**
**वृद्धानुशासने युक्ताः सत्यव्रतपरायणाः ।**
**समयं समयज्ञास्ते पालयन्तः शुचिव्रताः ।।२३।।**

पाण्डव समस्त शुभ-लक्षणों से सम्पन्न, साधु-पुरुषोचित नियमों तथा व्रतों के पालने में तत्पर, वेदोक्त व्रतों के पालक, नाना प्रकार की श्रुतियों के

ज्ञाता, वृद्धों के सदुपदेश और आदेश के पालन में संलग्न (तत्पर), सत्यव्रत-परायण तथा शुद्धव्रत धारण करनेवाले हैं। वे अज्ञातवास के नियत समय को जानते हैं, अतः उसका पालन कर रहे हैं।

**धर्मतश्चैव गुप्तास्ते सुवीर्येण च पाण्डवाः।**
**न नाशमधिगच्छेयुरिति मे धीयते मतिः ॥२४॥**

पाण्डव अपने धर्म तथा उत्तम पराक्रम से सुरक्षित हैं, अतः वे नष्ट नहीं हो सकते—यह मेरा सुनिश्चित विचार है।

**तत्र बुद्धिं प्रवक्ष्यामि पाण्डवान् प्रति भारत।**
**दानशीलो वदान्यश्च निभृतो ह्रीनिषेवकः।**
**जनो जनपदे भाव्यो यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥२५॥**

हे भरतनन्दन ! पाण्डवों के विषय में मेरी बुद्धि का जो निश्चय है, मैं उसे बताता हूँ। जहाँ राजा युधिष्ठिर निवास करेंगे, उस जनपद के लोग दान-शील, उदार, विनीत और लज्जाशील होने चाहिएँ।

**प्रियवादी सदा दान्तो भव्यः सत्यपरो जनः।**
**हृष्टः पुष्टः शुचिर्दक्षो यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥२६॥**

जहाँ राजा युधिष्ठिर का निवास होगा, वहाँ के मनुष्य सदा मधुरभाषी, जितेन्द्रिय, कल्याण-भागी, सत्यपरायण, हृष्ट-पुष्ट, पवित्र और कार्यकुशल होंगे।

**नासूयको न चापीर्ष्युर्नाभिमानी न मत्सरी।**
**भविष्यति जनस्तत्र स्वयं धर्ममनुव्रतः ॥२७॥**

वहाँ न तो कोई दूसरे के दोष देखनेवाला होगा और न ईर्ष्यालु। न किसी में अभिमान होगा और न मात्सर्य=द्वेष। वहाँ के सब लोग स्वयं ही धर्म में तत्पर होंगे।

**ब्रह्मघोषाश्च भूयांसः पूर्णाहुत्यस्तथैव च।**
**क्रतवश्च भविष्यन्ति भूयांसो भूरिदक्षिणाः ॥२८॥**

उस देश या जनपद में वेद की ध्वनि खूब गूँजती होगी। यज्ञ में पूर्णाहुतियाँ दी जाती होंगी और बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले, बहुत-से यज्ञ हो रहे होंगे।

**सदा च तत्र पर्जन्यः सम्यग्वर्षी न संशयः।**
**मही सम्पन्नसस्या च निरातङ्का भविष्यति ॥२९॥**

वहाँ मेघ सदा ठीक समय पर वर्षा करते होंगे, इसमें कोई संशय नहीं है। वहाँ की भूमि पर खेती लहलहाती होगी तथा वहाँ निवास करनेवाली प्रजा सर्वथा निर्भय होगी।

**गुणवन्ति च धान्यानि रसवन्ति फलानि च।**
**गन्धवन्ति च माल्यानि शुभशब्दा च भारती ॥३०॥**

वहाँ गुण-युक्त धान्य, रस-युक्त फल, सुगन्ध-युक्त माला और माङ्गलिक शब्दों से युक्त-वाणी सुलभ होगी।

**वायुश्च सुखसंस्पर्शो निष्प्रतीपं च दर्शनम्।**
**न भयं त्वाविशेत् तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥३१॥**

जहाँ राजा युधिष्ठिर होंगे, वहाँ सुख-स्पर्शी शीतल एवं मन्द वायु बहेगी। धर्म और ब्रह्म के स्वरूप का विचार पाखण्ड-शून्य होगा। वहाँ भय का प्रवेश नहीं हो सकता।

**गावश्च बहुलास्तत्र न कृशा न च दुर्बलाः।**
**पयांसि दधिसर्पींषि रसवन्ति हितानि च ॥३२॥**

उस जनपद में गौओं की अधिकता होगी तथा वे गौएँ कृश या दुर्बल न होकर खूब हृष्ट-पुष्ट होंगी। उनके दूध, दही और घी भी बड़े स्वादिष्ट और हितकारी होंगे।

**धर्माश्च तत्र सर्वैस्तु सेविताश्च द्विजातिभिः।**
**स्वैः स्वैर्गुणैश्च संयुक्ता अस्मिन् वर्षे त्रयोदशे ॥३३॥**

इस तेरहवें वर्ष में राजा युधिष्ठिर जहाँ कहीं भी होंगे, वहाँ के समस्त द्विज अपने-अपने धर्मों का पालन करते होंगे और प्रत्येक वर्ण भी अपने-अपने गुण तथा प्रभाव से सम्पन्न होगा।

**तस्मात् तत्र निवासं तु छन्नं यत्नेन धीमतः।**
**गतिं च परमां तत्र नोत्सहे वक्तुमन्यथा ॥३४॥**

अतः जहाँ ऐसे लक्षण पाये जाएँ, वहीं बुद्धिमान् युधिष्ठिर का यत्नपूर्वक छिपाया हुआ निवास-स्थान हो सकता है, वहीं उनका उत्कृष्ट आश्रय होना सम्भव है। इसके विपरीत मैं और कोई बात नहीं कह सकता।

**एवमेतत् तु संचिन्त्य यत्कृतं मन्यसे हितम्।**
**तत् क्षिप्रं कुरु कौरव्य यद्येवं श्रद्दधासि मे ॥३५॥**

कुरुनन्दन ! यदि मेरी बातों पर तुम्हें विश्वास हो तो सोच-विचार कर जिस कार्य को करने में तुम्हें अपना हित जान पड़े, उसे शीघ्र करो।

वैशम्पायन उवाच

**ततः शारद्वतो वाक्यमित्युवाच कृपस्तदा ।**
**युक्तं प्राप्तं च वृद्धेन पाण्डवान् प्रति भाषितम् ।।३६।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन् ! तत्पश्चात् शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य ने कहा, "राजन् ! वयोवृद्ध भीष्मजी ने पाण्डवों के विषय में जो कुछ कहा है, वह युक्ति-युक्त तो है ही, अवसर के अनुकूल भी है।"

**ततो दुर्योधनो वाक्यं श्रुत्वा तेषां महात्मनाम् ।**
**मुहूर्तमिव संचिन्त्य सचिवानिदमब्रवीत् ।।३७।।**

हे राजन् ! तदनन्तर दुर्योधन उन महात्माओं के वचन सुनकर दो घड़ी तक कुछ विचार करता रहा, फिर अपने मन्त्रियों से इस प्रकार बोला—

दुर्योधन उवाच

**सत्त्वे बाहुबले धैर्ये प्राणे शारीरसम्भवे ।**
**साम्प्रतं मानुषे लोके सदैत्यनरराक्षसे ।।३८।।**
**चत्वारस्तु नरव्याघ्रा बले शक्रोपमा भुवि ।**
**बलदेवश्च भीमश्च मद्रराजश्च वीर्यवान् ।।३९।।**
**चतुर्थः कीचकस्तेषां पञ्चमं नानुशुश्रुमः ।**
**अन्योन्यानन्तरबलाः परस्परजयैषिणः ।।४०।।**

**दुर्योधन बोला**—इस समय मनुष्य-लोक में दैत्य, मानव और राक्षसों में चार ही ऐसे पुरुषसिंह सुने जाते हैं जो आत्मबल, बाहुबल, धैर्य तथा शारीरिक शक्ति में इन्द्र के समान हैं। उनके नाम हैं—बलदेव, भीमसेन, पराक्रमी मद्रराज शल्य तथा चौथा कीचक। इनके समान कोई पाँचवाँ वीर मेरे सुनने में नहीं आया। ये सभी परस्पर समान बलशाली तथा अवसर आने पर एक-दूसरे को जीतने के लिए उत्सुक रहे हैं।

**तत्राहं कीचकं मन्ये भीमसेनेन मारितम् ।**
**सैरन्ध्रीं द्रौपदीं मन्ये नात्र कार्या विचारणा ।।४१।।**

मैं ऐसा समझता हूँ कि विराटनगर में कीचक को भीमसेन ने ही मारा है। सैरन्ध्री को मैं द्रौपदी मानता हूँ। इस विषय में अब अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

**पितामहेन ये चोक्ता देशस्य च जनस्य च ।**
**गुणास्ते मत्स्यराष्ट्रस्य बहुशोऽपि मया श्रुताः ।।४२।।**

पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर के निवास के प्रभाव से देश और जन-समुदाय के जो-जो गुण बताये हैं, उनमें से भी बहुत-से गुण मत्स्यराष्ट्र में मेरे सुनने में आये हैं। [अतः मैं समझता हूँ कि पाण्डव विराटनगर में छिपे हुए हैं।]

**तस्मात् कर्तव्यमेतद् वै तत्र यात्रा विधीयताम् ।**
**एतत् सुनीतं मन्येऽहं सर्वेषां यदि रोचते ।।४३।।**

अतः निश्चय ही मत्स्यदेश की यात्रा अथवा उस पर आक्रमण किया जाए। यदि आप सबको उचित जान पड़े, तो मैं इस कार्य को नीति के अनुकूल मानता हूँ।

**इति महाभारते विराटपर्वणि नवमोऽध्यायः ।।९।।**

## दशमोऽध्यायः

**सुशर्मा के प्रस्तावानुसार मत्स्यदेश पर धावा, पाण्डवोंसहित मत्स्यराज का युद्ध के लिए प्रस्थान, सुशर्मा की पराजय, विराट द्वारा पाण्डवों का सम्मान**

वैशम्पायन उवाच

**अथ राजा त्रिगर्तानां सुशर्मा रथयूथपः ।**
**प्राप्तकालमिदं वाक्यमुवाच त्वरितो बली ।।१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तत्पश्चात् त्रिगर्त देश के राजा महाबली सुशर्मा ने, जो रथियों के समूह का अधिपति था, अति उतावली के साथ अपना यह समयोचित प्रस्ताव उपस्थित किया—

**असकृन्निकृताः पूर्वं कीचकेन पुनः पुनः ।**
**बाधितो बन्धुभिः सार्धं बलाद् बलवता विभो ।।२।।**

"हे प्रभो ! सूतपुत्र कीचक ने अपने बन्धुओं के साथ बार-बार आक्रमण करके हमें कष्ट दिया है और बलपूर्वक सताया है—

**क्रूरोऽमर्षो स दुष्टात्मा भुवि विख्यातविक्रमः ।**
**निहतः स तु गन्धर्वैः पापकर्मा नृशंसवान् ।।३।।**

"वह दुष्टात्मा अति क्रूर और क्रोधी था। वह अपने पराक्रम के लिए विश्व में प्रसिद्ध था। अब वह निर्दय और पापाचारी कीचक गन्धर्वों द्वारा मार डाला गया है।

**तस्मिन् विनिहते राजा हतदर्पो निराश्रयः ।**
**भविष्यति निरुत्साहो विराट इति मे मतिः ।।४।।**

"उसके मारे जाने पर राजा विराट का गर्व खर्व—चूर-चूर हो गया होगा। अब वह निराधार तथा निरुत्साह हो गया होगा—ऐसा मेरा विश्वास है।

**तत्र यात्रा मम मता यदि ते रोचतेऽनघ ।**
**कौरवाणां च सर्वेषां कर्णस्य च महात्मनः ।।५।।**

"हे निष्पाप ! यदि आपको उचित प्रतीत हो तो मेरी सम्मति यह है कि समस्त कौरव वीरों और महामना कर्ण द्वारा उस देश पर आक्रमण हो।

**आददामोऽस्य रत्नानि विविधानि वसूनि च ।**
**ग्रामान् राष्ट्राणि वा तस्य हरिष्यामो विभागशः ।।६।।**

"राजा विराट के यहाँ नाना-प्रकार के धन और रत्न हैं। हम वे सब ले लेंगे और उनके गाँव तथा सम्पूर्ण राष्ट्र को जीतकर आपस में बाँट लेंगे।

**अथ वा गोसहस्राणि शुभानि च बहूनि च ।**
**विविधानि हरिष्यामः प्रतिपीड्य पुरं बलात् ।।७।।**

"अथवा उनके यहाँ सहस्रों सुन्दर गौओं के बहुत-से समुदाय हैं। हम बलपूर्वक उनके नगर में उत्पात मचाकर उन समस्त गौओं का अपहरण कर लेंगे।"

**तत् श्रुत्वा वचनं तस्य कर्णो राजानमब्रवीत् ।**
**सूक्तं सुशर्मणा वाक्यं प्राप्तकालं हितं च नः ।।८।।**

त्रिगर्तराज का यह कथन सुनकर कर्ण ने राजा दुर्योधन से कहा—"सुशर्मा ने उचित ही कहा है, यह प्रस्ताव समयोचित होने के साथ ही हमारे लिए हितकर भी है।"

**ततो दुर्योधनो राजा क्षिप्रमाज्ञापयत् स्वयम् ।**
**प्रागेव हि सुसंवीतो मत्स्यस्य विषयं प्रति ।।९।।**
**जघन्यतो वयं तत्र यास्यामो दिवसान्तरे ।**
**विषयं मत्स्यराजस्य सुसमृद्धं सुसंहताः ।।१०।।**

कर्ण की बात सुनकर दुर्योधन ने स्वयं ही तुरन्त आदेश दे दिया—"सब साधनों से सम्पन्न हो पहले सुशर्मा मत्स्य देश पर आक्रमण करें, फिर एक दिन पश्चात् हम लोग भी पूर्णतः संगठित हो मत्स्यनरेश के समृद्धिशाली राज्य पर धावा बोल दें।"

**ततस्त्रयोदशस्यान्ते तस्य वर्षस्य भारत ।**
**सुशर्मणा गृहीतं तद् गोधनं तरसा बहु ।।११।।**

हे भारत ! तब विराट नगर में जाकर तेरहवें वर्ष के अन्त में सुशर्मा ने बड़े वेग से आक्रमण करके विराट की बहुत-सी गौओं को अपने अधिकार में कर लिया।

**ततो जवेन महता गोपः पुरमथाव्रजत् ।**
**सोऽब्रवीदुपसङ्गम्य विराटं प्रणतस्तदा ।।१२।।**
**अस्मान् युधि विनिर्जित्य परिभूय सबान्धवान् ।**
**गवां शतसहस्राणि त्रिगर्ताः कालयन्ति ते ।।१३।।**

तब उन गौओं का रक्षक गोप अत्यन्त तीव्र गति से नगर में आया। वह विराट के समीप जाकर तथा उन्हें प्रणाम करके बोला—"महाराज ! त्रिगर्त देश के सैनिक हमें युद्ध में जीतकर और भाई-बन्धुओं-सहित हमारा तिरस्कार करके आपकी बहुत-सी गौओं को हाँककर लिये जा रहे हैं।

**तान् परीप्सस्व राजेन्द्र मा नेशुः पशवस्तव ।**
**तत् श्रुत्वा नृपतिः सेनां मत्स्यानां समयोजयत् ।।१४।।**

"हे राजेन्द्र ! उन्हें वापस लेने—छुड़ाने की चेष्टा कीजिए जिससे आपके वे पशु नष्ट न हो जाएँ—आपके हाथ से न निकल जाएँ।" यह सुनकर विराट ने मत्स्य देश की सेना एकत्र की।

**अथ मत्स्योऽब्रवीद् राजा शतानीकं जघन्यजम् ।**
**कङ्कबल्लवगोपाला दामग्रन्थिश्च वीर्यवान् ।।१५।।**
**युध्येयुरिति मे बुद्धिर्वर्तते नात्र संशयः ।**
**एतेषामपि दीयन्तां रथा ध्वजपताकिनः ।।१६।।**

तत्पश्चात् मत्स्यराज ने अपने छोटे भाई शतानीक से कहा—"भैया ! मेरे विचार में यह बात आती है कि यह कङ्क, बल्लव, तन्तिपाल और ग्रन्थिक भी युद्ध कर सकते हैं इसमें संशय नहीं है, अतः इनके लिए भी ध्वजा और पताकाओं से सुशोभित रथ दो।"

**एतत् श्रुत्वा तु नृपतेर्वाक्यं त्वरितमानसः ।**
**शतानीकस्तु पार्थेभ्यो रथान् राजन् समादिशत् ।।१७।।**

जनमेजय ! राजा का यह वचन सुनकर शतानीक ने उतावले मन से कुन्तीपुत्रों के लिए शीघ्रतापूर्वक रथ लाने का आदेश दिया।

**रथान् हयैः सुसम्पन्नानास्थाय च नरोत्तमाः ।**
**निर्ययुर्मुदिताः पार्थाः शत्रुसंघावमर्दिनः ।।१८।।**

शत्रु-समूह को कुचल डालनेवाले नरश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र घोड़े जुते हुए रथों पर बैठकर बड़ी प्रसन्नता के साथ राजभवन से बाहर निकले।

**निर्याय नगराच्छूरा व्यूढानीकाः प्रहारिणः।**
**त्रिगर्तानस्पृशन् मत्स्याः सूर्ये परिणते सति ॥१९॥**

राजन्! नगर से निकलकर प्रहार करने में कुशल वे मत्स्यदेशीय वीर योद्धा अपनी सेना का व्यूह बनाकर चले और सूर्य के अस्त होते-होते उन्होंने त्रितर्गों को जा पकड़ा।

**ते त्रिगर्ताश्च मत्स्याश्च संरब्धा युद्धदुर्मदाः।**
**अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोषु गृद्धा महाबलाः ॥२०॥**

फिर तो क्रोध में भरकर युद्ध के लिए उन्मत्त हुए वे त्रिगर्त और मत्स्यदेश के महाबली वीर गौओं को ले जाने की इच्छा से एक-दूसरे को लक्ष्य करके गर्जने लगे।

**देवासुरसमो राजन्नासीत् सूर्ये विलम्बति।**
**पदातिरथनागेन्द्रहयारोहबलौघवान् ॥२१॥**

हे राजन्! जब सूर्य पश्चिम की ओर ढल रहा था, उस समय पैदल, रथी, हाथी और घुड़सवारों के समूह से भरा हुआ वह युद्ध देवासुर-संग्राम के समान हो रहा था।

**अन्योन्यमभ्यापततां निघ्नतां चेतरेतरम्।**
**उदतिष्ठद् रजो भौमं न प्रज्ञायत किंचन ॥२२॥**

एक-दूसरे पर आक्रमण करके आपस में मार-काट मचानेवाले उन सैनिकों के पदाघात से इतनी धूल उड़ी कि कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था।

**तमसाभिप्लुते लोके रजसा चैव भारत।**
**अतिष्ठन् वै मुहूर्तं तु व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥२३॥**

हे भारत! उस समय सब लोग धूल से आवृत्त तो थे ही ये [सूर्यास्त के कारण] अन्धकार से भी आच्छादित हो गये, अतः प्रहार करनेवाले सैनिक सेना का व्यूह बनाकर कुछ देर तक युद्ध बन्द करके खड़े रहे।

**ततोऽन्धकारं प्रणुदन्नुदतिष्ठत चन्द्रमाः।**
**कुर्वाणो विमलां रात्रिं नन्दयन् क्षत्रियान् युधि ॥२४॥**

थोड़ी ही देर में अन्धकार को चीरते हुए चन्द्रमा का उदय हुआ। उसने रण-क्षेत्र में क्षत्रियों को आनन्द प्रदान करते हुए उस रात्रि को निर्मल=अन्धकार-शून्य बना दिया।

**ततः सुशर्मा त्रैगर्तः सह भ्रात्रा यवीयसा।**
**अभ्यद्रवन्मत्स्यराजं रथव्रातेन सर्वशः ॥२५॥**

तत्पश्चात् त्रिगर्तराज सुशर्मा ने अपने छोटे भाई के साथ रथियों का समूह लेकर चारों ओर से मत्स्यराज विराट पर धावा किया।

**तौ निहत्य पृथक् धुर्यावुभौ च पार्ष्णिसारथी।**
**विरथं मत्स्यराजं तं जीवग्राहमगृह्णताम् ॥२६॥**

उन दोनों भाइयों ने पृथक्-पृथक् विराट के दोनों घोड़ों को मार डाला फिर उनके पार्श्वभाग की रक्षा करनेवाले सिपाहियों तथा सारथियों को भी मार डाला और उन्हें रथहीन करके जीते-जी ही पकड़ लिया।

**तमुन्मथ्य सुशर्माथ युवतीमिव कामुकः।**
**स्यन्दनं स्वं समारोप्य प्रययौ शीघ्रवाहनः ॥२७॥**

जैसे कामी पुरुष किसी युवती को बलपूर्वक पकड़ ले, वैसे ही सुशर्मा ने राजा विराट को पीड़ित करके पकड़ लिया और अपने शीघ्रगामी घोड़ों से युक्त रथ पर चढ़ाकर ले चला।

**तस्मिन् गृहीते विरथे विराटे बलवत्तरे।**
**प्राद्रवन्त भयान्मत्स्यास्त्रिगर्तैरर्दिता भृशम् ॥२८॥**

महाबली राजा विराट जब रथहीन करके पकड़ लिये गये, तब त्रिगर्तों द्वारा अत्यन्त पीड़ित हुए मत्स्य-देशीय सैनिक भयभीत होकर भागने लगे।

**तेषु संत्रस्यमानेषु कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।**
**अभ्यभाषन्महाबाहुं भीमसेनमरिन्दमम् ॥२९॥**

उन सैनिकों के इस प्रकार अत्यन्त भयभीत होने पर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने शत्रुओं का मान मर्दन करनेवाले महाबाहु भीमसेन से कहा—

**मत्स्यराजः परामृष्टस्त्रिगर्तेन सुशर्मणा।**
**तं मोचय महाबाहो न गच्छेद् द्विषतां वशम् ॥३०॥**

"महाबाहो! त्रिगर्तराज सुशर्मा ने मत्स्यराज विराट को पकड़ लिया है। उन्हें शीघ्र छुड़ाओ, जिससे वे शत्रुओं के वश में न पड़ जाएँ।"

**एवमुक्तस्तु वेगेन भीमसेनो महाबलः।**
**गहीत्वा तु धनुःश्रेष्ठमवर्षच्छरवर्षणम् ॥३१॥**

युधिष्ठिर के ऐसा आदेश देने पर महाबली भीमसेन ने शीघ्रतापूर्वक एक उत्तम धनुष हाथ में लिया और बाणों की वर्षा करने लगे।

**तं भीमो भीमकर्माणं सुशर्माणमथाद्रवत्।**
**विराटं समवीक्ष्यैनं तिष्ठ तिष्ठेति चावदत् ॥३२॥**

तत्पश्चात् भीमसेन भयंकर कर्म करनेवाले सुशर्मा की ओर दौड़े और विराट की ओर देखते हुए सुशर्मा से बोले—"अरे! खड़ा रह, खड़ा रह!"

**सुशर्मा चिन्तयामास कालान्तकयमोपमम्।**
**तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तं पृष्ठतो रथपुङ्गवः ॥३३॥**
**पश्यतां सुमहत् कर्म महद् युद्धमुपस्थितम्।**
**परावृत्तो धनुर्गृह्य सुशर्मा भ्रातृभिः सह ॥३४॥**

पीछे की ओर से आते और 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहते हुए काल, अन्तक और यमराज के समान भयंकर वीर पुरुष को देखकर रथियों में श्रेष्ठ सुशर्मा चिन्ता में पड़ गया और अपने साथियों से बोला—"देखो, फिर भारी युद्ध उपस्थित हुआ है, इसमें महान् पराक्रम दिखाओ।" ऐसा कहकर सुशर्मा भाइयों-सहित धनुष उठाकर लौट पड़ा।

**ततो राजन्नाशुकारी कुन्तीपुत्रो वृकोदरः।**
**समासाद्य सुशर्माणमश्वानस्य व्यपोथयत् ॥३५॥**
**पृष्ठगोपांश्च तस्याथ हत्वा परमसायकैः।**
**अथास्य सारथिं क्रुद्धो रथोपस्थादपातयत् ॥३६॥**

राजन्! फिर तो शीघ्रकारी कुन्तीपुत्र भीम ने सुशर्मा के पास पहुँचकर प्रचण्ड बाणों से उसके घोड़ों को मार डाला, साथ ही उसके पृष्ठरक्षकों को मारकर क्रुद्ध हो उसके सारथि को भी रथ से नीचे गिरा दिया।

**ततो विराटः प्रस्कन्द्य रथादथ सुशर्मणः।**
**गदां तस्य परामृश्य तमेवाभ्यद्रवद् बली ॥३७॥**

इसी बीच में बलशाली राजा विराट सुशर्मा के रथ से कूद पड़े तथा उसकी गदा लेकर उसी की ओर दौड़े।

**पलायमानं त्रैगर्तं दृष्ट्वा भीमोऽभ्यभाषत।**
**राजपुत्र निवर्तस्व न ते युक्तं पलायनम् ॥३८॥**

उधर अवसर पाकर भागते हुए त्रिगर्तराज को देखकर भीमसेन बोले—"राजकुमार! लौट आओ। तुम्हारे लिए युद्ध से पीठ दिखाकर भागना उचित नहीं है।

**कथमनेन वीर्येण गास्त्वं प्रार्थयसे बलात्।**
**कथं चानुचरांस्त्यक्त्वा शत्रुमध्ये विषीदसि ॥३९॥**

"इसी पराक्रम के भरोसे तुम विराट की गौओं को बलपूर्वक कैसे ले जाना चाहते थे? अपने सेवकों को शत्रुओं के मध्य में छोड़कर क्यों भागते और विषाद करते हो?"

**तं भीमसेनो धावन्तमभ्यधावत वीर्यवान्।**
**त्रिगर्तराजमादातुं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥४०॥**

फिर पराक्रमी भीमसेन भागते हुए त्रिगर्तराज को पकड़ने के लिए उसी प्रकार उसका पीछा करने लगे जैसे सिंह छोटे मृगों को पकड़ने के लिए उनके पीछे दौड़ता है।

**अभिद्रुत्य सुशर्माणं केशपक्षे परामृशत्।**
**समुद्यम्य तु रोषात् तं निष्पिपेष महीतले ॥४१॥**

तब सुशर्मा के निकट पहुँचकर भीमसेन ने उसके केश पकड़ लिये और क्रोधपूर्वक उसे उठाकर पृथिवी पर दे मारा। फिर उसे वहीं रगड़ने लगे।

**तस्य जानुं ददौ भीमो जघ्ने चैनमरत्निना।**
**स मोहमगमद् राजा प्रहारवरपीडितः ॥४२॥**

भीमसेन ने उसके पेट को घुटनों से दबाकर ऐसा घूँसा मारा कि उसके भारी आघात से पीड़ित होकर राजा सुशर्मा मूर्च्छित हो गया।

**तत एनं विचेष्टन्तं बद्ध्वा पार्थो वृकोदरः।**
**रथमारोपयामास विसंज्ञं पांसुगुण्ठितम् ॥४३॥**

फिर कुन्तीपुत्र भीम ने छूटने के लिए छटपटाते हुए सुशर्मा को रस्सियों से बाँधकर रथ पर रख दिया। उस समय उसके सारे अङ्ग धूल में सने थे और चेतना लुप्त-सी हो रही थी।

**अभ्येत्य रणमध्यस्थमभ्यगच्छद् युधिष्ठिरम्।**
**दर्शयामास भीमस्तु सुशर्माणं नराधिपम् ॥४४॥**

तत्पश्चात् भीमसेन ने रणभूमि में स्थित राजा युधिष्ठिर के पास पहुँचकर राजा सुशर्मा को उन्हें दिखाया।

**तं राजा प्राहसद् दृष्ट्वा मुच्यतां वै नराधमः।**
**एवमुक्तोऽब्रवीद् भीमः सुशर्माणं महाबलम् ॥४५॥**

राजा युधिष्ठिर सुशर्मा को उस अवस्था में देखकर हँसे और भीम से बोले—"इस नराधम को छोड़ दो !" उनके ऐसा कहने पर भीम ने महाबली सुशर्मा से कहा—

भीम उवाच

**जीवितुं चेच्छसे मूढ हेतुं मे गदतः शृणु ।**
**दासोऽस्मीति त्वया वाच्यं संसत्सु च सभासु च ॥४६॥**

**भीमसेन बोले**—मूर्ख ! यदि तू जीना चाहता है, तो उसका उपाय बताता हूँ, सुन ! तुझे संसदों और सभाओं में जाकर सदा यही कहना होगा कि "मैं राजा विराट का दास हूँ ।"

युधिष्ठिर उवाच

**मुञ्च मुञ्चाधमाचारं प्रमाणं यदि ते वयम् ।**
**दासभावं गतो ह्येष विराटस्य महीपतेः ॥४७॥**

**युधिष्ठिर बोले**—भैया ! यदि तुम मेरी बात मानते हो, तो इस पापाचारी को छोड़ दो । यह महाराज विराट का दास तो हो ही चुका है ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्ते तु सव्रीडः सुशर्माऽऽसीदधोमुखः ।**
**स मुक्तोऽभ्येत्य राजानमभिवाद्य प्रतस्थिवान् ॥४८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर सुशर्मा ने लज्जित होकर अपना मुँह नीचे कर लिया और बन्धन से मुक्त हो राजा विराट के पास जा उन्हें अभिवादन कर अपने देश को प्रस्थान किया ।

**विसृज्य तु सुशर्माणं पाण्डवास्ते हतद्विषः ।**
**संग्रामशिरसो मध्ये तां रात्रिं सुखिनोऽवसन् ॥४९॥**

सुशर्मा को मुक्त करके शत्रुओं का संहार करनेवाले वे पाण्डव उस रात्रि में युद्ध के अग्रप्रदेश पर ही सुखपूर्वक रहे ।

**ततो विराटः कौन्तेयानतिमानुषविक्रमान् ।**
**अर्चयामास वित्तेन मानेन च महारथान् ॥५०॥**

अगले दिन राजा विराट ने अतिमानुष=मानवशक्ति से परे पराक्रम करनेवाले महारथी कुन्तीपुत्रों का धन और मान द्वारा आदर-सत्कार किया ।

विराट उवाच

**युष्माकं विक्रमादद्य मुक्तोऽहं स्वस्तिमानिह ।**
**तस्माद् भवन्तो मत्स्यानामीश्वराः सर्व एव हि ॥५१**

**विराट बोले**—आज मैं तुम लोगों के पराक्रम से ही शत्रु के हाथों से कुशलपूर्वक छूटकर यहाँ आया हूँ, अतः तुम लोग मत्स्यदेश के स्वामी ही हो ।

वैशम्पायन उवाच

**तथेतिवादिनं मत्स्यं कौरवेयाः पृथक् पृथक् ।**
**ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमः ॥५२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—पूर्वोक्त वचन कहनेवाले मत्स्यराज से युधिष्ठिर आदि सभी कुरुवंशी पृथक्-पृथक् हाथ जोड़कर बोले—

**प्रतिनन्दाम ते वाक्यं सर्वं चैव विशाम्पते ।**
**एतेनैव प्रतीताः स्म यत् त्वं मुक्तोऽद्य शत्रुभिः ॥५३॥**

"महाराज ! आपका कहना ठीक है । हम आपके वचनों का अभिनन्दन करते हैं, परन्तु हम लोग इतने से ही सन्तुष्ट हैं कि आज आप शत्रुओं से मुक्त हो गये ।

**गच्छन्तु दूतास्त्वरितं नगरं तव पार्थिव ।**
**सुहृदां प्रियमाख्यातुं घोषयन्तु च ते जयम् ॥५४॥**

"महाराज ! अब आपके नगर में सुहृदों को यह प्रिय समाचार देने के लिए तुरन्त ही दूतों को जाना चाहिए । वे दूत वहाँ जाकर आपकी विजय-घोषणा करें ।"

**ततस्तद्वचनान्मत्स्यो दूतान् राजा समादिशत् ।**
**ते गत्वा तत्र तां रात्रिमथ सूर्योदयं प्रति ।**
**विराटस्य पुराभ्याशे दूता जयमघोषयन् ॥५५॥**

तब उनके कथनानुसार राजा विराट ने दूतों को आदेश दिया । महाराज की आज्ञा पाकर दूत रात्रि में ही वहाँ से प्रस्थान कर सूर्योदय होते-होते विराट की राजधानी में जा पहुँचे और वहाँ उन्होंने सब ओर मत्स्यराज की विजय घोषित कर दी ।

**इति महाभारते विराटपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥१०॥**

# एकादशोऽध्यायः

## कौरवों द्वारा विराट की गौओं का अपहरण और उत्तरकुमार का बृहन्नला को सारथि बनाकर रणभूमि की ओर प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

**याते त्रिगर्तान् मत्स्ये तु पशूँस्तान् वै परीप्सति ।**
**दुर्योधनः सहामात्यो विराटमुपयादथ ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! जिस समय अपने पशुओं को छुड़ा लाने की इच्छा से विराट त्रिगर्तों से युद्ध करने के लिए गये, उसी समय दुर्योधन ने अपने मन्त्रियों को साथ लेकर मत्स्यदेश पर आक्रमण किया।

**भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च कृपश्च परमास्त्रवित् ।**
**द्रौणिश्च सौबलश्चैव तथा दुःशासनः प्रभो ॥२॥**
**एते मत्स्यानुपागम्य विराटस्य महीपतेः ।**
**घोषान् विद्राव्य तरसा गोधनं जह्रुरोजसा ॥३॥**

राजन् ! भीष्म, द्रोण, कर्ण, अस्त्रविद्या के श्रेष्ठ विद्वान् कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि और दुःशासन —इन सबने राजा विराट के मत्स्यदेश में आकर उनके गोष्ठों में भगदड़ मचा दी और अति वेग से बलपूर्वक गोधन का अपहरण करना आरम्भ किया।

**गोपाध्यक्षो भयत्रस्तो रथमास्थाय सत्वरः ।**
**जगाम नगरायैव परिक्रोशँस्तदाऽऽर्तवत् ॥४॥**

तब उन गौओं का रक्षक भयभीत हो तुरन्त ही रथ पर सवार हो आर्त की भाँति विलाप करता हुआ राजधानी की ओर चल दिया।

**स प्रविश्य पुरं राज्ञो नृपवेश्माभ्ययात् ततः ।**
**अवतीर्य रथात् तूर्णमाख्यातुं प्रविवेश च ॥५॥**

राजा विराट के नगर में पहुँचकर वह राजभवन के समीप गया तथा रथ से उतरकर तुरन्त यह समाचार देने के लिए महल के भीतर चला गया।

**दृष्ट्वा भूमिञ्जयं नाम पुत्रं मत्स्यस्य मानिनम् ।**
**तस्मै तत् सर्वमाचष्टे राष्ट्रस्य पशुकर्षणम् ॥६॥**
**षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति ते ।**
**तद् विजेतुं समुत्तिष्ठ गोधनं राष्ट्रवर्धन ॥७॥**

वहाँ मत्स्यराज के अभिमानी पुत्र भूमिञ्जय [उत्तरकुमार] से मिलकर उस गोप ने उनसे राज्य के पशुओं के अपहरण का समस्त वृत्तान्त बताते हुए कहा—"राष्ट्रवर्धन=राष्ट्र की उन्नति करनेवाले ! आज कौरव आपकी साठ हजार=बहुत-सी गौओं को हाँके लिये जा रहे हैं। उनके हाथ से उस गोधन को जीत लाने के लिए आप उठें।

**राजपुत्र हितप्रेप्सुः क्षिप्रं निर्याहि च स्वयम् ।**
**त्वां हि मत्स्यो महीपालः शून्यपालमिहाकरोत् ॥८॥**

"हे राजपुत्र ! आप इस राज्य के हितैषी हैं, अतः स्वयं ही युद्ध के लिए तैयार होकर शीघ्र प्रयाण कीजिए। मत्स्य नरेश ने अपनी अनुपस्थिति में आपको ही यहाँ का रक्षक नियुक्त किया है।

**स त्वां परिषदो मध्ये श्लाघते च नराधिपः ।**
**पुत्रो ममानुरूपश्च शूरश्चेति कुलोद्वहः ॥९॥**

"वे सभा में आपकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं— "मेरा पुत्र उत्तर मेरे अनुरूप शूरवीर और इस वंश का भार वहन करने में समर्थ है।

**इष्वस्त्रे निपुणो योधः सदा वीरश्च मे सुतः ।**
**तस्य तत् सत्यमेवास्तु मनुष्येन्द्रस्य भाषितम् ॥१०॥**

"मेरा वह प्रिय पुत्र बाण चलाने तथा अन्यान्य अस्त्रों के प्रयोग की कला में भी निपुण, सदा युद्ध के लिए उद्यत रहनेवाला और वीर है।" उन महाराज का यह कथन आज सत्य सिद्ध होना चाहिए।

**रणे जित्वा कुरून् सर्वान् वज्रपाणिरिवासुरान् ।**
**यशो महदवाप्य त्वं प्रविशेदं पुरं पुनः ॥११॥**

"जैसे वज्रपाणि इन्द्र समस्त असुरों को परास्त कर देते हैं, उसी प्रकार आप युद्ध में सम्पूर्ण कौरवों को जीतकर और महान् यश प्राप्त करके पुनः इस नगर में प्रवेश करें।"

**स्त्रीमध्ये कथितं तेन तद् वाक्यमभयङ्करम् ।**
**अन्तःपुरे श्लाघमान इदं वचनमब्रवीत् ॥१२॥**

राजन् ! उस गोपाध्यक्ष ने ये निर्भय बनानेवाली उत्साहजनक बातें अन्तःपुर में स्त्रियों के बीच में बैठे उत्तरकुमार से कहीं। तब अपनी प्रशंसा करता हुआ

राजकुमार उत्तर इस प्रकार कहने लगा—

उत्तर उवाच

अद्याहमनुगच्छेयं दृढधन्वा गवां पदम्।
यदि मे सारथिः कश्चिद् भवेदश्वेषु कोविदः ॥१३॥

उत्तर बोला—गोपेश्वर! यदि मेरे पास घोड़े हाँकने की कला में कुशल कोई सारथि होता, तो दृढ धनुषधारी मैं आज अवश्य ही उन गौओं के पद-चिह्नों का अनुसरण करता।

तमेव नाधिगच्छामि यो मे यन्ता भवेन्नरः।
पश्यध्वं सारथिं क्षिप्रं मम युक्तं प्रयास्यतः ॥१४॥

इस समय मुझे किसी ऐसे मनुष्य का पता नहीं है, जो मेरा सारथि बन सके। मैं युद्ध के लिए प्रस्थान करूँगा, अतः शीघ्र ही मेरे लिए किसी योग्य सारथि की तलाश करो।

स लभेयं यदा त्वन्यं हययानविदं नरम्।
त्वरावानद्य यात्वाहं समुच्छ्रितमहाध्वजम् ॥१५॥
विगाह्य तत् परानीकं गजवाजिरथाकुलम्।
शस्त्रप्रतापनिर्वीर्यान् कुरूञ्जित्वाऽऽनये पशून् ॥१६॥

यदि मैं घोड़ा हाँकने की कला जाननेवाले किसी मनुष्य को पा जाऊँ, तो अभी बड़े वेग से जाकर ऊँची-ऊँची एवं विशाल ध्वजाओं से विभूषित एव हाथी, घोड़े तथा रथों से भरी हुई शत्रु की सेना में घुस जाऊँ और अपने शस्त्रों के प्रताप से कौरवों को पराक्रमशून्य तथा पराजित करके सम्पूर्ण पशुओं को लौटा लाऊँ।

शून्यमासाद्य कुरवः प्रयान्त्यादाय गोधनम्।
किं नु शक्यं मया कर्तुं यदहं तत्र नाभवम् ॥१७॥

गोधन को सूना पाकर कौरव लोग मेरा गोधन लिये जा रहे हैं, परन्तु अब मैं वहाँ से क्या कर सकता हूँ जबकि वहाँ उस समय मैं विद्यमान नहीं था।

पश्येयुरद्य मे वीर्यं कुरवस्ते समागताः।
किं नु पार्थोऽर्जुनः साक्षादयमस्मान् प्रबाधते ॥१८॥

अच्छा, जब कौरव लोग यहाँ आ ही गये हैं, तब वे आज मेरा पराक्रम देख लें। फिर तो वे कहेंगे—क्या यह साक्षात् कुन्तीपुत्र अर्जुन ही हमें पीड़ित कर रहा है?



वैशम्पायन उवाच

तस्य तद् वचनं स्त्रीषु भाषतस्तु पुनः पुनः।
नामर्षयत पाञ्चाली बीभत्सोः परिकीर्तनम् ॥१

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजकु
उत्तर स्त्रियों के मध्य में बैठा हुआ बार-बार अ
तुलना में अर्जुन का नाम ले-लेकर डींग हाँक रहा
द्रौपदी से यह सहन न हो सका।

अथैनमुपसङ्गम्य स्त्रीमध्यात् सा तपस्विनी।
व्रीडमानेव शनकैरिदं वचनमब्रवीत् ॥२

तपस्विनी द्रौपदी स्त्रियों के मध्य से उ
राजकुमार उत्तर के समीप आई और लजाती हु
धीरे-धीरे इस प्रकार बोली—

द्रौपद्युवाच

योऽसौ बृहद्वारणाभो युवा सुप्रियदर्शनः।
बृहन्नलेति विख्यातः पार्थस्यासीत् स सारथिः।

द्रौपदी बोली—हे राजकुमार! यह जो वि
गजराज के समान हृष्ट-पुष्ट, तरुण, सुन्दर
देखने में अति प्रिय बृहन्नला नाम से प्रसिद्ध न
पहले कुन्तीपुत्र अर्जुन का सारथि था।

धनुष्यनवरश्चासीत् तस्य शिष्यो महात्मनः।
दृष्टपूर्वो मया वीर चरन्त्या पाण्डवान् प्रति ॥

हे वीर! यह नर्तक महात्मा अर्जुन का शि
है, अतः धनुर्विद्या में भी उनसे कम नहीं है।
पाण्डवों के यहाँ रहते समय मैंने इसे देखा है।

यदि वै सारथिः स स्यात् कुरून् सर्वान् न संशयः।
जित्वा गाश्च समादाय ध्रुवमागमनं भवेत्।

यदि वह तुम्हारा सारथि हो जाए तो नि
सम्पूर्ण कौरवों को जीतकर और गौओं को
लेकर तुम्हारा इस नगर में विजयी-शुभाग
सकता है, यह ध्रुव सत्य है।

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः स सैरन्ध्र्या भगिनीं प्रत्यभाषत।
गच्छ त्वमनवद्याङ्गि तामानय बृहन्नलाम्

वैशम्पायनजी कहते हैं—सैरन्ध्री के ऐसा
पर उत्तर ने अपनी बहन से कहा—'निर्दोष
वाली उत्तरे! तुम अभी जाओ और उस बृ
को बुला लाओ।'

...या प्रेषिता शीघ्रमगमन्नर्तनागृहम् ।
... स महाबाहुश्छन्नः सत्रेण पाण्डवः ॥२५॥

...ई के भेजने पर कुमारी उत्तरा शीघ्र ही नृत्य-
...ा गई, जहाँ पाण्डुनन्दन महाबाहु अर्जुन छद्म
...छिपाकर रहते थे ।

...दृष्ट्वा विशालाक्षीं राजपुत्रीं सखीं तथा ।
...ब्रवीद् राजन् किमागमनमित्युत ॥२६॥

...नमेजय ! विशाल नेत्रोंवाली अपनी सखी
...री उत्तरा की ओर देखकर अर्जुन ने उससे
... पूछा—"कहिए, राजकुमारी ! कैसे आना
...?"

उत्तरोवाच

...पशुस्य कुरुभिः काल्यन्ते नो बृहन्नले ।
...नुं मम भ्राता प्रयास्यति धनुर्धरः ॥२७॥

...रा बोली—बृहन्नले ! हमारे राष्ट्र की गौओं
...व हाँककर लिये जा रहे हैं, अतः उन्हें जीतने
...मेरे भ्राता धनुष धारण करके जानेवाले हैं।

... निहतस्तस्य संग्रामे रथसारथिः ।
...न समः सूतो योऽस्य सारथ्यमाचरेत् ॥२८॥

...ा ही समय हुआ, उनके रथ का सारथि एक
...ारा गया । इस कारण कोई ऐसा योग्य सूत
...ी जो उनके सारथि का भार सँभाल सके ।

...यतमानाय सारथ्यर्थं बृहन्नले ।
... हयज्ञाने सैरन्ध्री कौशलं तव ॥२९॥

...न्नले ! वे सारथि ढूँढ़ने का प्रयत्न कर रहे
... में ही सैरन्ध्री ने पहुँचकर यह बताया कि
... विद्या में कुशल हो ।

... किलासीस्त्वं सारथिर्दयितः पुरा ।
... महायेन पृथिवीं पाण्डवर्षभः ॥३०॥

... तुम अर्जुन की प्रिय सारथि रह चुकी हो ।
...सहायता से उन पाण्डवशिरोमणि ने समूची
...र विजय पाई है ।

...ं मम भ्रातुः कुरु साधु बृहन्नले ।
...रं गावो ह्रियन्ते कुरुभिर्हि नः ॥३१॥

...न्नले ! इससे पूर्व कि कौरव लोग हमारी
...लेकर बहुत दूर निकल जाएँ, तुम मेरे भाई
... का कार्य अच्छी प्रकार सँभाल लो ।

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु सुश्रोण्या तया सख्या परन्तपः ।
जगाम राजपुत्रस्य सकाशममितौजसः ॥३२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—सुन्दर कटि प्रदेशवाली सखी उत्तरा के ऐसा कहने पर शत्रुसंतापक अर्जुन अमिततेजस्वी राजकुमार उत्तर के समीप गये ।

तमावेशमेव तु तं प्रेक्ष्य राजपुत्रोऽभ्यभाषत ।
त्वया सारथिना पार्थोऽजयत्कृत्स्नां वसुन्धराम् ॥३३॥
संयच्छ मामकानश्वांस्तथैव त्वं बृहन्नले ।
कुरुभिर्योत्स्यमानस्य गोधनानि परीप्सतः ॥३४॥

राजकुमार उत्तर ने बृहन्नला को दूर से ही देखकर कहा—"हे बृहन्नले ! अर्जुन ने तुम्हें सारथि बनाकर समस्त पृथ्वी पर विजय पाई थी, अतः आज तुम अर्जुन की भाँति मेरे घोड़ों को भी काबू में रखना, क्योंकि मैं अपना गोधन वापस लेने के लिए कौरवों साथ युद्ध करनेवाला हूँ ।"

एवमुक्ता प्रत्युवाच राजपुत्रं बृहन्नला ।
का शक्तिर्मम सारथ्यं कर्तुं संग्राममूर्धनि ॥३५॥

उसके ऐसा कहने पर बृहन्नला राजकुमार से बोली—"भला मेरी क्या शक्ति है कि मैं युद्ध के छोर (मोर्चे) पर सारथि का काम सँभाल सकूँ ।

गीतं वा यदि वा नृत्यं वादित्रं वा पृथग्विधम् ।
तत् करिष्यामि भद्रं ते सारथ्यं तु कुतो मम ॥३६॥

"राजकुमार ! आपका कल्याण हो । यदि गाना हो, नृत्य करना हो अथवा विभिन्न प्रकार के बाजे बजाने हों तो वह कर दूँगी । सारथि का काम मुझसे कैसे हो सकता है ?"

उत्तर उवाच

बृहन्नले गायनो वा नर्तनो वा पुनर्भव ।
क्षिप्रं मे रथमास्थाय निगृह्णीष्व हयोत्तमान् ॥३७॥

उत्तर बोला—हे बृहन्नले ! तुम फिर लौटकर गायक या नर्तक जो चाहो बन जाना । इस समय तो तुरन्त ही मेरे रथ पर बैठकर श्रेष्ठ घोड़ों को काबू में करो ।

वैशम्पायन उवाच

स तत्र नर्मसंयुक्तमकरोत् पाण्डवो बहु ।
उत्तरायाः प्रमुखतः सर्वं जानन्नरिन्दमः ॥३८॥

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! शत्रुदमन पाण्डुपुत्र अर्जुन ने सब-कुछ जानते हुए भी उत्तरा के सामने हँसी के लिए बहुत-से अज्ञानतासूचक कार्य किये।

**ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य कवचं शरीरे प्रत्यमुञ्चत।**
**कुमार्यस्तत्र तं दृष्ट्वा प्राहसन् पृथुलोचनाः ॥३९॥**

वे कवच को ऊपर उठाकर शरीर में डालने लगे। यह देखकर वहाँ खड़ी हुई बड़े-बड़े नेत्रोंवाली राजकुमारियाँ हँसने लगीं।

**स तु दृष्ट्वा विमुह्यन्तं स्वयमेवोत्तरस्ततः।**
**कवचेन महार्हेण समनह्यद् बृहन्नलाम् ॥४०॥**

बृहन्नला को कवच धारण करते समय भूल करती देख राजकुमार उत्तर ने स्वयं अपने हाथों उसे बहुमूल्य कवच धारण कराया।

**स बिभ्रत् कवचं चाग्र्यं स्वयमप्यंशुमत्प्रभम्।**
**ध्वजं च सिंहमुच्छ्रित्य सारथ्ये समकल्पयत् ॥४१॥**

तत्पश्चात् उन्होंने स्वयं भी सूर्य के समान देदीप्यमान सुन्दर कवच धारण किया और रथ पर सिंह-ध्वज फहराकर बृहन्नला को सारथि के कार्य में नियुक्त कर दिया।

**धनूंषि च महार्हाणि बाणाँश्च रुचिरान् बहून्।**
**आदाय प्रययौ वीरः स बृहन्नलसारथिः ॥४२॥**

फिर बहुत-से बहुमूल्य धनुष और सुन्दर बाण लेकर और बृहन्नला को सारथि बनाकर वीर उत्तर युद्ध के लिए प्रस्थित हुआ।

**अथोत्तरा च कन्याश्च सख्यस्तामब्रुवँस्तदा।**
**बृहन्नले आनयेथा वासांसि रुचिराणि च ॥४३॥**
**पाञ्चालिकार्थं चित्राणि सूक्ष्माणि च मृदूनि च।**
**विजित्य संग्रामगतान्भीष्मद्रोणमुखान् कुरून् ॥४४॥**

उस समय उत्तरा तथा उसकी सहेली दूसरी राजकन्याओं ने कहा—"हे बृहन्नले ! तुम युद्धभूमि में आये हुए भीष्म, द्रोण आदि प्रमुख कौरव वीरों को जीतकर हमारी गुड़ियों के लिए उनके महीन, कोमल और रंग-बिरंगे सुन्दर-सुन्दर वस्त्र ले आना।"

बृहन्नलोवाच

**यद्युत्तरोऽयं संग्रामे विजेष्यति महारथान्।**
**अथाहरिष्ये वासांसि दिव्यानि रुचिराणि च ॥४५॥**

**बृहन्नला ने कहा**—यदि ये राजकुमार उत्तर संग्राम-भूमि में उन सब महारथियों को परास्त कर देंगे, तो मैं अवश्य उनके दिव्य और सुन्दर वस्त्र ले आऊँगी।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वा तु बीभत्सुस्ततः संप्रैरयद्धयान्।**
**कुरूनभिमुखः शूरो नानाध्वजपताकिनः ॥४६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! ऐसा कहकर शूरवीर अर्जुन ने अनेक प्रकार की ध्वजा-पताओं से सुशोभित कौरवों की ओर जाने के लिए घोड़ों को हाँक दिया।

**इति महाभारते विराटपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥११॥**

## द्वादशोऽध्यायः

**उत्तरकुमार का कौरव सेना को देखकर भागना, अर्जुन का उसे आश्वासन देना, शमी वृक्ष से अस्त्र उतारकर अर्जुन का उत्तर को पाण्डवों का यथार्थ परिचय देना और युद्ध के लिए तैयारी**

वैशम्पायन उवाच

**स राजधान्या निर्याय वैराटिरकुतोभयः।**
**प्रयाहीत्यब्रवीत् सूतं यत्र ते कुरवो गताः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! राजधानी से निकलकर विराटपुत्र उत्तर ने सर्वथा निर्भय हो सारथि से कहा—"बृहन्नले ! जिधर कौरव गये हैं, मेरे रथ को उधर ही ले चलो।

**समवेतान् कुरून् सर्वाञ्जिगीषूनवजित्य वै।**
**गास्तेभ्यः क्षिप्रमादाय पुनरेष्याम्यहं पुरम् ॥२॥**

"मैं यहाँ विजय की आशा से एकत्र होनेवाले समस्त कौरवों को परास्त करके उनसे अपनी गौओं को वापस ले शीघ्र अपने नगर में लौटूँगा।"

**ततस्तान् प्रेरयामास सदश्वान् पाण्डुनन्दनः।**
**ते हया नरसिंहेन नोदिता वातरंहसः।**

**आलिखन्त इवाकाशमूहुः काञ्चनमालिनः ।।३।।**

तब पाण्डुनन्दन अर्जुन ने उत्तर के उत्तम जाति के घोड़ों को हाँका और उनकी बाग ढीली कर दी। नरश्रेष्ठ अर्जुन के हाँकने पर सोने की मालाएँ पहने हुए वे घोड़े वायु के समान वेग से चलने लगे, मानो आकाश में टापें मारते हुए रथ लिये उड़े जा रहे हों।

**नातिदूरमथो गत्वा मत्स्यपुत्रधनञ्जयौ ।**
**अवेक्षेताममित्रघ्नौ कुरूणां बलिनां बलम् ।।४।।**

थोड़ी ही दूर जाने पर शत्रुनाशक विराटपुत्र उत्तर और धनञ्जय ने महाबली कौरवों की विशाल सेना देखी।

**तदनीकं महद् दृष्ट्वा गजाश्वरथसंकुलम् ।**
**हृष्टरोमा भयोद्विग्नः पार्थं वैराटिरब्रवीत् ।।५।।**

हाथियों, घोड़ों एवं रथों से भरी उस सेना को देखकर विराटपुत्र उत्तर के रोंगटे खड़े हो गये। उसने भय से व्याकुल होकर अर्जुन से कहा—

उत्तर उवाच

**नोत्सहे कुरुभिर्योद्धुं रोमहर्षं च जायते ।**
**दृष्ट्वैव हि परानाजौ मनः प्रव्यथतीव मे ।।६।।**

**उत्तर बोला**—बृहन्नले! मुझमें कौरवों के साथ युद्ध करने का साहस नहीं है। भय के कारण मेरे रोंगटे खड़े हो गये हैं। रणभूमि में इन शत्रुओं को देखकर ही मेरा हृदय व्यथित-सा हो गया है।

**त्रिगर्तान् मे पिता यातः शून्ये सम्प्रणिधाय माम् ।**
**सर्वां सेनामुपादाय न मे सन्तीह सैनिकाः ।।७।।**
**सोऽहमेको बहून् बालः कृतास्त्रानकृतश्रमः ।**
**प्रतियोद्धुं न शक्ष्यामि निवर्तस्व बृहन्नले ।।८।।**

हे बृहन्नले! मेरे पिता सूने नगर में उसकी रक्षा के लिए मुझे अकेला रखकर सारी सेनासहित त्रिगर्तों से युद्ध करने के लिए गये हैं। मेरे पास यहाँ कोई सैनिक नहीं है। मैं अकेला बालक हूँ और मैंने अस्त्र-विद्या में भी अधिक परिश्रम नहीं किया है। ऐसी अवस्था में अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता और प्रौढ़-अवस्थावाले इन बहुसंख्यक कौरवों का सामना मैं नहीं कर सकूँगा, अतः तुम मेरे रथ को लौटा लो।

बृहन्नलोवाच

**भयेन दीनरूपोऽसि द्विषतां हर्षवर्धनः ।**
**न च तावत् कृतं कर्म परैः किंचिद् रणाजिरे ।।९।।**

**बृहन्नला ने कहा**—हे राजकुमार! तुम भय के कारण दीन होकर शत्रुओं का हर्ष बढ़ा रहे हो। अभी तो शत्रुओं ने युद्धभूमि में कोई पराक्रम भी प्रकट नहीं किया है।

**स्वयमेव च मामात्थ वह मां कौरवान् प्रति ।**
**सोऽहं त्वां तत्र नेष्यामि यत्रैते बहुला ध्वजाः ।।१०।।**

तुमने स्वयं ही कहा था कि मुझे कौरवों के पास ले चलो, अतः जहाँ ये बहुत-सी ध्वजा फहरा रही हैं, वहीं मैं तुम्हें ले चलूँगी।

**तथा स्त्रीषु प्रतिश्रुत्य पौरुषं पुरुषेषु च ।**
**कत्थमानोऽभिनिर्याय किमर्थं न युयुत्ससे ।।११।।**

तुम स्त्रियों और पुरुषों के बीच में कौरवों को हराकर अपने गोधन को वापस लाने की प्रतिज्ञा करके पुरुषार्थ के विषय में आत्म-श्लाघा करते हुए युद्ध के लिए निकले थे, फिर अब युद्ध करना क्यों नहीं चाहते?

**न चेद् विजित्य गास्तास्त्वं गृहान्वै प्रतियास्यसि ।**
**प्रहसिष्यन्ति वीरास्त्वां नरा नार्यश्च सङ्गताः ।।१२**

यदि उन गौओं को बिना जीते ही तुम घर लौटोगे, तो वीर पुरुष तुम पर हँसेंगे तथा स्त्री और पुरुष यत्र-तत्र एकत्र होकर तुम्हारा उपहास करेंगे।

**अहमप्यत्र सैरन्ध्र्या ख्याता सारथ्यकर्मणि ।**
**न च शक्ष्याम्यनिर्जित्य गाः प्रयातुं पुरं प्रति ।।१३।।**

मैं भी सैरन्ध्री के द्वारा सारथ्य-कर्म में कुशल बताई गई हूँ, अतः अब गौओं को जीतकर वापस लिये बिना मैं नगर में नहीं जा सकूँगी।

उत्तर उवाच

**कामं हरन्तु मत्स्यानां भूयांस कुरवो धनम् ।**
**प्रहसन्तु च मां नार्यो नरा वापि बृहन्नले ।।१४।।**
**संग्रामे न च कार्यं मे गावो गच्छन्तु चापि मे ।**
**शून्यं मे नगरं चापि पितुश्चैव बिभेम्यहम् ।।१५।।**

**उत्तर बोला**—हे बृहन्नले! भारी संख्या में आये हुए कौरव भले ही इच्छानुसार मत्स्यदेश का सारा धन हर ले जाएँ, स्त्रियाँ या पुरुष जितना चाहें मेरा उपहास करें और मेरी गौएँ भी चली जाएँ परन्तु इस युद्ध से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। मेरा नगर

सूना पड़ा है [पिताजी उसकी रक्षा का भार मुझे सौंप गये हैं] मैं पिताजी से डरता हूँ [अतः यहाँ नहीं ठहर सकता]।

वैशम्पायन उवाच

**इत्युक्त्वा प्राद्रवद् भीतो रथात्प्रस्कन्द्य कुण्डली ।**
**त्यक्त्वा मानं च दर्पं च विसृज्य सशरं धनुः ॥१६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! ऐसा कह मान एवं अभिमान को त्याग धनुष-बाण को छोड़कर कुण्डलधारी राजकुमार रथ से कूदा और भयभीत होकर भाग चला ।

बृहन्नलोवाच

**नैष शूरैः स्मृतो धर्मः क्षत्रियस्य पलायनम् ।**
**श्रेयस्तु मरणं युद्धे न भीतस्य पलायनम् ॥१७॥**

**बृहन्नला बोली**—राजकुमार ! क्षत्रिय का युद्ध से भागना शूरवीरों की दृष्टि में धर्म नहीं है। युद्ध करके मर जाना अच्छा है, परन्तु भयभीत होकर भागना कदापि अच्छा नहीं ।

वैशम्पायन उवाच

**तमन्वधावद् धावन्तं राजपुत्रं धनञ्जयः ।**
**गत्वा पदशतं तूर्णं केशपक्षे परामृशत् ॥१८॥**

**वैशम्पयानजी कहते हैं**—हे राजन् ! [कुन्तीपुत्र भी रथ से कूदकर] भागते हुए राजकुमार को पकड़ने के लिए उसके पीछे दौड़े और सौ कदम दूर जाते-जाते उसके केश पकड़ लिये ।

**सोऽर्जुनेन परामृष्टः पर्यदेवयदार्तवत् ।**
**बहुलं कृपणं चैव विराटस्य सुतस्तदा ॥१९॥**

अर्जुन के द्वारा पकड़ लिये जाने पर विराटकुमार उत्तर अति दीनता के साथ आर्त की भाँति विलाप करने लगा—

उत्तर उवाच

**शृणुयास्त्वं हि कल्याणि बृहन्नले सुमध्यमे ।**
**निवर्तय रथं क्षिप्रं जीवन् भद्राणि पश्यति ॥२०॥**

**राजकुमार उत्तर बोला**—हे सुन्दर कटिवाली कल्याणि बृहन्नले ! तुम मेरी बात सुनो। मेरे रथ को शीघ्र लौटाओ, क्योंकि मनुष्य जीवित रहे तो वह अनेक बार मङ्गल देखता है।

वैशम्पायन उवाच

**एवमादीनि वाक्यानि विलपन्तमचेतसम् ।**
**प्रहस्य पुरुषव्याघ्रो रथस्यान्तिकमानयत् ॥२१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—उत्तर इसी प्रकार की बातें कहता और विलाप करता हुआ अचेत हो रहा था। पुरुषसिंह अर्जुन उसकी बातों पर हँसते हुए उसे रथ के समीप ले आये ।

अर्जुन उवाच

**यदि नोत्सहसे योद्धुं शत्रुभिः शत्रुकर्षण ।**
**एहि मे त्वं हयान् यच्छ युध्यमानस्य शत्रुभिः ॥२२॥**

**अर्जुन ने कहा**—शत्रुनाशन ! यदि तुम्हें शत्रुओं के साथ युद्ध करने का उत्साह नहीं है, तो चलो, मैं उनसे युद्ध करूँगा। तुम मेरे घोड़ों की बागडोर सँभालो ।

**अहं वै कुरुभिर्योत्स्ये विजेष्यामि च ते पशून् ।**
**प्रविश्यैतद् रथानीकमप्रधृष्यं दुरासदम् ॥२३॥**

देखो, मैं इस अतीव दुर्धर्ष तथा दुर्गम रथसेना में प्रविष्ट होकर कौरवों के साथ युद्ध करूँगा और तुम्हारे पशुओं को जीत लाऊँगा ।

वैशम्पायन उवाच

**तत एनं विचेष्टन्तमकामं भयपीडितम् ।**
**रथमारोपयामास पार्थः प्रहरतां वरः ॥२४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—तत्पश्चात् प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ कुन्तीपुत्र अर्जन ने युद्ध की कामना से रहित, भय से व्याकुल और भागने के लिए छटपटाते हुए उत्तर को रथ पर चढ़ाया ।

**उत्तरं स समाश्वास्य कृत्वा यन्तारमर्जुनः ।**
**गाण्डीवं पुनरादातुमुपायात् तां शमीं प्रति ॥२५॥**

अर्जुन ने उत्तर को समझा-बुझाकर अपना सारथि बनने के लिए राजी कर लिया, फिर अपना गाण्डीव धनुष लेने के लिए उस शमी वृक्ष की ओर गये ।

**तां शमीमुपसङ्गम्य पार्थो वैराटिमब्रवीत् ।**
**समादिष्टो मया क्षिप्रं धनूंष्यवहरोत्तर ॥२६॥**
**नेमानि हि त्वदीयानि सोढुं शक्ष्यन्ति मे बलम् ।**
**भारं चापि गुरुं वोढुं कुञ्जरं वा प्रमर्दितुम् ॥२७॥**

उस शमी वृक्ष के पास पहुँचकर अर्जुन ने विराट

पुत्र से कहा—"हे उत्तर ! मेरी आज्ञा से तुम शीघ्र इस वृक्ष पर चढ़कर वहाँ रखे हुए धनुष को उतारो, क्योंकि तुम्हारे ये धनुष मेरे बाहुबल को न सह सकेंगे, कोई भारी कार्यभार भी न उठा सकेंगे अथवा बड़े-बड़े गजराजों का नाश करने में भी ये काम न दे सकेंगे।

**अस्यां हि पाण्डुपुत्राणां धनूंषि निहितान्युत ।**
**युधिष्ठिरस्य भीमस्य बीभत्सोर्यमयोस्तथा ॥२८॥**

इस वृक्ष पर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और नकुल-सहदेव—इन सब पाण्डवों के धनुष रखे हुए हैं।

**एवमुक्तः स पार्थेन रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली ।**
**आरुरोह शमीवृक्षं वैराटीरवशस्तदा ॥२९॥**

अर्जुन के ऐसा कहने पर कुण्डलधारी विराटपुत्र उत्तर विवश हो रथ से कूदकर शमीवृक्ष पर चढ़ गया।

**सोऽपहृत्य महार्हाणि धनूंषि पृथुवक्षसाम् ।**
**परिवेष्टनपत्राणि विमुच्य समुपानयत् ॥३०॥**
**तथा संनहनान्येषां परिमुच्य समन्ततः ।**
**अपश्यत् तत्र गाण्डीवं चतुर्भिरपरैः सह ॥३१॥**

उत्तर ने विशाल वक्षःस्थलवाले पाण्डवों के बहुमूल्य धनुषों को नीचे उतारकर उनपर जो पत्तों के वेष्टन लगे थे, उन्हें खोलकर हटाया। तत्पश्चात् उन धनुषों तथा उनकी डोरियों को सब ओर से खोलकर अर्जुन के पास ले आया। उसमें अन्य चार धनुषों के साथ रखे हुए गाण्डीव धनुष को उत्तर ने देखा।

**संस्पृश्य तानि चापानि भानुमन्ति बृहन्ति च ।**
**वैराटिरर्जुनं राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥३२॥**

राजन् ! तत्पश्चात् उन प्रभापूर्ण विशाल धनुषों का स्पर्श करके विराट-पुत्र उत्तर ने अर्जुन से इस प्रकार कहा—

उत्तर उवाच

**सुवर्णविकृतानीमान्यायुधानि महात्मनाम् ।**
**रुचिराणि प्रकाशन्ते पार्थानामाशुकारिणाम् ॥३३॥**
**क्व नु स्विदर्जुनः पार्थः कौरव्यो वा युधिष्ठिरः ।**
**नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पाण्डवः ॥३४**

**उत्तर बोला**—बृहन्नले ! रण में फुर्ती दिखानेवाले जिन महात्मा कुन्तीपुत्रों के ये सुवर्ण-भूषित आयुध इतने प्रकाशित हो रहे हैं, वे पृथापुत्र अर्जुन, कुरुनन्दन युधिष्ठिर, नकुल-सहदेव और पाण्डुपुत्र भीमसेन अब कहाँ हैं ?

**द्रौपदी क्व च पाञ्चाली स्त्रीरत्नमिति विश्रुता ।**
**जितानक्षैस्तदा कृष्णा तानेवान्वगमद् वनम् ॥३५॥**

स्त्रीरत्न रूप में विख्यात पाञ्चाल देश की राजकुमारी द्रौपदी कहाँ है ? सुना है, जब पाण्डव जुए में हार गये, तब द्रौपदी भी उन्हीं के साथ वन में चली गई थी।

अर्जुन उवाच

**अहमस्म्युर्जुनः पार्थः सभास्तारो युधिष्ठिरः ।**
**बल्लवो भीमसेनस्तु पितुस्ते रसपाचकः ॥३६॥**

**अर्जुन ने कहा**—हे राजकुमार ! मैं ही पृथापुत्र अर्जुन हूँ। राजा की सभा के माननीय सदस्य कङ्क ही युधिष्ठिर हैं। तुम्हारे पिता के भोजनालय में रसोइये का काम करनेवाले बल्लव ही भीमसेन हैं।

**अश्वबन्धोऽथ नकुलः सहदेवस्तु गोकुले ।**
**सैरन्ध्रीं द्रौपदीं विद्धि यत्कृते कीचका हताः ॥३७॥**

अश्वों की देख-भाल करनेवाले ग्रन्थिक ही नकुल हैं और गोशाला के अध्यक्ष तन्तिपाल ही सहदेव हैं। सैरन्ध्री द्रौपदी है, जिसके कारण सभी कीचक मारे गये हैं।

उत्तर उवाच

**दश पार्थस्य नामानि यानि पूर्वं श्रुतानि मे ।**
**ब्रूयास्त्वं यदि जानीषे श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ॥३८॥**

**उत्तर बोला**—मैंने पहले अर्जुन के जो दस नाम सुन रखे हैं, यदि तुम उन्हें जानते हो तो बताओ ! तब मैं तुम्हारी सारी बातों पर विश्वास कर सकता हूँ।

अर्जुन उवाच

**हन्त तेऽहं समाचक्षे दश नामानि यानि मे ।**
**वैराटे शृणु तानि त्वं यानि पूर्वं श्रुतानि ते ॥३९॥**

**अर्जुन ने कहा**—विराटपुत्र ! मेरे जो दस नाम जो तुमने पहले ही सुन रखे हैं, मैं अब उनका वर्णन करता हूँ, तुम सुनो !

**अर्जुनः फाल्गुनो जिष्णुः किरीटी श्वेतवाहनः ।**
**बीभत्सुर्विजयः कृष्णः सव्यसाची धनञ्जयः ।।४०।।**

वे नाम हैं—अर्जुन, फाल्गुन, जिष्णु, किरीटी, श्वेतवाहन, बीभत्सु, विजय, कृष्ण, सव्यसाची और धनञ्जय ।

**पृथिव्यां चतुरन्तायां वर्णो मे दुर्लभः समः ।**
**करोमि कर्म शुक्लं च तस्मान्मामर्जुनं विदुः ।।४१।।**

[अर्जुन शब्द के अर्थ हैं—वर्ण या दीप्ति, ऋजुता या समता, धवल या शुद्ध] समुद्र-पर्यन्त पृथिवी पर चहुँ ओर मेरे-जैसी दीप्ति दुर्लभ है। मैं सबके प्रति समभाव रखता हूँ और शुद्ध कर्म करता हूँ, अतः विज्ञपुरुष मुझे 'अर्जुन' के नाम से जानते हैं।

**उत्तराभ्यां फाल्गुनीभ्यां नक्षत्राभ्यामहं दिवा ।**
**जातो हिमवतः पृष्ठे तेन मां फाल्गुनं विदुः ।।४२।।**

हिमालय के शिखर पर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में दिन के समय मेरा जन्म हुआ था, अतः मुझे 'फाल्गुन' कहते हैं।

**अहं दुरापो दुर्धर्षो दमनः पाकशासनिः ।**
**तेन देवमनुष्येषु जिष्णुर्नामास्मि विश्रुतः ।।४३।।**

मुझे पकड़ना या तिरस्कृत करना बहुत कठिन है। मैं इन्द्र का पुत्र तथा शत्रुदमन विजयी वीर हूँ, अतः देवताओं और मनुष्यों में 'जिष्णु' नाम से मेरी ख्याति है।

**पुरा शक्रेण मे दत्तं युध्यतो दानवर्षभैः ।**
**किरीटं मूर्ध्नि सूर्याभं तेनाहुर्मां किरीटिनम् ।।४४।।**

पूर्वकाल में बड़े-बड़े दानव वीरों के साथ युद्ध करते समय देवराज इन्द्र ने मेरे मस्तक पर सूर्य के समान प्रकाशित होनेवाला किरीट रखा था, अतः मुझे 'किरीटी' कहते हैं।

**श्वेताः काञ्चनसंनाहा रथे युञ्जन्ति मे हयाः ।**
**संग्रामे युध्यमानस्य तेनाहं श्वेतवाहनः ।।४५।।**

संग्राम में युद्ध करते समय मेरे रथ में सोने के बख्तर से सजे हुए श्वेत रंग के घोड़े जोते जाते हैं, इसलिए मेरा नाम 'श्वेतवाहन' है।

**न कुर्यां कर्म बीभत्सं युद्धमानः कथञ्चन ।**
**तेन देवमनुष्येषु बीभत्सुरिति विश्रुतः ।।४६।।**

युद्ध करते समय मैं कोई भी बीभत्स=घृणित तथा निन्दनीय कार्य नहीं करता हूँ, अतः देवताओं और मनुष्यों में मैं 'बीभत्सु'[1] नाम से प्रसिद्ध हूँ।

**अभिप्रयामि संग्रामे यदहं युद्धदुर्मदान् ।**
**नाजित्वा विनिवर्तामि तेन मां विजयं विदुः ।।४७।।**

जब मैं रणक्षेत्र में रणोन्मत्त योद्धाओं का सामना करने के लिए जाता हूँ तब उन्हें परास्त किये बिना कभी नहीं लौटता, अतः वीर-पुरुष मुझे 'विजय' के नाम से पुकारते हैं।

**उभौ मे दक्षिणौ पाणी गाण्डीवस्य विकर्षणे ।**
**तेन देवमनुष्येषु सव्यसाचीति मां विदुः ।।४८।।**

मेरा बायाँ और दाहिना दोनों ही हाथ गाण्डीव धनुष की डोरी खींचने में समर्थ हैं, अतः देवता और मनुष्य दोनों ही मुझे 'सव्यसाची' कहते हैं।

**सर्वाञ्जनपदाञ्जित्वा वित्तमादाय केवलम् ।**
**मध्ये धनस्य तिष्ठामि तेनाहुर्मां धनञ्जयम् ।।४९।।**

मैं सम्पूर्ण देशों को जीतकर और उनसे कर-रूप में केवल धन लेकर धन के ही बीच में स्थित था, अतः लोग मुझे 'धनञ्जय' कहते हैं।

**कृष्ण इत्येव दशमं नाम चक्रे पिता मम ।**
**ततः कृष्णावदातस्य प्रियत्वाद् बालकस्य वै ।।५०।।**

[कृष्ण शब्द का अर्थ है—श्यामवर्ण तथा मन को आकर्षित करनेवाला] मेरे शरीर का रंग कृष्ण [गौर एवं आकर्षक है] तथा बाल्यावस्था में चित्त-आकर्षक होने के कारण मैं पिताजी को अति प्रिय था, अतः पिताजी ने ही मेरा दसवाँ नाम 'कृष्ण' रखा था।

वैशम्पायन उवाच

**ततः स पार्थं वैराटिरभ्यवादयदन्तिकात् ।**
**अहं भूमिञ्जयो नाम नाम्नाहमपि चोत्तरः ।।५१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—अर्जुन के दस नामों को सुनकर विराटपुत्र ने निकट जाकर अर्जुन के चरणों

१. यह नाम उलटा है। 'बीभत्सु' का अर्थ होता है निन्दित, घृणित तथा बर्बर कर्म करनेवाला। परन्तु महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ ने **"भदि कल्याणे सुखे च"** इस धातु से सन् प्रत्यय लगाकर 'बीभत्सु' शब्द की निष्पत्ति मानी है।

में प्रणाम किया और कहा—"मेरा नाम भूमिंजय तथा उत्तर भी है।

**दिष्ट्या त्वां पार्थ पश्यामि स्वागतं ते धनञ्जय ।**
**लोहिताक्षमहाबाहू नागराजकरोपमौ ॥५२॥**

"कुन्तीनन्दन ! मेरा सौभाग्य है कि मुझे आपका दर्शन हुआ। धनञ्जय ! आपका स्वागत है। आपके नेत्र लाल हैं और भुज-दण्ड गजराज के सूँड़ को भी लज्जित कर रहे हैं।

**यदज्ञानादवोचं त्वां क्षन्तुमर्हसि तन्मम ।**
**यतस्त्वया कृतं पूर्वं चित्रं कर्म सुदुष्करम् ।**
**अतो भयं व्यतीतं मे प्रीतिश्च परमा त्वयि ॥५३॥**

"मैंने अज्ञानवश आपसे जो अनुचित बात कह दी हो, उसे आप क्षमा करें। पूर्वकाल में आपने अत्यन्त दुष्कर और अद्भुत कर्म किये हैं, अतः आपका संरक्षण पाकर मेरा भय दूर हो गया है तथा आपके प्रति मेरा प्रेम बहुत बढ़ गया है।"

**ततो विमुच्य बाहुभ्यां वलयानि स वीर्यवान् ।**
**चित्रे काञ्चनसंनाहे प्रत्यमुञ्चत् तदा तले ॥५४॥**

उत्तर के ऐसा कहने पर पराक्रमी अर्जुन ने हाथों से कड़े और चूड़ियाँ उतार दीं तथा हथेलियों में सोने के बने हुए विचित्र कवच धारण कर लिये।

**प्रतिगृह्य ततोऽस्त्राणि प्रहृष्टवदनोऽभवत् ।**
**अधिज्यं तरसा कृत्वा गाण्डीवं व्यक्षिपद् धनुः ॥५५॥**

फिर अपने अस्त्र-शस्त्रों को धारण करके अर्जुन का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। उन्होंने बड़े वेग से गाण्डीव धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उसकी टंकार की।

**तस्य विक्षिप्यमाणस्य धनुषोऽभून्महाध्वनिः ।**
**यथा शैलस्य महतः शैलेनैवावजघ्नतः ॥५६॥**

उस धनुष की टंकार के समय बड़ा प्रचण्ड शब्द हुआ, मानो किसी महान् पर्वत को पर्वत से ही टक्कर लगी हो।

**उत्तरं सारथिं कृत्वा कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।**
**ततः प्रायादुदीचीं च कपिप्रवरकेतनः ॥५७॥**

उत्तर को सारथि बनाकर श्वेतवाहन कुन्तीनन्दन अर्जुन ने कपिश्रेष्ठ हनुमान् से चिह्नित ध्वजा को फहराते हुए उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया।

**स्वनवन्तं महाशंखं बलवानरिमर्दनः ।**
**प्राधमद् बलमास्थाय द्विषतां लोमहर्षणम् ॥५८॥**

उस समय शत्रुदमन महाबली अर्जुन ने घोर शब्द करनेवाले अपने महान् शंख को खूब जोर लगाकर बजाया जिसकी आवाज सुनकर शत्रुओं के रोंगटे खड़े हो गये।

**ततस्ते जवना धुर्या जानुभ्यामगमन्महीम् ।**
**उत्तरश्चापि संत्रस्तो रथोपस्थ उपाविशत् ॥५९॥**

उस शंखध्वनि से घबराकर रथ के वेगशाली घोड़ों ने भूमि पर घुटने टेक दिये तथा उत्तर भी अत्यन्त भयभीत हो रथ के ऊपरी भाग में, जहाँ रथी का स्थान है, जा बैठा।

**संस्थाप्य चाश्वान् कौन्तेयः समुद्यम्य च रश्मिभिः ।**
**उत्तरं च परिष्वज्य समाश्वासयदर्जुनः ॥६०॥**

तब कुन्तीपुत्र अर्जुन ने स्वयं रास खेंचकर घोड़ों को खड़ा किया तथा उत्तर को हृदय से लगाकर धैर्य बँधाया।

अर्जुन उवाच

**मा भैस्त्वं राजपुत्राग्र्य क्षत्रियोऽसि परन्तप ।**
**कथं तु पुरुषव्याघ्र शत्रुमध्ये विषीदसि ॥६१॥**

**अर्जुन बोले**—शत्रु-संतापक श्रेष्ठ राजकुमार ! डरो मत, तुम क्षत्रिय हो। पुरुषसिंह ! शत्रुओं के मध्य में आकर घबराते कैसे हो ?

**श्रुतास्ते शंखशब्दाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः ।**
**कुञ्जराणां च नदतां व्यूढानीकेषु तिष्ठताम् ॥६२॥**

तुमने अनेक बार शंख-ध्वनि सुनी होगी। रण-भेरियों के भयंकर शब्द भी बहुत बार तुम्हारे कानों में पड़े होंगे एवं व्यूहबद्ध सेनाओं में खड़े हुए गजराजों की चिंघाड़ें भी तुमने सुनी होंगी।

उत्तर उवाच

**श्रुता मे शंखशब्दाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः ।**
**कुञ्जराणां निनदतां व्यूढानीकेषु तिष्ठताम् ॥६३॥**

**उत्तर बोला**—वीरवर ! इसमें सन्देह नहीं कि मैंने शंखध्वनियाँ सुनी हैं, रणभेरियों के भयंकर शब्द भी अनेक बार मेरे कानों में पड़े हैं और व्यूहबद्ध सेनाओं में खड़े हुए चिंघाड़नेवाले गजराजों की चिंघाड़ें भी मैंने सुनी हैं।

**नैवंविधः शंखशब्दः पुरा जातु मया श्रुतः ।**
**ध्वजस्य चापि रूपं मे दृष्टपूर्वं न हीदृशम् ॥६४॥**

परन्तु आज से पूर्व ऐसा भयंकर शंखनाद मेरे सुनने में नहीं आया था और ध्वजा का भी ऐसा रूप मैंने कभी नहीं देखा था ।

**धनुषश्चैव निर्घोषः श्रुतपूर्वो न मे क्वचित् ।**
**रथस्य च निनादेन मनो मुह्यति मे भृशम् ॥६५॥**

धनुष की ऐसी टंकार भी पहले मैंने नहीं सुनी थी । रथ की भारी गड़गड़ाहट से भी डरकर मेरा हृदय बहुत व्याकुल हो उठा है ।

द्रोण उवाच

**यथा रथस्य निर्घोषो यथा मेघ उदीर्यते ।**
**कम्पते च यथा भूमिर्नैषोऽन्यः सव्यसाचिनः ॥६६॥**

**उधर उस शंखध्वनि को सुनकर द्रोणाचार्य ने कहा**—जैसी यह रथ की गड़गड़ाहट सुनाई दे रही है, उससे मेघगर्जना का-सा जो शब्द हो रहा है, उसी के कारण जिस प्रकार यह पृथिवी काँपने-सी लगी है, उससे यह सूचित होता है कि आनेवाला योद्धा अर्जुन के सिवा दूसरा कोई नहीं है ।

**इति महाभारते विराटपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥**

# त्रयोदशोऽध्यायः

## दुर्योधन के द्वारा युद्ध का निश्चय, भीष्म का परामर्श, अर्जुन द्वारा दुर्योधन की सेना पर आक्रमण करके गौओं को लौटाना तथा कौरव सेना का संहार

वैशम्पायन उवाच

**अथ दुर्योधनो राजा समरे भीष्ममब्रवीत् ।**
**द्रोणं च रथशार्दूलं कृपं च सुमहारथम् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! द्रोणाचार्य का वह कथन सुनकर राजा दुर्योधन ने रणभूमि में भीष्म, रथियों में श्रेष्ठ द्रोण और महारथी कृपाचार्य से कहा—

**उक्तोऽयमर्थ आचार्यो मया कर्णेन चासकृत् ।**
**पुनरेव प्रवक्ष्यामि न हि तृप्यामि तं ब्रुवन् ॥२॥**

"आचार्यो ! मैंने और कर्ण ने यह बात आप लोगों से कई बार कही है और फिर उसे दुहराता हूँ, क्योंकि उसे बार-बार कहकर भी मुझे तृप्ति नहीं होती ।

**पराभूतैर्हि वस्तव्यं तैश्च द्वादश वत्सरान् ।**
**वने जनपदेऽज्ञातैरेष एव पणो हि नः ॥३॥**

"जुआ खेलते समय हमारी शर्त थी कि हममें से जो हारेंगे, उन्हें बारह वर्ष तक किसी वन में प्रकट-रूप से तथा एक वर्ष तक किसी नगर में अज्ञातरूप में रहना होगा ।

**तेषां न तावन्निर्वृत्तं वर्तते तु त्रयोदशम् ।**
**अज्ञातवासो बीभत्सुरथास्माभिः समागतः ॥४॥**

"अभी पाण्डवों का तेरहवाँ वर्ष पूरा नहीं हुआ है, तो भी अज्ञातवास में रहनेवाला अर्जुन आज प्रकटरूप से हमारे साथ युद्ध करने आ रहा है ।

**अनिवृत्ते तु निर्वासे यदि बीभत्सुरागतः ।**
**पुनर्द्वादशवर्षाणि वने वत्स्यन्ति पाण्डवाः ॥५॥**

"यदि अज्ञातवास पूर्ण होने से पूर्व ही अर्जुन आ गया है, तो पाण्डवों को पुनः बारह वर्ष तक वन में निवास करना होगा ।

**लोभाद् वा ते न जानीयुरस्मान् वा मोह आविशत् ।**
**हीनातिरिक्तमेतेषां भीष्मो वेदितुमर्हति ॥६॥**

"वे राज्य के लोभ से अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण नहीं रख सके अथवा हमें ही मोह=प्रमाद आ गया है । इनके तेरहवें वर्ष में अभी कुछ कमी है, या अधिक दिन बीत गये हैं, यह भीष्मजी जान सकते हैं ।"

भीष्म उवाच

**इह कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात् ।**
**पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः ॥७॥**

**भीष्मजी बोले**—कालचक्र में पक्ष-मास आदि के समय के घटने-बढ़ने से और ग्रह-नक्षत्रों की गति के व्यतिक्रम से हर पाँचवें वर्ष में दो मास अधिमास के बढ़ जाते हैं ।

**एषामभ्यधिका मासाः पञ्च च द्वादश क्षपाः ।**
**त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्तते मतिः ॥८॥**

इस प्रकार इन तेरह वर्षों के पूर्ण होने के पश्चात् भी पाण्डवों के पाँच मास, बारह दिन और अधिक बीत चुके हैं ।[1] ऐसा मेरा विचार है ।

**सर्वं यथावच्चरितं यद् यदेभिः प्रतिश्रुतम् ।**
**एवमेतद् ध्रुवं ज्ञात्वा ततो बीभत्सुरागतः ॥९॥**

इन पाण्डवों ने जो-जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, उन सब का यथावत् पालन किया है । अज्ञातवास की अवधि पूर्ण हो गई है, इस बात को अच्छी प्रकार जानकर ही अर्जुन यहाँ आये हैं ।

**सर्वे चैव महात्मानः सर्वे धर्मार्थकोविदाः ।**
**येषां युधिष्ठिरो राजा कस्माद् धर्मेऽपराध्नुयुः ॥१०॥**

सभी पाण्डव महान् आत्मा हैं । सभी धर्म और अर्थ के ज्ञाता हैं । जिनके नेता महाराज युधिष्ठिर हैं, वे धर्म के विषय में कोई अपराध कैसे कर सकते हैं ?

**अलुब्धाश्चैव कौन्तेयाः कृतवन्तश्च दुष्करम् ।**
**वृणुयुर्मरणं पार्था नानृतत्वं कथञ्चन ॥११॥**

कुन्ती के पुत्र लोभी नहीं हैं । उन्होंने तपस्या आदि कठोर कर्म किये हैं । कुन्ती के पुत्र मृत्यु का आलिंगन कर सकते हैं, परन्तु किसी प्रकार असत्य का आश्रय नहीं ले सकते ।

**समरे प्रतियुध्येम सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।**
**तस्माद्यदत्र कल्याणं शीघ्रं तत्संविधीयताम् ॥१२॥**

इस समय हमें संग्राम-भूमि में शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन से युद्ध करना है, अतः जो कल्याणकारी उपाय है, उसे शीघ्र करना चाहिए ।

**न हि पश्यामि संग्रामे कदाचिदपि कौरव ।**
**एकान्तसिद्धिं राजेन्द्र सम्प्राप्तश्च धनञ्जयः ॥१३॥**

कुरुनन्दन ! राजेन्द्र ! मैं युद्ध में कभी ऐसा नहीं देखता कि किसी एक पक्ष की ही विजय अनिवार्य हो । लो, अर्जुन आ पहुँचे हैं ।

**सम्प्रवृत्ते तु संग्रामे भावाभावौ जयाजयौ ।**
**अवश्यमेकं स्पृशतो दृष्टमेतदसंशयम् ॥१४॥**

युद्ध छिड़ जाने पर किसी-न-किसी पक्ष को लाभ या हानि, जय अथवा पराजय अवश्य प्राप्त होते हैं, यह सदा देखा गया है, इसमें संशय की कोई बात ही नहीं है ।

**तस्माद् युद्धोचितं कर्म कर्म वा धर्मसंहितम् ।**
**क्रियतामाशु राजेन्द्र सम्प्राप्तश्च धनञ्जयः ॥१५॥**

राजेन्द्र ! तुम युद्धोचित कर्तव्य का पालन करो अथवा धर्म के अनुसार कार्य करो [उनका राज्य लौटाकर सन्धि कर लो] । जो कुछ करना है, शीघ्र करो, क्योंकि अर्जुन अब सिर पर आ पहुँचे हैं ।

दुर्योधन उवाच

**नाहं राज्यं प्रदास्यामि पाण्डवानां पितामह ।**
**युद्धोपचारिकं यत्तु तच्छीघ्रं प्रविधीयताम् ॥१६॥**

**दुर्योधन बोला**—पितामह ! मैं पाण्डवों को राज्य

---

१. महाभारत-काल में प्रत्येक पाँच वर्ष में दो मास बढ़ाकर चान्द्रमास को सौरमास के बराबर कर लिया जाता है । श्लोक ७ में इस तथ्य का उल्लेख है । पाण्डवों ने तेरह वर्ष [चान्द्रवर्ष] पूर्ण करने के पश्चात् पाँच मास और बारह दिन अधिक बिता दिये थे ।

प्रत्येक पाँच वर्ष में दो मास के गणित से तेरह वर्षों में पाण्डवों को पाँच मास और छह दिन पूर्ण करने चाहिए थे, अतः भीष्मजी के अनुसार पाण्डवों का वन तथा अज्ञातवास का समय पूरा ही नहीं हुआ, अपितु उन्होंने छह दिन अधिक बिता दिये । परन्तु दुर्योधन का कहना यह था कि पाँच वर्ष में दो मास अधिक आते हैं, अतः पाण्डवों को तेरह वर्ष पूर्ण करने के पश्चात् छह मास बिताने चाहिए थे, किन्तु इन्होंने पाँच मास तथा बारह दिन ही व्यतीत किये हैं, अतः पाण्डव शर्त हार गये और इन्हें पुनः वन में जाना चाहिए ।

पाण्डवों ने पाँच मास और बारह दिन व्यतीत किये थे और दुर्योधन के अनुसार छह मास पूर्ण करने चाहिए थे । इस प्रकार अठारह दिन का अन्तर रह गया । इस अठारह दिन के लिए ही अठारह दिन तक लोहे-से-लोहा बजता रहा, भीषण नरसंहार हुआ । अठारह अक्षौहिणी सेना में से केवल दस व्यक्ति बचे ।

सम्भवतः इस अठारह की संख्या को लेकर ही महाभारत के अठारह पर्व बने, सेना भी अठारह अक्षौहिणी और युद्ध भी अट्ठारह दिन तक लड़ा गया ।

तो दूँगा नहीं [अतः सन्धि भी नहीं हो सकती, तब] युद्ध में उपयोगी जो कार्य हो वही किया जाए।

भीष्म उवाच

**अत्र या मामिका बुद्धिः श्रूयतां यदि रोचते।**
**सर्वथा हि मया श्रेयो वक्तव्यं कुरुनन्दन ॥१७॥**

**भीष्मजी बोले**—कुरुनन्दन! यदि तुम्हें जँचे तो इस विषय में मेरी जो सम्मति है, उसे सुनो। मैं सर्वथा कल्याण की ही बात कहूँगा।

**क्षिप्रं बलचतुर्भागं गृह्य गच्छ पुरं प्रति।**
**ततोऽपरश्चतुर्भागो गाः समादाय गच्छतु ॥१८॥**

तुम सेना का एक-चौथाई भाग लेकर शीघ्र ही हस्तिनापुर को प्रस्थान करो तथा दूसरी एक-चौथाई टुकड़ी गौओं को साथ लेकर जाए।

**वयं चार्धेन सैन्यस्य द्रोणः कर्णः कृपस्तथा।**
**प्रतियोत्स्याम बीभत्सुमागतं कृतनिश्चयम् ॥१९॥**

द्रोणाचार्य, कर्ण, कृपाचार्य आदि हम लोग आधी सेना साथ लेकर युद्ध का निश्चय करके आये हुए अर्जुन के साथ लड़ेंगे।

वैशम्पायन उवाच

**तद्वाक्यं रुरुचे तेषां भीष्मेणोक्तं महात्मना।**
**तथा हि कृतवान् राजा कौरवाणामनन्तरम् ॥२०॥**
**भीष्मः प्रस्थाप्य राजानं गोधनं तदनन्तरम्।**
**सेनामुख्यान् व्यवस्थाप्य व्यूहितुं सम्प्रचक्रमे ॥२१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! महात्मा भीष्म की यह सम्मति सबको पसन्द आई। फिर कौरवों के राजा दुर्योधन ने वैसा ही किया। भीष्मजी ने पहले राजा दुर्योधन को, फिर गोधन को भेजकर सेनापतियों को व्यवस्थित करके सेना का व्यूह बनाने की तैयारी की।

भीष्म उवाच

**आचार्य मध्ये तिष्ठ त्वमश्वत्थामा तु सव्यतः।**
**कृपः शारद्वतो धीमान् पार्श्वं रक्षतु दक्षिणम् ॥२२॥**

**भीष्म ने कहा**—आचार्य! आप मध्य में खड़े हों। अश्वत्थामा वाम=बाएँ भाग की रक्षा करें और शरद्वान् के पुत्र बुद्धिमान् कृपाचार्य सेना के दक्षिण भाग की रक्षा करें।

**अग्रतः सूतपुत्रस्तु कर्णस्तिष्ठतु दंशितः।**
**अहं सर्वस्य सैन्यस्य पश्चात्स्थास्यामि पालयन् ॥२३॥**

सूतपुत्र कर्ण कवच धारण करके सेना के आगे रहें और मैं पृष्ठ भाग की रक्षा करता हुआ सम्पूर्ण सेना के पीछे स्थित रहूँगा।

वैशम्पायन उवाच

**तथा व्यूढेष्वनीकेषु कौरवे येषु भारत।**
**उपायादर्जुनस्तूर्णं रथघोषेण नादयन् ॥२४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! इस प्रकार कौरव-सेना की व्यूह-रचना हो जाने पर अर्जुन अपने रथ की गड़गड़ाहट से सम्पूर्ण दिशाओं को गुँजाते हुए शीघ्र ही निकट आ पहुँचे। [अर्जुन को निकट आया देखकर—]

द्रोण उवाच

**एतद् ध्वजाग्रं पार्थस्य दूरतः सम्प्रकाशते।**
**एष घोषः स रथजो रोरवीति च वानरः ॥२५॥**

**द्रोणाचार्य बोले**—वह देखो, अर्जुन के रथ की ध्वजा का ऊपरी भाग दूर से ही प्रकाशित हो रहा है। यह उन्हीं के रथ की गड़गड़ाहट का शब्द है। साथ ही ध्वजा पर बैठा वानर भी उच्च स्वर से गर्जना कर रहा है।

**एष तिष्ठन् रथश्रेष्ठे रथे च रथिनां वरः।**
**उत्कर्षति धनुः श्रेष्ठं गाण्डीवमशनिस्वनम् ॥२६॥**

यह देखो, श्रेष्ठ रथ में बैठे हुए रथियों में श्रेष्ठ वीर अर्जुन धनुषों में सर्वोत्तम गाण्डीव की डोरी खींच रहे हैं और उससे वज्र की गड़गड़ाहट के समान शब्द हो रहा है।

**इमौ च बाणौ सहितौ पादयोर्मे व्यवस्थितौ।**
**अपरौ चाप्यतिक्रान्तौ कर्णौ संस्पृश्य मे शरौ ॥२७॥**

ये दो बाण एक साथ आकर मेरे दोनों पैरों के आगे आकर गिरे हैं और दूसरे दो बाण मेरे दोनों कानों को छूकर निकल गये हैं।

**निरुष्य हि वने वासं कृत्वा कर्मातिमानुषम्।**
**अभिवादयते पार्थः श्रोत्रे च परिपृच्छति ॥२८॥**

कुन्तीपुत्र अर्जुन वन में रहकर वहाँ तपस्या तथा शौर्य द्वारा अतिमानुष पराक्रम करके आज प्रकट हुए हैं। वे प्रथम दो बाणों द्वारा मुझे प्रणाम कर रहे हैं और दूसरे कानों के पास फेंके गये दो बाणों से मेरा

कुशल-मङ्गल पूछते तथा युद्ध के लिए आज्ञा माँगते हैं। [उधर अर्जुन ने सारथि से कहा—]

अर्जुन उवाच

**इषुपाते च सेनाया हयान् संयच्छ सारथे।**
**यावत्समीक्षे सैन्येऽस्मिन् क्वासौ कुरुकुलाधमः ॥२६॥**

**अर्जुन ने कहा**—सारथे! कौरव सेना और मेरे रथ के बीच में बाण की मार का अन्तर रह जाए तो घोड़ों को रोक लेना, जिससे मैं यह देख लूँ कि इस सेना में कुरुकुलाधम दुर्योधन कहाँ है।

**सर्वानेताननादृत्य दृष्ट्वा तमतिमानिनम्।**
**तस्य मूर्ध्नि पतिष्यामि तत एते पराजिताः ॥३०॥**

उस महा-अभिमानी दुर्योधन को देख लेने पर मैं इन सब योद्धाओं को छोड़कर उसी के सिर पर पड़ूँगा। उसके पराजित होने से ये सब परास्त हो जाएँगे।

**एष व्यवस्थितो द्रोणो द्रौणिश्च तदनन्तरम्।**
**भीष्मः कृपश्च कर्णश्च महेष्वसाः समागताः ॥३१॥**

ये आचार्य द्रोण खड़े हैं, उनके पश्चात् उन्हीं के पुत्र अश्वत्थामा हैं। उधर पितामह भीष्म हैं। इधर कृपाचार्य हैं और वह कर्ण है। ये सब महान् धनुर्धर यहाँ युद्ध के लिए आये हैं।

**राजानं नात्र पश्यामि गाः समादाय गच्छति।**
**दक्षिणं मार्गमास्थाय शंके जीवपरायणः ॥३२॥**

परन्तु इनमें मैं राजा दुर्योधन को नहीं देखता हूँ। मुझे सन्देह है कि वह दुरात्मा दक्षिण दिशा का मार्ग पकड़कर गौओं को साथ ले अपनी जान बचाकर भागा जा रहा है।

**उत्सृजैतद् रथानीकं गच्छ यत्र सुयोधनः।**
**तं जित्वा विनिर्वतिष्ये गाः समादाय वै पुनः ॥३३॥**

विराटनन्दन! रथियों की सेना को छोड़ो और जहाँ दुर्योधन है वहीं चलो। उसे जीतकर गौओं को अपने साथ ले मैं पुनः लौट आऊँगा।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तः स वैराटिर्हयान् संयम्य यत्नतः।**
**संप्रैरयत् ततो वाहान् यत्र दुर्योधनो गतः ॥३४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—अर्जुन के ऐसी आज्ञा देने पर विराटकुमार उत्तर ने यत्नपूर्वक घोड़ों को संयम में रखते हुए उसी ओर बढ़ाया जिधर दुर्योधन गया था।

**उत्सृज्य रथवंशं तु प्रयाते श्वेतवाहने।**
**अभिप्रायं विदित्वा च कृपो वचनमब्रवीत् ॥३५॥**

रथियों की सेना को छोड़कर श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुन जब दूसरी ओर चल दिये, तब उनका अभिप्राय जानकर कृपाचार्य बोले—

**नैषोऽन्तरेण राजानं बीभत्सुः स्थातुमिच्छति।**
**तस्य पार्ष्णि ग्रहीष्यामो जवेनाभिप्रयास्यतः ॥३६॥**

"ये अर्जुन राजा दुर्योधन के बिना ठहरना नहीं चाहते, अतः बड़े वेग से उधर ही जा रहे हैं। आओ, हम लोग शीघ्र चलकर इनका पीछा करें।

**किं नो गावः करिष्यन्ति धनं वा विपुलं तथा।**
**दुर्योधनः पार्थजले पुरा नौरिव मज्जति ॥३७॥**

ये गौएँ अथवा प्रभूत धन हमें क्या लाभ देंगे? राजा दुर्योधन पार्थरूपी जल में जीर्ण [पुरारी] नौका की भाँति डूबना चाहता है।

**तथैव गत्वा बीभत्सुर्नाम विश्राव्य चात्मनः।**
**शलभैरिव तां सेनां शरैः शीघ्रमवाकिरत् ॥३८॥**

उधर अर्जुन ने दुर्योधन के पास पहुँचकर और उच्च स्वर से अपना नाम सुनाकर बड़ी शीघ्रता से कौरव सेना पर टिड्डी दल की भाँति असंख्य बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।

**तेषामापततां युद्धे नापयानेऽभवन्मतिः।**
**शीघ्रत्वमेव पार्थस्य पूजयन्ति स्म चेतसा ॥३६॥**

युद्ध में बाणों की मार खाकर कौरव धराशायी होते जा रहे थे, परन्तु उनका मन वहाँ से भागने को नहीं होता था। वे मन-ही-मन अर्जुन की स्फूर्ति की सराहना करते थे।

**ततः शंखं प्रदध्मौ स द्विषतां लोमहर्षणम्।**
**तस्य शंखस्य शब्देन रथनेमिस्वनेन च ॥४०॥**
**ऊर्ध्वं पुच्छान् विधुन्वाना रेभमाणाः समन्ततः।**
**गावः प्रतिन्यवर्तन्त दिशमास्थाय दक्षिणाम् ॥४१॥**

तत्पश्चात् पार्थ ने अपना वह शंख बजाया, जो शत्रुओं के रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। अर्जुन के उस शंखनाद और रथ के पहियों की घर्घराहट से गौएँ ऊपर को पूँछ उठाकर उन्हें हिलातीं और रँभातीं

हुई सब ओर से लौट पड़ीं तथा दक्षिण दिशा की ओर भाग चलीं।

**ततः प्रहस्य बीभत्सुः कौन्तेयः श्वेतवाहनः।**
**दिव्यमस्त्रं प्रकुर्वाणः प्रत्यायाद् रथसत्तमः ॥४२॥**

तत्पश्चात् श्वेत घोड़ोंवाले श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ कुन्तीपुत्र अर्जुन ने हँसकर दिव्यास्त्र प्रकट करते हुए उस सेना का सामना किया।

**स तु द्रोणं त्रिसप्तत्या क्षुरप्राणां समार्पयत्।**
**दुःसहं दशभिर्बाणैर्द्रौणिमष्टाभिरेव च ॥४३॥**
**दुःशासनं द्वादशभिः कृपं शारद्वतं त्रिभिः।**
**भीष्मं शान्तनवं षष्ठ्या राजानं वै शतेन च।**
**कर्णं च कर्णिना कर्णे विव्याध परवीरहा ॥४४॥**

उन्होंने द्रोणाचार्य को तिहत्तर, दुःसह को दस, अश्वत्थामा को आठ, दुःशासन को बारह, शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य को तीन, शान्तनुनन्दन भीष्म को साठ तथा राजा दुर्योधन को सौ क्षुरप्र नामवाले बाणों से घायल किया। तत्पश्चात् शत्रुवीरों का हनन करनेवाले अर्जुन ने कर्ण के कान में कर्णी नामक बाण मारकर उसे बींध डाला।

**तस्मिन् विद्धे महेष्वासे कर्णे सर्वास्त्रकोविदे।**
**हताश्वसूते विरथे ततोऽनीकमभज्यत ॥४५॥**

सम्पूर्ण अस्त्रों के ज्ञाता महाधनुर्धर सुप्रसिद्ध कर्ण के घायल होने तथा उसके घोड़े और सारथि के मारे जाने और रथ के नष्ट हो जाने पर सारी सेना में भगदड़ मच गई।

**इति महाभारते विराटपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥**

# चतुर्दशोऽध्यायः

## अर्जन द्वारा समस्त कौरव महारथियों की पराजय, उत्तर का कौरव योद्धाओं के वस्त्र उतारना, विजयी अर्जुन और उत्तर का राजधानी की ओर लौटना

वैशम्पायन उवाच

**ततो दुर्योधनः कर्णो दुःशासनविविंशतिः।**
**द्रोणश्च सहपुत्रेण कृपश्चापि महारथः ॥१॥**
**पुनर्ययुश्च संरब्धा धनञ्जयजिघांसवः।**
**विस्फारयन्तश्चापानि बलवन्ति दृढानि च ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! सेना में भगदड़ मचने पर दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, विविंशति, पुत्रसहित आचार्य द्रोण और महारथी कृपाचार्य—ये सब योद्धा रोष में भरकर अर्जुन को मार डालने की इच्छा से अपने शक्तिशाली और दृढ़ धनुषों की टंकार करते हुए उनपर पुनः चढ़ आये।

**तान् विकीर्णपताकेन रथेनादित्यवर्चसा।**
**प्रत्युद्ययौ महाराज समन्ताद् वानरध्वजः ॥३॥**

महाराज! तब वानरध्वजावाले अर्जुन भी सूर्य के समान दीप्त तथा लहराती हुई पताका से सुशोभित रथ के द्वारा सब ओर से उनका सामना करने के लिए आगे बढ़े।

**ततः कृपश्च कर्णश्च द्रोणश्च रथिनां वरः।**
**तं महास्त्रैर्महावीर्यं परिवार्य धनञ्जयम् ॥४॥**
**शरौघान् सम्यगस्यन्तो जीमूता इव वार्षिकाः।**
**ववर्षुः शरवर्षाणि पातयन्तो धनञ्जयम् ॥५॥**

यह देख कृपाचार्य, कर्ण तथा रथियों में श्रेष्ठ आचार्य द्रोण—ये महापराक्रमी अर्जुन को चारों ओर से घेरकर अपने महान् धनुषों से उनपर बाणों का जमकर प्रहार करने लगे। वे तीनों महारथी धनञ्जय को मार गिराने की इच्छा से वर्षाकाल के मेघों की भाँति सायकों की वर्षा कर रहे थे।

**ततः प्रहस्य बीभत्सुर्दिव्यमैन्द्रं महारथः।**
**अस्त्रमादित्यसङ्काशं गाण्डीवे समयोजयत् ॥६॥**

तब महारथी अर्जुन ने हँसकर गाण्डीव धनुष पर सूर्य के समान तेजस्वी दिव्य ऐन्द्रास्त्र का संधान किया।

**नागाश्च रथिनः सर्वे मुमुहुस्तत्र भारत।**
**संग्रामे विमुखाः सर्वे योधास्ते हतचेतसः ॥७॥**

हे जनमेजय! उस अस्त्र के प्रभाव से गजारूढ़ और रथी आदि सब सैनिक मूर्च्छित हो रहे थे और

तभी सब योद्धाओं ने हतोत्साह होकर युद्ध से मुंह मोड़ लिया।

**तदा सर्वाणि सैन्यानि भग्नानि भरतर्षभ।**
**व्यद्रवन्त दिशः सर्वा निराशानि स्वजीविते ॥८॥**

भरतश्रेष्ठ जनमेजय ! तब सारी सेना का व्यूह टूट गया। सब सैनिक अपने जीवन से निराश होकर चारों दिशाओं में भागने लगे।

**ततः शान्तनवो भीष्मो भरतानां पितामहः।**
**वध्यमानेषु योधेषु धनञ्जयमुपाद्रवत् ॥९॥**

तब भरतवंश के सुप्रसिद्ध वीर शान्तनुनन्दन भीष्म पितामह अपने पक्ष के योद्धाओं का संहार होते देख अर्जुन की ओर दौड़े।

**तमुदीक्ष्य समायान्तं कौन्तेयः परवीरहा।**
**प्रत्यगृह्णात् प्रहृष्टात्मा धाराधरमिवाचलः ॥१०॥**

शत्रुनाशक कुन्तीपुत्र अर्जुन ने भीष्म को आते देख प्रसन्नचित्त होकर उसी प्रकार उनका सामना किया जैसे पर्वत अविचल भाव से खड़ा रहकर जल बरसानेवाले मेघ का आघात सहन करता है।

**तयोस्तदभवद् युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।**
**भीष्मस्य सह पार्थेन बलिवासवयोरिव ॥११॥**

उन दोनों का वह तुमुल युद्ध रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। पार्थ के साथ भीष्म का वह संग्राम बलि और इन्द्र के युद्ध के समान था।

**प्रैक्षन्त कुरवः सर्वे योधाश्च सहसैनिकाः।**
**भल्लैर्भल्लाः समागम्य भीष्मपाण्डवयोर्युधि।**
**अन्तरिक्षे व्यराजन्त खद्योताः प्रावृषीव हि ॥१२॥**

समस्त कौरव-योद्धा अपने सैनिकों के साथ खड़े-खड़े तमाशा देखने लगे। रणक्षेत्र में भीष्म और अर्जुन के भल्ल एक-दूसरे से टकराकर वर्षाकाल के आकाश में जुगनुओं की भाँति चमक उठते थे।

**प्राजापत्यं तथैवैन्द्रमाग्नेयं रौद्रदारुणम्।**
**कौबेरं वारुणं चैव याम्यं वायव्यमेव च।**
**प्रयुञ्जानौ महात्मानौ समरे तौ विचेरतुः ॥१३॥**

प्राजापत्य, ऐन्द्र, आग्नेय, भयंकर रौद्र, कौबेर, वारुण, याम्य तथा वायव्य अस्त्रों का प्रयोग करते हुए वे दोनों महापुरुष समरभूमि में विचर रहे थे।

**विस्मितान्यथ भूतानि तौ दृष्ट्वा संयुगे तदा।**
**साधु पार्थ महाबाहो साधु भीष्मेति चाब्रुवन् ॥१४॥**

उस समय युद्ध में उन दोनों की ओर देखकर सब प्राणी=सैनिक आश्चर्यचकित होकर बोल उठते थे—"महाबाहो पार्थ ! धन्य है। महाबाहो भीष्म ! वाह-वाह !"

**एवं सर्वास्त्रविदुषोरस्त्रयुद्धमवर्तत।**
**अस्त्रयुद्धे तु निर्वृत्ते शरयुद्धमवर्तत ॥१५॥**

इस प्रकार सम्पूर्ण अस्त्रों के ज्ञाता भीष्म और अर्जुन में कुछ समय तक भयंकर दिव्यास्त्रों का युद्ध चलता रहा। उसके समाप्त हो जाने पर पुनः बाणयुद्ध आरम्भ हुआ।

**अथ जिष्णुरुपावृत्य क्षुरधारेण कार्मुकम्।**
**चकर्त स हि भीष्मस्य जातरूपपरिष्कृतम् ॥१६॥**

तत्पश्चात् विजयशील अर्जुन ने निकट आकर छुरे के समान धारवाले एक बाण से भीष्म के सुवर्ण-भूषित धनुष को काट डाला।

**निमेषान्तरमात्रेण भीष्मोऽन्यत् कार्मुकं रणे।**
**समादाय महाबाहुः सज्यं चक्रे महारथः।**
**शरांश्च सुबहून् क्रुद्धो मुमोचाशु धनञ्जये ॥१७॥**

महाबाहु महारथी भीष्म ने भी पलक मारते-मारते उस युद्ध में दूसरा धनुष ले उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और क्रोध में भरकर धनञ्जय पर बहुत से बाणों का प्रहार किया।

**अर्जुनोऽपि शरांस्तीक्ष्णान्भीष्माय दिशितान्बहून्।**
**चिक्षेप सुमहातेजास्तथा भीष्मश्च पाण्डवे ॥१८॥**

तब महातेजस्वी अर्जुन ने भी भीष्म पर बहुत-से पैने बाण फेंके और भीष्म ने भी पाण्डुपुत्र को अनेक तीखे बाण मारे।

**अतीव पाण्डवो भीष्मं भीष्मश्चातीव पाण्डवम्।**
**बभूव तस्मिन् संग्रामे राजंल्लोके तदद्भुतम् ॥१९॥**

हे राजा जनमेजय ! उस युद्ध में कभी पाण्डुपुत्र अर्जुन भीष्म से आगे बढ़ जाते थे, तो कभी भीष्म ही अर्जुन को लाँघ जाते थे। लोक में यह एक अद्भुत-सी बात थी।

**ततः शान्तनवो भीष्मो वामं पार्श्वमताडयत्।**
**पश्यतः प्रतिसंधाय विध्यतः सव्यसाचिनः ॥२०॥**

तदनन्तर शान्तनुनन्दन भीष्म ने [कौरव सेना

को] बींधनेवाले सव्यसाची अर्जुन के देखते-देखते बाण-सन्धान करके उनके बायें पार्श्व को बींध डाला।

**ततः प्रहस्य बीभत्सुः पृथुधारेण कार्मुकम्।**
**चिच्छेद गार्ध्रपत्रेण भीष्मस्यादित्यतेजसः ॥२१॥**

तब अर्जुन ने भी हँसकर मोटी धार एवं गीध के पंखवाले बाण से सूर्य के समान तेजस्वी भीष्म का धनुष फिर काट दिया।

**अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् सुवक्षसि।**
**यतमानं पराक्रान्तं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥२२॥**

तत्पश्चात् कुन्तीपुत्र धनञ्जय ने विजय के लिए प्रयत्नशील भीष्म की छाती में दस तीक्ष्ण बाण मारकर गहरी चोट पहुँचाई।

**स पीडितो महाबाहुर्गृहीत्वा रथकूबरम्।**
**गाङ्गेयो युद्धदुर्धर्षस्तस्थौ दीर्घमिवान्तरम् ॥२३॥**

इन बाणों से पीड़ित हो रणदुर्धर्ष वीर महाबाहु भीष्म रथ का कूबर पकड़कर बहुत देर तक निश्चेष्ट बैठे रह गये।

**तं विसंज्ञमपोवाह संयन्ता रथवाजिनाम्।**
**उपदेशमनुस्मृत्य रक्षमाणो महारथम् ॥२४॥**

वे बेहोश थे। 'ऐसी अवस्था में सारथि को रथी की रक्षा करनी चाहिए'—इस उपदेश का स्मरण करके महारथी भीष्म की प्राण-रक्षा के उद्देश्य से उनके रथ और घोड़ों को वश में रखनेवाला सारथि उन्हें संग्राम-भूमि से बाहर हटा ले गया।

**भीष्मे तु संग्रामशिरो विहाय**
**पलायमाने धृतराष्ट्रपुत्रः।**
**उपसृज्य केतुं विनदन् महात्मा**
**धनुर्विगृह्यार्जुनमाससाद ॥२५॥**

हे जनमेजय! जब भीष्मजी युद्ध-क्षेत्र [स्थल] छोड़ दूर हट गये, तब धृतराष्ट्रपुत्र महामना दुर्योधन अपने रथ की पताका फहराकर हाथ में धनुष ले सिंहनाद करता हुआ अर्जुन पर चढ़ आया।

**स भीमधन्वानमुदग्रवीर्यं**
**धनञ्जयं शत्रुगणे चरन्तम्।**
**आकर्णपूर्णायतप्रेरितेन**
**विव्याध भल्लेन ललाटमध्ये ॥२६॥**

उस समय भयंकर धनुषधारी, प्रचण्ड पराक्रमी अर्जुन शत्रुसेना में विचर रहे थे। दुर्योधन ने धनुष को कान तक खींचकर छोड़े हुए भल्ल नामक बाण से उनके ललाट में गहरी चोट पहुँचाई।

**दुर्योधनश्चापि तमुग्रतेजाः**
**पार्थश्च दुर्योधनमेकवीरः।**
**अन्योन्यमाजौ पुरुषप्रवीरौ**
**समौ समाजग्मतुराजमीढौ ॥२७॥**

तत्पश्चात् उग्र तेजस्वी अद्वितीय वीर अर्जुन ने दुर्योधन पर तथा दुर्योधन ने अर्जुन पर आक्रमण किया। अजमीढवंशीय वे दोनों प्रमुख वीर एकसमान पराक्रमी थे। उन्होंने संग्राम में एक-दूसरे पर बड़े वेग से धावा किया।

**ततः प्रभिन्नेन महागजेन**
**महीधराभेन पुनर्विकर्णः।**
**रथैश्चतुर्भिर्गजपादरक्षैः**
**कुन्तीसुतं जिष्णुमथाभ्यधावत् ॥२८॥**

उसी समय विकर्ण एक पर्वतकार विशाल गजराज पर, जिसके मस्तक से मद चू रहा था, चढ़कर पुनः कुन्तीपुत्र जिष्णु=अर्जुन पर चढ़ आया। उसके साथ चार रथारोही योद्धा भी थे, जो हाथी के चारों पैरों की रक्षा करते थे।

**तमापतन्तं त्वरितं गजेन्द्रं**
**धनञ्जयः कुम्भविभागमध्ये।**
**आकर्णपूर्णेन महायसेन**
**बाणेन विव्याध महाजवेन ॥२९॥**

उस गजराज को तीव्र गति से अपनी ओर आते देख धनञ्जय ने धनुष को कान तक खींचकर चलाये हुए लोहे के अत्यन्त वेगशाली बाण द्वारा उसके कुम्भस्थल को बींध डाला।

**शरप्रतप्तः स तु नागराजः**
**प्रवेपिताङ्गो व्यथितान्तरात्मा।**
**संसीदमानो निपपात मह्यां**
**वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥३०॥**

वह गजराज अर्जुन के बाण से सन्तप्त हो गया। उसकी अन्तरात्मा व्यथित हो गई और सारा शरीर काँपने लगा। जैसे वज्र का मारा हुआ पर्वतशिखर ढह जाता है, वैसे ही वह नागराज शिथिल होकर

धराशायी हो गया।

**दृष्ट्वैव पार्थेन हतं च नागं**
**योधाँश्च सर्वान् द्रवतो निशम्य।**
**रथं समावृत्य कुरुप्रवीरो**
**रणात् प्रदुद्राव यतो न पार्थः ॥३१॥**

अर्जुन के द्वारा गजराज मारा गया और समस्त योद्धा भी युद्ध छोड़कर भाग रहे हैं, यह देखकर कुरुवंश का प्रमुख वीर दुर्योधन भी, जिस ओर अर्जुन नहीं थे, उसी दिशा में रथ घुमाकर भागा।

**तं भीमरूपं त्वरितं द्रवन्तं**
**दुर्योधनं शत्रुसहोऽभिषङ्गात्।**
**प्रास्फोटयद् योद्धुमनाः किरीटी**
**बाणेन विद्धं रुधिरं वमन्तम् ॥३२॥**

उस समय दुर्योधन का रूप विकराल हो रहा था। वह परास्त होकर बाण से घायल हो रक्त-वमन करता हुआ भागा जा रहा था। यह देखकर शत्रु का वेग सहन करनेवाले किरीटधारी अर्जुन ने ताल ठोकी और मन में युद्ध के लिए उत्साह रखते हुए शत्रु को ललकारा—

अर्जुन उवाच

**विहाय कीर्ति विपुलं यशश्च**
**युद्धात् परावृत्य पलायसे किम्।**
**न तेऽद्य तूर्याणि समाहितानि**
**नरेन्द्रवृत्तं स्मर धार्तराष्ट्र ॥३३॥**

**अर्जुन बोले**—हे धृतराष्ट्रपुत्र! तू युद्ध से पीठ दिखाकर क्यों भागा जा रहा है? अरे! ऐसा करके तू अपनी कीर्ति और महान् यश से हाथ धो बैठा है। आज तेरी विजय के बाजे पहले जैसे नहीं बज रहे हैं। राजा का आचार और व्यवहार कैसा होना चाहिए, इसका तो स्मरण कर।

**मोघं तवेदं भुवि नामधेयं**
**दुर्योधनो नाम कृतं पुरस्तात्।**
**न हीह दुर्योधनता तवास्ति**
**पलायमानस्य रणं विहाय ॥३४॥**

व्यर्थ ही इस पृथिवी पर तेरा नाम दुर्योधन रखा गया। तू तो युद्ध छोड़कर भागा जा रहा है, अतः यहाँ तुझमें दुर्योधन नाम के अनुरूप कोई गुण नहीं है।

वैशम्पायन उवाच

**आहूयमानश्च स तेन संख्ये**
**महात्मना वै धृतराष्ट्रपुत्रः।**
**निर्वर्तितस्तस्य गिराङ्कुशेन**
**महागजो मत्त इवाङ्कुशेन ॥३५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! महात्मा अर्जुन ने जब इस प्रकार युद्ध के लिए ललकारा, तब धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अंकुश की चोट खाये हुए मतवाले गजराज की भाँति उनके कटुवचनरूपी अंकुश से पीड़ित होकर पुनः युद्ध के लिए लौट पड़ा।

**तं प्रेक्ष्य कर्णः परिवर्तमानं**
**निवर्त्य संस्तभ्य च विद्धगात्रम्।**
**दुर्योधनस्योत्तरतोऽभ्यगच्छत्**
**पार्थं नृवीरो युधि हेममाली ॥३६॥**

दुर्योधन को लौटते देख कर्ण भी अपने घायल शरीर को किसी प्रकार सँभालकर लौट पड़ा और उसके उत्तर [वाम] भाग में रहकर युद्धभूमि में पार्थ का सामना करने के लिए चला। नरवीर कर्ण स्वर्णमाला से सुशोभित था।

**भीष्मस्ततः शान्तनवो विवृत्य**
**हिरण्यकक्षस्त्वरयाभिसङ्गी।**
**दुर्योधनं पश्चिमतोऽभ्यरक्षत्**
**पार्थान्महाबाहुरधिज्यधन्वा ॥३७॥**

उधर सुनहरे रंग की चादर ओढ़े शान्तनुनन्दन भीष्म भी बड़े वेग से रथ घुमाकर वहाँ आ पहुँचे। वे शत्रु को पराजित करने में समर्थ थे। महाबाहु भीष्म धनुष की डोरी चढ़ाकर पश्चिम=पीछे की ओर से पार्थ के आक्रमणों से दुर्योधन की रक्षा करने लगे।

**द्रोणः कृपश्चैव विविंशतिश्च**
**दुःशासनश्चैव विवृत्य शीघ्रम्।**
**सर्वे पुरस्ताद् विततोरुचापा**
**दुर्योधनार्थं त्वरिताऽभ्युपेयुः ॥३८॥**

द्रोण, कृपाचार्य, विविंशति और दुःशासन भी शीघ्र ही घूमकर उधर आ गये। वे सब अपने विशाल धनुषों को ताने हुए पूर्व=सामने की ओर से दुर्योधन की रक्षा के लिए बड़ी उतावली के साथ आये थे।

ते सर्वतः सम्परिवार्य पार्थ-
मस्त्राणि दिव्यानि समाददानाः ।
ववर्षुरभ्येत्य शरैः समन्ता-
न्मेघा यथा भूधरमम्बुवर्गैः ।।३९।।

दिव्यास्त्र धारण करनेवाले उन सब योद्धाओं ने अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया और जैसे बादल पर्वत पर सब ओर से पानी बरसाते हैं, उसी प्रकार वे निकट आकर उनपर बाणों की वर्षा करने लगे ।

ततोऽस्त्रमस्त्रेण निवार्य तेषां
गाण्डीवधन्वा कुरुपुङ्गवानाम् ।
सम्मोहनं शत्रुसहोऽन्यदस्त्रं
प्रादुश्चकारैन्द्रिरपारणीयम् ।।४०।।

तब शत्रुओं का वेग सहन करनेवाले इन्द्रपुत्र गाण्डीवधारी अर्जुन ने अपने अस्त्र से कौरव दल के उन श्रेष्ठ वीरों के अस्त्रों का निवारण करके सम्मोहन नामक दूसरा अस्त्र प्रकट किया, जिसका निवारण करना किसी के लिए भी सम्भव नहीं था ।

ततो दिशश्चानुदिशो विवृत्य
शरैः सुधारैर्निशितैः सुपत्रैः ।
गाण्डीवघोषेण मनांसि तेषां
महाबलः प्रव्यथयाञ्चकार ।।४१।।

फिर तो महाबली अर्जुन ने सुन्दर पंख और पैनी धारवाले बाणों द्वारा समस्त दिशाओं और दिक्कोणों को आच्छादित करके गाण्डीव धनुष की भयंकर टंकार से कौरव-योद्धाओं के हृदय में भारी व्यथा उत्पन्न कर दी ।

ततः पुनर्भीमरवं प्रगृह्य
दोर्भ्यां महाशंखमुदारघोषम् ।
व्यनादयत् स प्रदिशो दिशः खं
भुवं च पार्थो द्विषतां निहन्ता ।।४२।।

तत्पश्चात् शत्रुनाशक कुन्तीपुत्र अर्जुन ने भयंकर शब्द करनेवाले अपने प्रचण्ड शंख को, जिसकी ध्वनि बहुत दूर तक सुनाई देती थी, दोनों हाथों से थामकर बजाया । उसकी ध्वनि सम्पूर्ण दिशा-विदिशाओं, आकाश तथा पृथिवी में सब ओर गूंज उठी ।

ते शंखनादेन कुरुप्रवीराः
सम्मोहिताः पार्थसमीरितेन ।
उत्सृज्य चापानि दुरासदानि
सर्वे तदा शान्तिपरा बभूवुः ।।४३।।

अर्जुन के बजाये हुए उस शंख की ध्वनि से समस्त कौरव वीर मोहित=मूर्च्छित हो गये तथा अपने दुर्लभ धनुषों को त्यागकर सबके सब गहरी शान्ति=बेहोशी में डूब गये ।

तथा विसंज्ञेषु च तेषु पार्थः
स्मृत्वा च वाक्यानि तथोत्तरायाः ।
निर्याहि मध्यादिति मत्स्यपुत्र-
मुवाच यावत् कुरवो विसंज्ञाः ।।४४।।
आचार्यशारद्वतयोः सुशुक्ले
कर्णस्य पीतं रुचिरं च वस्त्रम् ।
द्रौणेश्च राज्ञश्च तथैव नीले
वस्त्रे समादत्स्व नरप्रवीर ।।४५।।

उन कौरव महारथियों के मूर्च्छित हो जाने पर अर्जुन को उत्तरा की कही हुई बातें स्मरण हो आईं, अतः उन्होंने मत्स्यराज के पुत्र से कहा—"नरवीर ! जबतक ये कौरव होश में आएँ, उससे पूर्व ही सेना के बीच से निकल जाओ और आचार्य द्रोण और कृपाचार्य के शरीर पर जो श्वेत वस्त्र सुशोभित हैं, कर्ण के अङ्गों पर जो पीले रंग का वस्त्र है, अश्वत्थामा एवं राजा दुर्योधन के शरीर पर जो नीले रंग के वस्त्र हैं, उन सबको उतार लो ।

भीष्मस्य संज्ञां तु तथैव मन्ये
जानाति सोऽस्त्र प्रतिघातमस्य ।
एतस्य वाहान् कुरु सव्यतस्त्व-
मेवं हि यातव्यममूढसंज्ञैः ।।४६।।

"मेरे विचार में, पितामह भीष्म को होश बना हुआ है, क्योंकि वे इस सम्मोहन अस्त्र के निवारण की विधि जानते हैं । तुम उनके घोड़ों को बाईं ओर छोड़कर जाना, क्योंकि जो बेहोश न हों, ऐसे वीरों के निकट से जाना हो, तो इसी प्रकार जाना चाहिए ।"

रश्मीन् समुत्सृज्य ततो महात्मा
रथादवप्लुत्य विराटपुत्रः ।
वस्त्राण्युपादाय महारथानां
तूर्णं पुनः स्वं रथमारुरोह ।।४७।।

तब महामना विराटपुत्र घोड़ों की रास छोड़कर रथ से कूद पड़ा तथा उन महारथियों के कपड़े लेकर फिर शीघ्र ही अपने रथ पर आ चढ़ा।

**लब्ध्वा हि संज्ञां तु कुरुप्रवीराः**
**पार्थं निरीक्ष्याथ सुरेन्द्रकल्पम्।**
**रणाद् विमुक्तं स्थितमेकमाजौ**
**स धार्तराष्ट्रस्त्वरितं बभाषे ॥४८॥**

थोड़ी देर पश्चात् होश में आने पर कौरव वीरों ने देखा, देवराज इन्द्र के समान पराक्रमी कुन्तीपुत्र अर्जुन युद्ध में रथों के घेरे से बाहर हो अकेले खड़े हैं। उन्हें इस अवस्था में देखकर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन तुरन्त बोल उठा—

**अयं कथं वै भवतो विमुक्त-**
**स्तथा प्रमथ्नीत यथा न मुच्येत्।**
**तमब्रवीच्छान्तनवः प्रहस्य**
**क्व ते गता बुद्धिरभूत् क्व वीर्यम् ॥४९**
**शान्ति परां प्राप्य यदा स्थितोऽभू-**
**रुत्सृज्य बाणांश्च धनुर्विचित्रम्।**
**न त्वेष बीभत्सुरलं नृशंसं**
**कर्तुं न पापेऽस्य मनो निविष्टम् ॥५०॥**
**त्रैलोक्यहेतोर्न जहेत् स्वधर्मं**
**सर्वे न तस्मान्निहता रणेऽस्मिन्।**
**क्षिप्रं कुरून् याहि कुरुप्रवीर**
**विजित्य गाश्च प्रतियातु पार्थः ॥५१**

"पितामह! यह अर्जुन आपके हाथ से कैसे बच गया? आप इसे इस प्रकार मथ डालिए, जिससे यह छूटने न पाये।" तब भीष्म ने हँसकर दुर्योधन से कहा—"राजन्! जब तू अपने विचित्र धनुष और बाणों को त्यागकर बेहोश पड़ा था, उस समय तेरी बुद्धि कहाँ गई थी और पराक्रम कहाँ था? ये अर्जुन कभी निर्दयता का व्यवहार नहीं कर सकते। इनका मन कभी पाप में प्रवृत्त नहीं होता। ये तीनों लोकों के राज्य के लिए भी अपना धर्म नहीं छोड़ सकते। यही कारण है कि इन्होंने युद्ध में हम सबके प्राण नहीं लिये। कुरुकुल के प्रमुख वीर! अब तू शीघ्र ही कुरुदेश को लौट चल। अर्जुन भी गायों को जीतकर लौट जाएँ।"

**तद् भीष्मवाक्यं हितमीक्ष्य सर्वे**
**धनञ्जयाग्निं च विवर्धमानम्।**
**निवर्तयानैव मनो निदध्यु-**
**र्दुर्योधनं ते परिरक्षमाणाः ॥५२॥**

सब योद्धाओं को भीष्मजी का वह कथन हितकर जान पड़ा। धनञ्जयरूपी अग्नि को उत्तरोत्तर प्रचण्डरूप धारण करते देख, उन सबने दुर्योधन की रक्षा करते हुए अपने देश को लौट जाने का ही निश्चय किया।

**दृष्ट्वा प्रयातांस्तु कुरून् किरीटी**
**हृष्टोऽब्रवीत् तत्र स मत्स्यपुत्रम्।**
**आवर्तयाश्वान् पशवो जितास्ते**
**याताः परे याहि पुरं प्रहृष्टः ॥५३॥**

कौरव चले गये, यह देखकर किरीटधारी अर्जुन अति हर्षित हुए। उन्होंने मत्स्यनरेश के पुत्र उत्तर से कहा—"राजकुमार! अब घोड़ों को लौटा लो। तुम्हारी गौओं को जीत लिया गया और शत्रु भाग गये, अतः अब तुम आनन्दपूर्वक नगर की ओर चलो।"

**स शत्रुसेनां सुविजित्य जिष्णु-**
**राच्छिद्य सर्वं च धनं कुरुभ्यः।**
**श्मशानमागत्य पुनः शमीं ता-**
**मभ्येत्य तस्थौ शरविक्षिताङ्गः ॥५४॥**

विजयशील अर्जुन शत्रुसेना को परास्त करके तथा कौरव सेना के हाथ से सारा गोधन छीन लेने के पश्चात् पुनः श्मशानभूमि में उसी शमीवृक्ष के समीप आकर खड़े हुए। उस समय उनके सभी अङ्ग बाणों के आघात से क्षत-विक्षत हो रहे थे।

**विधाय तच्चायुधमाजिवर्धनं**
**कुरूत्तमानामिषुधीः शरांस्तथा।**
**प्रायात् स मत्स्यो नगरं सुप्रेरितः**
**किरीटिना सारथिना महामनाः ॥५५॥**

कुरुकुल-शिरोमणि पाण्डवों के युद्धक्षमता-वर्धक आयुधों, तरकसों और बाणों को पुनः पूर्ववत् शमी-वृक्ष पर रखकर मत्स्यकुमार उत्तर महात्मा अर्जुन को सारथि बना उनके साथ प्रसन्नतापूर्वक नगर को चला।

**इति महाभारते विराटपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥**

## पञ्चदशोऽध्यायः

**राजा विराट की उत्तर के विषय में चिन्ता, विजयी उत्तर का नगर में प्रवेश, प्रजा द्वारा उसका स्वागत, विराट द्वारा युधिष्ठिर का तिरस्कार और क्षमाप्रार्थना तथा उत्तर से युद्ध के विषय में बातचीत**

वैशम्पायन उवाच

**धनं चापि विजित्याशु विराटो वाहिनीपतिः।**
**विवेश नगरं हृष्टश्चतुर्भिः पाण्डवैः सह ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! सेनाओं के स्वामी राजा विराट ने [दक्षिण गोष्ठ की] गौओं को जीतकर शीघ्र ही चारों पाण्डवों के साथ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक नगर में प्रवेश किया।

**उपतस्थुः प्रकृतयः समस्ता ब्राह्मणैः सह।**
**सभाजितः ससैन्यस्तु प्रतिनन्द्याथ मत्स्यराट् ॥२॥**

उनके नगर में प्रविष्ट होने पर ब्राह्मणोंसहित समस्त प्रजावर्ग के लोग उपस्थित हुए। सबने सेना-सहित मत्स्यराज का अभिनन्दन एवं स्वागत-सत्कार किया।

**तदा विसर्जयामास द्विजाँश्च प्रकृतीस्तथा।**
**तथा स राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः ॥३॥**
**उत्तरं परिपप्रच्छ क्व यात इति चाब्रवीत्।**
**आचख्युस्तस्य तत्सर्वं स्त्रियः कन्याश्च वेश्मनि ॥४॥**

स्वागत-सत्कार के पश्चात् मत्स्यदेश के राजा सेनाओं के स्वामी विराट ने ब्राह्मणों तथा प्रजावर्ग के लोगों को विदा कर दिया और अन्तःपुर में जाकर उत्तर के विषय में पूछा—"राजकुमार उत्तर कहाँ गये हैं?" तब घर में रहनेवाली स्त्रियों और कन्याओं ने उन्हें सब बातें बताईं।

**अन्तः पुरचराश्चैव कुरुभिर्गोधनं हृतम्।**
**विजेतुमभिसंरब्ध एक एवातिसाहसात्।**
**बृहन्नलासहायश्च निर्गतः पृथिवीञ्जयः ॥५॥**

अन्तःपुर में रहनेवाली स्त्रियों ने बताया कि "कौरवों ने हमारे गोष्ठ का गोधन हर लिया है, अतः कुमार भूमिंजय अत्यन्त साहस के कारण क्रोध में भरकर अकेले ही उन गौओं को जीत लाने के लिए बृहन्नला के साथ गये हैं।

**उपयातानतिरथान् भीष्मं शान्तनवं कृपम्।**
**कर्णं दुर्योधनं द्रोणं द्रोणपुत्रं च षड्रथान् ॥६॥**

"सुना है, शान्तनुनन्दन भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, द्रोणाचार्य तथा द्रोणपुत्र अश्वत्थामा—ये छह अतिरथी वीर युद्ध के लिए आये हैं।"

**राजा विराटोऽथ भृशं प्रतप्तः**
**श्रुत्वा सुतं त्वेकरथेन यातम्।**
**बृहन्नलासारथिमाजिमुख्यम्**
**प्रोवाच सर्वानथ मन्त्रिमुख्यान् ॥७॥**

जनमेजय! युद्ध में आगे बढ़नेवाले अपने पुत्र को बृहन्नला सारथि के साथ एकमात्र रथ की सहायता से कौरवों का सामना करने के लिए गया हुआ सुनकर राज विराट अति संतप्त हुए। उन्होंने अपने सभी प्रमुख मन्त्रियों से कहा—

**कुमारमाशु जानीत यदि जीवति वा न वा।**
**यस्य यन्ता गतः षण्ढो मन्येऽहं स न जीवति ॥८॥**

"जाओ, शीघ्र पता लगाओ, कुमार जीवित हैं, या नहीं। एक हिजड़ा जिसका सारथि बनकर गया है, मेरे विचार में वह जीवित नहीं बचा होगा।"

**तमब्रवीद् धर्मराजो विहस्य**
**विराटराजं तु भृशं प्रतप्तम्।**
**बृहन्नला तस्य रथस्य यन्ता**
**परे न नेष्यन्ति तवाद्य गास्ताः ॥९॥**
**सर्वान् महीपान् सहितान् कुरूँश्च**
**तथैव देवासुरसिद्धयक्षान्।**
**अलं विजेतुं समरे सुतस्ते**
**स्वनुष्ठितः सारथिना हि तेन ॥१०॥**

राजा विराट को अत्यन्त सन्तप्त देखकर धर्म-राज युधिष्ठिर ने उनसे हँसकर कहा—"हे नरेन्द्र! यदि बृहन्नला सारथि है तो यह विश्वास रखिए कि शत्रु आज आपकी गौएँ नहीं ले जा सकेंगे। उस हितैषी सारथि के सहयोग से सब कार्य ठीक-ठीक कर लेने पर आपका पुत्र युद्ध में समस्त राजाओं और संगठित होकर आये हुए कौरवों की तो बात ही क्या, देवों, असुरों, सिद्धों और यक्षों पर भी निश्चय ही

विजय पा सकता है।"

**अथोत्तरेण प्रहिता दूतास्ते शीघ्रगामिनः।**
**विराटनगरं प्राप्य विजयं च न्यवेदयन् ॥११॥**

जिस समय यहाँ ऐसी बातें हो रही थीं, उसी समय उत्तर के भेजे हुए शीघ्रगामी दूतों ने विराट नगर में आकर उसकी विजय की सूचना दी।

युधिष्ठिर उवाच

**दिष्ट्या विनिर्जिता गावः कुरवश्च पलायिताः।**
**नाद्भुतं त्वेव मन्येऽहं यत् ते पुत्रोऽजयत् कुरून्।**
**ध्रुव एव जयस्तस्य यस्य यन्ता बृहन्नला ॥१२॥**

**युधिष्ठिर बोले**—महाराज ! सौभाग्य की बात है कि गौएँ जीत ली गईं और कौरव भाग गये। आपके पुत्र ने कौरवों पर जो विजय प्राप्त की है, उसे मैं कोई आश्चर्य की बात नहीं मानता, क्योंकि जिसका सारथि महात्मा बृहन्नला हो, उसकी विजय तो निश्चित ही है।

वैशम्पायन उवाच

**ततो विराटो नृपतिः सम्प्रहृष्टतनूरुहः।**
**श्रुत्वा स विजयं तस्य कुमारस्यामितौजसः।**
**आच्छादयित्वा दूतांस्तान्मन्त्रिणं सोऽभ्यप्रेरयत् ॥१३**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! अपने अमित पराक्रमी कुमार की विजय का समाचार सुनकर राजा विराट अति हर्षित हुए। उनके सारे शरीर में रोमाञ्च हो आया। उन्होंने वस्त्र और आभूषणों से उन दूतों का सत्कार करके मन्त्रियों को आज्ञा दी—

**राजमार्गाः क्रियन्तां मे पताकाभिरलंकृताः।**
**वादित्राणि च सर्वाणि प्रत्युद्यान्तु सुतं मम ॥१४॥**

"मेरे नगर की सड़कों को ध्वजा-पताकाओं से अलंकृत किया जाए तथा सब प्रकार के बाजे मेरे पुत्र की अगवानी के लिए जाएँ।

**घण्टावान् मानवः शीघ्रं मत्तमारुह्य वारणम्।**
**शृङ्गाटकेषु सर्वेषु आख्यातु विजयं मम ॥१५॥**
**उत्तरा च कुमारीभिर्बह्वीभिः परिवारिता।**
**शृङ्गारवेषाभरणा प्रत्युद्यातु सुतं मम ॥१६॥**

"एक मनुष्य शीघ्र ही हाथ में घण्टा लेकर मदमस्त गजराज पर बैठ जाए और नगर के सभी चौराहों पर हमारी विजय का संवाद सुनाए। राजकुमारी उत्तरा भी उत्तम शृङ्गार और सुन्दर वेशभूषा से सुशोभित हो अन्य राजकुमारियों के साथ मेरे पुत्र के स्वागत के लिए जाए।"

**प्रस्थाप्य सेनां कन्याश्च वादित्राणां च मण्डलम्।**
**मत्स्यराजो महाप्राज्ञः प्रहृष्ट इदमब्रवीत् ॥१७॥**

हे राजन् ! सेना, कन्याओं और नाना प्रकार के के वाद्यों को भेजकर परम बुद्धिमान् मत्स्य नरेश आनन्दविभोर होकर इस प्रकार बोले—

**अक्षानाहर सैरन्ध्रि कङ्क द्यूतं प्रवर्तताम्।**
**तं तथावादिनं दृष्ट्वा पाण्डवः प्रत्यभाषत ॥१८॥**

"सैरन्ध्री ! जा, पासे ले आ। हे कङ्क ! जुआ आरम्भ हो।" उन्हें ऐसा कहते देख पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर बोले—

**न देवितव्यं हृष्टेन कितवेनेति नः श्रुतम्।**
**तं त्वामद्य मुदायुक्तं नाहं देवितुमुत्सहे।**
**प्रियं तु ते चिकीर्षामि वर्ततां यदि मन्यसे ॥१९॥**

"राजन् ! मैंने सुना है, जब चालाक जुआरी अत्यन्त हर्ष में भरा हो, तब उसके साथ जुआ नहीं खेलना चाहिए। आज आप भी अत्यन्त आनन्द में मग्न हैं, अतः आपके साथ जुआ खेलने का साहस नहीं होता, फिर भी आपका प्रिय कार्य तो करना ही चाहता हूँ, अतः आपकी इच्छा हो तो खेल आरम्भ हो सकता है।"

विराट उवाच

**स्त्रियो गावो हिरण्यं च यच्चान्यद्वसु किञ्चन।**
**न मे किञ्चित् त्वया रक्ष्यमन्तरेणापि देवितुम् ॥२०॥**

**विराट बोले**—स्त्रियाँ, गौएँ, सुवर्ण तथा अन्य जो कोई भी धन सुरक्षित रखा जाता है, बिना जुए के वह सब कुछ मुझे नहीं चाहिए [मुझे तो जुआ ही सबसे अधिक प्रिय है।]

कङ्क उवाच

**किं ते द्यूतेन राजेन्द्र बहुदोषेण मानद।**
**देवने बहवो दोषास्तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥२१॥**

**कङ्क ने कहा**—सबको मान देनेवाले महाराज ! आपको जुए से क्या लेना है ? इसमें अनेक दोष हैं। जुआ तो अनर्थों की जड़ है, अतः इसे त्याग ही देना चाहिए।

**श्रुतस्ते यदि वा दृष्टः पाण्डवो वै युधिष्ठिरः ।**
**स राष्ट्रं सुमहत् स्फीतं भ्रातॄंश्च त्रिदशोपमान् ॥२२॥**
**द्यूते हारितवान् सर्वं तस्माद् द्यूतं न रोचये ।**
**अथवा मन्यसे राजन् दीव्याम यदि रोचते ॥२३॥**

आपने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर को देखा होगा अथवा उनका नाम तो अवश्य सुना होगा। वे अपने अत्यन्त समृद्धिशाली राष्ट्र को, देवताओं के समान तेजस्वी भाइयों को तथा समस्त राज्य को भी जुए में हार गये थे, अतः मैं जुआ खेलना पसन्द नहीं करता। राजन् ! तो भी यदि आपकी रुचि और आग्रह हो तो हम खेलेंगे ही ।

वैशम्पायन उवाच

**प्रवर्तमाने द्यूते तु मत्स्यः पाण्डवमब्रवीत् ।**
**पश्य पुत्रेण मे युद्धे तादृशाः कुरवो जिताः ॥२४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! जुए का खेल आरम्भ हो गया। खेलते-खेलते मत्स्यराज ने पाण्डुनन्दन से कहा—"देखो, आज मेरे पुत्र ने युद्ध में प्रसिद्ध कौरवों पर विजय प्राप्त की है।"

**ततोऽब्रवीन्महात्मा स एनं राजा युधिष्ठिरः ।**
**यन्ता बृहन्नला यस्य कथं स न जयेद् युधि ॥२५॥**

तब महात्मा राजा युधिष्ठिर ने विराट से कहा—"बृहन्नला जिसका सारथि हो, उसकी युद्ध में विजय क्यों नहीं होगी ?"

**इत्युक्तः कुपितो राजा मत्स्यः पाण्डवमब्रवीत् ।**
**समं पुत्रेण मे षण्ढं ब्रह्मबन्धो प्रशंससि ॥२६॥**

यह सुनते ही मत्स्यनरेश कुपित हो उठे और पाण्डुनन्दन से बोले—अधम ब्राह्मण ! तू मेरे पुत्र के समान एक हिजड़े की प्रशंसा करता है ।

**वाच्यावाच्यं न जानीषे नूनं मामवमन्यसे ।**
**भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान् कस्मान्न स विजेष्यति ॥२७॥**
**वयस्यत्वात् तु ते ब्रह्मन्नपराधमिमं क्षमे ।**
**नेदृशं तु पुनर्वाच्यं यदि जीवितुमिच्छसि ॥२८॥**

"क्या कहना चाहिए और क्या नहीं, तुझे इसका ज्ञान नहीं है। निश्चय ही तू अपनी बातों से मेरा अपमान कर रहा है। भला मेरा पुत्र भीष्म, द्रोण आदि समस्त वीरों को क्यों नहीं जीत लेगा ? ब्रह्मन् ! मित्र होने के नाते ही मैं तुम्हारे इस अपराध को क्षमा करता हूँ। यदि जीवन की इच्छा हो तो फिर ऐसी बात मत कहना।"

युधिष्ठिर उवाच

**यत्र द्रोणस्तथा भीष्मो द्रौणिर्वैकर्तनः कृपः ।**
**दुर्योधनश्च राजेन्द्रस्तथान्ये च महारथाः ॥२९॥**
**मरुद्गणैः परिवृतः साक्षादपि मरुत्पतिः ।**
**कोऽन्यो बृहन्नलायास्तान् प्रतियुध्येत संगतान् ॥३०॥**

**युधिष्ठिर बोले**—जहाँ द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, राजा दुर्योधन तथा अन्य महारथी उपस्थित हों, वहाँ बृहन्नला के अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष उन सब संगठित वीरों का सामना कर सकता है ? देवताओं से घिरा हुआ साक्षात् इन्द्र भी उनसे लोहा लेने में असमर्थ है ।

विराट उवाच

**बहुशः प्रतिषिद्धोऽसि न च वाचं नियच्छसि ।**
**नियन्ता चेन्न विद्येत न कश्चिद् धर्ममाचरेत् ॥३१॥**

**विराट ने कहा**—कङ्क ! अनेक बार मना करने पर भी तू अपनी जबान बन्द नहीं कर रहा है। सच है, यदि शासनकर्त्ता राजा न हो तो कोई भी धर्म का आचरण न करे ।

वैशम्पायन उवाच

**ततः प्रकुपितो राजा तमक्षेणाहनद् भृशम् ।**
**मुखे युधिष्ठिरं कोपान्नैवमित्येव भर्त्सयन् ॥३२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! इतना कहकर कोप में भरे हुए राजा विराट ने वह पाँसा जोर से युधिष्ठिर के मुख पर दे मारा तथा क्रुद्ध होकर उन्हें डाँटते हुए कहा—"तुम फिर कभी ऐसी बात न कहना।"

**बलवत् प्रतिविद्धस्य नस्तः शोणितमावहत् ।**
**तदप्राप्तं महीं पार्थः पाणिभ्यां प्रत्यगृह्णत ॥३३॥**
**अवैक्षत स धर्मात्मा द्रौपदीं पार्श्वतः स्थिताम् ।**
**सा ज्ञात्वा तमभिप्रायं भर्तुश्चित्तवशानुगा ॥३४॥**
**पात्रं गृहीत्वा सौवर्णं जलपूर्णमनिन्दिता ।**
**तच्छोणितं प्रत्यगृह्णाद् यत् प्रसुस्राव नस्ततः ॥३५॥**

पासे का आघात पूरे जोर से लगा था, अतः युधिष्ठिर की नाक से रक्त की धारा बह निकली, किन्तु धर्मात्मा युधिष्ठिर ने उस रक्त को पृथिवी पर

गिरने से पूर्व ही अपने दोनों हाथों में रोक लिया एवं पास ही खड़ी हुई द्रौपदी की ओर देखा। अपने स्वामी के मन के अधीन रहनेवाली और उनकी अनुगामिनी सती-साध्वी द्रौपदी ने उनका अभिप्राय समझ लिया, अतः जल से भरा हुआ स्वर्णपात्र लाकर, उनकी नाक से बहनेवाले रक्त को उसमें ले लिया।

**अथोत्तरः शुभैर्गन्धैर्माल्यैश्च विविधैस्तथा।**
**अवकीर्यमाणः संहृष्टो नगरं स्वैरमागतः ॥३६॥**

इसी समय राजकुमार उत्तर बड़े हर्ष के साथ स्वच्छन्दतापूर्वक नगर में आये। मार्ग में उन पर उत्तम गन्ध और भाँति-भाँति के पुष्पहार बरसाये जा रहे थे।

**सभाज्यमानः पौरैश्च स्त्रीभिर्जानपदैस्तथा।**
**आसाद्य भवनद्वारं पित्रे सम्प्रत्यवेदयत् ॥३७॥**

मत्स्य देश सभी के नागरिकों, पुरवासियों तथा सुन्दरी स्त्रियों ने उनका स्वागत किया। फिर राजभवन के द्वार पर पहुँचकर उन्होंने पिता को अपने आगमन की सूचना भिजवाई।

**ततो द्वाःस्थः प्रविश्यैव विराटमिदमब्रवीत्।**
**बृहन्नलासहायश्च पुत्रो द्वार्युत्तरः स्थितः ॥३८॥**

तब द्वारपाल ने भीतर जाकर महाराज विराट से कहा—"प्रभो ! बृहन्नला के साथ राजकुकार उत्तर द्वार पर खड़े हैं।"

**मत्स्यराजस्ततो हृष्टः क्षत्तारमिदमब्रवीत्।**
**प्रवेश्यतामुभौ तूर्णं दर्शनेप्सुरहं तयोः ॥३९॥**

इस समाचार से प्रसन्न होकर मत्स्यराज अपने सेवक से बोले—"मैं उन दोनों से मिलना चाहता हूँ, अतः उन्हें शीघ्र भीतर ले जाओ।"

**क्षत्तारं कुरुराजस्तु शनैः कर्ण उपाजपत्।**
**उत्तरः प्रविशत्वेको न प्रवेश्या बृहन्नला ॥४०॥**

तब जाते हुए सेवक के कान में युधिष्ठिर ने धीरे से कहा—"पहले अकेले राजकुमार उत्तर ही यहाँ आएँ। बृहन्नला को साथ में मत लाना।

**एतस्य हि महाबाहोर्व्रतमेतत् समाहितम्।**
**यो ममाङ्गे व्रणं कुर्याच्छोणितं वापि दर्शयेत्।**
**अन्यत्र संग्रामगतान्न स जीवेत् कथञ्चन ॥४१॥**

"हे महाबाहु ! बृहन्नला का यह निश्चित व्रत है कि जो युद्धभूमि के सिवा अन्य किसी स्थान पर मेरे शरीर में घाव कर दे अथवा रक्त बहता दिखा दे, वह किसी प्रकार जीवित नहीं बच सकता।

**न मृष्याद् भृशसंक्रुद्धो मां दृष्ट्वा तु सशोणितम्।**
**विराटमिह सामात्यं हन्यात् सबलवाहनम् ॥४२॥**

"मेरे शरीर से रक्त-स्राव देखकर वह अत्यन्त क्रुद्ध हो उठेगा तथा इस अपराध को क्षमा नहीं करेगा। वह राजा विराट को मन्त्री, सेना और वाहनोंसहित यहीं मार डालेगा।"

**ततो राज्ञः सुतो ज्येष्ठः प्राविशत्पृथिवीञ्जयः।**
**सोऽभिवाद्य पितुः पादौ कङ्कं चाप्युपतिष्ठतः ॥४३॥**

जनमेजय ! तत्पश्चात् राजा विराट के ज्येष्ठ पुत्र भूमिंजय [उत्तर] ने भीतर प्रवेश किया और पिता के चरणों में प्रणाम करके कङ्क को भी मस्तक झुकाया।

**ततो रुधिरसंयुक्तमनेकाग्रमनागसम्।**
**भूमावासीनमेकान्ते सैरन्ध्र्या प्रत्युपस्थितम् ॥४४॥**

उसने देखा, कङ्क एकान्त में भूमि पर बैठे हैं। सैरन्ध्री उनकी सेवा में उपस्थित है। उनका मन एकाग्र नहीं है और वे निरपराध हैं, फिर भी उनके शरीर से रक्त बह रहा है।

**ततः पप्रच्छ पितरं त्वरमाण इवोत्तरः।**
**केनायं ताडितो राजन् केन पापमिदं कृतम् ॥४५॥**

तब उत्तर ने बड़ी उतावली के साथ अपने पिता से पूछा—"हे राजन् ! इन्हें किसने मारा है ? किसने यह पाप किया है ?"

विराट उवाच

**मयायं ताडितो जिह्मो न चाप्येतावदर्हति।**
**प्रशस्यमाने यच्छूरे त्वयि षण्ढं प्रशंसति ॥४६॥**

**विराट ने कहा**—पुत्र ! इस कुटिल व्यक्ति को मैंने ही मारा है। यह इतने सम्मान के योग्य कदापि नहीं है। देखो न, जब मैं तुम्हारे शौर्य की प्रशंसा करता हूँ, तब यह उस हिजड़े का गुणगान करने लगता है।

उत्तर उवाच

**अकार्यं ते कृतं राजन् क्षिप्रमेव प्रसाद्यताम् ।**
**मा त्वां ब्रह्मविषं घोरं समूलमिह निर्दहेत् ॥४७॥**

**उत्तर बोला**—हे राजन् ! आपने इन्हें आघात पहुँचाकर अति अनुचित कार्य किया है । शीघ्र ही उन्हें मनाइए, अन्यथा ब्राह्मण का भयंकर क्रोधरूपी विष आपको जड़मूलसहित भस्म कर डालेगा ।

वैशम्पायन उवाच

**स पुत्रस्य वचः श्रुत्वा विराटो राष्ट्रवर्धनः ।**
**क्षामयामास कौन्तेयं भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥४८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन् ! पुत्र की यह बात सुनकर अपने राष्ट्र की वृद्धि करनेवाले राजा विराट ने राख में छिपी हुई अग्नि की भाँति तेजस्वी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से तुरन्त ही क्षमा माँगी ।

**क्षमयन्तं तु राजानं पाण्डवः प्रत्यभाषत ।**
**चिरं क्षान्तमिदं राजन् न मन्युर्विद्यते मम ॥४९॥**

राजा को क्षमा माँगते देख पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर ने कहा—"राजन् ! मैंने चिरकाल से क्षमा का व्रत ले रखा है, अतः आपका यह अपराध क्षमा हो चुका है । मुझे आपपर तनिक भी क्रोध नहीं है ।

**यदि ह्येतद् पतेद् भूमौ रुधिरं मम नस्ततः ।**
**सराष्ट्रस्त्वं महाराज विनश्येथा न संशयः ॥५०॥**

"महाराज ! यदि मेरी नाक से बहनेवाला यह रक्त धरती पर गिर जाता, तो आप सारे राष्ट्र के साथ नष्ट हो जाते, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।

**न दूषयामि ते राजन् यद् वै हन्याददूषकम् ।**
**बलवन्तं प्रभुं राजन् क्षिप्रं दारुणमाप्नुयात् ॥५१॥**

"राजन् ! जो किसी की निन्दा या अपराध न करे उसे मारना अन्याय है तथापि मैं आपके इस कार्य की निन्दा नहीं करता, क्योंकि बलवान् राजा को प्रायः शीघ्र ही ऐसे कठोर कर्म करने का अवसर प्राप्त हो जाता है ।"

**शोणिते तु व्यतिक्रान्ते प्रविवेश बृहन्नला ।**
**अभिवाद्य विराटं तु कङ्कं चाप्युपतिष्ठत ॥५२॥**

राजन् ! जब युधिष्ठिर की नाक से रक्त बहना बन्द हो गया, तब बृहन्नला ने राजसभा में प्रवेश किया । उसने विराट का अभिवादन करके कङ्क को भी प्रणाम किया ।

**क्षामयित्वा तु कौरव्यं रणादुत्तरमागतम् ।**
**प्रशशंस ततो मत्स्यः शृण्वतः सव्यसाचिनः ॥५३॥**

इधर मत्स्यनरेश कुरुनन्दन युधिष्ठिर से क्षमा माँगकर सव्यसाची अर्जुन के आते ही रणभूमि से आये हुए उत्तर की प्रशंसा करने लगे—

**त्वया दायादवानस्मि कैकेय्यानन्दवर्धन ।**
**त्वया मे सदृशः पुत्रो न भूतो न भविष्यति ॥५४॥**

"कैकेयीनन्दन ! तुम्हें पाकर मैं वस्तुतः पुत्रवान् हूँ । तुम्हारे समान मेरा दूसरा कोई पुत्र न हुआ है, न होगा ही ।

**पदं पदसहस्रेण यश्चरन् नापराध्नुयात् ।**
**तेन कर्णेन ते तात कथमासीत् समागमः ॥५५॥**
**मनुष्यलोके सकले यस्य तुल्यो न विद्यते ।**
**तेन भीष्मेण ते तात कथमासीत् समागमः ॥५६॥**

"तात ! जो एक ही लक्ष्य के साथ-साथ अनेक लक्ष्यों का वेध करने के लिए बाण चलाता है और कहीं भी नहीं चूकता, उस कर्ण के साथ तुम्हारा युद्ध किस प्रकार हुआ ? हे पुत्र ! सारे मनुष्य-लोक में जिनकी समानता करनेवाला कोई वीर नहीं है, उन भीष्मजी के साथ तुम्हारी भिड़न्त किस प्रकार हुई ?

**आचार्यो वृष्णिवीराणां कौरवाणां च यो द्विजः ।**
**सर्वक्षत्रस्य चाचार्यः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।**
**तेन द्रोणेन ते तात कथमासीत् समागमः ॥५७॥**

"तात ! जो वृष्णिवीरों और कौरवों दोनों के आचार्य हैं, अथवा दोनों के ही नहीं सम्पूर्ण क्षत्रियों के आचार्य हैं, समस्त शस्त्रधारियों में जिनका स्थान सबसे ऊँचा है, उन द्रोणाचार्य के साथ तुम्हारा युद्ध किस प्रकार हुआ ?

**आचार्यपुत्रो यः शूरः सर्वशास्त्रभृतामपि ।**
**अश्वत्थामेति विख्यातस्तेनासीत् संगरः कथम् ॥५८॥**

"द्रोणाचार्य का जो अश्वत्थामा नाम से प्रसिद्ध सम्पूर्ण शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ शूरवीरपुत्र है, उनके साथ तुम्हारा संग्राम किस प्रकार हुआ ?

**रणे यं प्रेक्ष्य सीदन्ति हृतस्वा वणिजो यथा ।**
**कृपेण तेन ते तात कथमासीत् समागमः ॥५९॥**

"तात ! जैसे वणिक् अपना धन छिन जाने पर

दुःखी होते हैं, उसी प्रकार युद्ध में जिन्हें सम्मुख देखकर बड़े-बड़े योद्धा शिथिल हो जाते हैं, उन कृपाचार्य के साथ तुम्हारी लड़ाई किस प्रकार हुई ?

**पर्वतं योऽभिविध्येत राजपुत्रो महेषुभिः ।**
**दुर्योधनेन ते तात कथमासीत् समागमः ।।६०।।**

"हे तात ! जो राजपुत्र अपने प्रचण्ड बाणों से पर्वत को भी विदीर्ण कर सकता है, उस दुर्योधन के साथ तुम्हारी मुठभेड़ किस प्रकार हुई ?

**अवगाढा द्विषन्तो मे सुखो वातोऽभिवाति माम् ।**
**यस्त्वं धनमथाजैषीः कुरुभिर्ग्रस्तमाहवे ।।६१**

"पुत्र कौरवों ने जिस गोधन को संग्राम में हड़प लिया था, उसे तुम जीतकर ले आये, यह अति उत्तम हुआ । आज हमारे शत्रु परास्त हो गये, अतः आज की वायु मुझे बड़ी सुखदायिनी प्रतीत हो रही है ।"

उत्तर उवाच

**न मया निर्जिता गावो न मया निर्जिताः परे ।**
**कृतं तत् सकलं कर्म देवपुत्रेण केनचित् ।।६२।।**

**उत्तर ने कहा**—पिताजी ! मैंने गौओं को नहीं जीता है, और न मैंने शत्रुओं पर ही विजय पाई है। यह सब कार्य तो किसी देवकुमार ने किया है ।

**स हि भीतं द्रवन्तं मां देवपुत्रो न्यवर्तयत् ।**
**स चातिष्ठद् रथोपस्थे वज्रसंहननो युवा ।।६३।।**

मैं तो डरकर भागा आ रहा था परन्तु वज्र के समान दृढ़ शरीरवाले उस तरुण देवपुत्र ने मुझे लौटाया और वह स्वयं ही रथ के पिछले भाग में महारथी बनकर बैठ गया ।

**तेन ता निर्जिता गावः कुरवश्च पराजिताः ।**
**तस्य तत्कर्म वीरस्य न मया तात तत्कृतम् ।।६४।।**

उसी ने उन गौओं को जीता है, और कौरवों को भी परास्त किया है । पिताजी ! यह सब उस वीर का कर्म है । मैंने कुछ भी नहीं किया है ।

**एकेन तेन वीरेण षड् रथाः परिनिर्जिताः ।**
**शार्दूलेनेव मत्तेन यथा वनचरा मृगाः ।।६५।।**

जैसे मदोन्मत्त सिंह वन में विचरनेवाले मृगों को परास्त करता है, उसी प्रकार उस वीर देवपुत्र ने अकेले ही उन छह महारथियों को हराया है ।

विराट उवाच

**क्व स वीरो महाबाहुर्देवपुत्रो महायशाः ।**
**यो मे धनमथाजैषीत् कुरुभिर्ग्रस्तमाहवे ।।६६।।**
**इच्छामि तमहं द्रष्टुमर्चितुं च महाबलम् ।**
**येन मे त्वं च गावश्च रक्षिता देवसूनुना ।।६७।।**

**विराट ने पूछा**—पुत्र ! वह महायशस्वी महाबाहु वीर देवपुत्र कहाँ है जिसने युद्ध में कौरवों द्वारा अपहृत मेरी गौओं को जीता है ? जिस देवकुमार ने तुम्हें और मेरी गौओं को भी बचाया है, मैं उस महापराक्रमी वीर को देखना और उसका सत्कार करना चाहता हूँ ।

उत्तर उवाच

**अन्तर्धानं गतस्तत्र देवपुत्रो महाबलः ।**
**स तु श्वो वा परश्वो वा मन्ये प्रादुर्भविष्यति ।।६८।।**

**उत्तर बोला**—पिताजी ! वह महाबली देवपुत्र वहीं अन्तर्धान हो गया, परन्तु मेरा विश्वास है कि वह कल या परसों यहाँ पुनः प्रकट होगा ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमाख्यायमानं तु छन्नं सत्रेण पाण्डवम् ।**
**वसन्तं तत्र नाज्ञासीद् विराटो वाहिनीपतिः ।।६९।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! इस प्रकार संकेतपूर्वक बताने पर भी सेनाओं के स्वामी राजा विराट नपुंसकवेश में छिपकर वहीं रहनेवाले पाण्डुपुत्र अर्जुन को नहीं पहचान सके ।

**ततः पार्थोऽभ्यनुज्ञातो विराटेन महात्मना ।**
**प्रददौ तानि वासांसि विराटदुहितुः स्वयम् ।।७०।।**

तत्पश्चात् महामना विराट की आज्ञा से बृहन्नला रूपी अर्जुन ने स्वयं विराट-कन्या उत्तरा को वे सब वस्त्र, जो महारथियों के शरीर से उतारे गये थे, दे दिये ।

**उत्तरा तु महार्हाणि विविधानि नवानि च ।**
**प्रतिगृह्याभवत् प्रीता तानि वासांसि भामिनी ।।७१।।**

भामिनी उत्तरा उन अनेक प्रकार के नवीन एवं बहुमूल्य वस्त्रों को लेकर अति प्रसन्न हुई ।

**मन्त्रयित्वा तु कौन्तेय उत्तरेण महात्मना ।**
**इतिकर्तव्यतां सर्वां राजन् पार्थे युधिष्ठिरे ।।७२।।**

**ततस्तथा तद् व्यदधाद् यथावत् पुरुषर्षभ ।**
**सह पुत्रेण मत्स्यस्य प्रहृष्टा भरतर्षभाः ।।७३।।**

जनमेजय ! कुन्तीनन्दन अर्जुन ने महामना उत्तर के साथ राजा युधिष्ठिर को प्रकट करने के विषय में परामर्श किया तथा क्या-क्या करना चाहिए, इन सब बातों का निश्चय कर लिया । नरश्रेष्ठ ! फिर उसी निश्चय के अनुसार सब व्यवस्था की । भरतकुलभूषण पाण्डव विराट-पुत्र उत्तर के साथ वह सब व्यवस्था करके अति प्रसन्न हुए ।

**इति महाभारते विराटपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।**

# षोडशोऽध्यायः

**पाण्डवों का विराट को अपना परिचय देना, विराट का अर्जुन के साथ उत्तरा के विवाह का प्रस्ताव, अर्जुन का उत्तरा को पुत्रवधू के रूप में ग्रहण करना, अभिमन्यु और उत्तरा का विवाह**

वैशम्पायन उवाच

**ततोऽहनि तृतीये च भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ।**
**स्नाताः शुल्काम्बरधराः समये चरितव्रताः ।।१।।**
**युधिष्ठिरं पुरस्कृत्य सर्वाभरणभूषिताः ।**
**द्वारि मत्ता यथा नागा भ्राजमाना महारथाः ।।२।।**
**विराटस्य सभां गत्वा भूमिपालासनेष्वथ ।**
**निषेदुः पावकप्रख्याः सर्वे धिष्ण्येष्विवाग्नयः ।।३।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तत्पश्चात् नियत समय तक अपनी प्रतिज्ञा का पालन करके अग्नि के समान तेजस्वी पाँचों भाई, महारथी पाण्डव तीसरे दिन स्नान से निवृत्त हो श्वेत वस्त्र धारण करके समस्त राजोचित आभूषणों से अलंकृत हो राजसभा में द्वार पर स्थित मदोन्मत्त गजराजों की भाँति सुशोभित होने लगे । वे राजा युधिष्ठिर को आगे करके विराट की सभा में गये । वहाँ जाकर युधिष्ठिर राजा के सिंहासन पर और चारों पाण्डव भी यथायोग्य आसनों पर बैठ गये । उस समय वे भिन्न-भिन्न यज्ञवेदियों पर प्रज्वलित अग्नियों के समान प्रकाशित हो रहे थे ।

**तेषु तत्रोपविष्टेषु विराटः पृथिवीपतिः ।**
**आजगाम सभां कर्तुं राजकार्याणि सर्वशः ।।४।।**

जिस समय पाण्डव वहाँ बैठे हुए थे, उसी समय राजा विराट अपने समस्त राजकाज करने के लिए सभा में आये ।

**श्रीमतः पाण्डवान् दृष्ट्वा सरोषः पृथिवीपतिः ।**
**अथ मत्स्योऽब्रवीत् कङ्कं देवरूपमिव स्थितम् ।।५।।**

श्रीसम्पन्न पाण्डवों को देखकर पृथ्वीपति विराट क्रुद्ध होकर देवता के समान स्थित कङ्क से बोले—

**स किलाक्षातिवापस्त्वं सभास्तारो मया वृतः ।**
**अथ राजासने कस्मादुपविष्टस्त्वलंकृतः ।।६।।**

"कङ्क ! तुम्हें तो मैंने पासा फेंकनेवाला सभासद् बनाया था । आज बन-ठनकर तुम राजसिंहासन पर कैसे बैठ गये ?"

**परिहासेप्सया वाक्यं विराटस्य निशम्य तत् ।**
**स्मयमानोऽर्जुनो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ।।७।।**

हे जनमेजय ! मानो परिहास के लिए कहा गया हो, ऐसे विराट के उस वचन को सुनकर अर्जुन मुस्कराते हुए इस प्रकार बोले—

अर्जुन उवाच

**इन्द्रस्यार्धासनं राजन्नयमारोढुमर्हति ।**
**ब्रह्मण्यः श्रुतवाँस्त्यागी यज्ञशीलो दृढव्रतः ।।८।।**

**अर्जुन बोले**—हे राजन् ! आपके इस राजसिंहासन की तो बात ही क्या है, ये तो इन्द्र के भी आधे आसन पर बैठने के अधिकारी हैं । ये ब्राह्मणभक्त, शास्त्रों के विद्वान्, त्यागी, यज्ञशील तथा अपने व्रतों का दृढ़ता के साथ पालन करनेवाले हैं ।

**एष विग्रहवान् धर्म एष वीर्यवतां वरः ।**
**एष बुद्ध्याधिको लोके तपसां च परायणम् ।।९।।**

ये मूर्तिमान् धर्म हैं, तथा पराक्रमी पुरुषों में श्रेष्ठ हैं । इस जगत् में ये सबसे बढ़कर बुद्धिमान् हैं और तपस्या के परम आश्रय हैं ।

**अयं कुरूणामृषभो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।**
**अस्य कीर्तिः स्थिता लोके सूर्यस्येवोद्यतः प्रभा ।।१०।।**

ये ही कुरुवंश में सर्वश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर हैं। उदयकालीन सूर्य की शान्त प्रभा के समान इनकी सुखदायिनी कीर्ति सारे संसार में फैली हुई है।

विराट उवाच

**राजा यद्येष कौरव्यः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।**
**कतमोऽस्यार्जुनो भ्राता भीमश्च कतमो बली ॥११॥**
**नकुलः सहदेवो वा द्रौपदी वा यशस्विनी।**
**यदा द्यूतजिताः पार्था न प्रज्ञायन्त ते क्वचित् ॥१२॥**

**विराट ने पूछा**—यदि ये कुरुकुलभूषण कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर हैं तो इनमें इनके भ्राता अर्जुन कौन-से हैं? महाबली भीमसेन कौन हैं? नकुल, सहदेव तथा यशस्विनी द्रौपदी कौन है? जब से कुन्तीपुत्र जुए में हार गये, तब से उनका कहीं भी पता नहीं लगा।

अर्जुन उवाच

**य एष बल्लवो ब्रूते सूदस्तव नराधिप।**
**एष भीमो महाराज भीमवेगपराक्रमः ॥१३॥**

**अर्जुन बोले**—महाराज! यह जो बल्लव नामधारी आपके रसोइये हैं, यह ही भयंकर वेग और पराक्रमवाले भीमसेन हैं।

**यश्चासीदश्वबन्धस्ते नकुलोऽयं परन्तपः।**
**गोसंख्यः सहदेवश्च माद्रीपुत्रौ महारथौ ॥१४॥**

जो आपके यहाँ अश्वशाला के प्रबन्धक रहे हैं, वे शत्रुसन्तापक नकुल हैं। गौओं की देखभाल करनेवाले सहदेव हैं। ये दोनों माद्री के पुत्र और महारथी वीर हैं।

**एषा पद्मपलाशाक्षी सुमध्या चारुहासिनी।**
**सैरन्ध्री द्रौपदी राजन् यस्यार्थे कीचका हताः ॥१५॥**

हे राजन्! यह विकसित कमलपत्र के समान विशाल नेत्रोंवाली, सुन्दर कटिप्रदेश तथा मनोहर मुस्कानवाली सैरन्ध्री ही महारानी द्रौपदी है, इसी के सतीत्व की रक्षा के लिए कीचकों का वध किया गया था।

**अर्जुनोऽहं महाराज व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः।**
**भीमादवरजः पार्थो यमाभ्यां चापि पूर्वजः ॥१६॥**

महाराज! मैं ही अर्जुन हूँ। मेरा नाम भी निश्चय ही आपके कानों में पड़ा होगा। मैं कुन्ती देवी का पुत्र हूँ। मैं भीम से छोटा और नकुल-सहदेव से बड़ा हूँ।

**उषिताः स्म महाराज सुखं तव निवेशने।**
**अज्ञातवासमुषिता गर्भवास इव प्रजाः ॥१७॥**

हे राजन्! हम लोगों ने अति सुखपूर्वक आपके महल में अज्ञातवास का समय बिताया है। जैसे सन्तान गर्भ में रहती है, उसी प्रकार हम भी यहाँ अज्ञातवास में रहे हैं।

वैशम्पायन उवाच

**यदार्जुनेन ते वीराः कथिताः पञ्च पाण्डवाः।**
**तदार्जुनस्य वैराटिः कथयामास विक्रमम् ॥१८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन्! जब अर्जुन ने पाँचों पाण्डव वीरों का परिचय दे दिया, तब विराटकुमार उत्तर ने अर्जुन के पराक्रम का वर्णन किया।

उत्तर उवाच

**अनेन विजिता गावो जिताश्च कुरवो युधि।**
**अस्य शंखप्रणादेन कर्णौ मे बधिरीकृतौ ॥१९॥**

**उत्तर ने कहा**—इन्होंने ही गौओं को जीता तथा युद्ध में कौरवों को परास्त किया है। इनके शंख की गम्भीर ध्वनि सुनकर मेरे तो कान बहरे हो गये थे।

वैशम्पायन उवाच

**तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मत्स्यराजः प्रतापवान्।**
**उत्तरं प्रत्युवाचेदमभिपन्नो युधिष्ठिरे ॥२०॥**
**प्रसादनं पाण्डवस्य प्राप्तकालं हि रोचते।**
**उत्तरां च प्रयच्छामि पार्थाय यदि मन्यसे ॥२१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन्! उत्तर की यह बात सुनकर प्रतापी मत्स्यनरेश, जो युधिष्ठिर के अपराधी थे, अपने पुत्र से इस प्रकार बोले—"पुत्र! यह पाण्डवों को प्रसन्न करने का समय प्राप्त हुआ है। यदि तुम्हारी सम्मति हो, तो मैं कुमारी उत्तरा का विवाह कुन्तीपुत्र अर्जुन से कर दूँ, मेरी ऐसी ही इच्छा है।"

उत्तर उवाच

**आर्याः पूज्याश्च मान्याश्च प्राप्तकालं च मे मतम्।**
**पूज्यन्तां पूजनार्हाश्च महाभागाश्च पाण्डवान् ॥२२॥**

**उत्तर ने कहा**—पूज्य पिताजी! पाण्डव महान् सौभाग्यशाली हैं। ये श्रेष्ठ, पूजनीय और सम्मान के

योग्य हैं। मेरे विचार में हमें इनके सत्कार का अवसर भी मिल गया है, अतः पूजा के योग्य पाण्डवों का आप अवश्य सत्कार करें।

विराट उवाच

**अहं खल्वपि संग्रामे शत्रूणां वशमागतः।**
**मोक्षितो भीमसेनेन गावश्चापि जितास्तथा ॥२३॥**

**विराट बोले**—पुत्र ! मैं भी त्रिगर्तों के साथ होनेवाले संग्राम में शत्रुओं के वशीभूत हो गया था, तब भीमसेन ने मुझे छुड़ाया और हमारी सब गायों को भी जीता।

**एतेषां बाहुवीर्येण अस्माकं विजयो मृधे।**
**वयं सर्वे सहामात्याः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।**
**प्रसादयामो भद्रं ते सानुजं पाण्डवर्षभम् ॥२४॥**

इन पाण्डवों के बाहुबल से संग्राम में हमारी विजय हुई है। वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो। आओ, हम सब लोग मन्त्रियोंसहित पाण्डवश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को उनके छोटे भाइयोंसहित प्रसन्न करें।

वैशम्पायन उवाच

**ततो विराटः परमाभितुष्टः**
**समेत्य राजा समयं चकार।**
**राज्यं च सर्वं विससर्ज तस्मै**
**सदण्डकोशं सपुरं महात्मा ॥२५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन् ! तत्पश्चात् राजा विराट ने अति हर्ष के साथ अपने पुत्र से मिलकर कुछ विचार-विमर्श किया; फिर उन महामना ने दण्ड, कोश और नगर आदि सहित सम्पूर्ण राज्य युधिष्ठिर को समर्पित कर दिया।

**पाण्डवांश्च ततः सर्वान् मत्स्यराजः प्रतापवान्।**
**धनञ्जयं पुरस्कृत्य दिष्टया दिष्टयेति चाब्रवीत् ॥२६॥**

तदनन्तर प्रतापी मत्स्यराज अर्जुन को आगे रखकर सब पाण्डवों से मिले और कहा—"हमारा महान् सौभाग्य है, वस्तुतः महान् सौभाग्य है जो आप लोगों का दर्शन हुआ !"

**समुपाघ्राय मूर्धानं संश्लिष्य च पुनः पुनः।**
**युधिष्ठिरं च भीमं च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥२७॥**

फिर उन्होंने युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा नकुल-सहदेव का बार-बार मस्तक सूंघा और सबको हृदय से लगाया।

**नातृप्यद् दर्शने तेषां विराटो वाहिनीपतिः।**
**स प्रीयमाणो राजानं युधिष्ठिरमथाब्रवीत् ॥२८॥**

सेनाओं के स्वामी राजा विराट पाण्डवों को देखकर तृप्त नहीं होते थे। कुछ देर पश्चात् वे राजा युधिष्ठिर से इस प्रकार बोले—

**दिष्टया भवन्तः सम्प्राप्ताः सर्वे कुशलिनो वनात्।**
**दिष्टया सम्पालितं कृच्छ्रमज्ञातं वै दुरात्मभिः ॥२९॥**

"बड़े सौभाग्य की बात है कि आप सब लोग वन से कुशलपूर्वक लौट आये। दुरात्मा कौरवों से अज्ञात रहकर आपने यह कष्टसाध्य अज्ञातवास का समय पूर्ण कर लिया, यह भी सौभाग्य की बात है।

**इदं च राज्यं पार्थाय यच्चान्यदपि किञ्चन।**
**प्रतिगृह्णन्तु तत् सर्वं पाण्डवा अविशंकया ॥३०॥**

"मेरा यह राज्य कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के लिए समर्पित है। इसके अतिरिक्त मेरे पास और भी जो कुछ है, वह सब पाण्डव लोग बिना संकोच के ग्रहण करें।

**उत्तरां प्रतिगृह्णातु सव्यसाची धनञ्जयः।**
**अयं ह्यौपयिको भर्ता तस्याः पुरुषसत्तमः ॥३१॥**

सव्यसाची धनञ्जय मेरी पुत्री उत्तरा को पत्नी-रूप में स्वीकार करें। ये नरश्रेष्ट उसके लिए सर्वथा सुयोग्य पति हैं।"

**एवमुक्तो धर्मराजः पार्थमैक्षद् धनञ्जयम्।**
**ईक्षितश्चार्जुनो भ्रात्रा मत्स्यं वचनमब्रवीत् ॥३२॥**
**प्रतिगृह्णाम्यहं राजन् स्नुषां दुहितरं तव।**
**युक्तश्चावां हि सम्बन्धो मत्स्यभारतयोरपि ॥३३॥**

महामना राजा विराट के ऐसा कहने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने कुन्तीपुत्र अर्जुन की ओर देखा। भाई द्वारा देखे जाने पर अर्जुन ने मत्स्यराज से कहा—"राजन् ! मैं आपकी पुत्री को अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करता हूँ। मत्स्य और भरतवंश का यह सम्बन्ध सर्वथा उचित है।"

विराट उवाच

**किमर्थं पाण्डवश्रेष्ठ भार्यां दुहितरं मम।**
**प्रतिगृहीतुं नेमां त्वं मया दत्तामिहेच्छसि ॥३४॥**

**विराट बोले**—हे पाण्डवश्रेष्ठ ! मैं स्वयं तुम्हें

अपनी कन्या प्रदान कर रहा हूँ फिर तुम उसे अपनी पत्नी के रूप में क्यों नहीं स्वीकार करते ?

अर्जुन उवाच

**अन्तःपुरेऽहमुषितः सदा पश्यन् सुतां तव ।**
**रहस्यं च प्रकाशं च विश्वस्ता पितृवन्मयि ॥३५॥**
**प्रियो बहुमतश्चासं नर्तको गीतकोविदः ।**
**आचार्यवच्च मां नित्यं मन्यते दुहिता तव ॥३६॥**

**अर्जुन ने कहा**—राजन् ! मैं चिरकाल तक आपके रनिवास में रहा हूँ तथा आपकी कन्या को एकान्त में तथा सबके समक्ष पुत्रीभाव से ही देखता आया हूँ । उसने भी मुझपर पिता की भाँति ही विश्वास किया है । मैं नाचता तो था ही, गान-विद्या में भी कुशल हूँ, अतः उसका मेरे प्रति अत्यधिक प्रेम रहा है, परन्तु आपकी पुत्री मुझे सदा आचार्य=गुरु की भाँति ही मानती आई है ।

**वयस्कया तया राजन् सह संवत्सरोषितः ।**
**अतिशंका भवेत् स्थाने तव लोकस्य वा विभो ॥३७॥**

हे राजन् ! उसकी वयस्क अवस्था में मैं उसके साथ एक वर्ष तक रह चुका हूँ । प्रभो ! [ऐसी अवस्था में यदि मैं उसके साथ विवाह करूँगा, तो] आपको या और किसी मनुष्य को हमारे विषय में अवश्य ही सन्देह होगा और वह युक्तिसंगत ही होगा ।

**तस्मान्निमन्त्रयेऽहं ते दुहितां मनुजाधिप ।**
**शुद्धो जितेन्द्रियो दान्तस्तस्याः शुद्धिः कृता मया ॥३८॥**

महाराज ! वह सन्देह न हो, अतः मैं आपकी पुत्री को पुत्रवधू के रूप में ही ग्रहण करूँगा । ऐसा होने पर ही मैं शुद्ध-चरित्र, जितेन्द्रिय और मन को दमन करनेवाला समझा जाऊंगा तथा इसी से मेरे द्वारा आपकी कन्या के चरित्र की शुद्धि भी स्पष्ट हो जाएगी ।

**दुहितरि स्नुषायां च पुत्रे चात्मनि वा पुनः ।**
**अत्र शंकां न पश्यामि तेन शुद्धिर्भविष्यति ॥३९॥**

पुत्रवधू और पुत्री में तथा पुत्र अथवा आत्मा में भेद नहीं है, अतः उसे पुत्रवधू के रूप में ग्रहण करने पर मुझे कलङ्क की शंका दिखाई नहीं देती और इससे हम दोनों की पवित्रता भी स्पष्ट हो जाएगी ।

**अभिशापादहं भीतो मिथ्यावादात् परन्तप ।**
**स्नुषार्थमुत्तरां राजन् प्रतिगृह्णामि ते सुताम् ॥४०॥**

परन्तप ! मैं अभिशाप और मिथ्यावाद से डरता हूँ [आपकी पुत्री को पत्नी रूप में ग्रहण करने पर लोग यह कल्पना कर सकते हैं कि दोनों में पहले से ही अनुचित सम्बन्ध था] अतः राजन् ! मैं आपकी पुत्री उत्तरा को पुत्रवधू के रूप में ही ग्रहण करता हूँ ।

**स्वस्रीयो वासुदेवस्य साक्षाद् देवशिशुर्यथा ।**
**दयितश्चक्रहस्तस्य सर्वास्त्रेषु च कोविदः ॥४१॥**

मेरा पुत्र साक्षात् देवकुमार के समान है । वह श्रीकृष्ण का भानजा है । चक्रधारी श्रीकृष्ण को वह अतिप्रिय है, साथ ही वह सब प्रकार की अस्त्र-विद्या में भी कुशल है ।

**अभिमन्युर्महाबाहुः पुत्रो मम विशाम्पते ।**
**जामाता तव युक्तो वै भर्ता च दुहितुस्तव ॥४२॥**

महाराज ! मेरे उस महाबाहु पुत्र का नाम अभिमन्यु है । वह आपका सुयोग्यतम जामाता और आपकी पुत्री का उपयुक्त पति होगा ।

विराट उवाच

**उपपन्नं कुरुश्रेष्ठे कुन्तीपुत्रे धनञ्जये ।**
**य एवं धर्मनित्यश्च ज्ञातज्ञानश्च पाण्डवः ॥४३॥**
**यत् कृत्यं मन्यसे पार्थ क्रियतां तदनन्तरम् ।**
**सर्वे कामाः समृद्धा मे सम्बन्धी यस्य मेऽर्जुनः ॥४४॥**

**विराट बोले**—हे पार्थ ! कौरवों में श्रेष्ठ तथा कुन्ती के पुत्र धनञ्जय में इस प्रकार धर्म का विचार होना उचित ही है । पाण्डुपुत्र अर्जुन ही इस प्रकार नित्य धर्म-परायण और ज्ञान-सम्पन्न हो सकते हैं । अब जो कर्तव्य आप ठीक समझें, उसे पूर्ण करें । जिसके सम्बन्धी अर्जुन हो रहे हों, उसकी कौन-सी कामना अपूर्ण रह सकती है ? मेरी सब कामनाएँ पूर्ण हो गईं ।

वैशम्पायन उवाच

**एवं ब्रुवति राजेन्द्रे कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।**
**अन्वशासत् स संयोगं समये मत्स्यपार्थयोः ॥४५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! महाराज विराट के ऐसा कहने पर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने

उचित अवसर जान मत्स्यनरेश और पार्थ के इस सम्बन्ध का अनुमोदन कर दिया।

**ततो मित्रेषु सर्वेषु वासुदेवं च भारत।**
**प्रेषयामास कौन्तेयो विराटश्च महीपतिः ॥४६॥**

जनमेजय! तत्पश्चात् कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर तथा राजा विराट ने अपने-अपने सम्पूर्ण सुहृदों, सगे-सम्बन्धियों तथा श्रीकृष्ण को भी निमन्त्रण भेजा।

**ततस्त्रयोदशे वर्षे निवृत्ते पञ्च पाण्डवाः।**
**उपप्लव्यं विराटस्य समपद्यन्त सर्वशः ॥४७॥**

पाचों पाण्डवों का तेरहवाँ वर्ष पूर्ण हो चुका था, अतः वे सब राजा विराट के उपप्लव्य नामक नगर में आकर रहने लगे।

**अभिमन्युं च बीभत्सुरानिनाय जनार्दनम्।**
**आनर्तेभ्योऽपि दाशार्हानानयामास पाण्डवः ॥४८॥**

पाण्डुनन्दन अर्जुन ने आनर्त देश से अभिमन्यु, श्रीकृष्ण तथा दशार्हवंश के अपने अन्य सम्बन्धियों को भी वहाँ बुलवा लिया।

**तानागतानभिप्रेक्ष्य मत्स्यो धर्मभृतां वरः।**
**पूजयामास विधिवत् सभृत्यबलवाहनान् ॥४९॥**

धर्मात्माओं में श्रेष्ठ मत्स्यनरेश विराट ने उन्हें आया हुआ देख, सेवक, सेना और सवारियोंसहित उन सबका विधिवत् आदर-सम्मान किया।

**ततो विवाहो विधिवद् ववृधे मत्स्यपार्थयोः।**
**परिवार्योत्तरां तास्तु राजपुत्रीमलंकृताम्।**
**सुतामिव महेन्द्रस्य पुरस्कृत्योपतस्थिरे ॥५०॥**

तत्पश्चात् मत्स्य एवं पार्थकुल के वैवाहिक सम्बन्ध का कार्य विधिपूर्वक सम्पन्न होने लगा। उस समय राजकुमारी उत्तरा वस्त्राभूषणों से विभूषित हो महेन्द्रपुत्री जयन्ती-सी सुशोभित हो रही थी। राज-परिवार की सब स्त्रियाँ उसे आगे करके दोनों ओर से घेरकर वहाँ उपस्थित हुईं।

**तां प्रत्यगृह्णात् कौन्तेयः सुतस्यार्थे धनञ्जयः।**
**सौभद्रस्यानवद्याङ्गीं विराटतनयां तदा ॥५१॥**

उस समय कुन्तीनन्दन अर्जुन ने अपने पुत्र सुभद्राकुमार अभिमन्यु के लिए निर्दोष अङ्गोंवाली विराट-कुमारी उत्तरा को ग्रहण किया।

**तत्रातिष्ठन् महाराजो रूपमिन्द्रस्य धारयन्।**
**स्नुषां तां प्रतिजग्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥५२॥**

इन्द्र के समान रूप धारण किये कुन्तीपुत्र महाराज युधिष्ठिर भी वहाँ विद्यमान थे। उन्होंने भी उत्तरा को पुत्रवधू रूप में स्वीकार किया।

**प्रतिगृह्य च तां पार्थः पुरस्कृत्य जनार्दनम्।**
**विवाहं कारयामास सौभद्रस्य महात्मनः ॥५३॥**

पृथापुत्र अर्जुन ने उत्तरा को ग्रहण करके श्रीकृष्ण के समक्ष महामना अभिमन्यु और उत्तरा का विवाह संस्कार सम्पन्न कराया।

**कृते विवाहे तु तदा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।**
**ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं यदुपाहरदच्युतः ॥५४॥**

विवाह सम्पन्न हो जाने पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से जो धन मिला था, वह सब ब्राह्मणों को दान कर दिया।

**तन्महोत्सवसंकाशं परिहृष्टजनायुतम्।**
**नगरं मत्स्यराजस्य शुशुभे भरतर्षभ ॥५५॥**

हे जनमेजय! उस समय हजारों-लाखों हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से भरा हुआ मत्स्यराज का वह नगर मूर्तिमान् महोत्सव-सा सुशोभित हो रहा था।

**इति महाभारते विराटपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥१६॥**

**विराटपर्व सम्पूर्णम्**

# उद्योगपर्व

## प्रथमोऽध्यायः

**महाराज विराट की सभा में श्रीकृष्ण, बलराम और सात्यकि के भाषण; राजा द्रुपद की सम्मति**

**वैशम्पायन उवाच**

**कृत्वा विवाहं तु कुरुप्रवीरा-**
**स्तदाभिमन्योर्मुदिताः स्वपक्षाः ।**
**विश्रम्य रात्रावुषसि प्रतीताः**
**सभां विराटस्य ततोऽभिजग्मुः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! अभिमन्यु का विवाह करके कुरुवीर पाण्डव तथा उनके अपने पक्ष के लोग [यादव, पाञ्चालादि] अति प्रसन्न हुए । रात्रि में विश्राम करके वे प्रातःकाल जागे तथा [नित्यकर्म करके] विराट की सभा में उपस्थित हुए ।

**सभा तु सा मत्स्यपतेः समृद्धा**
**मणिप्रवेकोत्तमरत्नचित्रा ।**
**न्यस्तासना माल्यवती सुगन्धा**
**तामभ्ययुस्ते नरराजवृद्धाः ॥२॥**

मत्स्यनरेश विराट की वह सभा अति समृद्धिशालिनी थी । उसमें मोती-मूँगे आदि मणियों की खिड़कियाँ और झालरें लगीं थीं । उसके फर्श और दीवारों में हीरे-पन्ने आदि उत्तमोत्तम रत्नों की पच्चीकारी की गई थी । इन सबके कारण उसकी विचित्र शोभा हो रही थी । उस सभा-भवन में यथा-योग्य स्थानों पर आसन बिछे हुए थे, स्थान-स्थान पर मालाएँ लटक रही थीं तथा चहुँ ओर सुगन्ध फैल रही थी । वे श्रेष्ठ राजा लोग उसी सभा में एकत्र हुए ।

**अथासनान्याविशतां पुरस्ता-**
**दुभौ विराटद्रुपदौ नरेन्द्रौ ।**
**वृद्धौ च मान्यौ पृथिवीपतीनां**
**पित्रा समं रामजनार्दनौ च ॥३॥**

सभा में सबसे पूर्व राजा विराट एवं द्रुपद आसनों पर विराजमान हुए, क्योंकि वे समस्त भूपालों में वृद्ध और सम्माननीय थे । तत्पश्चात् अपने पिता वसुदेव के साथ बलराम और कृष्ण ने भी आसन ग्रहण किये ।

**पाञ्चालराजस्य समीपतस्तु**
**शिनिप्रवीरः सहरौहिणेयः ।**
**मत्स्यस्य राज्ञस्तु सुसंनिकृष्टो**
**जनार्दनश्चैव युधिष्ठिरश्च ॥४॥**

पाञ्चालराज द्रुपद के पास शिनिवंश के श्रेष्ठ वीर सात्यकि और रोहिणीपुत्र बलरामजी बैठे थे तथा मत्स्यराज के अत्यन्त निकट श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिर विराजमान थे ।

**सुताश्च सर्वे द्रुपदस्य राज्ञो**
**भीमार्जुनौ माद्रवतीसुतौ च ।**
**प्रद्युम्नसाम्बौ च युधि प्रवीरौ**
**विराटपुत्रैश्च सहाभिमन्युः ॥५॥**
**सर्वे च शूराः पितृभिः समाना**
**वीर्येण रूपेण बलेन धाम्ना ।**
**उपाविशन् द्रौपदेयाः कुमाराः**
**सुवर्णचित्रेषु वरासनेषु ॥६॥**

राजा द्रुपद के सब पुत्र, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, युद्धवीर प्रद्युम्न और साम्ब, विराट के पुत्रों-सहित अभिमन्यु एवं द्रौपदी के सभी पुत्र सुवर्णजटित सुन्दर सिंहासनों पर आस-पास ही बैठे थे । द्रौपदी

के पाँचों पुत्र पराक्रम, सौन्दर्य और बल में अपने चाचा पाण्डवों के ही समान थे। वे सब-के-सब शूरवीर थे।

**तत्रोपविष्टेषु महारथेषु**
**विराजमानाभरणाम्बरेषु ।**
**रराज सा राजवती समृद्धा**
**ग्रहैरिव द्यौर्विमलैरुपेता ॥७॥**

चमकीले आभूषणों तथा सुन्दर वस्त्रों से विभूषित उन समस्त महारथियों के बैठ जाने पर राजाओं से भरी हुई वह समृद्धिशालिनी सभा ऐसे सुशोभित हो रही थी मानो उज्ज्वल ग्रह-नक्षत्रों से भरा द्युलोक जगमगा रहा हो।

**ततः कथास्ते समवाययुक्ताः**
**कृत्वा विचित्राः पुरुषप्रवीराः ।**
**तस्थुर्मुहूर्तं परिचिन्तयन्तः**
**कृष्णं नृपास्ते समुदीक्षमाणाः ॥८॥**

तत्पश्चात् उन शूरवीर पुरुषों ने समाज में जैसा वार्तालाप करना उचित है, वैसी ही विविध प्रकार की विचित्र बातें कीं। फिर वे सब नरेश श्रीकृष्ण की ओर देखते हुए दो घड़ी तक कुछ सोचते हुए मौन होकर बैठे रहे।

**कथान्तमासाद्य च माधवेन**
**संघट्टिताः पाण्डवकार्यहेतोः ।**
**ते राजसिंहाः सहिता ह्यश्रृण्वन्**
**वाक्यं महार्थं सुमहोदयं च ॥९॥**

श्रीकृष्ण ने पाण्डवों की कार्यसिद्धि के लिए ही उन श्रेष्ठ राजाओं को संगठित किया था। जब उन लोगों की बातचीत बन्द हो गई तब वे सिंह के समान पराक्रमी नरेश एक साथ श्रीकृष्ण के सारगर्भित और श्रेष्ठ फल देनेवाले वचन सुनने लगे।

श्रीष्ण उवाच

**सर्वैर्भवद्भिर्विदितं यथायं**
**युधिष्ठिरः सौबलेनाक्षवत्याम् ।**
**जितो निकृत्यापहृतं च राज्यं**
**वनप्रवासे समयः कृतश्च ॥१०॥**

श्रीकृष्ण ने कहा—उपस्थित सुहृद्गण! आप सबको विदित ही है कि सुबलपुत्र शकुनि ने द्यूतसभा में किस प्रकार छल के द्वारा धर्मात्मा युधिष्ठिर को परास्त किया और इनका राज्य छीन लिया। उस जुए में यह शर्त रखी गई थी कि जो हारे, वह बारह वर्ष तक वनवास और एक वर्ष तक अज्ञातवास करे।

**शक्तैर्विजेतुं तरसा महीं च**
**सत्ये स्थितैः सत्यरथैर्यथावत् ।**
**पाण्डोः सुतैस्तद् व्रतमुग्ररूपं**
**वर्षाणि षट् सप्त च चीर्णमग्र्यैः ॥११॥**

पाण्डव सदा सत्य पर आरूढ़ रहते हैं। सत्य ही इनका रथ=आश्रय है। इनमें बलपूर्वक सम्पूर्ण भूमण्डल को जीतने की शक्ति है फिर भी इन वीराग्रगण्य पाण्डुपुत्रों ने सत्य का विचार करके तेरह वर्ष तक वनवास और अज्ञातवास के उस कठोर व्रत का धैर्यपूर्वक पालन किया है, जिसका स्वरूप अत्यन्त उग्र है।

**एवंस्थिते धर्मसुतस्य राज्ञो**
**दुर्योधनस्यापि च यद्धितं स्यात् ।**
**तच्चिन्तयध्वं कुरुपुङ्गवानां**
**धर्म्यं च युक्तं च यशस्करं च ॥१२॥**
**अधर्मयुक्तं न च कामयेत**
**राज्यं सुराणामपि धर्मराजः ।**
**धर्मार्थयुक्तं तु महीपतित्वं**
**ग्रामेऽपि कस्मिंश्चिदयं बुभूषेत् ॥१३॥**

ऐसी परिस्थितियों में जिस उपाय से धर्मपुत्र युधिष्ठिर तथा राजा दुर्योधन—दोनों का हित हो, उसका आप लोग विचार करें। आप कोई ऐसा मार्ग खोजें जो इन कुरुवीरों के लिए धर्मानुकूल, न्यायोचित तथा यश की वृद्धि करनेवाला हो। धर्मराज युधिष्ठिर अधर्म द्वारा देवराज इन्द्र के राज्य को भी नहीं लेना चाहेंगे, इसके विपरीत किसी छोटे-से ग्राम का राज्य भी यदि धर्म और अर्थ के अनुकूल प्राप्त होता हो, तो ये उसे लेने की इच्छा कर सकते हैं।

**पित्र्यं हि राज्यं विदितं नृपाणां**
**यथापकृष्टं धृतराष्ट्रपुत्रैः ।**
**मिथ्योपचारेण यथा ह्यनेन**
**कृच्छ्रं महत् प्राप्तमसह्यरूपम् ॥१४॥**

आप सभी भूपालों को यह ज्ञात ही है कि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने पाण्डवों के पैतृक राज्य का किस प्रकार अपहरण किया है। कौरवों के इस मिथ्या व्यवहार तथा छल-कपटके कारण पाण्डवों को कितना महान् और असह्य कष्ट भोगना पड़ा है, यह भी आप लोगों से छिपा नहीं है।

**यत् तु स्वयं पाण्डुसुतैर्विजित्य**
**समाहृतं भूमिपतीन् प्रपीड्य।**
**तत् प्रार्थयन्ति पुरुषप्रवीराः**
**कुन्तीसुता माद्रवतीसुतौ च ॥१५॥**

पाण्डवों ने अन्य राजाओं को युद्ध में जीत तथा उन्हें पीड़ित करके जो धन स्वयं प्राप्त किया था, उसी को कुन्ती और माद्री के ये वीरपुत्र माँग रहे हैं।

**तेषां च लोभं प्रसमीक्ष्य वृद्धं**
**धर्मज्ञतां चापि युधिष्ठिरस्य।**
**सम्बन्धितां चापि समीक्ष्य तेषां**
**मतिं कुरुध्वं सहिताः पृथक् च ॥१६॥**

कौरवों के बढ़े हुए लोभ को, युधिष्ठिर की धर्मज्ञता को और इन दोनों के आपस के सम्बन्धों को देखते हुए सभी सभासद् पृथक्-पृथक् तथा सर्वसम्मति से कुछ निश्चय करें।

**दुर्योधनस्यापि मतं यथाव-**
**न्न ज्ञायते किं नु करिष्यतीति।**
**अज्ञायमाने च मते परस्य**
**किं स्यात् समारभ्यतमं मतं वः ॥१७॥**

दुर्योधन के मत का भी अभी ठीक-ठीक पता नहीं है कि वह क्या करेगा। शत्रुपक्ष का विचार जाने बिना आप लोग कोई ऐसा निश्चय कैसे कर सकते हैं जिसे निश्चय ही कार्यरूप में परिणत किया जा सके।

**तस्मादितो गच्छतु धर्मशीलः**
**शुचिः कुलीनः पुरुषोऽप्रमत्तः।**
**दूतः समर्थः प्रशमाय तेषां**
**राज्यार्धदानाय युधिष्ठिरस्य ॥१८॥**

मेरा विचार है कि यहाँ से कोई धर्मशील, पवित्रात्मा, कुलीन और सावधान पुरुष दूत बनकर वहाँ जाए। वह दूत ऐसा होना चाहिए जो उनके जोश तथा रोष को शान्त करने में समर्थ हो और उन्हें युधिष्ठिर को इनका आधा राज्य देने के लिए विवश कर सके।

**निशम्य वाक्यं तु जनार्दनस्य**
**धर्मार्थयुक्तं मधुरं समं च।**
**समाददे वाक्यमथाग्रजोऽस्य**
**सम्पूज्य वाक्यं तदतीव राजन् ॥१९॥**

हे राजन्! श्रीकृष्ण का धर्म और अर्थ से युक्त, मधुर तथा दोनों पक्षों के लिए समानरूप से हितकर वचन सुनकर उनके बड़े भाई बलरामजी ने उस भाषण की प्रभूत प्रशंसा करके अपना वक्तव्य आरम्भ किया।

बलदेव उवाच

**श्रुतं भवद्भिर्गदपूर्वजस्य**
**वाक्यं यथा धर्मवदर्थवच्च।**
**अजातशत्रोश्च हितं हितं च**
**दुर्योधनस्यापि तथैव राज्ञः ॥२०॥**

**बलदेवजी बोले**—सज्जनो! गदाग्रज=श्रीकृष्ण ने जो कुछ धर्मानुकूल एवं अर्थशास्त्र-सम्मत भाषण किया है, वह आप सबने सुन लिया। इन्होंने जो कुछ कहा है इसी में अजातशत्रु युधिष्ठिर का भी हित है और ऐसा करने से ही राजा दुर्योधन की भलाई है।

**अर्धं हि राज्यस्य विसृज्य वीराः**
**कुन्तीसुतास्तस्य कृते यतन्ते।**
**प्रदाय चार्धं धृतराष्ट्रपुत्रः**
**सुखी सहास्माभिरतीव मोदेत् ॥२१॥**

वीर कुन्तीनन्दन आधा राज्य छोड़कर केवल आधे के लिए ही प्रयत्नशील हैं। दुर्योधन भी पाण्डवों को आधा राज्य प्रदान करके हमारे साथ स्वयं भी सुखी और प्रसन्न होगा।

**लब्ध्वा हि राज्यं पुरुषप्रवीराः**
**सम्यक् प्रवृत्तेषु परेषु चैव।**
**ध्रुवं प्रशान्ताः सुखमाविशेयु-**
**स्तेषां प्रशान्तिश्च हितं प्रजानाम् ॥२२॥**

पुरुषों में श्रेष्ठ वीर पाण्डव आधा राज्य पाकर तथा दूसरे पक्ष की ओर से उत्तम व्यवहार होने पर निश्चय ही शान्त [युद्ध से दूर] रहकर कहीं सुख-

पूर्वक निवास करेंगे। इसी से कौरवों को शान्ति मिलेगी तथा प्रजावर्ग का भी हित होगा।

**दुर्योधनस्यापि मतं च वेत्तुं**
**वक्तुं च वाक्यानि युधिष्ठिरस्य।**
**प्रियं च मे स्याद् यदि तत्र कश्चिद्**
**व्रजेच्छमार्थं कुरुपाण्डवानाम् ॥२३॥**

यदि दुर्योधन का विचार जानने के लिए तथा युधिष्ठिर के सन्देश को उसके कानों तक पहुँचाने के लिए और इस प्रकार कौरव-पाण्डवों में शान्ति स्थापित करने के लिए कोई दूत वहाँ जाए, तो यह मेरे लिए अतिप्रसन्नता की बात होगी।

**सर्वास्ववस्थासु च ते न कोप्या**
**ग्रस्तो हि सोऽर्थो बलमाश्रितैस्तैः।**
**प्रियाभ्युपेतस्य युधिष्ठिरस्य**
**द्यूते प्रसक्तस्य हृतं च राज्यम् ॥२४॥**

किसी भी अवस्था में कौरवों को कुपित न किया जाए, क्योंकि उन्होंने बलवान् होकर ही पाण्डवों के राज्य पर अधिकार किया है। [युधिष्ठिर भी सर्वथा निर्दोष नहीं हैं, क्योंकि] ये जुए को प्रिय मानकर उसमें आसक्त हुए, इसी से इनके राज्य का अपहरण हुआ।

**तस्मात् प्रणम्यैव वचो ब्रवीतु**
**वैचित्रवीर्यं बहुसामयुक्तम्।**
**तथा हि शक्यो धृतराष्ट्रपुत्रः**
**स्वार्थे नियोक्तुं पुरुषेण तेन ॥२५॥**

अतः जो दूत वहाँ भेजा जाए, वह धृतराष्ट्र को प्रणाम करके अत्यन्त विनय के साथ सामनीतियुक्त वचन कहे। ऐसा करने से ही वह दूत धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन को अपने प्रयोजन की सिद्धि में लगा सकेगा।

**अयुद्धमाकांक्षत कौरवाणां**
**साम्नैव दुर्योधनमाह्वयध्वम् ॥**
**साम्ना जितोऽर्थोऽर्थकरो भवेत**
**युद्धेऽनयो भविता नेह सोऽर्थः ॥२६॥**

कौरव-पाण्डवों में परस्पर युद्ध हो, ऐसा कोई पग न उठाओ। सन्धि=समझौते की भावना से ही दुर्योधन को आमन्त्रित करो। मेल-मिलाप से समझा-बुझाकर जो प्रयोजन सिद्ध किया जाता है, वही परिणाम में हितकारी होता है। युद्ध में तो दोनों पक्षों की ओर से अनीति=अन्याय का ही व्यवहार होता है और अन्याय से इस संसार में किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं हो सकती।

वैशम्पायन उवाच

**एवं ब्रुवत्येव मधुप्रवीरे**
**शिनिप्रवीरः सहसोत्पपात।**
**तच्चापि वाक्यं परिनिन्द्य तस्य**
**समाददे वाक्यमिदं समन्युः ॥२७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! मधुवंश के प्रमुख वीर बलदेवजी ऐसा कह ही रहे थे कि शिनिवंश के श्रेष्ठ शूरवीर सात्यकि सहसा उछलकर खड़े हो गये। उन्होंने क्रुद्ध होकर बलरामजी के भाषण की कड़ी आलोचना करते हुए इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

सात्यकिरुवाच

**यादृशः पुरुषस्यात्मा तादृशं सम्प्रभाषते।**
**यथारूपोऽन्तरात्मा ते तथारूपं प्रभाषसे ॥२८॥**

**सात्यकि बोले**—बलरामजी! जैसा मनुष्य का हृदय होता है, वैसी ही बात उसके मुख से निकलती है। आपका भी जैसा अन्तःकरण है, वैसा ही भाषण दे रहे हैं।

**सन्ति वै पुरुषाः शूराः सन्ति कापुरुषास्तथा।**
**उभावेतौ दृढौ पक्षौ दृश्येते पुरुषान् प्रति ॥२९॥**

संसार में शूरवीर पुरुष भी हैं और कापुरुष=कायर भी। पुरुषों में ये दोनों पक्ष निश्चित रूप से देखे जाते हैं।

**एकस्मिन्नेव जायेते कुले क्लीबमहाबलौ।**
**फलाफलवती शाखे यथैकस्मिन् वनस्पतौ ॥३०॥**

जैसे एक ही वृक्ष में कोई शाखा फलवती होती है और कोई फलहीन; वैसे ही एक ही कुल में दो प्रकार की सन्तान होती हैं, एक नपुंसक और दूसरी महाशक्तिशाली।

**नाभ्यसूयामि ते वाक्यं ब्रुवतो लाङ्गलध्वज।**
**ये तु शृण्वन्ति ते वाक्यं तानसूयामि माधव ॥३१॥**

लाङ्गलध्वज मधुकुलभूषण! आप जो कुछ कह रहे हैं, मैं उसमें दोष नहीं निकाल रहा हूँ, अपितु जो

लोग चुप-चाप आपकी बातें सुन रहे हैं, मैं उन्हीं को दोषी मानता हूँ।

**कथं हि धर्मराजस्य दोषमल्पमपि ब्रुवन्।**
**लभते परिषन्मध्ये व्याहर्तुमकुतोभयः ॥३२॥**

भला कोई भी मनुष्य भरी सभा में निर्भय होकर धर्मराज युधिष्ठिर पर थोड़ा-सा भी दोषारोपण करे, तो वह वहाँ बोलने का अवसर कैसे पा सकता है?

**समाहूय महात्मानं जितवन्तोऽक्षकोविदाः।**
**अनक्षज्ञं यथाश्रद्धं तेषु धर्मजयः कुतः ॥३३॥**

महात्मा युधिष्ठिर जुआ खेलना नहीं जानते थे, तो भी जुए के खेल में प्रवीण धूर्तों ने उन्हें अपने घर बुलाकर अपने विश्वास के अनुसार हराया अथवा जीता है। यह उनकी धर्मपूर्वक विजय कैसे कही जा सकती है?

**यदि कुन्तीसुतं गेहे क्रीडन्तं भ्रातृभिः सह।**
**अभिगम्य जयेयुस्ते तत् तेषां धर्मतो भवेत् ॥३४॥**

यदि भाइयोंसहित कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर अपने घर पर जुआ खेलते तथा ये कौरव वहाँ जाकर इन्हें हरा देते, तो यह उनकी धर्मपूर्वक विजय कही जा सकती थी।

**समाहूय च राजानं क्षत्रधर्मरतं सदा।**
**निकृत्या जितवन्तस्ते किं नु तेषां परं शुभम्।**
**कथं प्रणिपतेच्चायमिह कृत्वा पणं परम् ॥३५॥**

कौरवों ने सदा क्षत्रिय-धर्म में तत्पर रहनेवाले राजा युधिष्ठिर को बुलाकर छल और कपट से इन्हें पराजित किया है। क्या यही उनका परम कल्याण-मय कर्म कहा जा सकता है? वनवास विषयक प्रतिज्ञा पूरी करके राजा युधिष्ठिर उनके समक्ष मस्तक क्यों झुकाएँ?

**कथं च धर्मयुक्तास्ते न च राज्यं जिहीर्षवः।**
**निवृत्तवासान् कौन्तेयान् य आहुर्विदिता इति ॥३६॥**

कुन्तीपुत्रों के वनवास की अवधि पूर्ण करके लौटने पर कौरव यह कहने लगे हैं कि हमने तो इन्हें समय पूर्ण होने से पहले ही पहचान लिया है। ऐसी अवस्था में यह कैसे कहा जा सकता है कि कौरव धर्म में तत्पर हैं और पाण्डवों के राज्य का अपहरण नहीं करना चाहते?

**अनुनीता हि भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च।**
**न व्यवस्यन्ति पाण्डूनां प्रदातुं पैतृकं वसु ॥३७॥**

वे भीष्म, द्रोण और विदुर के बहुत अनुनय-विनय करने पर भी पाण्डवों को उनका पैतृक धन वापस देने का निश्चय अथवा प्रयास नहीं कर रहे हैं।

**को हि गाण्डीवधन्वानं कश्च चक्रायुधं युधि।**
**मां चापि विषहेत् क्रुद्धं कश्च भीमं दुरासदम् ॥३८॥**

कौरव दल में ऐसा कौन है जो युद्ध-भूमि में गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन, चक्रधारी श्रीकृष्ण, क्रोध में भरे हुए मुझ सात्यकि और दुर्धर्ष वीर भीमसेन का सामना कर सके?

**ते वयं धृतराष्ट्रस्य पुत्रान् शकुनिना सह।**
**कर्णं चैव निहत्याजावभिषेक्ष्याम पाण्डवम् ॥३९॥**

हम लोग शकुनि के सहित धृतराष्ट्र-पुत्रों दुर्योधन आदि को तथा कर्ण को भी युद्ध में मारकर पाण्डु-नन्दन युधिष्ठिर का राज्याभिषेक करेंगे।

**नाधर्मो विद्यते कश्चिच्छत्रून् हत्वाऽऽततायिनः।**
**अधर्म्यमयशस्यं च शात्रवाणां प्रयाचनम् ॥४०॥**

आततायी शत्रुओं का वध करने में कोई पाप नहीं है। शत्रुओं के सामने याचना करना ही अधर्म और अपयश की बात है।

**अद्य पाण्डुसुतो राज्यं लभतां वा युधिष्ठिरः।**
**निहता वा रणे सर्वे स्वप्स्यन्ति वसुधातले ॥४१॥**

अब पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर को उनका राज्य वापस मिल जाना चाहिए अन्यथा समस्त कौरव युद्ध में मारे जाकर रण-भूमि में सदा के लिए सो जाएँगे।

द्रुपद उवाच

**एवमेतन्महाबाहो भविष्यति न संशयः।**
**न हि दुर्योधनो राज्यं मधुरेण प्रदास्यति ॥४२॥**
**अनुवर्त्स्यति तं चापि धृतराष्ट्रः सुतप्रियः।**
**भीष्मद्रोणौ च कार्पण्यान्मौर्ख्याद् राधेयसौबलौ ॥४३॥**

**द्रुपद बोले**—हे महाबाहो! तुम्हारा कहना सत्य है, निःसन्देह ऐसा ही होगा; क्योंकि दुर्योधन मधुर=शान्तिपूर्ण व्यवहार से राज्य नहीं देगा। अपने उस पुत्र के प्रति मोहासक्त रहनेवाले धृतराष्ट्र भी उसी

का अनुसरण करेंगे। भीष्म और द्रोणाचार्य दीनता-वश तथा कर्ण और शकुनि मूर्खतावश दुर्योधन का साथ देंगे।

**बलदेवस्य वाक्यं तु मम ज्ञाने न युज्यते।**
**एतद्धि पुरुषेणाग्रे कार्यं सुनयमिच्छता ॥४४॥**
**न तु वाच्यो मृदुवचो धार्तराष्ट्रः कथञ्चन।**
**न हि मार्दवसाध्योऽसौ पापबुद्धिर्मतो मम ॥४५॥**

बलरामजी का कथन मेरे विचार में उचित नहीं है। मैं जो कुछ कहने लगा हूँ, वही सुनीति की इच्छा रखनेवाले पुरुष को सबसे पहले करना चाहिए। धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन से मधुर अथवा नम्रतापूर्ण वचन कहना किसी प्रकार भी युक्त नहीं है। मेरा ऐसा मत है कि वह पापपूर्ण विचार रखनेवाला है, अतः मृदु-व्यवहार से वश में आनेवाला नहीं है।

**गर्दभे मार्दवं कुर्याद् गोषु तीक्ष्णं समाचरेत्। □**
**मृदु दुर्योधने वाक्यं यो ब्रूयात् पापचेतसि ॥४६॥**

जो पापात्मा दुर्योधन के प्रति मृदु वचन बोलेगा वह मानो गधे के प्रति कोमलतापूर्ण बर्ताव करेगा और गायों के प्रति कठोर व्यवहार।

**मृदुं वै मन्यते पापो भाषमाणमशक्तिकम्। □**
**जितमर्थं विजानीयादबुधो मार्दवे सति ॥४७॥**

पापी एवं मूर्ख मनुष्य मृदु-वचन बोलनेवाले को शक्तिहीन समझता है तथा कोमलता का व्यवहार करने पर यह समझने लगता है कि मैंने इसके धन पर विजय पा ली है।

**एतच्चैव करिष्यामो यत्नश्च क्रियतामिह।**
**प्रस्थापयामो मित्रेभ्यो बलान्युद्योजयन्तु नः ॥४८॥**

"हमें अपने मित्रों के पास यह सन्देश भेज देना चाहिए कि वे हमारे लिए सैन्य-संग्रह का उद्योग करें।' हम इसी प्रस्ताव को सम्पन्न करेंगे और इसी के लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए।

**शल्यस्य धृष्टकेतोश्च जयत्सेनस्य वा विभो।**
**केकयानां च सर्वेषां दूता गच्छन्तु शीघ्रगाः ॥४९॥**

भगवन्! हमारे शीघ्रगामी दूत शल्य, धृष्टकेतु, जयत्सेन और समस्त केकय राजकुमारों के पास जाएँ।

**स च दुर्योधनो नूनं प्रेषयिष्यति सर्वशः।**
**पूर्वाभिपन्नाः सन्तश्च भजन्ते पूर्वप्रेरणम् ॥५०॥**

निश्चय ही दुर्योधन भी सबके यहाँ निमन्त्रण भेजेगा। श्रेष्ठ नरेश जब किसी के द्वारा पहले सहायता के लिए निमन्त्रित हो जाते हैं, तब वे पहले निमन्त्रण देनेवाले की ही सहायता करते हैं।

**तत् त्वरध्वं नरेन्द्राणां पूर्वमेव सुप्रेरणे।**
**महद्धि कार्यं वोढव्यमिति मे वर्तते मतिः ॥५१॥**

अतः सभी नरेशों के पास पहले ही अपना निमन्त्रण पहुँच जाए, इसके लिए शीघ्रता करो। मैं समझता हूँ, हम सब लोगों को महान् कार्य का भार वहन करना है।

**अयं च ब्राह्मणो विद्वान् मम राजन् पुरोहितः।**
**प्रेष्यतां धृतराष्ट्राय वाक्यमस्मै प्रदीयताम् ॥५२॥**

मत्स्यनरेश! ये मेरे पुरोहित विद्वान् ब्राह्मण हैं, इन्हें उचित सन्देश देकर धृतराष्ट्र के पास भेजिए।

**यथा दुर्योधनो वाच्यो यथा शान्तनवो नृपः।**
**धृतराष्ट्रो यथा वाच्यो द्रोणश्च रथिनां वरः ॥५३॥**

दुर्योधन से क्या कहना है? शान्तनुनन्दन भीष्म-जी से किस प्रकार वार्तालाप करना है? धृतराष्ट्र को क्या सन्देश देना है? रथियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य से क्या बातचीत करनी है—यह सब इन्हें समझा दीजिए।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥१॥**

# द्वितीयोऽध्यायः

## श्रीकृष्ण का द्वारका-गमन, विराट और द्रुपद का नरेशों को युद्ध के लिए आमन्त्रण, पुरोहित का दौत्यकर्म के लिए हस्तिनापुर को प्रस्थान

श्रीकृष्ण उवाच

**उपपन्नमिदं वाक्यं सोमकानां धुरन्धरे ।**
**अर्थसिद्धिकरं राज्ञः पाण्डवस्यामितौजसः ।।१।।**

**श्रीकृष्ण ने कहा**—हे सभासदो ! सोमवंश के धुरन्धर वीर महाराज द्रुपद ने जो बात कही है, वह उन्हीं के योग्य है । इसी से अमित तेजस्वी पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिर के अभीष्ट कार्य की सिद्धि हो सकती है ।

**एतच्च पूर्वं कार्यं नः सुनीतिमभिकाङ्क्षताम् ।**
**अन्यथा ह्याचरन् कर्म पुरुषः स्यात् सुबालिशः ।।२।।**

हम लोग सुनीति की इच्छा रखनेवाले हैं, अतः हमें सबसे पहले यही कार्य करना चाहिए । जो अवसर के विपरीत आचरण करता है, वह मनुष्य अत्यन्त मूर्ख माना जाता है ।

**किं तु सम्बन्धकं तुल्यमस्माकं कुरुपाण्डुषु ।**
**यथेष्टं वर्तमानेषु पाण्डवेषु च तेषु च ।।३।।**

परन्तु हम लोगों का कौरवों और पाण्डवों के साथ एक-सा सम्बन्ध है । पाण्डव और कौरव दोनों ही हमारे साथ यथायोग्य अनुकूल बर्ताव करते हैं ।

**ते विवाहार्थमानीता वयं सर्वे तथा भवान् ।**
**कृते विवाहे मुदिता गमिष्यामो गृहान् प्रति ।।४।।**

इस समय हम और आप सब लोग विवाहोत्सव में निमन्त्रित होकर आये हैं । विवाह-कार्य सम्पन्न हो गया, अतः अब हम प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घरों को लौट जाएँगे ।

**भवान् वृद्धतमो राज्ञां वयसा च श्रुतेन च ।**
**शिष्यवत् ते वयं सर्वे भवामो न हि संशयः ।।५।।**

आप समस्त नरेशों में अवस्था तथा शास्त्र-ज्ञान दोनों ही दृष्टियों से सबसे बड़े हैं । इसमें सन्देह नहीं है कि हम सब लोग आपके शिष्य के समान हैं ।

**भवन्तं धृतराष्ट्रोऽपि सततं बहु मन्यते ।**
**आचार्ययोः सखा चासि द्रोणस्य च कृपस्य च ।।६।।**

राजा धृतराष्ट्र भी सदा आपका विशेष आदर करते हैं । आचार्य द्रोण और कृप दोनों आपके सखा हैं ।

**स भवान् प्रेषयत्वद्य पाण्डवार्थकरं वचः ।**
**सर्वेषां निश्चितं तन्नः प्रेषयिष्यति यद् भवान् ।।७।।**

अतः आप आज ही पाण्डवों की कार्य-सिद्धि के अनुकूल संदेश भेजिए । आप जो भी सन्देश भेजेंगे, वह हम सब लोगों का निश्चित मत होगा ।

**यदि तावच्छमं कुर्यान्न्यायेन कुरुपुङ्गवः ।**
**न भवेत् कुरुपाण्डूनां सौभ्रात्रेण महान् क्षयः ।।८।।**

यदि कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन न्याय के अनुसार शान्ति स्वीकार करेगा तो कौरवों और पाण्डवों में परस्पर बन्धुजनोचित सौहार्द के कारण महाविनाश नहीं होगा ।

**अथ दर्पान्वितो मोहान्न कुर्याद् धृतराष्ट्रजः ।**
**अन्येषां प्रेषयित्वा च पश्चादस्मान् समाह्वयेः ।।९।।**

यदि धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन मोहवश अभिमान में आकर हमारा प्रस्ताव स्वीकार न करे तो आप अन्य नरेशों को युद्ध का निमन्त्रण भेजकर सबके अन्त में हमें भी आमन्त्रित कीजिएगा ।

**ततो दुर्योधनो मन्दः सहामात्यः सबान्धवः ।**
**निष्ठामापत्स्यते मूढः क्रुद्धे गाण्डीवधन्वनि ।।१०।।**

फिर तो गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन के क्रुद्ध होने पर मन्द-बुद्धि मूढ दुर्योधन अपने मन्त्रियों और बन्धु-जनों के साथ सर्वथा नष्ट ही हो जाएगा ।

वैशम्पायन उवाच

**ततः सत्कृत्य वार्ष्णेयं विराटः पृथिवीपतिः ।**
**गृहान् प्रस्थापयामास सगणं सहबान्धवम् ।।११।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तत्पश्चात् राजा विराट ने सेवकों तथा बान्धवोंसहित वृष्णि-कुलभूषण श्रीकृष्ण का सत्कार करके उन्हें द्वारका जाने के लिए विदा किया ।

**द्वारकां तु गते कृष्णे युधिष्ठिरपुरोगमाः ।**
**चक्रुः सांग्रामिकं सर्वं विराटश्च महीपतिः ।।१२।।**

श्रीकृष्ण के द्वारका चले जाने पर युधिष्ठिर आदि पाण्डव तथा राजा विराट युद्ध की सारी तैयारी करने लगे।

**ततः सम्प्रेषयामास विराटः सह बान्धवैः।**
**सर्वेषां भूमिपालानां द्रुपदश्च महीपतिः ॥१३॥**

बन्धुओंसहित राजा विराट तथा महाराज द्रुपद ने मिलकर सब राजाओं के पास युद्ध का निमन्त्रण भेजा।

**ततः प्रज्ञावयोवृद्धं पाञ्चाल्यः स्वपुरोहितम्।**
**कुरुभ्यः प्रेषयामास युधिष्ठिरमते स्थितः ॥१४॥**

उधर पाञ्चालनरेश द्रुपद ने युधिष्ठिर की सम्मति के अनुसार बुद्धि और अवस्था में बढ़े-चढ़े अपने पुरोहित को कौरवों के पास भेजा।

द्रुपद उवाच

**भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः। □**
**बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेष्वपि द्विजातयः ॥१५॥**

**द्रुपद बोले**—पुरोहितजी! समस्त भूतों में प्राणधारी श्रेष्ठ हैं। प्राणधारियों में भी बुद्धिजीवी श्रेष्ठ हैं। बुद्धिजीवी प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ है और मनुष्यों में भी ब्राह्मण श्रेष्ठ माने गये हैं।

**द्विजेषु वैद्याः श्रेयांसो वैद्येषु कृतबुद्धयः। □**
**कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः ॥१६॥**

ब्राह्मणों में विद्वान्, विद्वानों में भी सिद्धान्त के जानकार, सिद्धान्त के ज्ञाताओं में भी तदनुसार आचरण करनेवाले पुरुष और उनमें भी ब्रह्मवेत्ता श्रेष्ठ हैं।

**स भवान् कृतबुद्धीनां प्रधान इति मे मतिः।**
**कुलेन च विशिष्टोऽसि वयसा च श्रुतेन च ॥१७॥**

मेरा ऐसा विश्वास है कि आप सिद्धान्तवेत्ताओं में प्रमुख हैं। आप कुलीन तो हैं ही, अवस्था और शास्त्र-ज्ञान में भी बढ़े-चढ़े हैं।

**प्रज्ञया सदृशश्चासि शुक्रेणाङ्गिरसेन च।**
**विदितं चापि ते सर्वं यथावृत्तः स कौरवः ॥१८॥**

आपकी बुद्धि शुक्राचार्य और बृहस्पति के समान है। दुर्योधन का आचार-विचार जैसा है, वह सब भी आपको विदित ही है।

**पाण्डवश्च यथावृत्तः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।**
**धृतराष्ट्रस्य विदिते वञ्चिताः पाण्डवाः परैः ॥१९॥**

कुन्तीपुत्र पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर का आचार-विचार भी आपसे छिपा नहीं है। धृतराष्ट्र की जानकारी में शत्रुओं ने पाण्डवों को ठगा है।

**शकुनिर्बुद्धिपूर्वं हि कुन्तीपुत्रं समाह्वयत्।**
**अनक्षज्ञं मताक्षः सन् क्षत्रवृत्ते स्थितं शुचिम् ॥२०॥**

द्यूतक्रीड़ा में प्रवीण शकुनि ने यह जानते हुए भी कि युधिष्ठिर जुए के खिलाड़ी नहीं हैं, वे क्षत्रिय-धर्म पर चलनेवाले शुद्धात्मा पुरुष हैं, उन्हें जान-बूझकर जुए के लिए बुलाया।

**ते तथा वञ्चयित्वा तु धर्मराजं युधिष्ठिरम्।**
**न कस्याञ्चिदवस्थायां राज्यं दास्यन्ति वै स्वयम् ॥२१**

उन सबने मिलकर धर्मराज युधिष्ठिर को ठगा है। अब वे किसी भी दशा में स्वयं राज्य नहीं लौटाएँगे।

**भवाँस्तु धर्मसंयुक्तं धृतराष्ट्रं ब्रुवन् वचः।**
**मनांसि तस्य योधानां ध्रुवमावर्तयिष्यति ॥२२॥**

परन्तु आप राजा धृतराष्ट्र से धर्मयुक्त बातें कहकर उनके योद्धाओं का मन निश्चय ही अपनी ओर फेर लेंगे।

**विद्यमानेषु च स्वेषु लम्बमाने तथा त्वयि।**
**न तथा ते करिष्यन्ति सेनाकर्म न संशयः ॥२३॥**

जब हमारे स्वजन वहाँ उपस्थित रहेंगे तथा आप भी वहाँ रहकर लौटने में विलम्ब करते रहेंगे, तब निःसन्देह वे सैन्यसंग्रह का कार्य उतने अच्छे ढंग से नहीं कर सकेंगे।

**न च तेभ्यो भयं तेऽस्ति ब्राह्मणो ह्यसि वेदवित्।**
**दूतकर्मणि युक्तश्च स्थविरश्च विशेषतः ॥२४॥**

आपको उनसे कोई भय नहीं है, क्योंकि आप वेदवेत्ता ब्राह्मण हैं। विशेष रूप से दूतकर्म में नियुक्त और वृद्ध हैं।

**स भवान् पुष्ययोगेन मुहूर्तेन जयेन च।**
**कौरवेयान् प्रयात्वाशु कौन्तेयस्यार्थसिद्धये ॥२५॥**

अतः आप पुष्य-नक्षत्र से युक्त जय नामक मुहूर्त में कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर के कार्य की सिद्धि के लिए कौरवों के पास शीघ्र जाइए।

वैशम्पायन उवाच

**तथानुशिष्टः प्रययौ द्रुपदेन महात्मना।**
**पुरोधा वृत्तसम्पन्नो नगरं नागसाह्वयम् ॥२६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! महामना राजा द्रुपद द्वारा इस प्रकार अनुशासित होकर सदाचार-सम्पन्न पुरोहित ने हस्तिनापुर को प्रस्थान किया।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः॥२॥**

# तृतीयोऽध्याय।

## श्रीकृष्ण द्वारा दुर्योधन और अर्जुन दोनों की सहायता

वैशम्पायन उवाच

**पुरोहितं ते प्रस्थाप्य नगरं नागसाह्वयम्।**
**दूतान् प्रस्थापयामासुः पार्थिवेभ्यस्ततस्ततः॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय ! पुरोहित को हस्तिनापुर भेजकर पाण्डव लोग यत्र-तत्र राजाओं के यहाँ अपने दूतों को भेजने लगे।

**प्रस्थाप्य दूतानन्यत्र द्वारकां पुरुषर्षभः।**
**स्वयं जगाम कौरव्यः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः॥२॥**

अन्य सब स्थानों में दूत भेजकर कुरुकुलभूषण कुन्तीपुत्र नरश्रेष्ठ धनञ्जय स्वयं द्वारकापुरी को गये।

**गते द्वारवतीं कृष्णे गूढैः प्रणिहितैश्चरैः।**
**सर्वमागमयामास पाण्डवानां विचेष्टितम्॥३॥**

श्रीकृष्ण के द्वारकापुरी की ओर प्रस्थान करने पर दुर्योधन ने अपने नियुक्त किये हुए गुप्तचरों से पाण्डवों की सारी चेष्टाओं का पता लगा लिया था।

**स श्रुत्वा माधवं यान्तं सदश्वैरनिलोपमैः।**
**बलेन नातिमहता द्वारकामभ्ययात् पुरीम्॥४॥**

जब उसने सुना कि श्रीकृष्ण विराटनगर से द्वारका को जा रहे हैं, तब वह वायु के समान वेगवान् उत्तम घोड़ों तथा एक छोटी-सी सेना के साथ द्वारकापुरी की ओर चल दिया।

**तमेव दिवसं चापि कौन्तेयः पाण्डुनन्दनः।**
**आनर्तनगरीं रम्यां जगामाशु धनञ्जयः॥५॥**

कुन्तीकुमार पाण्डुनन्दन अर्जुन ने भी उसी दिन शीघ्रतापूर्वक रमणीय द्वारकापुरी की ओर प्रस्थान किया।

**तौ यात्वा पुरुषव्याघ्रौ द्वारकां कुरुनन्दनौ।**
**सुप्तं ददृशतुः कृष्णं शयानं चाभिजग्मतुः॥६॥**

कुरुवंश का आनन्द बढ़ानेवाले उन दोनों नरवीरों ने द्वारका में पहुँचकर देखा कि श्रीकृष्ण शयन कर रहे हैं। तब वे दोनों सोये हुए श्रीकृष्ण के पास गये।

**ततः शयाने गोविन्दे प्रविवेश सुयोधनः।**
**उच्छीर्षतश्च कृष्णस्य निषसाद वरासने॥७॥**

श्रीकृष्ण के शयनकाल में पहले दुर्योधन ने उनके भवन में प्रवेश किया तथा उनके सिरहाने की ओर रखे हुए एक उत्तम सिंहासन पर बैठ गया।

**ततः किरीटी तस्यानुप्रविवेश महामनाः।**
**पश्चाच्चैव स कृष्णस्य प्रह्वोऽतिष्ठत् कृताञ्जलिः॥८॥**

तदनन्तर महामना किरीटधारी अर्जुन श्रीकृष्ण के शयनागार में प्रविष्ट हुए। वे अत्यन्त नम्रता के साथ हाथ जोड़े हुए श्रीकृष्ण के चरणों की ओर खड़े रहे।

**प्रतिबुद्धः स वार्ष्णेयो ददर्शाग्रे किरीटिनम्।**
**स तयोः स्वागतं कृत्वा यथावत् प्रतिपूज्य तौ॥९॥**
**तदागमनजं हेतुं पप्रच्छ मधुसूदनः।**
**ततो दुर्योधनः कृष्णमुवाच प्रहसन्निव॥१०॥**

जागने पर वृष्णिकुलभूषण श्रीकृष्ण ने पहले अर्जुन को ही देखा। फिर मधुसूदन ने उन दोनों का यथायोग्य आदर-सत्कार करके उनके आगमन का कारण पूछा। तब दुर्योधन ने हँसते-हुए-से श्रीकृष्ण से कहा—

दुर्योधन उवाच

**विग्रहेऽस्मिन् भवान् कृष्ण साहाय्यं दातुमर्हति।**
**समं हि भवतः सख्यं मम चैवार्जुनेऽपि च॥११॥**

**अहं चाभिगतः पूर्वं त्वामद्य मधुसूदन ।**
**पूव चाभिगतं सन्तो भजन्ते पूर्वसारिणः ॥१२॥**
**त्वं च श्रेष्ठतमो लोके सतामद्य जनार्दन ।**
**सततं सम्मतश्चैव सद्वृत्तमनुपालय ॥१३॥**

**दुर्योधन बोला**—हे माधव ! [पाण्डवों के साथ हमारा] जो युद्ध होनेवाला है, उसमें आप मेरी सहायता करें। आपकी मेरे और अर्जुन के साथ एक-सी मित्रता है और मधुसूदन ! आज मैं ही आपके पास पहले आया हूँ। पूर्वपुरुषों के सदाचार का अनुसरण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष पहले आये हुए प्रार्थी की ही सहायता करते हैं। जनार्दन ! आप इस समय संसार के सत्पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ हैं और सभी आपको सदा सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, अतः आप सत्पुरुषों के ही आचार का पालन कर।

कृष्ण उवाच

**भवानभिगतः पूर्वमत्र मे नास्ति संशयः ।**
**दृष्टस्तु प्रथमं राजन् मया पार्थो धनञ्जयः ॥१४॥**

**श्रीकृष्ण ने कहा**—हे राजन् ! इसमें सन्देह नहीं कि आप ही मेरे यहाँ पहले आये हैं, परन्तु मैंने पहले कुन्तीनन्दन अर्जुन को ही देखा है।

**तव पूर्वाभिगमनात् पूर्वं चाप्यस्य दर्शनात् ।**
**साहाय्यमुभयोरेव करिष्यामि सुयोधन ॥१५॥**

सुयोधन ! आप पहले आये हैं, और अर्जुन को मैंने पहले देखा है, अतः मैं दोनों की ही सहायता करूँगा।

**प्रवारणं तु बालानां पूर्वं कार्यमिति श्रुतिः ।**
**तस्मात् प्रवारणं पूर्वमर्हः पार्थो धनञ्जयः ॥१६॥**

शास्त्र की आज्ञा है कि पहले बालकों को ही उनकी अभीष्ट वस्तु देनी चाहिए, अतः अवस्था में छोटे होने के कारण पहले कुन्तीपुत्र अर्जुन ही अपनी अभीष्ट वस्तु पाने के अधिकारी हैं।

**मत्संहननतुल्यानां गोपानामर्बुदं महत् ।**
**नारायणा इति ख्याताः सर्वे संग्रामयोधिनः ॥१७॥**

मेरे पास 'अर्बुद' नामक गोपों की एक विशाल सेना है, जो सब-के-सब मेरे ही जैसे बलिष्ठ शरीरवाले हैं। उन सबकी 'नारायण' संज्ञा है। वे सभी युद्ध में डटकर लोहा लेनेवाले हैं।

**ते वा युधि दुराधर्षा भवन्त्वेकस्य सैनिकाः ।**
**अयुध्यमानः संग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेकतः ॥१८॥**

एक ओर तो वे दुर्धर्ष सैनिक युद्ध के लिए उद्यत रहेंगे और दूसरी ओर अकेला मैं रहूँगा, परन्तु मैं न तो युद्ध करूँगा और न कोई शस्त्र ही धारण करूँगा।

**आभ्यामन्यतरं पार्थ यत् ते हृद्यतरं मतम् ।**
**तद् वृणीतां भवानग्रे प्रवार्यस्त्वं हि धर्मतः ॥१९॥**

हे अर्जुन ! इन दोनों में से कोई एक वस्तु जो तुम्हारे मन को अधिक प्रिय जान पड़े, तुम पहले चुन लो, क्योंकि धर्म के अनुसार पहले तुम्हें ही अपनी मनचाही वस्तु चुनने का अधिकार है।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तस्तु कृष्णेन कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।**
**अयुध्यमानं संग्रामे वरयामास केशवम् ॥२०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन् ! श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर धनञ्जय ने संग्राम-भूमि में युद्ध न करनेवाले श्रीकृष्ण को ही अपना सहायक चुना।

**दुर्योधनस्तु तत् सैन्यं सर्वमावरयत् तदा ।**
**कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा सम्प्राप परमां मुदम् ॥२१॥**
**ततोऽभ्ययाद् भीमबलो रौहिणेयं महाबलम् ।**
**सर्वं चागमने हेतुं स तस्मै संन्यवेदयत् ॥२२॥**

जनमेजय ! तब दुर्योधन ने वह सारी सेना माँग ली। उन योद्धाओं को पाकर और श्रीकृष्ण को ठगा गया समझकर राजा दुर्योधन को अतिहर्ष हुआ। उस सारी सेना को लेकर महाबली दुर्योधन रोहिणीनन्दन बलरामजी के पास गया और उन्हें अपने आने का सारा कारण बताया।

बलदेव उवाच

**नाहं सहायः पार्थस्य नापि दुर्योधनस्य वै ।**
**इति मे निश्चिता बुद्धिर्वासुदेवमवेक्ष्य ह ॥२३॥**

मैं श्रीकृष्ण की ओर देखकर मन-ही-मन इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि मैं न तो अर्जुन की सहायता करूँगा और न दुर्योधन की ही।

**जातोऽसि भारते वंशे सर्वपार्थिवपूजिते ।**
**गच्छ युध्यस्व धर्मेण क्षात्रेण पुरुषर्षभ ॥२४॥**

पुरुषश्रेष्ठ ! तुम समस्त राजाओं द्वारा सम्मानित

भरतवंश में उत्पन्न हुए हो। जाओ, क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्ध करो।

वैशम्पायन उवाच

**इत्येवमुक्तस्तु तदा परिष्वज्य हलायुधम्।**
**कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा युद्धे मेने जितं जयम्।।२५।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! बलराम के ऐसा कहने पर दुर्योधन ने उन्हें हृदय से लगाया और श्रीकृष्ण को ठगा गया जानकर युद्ध में अपनी निश्चित विजय समझ ली।

**सोऽभ्ययात् कृतवर्माणं धृतराष्ट्रसुतो नृपः।**
**कृतवर्मा ददौ तस्य सेनामक्षौहिणीं तदा।।२६।।**

तत्पश्चात् धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन कृतवर्मा के पास गया। कृतवर्मा ने उसे एक अक्षौहिणी सेना प्रदान की।

**स तेन सर्वसैन्येन भीमेन कुरुनन्दनः।**
**वृतः परिययौ हृष्टः सुहृदः सम्प्रहर्षयन्।।२७।।**

उस सारी भयंकर सेना के द्वारा घिरा हुआ कुरुनन्दन दुर्योधन अपने सुहृदों का हर्ष बढ़ाता हुआ बड़ी प्रसन्नता के साथ हस्तिनापुर को लौट गया।

**गते दुर्योधने कृष्णः किरीटिनमथाब्रवीत्।**
**अयुध्यमानः कां बुद्धिमास्थायाहं वृतस्त्वया।।२८।।**

दुर्योधन के चले जाने पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा—"पार्थ! मैं तो युद्ध करूँगा नहीं, फिर तुमने क्या सोच-समझकर मुझे चुना है?"

अर्जुन उवाच

**भवान् समर्थस्तान् सर्वान् निहन्तुं नात्र संशयः।**
**निहन्तुमहमप्येकः समर्थः पुरुषर्षभ।।२९।।**

**अर्जुन बोले**—हे पुरुषोत्तम! आप अकेले ही उन सबको नष्ट करने में समर्थ हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। [आपकी कृपा से] मैं भी अकेला ही उन सब शत्रुओं का संहार करने में समर्थ हूँ।

**भवाँस्तु कीर्तिमाँल्लोके तद्यशस्त्वां गमिष्यति।**
**यशसां चाहमप्यर्थी तस्मादसि मया वृतः।।३०।।**

आप संसार में यशस्वी हैं। आप जहाँ भी रहेंगे, वहाँ ही यश आपका ही अनुसरण करेगा। मुझे भी यश की इच्छा है, अतः मैंने आपका वरण किया है।

**सारथ्यं तु त्वया कार्यमिति मे मानसं सदा।**
**चिररात्रेप्सितं कामं तद् भवान् कर्तुमर्हति।।३१।।**

मेरे मन में बहुत समय से यह इच्छा थी कि आपको अपना सारथि बनाऊँ—अपने जीवन-रथ की बागडोर आपके हाथों में सौंप दूँ। मेरी इस चिरकालिक अभिलाषा को आप पूर्ण करें।

वासुदेव उवाच

**उपपन्नमिदं पार्थ यत् स्पर्धसि मया सह।**
**सारथ्यं ते करिष्यामि कामः सम्पद्यतां तव।।३२।।**

**श्रीकृष्ण ने कहा**—हे पार्थ! तुम जो शत्रुओं पर विजय पाने में मेरे साथ स्पर्धा रखते हो, वह तुम्हारे योग्य ही है। मैं तुम्हारा सारथ्य करूँगा। तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण हो।

वैशम्पायन उवाच

**एवं प्रमुदितः पार्थः कृष्णेन सहितस्तदा।**
**वृतो दाशार्हप्रवरैः पुनरायाद् युधिष्ठिरम्।।३३।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! इस प्रकार अपनी इच्छा पूर्ण होने से प्रसन्न हुए अर्जुन श्रीकृष्ण सहित प्रमुख दशार्हवंशी यादवों से घिरे हुए पुनः युधिष्ठिर के पास आये।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि तृतीयोऽध्यायः।।३।।**

# चतुर्थोऽध्यायः

## शल्य का दुर्योधन के सत्कार से प्रसन्न होकर उसे वर और युधिष्ठिर से मिलकर उन्हें आश्वासन देना

वैशम्पायन उवाच

**शल्यः श्रुत्वा तु दूतानां सैन्येन महता वृतः।**
**अभ्ययात् पाण्डवान् राजन् सह पुत्रैर्महारथैः।।१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! पाण्डवों के दूतों द्वारा उनका सन्देश सुनकर राजा शल्य अपने महारथी पुत्रोंसहित विशाल सेना लेकर पाण्डवों के पास चले।

**ततो दुर्योधनः श्रुत्वा महात्मानं महारथम्।**
**उपायान्तमभिद्रुत्य स्वयमानर्च भारत।।२।।**

भरतनन्दन! तब दुर्योधन ने महारथी तथा

महामना राजा शल्य का आगमन सुनकर स्वयं आगे बढ़कर [मार्ग में ही] उनका आदर-सत्कार करना आरम्भ कर दिया।

**कारयामास पूजार्थं तस्य दुर्योधनः सभाः।**
**तत्र वस्त्राणि माल्यानि भक्ष्यं पेयं च सत्कृतम् ॥३॥**

दुर्योधन ने राजा शल्य के स्वागत-सत्कार के लिए [मार्ग में] बहुत-से सभाभवन बनवाए। उनमें अनेक प्रकार के वस्त्र, मालाएँ, खाने-पीने की वस्तुएँ तथा सत्कार का अन्य सामान रखावाया।

**स ताः सभाः समासाद्य पूज्यमानो यथामरः।**
**दुर्योधनस्य सचिवैर्देशे देशे समन्ततः ॥४॥**

मार्ग में विभिन्न स्थानों में बने हुए उन सभा-भवनों में पहुँचकर राजा शल्य दुर्योधन के मन्त्रियों द्वारा देवताओं की भाँति पूजित होते थे।

**आजगाम सभामन्यां देवावसथवर्चसाम्।**
**स तत्र विषयैर्युक्तः कल्याणैरतिमानुषैः ॥५॥**

यात्रा करते हुए शल्य एक दिन एक अन्य सभा-भवन में पहुँचे, जो देवमन्दिर के समान प्रकाशित था। वहाँ उन्हें अलौकिक कल्याणमय भोग प्राप्त हुए।

**मेनेऽभ्यधिकमात्मानमवमेने पुरन्दरम्।**
**पप्रच्छ स ततः प्रेष्यान् प्रहृष्टः क्षत्रियर्षभः ॥६॥**

उस समय उस क्षत्रियशिरोमणि भूपाल ने अपने आपको सबसे अधिक सौभाग्यशाली समझा। उन्हें देवराज इन्द्र भी अपने से तुच्छ प्रतीत हुए। उस समय अति प्रसन्न होकर उन्होंने सेवकों से पूछा—

**युधिष्ठिरस्य पुरुषाः केऽत्र चक्रुः सभा इमाः।**
**आनीयन्तां सभाकाराः प्रदेयार्हा हि मे मताः ॥७॥**

"युधिष्ठिर के किन सेवकों ने ये सभा-भवन बनवाये हैं? उन सबको बुलवाओ। मैं उन्हें पुरस्कार देने योग्य समझता हूँ।"

**सम्प्रहृष्टो यदा शल्यो दिदित्सुरपि जीवितम्।**
**गूढो दुर्योधनस्तत्र दर्शयामास मातुलम् ॥८॥**

हर्ष में भरे हुए राजा शल्य जब [अपने प्रति किये गये उपकार के बदले] प्राण तक देने के लिए तैयार हो गये, तब गुप्तरूप से वहीं छिपा हुआ दुर्योधन मामा शल्य के सामने गया।

**तं दृष्ट्वा मद्रराजश्च ज्ञात्वा यत्नं च तस्य तम्।**
**परिष्वज्याब्रवीत् प्रीत इष्टोऽर्थो गृह्यतामिति ॥९॥**

उसे देखकर और यह जानकर कि उसने ही यह सारी व्यवस्था की है, मद्रराज ने प्रसन्नतापूर्वक दुर्योधन को हृदय से लगा लिया और कहा—"तुम अपनी अभीष्ट वस्तु मुझसे माँग लो।"

दुर्योधन उवाच

**सत्यवाग् भव कल्याण वरो वै मम दीयताम्।**
**सर्वसेनाप्रणेता मे भवान् भवितुमर्हति ॥१०॥**

**दुर्योधन बोला**—कल्याणस्वरूप महानुभाव! आपकी बात सत्य हो। आप मुझे निश्चय ही वर प्रदान कीजिए। मैं चाहता हूँ कि आप मेरी सम्पूर्ण सेना के अधिनायक हो जाएँ।

वैशम्पायन उवाच

**कृतमित्यब्रवीच्छल्यः किमन्यत् क्रियतामिति।**
**कृतमित्येव गान्धारिः प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥११॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे राजन्! उस समय शल्य ने दुर्योधन से कहा—"तुम्हारी यह प्रार्थना तो स्वीकार हो गई, अब और कौन-सा कार्य करूँ?" यह सुनकर गान्धारीपुत्र दुर्योधन ने बार-बार यही कहा कि मेरा तो सब कार्य आपने सम्पन्न कर दिया।

शल्य उवाच

**गच्छ दुर्योधन पुरं स्वकमेव नरर्षभ।**
**अहं गमिष्ये द्रष्टुं वै युधिष्ठिरमरिन्दमम् ॥१२॥**

**शल्य बोले**—नरश्रेष्ठ दुर्योधन! अब तुम अपने नगर को लौट जाओ। मैं शत्रुदमन युधिष्ठिर से मिलने जाऊँगा।

**दृष्ट्वा युधिष्ठिरं राजन् क्षिप्रमेष्ये नराधिप।**
**अवश्यं चापि द्रष्टव्यः पाण्डवः पुरुषर्षभः ॥१३॥**

राजन्! नरेश्वर! मैं युधिष्ठिर से मिलकर शीघ्र ही लौट आऊँगा। पाण्डुपुत्र नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर से मिलना भी अत्यन्त आवश्यक है।

दुर्योधन उवाच

**क्षिप्रमागम्यतां राजन् पाण्डवं वीक्ष्य पार्थिव।**
**त्वय्याधीनाः स्म राजेन्द्र वरदानं स्मरस्व नः ॥१४॥**

**दुर्योधन ने कहा**—राजन्! पृथिवीपते! पाण्डु-नन्दन युधिष्ठिर से मिलकर आप शीघ्र लौट आइए।

हे राजेन्द्र ! हम आपके ही अधीन हैं। आपने हमें जो वरदान दिया है, उसे स्मरण रखिएगा।

वैशम्पायन उवाच

**स तथा शल्यमामन्त्र्य पुनरायात् स्वकं पुरम्।**
**शल्यो जगाम कौन्तेयानाख्यातुं कर्म तस्य तत् ॥१५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—इस प्रकार शल्य से आज्ञा लेकर दुर्योधन अपने नगर को लौट गया और शल्य कुन्तीपुत्रों से दुर्योधन की वह करतूत सुनाने के लिए युधिष्ठिर के पास गये।

**उपप्लव्यं स गत्वा तु स्कन्धावारं प्रविश्य च।**
**पाण्डवानथ तान् सर्वान् शल्यस्तत्र ददर्श ह ॥१६॥**

विराटनगर के उपप्लव्य नामक प्रदेश में जाकर वे पाण्डवों की छावनी में पहुँचे तथा वहीं उन सब पाण्डवों से मिले।

**आसने चोपविष्टस्तु शल्यः पार्थमुवाच ह।**
**कुशलं राजशार्दूल कच्चित् ते कुरुनन्दन ॥१७॥**

आसन पर विराजमान होने के पश्चात् शल्य युधिष्ठिर से बोले—"नृपश्रेष्ठ कुरुनन्दन ! तुम कुशल-पूर्वक तो हो न ?

**अरण्यवासाद् दिष्टयासि विमुक्तो जयतां वर।**
**सुदुष्करं कृतं राजन् निर्जने वसता त्वया।**
**भ्रातृभिः सह राजेन्द्र कृष्णया चानया सह ॥१८॥**

"विजयी वीरों में श्रेष्ठ नरेश ! यह महान् सौभाग्य की बात है कि तुम वनवास के कष्ट से छुटकारा पा गये। राजन् ! तुमने अपने भाइयों तथा इस द्रुपदकुमारी कृष्णा के साथ निर्जन वन में निवास करके अत्यन्त दुष्कर कार्य किया है।

**अज्ञातवासं घोरं च वसता दुष्करं कृतम्।**
**दुःखमेव कुतः सौख्यं भ्रष्टराज्यस्य भारत ॥१९॥**

"हे भारत ! भयंकर अज्ञातवास करके तुम लोगों ने और भी दुष्कर कार्य किया है। जो अपने राज्य से वञ्चित हो गया हो, उसे तो कष्ट ही उठाना पड़ता है, सुख कहाँ मिल सकता है ?

**दुःखस्यैतस्य महतो धार्तराष्ट्रकृतस्य वै।**
**अवाप्स्यसि सुखं राजन् हत्वा शत्रून् परन्तप ॥२०॥**

"शत्रुसंतापक नरेश ! दुर्योधन द्वारा दिये गये इस महान् दुःख के अन्त में अब तुम शत्रुओं को मारकर सुख के भागी होओगे।"

**ततोऽस्याकथयद् राजा दुर्योधनसमागमम्।**
**तच्च शुश्रूषितं सर्वं वरदानं च भारत ॥२१॥**

भारत ! इस वार्तालाप के पश्चात् राजा शल्य ने दुर्योधन के मिलने, सेवा-सत्कार करने और उसे अपने वरदान देने की सारी बातें कह सुनाईं।

युधिष्ठिर उवाच

**सुकृतं ते कृतं राजन् प्रहृष्टेनान्तरात्मना।**
**दुर्योधनस्य यद् वीर त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ॥२२॥**

**युधिष्ठिर बोले**—वीर महाराज ! आपने प्रसन्न-चित्त होकर दुर्योधन को उसकी सहायता करने का जो वचन दिया है, वह अच्छा ही किया।

**एकं त्विच्छामि भद्रं ते क्रियमाणं महीपते।**
**राजन्नकर्तव्यमपि कर्तुमर्हसि सत्तम ॥२३॥**

परन्तु पृथिवीपते ! आपका कल्याण हो। मैं आपके द्वारा अपना भी एक कार्य कराना चाहता हूँ। साधुशिरोमणे ! वह न करने योग्य होने पर भी आपको अवश्य करना चाहिए।

**भवानिह च सारथ्ये वासुदेवसमो युधि।**
**कर्णार्जुनाभ्यां सम्प्राप्ते द्वैरथे राजसत्तम ॥२४॥**
**कर्णस्य भवता कार्यं सारथ्यं नात्र संशयः।**
**तत्र तेजोवधः कार्यः कर्णस्यार्जुनसंस्तवः ॥२५॥**

नृपशिरोमणे ! आप पृथिवी पर युद्ध में सारथ्य-कर्म में श्रीकृष्ण के समान माने गये हैं। जब कर्ण और अर्जुन के द्वैरथयुद्ध का अवसर प्राप्त होगा, उस समय आपको ही कर्ण के सारथि का काम करना पड़ेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। उस समय आप अर्जुन की प्रशंसा करके कर्ण के तेज और उत्साह का नाश करें [यही मेरी विनय है]।

शल्य उवाच

**अहं तस्य भविष्यामि संग्रामे सारथिर्ध्रुवम्।**
**वासुदेवेन हि समं नित्यं मां स हि मन्यते ॥२६॥**

**शल्य बोले**—पाण्डुनन्दन ! यह निश्चित है कि युद्ध में मैं कर्ण का सारथि होऊँगा। स्वयं कर्ण भी सदा मुझे सारथि-कर्म में श्रीकृष्ण के समान समझता है।

**तस्याहं कुरुशार्दूल प्रतीपमहितं वचः ।**
**ध्रुवं संकथयिष्यामि योद्धुकामस्य संयुगे ॥२७॥**
**यथा स हृतदर्पश्च हृततेजाश्च पाण्डव ।**
**भविष्यति सुखं हन्तुं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥२८॥**

कुरुश्रेष्ठ ! जब कर्ण युद्धभूमि में अर्जुन के साथ युद्ध की इच्छा करेगा, उस समय मैं निश्चय ही उसके प्रतिकूल अहितकर वचन बोलूँगा, जिससे उसका अभिमान और तेज नष्ट हो जाएगा तथा वह युद्ध में सुखपूर्वक मारा जा सकेगा। पाण्डुनन्दन ! यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।

**एवमेतत् करिष्यामि यथा मां सम्प्रभाषसे ।**
**यच्चान्यदपि शक्ष्यामि तत् करिष्यामि ते प्रियम् ॥२९॥**

राजन्, तुम मुझसे जैसा कह रहे हो, मैं ऐसा ही करूँगा। इसके सिवा और भी जो कुछ मुझसे हो सकेगा, तुम्हारा वह प्रिय कार्य अवश्य करूँगा।

वैशम्पायन उवाच

**ततस्त्वामन्त्र्य कौन्तेयाञ्छल्यो मद्राधिपस्तदा ।**
**जगाम सबलः श्रीमान् दुर्योधनमरिन्दम ॥३०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—शत्रुदमन जनमेजय ! तत्पश्चात् समस्त कुन्तीकुमारों से विदा लेकर श्रीमान् मद्रराज शल्य अपनी सेना के साथ दुर्योधन के यहाँ चले गये।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥**

# पञ्चमोऽध्यायः

## द्रुपद के पुरोहित का कौरव-सभा में भाषण और भीष्मजी द्वारा उसका समर्थन; कर्ण के आक्षेपपूर्ण वचन, धृतराष्ट्र द्वारा सम्मानपूर्वक दूत की विदाई

वैशम्पायन उवाच

**स च कौरव्यमासाद्य द्रुपदस्य पुरोहितः ।**
**सत्कृतो धृतराष्ट्रेण भीष्मेण विदुरेण च ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! उधर द्रुपद के पुरोहित कौरवनरेश के पास पहुँचकर राजा धृतराष्ट्र, भीष्म तथा विदुरजी द्वारा सम्मानित हुए।

**सर्वं कौशल्यमुक्त्वाऽऽदौ पृष्ट्वा चैवमनामयम् ।**
**सर्वसेनाप्रणेतॄणां मध्ये वाक्यमुवाच ह ॥२॥**

उन्होंने पहले अपने पक्ष के लोगों का सारा कुशल समाचार बताकर धृतराष्ट्र आदि के स्वास्थ्य का समाचार पूछा, तत्पश्चात् समस्त सेनानायकों के समक्ष इस प्रकार कहा—

**धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च सुतावेकस्य विश्रुतौ ।**
**तयोः समानं द्रविणं पैतृकं नात्र संशयः ॥३॥**
**धृतराष्ट्रस्य ये पुत्राः प्राप्तं तैः पैतृकं वसु ।**
**पाण्डुपुत्राः कथं नाम न प्राप्ताः पैतृकं वसु ॥४॥**

"राजा धृतराष्ट्र तथा पाण्डु दोनों एक ही पिता के सुविख्यात पुत्र हैं। पैतृक सम्पत्ति में दोनों का समान अधिकार है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। धृतराष्ट्र के पुत्रों ने तो पैतृक धन प्राप्त कर लिया फिर पाण्डवों को वह पैतृक सम्पत्ति क्यों न प्राप्त हो?

**प्राणान्तिकैरप्युपायैः प्रयतद्भिरनेकशः ।**
**शेषवन्तो न शकिता नेतुं वै यमसादनम् ॥५॥**

"दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रपुत्रों ने प्राणहारी उपायों द्वारा अनेक बार पाण्डवों को नष्ट करने का प्रयत्न किया, परन्तु इनकी आयु शेष थी, अतः वे इन्हें यमलोक न पठा सके।

**ते सर्वे पृष्ठतः कृत्वा तत्सर्वं पूर्वकिल्बिषम् ।**
**सामैव कुरुभिः सार्धमिच्छन्ति कुरुपुङ्गवाः ॥६॥**

"पहले के किये हुए उन सब अत्याचारों को भुलाकर वे कुरुश्रेष्ठ पाण्डव अब भी इन कौरवों के साथ मेल-जोल ही रखना चाहते हैं।

**तेषां तु वृत्तमाज्ञाय वृत्तं दुर्योधनस्य च ।**
**अनुनेतुमिहार्हन्ति धार्तराष्ट्रं सुहृज्जनाः ॥७॥**

"पाण्डवों के आचार-व्यवहार को तथा दुर्योधन के बर्ताव को जानकर [दोनों पक्षों का हित चाहनेवाले] सुहृदों का यह कर्तव्य है कि वे दुर्योधन को समझाएँ।

**न हि ते विग्रहं वीराः कुर्वन्ति कुरुभिः सह।**
**अविनाशेन लोकस्य काङ्क्षन्ते पाण्डवाः स्वकम् ॥८॥**

"वीर पाण्डव कौरवों के साथ युद्ध नहीं कर रहे हैं। वे नरसंहार किये बिना ही अपना राज्य पाना चाहते हैं।

**यश्चापि धार्तराष्ट्रस्य हेतुः स्याद् विग्रहं प्रति।**
**स च हेतुर्न मन्तव्यो बलीयांसस्तथा हि ते ॥९॥**

"दुर्योधन जिस हेतु को सामने रखकर युद्ध के लिए उत्सुक है, उसे यथार्थ नहीं मानना चाहिए, क्योंकि पाण्डव इन कौरवों से कहीं अधिक बलवान् हैं।

**एकादशैताः पृतना एकतश्च समागताः।**
**एकतश्च महाबाहुर्बहुरूपी धनञ्जयः ॥१०॥**

"कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी सेना एक ओर से आएँ और दूसरी ओर अनेक रूपधारी महाबाहु अर्जुन हों, तो वे अकेले ही, उन सबके लिए पर्याप्त हैं।

**बहुलत्वं च सेनानां विक्रमं च किरीटिनः।**
**बुद्धिमत्त्वं च कृष्णस्य बुद्ध्वा युध्येत को नरः ॥११॥**

"युधिष्ठिर की सेनाओं की बहुलता, किरीटधारी अर्जुन के पराक्रम और श्रीकृष्ण की बुद्धिमत्ता को जान लेने पर कौन मनुष्य पाण्डवों के साथ युद्ध कर सकता है?

**ते भवन्तो यथाधर्मं यथासमयमेव च।**
**प्रयच्छन्तु प्रदातव्यं मा वः कालोऽत्यगादयम् ॥१२॥**

"आप लोग अपने धर्म और पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार पाण्डवों को उनका आधा राज्य, जो उन्हें मिलना ही चाहिए, दे दीजिए। कहीं ऐसा न हो कि यह सुअवसर आप लोगों के हाथों से निकल जाए।"

**तस्य तद् वचनं श्रुत्वा प्रज्ञावृद्धो महाद्युतिः।**
**सम्पूज्यैनं यथाकालं भीष्मो वचनमब्रवीत् ॥१३॥**

जनमेजय! पुरोहित का यह कथन सुनकर बुद्धि में बढ़े-चढ़े महातेजस्वी भीष्म ने समय के अनुसार उनका आदर करके इस प्रकार कहा—

भीष्म उवाच

**दिष्टया कुशलिनः सर्वे सह दामोदरेण ते।**
**दिष्टया सहायवन्तश्च दिष्टया धर्मे च ते रताः ॥१४॥**

**भीष्मजी बोले**—ब्रह्मन्! समस्त पाण्डव श्रीकृष्ण के साथ सकुशल हैं, यह सौभाग्य की बात है। उनके बहुत-से सहायक हैं तथा वे धर्म में तत्पर हैं यह और भी सौभाग्य तथा हर्ष का विषय है।

**दिष्टया च सन्धिकामास्ते भ्रातरः कुरुनन्दनाः।**
**दिष्टया न युद्धमनसः पाण्डवाः सह बान्धवैः ॥१५॥**

कुरुकुल को आनन्दित करनेवाले पाँचों पाण्डव सन्धि के इच्छुक हैं, यह सौभाग्य की बात है। वे अपने बन्धु-बान्धवों के साथ युद्ध से विरत हैं, यह भी सौभाग्य का विषय है।

**भवता सत्यमुक्तं तु सर्वमेतन्न संशयः।**
**अतितीक्ष्णं तु ते वाक्यं ब्राह्मण्यादिति मे मतिः ॥१६॥**

आपने जो बातें कही हैं, वे सब सत्य हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है, परन्तु आपकी बातें अत्यन्त तीखी हैं। यह तीक्ष्णता ब्राह्मण-स्वभाववश ही है, ऐसा मुझे प्रतीत होता है।

**असंशयं क्लेशितास्ते वने चेह च पाण्डवाः।**
**प्राप्ताश्च धर्मतः सर्वं पितुर्धनमसंशयम् ॥१७॥**

निःसन्देह पाण्डवों को वन में और यहाँ भी कष्ट उठाना पड़ा है। उन्हें धर्मतः अपनी सारी पैतृक सम्पत्ति पाने का अधिकार प्राप्त हो चुका है, इसमें भी कोई संशय नहीं है।

**किरीटी बलवान् पार्थः कृतास्त्रश्च महारथः।**
**को हि पाण्डुसुतं युद्धे विषहेत धनञ्जयम् ॥१८॥**

कुन्तीपुत्र किरीटधारी महारथी अर्जुन बलवान् तथा अस्त्रविद्या में निपुण हैं। कौन ऐसा वीर है, जो युद्ध में पाण्डुपुत्र अर्जुन का वेग सह सके?

**अपि वज्रधरः साक्षात् किमुतान्ये धनुर्भृतः।**
**त्रयाणामपि लोकानां समर्थ इति मे मतिः ॥१९॥**

साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी युद्ध में उनका सामना नहीं कर सकते, फिर दूसरे धनुर्धरों की तो बात ही क्या है? मेरा तो ऐसा विश्वास है कि अर्जुन तीनों लोकों का सामना करने में समर्थ हैं।

वैशम्पायन उवाच

**भीष्मे ब्रुवति तद् वाक्यं धृष्टमाक्षिप्य मन्युना।**
**दुर्योधनं समालोक्य कर्णो वचनमब्रवीत् ॥२०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! भीष्म

इस प्रकार कह ही रहे थे कि कर्ण ने दुर्योधन की ओर देखकर क्रुद्ध हो धृष्टतापूर्वक उनके कथन की अवहेलना करते हुए यह बात कही—

कर्ण उवाच

**न तत्राविदितं ब्रह्मँल्लोके भूतेन केनचित् ।**
**पुनरुक्तेन किं तेन भाषितेन पुनः पुनः ॥२१॥**

**कर्ण बोला**—हे ब्रह्मन् ! इस संसार में जो घटना बीत चुकी है, वह किसी को अज्ञात नहीं है, उसको दोहराने से अथवा बारम्बार उसपर भाषण देने से क्या लाभ है ?

**दुर्योधनार्थे शकुनिर्द्यूते निर्जितवान् पुरा ।**
**समयेन गतोऽरण्यं पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ॥२२॥**

पहले की बात है, शकुनि ने दुर्योधन के लिए पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर को जुए में हराया था और वे उस जुए की शर्त के अनुसार वन में गये थे ।

**स तं समयमाश्रित्य राज्यं नेच्छति पैतृकम् ।**
**बलमाश्रित्य मत्स्यानां पाञ्चालानां च मूर्खवत् ॥२३॥**

युधिष्ठिर उस शर्त का पालन करके अपना पैतृक राज्य चाहते हों, ऐसी बात नहीं है । वे तो मूर्खों की भाँति मत्स्य और पाञ्चाल देश की सेना के भरोसे राज्य लेना चाहते हैं ।

**दुर्योधनो भयाद् विद्वन् न दद्यात् पादमन्ततः ।**
**धर्मतस्तु महीं कृत्स्नां प्रदद्याच्छत्रवेऽपि च ॥२४॥**

हे विद्वन् ! दुर्योधन किसी के भय से अपने राज्य का आधा कौन कहे, चौथाई भाग भी नहीं देंगे, हाँ, धर्मानुसार वे शत्रु को सम्पूर्ण पृथिवी तक भी दे सकते हैं ।

**यदि कांक्षन्ति ते राज्यं पितृपैतामहं पुनः ।**
**यथाप्रतिज्ञं कालं तं चरन्तु वनमाश्रिताः ॥२५॥**

यदि पाण्डव अपने बाप-दादों का राज्य लेना चाहते हैं, तो वे पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार उतने समय तक पुनः वन में निवास करें ।

**ततो दुर्योधनस्याङ्के वर्तन्तामकुतोभयाः ।**
**अधार्मिकीं तु मा बुद्धिं मौर्ख्यात्कुर्वन्तु केवलात् ॥२६॥**

तत्पश्चात् वे दुर्योधन के आश्रय में निर्भय होकर रह सकते हैं । केवल मूर्खतावश वे अपनी बुद्धि को अधर्मपरायण न बनाएँ ।

**अथ ते धर्ममुत्सृज्य युद्धमिच्छन्ति पाण्डवाः ।**
**आसाद्येमान् कुरुश्रेष्ठान् स्मरिष्यन्ति वचो मम ॥२८**

यदि पाण्डव धर्म को तिलाञ्जलि देकर युद्ध ही करना चाहते हैं तो इन कुरुश्रेष्ठ वीरों से भिड़ने पर वे मेरी बात याद करेंगे ।

भीष्म उवाच

**किं नु राधेय वाचा ते कर्म तत् स्मर्तुमर्हसि ।**
**एक एव यदा पार्थः षड्रथाञ्जितवान् युधि ॥२८॥**

**भीष्मजी बोले**—राधानन्दन ! इस प्रकार बढ़-बढ़कर बातें बनाने का क्या लाभ है ? तू पार्थ के उस पराक्रम को स्मरण कर जब विराटनगर के युद्ध में उसने अकेले ही सम्पूर्ण सेनासहित छह महारथियों को जीत लिया था ।

**बहुशो जीयमानस्य कर्म दृष्टं तदैव ते ।**
**न चेदेवं करिष्यामो यदयं ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।**
**ध्रुवं युधि हतास्तेन भक्षयिष्याम पांसुकान् ॥२६॥**

तेरा पराक्रम तो उसी समय देख लिया गया था, जब अनेक बार अर्जुन के सामने जाकर तुझे पराजित होना पड़ा । इस ब्राह्मण देवता ने जो कुछ कहा है, यदि हम लोग तदनुसार कार्य नहीं करेंगे, तो यह निश्चित है कि युद्ध में पाण्डुनन्दन अर्जुन के द्वारा आहत होकर धूल फाँकनी पड़ेगी ।

वैशम्पायन उवाच

**धृतराष्ट्रस्ततो भीष्ममनुमान्य प्रसाद्य च ।**
**अवभर्त्स्य च राधेयमिदं वचनमब्रवीत् ॥३०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तत्पश्चात् धृतराष्ट्र ने कर्ण को फटकार कर भीष्मजी का सम्मान किया तथा उन्हें प्रसन्न करके इस प्रकार कहा—

**अस्मद्धितं वाक्यमिदं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ।**
**पाण्डवानां हितं चैव सर्वस्य जगतस्तथा ॥३१॥**

"शान्तनुनन्दन भीष्म जी ने हमारे लिए यह हितकर बात कही है । इसी में पाण्डवों का तथा सारे संसार का भी भला है ।

**चिन्तयित्वा तु पार्थेभ्यः प्रेषयिष्यामि संजयम् ।**
**स भवान् प्रतियात्वद्य पाण्डवानेव मा चिरम् ॥३२॥**

"ब्रह्मन् ! मैं कुछ सोच-विचार कर संजय को

पाण्डवों के पास भेजूँगा। आप भी पाण्डवों के पास पधारें, विलम्ब न करें।"

**स तं सत्कृत्य कौरव्यः प्रेषयामास पाण्डवान्।**
**सभामध्ये समाहूय संजयं वाक्यमब्रवीत्॥३३॥**

राजा धृतराष्ट्र ने उस ब्राह्मण का आदर-सत्कार करके उसे पाण्डवों के पास वापस भेजा तथा संजय को सभा में बुलाकर यह बात कही।

**इति महाभारते उद्योग पर्वणि पञ्चमोऽध्यायः॥५॥**

# षष्ठोऽध्यायः

## संजय का दौत्य कर्म

धृतराष्ट्र उवाच

**नाहं तथा ह्यर्जुनाद् वासुदेवाद्**
**भीमाद् वाहं यमयोर्वा बिभेमि।**
**यथा राज्ञः क्रोधदीप्तस्य सूत**
**मन्योरहं भीततरः सदैव॥१॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—हे संजय! मैं अर्जुन, श्रीकृष्ण, भीमसेन, नकुल-सहदेव—किसी से भी उतना नहीं डरता जितना कि तमतमाये हुए राजा युधिष्ठिर के कोप से। उनके रोष से मैं सदा अत्यन्त भयभीत रहता हूँ।

**स गच्छ शीघ्रं प्रहितो रथेन**
**पाञ्चालराजस्य चमूनिवेशम्।**
**अजातशत्रुं कुशलं स्म पृच्छेः**
**पुनः पुनः प्रीतियुक्तं वदेस्त्वम्॥२॥**

मेरे द्वारा प्रेषित तुम रथ पर आरूढ़ होकर शीघ्र ही पाञ्चालराज द्रुपद की छावनी में जाकर वहाँ अत्यन्त प्रेमपूर्वक अजातशत्रु युधिष्ठिर से बातचीत करना तथा बारम्बार उनका कुशल-मङ्गल पूछना।

**समानीतान् पाण्डवान् सृंजयाँश्च**
**जनार्दनं युयुधानं विराटम्।**
**अनामयं मद्वचनेन पृच्छेः**
**सर्वांस्तथा द्रौपदेयाँश्च पञ्च॥३॥**

**यद् यत् तत्र प्राप्तकालं परेभ्य-**
**स्त्वं मन्येथा भारतानां हितं च।**
**तद् भाषेथाः संजय राजमध्ये**
**न मूर्च्छयेद् यन्न च युद्धहेतुः॥४॥**

सञ्जय! तुम वहाँ एकत्र हुए पाण्डवों तथा सृञ्जयवंशी क्षत्रियों से, श्रीकृष्ण, सात्यकि, राजा विराट् तथा द्रौपदी के पाँचों पुत्रों से भी मेरी ओर से स्वास्थ्य का समाचार पूछना। इसके सिवा जैसा अवसर हो तथा जिसमें तुम्हें भरतवंशियों का हित दिखाई दे, वैसी बातें पाण्डवपक्ष के लोगों से करना। राजाओं के मध्य में ऐसा कोई वचन न कहना जो उनके क्रोध को बढ़ाए तथा युद्ध का कारण बने।

वैशम्पायन उवाच

**राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धृतराष्ट्रस्य संजयः।**
**उपप्लव्यं ययौ द्रष्टुं पाण्डवानमितौजसः॥५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! राजा धृतराष्ट्र की बात सुनकर संजय अमित तेजस्वी पाण्डवों से मिलने के लिए उपप्लव्य गया।

**स तु राजानमासाद्य कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।**
**अभिवाद्य ततः पूर्वं सूतपुत्रोऽभ्यभाषत॥६॥**

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर के पास पहुँचकर सूतपुत्र संजय ने उन्हें प्रणाम किया फिर उनसे वार्तालाप आरम्भ किया—

**अनामयं पृच्छति त्वाऽऽम्बिकेयो**
**वृद्धो नृपो धृतराष्ट्रो मनीषी।**
**कच्चिद् भीमः कुशली पाण्डवाग्र्यो**
**धनञ्जयस्तौ च माद्रीतनूजौ॥७॥**

"वृद्ध तथा बुद्धिमान् अम्बिकानन्दन महाराज धृतराष्ट्र ने आपका कुशल-मङ्गल पूछा है। भीमसेन, पाण्डवप्रवर अर्जुन तथा दोनों माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव कुशल से तो हैं न?"

युधिष्ठिर उवाच

**गावल्गणे संजय स्वागतं ते**
**प्रीयामहे ते वयं दर्शनेन।**

**अनामयं प्रतिजाने तवाहं**
**सहानुजैः कुशली चास्मि विद्वन् ॥८॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हे गवल्गणकुमार संजय ! तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारे दर्शन से हमें अति प्रसन्नता हुई है। विद्वन् ! मैं अपने भाइयोंसहित कुशल हूँ तथा तुम्हें अपने आरोग्य की सूचना दे रहा हूँ।

**पितामहो नः स्थविरो मनस्वी**
**महाप्राज्ञः सर्वधर्मोपपन्नः ।**
**स कौरव्यः कुशली तात भीष्मो**
**यथापूर्वं वृत्तिरस्त्यस्य कच्चित् ॥९॥**

तात ! मनस्वी, परम ज्ञानी तथा समस्त धर्मों के ज्ञान से सम्पन्न हमारे बूढ़े पितामह कुरुवंशी भीष्मजी तो कुशलपूर्वक हैं न ? हम लोगों पर उनका स्नेहभाव पूर्ववत् बना हुआ है न ?

**कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो**
**वैचित्रवीर्यः कुशली महात्मा ।**
**द्रोणः सपुत्रश्च कृपश्च विप्रो**
**महेष्वासाः कच्चिदेतेऽप्यरोगाः ॥१०॥**

संजय ! क्या अपने पुत्रोंसहित विचित्रवीर्यनन्दन महामना राजा धृतराष्ट्र सकुशल हैं ? पुत्रसहित द्रोणाचार्य तथा विप्रश्रेष्ठ कृपाचार्य—ये महाधनुर्धर वीर स्वस्थ तो हैं न ?

सञ्जय उवाच

**यथाऽऽत्थ मे पाण्डव तत् तथैव**
**कुरून् कुरुश्रेष्ठ जनं च पृच्छसि ।**
**अनामयास्तात मनस्विनस्ते**
**कुरुश्रेष्ठान् पृच्छसि पार्थ यांस्त्वम् ॥११॥**

**संजय बोला**—कुरुश्रेष्ठ पाण्डवनन्दन ! आपने मुझसे जो कुछ कहा है, वह यथार्थ है। कौरवों तथा अन्य लोगों के विषयों में आप जो पूछ रहे हैं, वह बताता हूँ, सुनिए। तात ! कुन्तीनन्दन ! आपने जिन श्रेष्ठ कुरुवंशियों के कुशल-समाचार पूछे हैं, वे सभी मनस्वी पुरुष स्वस्थ एवं सानन्द हैं।

**यन्माब्रवीद् धृतराष्ट्रो निशाया-**
**मजातशत्रो वचनं पिता ते ।**
**सहामात्यः सहपुत्रश्च राजन्**
**समेत्य तां वाचमिमां निबोध ॥१२॥**

महाराज युधिष्ठिर ! आपके ताऊ धृतराष्ट्र ने रात्रि में मुझे आप लोगों के लिए जो सन्देश दिया था, उसे आप मन्त्रियों और पुत्रोंसहित मेरे इन शब्दों में सुनिए—

**शमं राजा धृतराष्ट्रोऽभिनन्द-**
**न्नयोजयत् त्वरमाणो रथं मे ।**
**सभ्रातृपुत्रस्वजनस्य राज्ञ-**
**स्तद् रोचतां पाण्डवानां शमोऽस्तु ॥१३॥**

राजा धृतराष्ट्र शान्ति का आदर करते हैं [युद्ध नहीं चाहते]। उन्होंने अति शीघ्रतापूर्वक मेरे लिए रथ तैयार कराया तथा मुझे यहाँ भेजा। मैं चाहता हूँ कि भाई, पुत्र तथा स्वजनोंसहित राजा धृतराष्ट्र का यह शान्ति-सन्देश पाण्डवों को रुचिकर प्रतीत हो एवं दोनों पक्षों में सन्धि हो जाए।

**सर्वक्षयो दृश्यते यत्र कृत्स्नः**
**पापोदयो निरयोऽभावसंस्थः ।**
**कस्तत् कुर्याज्जातु कर्म प्रजानन्**
**पराजयो यत्र समो जयश्च ॥१४॥**

जिसमें सबका विनाश दिखाई देता है, जिससे पाप का उदय होता है, जो नरक=दुःख का हेतु है, जिसके अन्त में अभाव ही हाथ लगता है तथा जिसमें जय एवं पराजय दोनों समान हैं, उस युद्ध जैसे क्रूर कर्म के लिए कौन समझदार मनुष्य कभी उद्योग करेगा ?

**ते वै धन्या यैः कृतं ज्ञातिकार्यं**
**ते वै पुत्राः सुहृदो बान्धवाश्च ।**
**उपक्रुष्टं जीवितं संत्यजेयु-**
**र्यतः कुरूणां नियतो वै भवः स्यात् ॥१५॥**

जिन्होंने जाति और कुटुम्ब के हितकर कार्यों का सम्पादन किया है, वे ही धन्य हैं। वे ही पुत्र, मित्र तथा बान्धव कहलाने के योग्य हैं। कौरवों को चाहिए कि वे निन्दित जीवन का परित्याग कर दें, जिससे कुरुकुल का उत्कर्ष=उन्नति अवश्यम्भावी हो।

**ते चेत् कुरूननुशिष्याथ पार्था**
**निर्णीय सर्वान् द्विषतो निगृह्य ।**

**समं वस्तज्जीवितं मृत्युना स्याद्**
**यज्जीवध्वं ज्ञातिवधे न साधु ॥१६॥**

कुन्तीकुमारो ! यदि आप लोग समस्त कौरवों को अपना शत्रु मानकर, उन्हें दण्ड देंगे, कैद करेंगे, अथवा उनका वध कर डालेंगे तो उस अवस्था में आपका वह जीवन आपके द्वारा कुटुम्बी जनों के वध के कारण उत्तम नहीं समझा जाएगा। यह निन्दित जीवन तो मृत्यु के समान ही होगा।

**सोऽहं जये चैव पराजये च**
**निःश्रेयसं नाधिगच्छामि किञ्चित्।**
**कथं हि नीचा इव दौष्कुलेया**
**निर्धर्मार्थं कर्म कुर्युश्च पार्थाः ॥१७॥**

मैं तो इस युद्ध में चाहे किसी भी पक्ष की जय हो या पराजय, कोई कल्याण की बात नहीं देखता हूँ। भला कुन्ती के पुत्र नीच कुल में उत्पन्न हुए दूसरे अधम मनुष्यों के समान ऐसा निन्दित कर्म कैसे कर सकते हैं जिससे न तो धर्म की सिद्धि होनेवाली है और न अर्थ की ही।

युधिष्ठिर उवाच

**कां नु वाचं संजय मे शृणोषि**
**युद्धैषिणीं येन युद्धाद् बिभेषि।**
**अयुद्धं वै तात युद्धाद् गरीयः**
**कस्तल्लब्ध्वा जातु युध्येत सूत ॥१८॥**

**युधिष्ठिर बोले**——संजय ! तुमने मेरी ऐसी कौन-सी बात सुनी है जिससे मेरी युद्ध करने की इच्छा प्रकट होती है और जिसके कारण तुम युद्ध से भयभीत हो रहे हो ? तात ! युद्ध करने की अपेक्षा युद्ध न करना ही श्रेष्ठ है। सूत ! युद्ध न करने का अवसर पाकर भी कौन मनुष्य कभी युद्ध में प्रवृत्त होगा ?

**आशंसते वै धृतराष्ट्रः सपुत्रो**
**महाराज्यमसपत्नं पृथिव्याम्।**
**तस्मिञ्छमः केवलं नोपलभ्यः**
**सर्वं स्वकं मद्गते मन्यतेऽर्थम् ॥१६॥**

धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंसहित भूमण्डल का निष्कण्टक साम्राज्य प्राप्त करने की आशा लगाये बैठे हैं। ऐसे लोभी नरेश के साथ सन्धि ही बनी रहेगी, युद्ध नहीं होगा यह सम्भव नहीं जान पड़ता, क्योंकि हम लोगों के वन चले जाने पर वे हमारे सम्पूर्ण धन को अपना ही मानने लगे हैं।

**इन्द्रोऽप्येतन्नोत्सहेताभिहर्त-**
**मैश्वर्यं नो जीवति भीमसेने।**
**धनञ्जये नकुले चैव सूत**
**वीरे तथा सहदेवे सहिष्णौ ॥२०॥**

तात संजय ! जबतक भीमसेन, अर्जुन, नकुल तथा सहनशील वीर सहदेव जीवित हैं, तबतक इन्द्र भी हमारे ऐश्वर्य का अपहरण नहीं कर सकता।

**अद्यापि तत् तत्र तथैव वर्तताम्**
**शान्तिं गमिष्यामि यथा त्वमात्थ।**
**इन्द्रप्रस्थे भवतु ममैव राज्यं**
**सुयोधनो यच्छतु भारताग्र्यः ॥२१॥**

अब भी सब कुछ पहले के समान ही हो सकता है। जैसा तुम कह रहे हो तदनुसार मैं शान्ति धारण कर लूंगा, परन्तु इन्द्रप्रस्थ में पूर्ववत् मेरा ही राज्य रहे तथा भरतवंश-शिरोमणि सुयोधन मेरा वह राज्य मुझे वापस लौटा दे।

संजय उवाच

**धर्मे नित्या पाण्डव ते विचेष्टा**
**लोके श्रुता दृश्यते चापि पार्थ।**
**महास्रावं जीवितं चाप्यनित्यं**
**सम्पश्य त्वं पाण्डव मा व्यतीयात् ॥२२॥**

**संजय बोला**—पाण्डुनन्दन ! आपकी प्रत्येक चेष्टा सदा धर्मानुकूल ही होती है। पार्थ ! आपकी वह धर्मयुक्त चेष्टा लोक में तो प्रसिद्ध है ही, देखने में भी आ रही है। यद्यपि यह जीवन अनित्य है, तथापि इससे महान् सुयश की प्राप्ति हो सकती है। पाण्डव! आप जीवन की उस क्षणभंगुरता पर विचार करें तथा अपनी कीर्ति को नष्ट न होने दें।

**न चेद् भागं कुरवोऽन्यत्र युद्धात्**
**प्रयच्छेरंस्तुभ्यमजातशत्रो।**
**भैक्षचर्यामन्धकवृष्णिराज्ये**
**श्रेयो मन्ये न तु युद्धेन राज्यम् ॥२३॥**

अजातशत्रो ! यदि कौरव युद्ध के बिना आपको राज्य का भाग न दें, तो भी अन्धक और वृष्णिवंशी

क्षत्रियों के राज्य में भीख माँगकर जीवन का निर्वाह कर लेना मैं आपके लिए उत्तम समझता हूँ परन्तु युद्ध करके राज्य लेना अच्छा नहीं समझता।

**अल्पकालं जीवितं यन्मनुष्ये**
**महास्रावं नित्यदुःखं चलं च।**
**भूयश्च तद् यशसो नानुरूपं**
**तस्मात् पापं पाण्डव मा कृथास्त्वम् ॥२४॥**

मनुष्य का जीवन बहुत थोड़े समय तक रहनेवाला है। इसको क्षीण करनेवाले महान् दोष को प्राप्त होते रहते हैं। यह सदा दुःखमय और चञ्चल है, अतः पाण्डुपुत्र ! आप युद्धरूपी पाप मत कीजिए। वह आपके सुयश के अनुरूप नहीं है।

**धर्मं कृत्वा कर्मणां तात मुख्यं**
**महाप्रतापः सवितेव भाति।□**
**हीनो हि धर्मेण महीमपीमां**
**लब्ध्वा नरः सीदति पापबुद्धिः ॥२५॥**

तात ! धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों में धर्म को ही प्रधान मानकर तदनुसार चलनेवाला मनुष्य महाप्रतापी होकर सूर्य के समान चमक उठता है। परन्तु जो धर्म से हीन है, जिसकी बुद्धि पाप में ही लगी हुई है, वह मनुष्य इस सारी पृथिवी को पाकर भी कष्ट ही भोगता रहता है।

**तच्चेदेवं द्वेषरूपेण पार्थाः**
**करिष्यध्वं कर्म पापं चिराय।**
**निवसध्वं वर्षपूगान् वनेषु**
**दुःखं वासं पाण्डवा धर्म एव ॥२६॥**

कुन्तीकुमारो ! यदि आप लोगों को राज्य के लिए चिरस्थायी विद्वेष के रूप में युद्धरूप पापकर्म ही करना है, तब मैं यही कहूँगा कि आप अनेक वर्षों तक दुःखमय वनवास का ही कष्ट भोगते रहें। पाण्डवो ! वह वनवास ही आपके लिए धर्मरूप होगा।

**नाधर्मे ते धीयते पार्थ बुद्धि-**
**र्न संरम्भात् कर्म पापं चकर्थ।**
**अात्थ किं तत् कारणं यस्य हेतोः**
**प्रज्ञाभिन्नं कर्म चिकीर्षसीदम् ॥२७॥**

पार्थ ! आपकी बुद्धि कभी अधर्म में नहीं लगती तथा आपने क्रुद्ध होकर भी कभी कोई पापकर्म नहीं किया है। फिर बताइए, कौन-सा ऐसा कारण है, जिसके लिए अब आप अपनी बुद्धि के विरुद्ध यह युद्ध जैसा पापकर्म करना चाहते हैं ?

**अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगं**
**यशोमुषं पापफलोदयं वा।**
**पेयं सतां यन्न पिबन्त्यसन्तो**
**मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य ॥२८॥**

महाराज ! जो बिना व्याधि के ही उत्पन्न होता है, स्वाद में अत्यन्त कड़वा है, जिसके कारण सिर में दर्द होने लगता है, जो यश का नाशक और पापरूप फल को प्रकट करनेवाला है, जो सज्जन पुरुषों के ही पीने योग्य है, जिसे असाधु पुरुष नहीं पी सकते, उस क्रोध को आप पी लीजिए और शान्त हो जाइए।

**पापानुबन्धं न हि कामयेत**
**क्षमैव ते ज्यायसी नोत भोगाः।**
**भीष्मो हतः शान्तनवो यतः स्यात्**
**द्रोणः सहपुत्रो यदि च हतः स्यात् ॥२९॥**

जो पाप की जड़ है, उस क्रोध की इच्छा तुम जैसा श्रेष्ठ पुरुष नहीं करेगा। आपकी दृष्टि में तो क्षमा ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है; वे भोग नहीं जिनके लिए शान्तनुनन्दन भीष्म तथा पुत्रसहित आचार्य द्रोण की हत्या की जाए।

**शल्यः कृपः सोमदत्तिर्विकर्णो**
**विविंशतिः कर्णसुयोधनौ च।**
**निहत्य चैतान् कीदृशं सुखं स्यात्**
**यद् विन्दसि मामनु ब्रूहि पार्थ ॥३०॥**

पार्थ ! ऐसा कौन-सा सुख हो सकता है जिसे आप कृपाचार्य, शल्य, भूरिश्रवा, विकर्ण, विविंशति, कर्ण तथा दुर्योधन—इस सबको मौत के घाट उतार कर पाना चाहते हैं, वह मुझे बताइए।

**लब्ध्वाऽपि भूमिं खलु सागरान्तां**
**जरां च मृत्युं न हि त्वं प्रजह्याः।**
**प्रियाप्रिये दुःखसुखे च राज-**
**न्नेवं बुद्धस्त्वं न कुरुष्व युद्धम् ॥३१॥**

हे राजन् ! समुद्र-पर्यन्त इस सारी पृथिवी को पाकर भी आप जरा-मृत्यु, प्रिय-अप्रिय तथा दुःख-सुख के द्वन्द्व से नहीं बच सकते। आप इन सब बातों

को अच्छी प्रकार जानते हैं, अतः मेरी प्रार्थना है कि आप युद्ध न करें।

युधिष्ठिर उवाच

**असंशयं संजय सत्यमेतद्**
**धर्मो वरः कर्मणां यत्त्वमात्थ।**
**ज्ञात्वा तु मां संजय गर्हयेस्त्वं**
**धर्मं चराम्येष उताप्यधर्मम् ॥३२॥**

**युधिष्ठिर बोले**—संजय! तुमने जो कहा है कि सब प्रकार के कर्मों में धर्म ही श्रेष्ठ है, वह सर्वथा सत्य है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, परन्तु मैं धर्म कर रहा हूँ या अधर्म, इस बात को पहले अच्छी प्रकार जान लो, फिर मेरी निन्दा करना।

**यदि ह्यहं विसृजन् साम गर्ह्यो**
**नियुध्यमानश्चेज्जह्यां स्वधर्मम्।**
**महायशाः केशवस्तद् ब्रवीतु**
**वासुदेवस्तूभयोरर्थकामः ॥३३॥**

यदि मैं सामनीति अथवा सन्धि का परित्याग करके निन्दा का पात्र बन रहा हूँ अथवा युद्ध के लिए उद्यत होकर अपने धर्म का उल्लंघन करने को हूँ तो महायशस्वी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण अपने विचार प्रकट करें, क्योंकि वे दोनों पक्षों का हित चाहनेवाले हैं।

वासुदेव उवाच

**अविनाशं सञ्जय पाण्डवाना-**
**मिच्छाम्यहं भूतिमेषां प्रियं च।**
**तथा राज्ञो धृतराष्ट्रस्य सूत**
**समाशंसे बहुपुत्रस्य वृद्धिम् ॥३४॥**

**श्रीकृष्ण ने कहा**—सूत सञ्जय! मैं जिस प्रकार पाण्डवों को विनाश से बचाना, उनको ऐश्वर्य दिलाना और उनका प्रिय करना चाहता हूँ, उसी प्रकार अनेक पुत्रों से युक्त राजा धृतराष्ट्र का भी अभ्युदय चाहता हूँ।

**कामो हि मे सञ्जय नित्यमेव**
**नान्यद् ब्रूयां तान् प्रति शाम्यतेति।**
**राज्ञश्च हि प्रियमेतच्छृणोमि**
**मन्ये चैतत् पाण्डवानां समक्षम् ॥३५॥**

सूत! मेरी भी सदा यही अभिलाषा है कि दोनों पक्षों में शान्ति बनी रहे। 'कुन्तीपुत्रो! कौरवों से सन्धि करो, उनके प्रति शान्त बने रहो' इसके अतिरिक्त दूसरी कोई बात मैं पाण्डवों के सामने नहीं कहता हूँ। राजा युधिष्ठिर के मुख से भी मैं ऐसा ही प्रिय वचन सुनता हूँ और स्वयं भी इसी को उचित मानता हूँ।

**न त्वं धर्मं विचरं सञ्जयेह**
**मत्तश्च जानासि युधिष्ठिराच्च।**
**स कस्मात् त्वं जानतां ज्ञानवान् सन्**
**व्यायच्छसे सञ्जय कौरवार्थे ॥३६॥**

सञ्जय! तुम यह भली-भाँति जानते हो कि मुझसे और युधिष्ठिर से धर्म का लोप नहीं हो सकता। तुम ज्ञानियों में भी श्रेष्ठ ज्ञानी हो, फिर भी तुम कौरवों की स्वार्थ-सिद्धि के लिए वाग्जाल क्यों फैला रहे हो?

**उताहो त्वं मन्यसे शाम्यमेव**
**राज्ञां युद्धे वर्तते धर्मतन्त्रम्।**
**अयुद्धे वा वर्तते धर्मतन्त्रं**
**तथैव ते वाचमिमां शृणोमि ॥३७॥**

यदि तुम शान्ति धारण करना ही उचित समझते हो तो बताओ, युद्ध में प्रवृत्त होने से राजाओं के धर्म का ठीक-ठीक पालन होता है अथवा युद्ध छोड़कर भाग जाने से? क्षत्रिय धर्म का विचार करते हुए तुम जो कुछ भी कहोगे, मैं तुम्हारी बात सुनने के लिए तैयार हूँ।

**गृध्येत् यदाऽन्यविभवे नृशंसो**
**विधिप्रकोपाद् बलमाददानः।**
**राज्ञां ततो भवति युद्धमेतत्**
**जातं ततो वर्म शस्त्रं धनुश्च ॥३८॥**

जब कोई क्रूर मनुष्य लोभवश दूसरे की धन-सम्पत्ति को लेने की इच्छा करता है और विधाता के कोप से [पर-हानि] के लिए सैन्य-संग्रह करता है, उस समय राजाओं में युद्ध का अवसर उपस्थित होता है। इस युद्ध के लिए ही कवच, अस्त्र-शस्त्र और धनुष का आविष्कार हुआ है।

**पुण्यं नृपैर्दस्युवधेन लभ्यम्**
**दोषश्च स कुरुभिस्तीव्ररूपः।**

अधार्मिकैर्धर्ममबुध्यमानैः
प्रादुर्भूतः सञ्जय साधु तन्न ॥३९॥

भूपालों को लुटेरों का वध करने से पुण्य की प्राप्ति होती है। सञ्जय! कौरवों में यह लुटेरेपन का दोष तीव्ररूप से प्रकट हो गया है, जो अच्छा नहीं है। वे अधर्म के तो पूरे पण्डित हैं, परन्तु धर्म की बात बिल्कुल नहीं जानते।

तत्र राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो
धर्म्यं हरेत् पाण्डवानामकस्मात्।
नावेक्षन्ते राजधर्मं पुराणं
तदन्वयाः कुरवः सर्व एव ॥४०॥

राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रों के साथ मिलकर सहसा पाण्डवों के धर्मतः प्राप्त पैतृक राज्य को हड़प लेना चाहते हैं। प्राचीन राजधर्म की ओर दृष्टिपात न करते हुए अन्य समस्त कौरव भी उन्हीं का अनुसरण कर रहे हैं।

स्तेनो हरेद् यत्र धनं ह्यदृष्टः
प्रसह्य वा यत्र हरेत दृष्टः।
उभौ गर्ह्यौ भवतः सञ्जयैतौ
किं वै पृथक्त्वं धृतराष्ट्रस्य पुत्रे ॥४१॥

चोर अदृश्य=छिपा रहकर धन चुरा ले जाए अथवा सामने आकर डाका डाले, दोनों ही अवस्थाओं में वे चोर-डाकू निन्दा के ही पात्र होते हैं। सञ्जय! तुम्हीं कहो, धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन और उन चोर-डाकुओं में क्या अन्तर है?

सोऽयं लोभान्मन्यते धर्ममेतं
यमिच्छति क्रोधवशानुगामी।
भागः पुनः पाण्डवानां निविष्ट-
स्तं नः कस्मादाददीरन् परे वै ॥४२॥

दुर्योधन क्रोध के वशीभूत हो उसी के अनुसार चलनेवाला है तथा वह लोभवश राज्य को ले लेना चाहता है। उसे यह धर्म प्रतीत हो रहा है, परन्तु वह तो पाण्डवों का भाग है, जो कौरवों के यहाँ धरोहर के रूप में रखा गया है। सञ्जय! हमारे उस भाग को हमसे शत्रुता रखनेवाले कौरव कैसे ले सकते हैं?

एतान् धर्मान् कौरवाणां पुराणा-
नाचक्षीथाः सञ्जय राजमध्ये।
स्वयं त्वहं प्रार्थये तत्र गन्तुं
समाधातुं कार्यमेतद् विपन्नम् ॥४३॥

सञ्जय! तुम राजाओं की मण्डली में राजाओं के इन प्राचीन धर्मों का कौरवों के समक्ष वर्णन करना। मैं स्वयं भी इस बिगड़े हुए कार्य को बनाने के लिए हस्तिनापुर चलना चाहता हूँ।

अहापयित्वा यदि पाण्डवार्थं
शमं कुरूणामपि चेच्छकेयम्।
स्यात् पुण्यं मे चरितं महोदयं
मुच्येरँश्च कुरवो मृत्युपाशात् ॥४४॥

यदि पाण्डवों का स्वार्थ नष्ट किये बिना ही मैं कौरवों के साथ इनकी सन्धि कराने में सफल हो गया तो मेरे द्वारा यह परम पवित्र और महान् अभ्युदय का कार्य सम्पन्न हो जाए तथा कौरव भी मृत्यु के पाश से छूट जाएँगे।

अतोऽन्यथा रथिना फाल्गुनेन
भीमेन चैवाहवदंशितेन।
परासिक्तान् धार्तराष्ट्रांश्च विद्धि
परिदग्धान् कर्मणा स्वेन पापान् ॥४५॥

सञ्जय! यदि ऐसा नहीं हुआ और कौरवों ने इसके विपरीत भाव दिखाया तो समझ लो कि रथ पर बैठे हुए अर्जुन तथा युद्ध के लिए कवच धारण करके तैयार हुए भीमसेन के द्वारा पराजित होकर धृतराष्ट्र के वे सभी पापात्मा पुत्र अपने ही कर्म-दोष से दग्ध हो जाएँगे।

पराजितान् पाण्डवेयाँस्तु वाचो
रौद्रा रूक्षा भाषते धार्तराष्ट्रः।
गदाहस्तो भीमसेनोऽप्रमत्तो
दुर्योधनं स्मारयिता हि काले ॥४६॥

द्यूत के समय जब पाण्डव हार गये थे, तब दुर्योधन ने उनके प्रति अति भयानक, कड़वी और कठोर बातें कही थीं, अतः सदा सावधान रहनेवाले भीमसेन युद्ध के समय गदा हाथ में लेकर दुर्योधन को उन बातों का स्मरण कराएँगे।

**सुयोधनो मन्युमयो महाद्रुमः**
**स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः ।**
**दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे**
**मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी ॥४७॥**

दुर्योधन क्रोधमय विशाल वृक्ष के समान है, कर्ण उस वृक्ष का स्कन्ध है, शकुनि शाखा है और दुःशासन समृद्ध फल-पुष्प है। अज्ञानी राजा धृतराष्ट्र ही इसके मूल=जड़ हैं।

**युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः**
**स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखाः ।**
**माद्रीपुत्रौ पुष्पफले समृद्धे**
**मूलं त्वहं ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च ॥४८॥**

युधिष्ठिर धर्ममय विशाल वृक्ष हैं। अर्जुन उस वृक्ष के स्कन्ध, भीमसेन शाखा और माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव उसके समृद्ध फल-पुष्प हैं। मैं, वेद और ब्राह्मण ही उस वृक्ष के मूल=जड़ हैं।

**वनं राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो**
**व्याघ्रास्ते वै सञ्जय पाण्डुपुत्राः ।**
**सिंहाभिगुप्तं न वनं विनश्येत्**
**सिंहो न नश्येत वनाभिगुप्तः ॥४९॥**

सञ्जय! पुत्रोंसहित राजा धृतराष्ट्र एक वन हैं और पाण्डव उस वन में निवास करनेवाले व्याघ्र हैं। सिंहों से रक्षित वन नष्ट नहीं होता तथा वन में सुरक्षित रहकर सिंह नष्ट नहीं होता, [ऐसे वन का उच्छेद मत करो]।

**निर्वनो वध्यते व्याघ्रो निर्व्याघ्रं छिद्यते वनम् ।**
**तस्माद् व्याघ्रो वनं रक्षेद् वनं व्याघ्रं च पालयेत् ॥५०॥**

वन से बाहर निकला हुआ व्याघ्र मारा जाता है तथा व्याघ्र से रहित वन को सब लोग सरलता से काट लेते हैं, अतः व्याघ्र वन की रक्षा करे और वन व्याघ्र की रक्षा करे।

**धार्तराष्ट्रा लताधर्माः शालाः सञ्जय पाण्डवाः ।**
**न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता ॥५१॥**

सञ्जय! धृतराष्ट्र के पुत्र लताओं के समान हैं तथा पाण्डव शाल वृक्षों के समान। कोई भी लता किसी महावृक्ष का आश्रय लिये बिना कभी नहीं बढ़ सकती [धृतराष्ट्रपुत्र भी पाण्डवों का आश्रय लेकर ही बढ़ सकते हैं]।

**स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिन्दमाः ।**
**यत् कृत्यं धृतराष्ट्रस्य तत् करोतु नराधिपः ॥५२॥**

शत्रुओं का दमन करनेवाले कुन्तीकुमार धृतराष्ट्र की सेवा करने के लिए भी समुद्यत हैं और युद्ध के लिए भी। अब राजा धृतराष्ट्र का जो कर्तव्य हो, वे उसका पालन करें।

**स्थिताः शमे महात्मानः पाण्डवाः धर्मचारिणः ।**
**योधाः समर्थास्तद् विद्वन्नाचक्षीथा यथातथम् ॥५३॥**

विद्वन् सञ्जय! धर्म का आचरण करनेवाले महात्मा पाण्डव शान्ति के लिए भी तैयार हैं तथा युद्ध करने में भी समर्थ हैं। इन दोनों अवस्थाओं को समझकर तुम राजा धृतराष्ट्र से यथार्थ बातें कहना।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥६॥**

## सप्तमोऽध्यायः

### सञ्जय को विदाई और पाण्डवों का कौरवों के प्रति सन्देश

सञ्जय उवाच

**आमन्त्रये त्वां नरदेवदेव**
**गच्छाम्यहं पाण्डव स्वस्ति तेऽस्तु ।**
**कच्चिन्न वाचा वृजिनं हि किंचि-**
**दुच्चारितं मे मनसोऽभिषङ्गात् ॥१॥**

**सञ्जय बोले**—नरदेवश्रेष्ठ पाण्डुनन्दन! आपका कल्याण हो। अब मैं आपसे विदा लेकर हस्तिनापुर जाता हूँ। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि मैंने मानसिक आवेग के कारण वाणी द्वारा कोई ऐसी बात कह दी हो जिससे आपको कष्ट हुआ हो?

**जनार्दनं भीमसेनार्जुनौ च**
**माद्रीसुतौ सात्यकिं चेकितानम् ।**
**आमन्त्र्य गच्छामि शिवं सुखं वः**
**सौम्येन मां पश्यत चक्षुषा च ॥२॥**

श्रीकृष्ण, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि और चेकितान—इन सभी से आज्ञा लेकर मैं जा रहा हूँ। आप लोगों को सुख और शान्ति प्राप्त हो। नरेश्वरो ! आप मेरी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखें।

युधिष्ठिर उवाच

**अनुज्ञातः संजय स्वस्ति गच्छ**
**कल्याणवाक् शीलवाँस्तृप्तिमाँश्च।**
**न मर्मगां जातु वक्तासि रूक्षां**
**नोपश्रुतिं कटुकां नोत मुक्ताम् ॥३॥**

**युधिष्ठिर बोले**—हे संजय ! मैं तुम्हें जाने की अनुमति देता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम प्रस्थान करो। तुम्हारी बातें कल्याणकारी हैं। तुम शीलवान् तथा सन्तोषी हो। तुम्हारे मुख से कभी कोई ऐसी बात नहीं निकलती जो कड़वी होने के साथ ही मर्म पर आघात करनेवाली हो। तुम नीरस एवं अप्रासङ्गिक बात भी नहीं कहते।

**इतो गत्वा संजय क्षिप्रमेव**
**यस्मिञ्शौर्यमानृशंस्यं तपश्च।**
**पादौ गृहीत्वा कुरुसत्तमस्य**
**भीष्मस्य मां तत्र निवेदयेथाः ॥४॥**

हे संजय ! यहाँ से जाकर तुम शीघ्र ही जिनमें वीरता, दया और तपस्या आदि सद्गुण विद्यमान हैं, उन कुरुश्रेष्ठ भीष्म पितामह के दोनों चरण पकड़-कर मेरा प्रणाम निवेदन करना।

**प्रज्ञाचक्षुर्यः प्रणेता कुरूणां**
**बहुश्रुतो वृद्धसेवी मनीषी।**
**तस्मै राज्ञे स्थविरायाभिवाद्य**
**आचक्षीथाः संजय मामरोगम् ॥५॥**

हे संजय ! जो कौरवों के नेता, अनेक शास्त्रों के ज्ञाता, वृद्धों के सेवक और बुद्धिमान् हैं, उन वृद्ध नरेश प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र को मेरा प्रणाम निवेदन करके यह बताना कि युधिष्ठिर नीरोग एवं सकुशल है।

**इदं पुनर्वचनं धार्तराष्ट्रं**
**सुयोधनं संजय श्रावयेथाः।**
**ददस्व वा शक्रपुरीं ममैव**
**युध्यस्व वा भारतमुख्य वीर ॥६॥**

संजय ! तत्पश्चात् दुर्योधन को मेरा यह सन्देश सुना देना—"भरतवंश के प्रमुख वीर ! तुम या तो इन्द्रप्रस्थ का राज्य मुझे वापस लौटा दो अथवा युद्ध करो !

**अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम्।**
**अवसानं भवत्यत्र कञ्चिदेकं च पञ्चमम् ॥७॥**

"अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत तथा पाँचवाँ कोई भी एक ग्राम दे दो। इसी पर युद्ध की समाप्ति हो जाएगी।

**भ्रातॄणां देहि पञ्चानां पञ्चग्रामान् सुयोधन।**
**शान्तिर्नोऽस्तु महाप्राज्ञ ज्ञातिभिः सह संजय ॥८॥**

"हे सुयोधन ! हम पाँच भाइयों को पाँच ग्राम दे दो।' महाप्राज्ञ संजय ! ऐसा हो जाने पर भी अपने कुटुम्बी जनों के साथ हम लोगों की शान्ति बनी रहेगी।

**भ्राता भ्रातरमन्वेतु पिता पुत्रेण युज्यताम्।**
**स्मयमानाः समायान्तु पाञ्चालाः कुरुभिः सह ॥९॥**
**अक्षतान् कुरुपाञ्चालान् पश्येयमिति कामये।**
**सर्वे सुमनसस्तात शाम्याम भरतर्षभ ॥१०॥**

"भाई भाई से मिले तथा पिता पुत्र से मिले। पाञ्चालदेशीय क्षत्रिय कुरुवंशियों के साथ मुस्कराते हुए मिलें। मेरी यही कामना है कि मैं कौरवों और पाञ्चालों को अक्षतशरीर देखूँ। तात ! भरतश्रेष्ठ दुर्योधन ! हम सब लोग प्रसन्नचित्त होकर शान्त हो जाएँ, ऐसी चेष्टा करो।"

**अलमेव शमायास्मि तथा युद्धाय संजय।**
**धर्मार्थयोरलं चाहं मृदवे दारुणाय च ॥११॥**

हे संजय ! मैं शान्ति रखने में भी समर्थ हूँ और युद्ध करने में भी। धर्म और अर्थ के विषय का भी मुझे ठीक-ठीक ज्ञान है। मैं समय के अनुसार कोमल भी हो सकता हूँ तथा कठोर भी।

वैशम्पायन उवाच

**अनुज्ञातः पाण्डवेन प्रययौ संजयस्तदा।**
**शासनं धृतराष्ट्रस्य सर्वं कृत्वा महात्मनः ॥१२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर तथा महामना राजा धृतराष्ट्र के सम्पूर्ण आदेशों का पालन करके संजय ने वहाँ से प्रस्थान किया।

**सम्प्राप्य हास्तिनपुरं शीघ्रमेव प्रविश्य च।**
**अन्तःपुरं समास्थाय द्वाःस्थं वचनमब्रवीत् ॥१३॥**

हस्तिनापुर में पहुँचकर उन्होंने शीघ्र ही राजभवन में प्रवेश किया तथा अन्तःपुर के निकट जाकर द्वारपाल से कहा—

**आचक्ष्व धृतराष्ट्राय द्वाःस्थ मां समुपागतम्।**
**सकाशात् पाण्डुपुत्राणां संजयं मा चरं कृथाः ॥१४॥**

"द्वारपाल! तुम राजा धृतराष्ट्र को मेरे आने की सूचना दो और कहो—'पाण्डवों के पास से संजय आये हैं।' बिलम्ब मत करो।"

**द्वाःस्थोऽथ श्रुत्वा नृपतिं जगाम**
**स संजयो भूमिपते नमस्ते।**
**दिदृक्षया द्वारमुपागतस्ते**
**प्रशाधि राजन् किमयं करोतु ॥१५॥**

यह सुनकर द्वारपाल महाराज के पास गया और बोला—"महाराज! आपको नमस्कार है। [पाण्डवों के पास से लौटे हुए] संजय आपके दर्शन की इच्छा से द्वार पर खड़े हैं। हे राजन्! आज्ञा दीजिए, वे संजय क्या करें!"

धृतराष्ट्र उवाच

**आचक्ष्व मां सुखिनं कल्पमस्मै**
**प्रवेश्यतां स्वागतं सञ्जयाय।**
**न चाहमेतस्य भवाम्यकल्पः**
**कस्मात्स मे द्वारि स्थितश्च सक्तः ॥१६॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—द्वारपाल! संजय का स्वागत है। उससे कहो कि—"मैं शकुशल हूँ, अतः इस समय उससे भेंट करने को तैयार हूँ।" उसे भीतर ले आओ। उससे मिलने में मुझे कभी भी अड़चन नहीं होती, फिर वह द्वार पर चिपका क्यों खड़ा है?

वैशम्पायन उवाच

**ततः प्रविश्यानुमते नृपस्य**
**महद् वेश्म प्राज्ञशूरार्यगुप्तम्।**
**सिंहासनस्थं नृपमाससाद**
**वैचित्रवीर्यं नतसूतपुत्रः ॥१७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! इस प्रकार राजा की आज्ञा पाकर सूतपुत्र संजय ने बुद्धिमान्, शूरवीर तथा श्रेष्ठपुरुषों से सुरक्षित विशाल राजभवन में प्रवेश किया और सिंहासन पर बैठे हुए विचित्रवीर्यनन्दन महाराज धृतराष्ट्र के पास जा हाथ जोड़कर कहा—

संजय उवाच

**अहं सञ्जयो भूमिपते नमस्ते**
**प्राप्तोऽस्मि गत्वा नरदेव पाण्डवान्।**
**अभिवाद्य त्वां पाण्डुसुतो मनस्वी**
**युधिष्ठिरः कुशलं चान्वपृच्छत् ॥१८॥**

**संजय ने कहा**—भूपाल! आपको नमस्कार हो। हे नरदेव! मैं संजय हूँ और पाण्डवों से पास जाकर वहाँ से लौटा हूँ। उदारचित्त पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ने आपको प्रणाम करके आपकी कुशल पूछी है।

**सहामात्यः कुशली पाण्डुपुत्रो**
**सत्त्वं पुनर्वाञ्छति ह्यात्मनश्च।**
**निर्णिक्तधर्मार्थकरो मनस्वी**
**बहुश्रुतो दृष्टिमाञ्छीलवांश्च ॥१९॥**

पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर अपने मन्त्रियोंसहित सकुशल हैं तथा पहले उन्हें जो राज्य और धनादि प्राप्त था, उसे पुनः वापस लेना चाहते हैं। वे विशुद्ध भाव से धर्म और अर्थ का सेवन करनेवाले, मनस्वी, विद्वान्, दूरदर्शी और शीलवान् हैं।

**अजातशत्रुस्तु विहाय पापं**
**जीर्णां त्वचं सर्प इवासमर्थाम्।**
**विरोचतेऽहार्यवृत्तेन वीरो**
**युधिष्ठिरस्त्वयि पापं विसृज्य ॥२०॥**

जैसे सर्प पुरानी केंचुली को, जो शरीर में ठहर नहीं सकती, उतारकर चमक उठता है, उसी प्रकार अजातशत्रु वीर युधिष्ठिर पाप का परित्याग करके तथा उस पाप को आपपर ही छोड़कर अपने स्वाभाविक सदाचार से सुशोभित हो रहे हैं।

**हन्तात्मनः कर्म निबोध राजन्**
**धर्मार्थयुक्तार्यगुणैरपेतम्।**
**उपक्रोशं चेह गतोऽसि राजन्**
**भूयश्च पापं प्रसजेदमुत्र ॥२१॥**

महाराज! आप तनिक अपने कर्म पर तो ध्यान दीजिए। आपका बर्ताव धर्म और अर्थ से युक्त श्रेष्ठ पुरुषों के व्यवहार के सर्वथा विपरीत है। हे राजन्!

इसी कारण इस लोक में आपकी निन्दा हो रही है तथा परलोक में भी आपको पापमय नरक का दुःख भोगना पड़ेगा।

**स त्वमर्थं संशयितं विना तै-**
**राशंससे पुत्रवशानुवर्ती।**
**अधर्मभावश्च महान् पृथिव्यां**
**कृत्यं समं ते न हि भारताग्र्य ॥२२॥**

भरतवंशशिरोमणे! आप इस समय अपने पुत्रों के वशीभूत होकर पाण्डवों को अलग करके अकेले उनकी सारी सम्पत्ति ले लेना चाहते हैं, परन्तु इसकी सफलता में सन्देह है। [यदि सफल हो भी गये तो] इस अधर्म के कारण संसार में आपकी बड़ी भारी निन्दा होगी। यह कार्य आपके सर्वथा अयोग्य है।

**गर्हे ह्यहं त्वां स्वकुले विरोधा-**
**दन्तो ह्ययं सम्भविता प्रजानाम्।**
**नो चेत्तवैव सुकृतापराधाद्-**
**दहेत कुरून् कक्षमिवैष वह्निः ॥२३॥**

आप जो भरतवंश में विरोध=फूट फैला रहे हैं, इसके कारण मैं तो आपकी ही निन्दा करता हूँ क्योंकि इस कौरव-पाण्डव विरोध से समस्त प्रजाओं का निश्चय ही विनाश होगा। यदि आपने पाण्डवों का राज्य नहीं लौटाया तो आपके अपराध से अर्जुन समस्त कौरव वंश को उसी प्रकार दग्ध कर डालेंगे, जैसे अग्नि घास-फूंस के समूह को जला देती है।

**एको हि त्वं जातु सुतस्य राजन्**
**गत्वा वशं सर्वविधं नरेन्द्र।**
**कामात्मनः श्लाघसे द्यूतकाले**
**नागाः शमं पश्य विपाकमस्य ॥२४॥**

नरेन्द्र! महाराज! समस्त संसार में एकमात्र आप ही अपने स्वेच्छाचारी पुत्र की प्रशंसा करते हुए उसके अधीन होकर जुए के समय जो उसकी प्रशंसा करते थे तथा [राज्य का लोभ छोड़कर] शान्त न हो सके, उसी का यह भयंकर परिणाम अपनी आँखों के समक्ष देख लीजिए।

**अनाप्तानां संग्रहात् त्वं नरेन्द्र**
**तथाऽऽप्तानां निग्रहाच्चैव राजन्।**
**भूमिं स्फीतां दुर्बलत्वादनन्ता-**
**मशक्तस्त्वं रक्षितुं कौरवेय ॥२५॥**

नरेन्द्र! आपने ऐसे लोगों [शकुनि-कर्ण आदि] को इकट्ठा कर लिया है, जो विश्वास के योग्य नहीं हैं तथा विश्वसनीय पुरुषों [पाण्डवों] को आपने दण्ड दिया है, अतः कुरुकुलनन्दन! अपनी इस मानसिक दुर्बलता के कारण आप इस अनन्त समृद्धि-शालिनी पृथिवी की रक्षा करने में भी समर्थ नहीं हो सकते।

**अनुज्ञातो रथवेगावधूतः**
**श्रान्तोऽभिपद्ये शयनं नृसिंह।**
**प्रातः श्रोतारः कुरवः सभाया-**
**मजातशत्रोर्वचनं समेताः ॥२६॥**

हे नरश्रेष्ठ! इस समय रथ के वेग से हिलने-डुलने के कारण मैं थक गया हूँ। यदि आज्ञा हो तो मैं सोने के लिए जाऊँ। प्रातःकाल जब सभी कौरव जनसभा में एकत्र होंगे, उस समय वे अज्ञातशत्रु युधिष्ठिर के वचन सुनेंगे।

धृतराष्ट्र उवाच

**अनुज्ञातोऽस्यावसथं परैहि**
**प्रपद्यस्व शयनं सूतपुत्र।**
**प्रातः श्रोतारः कुरवः सभाया-**
**मजातशत्रोर्वचनं त्वयोक्तम् ॥२७॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—सूतपुत्र! मैं आज्ञा देता हूँ, तुम अपने घर जाओ और विश्राम करो। प्रातःकाल सब कौरव सभा में एकत्र हो, तुम्हारे मुख से अजातशत्रु युधिष्ठिर के सन्देश को सुनेंगे।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥७॥**

# अष्टमोऽध्यायः

## विदुरनीति=धृतराष्ट्र तथा विदुर का संवाद

वैशम्पायन उवाच

**द्वाःस्थं प्राह महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो महीपतिः ।**
**विदुरं द्रष्टुमिच्छामि तमिहानय मा चिरम् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! [संजय के चले जाने पर] महाविद्वान् राजा धृतराष्ट्र ने द्वारपाल से कहा—"मैं विदुर से मिलना चाहता हूँ, उन्हें शीघ्र बुला लाओ ।

**ततः प्रविश्य विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम् ।**
**अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं चिन्तयानं नराधिपम् ॥२॥**

राजा के द्वारा बुलाये जाने पर विदुर धृतराष्ट्र के महल में प्रविष्ट होकर चिन्ता में पड़े हुए राजा से हाथ जोड़कर बोले—

**विदुरोऽहं महाप्राज्ञ सम्प्राप्तस्तव शासनात् ।**
**यदि किञ्चन कर्तव्यमयमस्मि प्रशाधि माम् ॥३॥**

"महाप्राज्ञ ! मैं विदुर हूँ । आपकी आज्ञा से यहाँ आया हूँ । यदि मेरे योग्य कोई कार्य हो तो मैं उपस्थित हूँ, मुझे आज्ञा दीजिए ।"

धृतराष्ट्र उवाच

**सञ्जयो विदुर प्राज्ञो गर्हयित्वा च मां गतः ।**
**अजातशत्रोः श्वो वाक्यं सभामध्ये स वक्ष्यति ॥४॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—विदुर ! बुद्धिमान् संजय आया था । वह मेरी निन्दा करके, मुझे बुरा-भला कहकर चला गया है । कल सभा में वह अजातशत्रु युधिष्ठिर का सन्देश सुनाएगा ।

**तस्याद्य कुरुवीरस्य न विज्ञातं वचो मया ।**
**तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत् प्रजागरम् ॥५॥**

आज मैं उस कुरुवीर युधिष्ठिर का सन्देश नहीं जान सका—यही चिन्ता मेरे अङ्गों को जला रही है और इसी ने मुझे अब तक जगा रखा है ।

**जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदनुपश्यसि ।**
**तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥६॥**

तात ! मैं चिन्ता से जलता हुआ अभी तक जाग रहा हूँ । मेरे लिए जो कल्याण की बात समझो, वह मुझे बताओ, क्योंकि हम लोगों में तुम्हीं धर्म और अर्थ के ज्ञान में निपुण हो ।

विदुर उवाच

**अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम् ।□**
**हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः ॥७॥**

**विदुरजी बोले**—हे राजन् ! जिसका बलवान् के साथ विरोध हो गया हो, साधनहीन दुर्बल मनुष्य को, जिसका सर्वस्व हरण हो गया है, कामी तथा चोर को रात्रि में निद्रा नहीं आती ।

**कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप ।**
**कच्चिच्च परवित्तेषु गृध्यन् न परितप्यसे ॥८॥**

हे नरेन्द्र ! कहीं आपका भी इन महान् दोषों से सम्पर्क तो नहीं हो गया है ? कहीं पराये धन के लोभ से तो आप कष्ट नहीं पा रहे हैं ?

धृतराष्ट्र उवाच

**श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं परं नैःश्रेयसं वचः ।**
**अस्मिन् राजर्षिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसम्मतः ॥९॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—हे विदुर ! मैं तुम्हारे धर्मयुक्त तथा कल्याणकारी उत्तम वचन सुनना चाहता हूँ, क्योंकि इस राजर्षिवंश में केवल तुम्हीं विद्वानों के भी माननीय हो ।

विदुर उवाच

**आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।□**
**यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥१०॥**

**विदुरजी बोले**—अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान, पुरुषार्थ, द्वन्द्व [सुख-दुःख] सहन करने की शक्ति और धर्म में स्थिरता—ये गुण जिस मनुष्य को लक्ष्य से च्युत नहीं करते, वही पण्डित कहलाता है ।

**निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।□**
**अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पण्डितलक्षणम् ॥११॥**

जो श्रेष्ठ कर्मों का अनुष्ठान करता है और बुरे कर्मों से दूर रहता है, साथ ही जो आस्तिक और श्रद्धालु है, उसके वे सद्‌गुण पण्डित होने के लक्षण हैं ।

**क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीस्तम्भो मान्यमानिता ।□**
**यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥१२॥**

क्रोध, हर्ष, अभिमान, लज्जा, उद्दण्डता तथा अहम्मन्यता=अपने को पूज्य समझना—ये सब भाव

जिसे अपने पुरुषार्थ से भ्रष्ट नहीं करते, वही पण्डित कहलाता है।

**यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे।□**
**कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥१३॥**

अन्य लोग जिसके कार्य, परामर्श और सोचे हुए विचार को कार्य पूरा होने पर ही जानते हैं, वही पण्डित कहलाता है।

**यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः।□**
**समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते ॥१४॥**

सरदी-गरमी, भय-अनुराग=प्रेम, सम्पत्ति अथवा दरिद्रता—ये जिसके कार्य में विघ्न नहीं डालते, वही पण्डित कहलाता है।

**क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति**
**विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।□**
**नासम्पृष्टो ह्युपयुङ्क्ते परार्थे**
**तत् प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥१५॥**

विद्वान् पुरुष किसी विषय को देर तक सुनता है, परन्तु शीघ्र समझ लेता है। समझकर कर्तव्य-बुद्धि से पुरुषार्थ में प्रवृत्त होता है, कामना से नहीं। बिना पूछे दूसरे के विषय में व्यर्थ कोई बात नहीं कहता—यह स्वभाव पण्डित की मुख्य पहचान है।

**नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।□**
**आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥१६॥**

पण्डितों की-सी बुद्धि रखनेवाले मनुष्य दुर्लभ वस्तु की कामना नहीं करते, खोई हुई वस्तु के विषय में शोक नहीं करते तथा विपत्ति में पड़कर घबराते नहीं हैं।

**निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः।□**
**अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते ॥१७॥**

जो पहले निश्चय करके फिर कार्य का आरम्भ करता है, कार्य के मध्य में नहीं रुकता, समय को व्यर्थ नहीं गँवाता और मन को वश में रखता है, वही पण्डित कहलाता है।

**न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते।□**
**गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते ॥१८॥**

जो अपना आदर होने पर हर्ष के कारण फूल नहीं उठता, अपमान से सन्तप्त नहीं होता तथा गङ्गा-ह्रद=समुद्र के समान जिसके चित्त में क्षोभ नहीं होता, वही पण्डित कहलाता है।

**तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम्।□**
**उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते ॥१९॥**

सम्पूर्ण भौतिक पदार्थों के तत्त्व का ज्ञान रखनेवाला, सब कार्यों के करने का ढंग जाननेवाला और मनुष्यों में सबसे बढ़कर उपाय का जाननेवाला ही पण्डित कहलाता है।

**प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्।□**
**आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ॥२०॥**

जिसकी वाणी रुकती नहीं, जो विचित्र ढंग से वार्तालाप करता है, जो तर्क में निपुण एवं प्रतिभाशाली है, जो ग्रन्थ के तात्पर्य को शीघ्र बता सकता है, वह पण्डित कहलाता है।

**श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।□**
**असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥२१॥**

जिसकी विद्या बुद्धि का अनुसरण करती है तथा बुद्धि विद्या का और जो आर्यपुरुषों की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, वही पण्डित की संज्ञा पा सकता है।

**अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।□**
**अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥२२॥**

बिना पढ़े ही गर्व करनेवाले, दरिद्र होकर भी बड़े-बड़े मनोरथ करनेवाले तथा बिना कर्म किये ही धन-प्राप्ति की इच्छा रखनेवाले मनुष्य को पण्डित लोग मूर्ख कहते हैं।

**स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति।**
**मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते ॥२३॥**

जो अपना कर्तव्य छोड़कर दूसरे के कर्तव्य का पालन करता है और मित्र के साथ खोटा व्यवहार करता है, वह मूर्ख कहलाता है।

**अकामान् कामयति यः कामयानान् परित्यजेत्।□**
**बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम् ॥२४॥**

जो न चाहनेवालों को चाहता है तथा चाहनेवालों को त्याग देता है अथवा जो न करने योग्य कामनाओं को करता है एवं करने योग्य कामनाओं को नहीं करता और जो अपने से बलवान् के साथ

वैर करता है, उसे मूढविचार का मनुष्य कहते हैं।

**अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च।**
**कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम् ॥२५॥**

जो शत्रु को मित्र बनाता है एवं मित्र से द्वेष करता है तथा उसे कष्ट पहुँचाता है और सदा बुरे कर्मों का आरम्भ करता है, उसे मूढ़ चित्तवाला कहते हैं।

**संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते।**
**चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ ॥२६॥**

"हे भरतश्रेष्ठ! जो अपने कार्यों को व्यर्थ ही फैलाता है, सर्वत्र संदेह करता है और शीघ्र होनेवाले कार्य में भी देर लगाता है, वह मूढ है।

**अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते।**
**अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ॥२७॥**

मूढ चित्तवाला अधम मनुष्य बिना बुलाये ही भीतर घुस आता है, बिना पूछे ही बहुत बोलता है तथा अविश्वसनीय मनुष्य पर भी विश्वास करता है।

**परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा।**
**यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ॥२८॥**

स्वयं दोषयुक्त व्यवहार करते हुए भी जो दूसरों पर उसके दोष बताकर आक्षेप करता है और जो असमर्थ होते हुए भी व्यर्थ का क्रोध करता है, वह मनुष्य महामूर्ख है।

**एकः सम्पन्नमश्नाति धत्ते वासश्च शोभनम्।**
**योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः ॥२९॥**

जो अपने द्वारा भरण-पोषण करने योग्य व्यक्तियों को बाँटे बिना अकेले ही उत्तम भोजन करता है तथा सुन्दर वस्त्र पहनता है, उससे बढ़कर क्रूर मनुष्य और कौन होगा?

**एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनाः।**
**भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ॥३०॥**

मनुष्य अकेला पाप करके धन कमाता है। उस धन का उपभोग बहुत-से लोग करते हैं। उपभोग करनेवाले तो पाप से छूट जाते हैं, परन्तु कर्ता दोष का भागी होता है।

**एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता।**
**बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद् राष्ट्रं सराजकम् ॥३१॥**

किसी धनुर्धारी द्वारा छोड़ा गया बाण सम्भव है किसी एक को भी मारे या न मारे, परन्तु बुद्धिमान् द्वारा दुष्टभाव से प्रयुक्त बुद्धि राजा के साथ-साथ सम्पूर्ण राष्ट्र को भी नष्ट कर देती है।

**एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु।**
**पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भवेत् ॥३२॥**

एक [बुद्धि] से दो [कर्तव्य और अकर्तव्य] का निश्चय करके चार [साम, दाम, दण्ड, भेद] से तीन [शत्रु, मित्र तथा उदासीन] को वश में कीजिए। पाँच [इन्द्रियों] को जीतकर छह गुणों [सन्धि, विग्रह, यान, आसन, समाश्रय और द्वैधीभाव] को जानकर तथा सात दोषों [परस्त्री-सेवन, जुआ, शिकार, मद्यपान, कटु वचन, दण्ड की कठोरता तथा अन्याय से धनोपार्जन] को छोड़कर सुखी हो जाइए।

**एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते।**
**सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविप्लवः ॥३३॥**

विष का रस एक [पीनेवाले] को ही मारता है, शस्त्र से भी एक का ही वध होता है; परन्तु गुप्त मन्त्रणा के प्रकाशित होने से राष्ट्र और प्रजा के साथ ही राजा का भी विनाश हो जाता है।

**एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान् न चिन्तयेत्।**
**एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥३४॥**

अकेला स्वादिष्ट पदार्थ न खाए, अकेला किसी विषय का चिन्तन न करे, अकेला मार्ग में न चले तथा बहुत-से लोग सोये हों तो उनमें अकेला न जागे।

**एकमेवाद्वितीयं तद् यद् राजन् नावबुध्यसे।**
**सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ॥३५॥**

हे राजन्! जैसे समुद्र-पार जाने के लिए जलयान ही एकमात्र साधन है, उसी प्रकार स्वर्ग के लिए सत्य ही एकमात्र सोपान=सीढ़ी है, परन्तु आप इसे समझ नहीं पा रहे हैं।

**एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।**
**यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥३६॥**

क्षमाशील पुरुषों पर एक ही दोषारोपण होता है, दूसरे की तो सम्भावना ही नहीं है। वह दोष यह है कि क्षमाशील मनुष्य को लोग असमर्थ समझ लेते हैं।

**सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम् ।□**
**क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ।।३७।।**

परन्तु क्षमाशील मनुष्य का वह दोष नहीं मानना चाहिए, क्योंकि क्षमा बहुत बड़ा बल है। क्षमा असमर्थ मनुष्यों का गुण तथा समर्थों का भूषण है।

**क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते ।□**
**शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः ।।३८।।**

इस संसार में क्षमा वशीकरणरूप है। भला क्षमा से क्या सिद्ध नहीं होता ? जिसके हाथ में शान्तिरूपी तलवार है, उसका दुष्ट लोग क्या बिगाड़ सकते हैं ?

**अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ।□**
**अक्षमावान् परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत् ।।३९।।**

तृणरहित स्थान में गिरी हुई अग्नि अपने आप बुझ जाती है। क्षमाहीन मनुष्य अपने को तथा दूसरे को भी दोष का भागी बना लेता है।

**एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा ।□**
**विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ।।४०।।**

केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही शान्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। एक विद्या ही परम सन्तोष देनेवाली और एकमात्र अहिंसा ही परम सुख देनेवाला गुण है।

**द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव ।□**
**राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ।।४१।।**

साँप जैसे बिल में रहनेवाले जीवों को खा जाता है, उसी प्रकार यह पृथिवी शत्रु से विरोध न करनेवाले राजा और प्रवास न करनेवाले ब्राह्मण=संन्यासी—इन दोनों को खा जाती है।

**द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिल्लोके विरोचते ।□**
**अब्रुवन् परुषं किञ्चिदसतोऽनर्चयँस्तथा ।।४२।।**

ज़रा भी कठोर न बोलना और दुष्ट पुरुषों का आदर न करना—इन दो कर्मों का करनेवाला मनुष्य इस संसार में विशेष शोभा पाता है।

**द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषिणौ ।□**
**यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ।।४३।।**

जो निर्धन होकर बहुमूल्य वस्तु की इच्छा रखता है तथा असमर्थ होकर भी क्रोध करता है—ये दोनों ही अपने लिए तीक्ष्ण काँटों के समान हैं और अपने शरीर को सुखानेवाले हैं।

**द्वाविमौ न विराजेते विपरीतेन कर्मणा ।□**
**गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवाँश्चैव भिक्षुकः ।।४४।।**

दो ही अपने विपरीत कर्म के कारण संसार में शोभा नहीं पाते—अकर्मण्य=कर्म न करनेवाला गृहस्थ और प्रपञ्च में लगा हुआ संन्यासी।

**द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।□**
**प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ।।४५।।**

हे राजन् ! शक्तिशाली होने पर भी क्षमाशील और निर्धन होने पर भी दानशील—ये दो प्रकार के मनुष्य स्वर्ग से भी ऊपर स्थान पाते हैं।

**न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ ।□**
**अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम् ।।४६।।**

न्यायपूर्वक उपार्जित धन के दो ही दुरुपयोग समझने चाहिएँ—अपात्र को दान देना और सत्पात्र को न देना।

**द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम् ।□**
**धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ।।४७।।**

जो धनवान् होकर भी दान न दे और दरिद्र होने पर भी परिश्रम न करे, कष्ट को सहन न करे—इन दो प्रकार के मनुष्यों को गले में भारी शिला बाँधकर पानी में डुबा देना चाहिए।

**द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ ।□**
**परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ।।४८।।**

हे पुरुषश्रेष्ठ ! योगयुक्त संन्यासी और संग्राम में शत्रुओं के सम्मुख युद्ध करके मरनेवाला योद्धा—ये दो प्रकार के मनुष्य सूर्यमण्डल को भेदकर ऊर्ध्वगति को प्राप्त होते हैं।

**त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः ।□**
**नियोजयेद् यथावत् ताँस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ।।४९।।**

हे राजन् ! उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं। इनको यथायोग्य तीन ही प्रकार के कर्मों में लगाना चाहिए।

**हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम् ।□**
**सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः ।।५०।।**

दूसरे के धन का अपहरण, दूसरे की स्त्री का संसर्ग और सहृदय मित्र का परित्याग—ये तीनों दोष

[मनुष्य की आयु, धर्म तथा कीर्ति का] क्षय [नाश] करनेवाले होते हैं।

**त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।□**
**कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥५१॥**

काम, क्रोध और लोभ—ये आत्मा का नाश करनेवाले नरक के तीन दरवाजे हैं, अतः इन तीनों को त्याग देना चाहिए।

**भक्तं च भजमानं च तवास्मीति च वादिनम्।□**
**त्रीनेतांश्छरणं प्राप्तान् विषमेऽपि न संत्यजेत् ॥५२॥**

भक्त, सेवक तथा 'मैं आपका हूँ'—ऐसा कहनेवाले—इन तीन प्रकार के शरणागत मनुष्यों को संकट पड़ने पर भी नहीं छोड़ना चाहिए।

**चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन**
**वर्ज्यान्याहुः पण्डितस्तानि विद्यात्।□**
**अल्पप्रज्ञैः सह मन्त्रं न कुर्यात्**
**दीर्घसूत्रै रभसैश्चारणैश्च ॥५३॥**

थोड़ी बुद्धिवाले, दीर्घसूत्री, जल्दबाज तथा स्तुति करनेवाले चारण—इन लोगों के साथ गुप्त सलाह नहीं करनी चाहिए। ये चारों महाबली राजा के लिए त्यागने योग्य बताये गये हैं। विद्वान् पुरुष ऐसे लोगों को पहचान ले।

**चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु**
**श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्थधर्मे।□**
**वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः**
**सखा दरिद्रश्च स्वसाऽनपत्या ॥५४॥**

तात! गृहस्थधर्म में स्थित आप लक्ष्मीवान् के घर में चार प्रकार के मनुष्य सदा रहने चाहिएँ—अपने कुटुम्ब का बूढ़ा, संकट में पड़ा उच्च कुल का मनुष्य, धनहीन मित्र और बिना सन्तान की बहिन।

**चत्वारि कर्माण्यभयङ्कराणि**
**भयं प्रयच्छन्त्ययथा कृतानि।□**
**मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं**
**मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ॥५५॥**

चार प्रकार के कर्म भय को दूर करनेवाले हैं, परन्तु वे ही यदि ठीक प्रकार से न किये जाएँ तो भय प्रदान करते हैं। वे कर्म हैं—आदर के साथ अग्निहोत्र, आदरपूर्वक मौन का पालन, आदरपूर्वक स्वाध्याय और आदर के साथ यज्ञ का अनुष्ठान।

**पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः।□**
**पिता माताग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ ॥५६॥**

हे भरतश्रेष्ठ! पिता, माता, अग्नि, आत्मा और गुरु—मनुष्य को इन पाँच अग्नियों की बड़े यत्न से सेवा करनी चाहिए।

**पञ्चैव पूजयंल्लोके यशः प्राप्नोति केवलम्।□**
**देवान् पितॄन् मनुष्याँश्च भिक्षूनतिथिपञ्चमान् ॥५७**

विद्वान्, पितर, मनुष्य, संन्यासी और अतिथि—इन पाँचों की पूजा करनेवाला मनुष्य शुद्ध यश प्राप्त करता है।

**पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्य च्छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम्।□**
**ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥५८॥**

पाँच ज्ञानेन्द्रियोंवाले पुरुष की यदि एक भी इन्द्रिय छिद्रयुक्त=दूषित हो जाए तो उससे उसकी बुद्धि इस प्रकार बाहर निकल जाती है जैसे मशक या फूटे पात्र से पानी निकल जाता है।

**षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।□**
**निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥५९॥**

ऐश्वर्य अथवा उन्नति के इच्छुक मनुष्य को नींद, तन्द्रा=ऊँघना, डर, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता [शीघ्र हो जानेवाले कार्यों में अधिक विलम्ब करने का स्वभाव]—इन छह दुर्गुणों को सर्वथा त्याग देना चाहिए।

**षडिमान् पुरुषो जह्याद् भिन्नां नावमिवार्णवे।□**
**अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम् ॥६०॥**
**अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्।□**
**ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम् ॥६१॥**

उपदेश न देनेवाले आचार्य, मन्त्रोच्चारण न करनेवाले होता, रक्षा करने में असमर्थ राजा, कटु वचन बोलनेवाली स्त्री, ग्राम में रहने की इच्छा करनेवाला ग्वाला और वन में रहने का इच्छुक नाई—इन छह को उसी प्रकार छोड़ दे, जैसे समुद्र की सैर करनेवाला मनुष्य छिद्रयुक्त नौका का परित्याग कर देता है।

**षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।**
**सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः ॥६२॥**

मनुष्य को सत्य, दान, कर्मण्यता, अनसूया=गुणों में दोष दिखाने की प्रवृत्ति का अभाव, क्षमा तथा धैर्य—इन छह गुणों का त्याग कभी नहीं करना चाहिए।

**अर्थागमो नित्यमरोगिता च**
**प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च। □**
**वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या**
**षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥६३**

हे राजन्! धन-प्राप्ति, नीरोगता, स्त्री का प्रिय-दर्शन=सुन्दर तथा प्रियवादिनी होना, पुत्र का आज्ञाकारी होना तथा आर्थिक सुख-साधन देनेवाली विद्या—ये छह बातें इस मनुष्य-लोक में सुखदायिनी होती हैं।

**षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति।**
**न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः ॥६४॥**

जो मनुष्य मन में [अपने जीवन में] नित्य रहनेवाले छह शत्रुओं [काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य] को वश में कर लेता है, वह जितेन्द्रिय मनुष्य पापों से लिप्त नहीं होता, फिर उनसे उत्पन्न होनेवाले अनर्थों से युक्त होने की तो बात ही क्या है?

**षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोपलभ्यते। □**
**चौराः प्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु चिकित्सकाः ॥६५**
**प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः।**
**नृपाः विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः ॥६६॥**

निम्न छह प्रकार के मनुष्य छह प्रकार के लोगों से अपनी आजीविका चलाते हैं, सातवें की उपलब्धि नहीं होती। चोर असावधान पुरुष से, वैद्य रोगी से, कामोन्मत्त स्त्रियाँ कामियों से, पुरोहित यजमानों से, राजा झगड़नेवालों से तथा विद्वान् पुरुष मूर्खों से अपनी जीविका चलाते हैं।

**षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात्। □**
**गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसङ्गतिः ॥६७॥**

मुहूर्तभर [कुछ काल] भी देख-रेख न करने से गौ, सेवा, खेती, स्त्री, विद्या तथा वृषल [धर्मलोपक] की संगति—ये छह नष्ट हो जाते हैं।

**षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम्। □**
**आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम् ॥६८**
**नारीं विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम्।**
**नावं निस्तीर्णकान्तारा आतुराश्च चिकित्सकम् ॥६९**

ये छह प्रकार के लोग प्रायः अपने पूर्व उपकारी का सम्मान नहीं करते—शिक्षा समाप्त हो जाने पर शिष्य आचार्य का, विवाहित पुत्र माता का, काम-वासना की शान्ति हो जाने पर पुरुष स्त्री का, कृत-कार्य मनुष्य सहायक का, नदी की दुर्गम धारा पार कर लेनेवाला पुरुष नाव का और रोगी पुरुष नीरोग होने के पश्चात् वैद्य का।

**आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः**
**सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः। □**
**स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः**
**षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥७०॥**

हे राजन्! नीरोगता, किसी का ऋणी न होना, परदेश में न रहना, उत्तम पुरुषों के साथ मेल होना, अपनी वृत्ति से जीविका चलाना और निर्भय होकर रहना—ये छह मनुष्यलोक के सुख हैं।

**ईर्ष्युर्घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः।**
**परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः ॥७१॥**

ईर्ष्या करनेवाला, घृणा करनेवाला, असन्तोषी, क्रोधी, सदा शंकित रहनेवाला तथा दूसरे के भाग्य पर जीवन-निर्वाह करनेवाला—ये छह सदा दुःखी रहते हैं।

**सप्त दोषाः सदा राज्ञा हातव्या व्यसनोदयाः। □**
**प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः ॥७२॥**
**स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमम्। □**
**महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च ॥७३॥**

स्त्रीविषयक आसक्ति, जुआ खेलना, शिकार करना, मद्यपान, वाणी की कठोरता, अत्यन्त कठोर दण्ड देना तथा धन का दुरुपयोग करना—ये सात दुःखदायी दोष राजा को सदा त्याग देने चाहिएँ। इन दोषों से दृढ़मूल राजा भी प्रायः नष्ट हो जाते हैं।

**अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति**
**प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च। □**

**पराक्रमश्चाबहुभाषिता च**
**दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥७४॥**

बुद्धि, कुलीनता, मन को वश में रखना, शास्त्र-ज्ञान, पराक्रम, अधिक न बोलना, शक्ति के अनुसार दान देना और कृतज्ञता—ये आठ गुण मनुष्य को चमका देते हैं, उसके यश को फैलाते हैं।

**नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पञ्चसाक्षिकम्।**
**क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः ॥७५॥**

जो विद्वान् [आँख, नाकादि] नौ द्वारवाले, तीन [सत्त्व, रज, तमरूपी] खम्भोंवाले, पाँच [ज्ञानेन्द्रिय-रूप] साक्षीवाले, आत्मा के निवास-स्थान इस शरीर-रूपी गृह को सत्त्वरूप से जानता है, वह बहुत बड़ा ज्ञानी है।

**दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान्।**
**मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥७६॥**
**त्वरमाणश्च लब्धश्च भीतः कामी च ते दश।**
**तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः ॥७७॥**

महाराज धृतराष्ट्र! ये दस प्रकार के लोग जो धर्म के तत्त्व को नहीं जानते, उनके नाम सुनो—नशे में मतवाला, असावधान, पागल, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, जल्दबाज, लोभी, भयभीत और कामी—इस प्रकार के लोगों में विद्वान् पुरुष को आसक्त नहीं होना चाहिए।

**यः काममन्यू प्रजहाति राजा**
**पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च।**
**विशेषवित् श्रुतवान् क्षिप्रकारी**
**तं सर्वलोकः कुरुते प्रमाणम् ॥७८॥**

जो राजा काम और क्रोध को त्याग देता है, सुपात्र को धन देता है, विशेषज्ञ है, शास्त्रों का ज्ञाता और कर्त्तव्य को शीघ्र पूरा करनेवाला है, उस [के व्यवहार और वचनों] को सब लोग प्रमाण मानते हैं।

**जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान्**
**विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम्। □**
**जानाति मात्रां च तथा क्षमां च**
**तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्राः ॥७९॥**

जो मनुष्यों में विश्वास उत्पन्न करना जानता है, जिनका अपराध प्रमाणित हो गया है उन्हीं को दण्ड देने की न्यून-अधिक मात्रा तथा क्षमा का उपयोग जानता है, उस राजा की सेवा में सम्पूर्ण सम्पत्ति चली आती है।

**सुदुर्बलं नावजानाति कञ्चिद्**
**युक्तो रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम्। □**
**न विग्रहं रोचयते बलस्थैः**
**काले च यो विक्रमते स धीरः ॥८०॥**

जो किसी दुर्बल का अपमान नहीं करता, सदा सावधान रहकर शत्रु के साथ बुद्धिपूर्वक व्यवहार करता है, बलवानों के साथ युद्ध पसन्द नहीं करता तथा समय पड़ने पर पराक्रम दिखाता है, वही धीर है।

**न योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च**
**न दुर्बलः प्रतिभाव्यं करोति।**
**नात्याह किञ्चित् क्षमते विवादं**
**सर्वत्र तादृग् लभते प्रशंसाम् ॥८१॥**

जो दूसरों के दोष नहीं देखता, सबपर दया करता है, असमर्थ होते हुए किसी की जमानत नहीं देता, बढ़कर नहीं बोलता तथा विवाद को सह लेता है—ऐसा मनुष्य सर्वत्र प्रशंसा पाता है।

**न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं**
**न दर्पमारोहति नास्तमेति। □**
**न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं**
**तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥८२॥**

जो शान्त हुई वैर की अग्नि को पुनः प्रज्वलित नहीं करता, गर्व नहीं करता, हीनता नहीं दिखाता तथा 'मैं विपत्ति में पड़ा हूँ' ऐसा सोचकर अनुचित कार्य नहीं करता, ऐसे उत्तम आचरणवाले पुरुष को आर्यजन सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।

**न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं**
**नान्यस्य दुःखे भवति विषादी। □**
**दत्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं**
**स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥८३॥**

जो अपने सुख में प्रसन्न नहीं होता, दूसरे को दुःख में देखकर दुःखी हो जाता है, दान देकर पश्चात्ताप नहीं करता, वह सज्जनों में सदाचारी कहलाता है।

**दम्भं मोहं मत्सरं पापकृत्यं**
**राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम् ।□**
**मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं**
**यः प्रज्ञावान् वर्जयेत् स प्रधानः ॥८४॥**

जो बुद्धिमान् दम्भ, मोह, मात्सर्य, पापकर्म, राजद्रोह, चुगलखोरी, समूह से वैर, मतवाले, पागल और दुर्जनों से विवाद छोड़ देता है, वह श्रेष्ठ है।

**मितं भुंक्ते संविभज्याश्रितेभ्यो**
**मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा ।**
**ददात्यमित्रेष्वपि याचितः सं-**
**स्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः ॥८५॥**

जो अपने आश्रित जनों को बाँटकर थोड़ा ही भोजन करता है, बहुत अधिक काम करके भी थोड़ा सोता है तथा माँगने पर जो मित्र नहीं हैं, उन्हें भी धन देता है, उस मनस्वी मनुष्य को सारे अनर्थ दूर से ही छोड़ देते हैं।

**पाण्डो सुताः पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पाः**
**बालास्त्वया वर्धिताः शिक्षिताश्च ।**
**प्रदायैषामुचितं तात राज्यं**
**सुखी पुत्रैः सहितो मोदमानः ॥८६॥**

तात ! महाराज पाण्डु के पाँच पुत्र पाँच इन्द्रों के समान शक्तिशाली हैं। उन्हें आपने ही बाल्यावस्था से पाला और शिक्षित किया है। उन्हें उनका न्यायोचित राज्यभाग देकर आप अपने पुत्रों के साथ आनन्दित होते हुए सुख भोगिए।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥८॥**

# नवमोऽध्यायः

## धृतराष्ट्र के प्रति विदुर के नीतियुक्त वचन

धृतराष्ट्र उवाच

**त्वं मां यथावद् विदुर प्रशाधि**
**स्वप्रज्ञया सर्वमजातशत्रोः ।**
**यन्मन्यसे पथ्यमदीनसत्त्व**
**श्रेयस्करं ब्रूहि तद् वै कुरूणाम् ॥१॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—उदारचित्त विदुर ! तुम अपनी बुद्धि से विचारकर मुझे ठीक-ठीक उपदेश दो। तुम जो बात युधिष्ठिर के लिए हितकर तथा कौरवों के लिए कल्याणकारी समझो, वह सब अवश्य बताओ।

विदुर उवाच

**शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम् ।□**
**अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद् यस्य नेच्छेत् पराभवम् ॥२॥**

**विदुरजी ने कहा**—राजन् ! मनुष्य को चाहिए कि वह जिसकी पराजय नहीं चाहता, उसको बिना पूछे भी शुभ या अशुभ [अच्छी अथवा बुरी] कल्याणकारी या अनिष्टकारी—जो भी बात हो, बता दे।

**तस्माद्वक्ष्यामि ते राजन् हितं यत्स्यात्कुरून्प्रति ।**
**वचः श्रेयस्करं धर्म्यं ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥३॥**

अतः हे राजन् ! जिससे समस्त कौरवों का हित हो, मैं वही बात आप से कहूँगा। मैं जो कल्याणकारी और धर्मयुक्त वचन कह रहा हूँ, आप इन्हें ध्यानपूर्वक सुनें।

**न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसाम्प्रतम् ।**
**श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम् ॥४॥**

'अब तो राज्य प्राप्त हो ही गया'—ऐसा समझकर किसी से भी अनुचित् बर्ताव नहीं करना चाहिए। उद्दण्डता सम्पत्ति को उसी प्रकार नष्ट कर देती है, जैसे बुढ़ापा सुन्दर शरीर को नष्ट कर देता है।

**भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं मत्स्यो बडिशमायसम् ।**
**लोभाभिपाती ग्रसते नानुबन्धमवेक्षते ॥५॥**

मछली उत्तम खाद्य वस्तु से ढके हुए लोहे के काँटे को लोभ में पड़कर निगल जाती है, उससे होनेवाले परिणाम पर विचार नहीं करती [अतः मर जाती है]।

**यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत् ।□**
**हितं च परिणामे यत् तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥६॥**

अपनी उन्नति के इच्छुक पुरुष को वही वस्तु खानी या ग्रहण करनी चाहिए [जो परिणाम में

अनिष्टकर न हो अर्थात् जो खाने योग्य हो तथा खाई जा सके, खाने या ग्रहण करने पर पच सके तथा पच जाने पर हितकारी हो।

**वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः।□**
**स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति ॥७॥**

जो पेड़ से कच्चे फलों को तोड़ता है, वह उन फलों से रस तो पाता नहीं, उस वृक्ष के बीज का भी नाश हो जाता है।

**यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम्।□**
**फलाद् रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः ॥८॥**

परन्तु जो समय पर पके हुए फल को ग्रहण करता है, वह फल से रस तो प्राप्त करता ही है, साथ ही उस बीज से पुनः फल भी पाता है।

**यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः।□**
**तद्वदर्थान् मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ॥९॥**

जैसे भ्रमर [भौंरा] फूलों की रक्षा करता हुआ ही उनके मधु का ग्रहण करता है, वैसे ही राजा भी प्रजाजनों को कष्ट दिये बिना ही उनसे धन [कर] ले।

**पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।**
**मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारकः ॥१०॥**

जैसे माली उद्यान में से एक-एक फूल तोड़ता है, वृक्षों की जड़ नहीं काटता, वैसे ही राजा प्रजा की रक्षापूर्वक उनसे कर ले, कोयला बनानेवाले की भाँति उन्हें जड़ से न काटे।

**सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद् दुरारुहः।**
**अपक्वः पक्वसङ्काशो न तु शीर्येत कर्हिचित् ॥११॥**

राजा वृक्ष की भाँति अच्छी प्रकार फूलने [प्रसन्न रहने] पर भी फल से खाली रहे [बहु दानी न हो]। यदि फल से युक्त [दानशील] हो तो भी जिसपर चढ़ा न जा सके, ऐसा पहुँच से बाहर होकर रहे। कच्चा [अल्पशक्ति] होने पर भी अपने को पके [शक्तिसम्पन्न] की भाँति प्रकट करे। ऐसा करने से वह नष्ट नहीं होता।

**चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।**
**प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति ॥१२॥**

जो राजा नेत्र, मन, वाणी, और कर्म—इन चारों से प्रजा को प्रसन्न करता है, उसी से प्रजा प्रसन्न होती है।

**पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा।**
**वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः ॥१३॥**

अन्याय में स्थित हुआ राजा बाप-दादों का राज्य पाकर भी अपने कर्मों से उसे इस प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे वायु बादल को छिन्न-भिन्न कर देती है।

**अथ संत्यजतो धर्ममधर्मं चानुतिष्ठतः।**
**प्रतिसंवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा ॥१४॥**

जो राजा धर्म को छोड़कर अधर्म का अनुष्ठान करता है, उसके राज्य की भूमि अग्नि पर रखे हुए चमड़े की भाँति संकुचित हो जाती है।

**धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत्।**
**धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते ॥१५॥**

धर्म से ही राज्य प्राप्त करे और धर्म से ही उसकी रक्षा करे, क्योंकि धर्ममूलक राज्यलक्ष्मी को पाकर न तो राजा उसे छोड़ता है और न वह राजा को छोड़ती है।

**अप्युन्मत्तात्प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः।**
**सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव काञ्चनम् ॥१६॥**

निरर्थक बोलनेवाले, पागल तथा बकवाद करनेवाले बालक से भी सार बात उसी प्रकार ग्रहण कर लेनी चाहिए, जैसे पत्थरों में से सोना ले लिया जाता है।

**सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः।**
**संचिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा ॥१७॥**

जैसे शिलोञ्छवृत्ति से जीवन-निर्वाह करनेवाला अन्न का एक-एक दाना चुगता रहता है, उसी प्रकार धीर पुरुष को जहाँ-तहाँ से भावपूर्ण वचनों, सूक्तियों और सत्कर्मों का संग्रह करते रहना चाहिए।

**गावः गन्धेन पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः।**
**चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥१८॥**

गौएँ गन्ध से, ब्राह्मण लोग वेदों से, राजा गुप्तचरों से तथा अन्य साधारण लोग आँखों से देखते हैं।

**भूयाँसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा।**
**अथ या सुदुहा राजन् नैव तां वितुदन्त्यपि ॥१९॥**

राजन्! जो गाय बड़ी कठिनाई से दुहने देती है,

वह बहुत क्लेश उठाती है परन्तु जो सरलतापूर्वक दूध देती है, उसे लोग कष्ट नहीं देते।

**यदतप्तं प्रणमति न तत् सन्तापयन्त्यपि ।**
**यच्च स्वयं नतं दारु न तत् संनामयन्त्यपि ॥२०॥**

जो धातु बिना गर्म किये मुड़ जाती हैं, उन्हें अग्नि में नहीं तपाते। जो काष्ठ [लकड़ी] स्वयं झुका होता है, उसे कोई झुकाने का प्रयत्न नहीं करता [अर्थात् बुद्धिमान् को अधिक बलवान् के समक्ष झुक जाना चाहिए]।

**सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।□**
**मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥२१॥**

सत्य से धर्म की रक्षा होती है, योग से विद्या सुरक्षित रहती है, स्वच्छता से [सुन्दर] रूप की रक्षा होती है और सदाचार से कुल की रक्षा होती है।

**न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः ।□**
**अन्तेष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते ॥२२॥**

मेरा ऐसा मत है कि सदाचार से हीन मनुष्य का केवल उच्चकुल मान्य नहीं हो सकता, क्योंकि नीच-कुल में उत्पन्न मनुष्य का भी सदाचार श्रेष्ठ माना जाता है।

**य ईर्ष्युः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये ।□**
**सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः ॥२३॥**

जो दूसरों के धन, रूप, पराक्रम, कुलीनता, सुख, सौभाग्य और सम्मान पर डाह करता है, उसका यह रोग असाध्य है।

**विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः ।□**
**मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः ॥२४॥**

विद्या का मद, धन-मद तथा तीसरा उच्चकुल का मद—ये अभिमानी मनुष्यों के लिए तो मद हैं परन्तु ये [विद्या, धन और कुलीनता] ही सज्जन पुरुषों के लिए दम के साधन हैं।

**जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता ।□**
**अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम् ॥२५॥**

अच्छे वस्त्रवाला सभा को जीत लेता [सभा में अपना प्रभाव जमा लेता] है, जिसके पास गौ है वह [दूध, घी आदि पदार्थों के आस्वादन से] मीठे स्वाद की इच्छा को जीत लेता है, सवारी से चलनेवाला मार्ग को जीत लेता [पार कर लेता] है तथा शील स्वभाववाला पुरुष सबपर विजय पा लेता है।

**शीलं प्रधानं पुरुषे तद् यस्येह प्रणश्यति ।□**
**न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः ॥२६॥**

पुरुषों में शील ही प्रधान है, जिसका शील ही नष्ट हो जाता है, इस संसार में उसका जीवन, धन और बन्धुओं से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

**ऐश्वर्यमदपापिष्ठा मदाः पानमदादयः ।**
**ऐश्वर्यमदमत्तो हि नापतित्वा विबुध्यते ॥२७॥**

यूँ तो मादक वस्तुओं के पीने का नशा आदि भी नशा ही है, परन्तु ऐश्वर्य का नशा तो बहुत ही बुरा है, क्योंकि ऐश्वर्य के मद से मतवाला पुरुष भ्रष्ट (पतित) हुए बिना होश में नहीं आता।

**यो जितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्मकर्षिणा ।**
**आपदस्तस्य वर्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराट् ॥२८॥**

जो मनुष्य जीवों को सहज वश में करनेवाली पाँच इन्द्रियों से जीत लिया गया, उसकी आपत्तियाँ शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भाँति बढ़ती हैं।

**अविजित्य य आत्मानममात्यान् विजिगीषते ।**
**अमित्रान् वाजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते ॥२९॥**

जो राजा इन्द्रियोंसहित मन को जीते बिना ही मन्त्रियों को जीतने की इच्छा करता है अथवा मन्त्रियों को अपने अधीन किये बिना शत्रुओं को जीतना चाहता है, उस अजितेन्द्रिय राजा या पुरुष को सब लोग त्याग देते हैं।

**आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण यो जयेत् ।**
**ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते ॥३०॥**

जो पहले इन्द्रियोंसहित मन को ही शत्रु समझकर जीत लेता है, तत्पश्चात् यदि वह मन्त्रियों तथा शत्रुओं को जीतने की इच्छा करे तो उसे सफलता मिलती है।

**वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु ।□**
**परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥३१॥**

इन्द्रियों तथा मन को जीतनेवाले, अपराधियों को दण्ड देनेवाले तथा जाँच-परखकर कार्य करने-वाले धीर पुरुष की लक्ष्मी अत्यन्त सेवा करती है।

**रथः शरीरं पुरुषस्य राज-**
**न्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः ।**
**तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वै-**
**र्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः ॥३२॥**

राजन् ! मनुष्य का शरीर रथ है, बुद्धि सारथि है तथा इन्द्रियाँ इसके घोड़े हैं। इनको वश में करके सावधान रहनेवाला चतुर एवं धीर पुरुष काबू में किये हुए घोड़ों से रथी की भाँति सुखपूर्वक संसार-पथ का अतिक्रमण करता है।

**एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम् ।**
**अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ॥३३॥**

शिक्षा न पाये हुए तथा वश में न आनेवाले घोड़े जैसे मूर्ख रथी को मार्ग में गिरा देते हैं, वैसे ही ये इन्द्रियाँ वश में न रहने पर मनुष्य को मार डालने में भी समर्थ होती हैं।

**धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः ।**
**श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ॥३४॥**

जो मनुष्य धर्म और अर्थ का परित्याग करके इन्द्रियों के वशीभूत हो जाता है, वह शीघ्र ही ऐश्वर्य, प्राण, धन तथा स्त्री से भी हाथ धो बैठता है।

**आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः ।**
**आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥३५॥**

मन, बुद्धि और इन्द्रियों को अपने वश में कर अपने द्वारा ही अपने आत्मा को जीतने की इच्छा करे, क्योंकि उद्धारकर्ता आत्मा ही अपना बन्धु और उद्धार-पराङ्मुख आत्मा ही अपना शत्रु है।

**क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुभौ ।**
**कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः ॥३६॥**

राजन् ! जैसे सूक्ष्म छेदवाले जाल में फँसी हुई दो बड़ी-बड़ी मछलियाँ मिलकर जाल को काट डालती हैं, उसी प्रकार काम और क्रोध—ये दोनों विवेक को लुप्त कर देते हैं।

**अनसूयाऽऽर्जवं शौचं सन्तोषः प्रियवादिता ।□**
**दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम् ॥३७॥**

गुणों में दोष न देखना, सरलता, पवित्रता, सन्तोष, प्रियवचन बोलना, इन्द्रिय-दमन, सत्य भाषण और सहिष्णुता—ये गुण दुरात्माओं में नहीं होते।

**आत्मज्ञानमसंरम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।□**
**वाक् चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत ॥३८॥**

भारत ! आत्मज्ञान, अक्रोध, सहनशीलता, धर्म-परायणता, प्रतिज्ञा-पालन तथा दान—ये गुण अधम =नीच पुरुषों में नहीं होते।

**आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान् ।□**
**वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते ॥३९॥**

मूर्ख मनुष्य विद्वानों को गाली और निन्दा से कष्ट पहुँचाते हैं। गाली देनेवाला पाप का भागी होता है और क्षमा करनेवाला पाप से मुक्त हो जाता है।

**हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम् ।□**
**शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम् ॥४०॥**

हिंसा दुष्टों का बल है, दण्ड देना राजाओं का बल है, शुश्रूषा नारियों का बल है तथा क्षमा करना गुणवानों का बल है।

**वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः ।**
**अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहु भाषितुम् ॥४१॥**

राजन् ! वाणी का पूर्ण संयम तो बहुत कठिन है ही, परन्तु विशेष अर्थयुक्त तथा चमत्कारपूर्ण वाणी भी अधिक नहीं बोली जा सकती [अतः दुष्कर होने पर भी वाणी का संयम करना चाहिए]।

**अभ्यावहति कल्याणं विविधा वाक् सुभाषिता ।**
**सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते ॥४२॥**

राजन् ! मधुर शब्दों में कही हुई बात अनेक प्रकार से कल्याण करती है परन्तु वही बात यदि कटु शब्दों में कही जाए तो महान् अनर्थ का कारण बन जाती है।

**रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।**
**वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥४३॥**

बाणों से बिंधा हुआ तथा फरसे से कटा हुआ वन पुनः अंकुरित हो जाता है, परन्तु कटु वचन कहकर वाणी से किया हुआ भयानक घाव कभी नहीं भरता।

**कर्णिनालीकनाराचा निर्हरन्ति शरीरतः ।**
**वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ॥४४॥**

कर्णि, नालीक और नाराच नामक बाणों को

शरीर से निकाल सकते हैं, परन्तु कटु वचनरूपी बाण नहीं निकाला जा सकता, क्योंकि वह हृदय के भीतर धँस जाता है।

**वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति**
**यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।**
**परस्य नामर्मसु ते पतन्ति**
**तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः ॥४५॥**

कटुवचन रूपी बाण मुख से निकलकर दूसरों के मर्म-स्थान पर चोट करते हैं, उनसे आहत मनुष्य रात-दिन घुलता रहता है, अतः विद्वान् पुरुष दूसरों पर उनका प्रयोग न करे।

**यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्।**
**बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽपाचीनानि पश्यति ॥४६॥**

देवता लोग जिसे पराजय देते हैं, उसकी बुद्धि को पहले ही हर लेते हैं, इससे वह नीच कर्मों पर ही अधिक दृष्टि रखता है।

**बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे समुपस्थिते।**
**अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ॥४७॥**

विनाशकाल उपस्थित होने पर बुद्धि मलिन हो जाती है, फिर तो न्याय के समान प्रतीत होनेवाला अन्याय हृदय से बाहर नहीं निकलता।

**सेयं बुद्धिः परीता ते पुत्राणां भरतर्षभ।**
**पाण्डवानां विरोधेन न चैनानवबुध्यसे ॥४८॥**

भरतश्रेष्ठ! आपके पुत्रों की वह बुद्धि पाण्डवों के प्रति विरोध से व्याप्त हो गई है, आप इन्हें [अपने मलिन बुद्धि पुत्रों को] पहचान नहीं पा रहे हैं।

**राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत्।**
**शिष्यस्ते शासिता सोऽस्तु धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः ॥४९॥**

महाराज धृतराष्ट्र! जो राजलक्षणों से सम्पन्न होने के कारण त्रिभुवन का भी राजा हो सकता है, वह आपका आज्ञाकारी युधिष्ठिर ही इस भूमण्डल का शासक होने योग्य है।

**अतीत्य सर्वान् पुत्रांस्ते भागधेयपुरस्कृतः।**
**तेजसा प्रज्ञया चैव युक्तो धर्मार्थतत्त्ववित् ॥५०॥**

वह धर्म तथा अर्थ के तत्त्व को जाननेवाला, तेज और बुद्धि से युक्त, पूर्ण सौभाग्यशाली और आपके सभी पुत्रों से बढ़-चढ़कर है।

**अनुक्रोशादानृशंस्याद् योऽसौ धर्मभृतां वरः।**
**गौरवात् तव राजेन्द्र बहून् क्लेशाँस्तितिक्षति ॥५१॥**

राजेन्द्र! धर्मधारियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर दया, सौम्यभाव और आपके प्रति पूज्य बुद्धि रखने के कारण बहुत कष्ट सह रहा है।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि नवमोऽध्यायः ॥९॥**

## दशमोऽध्यायः

### विदुर का धृतराष्ट्र को धर्मोपदेश

धृतराष्ट्र उवाच

**ब्रूहि भूयो महाबुद्धे धर्मार्थसहितं वचः।**
**शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिर्विचित्राणीह भाषसे ॥१॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—महाबुद्धे! तुम पुनः धर्म और अर्थ से युक्त बातें सुनाओ। इन्हें सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। इस विषय में तुम विलक्षण बातें कह रहे हो।

विदुर उवाच

**सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम्।**
**उभे त्वेते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते ॥२॥**

**विदुरजी ने कहा**—राजन्! सब तीर्थों में स्नान तथा सब प्राणियों के साथ कोमलता का बर्ताव—ये दोनों एक समान हैं, अथवा इनमें कोमलता के बर्ताव का अधिक महत्त्व है।

**आर्जवं प्रतिपद्यस्व पुत्रेषु सततं विभो।**
**इह कीर्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥३॥**

राजन्! आप अपने पुत्र कौरव और पाण्डवों के साथ समान रूप से कोमलता का बर्ताव कीजिए। ऐसा करने से आपको इस लोक में महान् सुयश की प्राप्ति होगी और मरने के पश्चात् स्वर्ग=सुखविशेष की प्रप्ति होगी।

**त्वं हि राजेन्द्र भूम्यर्थे नानृतं वक्तुमर्हसि ।**
**मा गमः ससुतामात्यो नाशं पुत्रार्थमब्रुवन् ।।४।।**

राजेन्द्र ! आप राज्य के लिए झूठ न बोलें। पुत्र के स्वार्थवश सच्ची बात न कहकर पुत्र और मन्त्रियों के साथ विनाश के मुख में न जाएँ।

**न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।□**
**यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धचा संविभजन्ति तम् ।।५।।**

देवता लोग ग्वालों की भाँति डण्डा लेकर किसी की रक्षा नहीं करते। वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे उत्तम बुद्धि से युक्त कर देते हैं।

**यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।**
**तथा तथास्य सर्वार्थाः सिद्धचन्ते नात्र संशयः ।।६।।**

मनुष्य जैसे-जैसे कल्याण में मन लगता है, वैसे-वैसे ही उसके सारे अभीष्ट सिद्ध होते जाते हैं—इसमें रत्तीभर भी सन्देह नहीं है।

**न छन्दाँसि वृजिनात् तारयन्ति**
**मायाविनं मायया वर्तमानम् ।**
**नीडं शकुन्ता इव जातपक्षा-**
**श्छन्दाँस्येनं प्रजहत्यन्तकाले ।।७।।**

कपटपूर्ण व्यवहार करनेवाले मायावी को वेद भी पापों से मुक्त नहीं कर सकते, अपितु जैसे पंख निकल आने पर चिड़ियों के बच्चे घोंसला छोड़ देते हैं, उसी प्रकार वेद भी अन्तकाल में उस मायावी को त्याग देते हैं।

**मद्यपानं कलहं पूगवैरं**
**भार्यापत्योरन्तरं ज्ञातिभेदम् ।**
**राजद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं**
**वर्ज्यान्याहुर्यश्च पन्थाः प्रदुष्टः ।।८।।**

शराब पीना, कलह, समूह के साथ वैर, पति-पत्नी में भेद डालना, कुटुम्बवालों में भेद-बुद्धि उत्पन्न करना, राजा के साथ द्वेष, स्त्री और पुरुष में विवाद तथा बुरे रास्ते—ये सब परित्याग करने योग्य बताये गये हैं।

**सामुद्रिकं वणिजं चोरपूर्वं**
**शलाकधूर्तं च चिकित्सकं च ।**
**अरिं च मित्रं च कुशीलवं च**
**नैतान् साक्ष्ये त्वधिकुर्वीत सप्त ।।९।।**

हस्तरेखा देखनेवाला, चोरी करके व्यापार करनेवाला, जुआरी, वैद्य, शत्रु, मित्र और नर्तक—इन सात को कभी भी गवाह न बनाए।

**तृणोल्कया हि ज्ञायते जातरूपं**
**वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः ।**
**शूरो भयेषु चार्थकृच्छ्रेषु धीरः**
**कृच्छ्रेष्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च ।।१०।।**

जलती हुई अग्नि से सुवर्ण की पहचान होती है; सदाचार से सत्पुरुष की, व्यवहार से श्रेष्ठ पुरुष की, भय प्राप्त होने पर शूर की, आर्थिक कठिनाइयों में धीर की और कठिन आपत्तियों में शत्रु एवं मित्र की परीक्षा होती है।

**जरा रूपं हरति धैर्यमाशा**
**मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया ।□**
**क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा**
**ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः ।।११।।**

वृद्धावस्था सुन्दर रूप को, आशा धीरता को, मृत्यु प्राणों को, असूया [गुणों में दोष देखने की प्रवृत्ति] धर्माचरण को, क्रोध लक्ष्मी को, नीच पुरुषों की सेवा सत्स्वभाव को, काम लज्जा को और अभिमान सर्वस्व को नष्ट कर देता है।

**श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति प्रागल्भ्यात् सम्प्रवर्धते ।**
**दाक्ष्यात् तु कुरुते मूलं संयमात् प्रतितिष्ठति ।।१२।।**

शुभ कर्मों से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, प्रगल्भता से वह बढ़ती है, चतुरता से जड़ जमा लेती है और संयम से सुरक्षित रहती है।

**अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके**
**स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि ।**
**चत्वार्येषामन्ववेतानि सद्भि-**
**श्चत्वारि चैषामनुयान्ति सन्तः ।।१३।।**

राजन् ! मनुष्यलोक में आठ गुण स्वर्गलोक का दर्शन करानेवाले हैं, इनमें से चार तो सन्तों के साथ नित्य सम्बद्ध हैं—उनमें सदा विद्यमान रहते हैं तथा चार का सज्जन पुरुष अनुसरण करते हैं।

**यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च**
**चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः ।**

**दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं**
**चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः ।।१४।।**

यज्ञ, दान, शास्त्रों का अध्ययन और तप—ये चार सज्जनों के साथ सदा सम्बद्ध हैं तथा मनोनिग्रह, सत्य, सरलता और कोमलता—इन चारों का सन्तजन अनुसरण करते हैं।

**इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा । □**
**अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधाः स्मृतः।।१५।।**
**तत्र पूर्वचतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते ।**
**उत्तरस्तु चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति ।।१६।।**

यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और निर्लोभता—ये धर्म के आठ प्रकार के मार्ग बताये गये हैं। इनमें से पहले चार का तो कोई दम्भी मनुष्य भी दम्भ के लिए सेवन कर सकता है, परन्तु अन्तिम चार तो जो महात्मा नहीं हैं, उनमें रह ही नहीं सकते।

**न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा**
**वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।**
**धर्मो न स यत्र न सत्यमस्ति**
**सत्यं न तत् यच्छलेनाभ्युपेतम् ।।१७।।**

जिस सभा में वृद्ध न हों, वह सभा नहीं; जो धर्म की बात न कहें, वे वृद्ध नहीं; जिसमें सत्य न हो वह धर्म नहीं और जो कपट से पूर्ण हो, वह सत्य नहीं है।

**सत्यं व्रतं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम् ।**
**शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशेमे स्वर्गयोनयः ।।१८।।**

सत्य, व्रतपालन, शास्त्रज्ञान, विद्या, कुलीनता, शील, बल, शूरवीरता और चमत्कारपूर्ण बात कहना—ये दस स्वर्ग के हेतु हैं।

**असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः ।**
**स कृच्छ्रं महदाप्नोति न चिरात् पापमाचरन् ।।१९।।**

गुणों में दोष देखनेवाला, मर्म पर आघात करनेवाला, निर्दय [दयाहीन], शत्रुता करनेवाला और शठ=दुष्ट पुरुष पाप-आचरण करता हुआ शीघ्र ही महान् कष्ट को प्राप्त होता है।

**दिवसेनैव तत् कुर्याद् येन रात्रौ सुखं वसेत् ।**
**अष्टमासेन तत्कुर्याद् येन वर्षाः सुखं वसेत् ।।२०।।**

दिनभर में वह कार्य कर ले जिससे रात्रि में सुख से रह सके और आठ मास में वह कार्य कर ले, जिससे वर्षा के चार मास सुख से व्यतीत कर सके।

**पूर्वे वयसि तत् कुर्याद् येन वृद्धः सुखं वसेत् ।**
**यावज्जीवेन तत् कुर्याद् येन प्रेत्य सुखं वसेत् ।।२१।।**

पहली अवस्था [यौवन] में वह काम करे जिससे वृद्धावस्था में सुखपूर्वक रह सके और जीवनभर वह कार्य करे जिससे मरने के पश्चात् भी [परलोक, पुनर्जन्म में] सुख से रह सके।

**जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम् ।**
**शूरं विजितसंग्रामं गतपारं तपस्विनम् ।।२२।।**

सज्जन पुरुष पच जाने पर अन्न की, निष्कलङ्क यौवन बीत जाने पर पत्नी या स्त्री की, संग्राम विजय कर लेने पर शूरवीर की तथा संसार-सागर को पार कर लेने पर तपस्वी की प्रशंसा करते हैं।

**ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम् ।**
**प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च ।।२३।।**

ऋषि और महात्माओं के कुल तथा नदियों के उत्पत्ति-स्थान को जानने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, इसी प्रकार स्त्रियों के दुश्चरित का कारण जानने का भी प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

**द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी ।**
**क्षत्रियः शीलभाग् राजँश्चिरं पालयते महीम् ।।२४।।**

राजन्! ब्राह्मणों के आदर-सम्मान में लगा रहनेवाला, दाता, कुटुम्बी जनों के प्रति कोमलता का व्यवहार करनेवाला तथा शीलवान् राजा चिरकाल तक पृथिवी का पालन करता है।

**सुवर्णपुष्पितां पृथ्वीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः ।**
**शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ।।२५।।**

शूरवीर, विद्वान् और सेवाधर्म को जाननेवाले—ये तीन प्रकार के मनुष्य ही पृथिवीरूप लता से सुवर्णरूप पुष्पों का संचय करते हैं।

**दुर्योधनेऽथ शकुनौ मूढे दुःशासने तथा ।**
**कर्णे चैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ।।२६।।**

राजन्! आप दुर्योधन, शकुनि, मूर्ख दुःशासन तथा कर्ण पर राज्य का भार रखकर उन्नति कैसे चाहते हैं?

**सर्वैर्गुणैरुपेतास्तु पाण्डवा भरतर्षभ ।**
**पितृवत् त्वयि वर्तन्ते तेषु वर्तस्व पुत्रवत् ॥२७॥**

भरतश्रेष्ठ ! पाण्डव सभी उत्तमगुणों से सम्पन्न हैं और आप में पिता का-सा भाव रखकर बर्ताव करते हैं, आप भी उनपर पुत्रभाव रखकर उचित बर्ताव कीजिए।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥१०॥**

# एकादशोऽध्यायः

## महाकुलीन लोगों के लक्षण बताते हुए विदुर का धृतराष्ट्र को समझाना

धृतराष्ट्र उवाच

**महाकुलाणां स्पृहयन्ति देवा**
**धर्मार्थनित्याश्च बहुश्रुताश्च ।**
**पृच्छामि त्वां विदुर प्रश्नमेतं**
**भवन्ति वै कानि महाकुलानि ॥१॥**

**धृतराष्ट्र ने कहा**—विदुर ! धर्म और अर्थ के अनुष्ठान में तत्पर तथा बहुश्रुत देवता भी उत्तम कुल में उत्पन्न पुरुषों की इच्छा करते हैं, अतः मैं तुमसे पूछता हूँ कि उत्तम कुल कौन-से हैं ?

विदुर उवाच

**तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः**
**पुण्या विवाहाः सततान्नदानम् ।□**
**येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति**
**सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि ॥२॥**

**विदुरजी बोले**—राजन् ! जिनमें तप, इन्द्रिय-संयम, वेदों का स्वाध्याय, यज्ञ, पवित्र विवाह, निरन्तर अन्नदान और सदाचार—ये सात गुण वर्तमान हैं, उन्हें महान् [उत्तम] कुल कहते हैं।

**येषां हि वृत्तं व्यथते न योनि-**
**श्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम् ।□**
**ये कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां**
**त्यक्तानृतानि च महाकुलानि ॥३॥**

जिनका सदाचार शिथिल नहीं होता, जो अपने दोषों से माता-पिता को कष्ट नहीं पहुँचाते, जो प्रसन्न-चित्त से धर्म का आचरण करते हैं एवं असत्य का परित्याग कर अपने कुल की विशेष कीर्ति चाहते हैं, वे ही महान् कुल कहलाते हैं।

**अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च ।□**
**कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च ॥४॥**

यज्ञों के परित्याग से, निन्दित कुल में विवाह करने से, वेद का त्याग और धर्म का उल्लंघन करने से उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं।

**कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः ।□**
**कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥५॥**

गौओं, मनुष्यों और धन से सम्पन्न होकर भी जो कुल सदाचार से हीन हैं, वे उत्तम कुलों की गणना में नहीं आ सकते।

**वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि ।□**
**कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ॥६॥**

थोड़े धनवाले कुल भी यदि सदाचार-सम्पन्न हैं तो वे उत्तम कुलों की गणना में आ जाते हैं तथा महान् यश प्राप्त करते हैं।

**वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च ।□**
**अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥७॥**

मनुष्य को यत्नपूर्वक सदाचार की रक्षा करनी चाहिए, धन तो आता और जाता रहता है। धन नष्ट हो जाने पर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता परन्तु सदाचार से भ्रष्ट हो जाने पर तो उसे नष्ट ही समझना चाहिए।

**मा नः कुले वैरकृत् कश्चिदस्तु**
**राजामात्यो मा परस्वापहारी ।□**
**मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा**
**पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः ॥८॥**

हमारे कुल में कोई वैर करनेवाला न हो, दूसरों के धन का अपहरण करनेवाला राजा अथवा मन्त्री न हो, कोई मित्र-द्रोही, कपटी और असत्यवादी न हो। इसी प्रकार माता-पिता, देवता एवं अतिथियों को भोजन कराने से पहले भोजन करनेवाला भी न हो।

**तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता । □**
**सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥९॥**

तृण का आसन, पृथिवी, जल तथा चौथी मधुर वाणी—सज्जनों के घर में इन चार वस्तुओं की कमी कभी नहीं होती।

**अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः ।**
**शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा ॥१०॥**

दुष्ट पुरुषों का स्वभाव मेघ के समान चञ्चल होता है, वे सहसा क्रुद्ध हो जाते हैं तथा अकारण ही प्रसन्न हो जाते हैं।

**सत्कृताश्च कृतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये । □**
**तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥११॥**

जो मित्रों से सत्कार पाकर तथा उनकी सहायता से कृतार्थ होकर भी उनके नहीं होते, ऐसे कृतघ्नों के मरने पर मांसभोजी जन्तु भी उनका मांस नहीं खाते।

**संतापाद् भ्रश्यते रूपं संतापाद् भ्रश्यते बलम् । □**
**संतापाद् भ्रश्यते ज्ञानं संतापाद् व्याधिमृच्छति ॥१२॥**

सन्ताप [शोक] से रूप नष्ट हो जाता है, सन्ताप से बल नष्ट होता है, सन्ताप से ज्ञान नष्ट होता है तथा सन्ताप से मनुष्य रोगी हो जाता है।

**सुखं च दुःखं च भवाभवौ च**
**लाभालाभौ मरणं जीवितं च । □**
**पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति**
**तस्माद् धीरो न च हृष्येन्न शोचेत् ॥१३॥**

सुख-दुःख, उत्पत्ति-विनाश, लाभ-हानि और जीवन-मरण—ये क्रमशः सबको प्राप्त होते रहते हैं, अतः धीर पुरुष को इनके लिए हर्ष और शोक नहीं करना चाहिए।

धृतराष्ट्र उवाच

**तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया ।**
**मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति ॥१४॥**

**धृतराष्ट्र ने कहा**—काष्ठरूपी शरीर में छिपे हुए अग्नि के समान सूक्ष्म धर्म से बँधे हुए राजा युधिष्ठिर को मैंने अपने मिथ्या व्यवहार से कुपित कर दिया है अतः जैसे अग्नि काष्ठ को जला डालती है, वैसे ही अब वह [युधिष्ठिर] युद्ध करके मेरे मूर्ख पुत्रों का नाश कर डालेगा।

**नित्योद्विग्नमिदं सर्वं नित्योद्विग्नमिदं मनः ।**
**यत् तत् पदमनुद्विग्नं तन्मे वद महामते ॥१५॥**

महामते! यहाँ का [कौरव-कुल का] सारा ही वातावरण भय से उद्विग्न है, मेरा यह मन भी भय से उद्विग्न है, अतः जो उद्वेगरहित और शान्त पद=मार्ग है, वही मुझे बताइए।

विदुर उवाच

**नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ।**
**नान्यत्र लोभसंत्यागाच्छान्ति पश्यामि तेऽनघ ॥१६॥**

**विदुरजी बोले**—निष्पाप नरेश! विद्या, तप, इन्द्रिय-निग्रह तथा लोभत्याग के अतिरिक्त और कोई शान्ति का मार्ग मैं आपके लिए नहीं देखता हूँ।

**बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत् । □**
**गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति ॥१७॥**

बुद्धि से मनुष्य अपने भय को दूर करता है, तपस्या से महत्पद को प्राप्त होता है, गुरु की सेवा से ज्ञान प्राप्त करता है और योग से शान्ति पाता है।

**स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः । □**
**तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते ॥१८॥**

सम्यक् अध्ययन, न्यायोचित युद्ध, पुण्यकर्म और उत्तम प्रकार से किये हुए तप के अन्त में सुख की वृद्धि होती है।

**स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना**
**न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते । □**
**न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति**
**न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः ॥१९॥**

राजन्! परस्पर फूट रखनेवाले लोग अच्छे बिछौनों से युक्त पलंग पाकर भी कभी सुख की नींद नहीं सो सकते; उन्हें स्त्रियों के पास रहकर तथा सूत-मागधों द्वारा की हुई स्तुति सुनकर भी प्रसन्नता नहीं होती।

**न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं**
**न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः । □**
**न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति**
**न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति ॥२०॥**

जो आपस में भेद-भाव रखते हैं, वे कभी धर्म का आचरण नहीं करते। वे सुख भी नहीं पाते। उन्हें

गौरव भी प्राप्त नहीं होता और शान्ति की वार्ता भी उन्हें नहीं सुहाती।

**न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं**
**योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम्।□**
**भिन्नानां वै नृपेन्द्र परायणं**
**न विद्यते किंचिदन्यद् विनाशात् ॥२१॥**

परस्पर भेद-भाव रखनेवालों को हित की बात भी कही जाए तो उन्हें अच्छी नहीं लगती। उनके योगक्षेम की भी सिद्धि नहीं हो पाती। राजन्! भेद-भाववाले पुरुषों की विनाश के अतिरिक्त और कोई गति नहीं है।

**धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।□**
**धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥२२॥**

भरतश्रेष्ठ धृतराष्ट्र! जलती हुई लकड़ियाँ पृथक्-पृथक् होने पर धुआँ देती हैं और एकत्र होने पर प्रज्वलित हो उठती हैं। इसी प्रकार जातिबन्धु भी आपस में फूट होने पर दुःख उठाते हैं तथा एकता होने पर सुखी रहते हैं।

**ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च।□**
**वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतन्ति ते ॥२३॥**

धृतराष्ट्र! जो लोग ब्राह्मणों, स्त्रियों, जाति-वालों और गौओं पर ही शूरता प्रकट करते हैं, वे उसी प्रकार नीचे गिरते हैं, जैसे पकने पर फल डण्ठल से अलग होकर नीचे गिर जाता है।

**महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः।□**
**प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात् ॥२४॥**

यदि वृक्ष अकेला है तो वह बलवान्, दृढ़मूल तथा बहुत बड़ा होने पर भी एक ही क्षण में आँधी के द्वारा बलपूर्वक शाखाओंसहित धराशायी किया जा सकता है।

**अथ ये सहिता वृक्षाः संघशः सुप्रतिष्ठिताः।□**
**ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात् ॥२५॥**

परन्तु जो बहुत-से वृक्ष एक-साथ रहकर समूह के रूप में खड़े होते हैं, वे एक-दूसरे के सहारे बड़ी-से-बड़ी आँधी को भी सह सकते हैं।

**एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम्।□**
**शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम् ॥२६॥**

इसी प्रकार सम्पूर्ण गुणों से समलंकृत मनुष्य को भी अकेले होने पर शत्रु अपनी शक्ति के भीतर समझते हैं, जैसे अकेले वृक्ष को वायु।

**अन्योन्यसमुपष्टम्भादन्योन्योपाश्रयेण च।□**
**ज्ञातयः सम्प्रवर्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत ॥२७॥**

परन्तु परस्पर मेल होने से तथा एक-दूसरे का सहारा मिलने से जातिवाले लोग उसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं जैसे तालाब में कमल।

**अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः।**
**येषां चान्नानि भुञ्जीत ये च स्युः शरणागताः ॥२८॥**

ब्राह्मण, गौ, कुटुम्बी, बालक, स्त्री, अन्नदाता और शरणागत—ये अवध्य होते हैं।

**न मनुष्ये गुणः कश्चिद् राजन् सधनतामृते।**
**अनातुरत्वाद् भद्रं ते मृतकल्पा हि रोगिणः ॥२९॥**

राजन्! आपका कल्याण हो। मनुष्य में धन और आरोग्य को छोड़कर दूसरा कोई गुण नहीं है, क्योंकि रोगी तो मुर्दे के समान है।

**रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते**
**न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम्।**
**दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव**
**न बुध्यन्ते धनभोगान् न सौख्यम् ॥३०॥**

रोग से पीड़ित मनुष्य मधुर फलों का आदर नहीं करते, विषयों में भी उन्हें कुछ सुख या सार नहीं मिलता। रोगी सदा ही दुःखी रहते हैं। वे न तो धन-सम्बन्धी भोगों का अनुभव कर पाते हैं और न ही सुख का।

**पुरा ह्युक्तो नाकरोस्त्वं वचो मे**
**द्यूते जितां द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन्।**
**दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां**
**कितवत्वं पण्डिता वर्जयन्ति ॥३१॥**

राजन्! पहले जुए में द्रौपदी को जीती गई देखकर मैंने आपसे कहा था—"आप द्यूतक्रीड़ा में आसक्त दुर्योधन को रोकिए, बुद्धिमान् लोग इस प्रवञ्चना के लिए मना करते हैं।" परन्तु आपने मेरा कहना नहीं माना।

**धार्तराष्ट्राः पाण्डवान् पालयन्तु**
**पाण्डोः सुतास्तव पुत्रांश्च पान्तु।**

**एकारिमित्राः कुरवः कृतार्थाः**
**जीवन्तु राजन् सुखिनः समृद्धाः ॥३२॥**

राजन् ! आपके पुत्र पाण्डवों की रक्षा करें तथा पाण्डु के पुत्र आपके पुत्रों की रक्षा करें। सभी कौरव एक-दूसरे के शत्रु को शत्रु एवं मित्र को मित्र समझें। सबका एक ही कर्त्तव्य हो, सभी सुखी और समृद्धिशाली होकर जीवन व्यतीत करें।

**यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य-**
**स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः । □**
**मायाचारो मायया वर्तितव्यः**
**साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥३३॥**

जो मनुष्य अपने साथ जैसा व्यवहार करे उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए—यही नीतिधर्म है। कपट का आचरण करनेवाले के साथ कपटपूर्ण बर्ताव करे तथा उत्तम व्यवहार करनेवाले के साथ उत्तम व्यवहार करना चाहिए।

धृतराष्ट्र उवाच

**शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा ।**
**नाप्नोत्यथ च तत् सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥३४॥**

**धृतराष्ट्र ने पूछा**—विदुर ! जब सभी वेदों में मनुष्य को सौ वर्ष की आयुवाला बताया गया है, तब वह किस कारण से अपनी पूर्ण आयु को प्राप्त नहीं होता ?

विदुर उवाच

**अतिमानोऽतिवादश्च तथात्यागो नराधिप । □**
**क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट् ॥३५॥**
**एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम् ।**
**एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते ॥३६॥**

**विदुरजी बोले**—राजन् ! आपका कल्याण हो। अत्यन्त अतिमान [अभिमान, स्वार्थ], बहुत बोलना, त्याग का अभाव [अदानशीलता], क्रोध, अपना ही पेट पालने की चिन्ता और मित्रद्रोह—ये छह तीखी तलवारें देहधारियों की आयुष्य [आयु] को काटती हैं। ये ही मनुष्यों का वध करती हैं, मृत्यु नहीं।

**गृहीतवाक्यो नयविद् वदान्यः**
**शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च । □**
**नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः**
**सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥३७॥**

बड़ों की आज्ञा माननेवाला, नीतिज्ञ, दाता, यज्ञशेष अन्न का भोजन करनेवाला, हिंसारहित, अनर्थपूर्ण कार्यों से दूर रहनेवाला, कृतज्ञ, सत्यवादी तथा कोमल स्वभाववाला विद्वान् ही स्वर्गसुख को प्राप्त करता है।

**सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः । □**
**अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥३८॥**

राजन् ! सदा मधुर वचन बोलनेवाले मनुष्य तो सरलता से मिल सकते हैं परन्तु जो वचन अप्रिय होता हुआ भी हितकारी हो—ऐसे वचन के वक्ता और श्रोता दोनों ही दुर्लभ हैं।

**यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये । □**
**अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् ॥३९॥**

जो धर्म का आश्रय लेकर और स्वामी को प्रिय लगेगा या अप्रिय—इसका विचार छोड़कर अप्रिय होने पर भी हित की बात कहता है, उसी से राजा को सच्ची सहायता मिलती है।

**त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् । □**
**ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥४०॥**

कुल की रक्षा के लिए एक मनुष्य का, ग्राम की रक्षा के लिए कुल का, देश की रक्षा के लिए ग्राम का तथा आत्मा के कल्याण के लिए सारी पृथिवी का त्याग कर देना चाहिए।

**आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि । □**
**आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥४१॥**

आपत्ति के लिए धन की रक्षा करे, धन के द्वारा भी स्त्री की रक्षा करे तथा स्त्री और धन दोनों के द्वारा अपनी रक्षा करे।

**द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम् ।**
**तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥४२॥**

पूर्वकाल में जुआ खेलना मनुष्यों में वैर उत्पन्न करने का कारण देखा गया है, अतः बुद्धिमान् मनुष्य हँसी [मनोविनोद, दिल-बहलाव] के लिए भी जुआ न खेले।

**अस्तब्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं**
**सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः । □**

**अरोगजातीयमुदारवाक्यं**
**दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ॥४३॥**

अहंकारशून्य, कायरतारहित, शीघ्र कार्य को पूर्ण करनेवाला, दयालु, शुद्ध हृदय, दूसरों के बहकावे में न आनेवाला, नीरोग तथा उदर वचनवाला—इन आठ गुणों से युक्त मनुष्य को 'दूत' बनाने योग्य बताया गया है।

**गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते**
**बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः ।□**
**स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च**
**श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः ॥४४॥**

नित्य स्नान करनेवाले मनुष्य को बल, रूप, मधुर स्वर, उज्ज्वल वर्ण, कोमलता, सुगन्ध, पवित्रता, शोभा, सुकुमारता और सुन्दर स्त्रियाँ—ये दश लाभ प्राप्त होते हैं।

**गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते**
**आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च ।□**
**अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं**
**न चैनमाद्यून् इति क्षिपन्ति ॥४५॥**

मित=थोड़ा भोजन करनेवाले को निम्न छह गुण प्राप्त होते हैं—आरोग्य, आयु, बल तथा सुख तो मिलते ही हैं, उसकी सन्तान उत्तम होती है तथा 'यह पेटू [बहुत खानेवाला] है'—ऐसा कहकर लोग उसपर आक्षेप नहीं करते।

**अकर्मशीलं च महाशनं च**
**लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम् ।□**
**अदेशकालज्ञमनिष्टवेष-**
**मेतान् गृहे न प्रतिवासयेत ॥४६॥**

अकर्मण्य, बहुत खानेवाले, सब लोगों से वैर करनेवाले, अधिक मायावी, क्रूर, देश-काल का ज्ञान न रखनेवाले तथा निन्दित वेष धारण करनेवाले मनुष्य को कभी अपने घर में न ठहरने दे।

**कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च**
**वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम् ।□**
**निष्ठूरिणं कृतवैरं कृतघ्न-**
**मेतान् भृशार्तोऽपि न जातु याचेत् ॥४७॥**

अत्यन्त दुःखी होने पर भी कृपण=कंजूस, गाली बकनेवाले, मूर्ख, जंगल में रहनेवाले, धूर्त, नीचसेवी, निर्दय, वैर बाँधनेवाले और कृतघ्न से कभी सहायता की याचना नहीं करनी चाहिए।

**हितं यत् सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम् ।**
**तत् कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये ॥४८॥**

जो समस्त प्राणियों के लिए हितकर तथा अपने लिए भी सुखदायक हो, उसे ईश्वरार्पित बुद्धि से करे, सम्पूर्ण सिद्धियों का यही मूलमन्त्र है।

**सर्पो ह्यग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रो हि भारत ।**
**नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः ॥४९॥**

हे भारत! मनुष्य को चाहिए कि वह साँप, अग्नि, सिंह तथा अपने कुल में उत्पन्न व्यक्ति का अनादर न करे, क्योंकि ये सभी अत्यन्त तेजस्वी होते हैं।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥११॥**

## द्वादशोऽध्यायः

### विदुरजी का नीतियुक्त उपदेश तथा धर्म की महत्ता का प्रतिपादन

विदुर उवाच

**अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ।□**
**दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः ॥१॥**

**विदुरजी बोले**—बुद्धिमान् मनुष्य का अपकार करके इस विश्वास पर निश्चिन्त न रहे कि मैं बहुत दूर हूँ। बुद्धिमान् की बुद्धिरूपी भुजाएँ बड़ी लम्बी होती हैं। सताया जाने पर वह उन्हीं बाँहों से बदला लेता है।

**न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।□**
**विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥२॥**

जो अविश्वास का पात्र है, उसका विश्वास तो करे ही नहीं, अपितु जो विश्वास-पात्र है, उसपर भी

अधिक विश्वास न करे। विश्वास से जो भय उत्पन्न होता है, वह मूल का भी उच्छेद कर डालता है।

**अनीर्ष्युर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः।□**
**श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत् ॥३॥**

मनुष्य को चाहिए कि वह ईर्ष्याशून्य, स्त्रियों का रक्षक, सम्पत्ति का न्यायपूर्वक विभाग करनेवाला, प्रियवादी, स्वच्छ तथा स्त्रियों के निकट मधुर वचन बोलनेवाला हो, परन्तु उनके वश में कभी न हो।

**पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।□**
**स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः ॥४॥**

स्त्रियाँ घर की लक्ष्मी कही गई हैं। ये अत्यन्त सौभाग्यशालिनी, मान और सत्कार के योग्य, पवित्र तथा घर की शोभा हैं, अतः इनकी विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिए।

**अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति।□**
**स तेषां विपरिभ्रंशाद् भ्रंश्यते जीवितादपि ॥५॥**

जो मोहवश बुरे [शास्त्र-निषिद्ध] कर्म करता है, वह उन कार्यों का विपरीत परिणाम होने से अपने जीवन से भी हाथ धो बैठता है।

**नाममात्रेण तुष्येत छत्रेण च महीपतिः।**
**भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान् नैकः सर्वहरो भवेत् ॥६॥**

राजा को चाहिए कि वह अपने 'राजा' नाम से तथा राजोचित 'छत्र' के धारण से ही सन्तुष्ट रहे। सेवकों को पर्याप्त धन दे, सब अकेला ही न हड़प ले।

**न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः।□**
**न्यग्भूत्वा पर्युपासीत् वध्यं हन्याद् बले सति ॥७॥**

वश में आये हुए वध के योग्य शत्रु को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। यदि स्वयं निर्बल हो तो नम्र होकर उसके पास समय व्यतीत करना चाहिए और बल प्राप्त होने पर उसे मार ही डालना चाहिए।

**अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम् ।□**
**अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा ॥८॥**

जिसका चरित्र निन्दनीय है, जो मूर्ख, गुणों में दोष देखनेवाला, अधार्मिक, बुरे वचन बोलनेवाला तथा क्रोधी है उसपर शीघ्र ही संकट आ जाते हैं।

**अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः।□**
**आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक् प्रणिहिता च वाक् ॥९॥**

ठगी न करना, दान देना, प्रतिज्ञा का उल्लंघन न करना और उत्तम प्रकार किया हुआ वार्तालाप—ये सब सम्पूर्ण भूतों [प्राणियों] को अपना बना लेते हैं।

**धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा।□**
**मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः ॥१०॥**

धैर्य, मनोनिग्रह, इन्द्रियदमन, पवित्रता, दया, कोमलवाणी तथा मित्र से द्रोह न करना—ये सात बातें लक्ष्मी को बढ़ानेवाली हैं।

**असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः।**
**तादृङ्नराधिपो लोके वर्जनीयो नराधिप ॥११॥**

राजन्! जो अपने आश्रितों में ठीक-ठीक धन का बटवारा नहीं करता, जो दुष्ट स्वभाववाला, कृतघ्न और निर्लज्ज है, ऐसा राजा इस लोक में त्याग देने योग्य है।

**न स रात्रौ सुखं शेते ससर्प इव वेश्मनि।**
**यः कोपयति निर्दोषं सदोषोऽभ्यन्तरं जनम् ॥१२॥**

जो स्वयं दोषी होकर भी निर्दोष आत्मीय जनों को कुपित करता है, वह सर्पयुक्त घर में रहनेवाले मनुष्य की भाँति रात्रि में सुख से नहीं सो सकता।

**यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता।□**
**मज्जन्ति तेऽवशा राजन् नद्यामश्मप्लवा इव ॥१३॥**

राजन्! जिस देश का शासन स्त्री, जुआरी तथा बालक के हाथ में होता है, वहाँ लोग नदी में पत्थर की नौका पर बैठनेवालों की भाँति विवश होकर विपत्ति के समुद्र में डूब जाते हैं।

**यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः।□**
**यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः ॥१४॥**

[केवल] जुआरी जिसकी प्रशंसा करते हैं, नर्तक जिसका गुणगान करते हैं तथा वेश्याएँ जिसकी बड़ाई किया करती हैं, वह मनुष्य जीता हुआ ही मुर्दे के समान है।

**प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः।□**
**मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः ॥१५॥**

संसार में कोई मनुष्य दान देने से प्रिय होता है, कोई मधुर वचन बोलने के कारण प्रिय होता है, कोई मन्त्र तथा औषध के बल से प्रिय होता है, परन्तु जो वास्तव में प्रिय है, वह तो सदा प्रिय ही है।

**द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः ।**
**प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह ॥१६॥**

जिससे द्वेष हो जाता है, वह न साधु [सज्जन], न विद्वान् और न बुद्धिमान् ही जान पड़ता है । प्रिय व्यक्ति [मित्र आदि] के तो सभी कर्म शुभ और शत्रु के सभी कर्म पापमय प्रतीत होने लगते हैं ।

**ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः ।**
**ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः ॥१७॥**

दूसरों में फूट डालने का ही जिनका स्वभाव है, जो कामी, निर्लज्ज, शठ और प्रसिद्ध पापी हैं, वे साथ रखने के सर्वथा अयोग्य—निन्दित माने गये हैं ।

**यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम् ।**
**स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्त्यमश्नुते ॥१८॥**

जो अपने कुटुम्बी, दरिद्र, दीन तथा रोगी पर अनुग्रह करता है, वह पुत्रों और पशुओं से वृद्धि को प्राप्त होता है तथा अनन्त कल्याण का अनुभव करता है ।

**विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ ।**
**किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकांक्षिणः ॥१९॥**

भरतश्रेष्ठ ! अपने कुटुम्बी लोग गुणहीन भी हों तो भी उनकी रक्षा करनी चाहिए; फिर जो आपके कृपाभिलाषी तथा गुणवान् हैं, उनका तो कहना ही क्या है !

**प्रसादं कुरु वीराणां पाण्डवानां विशाम्पते ।**
**दीयन्तां ग्रामकाः केचित् तेषां वृत्त्यर्थमीश्वर ॥२०॥**

राजन् ! आप समर्थ हैं, अतः वीर पाण्डवों पर कृपा कीजिए और उनकी आजीविका के लिए उन्हें कुछ ग्राम दे दीजिए ।

**सम्भोजनं संकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम् ।**
**ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन ॥२१॥**

अपने जाति-भाइयों के साथ परस्पर भोजन, वार्तालाप तथा प्रेम करना ही कर्तव्य है, उनके साथ कभी विरोध नहीं करना चाहिए ।

**ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च ।**
**सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च ॥२२॥**

इस जगत् में जाति-बन्धु ही तारते हैं और जाति-बन्धु ही डुबाते भी हैं। उनमें जो सदाचारी हैं, वे तो तारते हैं तथा दुराचारी डुबा देते हैं ।

**येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा ।**
**आदावेव न तत् कुर्यादध्रुवे जीविते सति ॥२३॥**

जीवन क्षणभंगुर है, अतः जिस कार्य को करने से अन्त में खाट पर बैठकर पछताना पड़े, उसे पहले ही नहीं करना चाहिए ।

**मन्त्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत् ।**
**अर्थसन्ततिकामश्च रक्षेदेतानि नित्यशः ॥२४॥**
**मदं स्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसम्भवम् ।**
**दुष्टामात्येषु विश्रम्भं दूताच्चाकुशलादपि ॥२५॥**

बुद्धिमान् मनुष्य को मन्त्रभेद के इन छह द्वारों को जानना तथा धन को सुरक्षित रखने की इच्छा से इन्हें सदा बन्द रखना चाहिए—मादक वस्तुओं का सेवन, निद्रा, आवश्यक बातों की जानकारी न रखना, अपने नेत्र, मुख आदि का विकार, दुष्ट मन्त्रियों पर विश्वास तथा कार्य में अकुशल दूत पर भरोसा करना ।

**न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य वा ।**
**धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि ॥२६॥**

बृहस्पति के समान बुद्धिशील मनुष्य भी शास्त्र-ज्ञान अथवा वृद्धों की सेवा किये विना धर्म और अर्थ का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते ।

**नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति ।**
**अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम् ॥२७॥**

समुद्र में गिरी हुई वस्तु नष्ट हो जाती है, जो सुनता नहीं, उससे कही हुई बात भी नष्ट हो जाती है, अजितेन्द्रिय पुरुष का शास्त्र-ज्ञान तथा राख में किया हुआ हवन भी नष्ट हो जाता है ।

**अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः ।**
**हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥२८॥**

विनम्रता अपयश को नष्ट करती है, पराक्रम अनर्थ को दूर करता है, क्षमा सदा ही क्रोध का नाश करती है तथा सदाचार कुलक्षण को समाप्त करता है ।

**प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम् ।**
**मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत् ॥२९॥**

जो विद्वानों की सेवा में रहनेवाला, वैद्य, धार्मिक,

प्रियदर्शन [देखने में सुन्दर], मित्रों से युक्त और मधुरभाषी हो, ऐसे सुहृद् की सर्व प्रकार से रक्षा करनी चाहिए।

**दुष्कुलीनः कुलीनो वा मर्यादां यो न लंघयेत्। □**
**धर्मापेक्षी मृदुः ह्रीमान् स कुलीनशताद् वरः ॥३०॥**

नीच कुल में उत्पन्न हुआ हो या उत्तम कुल में—जो मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, धर्म की अपेक्षा रखता है, कोमल स्वभाव तथा लज्जाशील है, वह सैकड़ों कुलीनों से बढ़कर है।

**अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च। □**
**तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद् बुधः ॥३१॥**

विद्वान् पुरुष को उचित है कि वह अभिमानी, मूर्ख, क्रोधी, दुष्कृत्यों में साहसिक तथा धर्मशून्य पुरुषों के साथ मित्रता न करे।

**कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम्। □**
**जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते ॥३२॥**

मित्र ऐसा होना चाहिए जो कृतज्ञ, धार्मिक, सत्यवादी, उदार, दृढ़ अनुराग रखनेवाला, जितेन्द्रिय, मर्यादा के भीतर रहनेवाला तथा मैत्री का त्याग न करनेवाला हो।

**इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनापि विशिष्यते।**
**अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद् दैवतान्यपि ॥३३॥**

इन्द्रियों को विषयों से सर्वथा रोक रखना तो मृत्यु का आलिङ्गन कर लेने से भी बढ़कर कठिन है तथा उन्हें सर्वथा खुली छोड़ देना देवताओं का भी नाश कर देता है।

**मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः। □**
**आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना ॥३४॥**

सभी प्राणियों के प्रति दया, गुणों में दोष न देखना, क्षमा, धैर्य और मित्रों का अपमान न करना—ये सब गुण आयु को बढ़ानेवाले हैं—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं।

**मङ्गलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम्। □**
**भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्णदर्शनम् ॥३५॥**

माङ्गलिक पदार्थों का स्पर्श, चित्तवृत्तियों का निरोध, शास्त्र का अभ्यास, उद्योगशीलता, सरलता तथा सत्पुरुषों का बारम्बार दर्शन—ये सब कल्याणकारी हैं।

**अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च। □**
**महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चात्यन्तमश्नुते ॥३६॥**

उद्योग=परिश्रम में लगे रहना—उससे विरक्त न होना धन लाभ और कल्याण का मूल है। उद्योग न छोड़नेवाला मनुष्य महान् हो जाता है तथा अत्यन्त सुख का उपभोग करता है।

**नातः श्रीमत्तरं किञ्चिदन्यत् पुण्यतमं मतम्। □**
**प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा ॥३७॥**

तात! समर्थ पुरुष के लिए सर्वत्र और सब कालों में क्षमा के समान हितकारक और अत्यन्त वैभवशाली बनानेवाला उपाय दूसरा नहीं माना गया है।

**क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात्।**
**अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता ॥३८॥**

जो शक्तिहीन है, वह तो सबको क्षमा करे ही, जो शक्तिशाली है वह भी धर्म के लिए क्षमा करे और जिसकी दृष्टि में अर्थ एवं अनर्थ दोनों समान हैं, उसके लिए तो क्षमा सदा ही हितकारिणी होती है।

**यत् सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते।**
**कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत् ॥३९॥**

जिस सुख का सेवन करते रहने पर भी मनुष्य धर्म तथा अर्थ से भ्रष्ट नहीं होता, उसका खूब सेवन करे परन्तु मूढ़व्रत=विषयाभिलाषा तथा निद्रा-प्रमाद आदि का सेवन न करे।

**दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च। □**
**न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः ॥४०॥**

जो दुःख से पीड़ित, प्रमादी, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय तथा उत्साह से शून्य हैं, उनके यहाँ लक्ष्मी का वास नहीं होता।

**अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम्।**
**प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥४१॥**

अत्यन्त श्रेष्ठ, अतिशय दानी, अतीव शूरवीर, अत्यधिक व्रत=नियमों का पालन करनेवाले तथा बुद्धि के घमण्ड में चूर रहनेवाले मनुष्य के पास लक्ष्मी भय के मारे नहीं जाती।

**अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।□**
**न स तस्य फलं प्रेत्य भुंक्तेऽर्थस्य दुरागमात् ॥४२॥**

जो अधर्म के द्वारा कमाये धन से पारलौकिक कर्म करता है, वह मरने के पश्चात् उसके फल को नहीं पाता, क्योंकि उसका धन बुरे मार्गों से आया होता है।

**कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे ।□**
**उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम् ॥४३॥**

घोर जंगल में, दुर्गम मार्ग में, भीषण आपत्ति के समय, घबराहट में तथा प्रहार के लिए शस्त्र उठे रहने पर भी सत्त्वसम्पन्न=आत्मबल से युक्त पुरुष को भय नहीं होता।

**उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः ।□**
**समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु ॥४४॥**

उद्योग, संयम, दक्षता, सावधानी, धैर्य, स्मृति तथा सोच-विचारकर कार्य करना—इन्हें उन्नति का मूलमन्त्र जानो।

**तपो बलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम् ।□**
**हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम् ॥४५॥**

तपस्वियों का बल है तप, वेदवेत्ताओं का बल है वेद, पापियों का बल है हिंसा तथा गुणवानों का बल है क्षमा।

**न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः ।□**
**संग्रहेणैष धर्मः स्यात् कामादन्यः प्रवर्तते ॥४६॥**

'जो अपने प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरों के प्रति भी न करे'—संक्षेप में धर्म का यही स्वरूप है। इसके विपरीत जिसमें कामना से प्रवृत्ति होती है, वह अधर्म है।

**अक्रोधेन जयेत् क्रोधमसाधुं साधुना जयेत् ।□**
**जयेत् कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम् ॥४७॥**

अक्रोध=शान्ति से क्रोध को जीते, दुष्ट को सद्व्यवहार से वश में करे, कंजूस को दान से जीते तथा झूठ पर सत्य से विजय प्राप्त करे।

**स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि ।**
**चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके ॥४८॥**

स्त्रीलम्पट, आलसी, डरपोक, क्रोधी, पुरुषत्व के अभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिक का विश्वास नहीं करना चाहिए।

**अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।□**
**चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते कीर्तिरायुर्यशो बलम् ॥४९॥**

जो सदा माता-पिता आदि गुरुजनों को प्रणाम करता है तथा वृद्धों की सेवा में लगा रहता है, उसकी कीर्ति, आयु, यश और बल—ये चारों बढ़ते हैं।

**अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम् ।**
**निराहाराः प्रजाः शोच्याः शोच्यं राष्ट्रमराजकम् ॥५०**

विद्यारहित पुरुष, सन्तानोत्पत्तिरहित स्त्रीप्रसङ्ग, आहार न पानेवाली प्रजा तथा बिना राजा के राष्ट्र के लिए शोक करना चाहिए।

**न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत् स्त्रियः ।**
**नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत् ॥५१॥**

अधिक सोकर निद्रा को जीतने का प्रयास न करे, कामोपभोग के द्वारा स्त्री को जीतने की इच्छा न करे, ईंधन डालकर अग्नि को जीतने की आशा न रखे तथा अधिक पीकर मदिरा पीने की आदत को जीतने का प्रयास न करे।

**यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः ।**
**अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम् ॥५२॥**

जिसका मित्र धन-दान के द्वारा वश में आ चुका है, जिसके शत्रु युद्ध में जीत लिये गये हैं तथा जिसकी स्त्रियाँ खान-पान के द्वारा वशीभूत हो चुकी हैं, उसका जीवन सफल=सुखमय है।

**सहस्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा ।**
**धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथञ्चिन्न जीव्यते ॥५३॥**

जिनके पास सहस्र [रुपये] हैं, वे भी जीवित हैं और जिनके पास सौ हैं, वे भी जीवित हैं, अतः हे महाराज धृतराष्ट्र! आप अधिक धन का लोभ छोड़ दीजिए। स्वल्प से जीवन-निर्वाह नहीं होगा, ऐसी बात नहीं है।

**यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।**
**नालमेकस्य तत् सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥५४॥**

इस पृथिवी पर जो भी धान, जौ, सोना, पशु तथा स्त्रियाँ हैं, वे सब-के-सब एक पुरुष के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं—उनसे एक व्यक्ति की भी तृप्ति नहीं हो सकती। ऐसा विचार करनेवाला पुरुष मोह में नहीं पड़ता।

**महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं**
**यः संत्यजत्यनपाकृष्ट एव ।**
**सुखं सुदुःखान्यवमुच्य शेते**
**जीर्णां त्वचं सर्प इवावमुच्य ।।५५।।**

जो अधर्म से उपार्जित महान् धनराशि को भी उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना ही त्याग देता है, वह जैसे साँप अपनी पुरानी केंचुली को छोड़ देता है, उसी प्रकार दुःखों से मुक्त हो सुखपूर्वक सोता है।

**अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम् ।**
**गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ।।५६।।**

झूठ बोलकर उन्नति करना, राजा के पास चुगली करना, गुरुजन पर झूठा दोषारोपण करने का आग्रह करना—ये तीन कर्म ब्रह्महत्या के समान हैं।

**असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः ।□**
**अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः ।।५७।।**

गुणों में दोष देखना एकदम मृत्यु के समान है, निन्दा करना लक्ष्मी का वध है और सेवा का अभाव, जल्दबाजी तथा आत्म-प्रशंसा—ये तीन विद्या के शत्रु हैं।

**आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च ।**
**स्तब्धता चाभिमानित्वं तथात्यागित्वमेव च ।**
**एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः ।।५८।।**

आलस्य, मद-मोह, चञ्चलता, गोष्ठी, उद्दण्डता, अभिमान तथा स्वार्थ-त्याग का अभाव—ये सात विद्यार्थियों के लिए सदा ही दोष माने गये हैं।

**सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम् ।□**
**सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम् ।।५६**

सुख के अभिलाषी को विद्या और विद्या चाहनेवाले के लिए सुख नहीं है। सुखाभिलाषी को विद्या छोड़ देनी चाहिए और विद्या की इच्छावाले को सुख त्याग देना चाहिए।

**आशा धृतिं हन्ति समृद्धिमन्तकः**
**क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यता ।**
**अपालनं हन्ति पशूंश्च भूमिप**
**एकश्च क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम् ।।६०।।**

आशा धैर्य को, काल समृद्धि को, क्रोध लक्ष्मी को, कृपणता यश को तथा देखरेख का अभाव पशुओं को नष्ट कर देता है परन्तु राजन् ! क्रुद्ध होने पर एक ही ब्राह्मण सम्पूर्ण राष्ट्र को नष्ट कर डालता है।

**न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्**
**धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः ।**
**नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये**
**जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ।।६१।।**

मनुष्य को चाहिए कि वह कामना से, भय से, लोभ से तथा इस जीवन के लिए भी कभी धर्म का त्याग न करे। धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य हैं। जीव नित्य है परन्तु इसका कारण अनित्य है। [आप भी अनित्य को छोड़कर नित्य में स्थित हों।]

**महाबलान् पश्य महानुभावान्**
**प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम् ।**
**राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान्**
**गतान् नरेन्द्रान् वशमन्तकस्य ।।६२।।**

आप धन-धान्यादि से परिपूर्ण पृथिवी का शासन करके अन्त में सम्पूर्ण राज्य और प्रभूत भोगों को यहीं छोड़कर यमराज=मौत के वश में गये हुए बड़े-बड़े बलवान् और महानुभाव राजाओं की ओर दृष्टि डालिए।

**मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या**
**उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहात् प्रयान्ति ।**
**तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्तः**
**चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति ।।६३।।**

राजन् ! जिसका बड़े कष्ट से पालन-पोषण किया था, वही पुत्र जब मर जाता है, तब मनुष्य उसे उठाकर तुरन्त घर से बाहर कर देते हैं। पहले तो उसके लिए बाल बिखेरकर करुणाभरे स्वर में विलाप करते हैं, फिर साधारण काठ की भाँति उसे जलती चिता में झोंक देते हैं।

**अग्नौ प्रस्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयं कृतम् ।**
**तस्मात् तु पुरुषो यत्नाद् धर्मं संचिनुयाच्छनैः ।।६४।।**

अग्नि में डाले हुए उस मनुष्य के पीछे तो केवल उसका अपना किया हुआ बुरा या भला कर्म ही जाता है, अतः मनुष्य को चाहिए कि वह धीरे-धीरे प्रयत्नपूर्वक धर्म का ही संग्रह करे।

**आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था**
**सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः ।**
**तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा**
**पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव ।।६५।।**

हे भारत ! यह जीवात्मा एक नदी है । इसमें पुण्य ही तीर्थ है । इसमें सत्यरूपी जल है । धैर्य ही इसके किनारे हैं । दया इसकी लहरें हैं । पुण्यकर्म करनेवाला मनुष्य इसमें स्नान करके पवित्र होता है, क्योंकि लोभरहित आत्मा सदा पवित्र ही है ।

**कामक्रोधग्राहवतीं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम् ।**
**नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि सन्तर ।।६६।।**

काम-क्रोधादिरूप ग्रहों से भरी, पाँच इन्द्रियों के विषयजल से पूर्ण इस संसार-नदी के जन्म-मरण-रूप दुर्गम प्रवाह को धैर्य की नौका बनाकर पार कीजिए ।

**प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं**
**विद्यावृद्धमायुषा चापि वृद्धम् ।**
**कार्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य**
**यः सम्पृच्छेन्न स मुह्येत् कदाचित् ।।६७।।**

जो मनुष्य बुद्धि, धर्म, विद्या तथा अवस्था में बड़े अपने बन्धु को आदर-सत्कार से प्रसन्न करके उससे कर्तव्याकर्तव्य के विषय में प्रश्न करता है, वह कभी मोह में नहीं पड़ता ।

**धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा ।**
**चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा ।।६८।।**

मनुष्य को चाहिए कि धैर्य से उपस्थ और उदर की रक्षा करे अर्थात् कामभोग और खान-पान में अधीर न बने । हाथ-पैर की आँख से रक्षा करे अर्थात् देखकर हाथ-पाँव चलाए । आँख-कान की मन से और मन-वाणी की कर्म से रक्षा करे अर्थात् आँख-कान पर मन का अंकुश रखे तथा मन और वाणी पर संयम से नियन्त्रण रखे ।

धृतराष्ट्र उवाच

**एवमेतद् यथा त्वं मामनुशाससि सर्वदा ।**
**ममापि च मतिः सौम्य भवत्येवं यथाऽऽत्थ माम् ।।६९।।**

**धृतराष्ट्र बोले**—विदुर ! तुम प्रतिदिन मुझे जैसा उपदेश करते हो, वह बहुत ठीक है । सौम्य ! तुम मुझसे जो कुछ भी कहते हो, ऐसा ही मेरा भी विचार है ।

**सा तु बुद्धिः कृताप्येवं पाण्डवान् प्रति मे सदा ।**
**दुर्योधनं समासाद्य पुनर्विपरिवर्तते ।।७०।।**

यद्यपि मैं पाण्डवों के प्रति सदा ऐसी ही बुद्धि रखता हूँ तथापि दुर्योधन से मिलने पर मेरी बुद्धि फिर पलट जाती है ।

**न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं भूतेन केनचित् ।**
**दिष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ।।७१।।**

प्रारब्ध का उल्लंघन करने की शक्ति किसी भी प्राणी में नहीं है । मैं तो प्रारब्ध को ही अटल मानता हूँ, उसके समक्ष पुरुषार्थ तो व्यर्थ है ।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।**

# त्रयोदशोऽध्यायः

**संजय का कौरवसभा में अर्जुन का सन्देश सुनाना, भीष्म का दुर्योधन को सन्धि के लिए समझाना, कर्ण की गर्वोक्ति और भीष्म द्वारा उसका उपहास**

वैशम्पायन उवाच

**तस्यां रजन्यां व्युष्टायां राजानः सर्व एव ते ।**
**सभामाविविशुर्हृष्टाः सूतस्योपदिदृक्षया ।।१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—वह रात्रि व्यतीत होने पर जब प्रातःकाल हुआ तब सब राजा लोग सूतपुत्र संजय से मिलने और उसके द्वारा पाण्डवों का सन्देश सुनने के लिए प्रसन्नतापूर्वक सभा में आये ।

**आसनस्थेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत ।**
**द्वाःस्थो निवेदयामास सूतपुत्रमुपस्थितम् ।।२।।**

हे भारत ! जब वे सब भूपाल आकर यथायोग्य आसनों पर बैठ गये तब द्वारपाल ने सूचना दी कि संजय राजसभा के द्वार पर उपस्थित हैं ।

**उपेयाय स तु क्षिप्रं रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली ।**
**प्रविवेश सभां पूर्णां महीपालैर्महात्मभिः ।।३।।**

द्वारपाल के इतना कहते ही कानों में कुण्डल धारण किये संजय रथ से नीचे उतरकर राजसभा के निकट आया और महामना महीपालों से भरी हुई सभा में प्रविष्ट हुआ।

संजय उवाच

**प्राप्तोऽस्मि पाण्डवान् गत्वा तं विजानीत कौरवाः।**
**यथावयः कुरून् सर्वान् प्रतिनन्दन्ति पाण्डवाः ।।४।।**

**संजय ने कहा**—कौरवो ! आपको विदित होना चाहिए कि मैं पाण्डवों के यहाँ जाकर लौटा हूँ। पाण्डव लोग अवस्थाक्रम के अनुसार सभी कौरवों का अभिनन्दन करते हैं।

**प्रणमन्ति सुवृद्धाँश्च वयस्याँश्च वयस्यवत् ।**
**यूनश्चाभ्यवदन् पार्थाः प्रतिपूज्य यथावयः ।।५।।**

उन्होंने बड़े-बूढ़ों को प्रणाम कहलाया है। जो समवयस्क हैं, उनके साथ मित्रोचित बर्ताव का सन्देश दिया है और नवयुवकों को भी उनकी अवस्था के अनुसार सम्मान देकर उनसे प्रेमालाप की अभिलाषा प्रकट की है।

धृतराष्ट्र उवाच

**पृच्छामि त्वां संजय राजमध्ये**
**किमब्रवीद् वाक्यमदीनसत्त्वः ।**
**धनञ्जयस्तात युधां प्रणेता**
**दुरात्मनां जीवितच्छिन्महात्मा ।।६।।**

**धृतराष्ट्र ने पूछा**—संजय ! मैं इन राजाओं के समक्ष तुमसे यह पूछ रहा हूँ कि अनेक युद्धों के संचालक और दुष्टों के जीवनों का नाश करनेवाले उदारहृदय महात्मा अर्जुन ने हमारे लिए कौन-सा सन्देश भेजा है ?

संजय उवाच

**दुर्योधनो वाचमिमां शृणोतु**
**यदब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानः ।**
**युधिष्ठिरस्यानुमते महात्मा**
**धनञ्जयः शृण्वतः केशवस्य ।।७।।**

**संजय बोला**—राजन् ! युधिष्ठिर की आज्ञा से युद्ध के लिए उद्यत हुए अतुल धन-विजेता महात्मा अर्जुन ने श्रीकृष्ण के सुनते हुए जो सन्देश दिया है, उसे दुर्योधन सुने। [उन्होंने कहा है—]

**न चेद् राज्यं त्यजति धार्तराष्ट्रो**
**युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः ।**
**अस्ति नूनं कर्म कृतं पुरस्ता-**
**दनिर्विष्टं पापकं धार्तराष्ट्रैः ।।८।।**

"यदि दुर्योधन अजमीढ-कुलनन्दन महाराज युधिष्ठिर का राज्य नहीं छोड़ता है तो निश्चय ही धृतराष्ट्र के पुत्रों का पूर्वजन्म का किया हुआ कोई ऐसा पापकर्म प्रकट हुआ है, जिसका फल उन्हें भोगना ही पड़ेगा।

**यदा ज्येष्ठः पाण्डवः संशितात्मा**
**क्रोधं यत्तं वर्षपूगान् सुघोरम् ।**
**अवस्रष्टा कुरुषूद्वृत्तचेता-**
**स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ।।९।।**

"अपने मन को शुद्ध एवं संयत रखनेवाले ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर जब उत्तेजित हो अनेक वर्षों से दबे हुए अपने अति भयानक क्रोध को कौरवों पर छोड़ेंगे, उस समय जो भयानक युद्ध होगा, उसे देखकर दुर्योधन को पछताना पड़ेगा।

**कृष्णवर्त्मेव ज्वलितः समिद्धो**
**यथा दहेत् कक्षमग्निर्निदाघे ।**
**एवं दग्धा धार्तराष्ट्रस्य सेनां**
**युधिष्ठिरः क्रोधदीप्तोऽन्ववेक्ष्य ।।१०।।**

"जैसे ग्रीष्मऋतु में प्रज्वलित अग्नि सब ओर से धधककर घास-फूँस तथा जंगलों को जलाकर भस्म कर डालती है, उसी प्रकार क्रोध से तमतमाये हुए युधिष्ठिर दुर्योधन की सेना को अपने दृष्टिपात से ही भस्म कर डालेंगे।

**यदा द्रष्टा भीमसेनं रथस्थं**
**गदाहस्तं क्रोधविषं वमन्तम् ।**
**अमर्षणं पाण्डवं भीमवेगं**
**तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत् ।।११।।**

"जिस समय दुर्योधन, हाथ में गदा लिये रथ पर आरूढ, भयंकर वेगवाले, अमर्षशील [क्रोधान्ध] पाण्डुनन्दन भीम को क्रोधरूप विष उगलते देखेगा, उस समय युद्ध के परिणाम को सोचकर उसे महान् पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

**त्यक्तात्मानः पार्थिवायोधनाय**
**समादिष्टा धर्मराजेन सूत ।**
**रथैः शुभ्रैः सैन्यमभिद्रवन्तो**
**दृष्ट्वा पश्चात् तप्स्यते धार्तराष्ट्रः ॥१२॥**

"संजय ! धर्मराज युधिष्ठिर के द्वारा युद्ध के लिए आदेश दिये जाने पर उनके लिए प्राण देने को उद्यत रहनेवाले भूमण्डल के नरेश जब प्रकाशमान रथों पर आरूढ़ होकर कौरव-सेना पर आक्रमण करेंगे, उस समय उन्हें देखकर दुर्योधन को युद्ध के लिए अत्यन्त पश्चात्ताप करना पड़ेगा ।

**यदाभिमन्युः परवीरघाती**
**शरैः परान् मेघ इवाभिवर्षन् ।**
**विगाहिता कृष्णसमः कृतास्त्र-**
**स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥१३॥**

"शत्रुपक्ष के वीरों का संहार करने में समर्थ अभिमन्यु श्रीकृष्ण के समान पराक्रमी और अस्त्र-विद्या में प्रवीण है । जिस समय वह मेघ के समान बाणों की वर्षा करता हुआ शत्रुओं की सेना में प्रवेश करेगा, उस समय धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन युद्ध के लिए मन-ही-मन बहुत संतप्त होगा ।

**यदा रथे गाण्डीवं वासुदेवं**
**दिव्यं शंखं पाञ्चजन्यं हयाँश्च ।**
**तूणावक्षय्यौ देवदत्तं च मां च**
**द्रष्टा युद्धे धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥१४॥**

"धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन जब रथ पर मेरे गाण्डीव धनुष को, सारथिरूप में भगवान् श्रीकृष्ण को, उनके दिव्य पाञ्चजन्य शंख को, रथ में जुते हुए दिव्य घोड़ों को, बाणों से भरे हुए दो अक्षय तरकसों को, मेरे देवदत्त नाम शंख को और मुझे देखेगा, उस समय युद्ध का परिणाम सोचकर वह अत्यन्त सन्तप्त होगा ।

**अस्पृष्टं जृम्भति गाण्डिवं धनु-**
**रनाहता कम्पति मे धनुर्ज्या ।**
**बाणाश्च मे तूणमुखाद् विसृत्य**
**मुहुर्मुहुर्गन्तुमुशन्ति चैव ॥१५॥**

"मेरा गाण्डीव धनुष बिना स्पर्श किये ही तना जा रहा है, मेरे धनुष की डोरी बिना खींचे ही हिलने लगी है और मेरे बाण बार-बार तरकस से निकलकर शत्रुओं की ओर जाने के लिए उतावले हो रहे हैं ।

**विजेतारः समरे सूत लब्ध्वा**
**देवानपीन्द्रप्रमुखान् समेतान् ।**
**तैर्मन्यते कलहं सम्प्रसह्य**
**धार्तराष्ट्रः पश्यत मोहमस्य ॥१६॥**

"सूत ! जो पाण्डव समरभूमि में इन्द्र आदि समस्त देवताओं को भी पाकर उन्हें पराजित किये बिना नहीं रहेंगे, उन्हीं हम पाण्डवों के साथ यह दुर्योधन हठपूर्वक युद्ध करना चाहता है, इसका मोह तो देखो ।

**वृद्धो भीष्मः शान्तनवः कृपश्च**
**द्रोणः सपुत्रो विदुरश्च धीमान् ।**
**एते सर्वे यद् वदन्ति तदस्तु**
**आयुष्मन्तः कुरवः सन्तु सर्वे ॥१७॥**

"फिर भी मैं चाहता हूँ कि शान्तनुनन्दन वृद्ध पितामह भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और बुद्धिमान् विदुर—ये सब लोग मिलकर जैसा कहें, वही हो । समस्त कौरव दीर्घायु बने रहें ।"

वैशम्पायन उवाच

**समवेतेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत ।**
**दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥१८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे भारत ! [अर्जुन का सन्देश सुनने के पश्चात्] वहाँ एकत्र हुए उन समस्त राजाओं की मण्डली में शान्तनुनन्दन भीष्म ने दुर्योधन से यह बात कही—

**अर्थाच्च तात धर्माच्च तव बुद्धिरुपप्लुता ।**
**त्रयाणामेव च मतं तत् त्वमेकोऽनुमन्यसे ॥१९॥**
**दुर्जातेः सूतपुत्रस्य शकुनेः सौबलस्य च ।**
**तथा क्षुद्रस्य पापस्य भ्रातुर्दुःशासनस्य च ॥२०॥**

"तात ! तुम्हारी बुद्धि अर्थ और धर्म दोनों से भ्रष्ट हो गई है, यही कारण है कि तुम खोटी जाति-वाले सूतपुत्र कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि और अपने नीच तथा पापात्मा भाई दुःशासन—इन तीनों के मत का अनुमोदन एवं अनुसरण करते हो ।"

कर्ण उवाच

**नैवमायुष्मता वाच्यं यन्मामात्थ पितामह ।**
**क्षात्रधर्मे स्थितो ह्यस्मि स्वधर्मादनपेयिवान् ॥२१॥**

**कर्ण बोला**—पितामह ! आपने मेरे प्रति जिन शब्दों का प्रयोग किया है, वे अनुचित हैं। आप जैसे वयोवृद्ध पुरुष को ऐसी बातें मुँह से नहीं निकालनी चाहिएँ। मैं क्षत्रियधर्म में स्थित हूँ तथा अपने धर्म से कभी भ्रष्ट नहीं हुआ हूँ।

**अहं हि पाण्डवान्सर्वान्हनिष्यामि रणे स्थितान्।**
**प्राग्विरुद्धैः शमं सद्भिः कथं वा क्रियते पुनः ॥२२॥**

मैं युद्धभूमि में खड़े होने पर समस्त पाण्डवों को अवश्य मार डालूँगा। जो लोग पहले अपने विरोधी रहे हों, उनके साथ पुनः सन्धि कैसे की जा सकती है ?

वैशम्पायन उवाच

**कर्णस्य तु वचः श्रुत्वा भीष्मः शान्तनवः पुनः।**
**धृतराष्ट्रं महाराज सम्भाष्येदं वचोऽब्रवीत् ॥२३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—महाराज जनमेजय ! कर्ण की बात सुनकर शान्तनुनन्दन भीष्म ने राजा धृतराष्ट्र को सम्बोधित करके पुनः इस प्रकार कहा—

भीष्म उवाच

**यदयं कत्थते नित्यं हन्ताहं पाण्डवानिति।**
**नायं कलापि सम्पूर्णा पाण्डवानां महात्मनाम् ॥२४॥**

**भीष्म बोले**—राजन् ! यह कर्ण जो प्रतिदिन यह डींग मारा करता है कि मैं पाण्डवों को मार डालूँगा, वह व्यर्थ है। मेरे विचार में यह महात्मा पाण्डवों की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है।

**अनयो योऽयमागन्ता पुत्राणां ते दुरात्मनाम्।**
**तदस्य कर्म जानीहि सूतपुत्रस्य दुर्मतेः ॥२५॥**

तुम्हारे दुरात्मा पुत्रों पर अन्याय के फलस्वरूप जो यह महान् संकट आनेवाला है, वह सब इस दूषित बुद्धिवाले सूतपुत्र कर्ण की ही करतूत समझो।

**एतमाश्रित्य पुत्रस्ते मन्दबुद्धिः सुयोधनः।**
**अवामन्यत तान् वीरान् देवपुत्रानरिन्दमान् ॥२६॥**

तुम्हारे मन्दबुद्धि-पुत्र दुर्योधन ने इसी का सहारा लेकर शत्रुओं का दमन करनेवाले उन वीर देवपुत्र पाण्डवों का अपमान किया है।

**किं चाप्येतेन तत्कर्म कृतपूर्वं सुदुष्करम्।**
**तैर्यथा पाण्डवैः सर्वैरेकैकेन कृतं पुरा ॥२७॥**

आज से पहले पाण्डवों ने मिलकर अथवा उनमें से एक-एक ने पृथक्-पृथक् जैसे-जैसे भयंकर पराक्रम किये हैं, वैसा कौन-सा पराक्रम इस सूतपुत्र ने पहले कभी किया है ?

**दृष्ट्वा विराटनगरे भ्रातरं निहतं प्रियम्।**
**धनञ्जयेन विक्रम्य किमनेन तदा कृतम् ॥२८॥**

जब विराटनगर में अपना पराक्रम प्रकट करते हुए अर्जुन ने इसके सामने ही इसके प्रिय भाई को मार डाला था, तब इसने सब-कुछ अपनी आँखों से देखकर भी अर्जुन का क्या बिगाड़ लिया ?

**सहितान् हि कुरून्सर्वानभियातो धनञ्जयः।**
**प्रमथ्य चाच्छिनद् वासः किमयं प्रोषितस्तदा ॥२९॥**

जिस समय धनञ्जय ने अकेले ही समस्त कौरवों पर आक्रमण किया तथा सबको मूर्च्छित करके उनके वस्त्र उतार लिये थे, तब यह कर्ण क्या कहीं परदेश चला गया था ?

**गन्धर्वैर्घोषयात्रायां ह्रियते यत् सुतस्तव।**
**क्व तदा सूतपुत्रोऽभूद् य इदानीं वृषायते ॥३०॥**

घोषयात्रा के समय जब गन्धर्व लोग तुम्हारे पुत्र को कैद करके लिये जा रहे थे, उस समय यह सूतपुत्र कहाँ था, जो इस समय साँड की भाँति डकार रहा है ?

**एतान्यस्य मृषोक्तानि बहूनि भरतर्षभ।**
**विकत्थनस्य भद्रं ते सदा धर्मार्थलोपिनः ॥३१॥**

भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारा कल्याण हो। यह कर्ण व्यर्थ ही डींग हाँकता है। इसकी कही हुई बहुत-सी बातें इसी प्रकार झूठी हैं। यह तो धर्म और अर्थ—दोनों का ही लोप करनेवाला है।

द्रोण उवाच

**यदाह भरतश्रेष्ठो भीष्मस्तत् क्रियतां नृप।**
**न काममर्थलिप्सूनां वचनं कर्तुमर्हसि ॥३२॥**

**द्रोण बोले**—नरेश्वर ! भरतकुल-भूषण भीष्मजी ने जो कहा है, वही कीजिए। जो लोग अर्थ और काम के लोभी हैं, उनकी बातें आपको नहीं माननी चाहिएँ।

**पुरा युद्धात् साधु मन्ये पाण्डवैः सह संगतम्।**
**यद् वाक्यमर्जुनेनोक्तं संजयेन निवेदितम् ॥३३॥**

**सर्वं तदपि जानामि करिष्यति च पाण्डवः ।**
**न ह्यस्य त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्ति धनुर्धरः ॥३४॥**

मैं तो युद्ध से पूर्व पाण्डवों के साथ सन्धि करना ही उचित समझता हूँ । अर्जुन ने जो बात कही है तथा संजय ने उनका जो सन्देश यहाँ सुनाया है, मैं वह सब जानता और समझता हूँ, पाण्डुनन्दन अर्जुन वैसा करके ही रहेंगे । इस समय तीनों लोकों में अर्जुन के समान दूसरा कोई धनुर्धर नहीं है ।

वैशम्पायन उवाच

**अनादृत्य तु तद्वाक्यमर्थवद् द्रोणभीष्मयोः ।**
**ततः स संजयं राजा पर्यपृच्छत पाण्डवान् ॥३५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! द्रोणाचार्य और भीष्म की उन सार्थक एवं सारगर्भित बातों की अवहेलना करके राजा धृतराष्ट्र संजय से पुनः पाण्डवों का समाचार पूछने लगे ।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥**

# चतुर्दशोऽध्यायः

**संजय द्वारा युधिष्ठिर के प्रधान सहायकों का वर्णन, भीम और अर्जुन के पराक्रम से डरे हुए धृतराष्ट्र का विलाप, धृतराष्ट्र का शान्ति-प्रस्ताव और संजय का उन्हें दुर्योधन पर शासन करने का परामर्श देना**

धृतराष्ट्र उवाच

**संजयाचक्ष्व येनास्मान् पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ।**
**धृष्टद्युम्नस्य सैन्येन सोमकानां बलेन च ॥१॥**

**धृतराष्ट्र ने पूछा**—संजय ! बताओ, पाण्डव लोग धृष्टद्युम्न की सेना तथा अन्यान्य सोमकवंशियों की विशाल वाहिनी के अतिरिक्त और किस-किस की सहायता पाकर हम लोगों के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत हुए हैं ?

संजय उवाच

**शृणु यैर्हि महाराज पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ।**
**धृष्टद्युम्नेन वीरेण युद्धे वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥२॥**

**संजय बोले**—महाराज ! पाण्डवों ने जिन लोगों की सहायता पाकर युद्ध के लिए तैयारी की है, उनका परिचय देता हूँ सुनिए । उन्हें वीर धृष्टद्युम्न का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है, जिससे सबल होकर उन पाण्डवों ने आप लोगों पर आक्रमण की तैयारी की है ।

**यो नैव रोषान्न भयात् सत्यं जह्यात् कदाचन ।**
**अजातशत्रुणा तेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥३॥**

महाराज ! जो धर्मात्मा न रोष से और न भय से ही कभी सत्य का परित्याग कर सकते हैं, उन अजातशत्रु के प्रभाव से पाण्डवों ने युद्ध की तैयारी की है ।

**यस्य बाहुबले तुल्यः पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।**
**तेन वो भीमसेनेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥४॥**

बाहुबल में जिनकी समानता करनेवाला इस भूमण्डल पर दूसरा कोई नहीं है, उन भीमसेन के बल से पाण्डवों ने आप लोगों पर आक्रमण करने का उद्योग आरम्भ किया है ।

**यश्च सर्वान् वशे चक्रे लोकपालान् धनुर्धरः ।**
**तेन वै विजयेनाजौ पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥५॥**

जिस धनुर्धर वीर ने सम्पूर्ण लोकपालों को भी हराकर अपने वश में कर लिया था, उन्हीं अर्जुन के बल पर पाण्डव लोग युद्ध में आप लोगों से भिड़ने के लिए तैयार हैं ।

**यः प्रतीचीं दिशं चक्रे वशे म्लेच्छगणायुताम् ।**
**स तत्र नकुलो योद्धा चित्रयोधी व्यवस्थितः ॥६॥**

कुरुनन्दन ! जिन्होंने सहस्रों म्लेच्छों से भरी हुई पश्चिम दिशा को जीतकर अपने अधीन कर लिया था, वे विचित्र रीति से युद्ध करने में कुशल योद्धा नकुल उधर से युद्ध करने के लिए तैयार खड़े हैं ।

**यः काशीनङ्गमगधान् कलिङ्गांश्च युधाजयत् ।**
**तेन वः सहदेवेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥७॥**

जिन्होंने युद्ध में काशी, अङ्ग, मगध तथा कलिंग देश के राजाओं को पराजित किया है, उन वीर सहदेव के बल से पाण्डव आप लोगों से भिड़ने के लिए

तैयार हुए हैं।

**यः कलिङ्गान् समापेदे पाञ्चाल्यो युद्धदुर्मदः।**
**शिखण्डिना वः कुरवः कृतास्त्रेणाभ्ययुञ्जत ॥८॥**

युद्ध में उन्मत्त होकर लड़नेवाले अस्त्रवेत्ता, कलिङ्गदेशीय क्षत्रियों को पराजित करनेवाले द्रुपद-कुमार शिखण्डी के बल पर पाण्डवों ने आप लोगों के साथ युद्ध की तैयारी की है।

**यो दीर्घबाहुः क्षिप्रास्त्रो धृतिमान् सत्यविक्रमः।**
**तेन वो वृष्णिवीरेण युयुधानेन संगरः ॥९॥**

जिनकी भुजाएँ विशाल हैं, जो अतिशीघ्रता से अस्त्र-संचालन करते हैं, जो धीर और सत्य पराक्रमी हैं, उन वृष्णिवीर सात्यकि के साथ आप लोगों का युद्ध होनेवाला है।

**शिशुभिर्दुर्जयैः संख्ये द्रौपदेयैर्महात्मभिः।**
**आशीविषसमस्पर्शैः पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥१०॥**

द्रौपदी के महामना पुत्र देखने में बालक होने पर भी समरभूमि में दुर्जय हैं। उन्हें छेड़ना विषधर सर्पों को छू लेने के समान है। उनके बल पर पाण्डव आप लोगों से लोहा लेने की तैयारी कर रहे हैं।

**यः कृष्णसदृशो वीर्ये युधिष्ठिरसमो दमे।**
**तेनाभिमन्युना संख्ये पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥११॥**

जो पराक्रम में श्रीकृष्ण के समान तथा इन्द्रिय-संयम में युधिष्ठिर के तुल्य हैं, उन अभिमन्यु को साथ लेकर पाण्डवों ने आप लोगों के साथ युद्ध की तैयारी की है।

**यः संश्रयः पाण्डवानां देवानामिव वासवः।**
**तेन वो वासुदेवेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥१२॥**

जैसे इन्द्र देवताओं के आश्रयदाता हैं, उसी प्रकार जो पाण्डवों को शरण देनेवाले हैं, उन श्रीकृष्ण के साथ पाण्डवों ने आप लोगों पर आक्रमण की तैयारी की है।

**एते च बहवश्चान्ये प्राच्योदीच्या महीक्षितः।**
**शतशो यानुपाश्रित्य धर्मराजो व्यवस्थितः ॥१३॥**

ये तथा और भी बहुत-से पूर्व तथा उत्तर दिशाओं में रहनेवाले नरेश सैकड़ों की संख्या में आकर वहाँ डटे हुए हैं, जिनका आश्रय लेकर युधिष्ठिर युद्ध के लिए तैयार हैं।

धृतराष्ट्र उवाच

**सर्व एते महोत्साहा ये त्वया परिकीर्तिताः।**
**एकतस्त्वेव ते सर्वे समेता भीम एकतः ॥१४॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—संजय! तुमने जिन लोगों के नाम गिनाये हैं, वे सभी अति उत्साही वीर हैं। इनमें भी जितने लोग वहाँ एकत्र हैं, वे सब एक ओर और अकेला भीमसेन एक ओर।

**भीमसेनाद्धि मे भूयो भयं संजायते महत्।**
**क्रुद्धादमर्षणात् तात व्याघ्रादिव महारुरोः ॥१५॥**

तात! मुझे क्रोध में भरे हुए अमर्षशील भीमसेन से बहुत डर लगता है, ठीक वैसे ही जैसे महान् मृग को किसी व्याघ्र से सदा भय बना रहता है।

**जागर्मि रात्रयः सर्वा दीर्घमुष्णं च निःश्वसन्।**
**भीतो वृकोदरात् तात सिंहात् पशुरिवापरः ॥१६॥**

तात! सिंह से डरे हुए पशु की भाँति मैं भीमसेन से भयभीत हो रातभर गर्म-गर्म लम्बी साँसें खैंचता हुआ जागता रहता हूँ।

**न हि तस्य महाबाहोः शक्रप्रतिमतेजसः।**
**सैन्येऽस्मिन् प्रतिपश्यामि य एनं विषहेद् युधि ॥१७॥**

विशालबाहु भीम इन्द्र के समान तेजस्वी हैं। मैं अपनी सेना में किसी भी ऐसे वीर को नहीं देखता, जो भीम का सामना कर सके—युद्ध में उसके वेग को सह सके।

**अमर्षणश्च कौन्तेयो दृढवैरश्च पाण्डवः।**
**अनर्महासी सोन्मादस्तिर्यक्प्रेक्षी महास्वनः ॥१८॥**

कुन्तीनन्दन पाण्डुपुत्र भीम असहनशील तथा वैर को स्मरण रखनेवाला है। वह हँसी में कही बात को भी सत्य कर दिखाता है। उसका स्वभाव उद्धत है। वह टेढ़ी निगाह से देखता तथा बड़े जोर से गर्जना करता है।

**महावेगो महोत्साहो महाबाहुर्महाबलः।**
**मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति ॥१९॥**

वह महान् वेगशाली, अत्यधिक उत्साही, विशाल-बाहु तथा महाबली है। वह युद्ध करके मेरे मन्दबुद्धि-पुत्रों को अवश्य मार डालेगा।

**अस्त्रे द्रोणार्जुनसमं वायुवेगसमं जवे ।**
**महेश्वरसमं क्रोधे को हन्याद् भीममाहवे ॥२०॥**

वह अस्त्रविद्या में द्रोणाचार्य तथा अर्जुन के समान है, वेग में वायु के समान है तथा क्रोध में महेश्वर के तुल्य है । ऐसे भीम को युद्ध में कौन मार सकता है ?

**निष्ठुरो रोषणोऽत्यर्थं भज्येतापि न संनमेत् ।**
**तिर्यक्प्रेक्षी संहतभ्रूः कथं शाम्येद् वृकोदरः ॥२१॥**

वह क्रूर तथा क्रोधी है । वह टूट भले ही जाए परन्तु झुक नहीं सकेगा । वह सदा टेढ़ी निगाह से ही देखता है । उसकी भौंहें क्रोध के कारण परस्पर गुँथी रहती हैं । ऐसा भीमसेन कैसे शान्त हो सकेगा ?

**अगदस्याप्यधनुषो विरथस्य विवर्मणः ।**
**बाहुभ्यां युद्ध्यमानस्य कस्तिष्ठेदग्रतः पुमान् ॥२२॥**

यदि वह गदा, धनुष, रथ तथा कवच को भी छोड़कर केवल दोनों भुजाओं से ही युद्ध करे तो भी उसके समक्ष कौन मनुष्य ठहर सकता है ?

**किन्नु कुर्यां कथं कुर्यां क्व नु गच्छामि संजय ।**
**एते नश्यन्ति कुरवो मन्दाः कालवशं गताः ॥२३॥**

संजय ! मैं क्या करूँ, कैसे करूँ और कहाँ चला जाऊँ ? ये मूर्ख कौरव काल के वशीभूत होकर नष्ट होना चाहते हैं ।

**अवशोऽहं तदा तात पुत्राणां निहते शते ।**
**श्रोष्यामि निनदं स्त्रीणां कथं मां मरणं स्पृशेत् ॥२४॥**

तात ! मेरे सौ पुत्र यदि युद्ध में मारे गये, तब विवश होकर मुझे इनकी विधवा स्त्रियों का विलाप सुनना पड़ेगा । हाय ! मेरी मृत्यु किस प्रकार हो सकती है ?

**यस्य वै नानृता वाचः कदाचिदनुशुश्रुम ।**
**त्रैलोक्यमपि तस्य स्याद् योद्धा यस्य धनञ्जयः ॥२५॥**

संजय ! जिनके मुख से कभी कोई झूठी बात निकलती हमने नहीं सुनी तथा जिनके पक्ष में धनंजय जैसा योद्धा है, उन धर्मराज युधिष्ठिर को [भूमण्डल की तो बात ही क्या] तीनों लोकों का भी राज्य प्राप्त हो सकता है ।

**तस्यैव च न पश्यामि युधि गाण्डीवधन्वनः ।**
**अनिशं चिन्तयानोऽपि यः प्रतीयाद् रथेन तम् ॥२६॥**

मैं निरन्तर सोचने-विचारने पर भी युद्ध में गाण्डीवधारी अर्जुन का सामना करनेवाले किसी ऐसे वीर को नहीं देखता, जो रथ पर आरूढ़ हो उनके सम्मुख जा सके ।

**अस्यतः कर्णिनालीकान् मार्गणान् हृदयच्छिदः ।**
**प्रत्येता न समः कश्चिद् युधि गाण्डीवधन्वनः ॥२७॥**

जो हृदय को विदीर्ण कर देनेवाले कर्णी और नालीक आदि बाणों की निरन्तर झड़ी लगाते हैं, उन गाण्डीवधारी अर्जुन का युद्ध में साम्मुख्य करनेवाला कोई भी योद्धा नहीं है ।

**अन्येऽप्यस्त्राणि जानन्ति जीयन्ते च जयन्ति च ।**
**एकान्तविजयस्त्वेव श्रूयते फाल्गुनस्य वै ॥२८॥**

दूसरे योद्धा भी अस्त्र चलाना जानते हैं, परन्तु वे कभी हारते हैं और कभी जीतते हैं, केवल अर्जुन ही ऐसे हैं, जिनकी निरन्तर विजय ही सुनी जाती है ।

**त्रयस्त्रिंशत् समाऽऽहूय खाण्डवेऽग्निमतर्पयत् ।**
**जिगाय च सुरान् सर्वान् नास्य विद्मः पराजयम् ॥२९॥**

[1]तैतीस वर्ष पूर्व अर्जुन ने अग्नि को खाण्डववन में बुलाकर तृप्त किया था और सभी देवताओं को भी जीत लिया था । उनकी कभी पराजय हुई हो, ऐसा हमने आज तक नहीं सुना है ।

**यस्य यन्ता हृषीकेशः शीलवृत्तसमो युधि ।**
**ध्रुवस्तस्य जयस्तात यथेन्द्रस्य जयस्तथा ॥३०॥**

तात ! श्रीकृष्ण जिनका स्वभाव तथा आचार-व्यवहार भी अर्जुन के ही समान है, वे युद्ध में अर्जुन का रथ हाँकते हैं, अतः इन्द्र की विजय की भाँति

१. यहाँ स्पष्ट कहा है कि अर्जुन को खाण्डवदाह किये तैतीस वर्ष व्यतीत हो गये । यह भी ध्रुव सत्य है कि अभिमन्यु का जन्म खाण्डवदाह से पूर्व हो चुका था । इतना ही नहीं धनुर्धारी अर्जुन खाण्डवदाह से पूर्व ही अभिमन्यु को सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा भी प्रदान कर चुके थे । द्रष्टव्य—विज्ञानेष्वपि [आदि०३५।४९] । ३३ वर्ष खाण्डवदाह के और उससे पूर्व अभिमन्यु अस्त्र-शस्त्रों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर चुके थे, अतः युद्ध के समय उनकी अवस्था ४८ वर्ष से कम नहीं हो सकती ।

उनकी भी विजय निश्चित है ।

**कृष्णावेकरथे यत्तावधिज्यं गाण्डिवं धनुः ।**
**युगपत् त्रीणि तेजाँसि समेतान्यनुशुश्रुमः ।।३१।।**

श्रीकृष्ण और अर्जुन एक रथ पर आरूढ़ हैं तथा गाण्डीवधनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ी हुई है, इस प्रकार ये तीनों तेज एक ही साथ एकत्र हो गये हैं, यह हमारे सुनने में आया है ।

**नैवास्ति नो धनुस्तादृक् न योद्धा न च सारथिः ।**
**तच्च मन्दाः न जानन्ति दुर्योधनवशानुगाः ।।३२।।**

हम लोगों के पास न तो वैसा धनुष है, न अर्जुन जैसा पराक्रमी योद्धा है, न श्रीकृष्ण के समान सारथि ही है, परन्तु दुर्योधन के वशीभूत हुए मेरे मूर्ख पुत्र इस बात को समझ नहीं पाते हैं ।

**शेषयेदशनिर्दीप्तो विपतन् मूर्ध्नि संजय ।**
**न तु शेषं शरास्तात कुर्युस्ताः किरीटिना ।।३३।।**

तात सञ्जय ! अपने तेज से दीप्त इन्द्र का वज्र किसी के मस्तक पर पड़कर सम्भव है, उसके जीवन को बचा दे, परन्तु किरीटधारी अर्जुन के चलाये हुए बाण जिसे लग जाएँगे, उसे जीवित नहीं छोड़ेंगे ।

**युधिष्ठिरस्य च क्रोधादर्जुनस्य च विक्रमात् ।**
**यमाभ्यां भीमसेनाच्च भयं मे तात जायते ।।३४।।**
**अमानुषं मनुष्येन्द्रैर्जालं विततमन्तरा ।**
**न मे सैन्यास्तरिष्यन्ति ततः क्रोशामि सञ्जय ।।३५।।**

सञ्जय ! मुझे युधिष्ठिर के क्रोध से, अर्जुन के पराक्रम से, नकुल-सहदेव दोनों भाइयों तथा भीमसेन से बड़ा भय लगता है । तात ! इन नरश्रेष्ठ वीरों द्वारा मेरी सेना के भीतर जब अलौकिक अस्त्रों का जाल-सा बिछा दिया जाएगा, तब मेरे सैनिक उसे पार नहीं कर सकेंगे, इसीलिए मैं बिलख रहा हूँ ।

**दर्शनीयो मनस्वी च लक्ष्मीवान् ब्रह्मवर्चसी ।**
**मेधावी सुकृतप्रज्ञो धर्मात्मा पाण्डुनन्दनः ।।३६।।**
**बहुश्रुतः कृतात्मा च वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ।**
**तपन्तमभि को मन्दः पतिष्यति पतङ्गवत् ।।३७।।**

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर दर्शनीय, मनस्वी, लक्ष्मीवान्, ब्रह्मर्षियों के समान तेजस्वी, मेधावी, सुनिश्चित दूरदर्शिनी बुद्धि से युक्त, धर्मात्मा, अनेक शास्त्रों के ज्ञाता, मन को वश में रखनेवाले, वृद्धसेवी और जितेन्द्रिय हैं । कौन मूर्ख मनुष्य पतंग की भाँति उस प्रदीप्त अग्नि में गिरेगा ?

**तैरयुद्धं साधु मन्ये कुरवस्तन्निबोधत ।**
**युद्धे विनाशः कृत्स्नस्य कुलस्य भविता ध्रुवम् ।।३८।।**
**एषा मे परमा बुद्धिर्यया शाम्यति मे मनः ।**
**यदि त्वयुद्धमिष्टं वो वयं शान्त्यै यतामहे ।।३९।।**

कौरवो ! मैं पाण्डवों के साथ युद्ध न होना ही अच्छा समझता हूँ । तुम लोग इसे भली प्रकार समझ लो कि युद्ध हुआ तो समस्त कुरुकुल का विनाश अवश्यम्भावी है । मेरी बुद्धि का यही सर्वोत्तम निश्चय है, इसी से मेरे मन को शान्ति मिलती है । यदि तुम्हें भी युद्ध न होना ही अभीष्ट हो तो हम शान्ति के लिए प्रयत्न करें ।

सञ्जय उवाच

**एवमेतन्महाराज यथा वदसि भारत ।**
**युद्धे विनाशः क्षत्रस्य गाण्डीवेन प्रदृश्यते ।।४०।।**

**सञ्जय ने कहा**—महाराज ! आप जैसा कह रहे हैं, वही उचित है । हे भारत ! युद्ध में तो गाण्डीव धनुष के द्वारा क्षत्रिय-समुदाय का विनाश ही दिखाई देता है ।

**इदं तु नाभिजानामि तव धीरस्य नित्यशः ।**
**यत् पुत्रवशमागच्छेस्तत्त्वज्ञः सव्यसाचिनः ।।४१।।**

परन्तु सदा से बुद्धिमान् माने जानेवाले आपके सम्बन्ध में मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि सव्यचाची अर्जुन के बल-पराक्रम को भली-भाँति जानते हुए भी आप अपने पुत्रों के अधीन क्यों हो रहे हैं ?

**नैष कालो महाराज तव शश्वत् कृतागसः ।**
**त्वया ह्येवादितः पार्था निकृता भरतर्षभ ।।४२।।**

भरतकुलश्रेष्ठ महाराज ! आप [स्वभाव से ही] पाण्डवों के प्रति अपराध करनेवाले हैं, अतः इस समय आपने जो विचार व्यक्त किया है, वह सदा स्थिर रहनेवाला नहीं है । आपने आरम्भ से ही कुन्तीपुत्रों के साथ कपटपूर्ण व्यवहार किया है ।

**पिता श्रेष्ठः सुहृद् यश्च सम्यक् प्रणिहितात्मवान् ।**
**आस्थेयं हि हितं तेन न द्रोग्धा गुरुरुच्यते ।।४३।।**

जो पिता के पद पर प्रतिष्ठित है, श्रेष्ठ सुहृद् है तथा मन में भली-भाँति सावधानी रखनेवाला है,

उसे अपने आश्रितों का हितसाधन ही करना चाहिए। द्रोह करनेवाला पुरुष पिता अथवा गुरु नहीं कहला सकता।

**इदं जितमिदं लब्धमिति श्रुत्वा पराजितान्।**
**द्यूतकाले महाराज स्मयसे स्म कुमारवत् ॥४४॥**

महाराज! द्यूतक्रीड़ा के समय जब आप अपने पुत्रों के मुख से सुनते थे कि यह जीता, वह पाया तथा पाण्डवों की पराजय हो रही है, तब आप बालकों की भाँति मुस्करा उठते थे।

**तस्याद्य वसुधा राजन् निखिला भरतर्षभ।**
**यस्य भीमार्जुनौ योधौ स राजा राजसत्तम ॥४५॥**

राजाओं में श्रेष्ठ भरतकुलभूषण! अब तो यह सारी पृथिवी उसी के अधिकार में रहेगी और वही राजा होगा जिसकी ओर से भीम और अर्जुन जैसे योद्धा युद्ध करेंगे।

**यदिदं ते विलपितं पाण्डवान् प्रति भारत।**
**अनीशेनेव राजेन्द्र सर्वमेतन्निरर्थकम् ॥४६॥**

राजेन्द्र! आपने जो पाण्डवों के बल-पराक्रम की चर्चा करके असमर्थ की भाँति विलाप किया है, वह सब व्यर्थ है।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥**

## पञ्चदशोऽध्यायः

### दुर्योधन द्वारा अपने उत्कर्ष और पाण्डवों के अपकर्ष का वर्णन, पाण्डवों से युद्ध का ही निश्चय तथा आत्मप्रशंसा

दुर्योधन उवाच

**न भेतव्यं महाराज न शोच्या भवता वयम्।**
**समर्थाः स्म पराञ्जेतुं बलिनः समरे विभो ॥१॥**

**दुर्योधन बोला**—महाराज! आप भयभीत न हों। आप हमारे लिए शोक न करें। प्रभो! हम बलवान् तथा शक्तिशाली हैं और युद्धभूमि में शत्रुओं को जीतने की शक्ति रखते हैं।

**जेतुं समग्रां सेनां मे वासवोऽपि न शक्नुयात्।**
**हन्तुमक्षय्यरूपा न ब्रह्मणाऽपि स्वयम्भुवा ॥२॥**

मेरी सम्पूर्ण सेना को इन्द्र भी नहीं जीत सकते, स्वयम्भू ब्रह्माजी भी इसका विनाश नहीं कर सकते।

**युधिष्ठिरः पुरं हित्वा पञ्चग्रामान् स याचति।**
**भीतो हि मामकात् सैन्यात्प्रभावाच्चैव मे विभो ॥३॥**

प्रभो! युधिष्ठिर तो मेरी सेना तथा प्रभाव से इतने भयभीत हो गये हैं कि राजधानी या नगर लेने की बात छोड़कर अब केवल पाँच गाँव माँगने लगे हैं।

**समर्थं मन्यसे यच्च कुन्तीपुत्रं वृकोदरम्।**
**तन्मिथ्या न हि मे कृत्स्नं प्रभावं वेत्सि भारत ॥४॥**

हे भारत! आप जो कुन्तीपुत्र भीम को बहुत शक्तिशाली मान रहे हैं, वह भी मिथ्या ही है, क्योंकि आप मेरे प्रभाव को पूर्णरूप से नहीं जानते हैं।

**मत्समो हि गदायुद्धे पृथिव्यां नास्ति कश्चन।**
**नासीत् कश्चिदतिक्रान्तो भविता न च कश्चन ॥५॥**

गदायुद्ध में मेरी समानता करनेवाला इस भूतल पर न तो कोई है, न भूतकाल में कोई हुआ था और न भविष्य में ही कोई होगा।

**एकं प्रहारं यं दद्यां भीमाय रुषितो नृप।**
**स एवैनं नयेद् घोरं क्षिप्रं वैवस्वतक्षयम् ॥६॥**

महाराज! मैं क्रोध में भरकर भीमसेन पर गदा का जो एक भरपूर प्रहार करूँगा, वह अत्यन्त भयंकर एक ही आघात उसे शीघ्र ही यमलोक पठा देगा।

**गदाप्रहाराभिहतो हिमवानपि पर्वतः।**
**सकृन्मया विदीर्येत गिरिः शतसहस्रधा ॥७॥**

यदि मैं अपनी गदा का एक भरपूर आघात कर दूँ तो हिमालय पर्वत भी सैकड़ों-हजारों टुकड़ों में विदीर्ण हो जाएगा।

**तत् ते वृकोदरमयं भयं व्येतु महाहवे।**
**व्यपनेष्याम्यहं ह्येनं मा राजन् विमना भव ॥८॥**

राजन्! भीमसेन से आपको जो भय हो रहा है, वह दूर हो जाना चाहिए। मैं महायुद्ध में उसे मार गिराऊँगा, अतः आप मन में खेद न करें।

**अभिव्यक्तः परेषां च कृत्स्नो भुवि पराजयः।**
**अह्ना ह्येकेन भीष्मोऽयं प्रयुतं हन्ति भारत ॥९॥**

हे भारत ! इस पृथिवी पर मेरे शत्रुओं की पूर्णतः पराजय तो इसी से स्पष्ट है कि ये पितामह भीष्म प्रतिदिन दस सहस्र विपक्षी योद्धाओं का संहार करेंगे ।

**अक्षौहिण्यो हि मे राजन् दशैका च समाहृताः ।**
**न्यूनाः परेषां सप्तैव कस्मान् मे स्यात्पराजयः ॥१०॥**

महाराज ! अपने यहाँ ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हो गई हैं, परन्तु शत्रुओं के पक्ष में हमसे बहुत कम—केवल सात अक्षौहिणी सेनाएँ हैं, फिर मेरी पराजय कैसे हो सकती है ?

**गुणहीनं परेषां च बहु पश्यामि भारत ।**
**गुणोदयं बहुगुणमात्मनश्च विशाम्पते ॥११॥**

हे भारत ! प्रजानाथ ! मैं देख रहा हूँ कि शत्रुओं का बल हमारी अपेक्षा अनेक प्रकार से गुणहीन [न्यूनतम] है, परन्तु मेरा बल [सेना] सब प्रकार से बहुत अधिक तथा गुणशाली है ।

**एतत् सर्वं समाज्ञाय बलाग्र्यं मम भारत ।**
**न्यूनतां पाण्डवानां च न मोहं गन्तुमर्हसि ॥१२॥**

भरतनन्दन ! सभी दृष्टियों से मेरा बल अधिक है और पाण्डवों का बहुत कम है, यह जानकर आप व्याकुल एवं अधीर न हों ।

धृतराष्ट्र उवाच

**उन्मत्त इव मे पुत्रो विलपत्येष सञ्जय ।**
**न हि शक्तो रणे जेतुं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥१३॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—सञ्जय ! मेरा यह पुत्र पागल के समान प्रलाप कर रहा है । यह युद्ध में धर्मराज युधिष्ठिर को कभी नहीं जीत सकता ।

**दुर्योधन निवर्तस्व युद्धाद् भरतसत्तम ।**
**न हि युद्धं प्रशंसन्ति सर्वावस्थमरिन्दम ॥१४॥**

भरतकुलतिलक शत्रुदमन दुर्योधन ! तुम युद्ध से निवृत्त हो जाओ । श्रेष्ठ पुरुष किसी भी अवस्था में युद्ध की प्रशंसा नहीं करते ।

**अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम् ।**
**प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथाभागमरिन्दम ॥१५॥**

शत्रुदमन ! तुम पाण्डवों को उनका यथोचित राज्यभाग दे दो । वत्स ! मन्त्रियोंसहित तुम्हारे जीवन-निर्वाह के लिए आधा राज्य ही पर्याप्त है ।

**न त्वहं युद्धमिच्छामि नैतदिच्छति बाह्लिकः ।**
**न च भीष्मो न च द्रोणो नाश्वत्थामा न सञ्जयः ॥१६॥**

देखो, न तो मैं युद्ध चाहता हूँ, न बाह्लीक इसकी इच्छा रखते हैं । भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा और सञ्जय भी युद्ध के पक्ष में नहीं हैं ।

**न त्वं करोषि कामेन कर्णः कारयिता तव ।**
**दुःशासनश्च पापात्मा शकुनिश्चापि सौबलः ॥१७॥**

[मैं जानता हूँ,] तुम अपनी इच्छा से युद्ध नहीं कर रहे हो, अपितु कर्ण, पापात्मा दुःशासन तथा सुबलपुत्र शकुनि ही तुमसे यह कार्य करा रहे हैं ।

दुर्योधन उवाच

**नाहं भवति न द्रोणे न भीष्मे न च सञ्जये ।**
**तावकेषु न वान्येषु भारं कृत्वा समाह्वयम् ॥१८॥**

**दुर्योधन बोला**—पिताजी ! मैंने आप, द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, संजय अथवा आपके अन्यान्य योद्धाओं पर सारा बोझ रखकर पाण्डवों को युद्ध के लिए आमन्त्रित नहीं किया है ।

**अहं च तात कर्णश्च रणयज्ञं वितत्य वै ।**
**युधिष्ठिरं पशुं कृत्वा दीक्षितौ भरतर्षभ ॥१९॥**

तात ! भरतश्रेष्ठ ! मैंने तथा कर्ण ने रणयज्ञ का विस्तार करके युधिष्ठिर को बलिपशु बनाकर उस यज्ञ की दीक्षा ग्रहण की है ।

**रथो वेदी स्रुवः खड्गो गदा स्रुक् कवचोऽजिनम् ।**
**चातुर्होत्रं च धुर्या मे शरा दर्भा हविर्यशः ॥२०॥**

इस यज्ञ में रथ ही वेदी है, खड्ग स्रुवा है, गदा स्रुक् है, कवच मृगचर्म है, रथ का भार वहन करने-वाले मेरे चारों घोड़े ही चार होता हैं, बाण कुश हैं तथा यश ही हविष्य है ।

**आत्मयज्ञेन नृपते इष्ट्वा वैवस्वतं रणे ।**
**विजित्य च समेष्यावो हतामित्रौ श्रिया वृतौ ॥२१॥**

नरेश्वर ! हम दोनों युद्धभूमि में अपने इस यज्ञ के द्वारा यमराज का यजन करके शत्रुओं को मारकर विजयी हो, विजयलक्ष्मी से शोभा पाते हुए पुनः राजधानी में लौटेंगे ।

**अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे ।**
**एते वयं हनिष्यामः पाण्डवान् समरे त्रयः ॥२२॥**

तात ! मैं, कर्ण तथा भाई दुःशासन—हम तीन

ही संग्रामभूमि में पाण्डवों का संहार कर डालेंगे।

**अहं हि पाण्डवान् हत्वा प्रशास्ता पृथिवीमिमाम्।**
**मां वा हत्वा पाण्डुपुत्रा भोक्तारः पृथिवीमिमाम् ॥२३॥**

पाण्डवों का संहार कर या तो मैं ही इस पृथिवी का शासन करूँगा अथवा पाण्डव ही मुझे मारकर भूमण्डल का राज्य भोगेंगे।

**त्यक्तं मे जीवितं राज्यं धनं सर्वं च पार्थिव।**
**न जातु पाण्डवैः सार्धं वसेयमहमच्युत ॥२४॥**

राज्य से च्युत न होनेवाले महाराज! मैं जीवन, राज्य, धन—सब-कुछ छोड़ सकता हूँ, परन्तु पाण्डवों के साथ मिलकर नहीं रह सकता।

**यावद्धि सूच्यास्तीक्ष्णाया विध्येदग्रेण मारिष।**
**तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति ॥२५॥**

पूज्य पिताजी! तीखी सूई के अग्रभाग से जितनी भूमि बिंध सकती है, मैं उतनी भूमि भी पाण्डवों को नहीं दे सकता।

धृतराष्ट्र उवाच

**सर्वान् वस्तात शोचामि त्यक्तो दुर्योधनो मया।**
**ये मन्दमनुयास्यध्वं यान्तं वैवस्वतक्षयम् ॥२६॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—तात कौरवगण! मैंने दुर्योधन का परित्याग कर दिया है। यमलोक को जाते हुए उस मूर्ख का तुम लोगों में से जो अनुसरण करेंगे, मैं उन सभी लोगों के लिए शोक में पड़ा हूँ।

**रुरूणामिव यूथेषु व्याघ्राः प्रहरतां वराः।**
**वरान् वरान् हनिष्यन्ति समेता युधि पाण्डवाः ॥२७॥**

प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ व्याघ्र जैसे रुरु नामक मृगों के झुण्ड में घुसकर बड़े-बड़ों को मार डालता है, उसी प्रकार योद्धाओं में अग्रगण्य पाण्डव युद्ध में एकत्र होकर कौरवों के सभी प्रधान-प्रधान वीरों का वध कर डालेंगे।

**महद् वो भयमागामि न चेच्छाम्यथ पाण्डवैः।**
**गदया भीमसेनेन हताः शममुपैष्यथ ॥२८॥**

तुम लोगों पर बहुत बड़ा भय आनेवाला है। मैं नहीं चाहता कि पाण्डवों के साथ तुम्हारा युद्ध हो। यदि युद्ध हुआ तो तुम लोग भीम की गदा से मारे जाकर सदा के लिए शान्त हो जाओगे।

**महावनमिव छिन्नं यदा द्रक्ष्यसि पातितम्।**
**बलं कुरूणां भीमेन तदा स्मर्तासि मे वचः ॥२९॥**

काटकर गिराये हुए विशाल वन की भाँति जब तुम कौरव-सेना को भीमसेन के द्वारा मार गिराई हुई देखोगे, तब तुम्हें मेरी बात स्मरण आएगी।

वैशम्पायन उवाच

**पितुरेतद् वचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः।**
**आधाय विपुलं क्रोधं पुनरेवेदमब्रवीत् ॥३०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! पिता की यह बात सुनकर अति क्रोधी दुर्योधन ने भीतर-ही-भीतर अत्यन्त क्रुद्ध होकर पुनः इस प्रकार कहा—

दुर्योधन उवाच

**स्तम्भितास्वप्सु गच्छन्ति मया रथपदातयः।**
**देवासुराणां भावानामहमेकः प्रवर्तिता ॥३१॥**

**दुर्योधन बोला**—मेरे द्वारा स्तम्भित किये हुए जल पर रथ और पैदल सेनाएँ चल सकती हैं। एक-मात्र मैं ही दैव तथा आसुर शक्तियों को प्रकट करने में समर्थ हूँ।

**सरितः सागरं प्राप्य यथा नश्यन्ति सर्वशः।**
**तथैव ते विनङ्क्ष्यन्ति मामासाद्य सहान्वयाः ॥३२॥**

जैसे नदियाँ समुद्र में लीन होकर सब प्रकार से अपना अस्तित्व खो बैठती हैं, उसी प्रकार वे पाण्डव आदि योद्धा मेरे समीप आने पर अपने बन्धु-बान्धवों-सहित नष्ट हो जाएँगे।

**परा बुद्धिः परं तेजो वीर्यं च परमं मम।**
**परा विद्या परो योगो मम तेभ्यो विशिष्यते ॥३३॥**

मेरी बुद्धि उत्तम है, तेज उत्कृष्ट है, बल-पराक्रम महान् है, विद्या बड़ी है तथा उद्योग भी सबसे बढ़कर है। ये सारी कलाएँ पाण्डवों की अपेक्षा मुझमें अधिक हैं।

**पितामहश्च द्रोणश्च कृपः शल्यः शलस्तथा।**
**अस्त्रेषु यत् प्रजानन्ति सर्वं तन्मयि विद्यते ॥३४॥**

पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, शल्य तथा शल—ये लोग अस्त्रविद्या के विषय में जो कुछ जानते हैं, वह सारा ज्ञान मुझमें विद्यमान है।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥**

# षोडशोऽध्यायः

**विदुर का दम=मन तथा इन्द्रियनिग्रह की महिमा तथा कौटुम्बिक कलह से हानि बताते हुए धृतराष्ट्र को सन्धि का परामर्श देना, धृतराष्ट्र का दुर्योधन को समझाना**

विदुर उवाच

**इह निःश्रेयसं प्राहुर्वृद्धा निश्चितदर्शिनः ।**
**ब्राह्मणस्य विशेषेण दमो धर्मः सनातनः ॥१॥**

**विदुरजी बोले**—सिद्धान्तवेत्ता वृद्ध पुरुष कहते हैं कि संसार में दम ही कल्याण का परम साधन है। ब्राह्मण के लिए तो विशेष रूप से दम ही सनातन धर्म है।

**तस्य दानं क्षमा सिद्धिर्यथावदुपपद्यते ।**
**दमो दानं तपो ज्ञानमधीतं चानुवर्तते ॥२॥**

जो दमरूपी गुण से युक्त है, उसी को दान, क्षमा तथा सिद्धि का यथार्थ लाभ प्राप्त होता है, क्योंकि दम ही दान, तपस्या, ज्ञान और स्वाध्याय का सम्पादन करता है।

**वर्धयति दमस्तेजः पवित्रं दम उत्तमम् ।**
**विपाप्मा वृद्धतेजास्तु पुरुषो विन्दते महत् ॥३॥**

दम तेज की वृद्धि करता है। दम पवित्र एवं उत्तम साधन है। दम से निष्पाप तथा बढ़े हुए तेज से सम्पन्न मनुष्य परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

**क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम् ।□**
**इन्द्रियाभिजयो धैर्यं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥४॥**
**अकार्पण्यमसंरम्भः सन्तोषः श्रद्दधानता ।**
**एतानि यस्य राजेन्द्र स दान्तः पुरुषः स्मृतः ॥५॥**

हे राजेन्द्र ! जिस पुरुष में क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समदर्शिता, सत्य, सरलता, इन्द्रिय-संयम, धीरता, मृदुता, लज्जा, स्थिरता, उदारता, अक्रोध, सन्तोष और श्रद्धा—ये गुण विद्यमान हैं, वह पुरुष 'दान्त' माना गया है।

**कामो लोभश्च दर्पश्च मन्युर्निद्रा विकत्थनम् ।□**
**मान ईर्ष्या च शोकश्च नैतद् दान्तो निषेवते ।**
**अजिह्ममशठं शुद्धमेतद् दान्तस्य लक्षणम् ॥६॥**

दमनशील पुरुष काम, लोभ, अभिमान, क्रोध, निद्रा, आत्म-प्रशंसा, मान, ईर्ष्या तथा शोक—इन दुर्गुणों को अपने पास नहीं फटकने देता। कुटिलता तथा शठता का अभाव एवं आत्म-शुद्धि—यह दमयुक्त पुरुष का लक्षण है।

**अलोलुपस्तथाल्पेप्सुः कामानामविचिन्तिता ।□**
**समुद्रकल्पः पुरुषः स दान्तः परिकीर्तितः ॥७॥**

जो निर्लोभ, कम-से-कम चाहनेवाला, भोगों के चिन्तन से दूर रहनेवाला तथा समुद्र के समान गम्भीर है, उस पुरुष को 'दान्त' कहा गया है।

**सुवृत्तः शीलसम्पन्नः प्रसन्नात्माऽऽत्मविद् बुधः ।□**
**प्राप्येह लोके सम्मानं सुगतिं प्रेत्य गच्छति ॥८॥**

जो सदाचारी, शीलवान्, प्रसन्नचित्त तथा आत्म-ज्ञानी विद्वान् है, वह इस जगत् में सम्मान पाकर मृत्यु के पश्चात् उत्तम गति का भागी होता है।

**अभयं यस्य भूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः ।□**
**स वै परिणतप्रज्ञः प्रख्यातो मनुजोत्तमः ॥९॥**

जिसे समस्त प्राणियों से निर्भयता प्राप्त हो गई हो, वह परिपक्व बुद्धिवाला पुरुष मनुष्यों में श्रेष्ठ कहा गया है।

**सर्वभूतहितो मैत्रस्तस्मान्नोद्विजते जनः ।□**
**समुद्र इव गम्भीरः प्रज्ञातृप्तः प्रशाम्यति ॥१०॥**

जो समस्त प्राणियों का हितचिन्तक तथा सबके प्रति मैत्रीभाव रखनेवाला है, उससे किसी भी प्राणी को उद्वेग प्राप्त नहीं होता। जो समुद्र के समान गम्भीर तथा उत्कृष्ट ज्ञानरूपी अमृत से तृप्त है, वही परमशान्ति का भागी होता है।

**कर्मणाऽऽचरितं पूर्वं सद्भिराचरितं च यत् ।**
**तदेवास्थाय मोदन्ते दान्ताः शमपरायणाः ॥११॥**

जो कर्तव्य शुभकर्मों द्वारा आचरित है और पूर्व-श्रेष्ठपुरुषों ने जिसका आचरण किया है, उसे अपनाकर शम-दम से सम्पन्न मनुष्य सदा आनन्द में मग्न रहते हैं।

**शकुनीनामिहार्थाय पाशं भूमावयोजयत् ।**
**कश्चिच्छाकुनिकस्तात पूर्वेषामिति शुश्रुमः ॥१२॥**

तात ! हमने पूर्वजों के मुख से सुन रखा है कि किसी समय एक चिड़ीमार ने चिड़ियों को फँसाने के लिए पृथिवी पर जाल फैलाया।

**तस्मिन् द्वौ शकुनौ बद्धौ युगपत् सहचारिणौ।**
**तावुपादाय तं पाशं जग्मतुः खचरावुभौ ॥१३॥**

उस जाल में दो ऐसे पक्षी फँस गये, जो सदा साथ-साथ उड़ने और विचरनेवाले थे। वे दोनों पक्षी उस जाल को लेकर आकाश में उड़ चले।

**तौ विहायसमाक्रान्तौ दृष्ट्वा शाकुनिकस्तदा।**
**अन्वधावदनिर्विण्णो येन येन स्म गच्छतः ॥१४॥**

वह चिड़ीमार उन दोनों पक्षियों को आकाश में उड़ते देखकर भी खिन्न अथवा हताश नहीं हुआ। वे पक्षी जिधर जाते थे, वह भी उधर ही उनके पीछे दौड़ता था।

**तथा तमनुधावन्तं मृगयुं शकुनार्थिनम्।**
**आश्रमस्थो मुनिः कश्चिद् ददर्शाथ कृताह्निकः ॥१५॥**

उन पक्षियों को पकड़ने के लिए उनका पीछा करते हुए उस व्याध को सन्ध्या-वन्दन आदि नित्य-कर्मों से निवृत्त हुए किसी आश्रमवासी मुनि ने देखा।

**तावन्तरिक्षगौ शीघ्रमनुयान्तं महीचरम्।**
**श्लोकेनानेन कौरव्य पप्रच्छ स मुनिस्तदा ॥१६॥**

कुरुनन्दन ! उन आकाशचारी पक्षियों के पीछे-पीछे भूमि पर पैदल दौड़नेवाले उस व्याध से उस मुनि ने निम्न श्लोक के अनुसार प्रश्न किया—

**विचित्रमिदमाश्चर्यं मृगहन् प्रतिभाति मे।**
**प्लवमानौ हि खचरौ पदातिरनुधावसि ॥१७॥**

"अरे व्याध ! मुझे यह बात अति विचित्र तथा आश्चर्यजनक जान पड़ती है कि तू आकाश में उड़ते हुए इन दोनों पक्षियों के पीछे पृथिवी पर पैदल दौड़ रहा है।"

शाकुनिक उवाच

**पाशमेकमुभावेतौ सहितौ हरतो मम।**
**यत्र वै विवदिष्येते तत्र मे वशमेष्यतः ॥१८॥**

**व्याध बोला**—मुने ! ये दोनों पक्षी आपस में मिल गये हैं, अतः मेरे एकमात्र जाल को लिये जा रहे हैं। जहाँ ये एक-दूसरे से झगड़ेंगे, वहीं मेरे वश में आ जाएँगे।

विदुर उवाच

**तौ विवादमनुप्राप्तौ शकुनौ मृत्युसन्धितौ।**
**विगृह्य च सुदुर्बुद्धी पृथिव्यां संनिपेततुः ॥१९॥**

**विदुरजी कहते हैं**—राजन् ! तत्पश्चात् कुछ ही देर में काल के वशीभूत हुए वे दोनों दुर्बुद्धि पक्षी आपस में झगड़ने लगे तथा लड़ते-लड़ते पृथिवी पर गिर पड़े।

**तौ युध्यमानौ संरब्धौ मृत्युपाशवशानुगौ।**
**उपसृत्यापरिज्ञातो जग्राह मृगहा तदा ॥२०॥**

जिस समय मृत्यु के पाश में फँसे हुए वे पक्षी अति क्रुद्ध होकर एक-दूसरे से लड़ रहे थे, उसी समय व्याध ने चुपचाप उनके पास आकर उन्हें पकड़ लिया।

**एवं ये ज्ञातयोऽर्थेषु मिथो गच्छन्ति विग्रहम्।**
**तेऽमित्रवशमायान्ति शकुनाविव विग्रहात् ॥२१॥**

इसी प्रकार जो कुटुम्बीजन धन-सम्पत्ति के लिए आपस में झगड़ा करते हैं, वे युद्ध करके उन दोनों पक्षियों की भाँति शत्रुओं के वश में पड़ जाते हैं।

**सम्भोजनं संकथनं सम्प्रश्नोऽथ समागमः।**
**एतानि ज्ञातिकार्याणि न विरोधः कदाचन ॥२२॥**

एक-साथ बैठकर भोजन करना, परस्पर प्रेमालाप, एक-दूसरे के सुख-दुःख को पूछना तथा सदा मिलते-जुलते रहना—ये ही भाई-बन्धुओं के काम हैं, परस्पर विरोध करना कदापि उचित नहीं है।

**अङ्के कुरुष्व राजानं धृतराष्ट्र युधिष्ठिरम्।**
**युद्धतोहि द्वयोर्युद्धे नैकान्तेन भवेज्जयः ॥२३॥**

महाराज धृतराष्ट्र ! आप राजा युधिष्ठिर को अपनी गोद में बैठा लीजिए, क्योंकि जब दोनों पक्षों में युद्ध छिड़ जाएगा, तब विजय किसकी होगी—यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

धृतराष्ट्र उवाच

**दुर्योधन विजानीहि यत् त्वां वक्ष्यामि पुत्रक।**
**उत्पथं मन्यसे मार्गमनभिज्ञ इवाध्वगः ॥२४॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—पुत्र दुर्योधन ! मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसपर ध्यान दो। तुम इस समय अनजान पथिक के समान कुमार्ग को भी सुमार्ग समझ रहे हो।

**तिष्ठ तात सतां वाक्ये सुहृदामर्थवादिनाम् ।**
**वृद्धं शान्तनवं भीष्मं तितिक्षस्व पितामहम् ।।२५।।**

तात ! तुम सत्पुरुषों तथा तुम्हारे हित की बात कहनेवाले सुहृदों के कथनानुसार कार्य करो । वृद्ध शान्तनुनन्दन भीष्म तुम्हारे पितामह हैं, तुम उनकी प्रत्येक बात सहन करो ।

**मां च ब्रुवाणं शुश्रूष कुरूणामर्थदर्शिनम् ।**
**द्रोणं कृपं विकर्णं च महाराजं च बाह्लिकम् ।।२६।।**
**एते ह्यपि यथैवाहं मन्तुमर्हसि तांस्तथा ।**
**सर्वे धर्मविदो ह्येते तुल्यस्नेहाश्च भारत ।।२७।।**

मैं कौरवों के हित की बात सोचता हूँ, अतः मेरी भी सुनो । आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, विकर्ण और महाराज बाह्लीक—ये भी तुम्हारे हितैषी ही हैं, अतः मेरे ही समान तुम्हें भी इनका आदर करना चाहिए । भरतनन्दन ! ये सभी धर्म के ज्ञाता हैं तथा दोनों पक्षों के लोगों पर समान भाव से स्नेह रखते हैं ।

**यत् तद् विराटनगरे सह भ्रातृभिरग्रतः ।**
**उत्सृज्य गाः सुसंत्रस्तं बलं ते समशीर्यत ।।२८।।**
**यच्चैव नगरे तस्मिन् श्रूयते महदद्भुतम् ।**
**एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ।।२९।।**

विराटनगर में तुम्हारे भाइयोंसहित जो सारी सेना युद्ध के लिए गई थी, वह वहाँ की समस्त गौओं को छोड़कर अत्यन्त भयभीत हो तुम्हारे सामने ही भाग खड़ी हुई थी । उस नगर में जो एक [अर्जुन] का बहुतों के साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध हुआ सुना जाता है, वह एक ही दृष्टान्त [उसकी प्रबलता तथा अजेयता के लिए] पर्याप्त है ।

**अर्जुनस्तत् तथाकार्षीत् किं पुनः सर्व एव ते ।**
**स भ्रातॄनभिजानीहि वृत्त्या तं प्रतिपादय ।।३०।।**

देखो ! जब अकेले अर्जुन ने इतना अद्भुत कार्य कर डाला, तब वे सब भाई मिलकर क्या नहीं कर सकते ? तुम पाण्डवों को अपना भाई ही समझो तथा उनकी वृत्ति=स्वत्व उन्हें देकर उनके साथ भ्रातृभाव बढ़ाओ ।

वैशम्पायन उवाच

**दुर्योधने धार्तराष्ट्रे तद् वचो नाभिनन्दति ।**
**तूष्णीम्भूतेषु सर्वेषु समुत्तस्थुर्नरर्षभाः ।।३१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन ने उस कथन का कोई आदर नहीं किया और सब लोग भी चुप्पी साधकर रह गये । तब वहाँ बैठे हुए समस्त नरश्रेष्ठ भूपालगण वहाँ से उठकर चले गये ।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि षोडशोऽध्यायः ।।१६।।**

# सप्तदशोऽध्यायः

## श्रीकृष्ण का शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जाने के लिए उद्यत होना तथा युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उत्साहित करना

वैशम्पायन उवाच

**संजये प्रतियाते तु धर्मराजो युधिष्ठिरः ।**
**अभ्यभाषत दाशार्हमृषभं सर्वसात्वताम् ।।१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! इधर संजय के चले जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने समस्त यदुवंशियों में श्रेष्ठ दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहा—

युधिष्ठिर उवाच

**अयं स कालः सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ।**
**न च त्वदन्यं पश्यामि यो न आपत्सु तारयेत् ।।२।।**

**युधिष्ठिर ने कहा**—मित्रवत्सल ! मित्रों की सहायता के लिए यह उपयुक्त अवसर आया है । मुझे आपके अतिरिक्त और कोई ऐसा दिखाई नहीं देता जो इस विपत्ति से हमारा उद्धार करे ।

**श्रुतं ते धृतराष्ट्रस्य सपुत्रस्य चिकीर्षितम् ।**
**तन्मतं धृतराष्ट्रस्य सञ्जयो मां यदब्रवीत् ।।३।।**

श्रीकृष्ण ! पुत्रोंसहित राजा धृतराष्ट्र क्या करना चाहते हैं, यह सब तो आपने सुन ही लिया । संजय ने मुझसे जो कुछ कहा है, वह धृतराष्ट्र का ही मत है ।

**अप्रदानेन राज्यस्य शान्तिमस्मासु मार्गति ।**
**लुब्धः पापेन मनसा चरन्नसममात्मनः ॥४॥**

राजा धृतराष्ट्र को राज्य का बड़ा लोभ है। उनके मन में पाप बस गया है। वे अपने अनुरूप व्यवहार न करके राज्य दिये बिना ही हमारे साथ सन्धि का मार्ग ढूंढ रहे हैं।

**सुयोधनमते तिष्ठन् राजास्मासु जनार्दन ।**
**मिथ्या चरति लुब्धः सन् चरन् हि प्रियमात्मनः ॥५॥**

जनार्दन! उनका लोभ इतना बढ़ गया है कि वे दुर्योधन की हाँ-में-हाँ मिलाते हैं तथा अपना ही प्रिय कार्य करते हुए हमारे साथ मिथ्या व्यवहार कर रहे हैं।

**इतो दुःखतरं किं नु यदहं मातरं ततः ।**
**संविधातुं न शक्नोमि मित्राणां च जनार्दन ॥६॥**

जनार्दन! इससे बढ़कर महान् क्लेश की बात और क्या हो सकती है कि मैं अपनी माता तथा अपने मित्रों का भी अच्छी प्रकार भरण-पोषण नहीं कर सकता।

**काशिभिश्चेदिपाञ्चालैर्मत्स्यैश्च मधुसूदन ।**
**भवता चैव नाथेन पञ्च ग्रामा वृता मया ॥७॥**

मधुसूदन! यद्यपि काशी, चेदि, पाञ्चाल तथा मत्स्य देश के वीर हमारे सहायक हैं और आप हम लोगों के रक्षक हैं [आप लोगों की सहायता से हम सम्पूर्ण राज्य ले सकते हैं], तथापि मैंने केवल पाँच ही गाँव माँगे थे।

**न च तानपि दुष्टात्मा धार्तराष्ट्रोऽनुमन्यते ।**
**स्वाम्यमात्मनि मत्वासावतो दुःखतरं नु किम् ॥८॥**

परन्तु दुरात्मा दुर्योधन सबपर अपना ही अधिकार मानकर उन पाँच ग्रामों को भी देने की बात स्वीकार नहीं कर रहा है, इससे बढ़कर कष्ट की बात और क्या हो सकती है?

**कुले जातस्य वृद्धस्य परवित्तेषु गृद्धयतः ।**
**लोभः प्रज्ञानमाहन्ति प्रज्ञा हन्ति हता ह्रियम् ॥९॥**

मनुष्य उत्तम कुल में जन्म लेकर और वृद्ध होने पर भी यदि दूसरों के धन को लेना चाहता है तो वह लोभ उसकी विचारशक्ति को नष्ट कर देता है, विचारशक्ति नष्ट होने पर उसकी लज्जा को भी नष्ट कर देता है।

**अधनाद्धि निवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदो द्विजाः ।**
**अपुष्पादफलाद् वृक्षाद् यथा कृष्ण पतत्रिणः ॥१०॥**

श्रीकृष्ण! धनहीन पुरुष से उसके भाई-बन्धु, सुहृद् और ब्राह्मण लोग भी उसी प्रकार मुँह मोड़ लेते हैं, जैसे पक्षी पुष्प एवं फलविहीन वृक्ष को छोड़कर उड़ जाते हैं।

**धनमाहुः परं धर्मं धने सर्वं प्रतिष्ठितम् ।□**
**जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वधना नराः ॥११॥**

धन को उत्तम धर्म का साधक बताया गया है। धन में सब-कुछ प्रतिष्ठित है। संसार में धनी मनुष्य ही जीवन धारण करते हैं, जो निर्धन हैं वे तो मुर्दे के समान हैं।

**न तथा बाध्यते कृष्ण प्रकृत्या निर्धनो जनः ।**
**यथा भद्रां श्रियं प्राप्य तथा हीनः सुखैधितः ॥१२॥**

श्रीकृष्ण! जन्म से ही निर्धन को दरिद्रता के कारण उतना कष्ट नहीं पहुँचता, जितना कि कल्याणमयी सम्पत्ति को पाकर सुख में ही पले हुए मनुष्य को उस सम्पत्ति से वञ्चित होने पर होता है।

**ते वयं न श्रियं हातुमलं न्यायेन केनचित् ।**
**अत्र नो यतमानानां वधश्चेदपि साधु तत् ॥१३॥**

अतः हम लोग किसी भी न्याय से अपनी पैतृक सम्पत्ति का परित्याग नहीं कर सकते। इसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हुए यदि हम लोगों का वध भी हो जाए तो वह भी अच्छा है।

**तत्र नः प्रथमः कल्पो यद् वयं ते च माधव ।**
**प्रशान्ताः समभूताश्च श्रियं तामश्नुवीमहि ॥१४॥**

माधव! इस विषय में हमारा पहला ध्येय यही है कि हम और कौरव आपस में सन्धि करके शान्त-भाव से रहते हुए उस सम्पत्ति का समानरूप से उपभोग करें।

**तत्रैषा परमा काष्ठा रौद्रकर्मक्षयोदया ।**
**यद् वयं कौरवान् हत्वा तानि राष्ट्राण्यवाप्नुमः ॥१५॥**

दूसरा पक्ष यह है कि हम कौरवों को मारकर सम्पूर्ण राज्य अपने अधिकार में कर लें, परन्तु यह रौद्र और क्रूरतापूर्ण कर्म की पराकाष्ठा होगी।

[निरपराध जन-संहार के पश्चात् हमारी विजय होगी]।

**क्षत्रियः क्षत्रियं हन्ति मत्स्यो मत्स्येन जीवति।**
**श्वा श्वानं हन्ति दाशार्ह पश्य धर्मो यथागतः ॥१६॥**

क्षत्रिय क्षत्रिय को मारता है, मछली मछली को खाकर जीती है और कुत्ता कुत्ते को काटता है। दशार्हनन्दन! देखिए, यही परम्परा से चला आनेवाला धर्म है।

**न राज्यं त्युक्तुमिच्छामो न चेच्छामः कुलक्षयम्।**
**अत्र या प्रणिपातेन शान्तिः सैव गरीयसी ॥१७॥**

हम लोग न तो राज्य त्यागना चाहते हैं और न कुल के विनाश की ही इच्छा करते हैं। यदि नम्रता दिखाने से ही शान्ति हो जाए तो वही सबसे बढ़कर है।

**सर्वथा यतमानानामयुद्धमभिकांक्षताम्।**
**सान्त्वे प्रतिहते युद्धं प्रसिद्धं नापराक्रमः ॥१८॥**

यद्यपि हम युद्ध की इच्छा न रखकर साम, दाम और भेद सभी उपायों द्वारा राज्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर रहे हैं तथापि यदि हमारी साम-नीति असफल रही तब युद्ध ही हमारा प्रधान कर्तव्य होगा, हम पराक्रम छोड़कर बैठ नहीं सकते।

**प्रतिघातेन सान्त्वस्य दारुणं सम्प्रवर्तते।**
**तच्छुनामिव सम्पाते पण्डितैरुपलक्षितम् ॥१९॥**

शान्ति के प्रयत्नों में बाधा आने पर भयंकर युद्ध स्वतः आरम्भ हो जाता है। पण्डितों ने इस युद्ध की उपमा कुत्तों की कलह से दी है।

**लाङ्गूलचालनं क्ष्वेडः प्रतिवाचो विवर्तनम्।**
**दन्तदर्शनमारावस्ततो युद्धं प्रवर्तते ॥२०॥**
**तत्र यो बलवान् कृष्ण जित्वा सोऽस्ति तदामिषम्।**
**एवमेव मनुष्येषु विशेषो नास्ति कश्चन ॥२१॥**

कुत्ते पहले पूँछ हिलाते हैं, फिर गुर्राते और गर्जते हैं। तदनन्तर एक-दूसरे के समीप पहुँचते हैं, फिर दाँत दिखाना और भौंकना शुरू करते हैं। तत्पश्चात् उनमें युद्ध होने लगता है। श्रीकृष्ण! उनमें जो बलवान् होता है, वही उस मांस को खाता है, जिसके लिए उनमें लड़ाई हुई थी। यही अवस्था मनुष्यों की है। इनमें कोई विशेषता नहीं है।

**बलवान् पुत्रस्नेहश्च धृतराष्ट्रस्य माधव।**
**स पुत्रवशमापन्नः प्रणिपातं प्रहास्यति ॥२२॥**

माधव! धृतराष्ट्र में अपने पुत्र के प्रति प्रबल मोहासक्ति है। वे पुत्र के वश में होने के कारण कभी भी झुकना स्वीकार नहीं करेंगे।

**तत्र किं मन्यसे कृष्ण प्राप्तकालमनन्तरम्।**
**कथमर्थाच्च धर्माच्च न हीयेमहि माधव ॥२३॥**

माधव! श्रीकृष्ण! ऐसे समय में आप क्या उचित समझते हैं? हम कैसा व्यवहार करें, जिससे हमें अर्थ और धर्म से वञ्चित न होना पड़े?

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजं जनार्दनः।**
**उभयोरेव वामार्थे यास्यामि कुरुसंसदम् ॥२४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! धर्मराज युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—"राजन्! मैं दोनों पक्षों के कल्याण के लिए कौरवों की सभा में जाऊँगा।

**शमं तत्र लभेयं चेद युष्मदर्थमहापयन्।**
**पुण्यं मे सुमहद्राजंश्चरितं स्यान्महाफलम् ॥२५॥**

"वहाँ जाकर आपके लाभ में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाते हुए यदि मैं दोनों पक्षों की सन्धि कराने में सफल हुआ तो मैं समझूँगा कि मेरे द्वारा यह महान् फलदायक तथा बड़ा पुण्यकार्य सम्पन्न हो गया।"

युधिष्ठिर उवाच

**न ममैतन्मतं कृष्ण यत् त्वं यायाः कुरून् प्रति।**
**सुयोधनः सूक्तमपि न करिष्यति ते वचः ॥२६॥**

**युधिष्ठिर बोले**—श्रीकृष्ण! आप कौरवों के यहाँ जाएँ, मुझे यह उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि आपकी अच्छी बातों को भी दुर्योधन नहीं मानेगा।

**प्रणीयेन्न हि नो द्रव्यं न देवत्वं कुतः सुखम्।**
**न च सर्वामरैश्वर्यं तव द्रोहेण माधव ॥२७॥**

माधव! यदि दुर्योधन ने द्रोहवश आपके साथ कोई अनुचित व्यवहार किया तो धन, देवत्व, सुख तथा सम्पूर्ण देवताओं का ऐश्वर्य भी हमें प्रसन्न नहीं कर सकेगा।

कृष्ण उवाच

**जानाम्येतां महाराज धार्तराष्ट्रस्य पापताम् ।**
**अवाच्यास्तु भविष्यामः सर्वलोके महीक्षिताम् ॥२८॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—हे महाराज ! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन कितना पापाचारी है, यह मैं जानता हूँ तथापि वहाँ जाकर सन्धि के लिए प्रयत्न करने पर हम सब लोग सारे भूमण्डल के राजाओं की दृष्टि में निन्दा से बच जाएँगे ।

**न चापि मम पर्याप्ताः सहिताः सर्वपार्थिवाः ।**
**क्रुद्धस्य संयुगे स्थातुं सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥२६॥**

[मेरे तिरस्कार के भय से आप चिन्तित न हों, क्योंकि] जैसे क्रोध में भरे हुए सिंह के समक्ष दूसरे पशु नहीं ठहर सकते, उसी प्रकार मेरे क्रुद्ध होने पर संसार के सारे नरेश मिलकर भी युद्ध में मेरे सामने खड़े नहीं हो सकते ।

**अथ चेत् ते प्रवर्तन्ते मयि किञ्चिदसाम्प्रतम् ।**
**निर्दहेयं कुरून् सर्वानिति मे धीयते मतिः ॥३०॥**

यदि वे मेरे साथ थोड़ा-सा भी अनुचित व्यवहार करेंगे तो मैं उन समस्त कौरवों को जलाकर भस्म कर डालूंगा, यह मेरा निश्चित विचार है ।

**न जातु गमनं पार्थ भवेत् तत्र निरर्थकम् ।**
**अर्थप्राप्तिः कदाचित् स्यादन्ततो वाप्यवाच्यता ॥३१॥**

कुन्तीनन्दन ! मेरा वहाँ जाना कदापि निरर्थक नहीं होगा । सम्भव है, वहाँ अपने अभीष्ट अर्थ की सिद्धि हो जाए और यदि काम न बना, तो भी हम निन्दा से तो बच ही जाएँगे ।

युधिष्ठिर उवाच

**यत् तुभ्यं रोचते कृष्ण स्वस्ति प्राप्नुहि कौरवान् ।**
**कृतार्थं स्वस्तिमन्तं त्वां द्रक्ष्यामि पुनरागतम् ॥३२॥**

**युधिष्ठिर ने कहा**—श्रीकृष्ण ! आपकी जैसी रुचि हो वही कीजिए । आपका मङ्गल हो । आप प्रसन्नतापूर्वक कौरवों के पास जाइए । आशा है, मैं पुनः आपको अपने कार्य में सफल होकर यहाँ सकुशल लौटा हुआ देखूंगा ।

**अस्मान्वेत्थ परान्वेत्थ वेत्थार्थान्वेत्थ भाषितुम् ।**
**यद् यदस्मद्धितं कृष्ण तत् तद् वाच्यः सुयोधनः ॥३३॥**

श्रीकृष्ण ! आप हमें जानते हैं, कौरवों को भी जानते हैं, हम दोनों के स्वार्थों से भी आप परिचित हैं तथा वार्तालाप कैसे करना चाहिए, यह भी आपको भली-भाँति ज्ञात है, अतः जिस-जिस बात से हमारा हित हो, वह सब आप दुर्योधन को बताएँ ।

**यद् यद् धर्मेण संयुक्तमुपपद्येद्धितं वचः ।**
**तत् तत् केशव भाषेथाः सान्त्वं वा यदि वेतरत् ॥३४॥**

हे केशव ! जो-जो बात धर्मसंगत, युक्तियुक्त और हितकर हो, वह सब कोमल हो या कठोर, आप अवश्य कहें ।

कृष्ण उवाच

**संजयस्य श्रुतं वाक्यं भवतश्च श्रुतं मया ।**
**सर्वं जानाम्यभिप्रायं तेषां च भवतश्च यः ॥३५॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—राजन् ! मैंने संजय की और आपकी—दोनों की बातें सुनी हैं । कौरवों का क्या अभिप्राय है और आपका क्या विचार है, यह सब भी मैं अच्छी प्रकार जानता हूँ ।

**तव धर्माश्रिता बुद्धिस्तेषां वैराश्रया मतिः ।**
**यदयुद्धेन लभ्येत तत्ते बहुमतं भवेत् ॥३६॥**

आपकी बुद्धि धर्म में स्थित है और उनकी बुद्धि ने शत्रुता का आश्रय ले रखा है । आप तो बिना युद्ध किये ही जो कुछ मिल जाए उसी को बहुत समझेंगे ।

**न चैवं नैष्ठिकं कर्म क्षत्रियस्य विशाम्पते ।**
**आहुराश्रमिणः सर्वे न भैक्षं क्षत्रियश्चरेत् ॥३७॥**

परन्तु महाराज ! भिक्षा माँगना क्षत्रिय का नैष्ठिक=स्वाभाविक कर्म नहीं है । सभी आश्रमों के श्रेष्ठपुरुषों का यह कथन है कि क्षत्रिय को भीख नहीं माँगनी चाहिए ।

**जयो वधो वा संग्रामे धात्राऽऽदिष्टः सनातनः ।**
**स्वधर्मः क्षत्रियस्यैष कार्पण्यं न प्रशस्यते ॥३८॥**

क्षत्रिय के लिए विधाता ने यही सनातन कर्तव्य बताया है कि वह संग्राम में विजय प्राप्त करे अथवा प्राण दे दे । यही उसका स्वधर्म है । दीनता अथवा कायरता क्षत्रिय के लिए प्रशंसा की वस्तु नहीं है ।

**न हि कार्पण्यमास्थाय शक्या वृत्तिर्युधिष्ठिर ।**
**विक्रमस्व महाबाहो जहि शत्रून् परन्तप ॥३६॥**

महाबाहो युधिष्ठिर ! दीनता का आश्रय लेने से

क्षत्रिय की आजीविका नहीं चल सकती। शत्रुसंतापक! अब पराक्रम प्रकट कीजिए तथा शत्रुओं को यमलोक पठाइए।

**यावच्च मार्दवेनैतान् राजन्नुपचरिष्यसि।**
**तावदेते हरिष्यन्ति तव राज्यमरिन्दम ॥४०॥**

शत्रुदमन राजन्! जबतक आप इनके साथ नम्रता का व्यवहार करेंगे तबतक ये आपके राज्य का अपहरण करने की ही चेष्टा करेंगे।

**वध्यः सर्प इवानार्यः सर्वलोकस्य दुर्मतिः।**
**जह्येनं त्वममित्रघ्न मा राजन् विचिकित्सथाः ॥४१॥**

खोटी बुद्धिवाला दुराचारी दुर्योधन दुष्ट सर्प की भाँति सब लोगों के लिए वध्य है, अतः शत्रुनाशक महाराज! आप दुविधा में न पड़ें, इस दुष्ट को अवश्य मार डालें।

**अहं तु सर्वलोकस्य गत्वा छेत्स्यामि संशयम्।**
**येषामस्ति द्विधाभावो राजन् दुर्योधनं प्रति ॥४२॥**

राजन्! मैं कौरवों की सभा में जाकर दुर्योधन के सम्बन्ध में जिन लोगों के मन में दुविधा है—जो उसके अच्छे या बुरे होने का निर्णय नहीं कर सके हैं—उन सब लोगों के सन्देह को दूर कर दूँगा।

**मध्ये राज्ञामहं तत्र प्रातिपौरुषिकान् गुणान्।**
**तव संकीर्तयिष्यामि ये च तस्य व्यतिक्रमाः ॥४३॥**

मैं राजसभा में एकत्र हुए भूपालों की मण्डली में आपके सर्वसाधारण गुणों का वर्णन तथा दुर्योधन के दोषों एवं अपराधों का उद्घाटन करूँगा।

**यात्वा चाहं कुरून् सर्वान् युष्मदर्थमहापयन्।**
**यतिष्ये प्रशमं कर्तुं लक्षयिष्ये च चेष्टितम् ॥४४॥**

वहाँ जाकर मैं आपके कार्य की सिद्धि में तनिक भी त्रुटि न रखते हुए समस्त कौरवों से सन्धि-स्थापन के लिए प्रयत्न करूँगा तथा उनकी चेष्टाओं पर दृष्टि रखूँगा।

**कौरवाणां प्रवृत्तिं च गत्वा युद्धाधिकारिकाम्।**
**निशम्य विनिवर्तिष्ये जयाय तव भारत ॥४५॥**

हे भारत! मैं वहाँ जाकर कौरवों की युद्ध-विषयक तैयारी की सारी बात जान-सुनकर आपकी विजय का मार्ग प्रशस्त करके पुनः यहाँ शीघ्र लौट आऊँगा।

**सर्वथा युद्धमेवाहमाशंसामि परैः सह।**
**निमित्तानि हि सर्वाणि तथा प्रादुर्भवन्ति मे ॥४६॥**

मुझे तो शत्रुओं के साथ सर्वथा युद्ध होने की ही सम्भावना दिखाई दे रही है, क्योंकि मेरे समक्ष सब ऐसे ही लक्षण प्रकट हो रहे हैं।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥**

# अष्टादशोऽध्यायः

## भीमसेन और श्रीकृष्ण का वार्तालाप

भीम उवाच

**यथा यथैव शान्तिः स्यात् कुरूणां मधुसूदन।**
**तथा तथैव भाषेथा मा स्म युद्धेन भीषयेः ॥१॥**

**भीमसेन बोले**—मधुसूदन! आप कौरवों के मध्य में वैसी ही बातें कहें जिनसे हम लोगों में शान्ति स्थापित हो सके, युद्ध की बात सुनाकर उन्हें भयभीत न कीजिएगा।

**अमर्षी जातसंरम्भः श्रेयोद्वेषी महामनाः।**
**नोग्रं दुर्योधनो वाच्यः साम्नैवैनं समाचरेः ॥२॥**

दुर्योधन असहनशील, क्रोध में भरा रहनेवाला, श्रेय का विरोधी तथा मन में बड़े-बड़े हौसले रखनेवाला है, अतः उसके प्रति कठोर बात न कहकर उसे सामनीति के द्वारा ही समझाने का प्रयत्न कीजिएगा।

**प्रकृत्या पापसत्त्वश्च तुल्यचेतास्तु दस्युभिः।**
**ऐश्वर्यमदमत्तश्च कृतवैरश्च पाण्डवैः ॥३॥**

दुर्योधन स्वभाव से ही पापात्मा है। उसके हृदय में डाकुओं के समान क्रूरता भरी हुई है। वह ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त है तथा पाण्डवों के साथ सदा वैर बाँधे रखता है।

**अदीर्घदर्शी निष्ठूरी क्षेप्ता क्रूरपराक्रमः।**
**दीर्घमन्युरनेयश्च पापात्मा निकृतिप्रियः ॥४॥**

वह अदूरदर्शी, कटु वचन बोलनेवाला, परनिन्दक, क्रूर-पराक्रमी, दीर्घकाल तक क्रोध को मन में संचित रखनेवाला, सन्मार्ग पर लाया जाने के अयोग्य,

पापात्मा और शठता से प्रेम करनेवाला है।

**म्रियेतापि न भज्येत नैव जह्यात् स्वकं मतम्।**
**तादृशेन शमः कृष्ण मन्ये परमदुष्करम् ॥५॥**

श्रीकृष्ण ! वह मर जाएगा परन्तु झुकेगा नहीं। वह अपनी टेक कभी नहीं छोड़ेगा। मैं समझता हूँ, ऐसे दुराग्रही मनुष्य के साथ सन्धि स्थापित करना अत्यन्त कठिन कार्य है।

**तस्मान्मृदु शनैर्ब्रूया धर्मार्थसहितं हितम्।**
**कामानुबन्धबहुलं नोग्रमुग्रपराक्रम ॥६॥**

प्रचण्ड पराक्रमी कृष्ण ! आप उससे जो कुछ भी कहें, कोमल एवं मधुरवाणी में धीरे-धीरे कहें। आपका कथन धर्म तथा अर्थ से युक्त और हितकर हो, उसमें उग्रता न आने पाए। साथ ही आपकी अधिकांश बातें उसकी रुचि के अनुकूल हों।

**अपि दुर्योधनं कृष्ण सर्वे वयमधश्चराः।**
**नीचैर्भूत्वानुयास्यामो मा स्म नो भरता नशन् ॥७॥**

श्रीकृष्ण ! हम सब लोग भूमि पर पैदल चलकर, अत्यन्त नम्र होकर दुर्योधन का अनुसरण करते रहेंगे, परन्तु हमारे कारण भरतवंशियों का नाश न हो।

**वाच्यः पितामहो वृद्धो ये च कृष्ण सभासदः।**
**भ्रातॄणामस्तु सौभ्रात्रं धार्तराष्ट्रः प्रशाम्यताम् ॥८॥**

श्रीकृष्ण ! आप वहाँ वृद्ध पितामह भीष्मजी तथा अन्य सभासदों से ऐसा करने के लिए ही कहें जिससे सब भाइयों में सौहार्द बना रहे तथा दुर्योधन भी शान्त हो जाए।

**अहमेतद् ब्रवीम्येवं राजा चैव प्रशंसति।**
**अर्जुनो नैव युद्धार्थी भूयसी हि दयार्जुने ॥९॥**

मैं इस प्रकार शान्ति-स्थापना के लिए कह रहा हूँ। राजा युधिष्ठिर भी शान्ति के ही प्रशंसक हैं, अर्जुन भी युद्ध का इच्छुक नहीं है, क्योंकि वह अत्यन्त दयालु है।

वैशम्पायन उवाच

**एतत् श्रुत्वा महाबाहुः केशवः प्रहसन्निव।**
**अभूतपूर्वं भीमस्य मार्दवोपहितं वचः ॥१०॥**
**संतेजयंस्तदा वग्भिर्मातरिश्वेव पावकम्।**
**उवाच भीममासीनं कृपयाभिपरिप्लुतम् ॥११॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—भीमसेन के मुख से ये अभूतपूर्व मृदुतापूर्ण वचन सुनकर महाबाहु श्रीकृष्ण हँसने-से लगे। फिर अपने पास बैठे हुए दया से द्रवित भीमसेन को अपने वचनों द्वारा उसी प्रकार उत्तेजित करते हुए बोले जैसे वायु अग्नि को उद्दीप्त कर रही हो।

कृष्ण उवाच

**त्वमन्यदा भीमसेन युद्धमेव प्रशंससि।**
**वधाभिनन्दिनः क्रूरान् धार्तराष्ट्रान् मिमर्दिषुः ॥१२॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—भैया भीम ! आज के सिवा और दिन तो तुम हिंसा से ही प्रसन्न होनेवाले क्रूर धृतराष्ट्रपुत्रों को मसल डालने की इच्छा मन में रखकर सदा युद्ध की ही प्रशंसा किया करते थे।

**न च स्वपिषि जागर्षि न्युब्जः शेषे परन्तप।**
**घोरामशान्तां रुशतीं सदा वाचं प्रभाषसे ॥१३॥**

परन्तप ! [इन्हीं विचारों में मग्न रहने के कारण] तुम रात्रि में सोते भी नहीं थे, जागते ही रहते थे। कभी सोना ही पड़ा, तो औंधे-मुँह लेट जाते और सदा घोर, अशान्त तथा रोषभरी बातें ही तुम्हारे मुख से निकलती थीं।

**हन्ताहं गदयाभ्येत्य दुर्योधनममर्षणम्।**
**इति स्म मध्ये भ्रातॄणां सत्येनालभसे गदाम्।**
**तस्य ते प्रशमे बुद्धिर्धियतेऽद्य परन्तप ॥१४॥**

तुम अपने भाइयों के बीच में सत्य की शपथ खाकर बार-बार गदा छूते हुए यह कहते थे—"मैं अमर्षशील दुर्योधन के पास जाकर अपनी गदा से उसके प्राण ले लूँगा।" परन्तप ! ऐसी प्रतिज्ञा करनेवाले तुम जैसे वीर की बुद्धि आज शान्ति-स्थापना में कैसे लग रही है ? [यह आश्चर्य की बात है !]

**अहो युद्धाभिकाङ्क्षाणां युद्धकाल उपस्थिते।**
**चेतांसि विप्रतीपानि यत् त्वां भीर्भीम विन्दति ॥१५॥**

अहो ! युद्ध का अवसर उपस्थित होने पर पहले से युद्ध की अभिलाषा रखनेवाले लोगों के विचार भी इतने बदल जाते हैं कि वे विपरीत सोचने लगते हैं। भीमसेन ! प्रतीत होता है, तुम्हें भी युद्ध से भय होने लगा है।

**अहो नाशंससे किञ्चित्पुंस्त्वं क्लीब इवात्मनि ।**
**कश्मलेनाभिपन्नोऽसि तेन ते विकृतं मनः ॥१६॥**

अहो ! कायर और नपुंसक की भाँति इस समय तुम अपने में कुछ भी पुरुषार्थ नहीं मानते । तुम्हारे ऊपर मोह छा गया है, अतः तुम्हारी मानसिक अवस्था बिगड़ गई है ।

**उद्वेपते ते हृदयं मनस्ते प्रतिसीदति ।**
**ऊरुस्तम्भगृहीतोऽसि तस्मात् प्रशममिच्छसि ॥१७॥**

ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारा हृदय काँपता है, मन शिथिल होता जाता है, तुम्हारी जाँघें अकड़ गई हैं, अतः तुम शान्ति चाहते हो ।

**अनित्यं किल मर्त्यस्य चित्तं पार्थ चलाचलम् ।**
**वातवेगप्रचलिता अष्ठीला शाल्मलेरिव ॥१८॥**

हे पार्थ ! कहते हैं कि मनुष्य का चित्त सदा एक निश्चय पर अटल नहीं रहता । वह हवा के वेग से हिलती हुई सेमल के फल की गाँठ के समान डाँवाडोल रहता है ।

**इदं मे महदाश्चर्यं पर्वतस्येव सर्पणम् ।**
**यदीदृशं प्रभाषेथा भीमसेनासमं वचः ॥१९॥**

भीमसेन ! तुम जो कुछ कह रहे हो, वह तुम्हारे योग्य कदापि नहीं है । पर्वत के चलने के समान तुम्हारे द्वारा प्रस्तुत यह शान्ति-प्रस्ताव मुझे महान् आश्चर्य में डाल रहा है ।

**स दृष्ट्वा स्वानि कर्माणि कुले जन्म च भारत ।**
**उत्तिष्ठस्व विषादं मा कृथा वीर स्थिरो भव ॥२०॥**

हे भारत ! तुम अपने कर्मों की ओर देखकर तथा जिस कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है, उसपर दृष्टिपात करके खड़े हो जाओ । वीर ! विषाद न करो, अपने क्षत्रियोचित कर्म पर डट जाओ ।

**न चैतदनुरूपं ते यत् ते ग्लानिररिन्दम ।**
**यदोजसा न लभते क्षत्रियो न तदश्नुते ॥२१॥**

शत्रुदमन ! तुम्हारे मन में जो ग्लानि उत्पन्न हुई है, वह तुम्हारे जैसे शूरवीर के योग्य कदापि नहीं है, क्योंकि क्षत्रिय जिसे अपने पराक्रम से प्राप्त नहीं करता उसे अपने उपभोग में नहीं लाता ।

भीमसेन उवाच

**अन्यथा मां चिकीर्षन्तमन्यथा मन्यसेऽच्युत ।**
**तस्मादनभिरूपाभिर्वाग्भिर्मां त्वं समर्च्छसि ॥२२॥**

**भीमसेन बोले**—हे अच्युत ! मैं करना तो कुछ और चाहता हूँ, परन्तु आप समझ कुछ और ही रहे हैं, अतः आप अनुचित वचनों द्वारा मुझपर आक्षेप कर रहे हैं ।

**सर्वथानार्यकर्मैतत् प्रशंसा स्वयमात्मनः ।**
**अतिवादापविद्धस्तु वक्ष्यामि बलमात्मनः ॥२३॥**

यद्यपि स्वयं अपनी प्रशंसा करना अनार्यों का काम है, तथापि आप द्वारा किये गये तिरस्कार से पीड़ित होकर मैं अपने बल का वर्णन करता हूँ ।

**पश्येमे रोदसी कृष्ण ययोरासन्निमाः प्रजाः ।**
**अचले चाप्रतिष्ठे चाप्यनन्ते सर्वमातरौ ॥२४॥**
**यदीमे सहसा क्रुद्धे समेयातां शिले इव ।**
**अहमेते निगृह्णीयां बाहुभ्यां सचराचरे ॥२५॥**

श्रीकृष्ण ! आप इस पृथिवी और द्युलोक पर दृष्टिपात करें । समस्त प्रजा इन्हीं के भीतर निवास करती है । ये दोनों सबके माता-पिता हैं । इन्हें अचल एवं अनन्त माना गया है । ये दूसरों के आधार होते हुए भी स्वयं आधारशून्य हैं । यदि ये दोनों लोक सहसा क्रुद्ध होकर दो शिलाओं की भाँति परस्पर टकराने लगें तो मैं चराचर प्राणियोंसहित इन्हें अपनी दोनों भुजाओं से रोक सकता हूँ ।

**पश्यैतदन्तरं बाह्वोर्महापरिघयोरिव ।**
**य एतत् प्राप्य मुच्येत न तं पश्यामि पूरुषम् ॥२६॥**

लोहे के विशाल परिघों की भाँति मेरी इन मोटी भुजाओं का मध्यभाग कैसा है, यह देख लीजिए । मुझे कोई ऐसा वीर पुरुष दिखाई नहीं देता जो इनके भीतर आकर फिर जीवित निकल जाए ।

**यथामति ब्रवीम्येतद् विद्धि मामधिकं ततः ।**
**द्रष्टासि युधि सम्बाधे प्रवृत्ते वैशसेऽहनि ॥२७॥**

मैं अपनी बुद्धि के अनुसार यहाँ जो कुछ कह रहा हूँ, आप मुझे उससे भी बढ़-चढ़कर समझें । जिस समय योद्धाओं से खचाखच भरे हुए युद्ध में भयानक मार-काट मचेगी, उस दिन मुझे देखिएगा ।

**युद्धार्हान् क्षत्रियान् सर्वान् पाण्डवेष्वाततायिनः ।**
**अधः पादतलेनैतानधिष्ठास्यामि भूतले ॥२८॥**

पाण्डवों के प्रति आततायी बने हुए इन समस्त

क्षत्रियों को, जो युद्ध के लिए उद्यत हुए हैं, मैं पृथिवी पर गिराकर पैरों तले रौंद डालूँगा।

**न मे सीदन्ति मज्जानो न ममोद्वेपते मनः।**
**सर्वलोकादभिक्रुद्धान्न भयं विद्यते मम ॥२९॥**
**किं तु सौहृदमेवैतत् कृपया मधुसूदन।**
**सर्वांस्तितिक्षे संक्लेशान् मा स्म नो भरता नशन् ॥३०**

मेरी मज्जा शिथिल नहीं हो रही है और न मेरा हृदय ही काँप रहा है। मधुसूदन! यदि सारा भूमण्डल क्रुद्ध होकर मुझपर आक्रमण करे तो भी उससे मुझे भय नहीं है। मैंने जो शान्ति का प्रस्ताव रखा है, यह तो केवल मेरा सौहार्द ही है। मैं दया-वश सारे क्लेश सहने को उद्यत हूँ और चाहता हूँ कि हमारे कारण भरतवंशियों का नाश न हो।

कृष्ण उवाच

**भावं जिज्ञासमानोऽहं प्रणयादिदमब्रुवम्।**
**न चाक्षेपान्न पाण्डित्यान्न क्रोधान्न विवक्षया ॥३१॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—भीम! मैंने तुम्हारा मनोभाव जानने के लिए ही प्रेम से ये बातें की हैं। तुमपर आक्षेप करने, पाण्डित्य दिखाने, क्रोध प्रकट करने या व्याख्यान देने की इच्छा से कुछ नहीं कहा है।

**वेदाहं तव माहात्म्यमुत ते वेद यद्बलम्।**
**उत ते वेद कर्माणि न त्वां परिभवाम्यहम् ॥३२॥**

मैं तुम्हारे माहात्म्य को जानता हूँ। तुममें जो बल और पराक्रम है, उससे भी मैं परिचित हूँ। तुमने जो बड़े बड़े पराक्रम किये हैं, वे भी मुझसे छिपे नहीं हैं, अतः मैं तुम्हारा तिरस्कार नहीं करता।

**अस्मिन् युद्धे भीमसेन त्वयि भारः समाहितः।**
**तस्मादाशङ्कमानोऽहं वृकोदर मतिं तव।**
**गदतः क्लीबया वाचा तेजस्ते समदीदिपम् ॥३३॥**

भीमसेन! इस युद्ध में सारा भार तुम्हारे ऊपर ही रखा जाएगा। वृकोदर! इसलिए जब तुम कायरतापूर्ण वचनों द्वारा शान्ति का प्रस्ताव करने लगे, तब मुझे तुम्हारे युद्ध-विषयक विचार के बदल जाने का संदेह हुआ, जिसके कारण मैंने पूर्वोक्त बातें कहकर तुम्हारे तेज को उद्दीप्त किया है।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥**

# एकोनविंशोऽध्यायः

## श्रीकृष्ण का द्रौपदी को आश्वासन देना

वैशम्पायन उवाच

**राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धर्मार्थसहितं हितम्।**
**कृष्णा दाशार्हमासीनमब्रवीच्छोककर्शिता ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! राजा युधिष्ठिर के धर्म और अर्थ से युक्त हितकर वचन सुनकर शोक से आतुर द्रौपदी वहाँ बैठे हुए दशार्ह-कुलभूषण श्रीकृष्ण से बोली।

कृष्णोवाच

**अप्रदानेन राज्यस्य यदि कृष्ण सुयोधनः।**
**सन्धिमिच्छेन्न कर्तव्यं तत्र गत्वा कथञ्चन ॥२॥**

**कृष्णा बोली**—हे कृष्ण! आपके वहाँ जाने पर यदि दुर्योधन राज्य दिये बिना ही सन्धि करना चाहे तो आप इसे किसी प्रकार स्वीकार न कीजिएगा।

**न हि साम्ना न दानेन शक्योऽर्थस्तेषु कश्चन।**
**तस्मात् तेषु न कर्तव्या कृपा ते मधुसूदन ॥३॥**

मधुसूदन! कौरवों के प्रति साम और दामनीति का प्रयोग करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता, अतः आपको उनपर कभी कृपा नहीं करनी चाहिए।

**साम्ना दानेन वा कृष्ण ये न शाम्यन्ति शत्रवः।**
**योक्तव्यस्तेषु दण्डः स्याज्जीवितं परिरक्षता ॥४॥**

श्रीकृष्ण! अपने जीवन की रक्षा करनेवाले पुरुष को चाहिए कि जो शत्रु साम और दान से शान्त न हों, उनपर दण्ड का प्रयोग करे।

**क्षत्रियेण हि हन्तव्यः क्षत्रियो लोभमास्थितः।**
**अक्षत्रियो वा दाशार्ह स्वधर्ममनुतिष्ठता ॥५॥**

दशार्हनन्दन! अपने धर्म का पालन करनेवाले क्षत्रिय को चाहिए कि वह लोभ का आश्रय करने-वाले मनुष्य को भले ही वह क्षत्रिय हो या अक्षत्रिय, अवश्य मार डाले।

**यथावध्ये भवेद् दोषो वध्यमाने जनार्दन ।**
**स वध्यस्यावधे दृष्ट इति धर्मविदो विदुः ।।६।।**

हे जनार्दन ! जैसे अवध्य का वध करने पर महान् दोष लगता है, उसी प्रकार वध्य का वध न करने से भी दोष की प्राप्ति होती है—यह बात धर्मज्ञ पुरुष जानते हैं । [अतः आप ऐसा प्रयत्न कीजिए जिससे यह दोष आपको न छू सके]

**पुनरुक्तं च वक्ष्यामि विश्रम्भेण जनार्दन ।**
**का नु सीमन्तिनी मादृक् पृथिव्यामस्ति केशव ।।७।।**

जनार्दन ! आपपर अत्यन्त विश्वास होने के कारण मैं अपनी कही हुई बात को फिर दुहराती हूँ । केशव ! इस पृथिवी पर मेरे समान हतभाग्य स्त्री कौन होगी ?

**जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु पाञ्चालेष्वथ वृष्णिषु ।**
**दासीभूतास्मि पापानां सभामध्ये व्यवस्थिता ।।८।।**

पाण्डवों, पाञ्चालों और यदुवंशियों के जीते-जी मैं पापी कौरवों की दासी बनी और उसी रूप में मुझे सभा में उपस्थित होना पड़ा ।

**नन्वहं कृष्ण भीष्मस्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः ।**
**स्नुषा भवामि धर्मेण साहं दासीकृता बलात् ।।९।।**

श्रीकृष्ण ! मैं धर्मतः भीष्म और धृतराष्ट्र दोनों की पुत्रवधू हूँ, तो भी उनके सामने ही मुझे बलपूर्वक दासी बनाया गया ।

**धिक् पार्थस्य धनुष्मत्तां भीमसेनस्य धिग्बलम् ।**
**यत्र दुर्योधनः कृष्ण मुहूर्तमपि जीवति ।।१०।।**

कृष्ण ! ऐसी अवस्था में यदि दुर्योधन एक मुहूर्त भी जीवित रहता है तो अर्जुन के धनुषधारण और भीमसेन के बल को धिक्कार है ।

**यदि तेऽहमनुग्राह्या यदि तेऽस्ति कृपा मयि ।**
**धार्तराष्ट्रेषु वै कोपः सर्वः कृष्ण विधीयताम् ।।११।।**

श्रीकृष्ण ! यदि मैं आपकी अनुग्रहभाजन हूँ, यदि मुझपर आपकी कृपा है तो आप धृतराष्ट्र के पुत्रों पर पूर्णरूप से क्रोध कीजिए ।

वैशम्पायन उवाच

**केशपक्षं वरारोहा गृह्य वामेन पाणिना ।**
**अश्रुपूर्णेक्षणा कृष्णा कृष्णं वचनमब्रवीत् ।।१२।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—[ऐसा कहकर और] अपने केशों को बाएँ हाथ में लेकर अनिन्द्यसुन्दरी [सुन्दर अङ्गोंवाली] कृष्णा ने नेत्रों में आँसू भरकर श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहा—

कृष्णोवाच

**अयं ते पुण्डरीकाक्ष दुःशासनकरोद्धृतः ।**
**स्मर्तव्यः सर्वकार्येषु परेषां सन्धिमिच्छता ।।१३।।**

**द्रौपदी बोली**—कमलनेत्र श्रीकृष्ण ! शत्रु के साथ सन्धि करने की इच्छा से आप जो-जो कार्य या प्रयत्न करें, उन सबमें दुःशासन के हाथों से खेंचे हुए मेरे इन केशों को स्मरण रखें ।

**यदि भीमार्जुनौ कृष्ण कृपणौ सन्धिकामुकौ ।**
**पिता मे योत्स्यते वृद्धः सह पुत्रैर्महारथैः ।।१४।।**

श्रीकृष्ण ! यदि भीम और अर्जुन कायर होकर कौरवों के साथ सन्धि की कामना करने लगे हैं, तो मेरे वृद्ध पिताजी अपने महारथी पुत्रों के साथ शत्रुओं से युद्ध करेंगे ।

**पञ्च चैव महावीर्याः पुत्रा मे मधुसूदन ।**
**अभिमन्युं पुरस्कृत्य योत्स्यन्ते कुरुभिः सह ।।१५।।**

मधुसूदन ! मेरे पाँच महापराक्रमी पुत्र भी वीर अभिमन्यु को प्रधान बनाकर कौरवों के साथ युद्ध करेंगे ।

**दुःशासनभुजं श्यामं संछिन्नं पांसुगुण्ठितम् ।**
**यद्यहं तं न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ।।१६।।**

यदि मैं दुःशासन की साँवली भुजा को कटकर धूल में लोटती न देखूँ तो मेरे हृदय को कैसे शान्ति मिलेगी ?

**विदीर्यते मे हृदयं भीमवाक्शल्यपीडितम् ।**
**योऽयमद्य महाबाहुर्धर्ममेवानुपश्यति ।।१७।।**

आज भीमसेन के सन्धि के लिए कहे गये वचन मेरे हृदय में बाण के समान लगे हैं, जिनसे पीड़ित होकर मेरा कलेजा फटा जा रहा है । हा ! ये महाबाहु आज [मेरे अपमान को भुलाकर] केवल धर्म का ही चिन्तन कर रहे हैं ।

वैशम्पायन उवाच

**तामुवाच महाबाहुः केशवः परिसान्त्वयन् ।**
**अचिराद् द्रक्ष्यसे कृष्णे रुदतीर्भरतस्त्रियः ।।१८।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—तब महाबाहु श्रीकृष्ण

ने द्रौपदी को सान्त्वना देते हुए कहा—"कृष्णे ! तुम शीघ्र ही भरतवंश की अन्य स्त्रियों को भी रुदन करते देखोगी ।

**एवं ता भीरु रोत्स्यन्ति निहतज्ञातिबान्धवाः ।**
**हतमित्रा हतबला येषां क्रुद्धासि भामिनि ॥१९॥**

"भामिनी ! जिनपर तुम क्रुद्ध हुई हो, उन विपक्षियों की स्त्रियाँ भी अपने कुटुम्बी, बन्धु-बान्धव, मित्रवृन्द तथा सेनाओं के मारे जाने पर इसी प्रकार रोएँगी ।

**अहं च तत् करिष्यामि भीमार्जुनयमैः सह ।**
**युधिष्ठिरनियोगेन दैवाच्च विधिनिर्मितात् ॥२०॥**

"युधिष्ठिर की आज्ञा तथा विधाता के रचे हुए अदृष्ट से प्रेरित हो भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को साथ लेकर मैं वही करूँगा जो तुम्हें अभीष्ट है ।

**धार्तराष्ट्राः कालपक्वा न चेच्छृण्वन्ति मे वचः ।**
**शेष्यन्ते निहताभूमौ श्वशृगालादनीकृताः ॥२१॥**

"यदि काल के गाल में जानेवाले धृतराष्ट्रपुत्र मेरी बात नहीं सुनेंगे तो वे सब मारे जाकर पृथिवी पर सदा की नींद सो जाएँगे और कुत्तों तथा स्यारों के भोजन बनेंगे ।

**चलेद्धि हिमवाञ्छैलो मेदिनी शतधा भवेत् ।**
**द्यौः पतेच्च सनक्षत्रा न मे मोघं वचो भवेत् ॥२२॥**

"चाहे हिमालयपर्वत अपने स्थान से टल जाए, पृथिवी के सैकड़ों खण्ड हो जाएँ और नक्षत्रोंसहित आकाश टूट पड़े, परन्तु मेरी यह बात असत्य नहीं हो सकती ।

**सत्यं ते प्रतिजानामि कृष्णे बाष्पो निगृह्यताम् ।**
**हतामित्राञ्छ्रिया युक्तान् चिराद् द्रक्ष्यसे पतिम् ॥२३॥**

"कृष्णे ! अपने आँसुओं को रोको । मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि तुम शीघ्र ही देखोगी कि सारे शत्रु मार डाले गये और तुम्हारा पति युधिष्ठिर राज्यलक्ष्मी से सम्पन्न है ।"

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥**

# विंशोऽध्यायः

## श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर पहुँचना, धृतराष्ट्र द्वारा उनका स्वागत तथा दुःशासन के महल में ठहराने का विचार

वैशम्पायन उवाच

**ततो व्यपेते तमसि सूर्ये विमलवद्गते ।**
**कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे ॥१॥**
**आरुरोह रथं शौरिर्विमानमिव कामगम् ।**
**ततः सात्यकिमारोप्य प्रययौ पुरुषोत्तमः ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तत्पश्चात् रात्रि के अन्धकार के दूर होने और निर्मल आकाश में सूर्य के उदित होने पर कार्तिक मास के रेवती नक्षत्र में जब शरदृतु का अन्त और हेमन्त का आरम्भ हो रहा था, श्रीकृष्ण इच्छा के अनुसार चलनेवाले और विमान के समान सुशोभित रथ में आरूढ़ हुए, फिर सात्यकि को भी उसी रथ पर बैठाकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने वहाँ से प्रस्थान किया ।

**वृकस्थलं समासाद्य केशवः परवीरहा ।**
**प्रकीर्णरश्मावादित्ये व्योम्नि वै लोहितायति ॥३॥**
**अवतीर्य रथात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि ।**
**रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविवेश ह ॥४॥**

शत्रुवीरों का संहार करनेवाले श्रीकृष्ण जब वृकस्थल में पहुँचे, उस समय सप्तरंगी किरणों से मण्डित सूर्य अस्त होने लगे तथा पश्चिम के आकाश में लाली छा गई । तब श्रीकृष्ण रथ से उतर पड़े । उन्होंने सारथि को घोड़ों को खोलने का आदेश दिया और वे स्वयं विधिपूर्वक शौच-स्नान करके सन्ध्योपासना करने लगे ।

**अभ्यतीत्य तु तत् सर्वमुवाच मधुसूदनः ।**
**युधिष्ठिरस्य कार्यार्थमिह वत्स्यामहे क्षपाम् ॥५॥**

सन्ध्यावन्दन आदि सारा कार्य समाप्त करके मधुसूदन श्रीकृष्ण ने कहा—"युधिष्ठिर का कार्य सिद्ध करने के लिए आज रात्रि में हम लोग यहीं निवास करेंगे ।"

**तस्य तन्मतमाज्ञाय चक्रुरावस्थं नराः ।**
**क्षणेन चान्नपानानि गुणवन्ति समार्जयन् ॥६॥**

उनका यह विचार जानकर सेवकों ने वहीं डेरे डाल दिये। थोड़ी ही देर में उन्होंने खाने-पीने के उत्तमोत्तम रसीले एवं स्वादिष्ट पदार्थ भी प्रस्तुत कर दिये।

**तस्मिन् ग्रामे प्रधानास्तु य आसन् ब्राह्मणा नृप ।**
**आर्याः कुलीना ह्रीमन्तो ब्राह्मीं वृत्तिमनुष्ठिताः ॥७॥**
**तेऽभिगम्य महात्मानं हृषीकेशमरिन्दमम् ।**
**पूजां चक्रुर्यथान्यायमाशीर्मङ्गलसंयुताम् ॥८॥**

राजन्! उस ग्राम में जो प्रमुख ब्राह्मण रहते थे, वे आर्य=श्रेष्ठ, कुलीन, लज्जाशील तथा ब्राह्मणोचित वृत्ति का पालन करनेवाले थे। उन्होंने शत्रुदमन महात्मा इन्द्रियविजेता श्रीकृष्ण के पास पहुँचकर आशीर्वाद तथा मंगलपाठपूर्वक उनका यथोचित पूजन, [सत्कार] किया।

**सुमृष्टं भोजयित्वा च ब्राह्मणाँस्तत्र केशवः ।**
**भुक्त्वा च सह तैः सर्वैरवसत् तां क्षपां सुखम् ॥९॥**

श्रीकृष्ण ने उन ब्राह्मणों को वहीं सुस्वादु अन्न का भोजन कराया, फिर स्वयं भी भोजन करके, उन सबके साथ उस रात्रि में वहीं सुखपूर्वक निवास किया।

धृतराष्ट्र उवाच

**उपप्लव्यादिह क्षत्तरुपायातो जनार्दनः ।**
**वृकस्थले निवसति स च प्रातरिहैष्यति ॥१०॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—विदुर! मुझे सूचना मिली है कि श्रीकृष्ण ने उपप्लव्य से यहाँ के लिए प्रस्थान कर दिया है। आज वे वृकस्थल में ठहरे हैं तथा कल प्रातःकाल ही इस नगर में पहुँच जाएँगे।

**तस्मै पूजां प्रयोक्ष्यामि दाशार्हाय महात्मने ।**
**प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तां मे कथयतः शृणु ॥११॥**

धर्मज्ञ विदुर! मैं तुम्हारे समक्ष ही उन महात्मा श्रीकृष्ण को जो भेंट दूँगा, उसे बताता हूँ, सुनो।

**एकवर्णैः सुक्लृप्ताङ्गैर्बाह्लिजातैर्हयोत्तमैः ।**
**चतुर्युक्तान् रथाँस्तस्मै रौक्मान् दास्यामि षोडश ॥१२**

एक रंग के, सुदृढ़ अङ्गोंवाले तथा बाह्लीक देश में उत्पन्न हुए उत्तम जाति के चार-चार घोड़ों से जुते हुए सोलह सुवर्णमय रथ मैं श्रीकृष्ण को भेंट करूँगा।

**नित्यप्रभिन्नान् मातङ्गानीषादन्तान् प्रहारिणः ।**
**अष्टानुचरमेकैकमष्टौ दास्यामि कौरव ॥१३**

कुरुनन्दन! इन रथों के अतिरिक्त मैं उन्हें आठ मतवाले हाथी भी दूँगा, जिनके मस्तक से सदा मद चूता रहता है, जिनके दाँत ईषादण्ड के समान प्रतीत होते हैं। ये शत्रुओं पर आक्रमण करने में कुशल हैं तथा इनमें से प्रत्येक के साथ आठ-आठ सेवक हैं।

**दिवा रात्रौ च भात्येष सुतेजा विमलो मणिः ।**
**तमप्यस्मै प्रदास्यामि तमर्हति हि केशवः ॥१४॥**

मेरे पास एक अत्यन्त तेजस्वी निर्मल मणि है। यह दिन में तथा रात्रि में भी प्रकाशित होती है, इसे भी मैं श्रीकृष्ण को दूँगा, क्योंकि वे ही इसके योग्य हैं।

**मम पुत्राश्च पौत्राश्च सर्वे दुर्योधनादृते ।**
**प्रत्युद्यास्यन्ति दाशार्हं रथैर्मृष्टैः स्वलंकृताः ॥१५॥**

दुर्योधन के सिवा मेरे सभी पुत्र और पौत्र वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो स्वच्छ सुन्दर रथों पर बैठकर श्रीकृष्ण के स्वागत के लिए जाएँगे।

**महाध्वजपताकाश्च क्रियन्तां सर्वतोदिशः ।**
**जलावसिक्तो विरजाः पन्थास्तस्येति चान्वशात् ॥१६**

"नगर में चारों ओर विशाल ध्वजाएँ और पताकाएँ फहरा दी जाएँ तथा श्रीकृष्ण जिस मार्ग से आ रहे हों, उस राजपथ पर जल का छिड़काव करके उसे धूलरहित बना दिया जाए"—इस प्रकार राजा धृतराष्ट्र ने आदेश दिया।

**दुःशासनस्य च गृहं दुर्योधनगृहाद् वरम् ।**
**तदद्य क्रियतां क्षिप्रं सुसम्मृष्टमलंकृतम् ॥१७॥**

[इतना कहकर वे फिर बोले]—दुःशासन का महल दुर्योधन के राजभवन से भी सुन्दर है। उसी को आज स्वच्छ करके [श्रीकृष्ण के ठहरने के लिए] सब प्रकार से सुसज्जित कर दिया जाए।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥२०॥**

# एकविंशोऽध्यायः

## विदुर का धृतराष्ट्र को श्रीकृष्ण की आज्ञापालन के लिए समझाना, दुर्योधन की कुमन्त्रणा, भीष्मजी का सभा से बहिर्गमन

विदुर उवाच

**राजन् बहुमतश्चासि त्रैलोक्यस्यापि सत्तमः ।**
**सम्भावितश्च लोकस्य सम्मतश्चासि भारत ॥१॥**

**विदुर बोले**—राजन् ! आप तीनों लोकों में श्रेष्ठतम पुरुष हैं, सर्वत्र आपका बहुत सम्मान है । भारत ! इस लोक में भी आपकी अति प्रतिष्ठा और सम्मान है ।

**लेखा शशिनि भाः सूर्ये महोर्मिरिव सागरे ।**
**धर्मस्त्वयि तथा राजन्निति व्यवसिताः प्रजाः ॥२॥**

राजन् ! जैसे चन्द्रमा में कला है, सूर्य में प्रभा है तथा समुद्र में उत्ताल तरंगें हैं, वैसे ही आपमें धर्म की स्थिति है । यह बात समस्त प्रजा निश्चितरूप से जानती है ।

**सदैव भावितो लोको गुणौघैस्तव पार्थिव ।**
**गुणानां रक्षणे नित्यं प्रयतस्व सबान्धवः ॥३॥**

नरेश ! आपके सद्गुण-समूह से सदा ही इस संसार की उन्नति एवं प्रतिष्ठा हो रही है, अतः आप अपने बन्धु-बान्धवोंसहित सदा ही इन सद्गुणों की रक्षा के लिए प्रयत्न कीजिए ।

**आर्जवं प्रतिपद्यस्व मा बाल्याद् बहुधा नशीः ।**
**राजन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च सुहृदश्चैव सुप्रियान् ॥४॥**

राजन् ! आप सरलता को अपनाइए । आप मूर्खतावश कुटिलता का आश्रय ले अपने अतिप्रिय पुत्रों-पौत्रों तथा सुहृदयों का सर्वनाश मत कीजिए ।

**यत् त्वमिच्छसि कृष्णाय राजन्नतिथये बहु ।**
**एतदन्यच्च दाशार्हः पृथिवीमपि चार्हति ॥५॥**

राजन् ! श्रीकृष्ण को अतिथिरूप में पाकर आप जो उन्हें बहुत-सी वस्तुएँ देना चाहते हैं, उन सबके साथ-साथ वे आपसे इस समस्त भू-मण्डल को भी पाने के अधिकारी हैं ।

**न तु त्वं धर्ममुद्दिश्य तस्य वा प्रियकारणात् ।**
**एतद् दित्ससि कृष्णाय छद्मैतद् भूरिदक्षिण ॥६॥**

यज्ञों में प्रभूत दक्षिणा देनेवाले महाराज ! आप धर्मपालन के उद्देश्य से अथवा श्रीकृष्ण का प्रिय करने के लिए ये सब वस्तुएँ उन्हें नहीं देना चाहते । यह सब तो आपकी माया और प्रवञ्चनामात्र है ।

**पञ्च पञ्चैव लिप्सन्ति ग्रामकान् पाण्डवा नृप ।**
**न च दित्ससि तेभ्यस्तांस्तच्छमं न करिष्यसि ॥७॥**

नरेश्वर ! बेचारे पाँचों भाई पाण्डव आपसे केवल पाँच गाँव ही पाना चाहते हैं, परन्तु आप उन्हें वे ग्राम भी नहीं देना चाहते । इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि आप [सन्धि द्वारा] शान्ति-स्थापन नहीं करेंगे ।

**अर्थेन तु महाबाहुं वार्ष्णेयं त्वं जिहीर्षसि ।**
**अनेन चाप्युपायेन पाण्डवेभ्यो बिभेत्स्यसि ॥८॥**

आप तो धन देकर महाबाहु श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में करना चाहते हैं तथा यह आशा रखते हैं कि इस उपाय से आप उन्हें पाण्डवों की ओर से फोड़ लेंगे ।

**न च वित्तेन शक्योऽसौ नोद्यमेन न गर्हया ।**
**अन्यो धनञ्जयात् कर्तुमेतत् तत्त्वं ब्रवीमि ते ॥९॥**

परन्तु मैं आपको रहस्य की बात बताता हूँ—आप धन देकर, कोई दूसरा उद्योग करके अथवा निन्दा करके श्रीकृष्ण को अर्जुन से पृथक् नहीं कर सकते ।

**अन्यत् कुम्भादपां पूर्णादन्यत् पादावसेचनात् ।**
**अन्यत् कुशलसम्प्रश्नान्नैषिष्यति जनार्दनः ॥१०॥**

श्रीकृष्ण आपके द्वारा प्रदत्त वस्तुओं में से जल से भरे हुए कलश, पैर धोने के लिए जल तथा कुशल-प्रश्न को छोड़कर अन्य किसी वस्तु को स्वीकार नहीं करेंगे ।

**आशंसमानः कल्याणं कुरूनभ्येति केशवः ।**
**येनैव राजन्नर्थेन तदेवास्मा उपाकुरु ॥११॥**

महाराज ! श्रीकृष्ण दोनों पक्षों के कल्याण की इच्छा लेकर जिस उद्देश्य से इस कुरु देश में आ रहे हैं, वही उन्हें उपहार में दीजिए ।

**शममिच्छति दाशार्हस्तव दुर्योधनस्य च ।**
**पाण्डवानां च राजेन्द्र तदस्य वचनं कुरु ॥१२॥**

राजेन्द्र ! दशार्हकुल-तिलक श्रीकृष्ण आप, दुर्योधन तथा पाण्डवों में सन्धि कराकर शान्ति स्थापित करना चाहते हैं, आप उनके आदेश का पालन कीजिए [इसी से वे सन्तुष्ट होंगे] ।

**पितासि राजन् पुत्रास्ते वृद्धस्त्वं शिशवः परे ।**
**वर्तस्व पितृवत् तेषु वर्तन्ते ते हि पुत्रवत् ॥१३॥**

महाराज ! आप पिता हैं और पाण्डव आपके पुत्र हैं । आप वृद्ध हैं और वे बालक हैं । आप उनके साथ पिता के समान स्नेहपूर्ण बर्ताव कीजिए । वे आपके प्रति सदा ही पुत्रों की भाँति श्रद्धा-भक्ति रखते हैं ।

दुर्योधन उवाच

**यथाह विदुरः कृष्णे सर्वं तत् सत्यमच्युते ।**
**अनुरक्तो ह्यसंहार्यः पार्थान् प्रति जनार्दनः ॥१४॥**

**दुर्योधन बोला**—पिताजी ! अपनी मर्यादा से कभी न डिगनेवाले श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में विदुरजी ने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक है । जनार्दन श्रीकृष्ण का कुन्ती के पुत्रों के साथ अटूट सम्बन्ध है, अतः उन्हें उनकी ओर से फोड़ा नहीं जा सकता ।

**यत् तत् सत्कारसंयुक्तं देयं वसु जनार्दने ।**
**अनेकरूपं राजेन्द्र न तद् देयं कदाचन ॥१५॥**

हे राजेन्द्र ! आप श्रीकृष्ण को सत्कारपूर्वक जो बहुत-सा धन-रत्न भेंट करना चाहते हैं, वह उन्हें कदापि न दें ।

**देशः कालस्तथायुक्तो न हि नार्हति केशवः ।**
**मंस्यत्यधोक्षजो राजन् भयादर्चति मामिति ॥१६॥**

मैं यह बात इसलिए नहीं कहता कि श्रीकृष्ण उन वस्तुओं के अधिकारी नहीं हैं अपितु इस दृष्टि से मना कर रहा हूँ कि वर्तमान देश-काल और परिस्थिति ऐसी नहीं है कि उनका विशेष आदर किया जाए । राजन् ! इस समय उनका सत्कार करने से तो वे यही समझेंगे कि ये डर के कारण मेरी पूजा कर रहे हैं ।

**इदं तु सुमहत्कार्यं शृणु मे यत् समर्थितम् ।**
**परायणं पाण्डवानां नियच्छामि जनार्दनम् ॥१७॥**

इस समय मैंने जो महान् कार्य करने का निश्चय किया है, आप उसे सुनिए । मैं पाण्डवों के सबसे बड़े सहारे श्रीकृष्ण को यहाँ आने पर बन्दी बना लूँगा ।

**तस्मिन् बद्धे भविष्यन्ति वृष्णयः पृथिवी तथा ।**
**पाण्डवाश्च विधेया मे स च प्रातरिहैष्यति ॥१८॥**

उनके बन्दी हो जाने पर समस्त यदुवंशी, इस भू-मण्डल का राज्य एवं पाण्डव भी मेरी आज्ञा के अधीन हो जाएँगे । श्रीकृष्ण कल प्रातः ही यहाँ पहुँच रहे हैं ।

वैशम्पायन उवाच

**तस्य तद् वचनं श्रुत्वा धृतराष्ट्रोऽब्रवीद् वचः ।**
**मैवं ब्रूहि प्रजापाल नैष धर्मः सनातनः ॥१९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—उसकी यह बात सुनकर धृतराष्ट्र बोले—"प्रजापालक दुर्योधन ! तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए, यह सनातन धर्म नहीं है ।

**दूतश्च हि हृषीकेशः सम्बन्धी च प्रियश्च नः ।**
**अपापः कौरवेयेषु स कथं बन्धमर्हति ॥२०॥**

"श्रीकृष्ण इस समय दूत बनकर आ रहे हैं । वे हमारे प्रिय तथा सम्बन्धी भी हैं और उन्होंने कौरवों का कोई अपराध भी नहीं किया है । ऐसी अवस्था में वे बन्दी बनाने योग्य कैसे हो सकते हैं ?"

भीष्म उवाच

**परीतस्तव पुत्रोऽयं धृतराष्ट्र सुमन्दधीः ।**
**वृणोत्यनर्थं नैवार्थं याच्यमानः सुहृज्जनैः ॥२१॥**

**भीष्मजी ने कहा**—धृतराष्ट्र ! तुम्हारा यह मन्दबुद्धिपुत्र काल के वश में हो गया है । यह अपने हितैषी सुहृदों के समझाने पर भी अनर्थ को ही अपना रहा है, अर्थ को नहीं ।

**पापस्यास्य नृशंसस्य त्यक्तधर्मस्य दुर्मतेः ।**
**नोत्सहेऽनर्थसंयुक्ताः श्रोतुं वाचः कथंचन ॥२२॥**

इसने धर्म का सर्वथा त्याग कर दिया है । अब मैं इस मूर्ख, पापी एवं क्रूर दुर्योधन की अनर्थभरी बातें किसी प्रकार भी नहीं सुनना चाहता ।

वैशम्पायन उवाच

**इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो वृद्धः परममन्युमान् ।**
**उत्थाय तस्मात् प्रातिष्ठद् भीष्मः सत्यपराक्रमः ॥२३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—ऐसा कहकर भरतश्रेष्ठ, सत्यपराक्रमी वृद्ध पितामह भीष्म अत्यन्त क्रुद्ध हो उस सभाभवन से उठकर चले गये ।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥**

# द्वाविंशोऽध्यायः

## श्रीकृष्ण का स्वागत, धृतराष्ट्र और विदुर के घरों पर उनका आतिथ्य, कृष्ण द्वारा कुन्ती को समाश्वासन

वैशम्पायन उवाच

**प्रातरुत्थाय कृष्णस्तु कृतवान् सर्वमाह्निकम्।**
**ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः प्रययौ नगरं प्रति ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! [उधर वृकस्थल में] प्रातः उठकर श्रीकृष्ण ने सन्ध्या आदि नित्यकर्म पूर्ण किये। फिर ब्राह्मणों की आज्ञा ले, वे हस्तिनापुर की ओर चले।

**धार्तराष्ट्रास्तमायान्तं प्रत्युज्जग्मुः स्वलंकृताः।**
**दुर्योधनादृते सर्वे भीष्मद्रोणकृपादयः ॥२॥**

दुर्योधन के सिवा धृतराष्ट्र के सभी पुत्र तथा भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि यथायोग्य वस्त्राभूषणों से विभूषित हो हस्तिनापुर की ओर आते हुए श्रीकृष्ण के स्वागत के लिए गये।

**न च कश्चिद् गृहे राजँस्तदाऽऽसीद् भरतर्षभ।**
**न स्त्री न वृद्धो न शिशुर्वासुदेवदिदृक्षया ॥३॥**

भरतश्रेष्ठ! उस समय श्रीकृष्ण के दर्शन की तीव्र इच्छा के कारण स्त्री, बालक तथा वृद्ध कोई भी घर में नहीं ठहर सका [सभी श्रीकृष्ण के स्वागत के लिए उमड़ पड़े]।

**स वै पथि समागम्य भीष्मेणाक्लिष्टकर्मणा।**
**द्रोणेन धार्तराष्ट्रैश्च तैर्वृतो नगरं ययौ ॥४॥**

अनायास ही महान् पराक्रम कर दिखानेवाले भीष्म तथा द्रोणाचार्य से मार्ग में ही मिलकर, धृतराष्ट्रपुत्रों से घिरे हुए श्रीकृष्ण ने नगर में प्रवेश किया।

**कृष्णसम्माननार्थं च नगरं समलंकृतम्।**
**बभूव राजमार्गश्च बहुरत्नसमाचितः ॥५॥**

श्रीकृष्ण के स्वागत-सम्मानार्थ हस्तिनापुर को खूब सजाया गया था। वहाँ का राजमार्ग भी अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित किया गया था।

**स गृहं धृतराष्ट्रस्य प्राविशच्छत्रुकर्शनः।**
**पाण्डुरं पुण्डरीकाक्षः प्रासादैरुपशोभितम् ॥६॥**

शत्रुओं को क्षीण करनेवाले कमलनेत्र श्रीकृष्ण ने राजा धृतराष्ट्र के अट्टालिकाओं से सुशोभित उज्ज्वल भवन में प्रवेश किया।

**तत्रासीदूर्जितं मृष्टं काञ्चनं महदासनम्।**
**शासनाद् धृतराष्ट्रस्य तत्रोपाविशदच्युतः ॥७॥**

वहाँ एक स्वच्छ और जगमगाता हुआ सुवर्ण का विशाल सिंहासन रखा हुआ था। धृतराष्ट्र की आज्ञा से श्रीकृष्ण उसी पर आसीन हुए।

**कृतातिथ्यस्तु गोविन्दः सर्वान् परिहसन् कुरून्।**
**आस्ते साम्बन्धिकं कुर्वन् कुरुभिः परिवारितः ॥८॥**

उनका आतिथ्य ग्रहण करके श्रीकृष्ण हँसते हुए कौरवों के साथ बैठ गये तथा सबसे अपने सम्बन्ध के अनुसार यथायोग्य व्यवहार करते हुए उनसे घिरे हुए कुछ समय तक बैठे रहे।

**सोऽर्चितो धृतराष्ट्रेण पूजितश्च महायशाः।**
**राजानं समनुज्ञाप्य निराक्रामदरिन्दम ॥९॥**

धृतराष्ट्र से पूजित एवं सत्कृत हो महायशस्वी शत्रुदमन श्रीकृष्ण उनकी अनुमति ले उस राजभवन से बाहर निकले।

**तैः समेत्य यथान्यायं कुरुभिः कुरुसंसदि।**
**विदुरावसथं रम्यमुपातिष्ठत माधवः ॥१०॥**

तत्पश्चात् कौरवसभा में यथायोग्य सबसे मिल-जुलकर यदुवंशी श्रीकृष्ण ने विदुरजी के रमणीय गृह में पदार्पण किया।

**विदुरः सर्वकल्याणैरभिगम्य जनार्दनम्।**
**अर्चयामास दाशार्हं सर्वकामैरुपस्थितम् ॥११॥**

विदुरजी ने अपने घर पर पधारे हुए दशार्हनन्दन श्रीकृष्ण के पास जाकर समस्त मनोवाञ्छित भोगों तथा सम्पूर्ण मांगलिक वस्तुओं द्वारा उनका आदर-सत्कार और आतिथ्य किया।

**कृतातिथ्यं तु गोविन्दं विदुरः सर्वधर्मवित्।**
**कुशलं पाण्डुपुत्राणामपृच्छन्मधुसूदनम् ॥१२॥**

मधुसूदन श्रीकृष्ण जब उनका आतिथ्य ग्रहण कर चुके तब सब धर्मों के ज्ञाता विदुरजी ने उनसे

पाण्डवों का कुशल-समाचार पूछा।

**तस्य सर्वं सविस्तारं पाण्डवानां विचेष्टितम्।**
**क्षत्तुराचष्ट दाशार्हः सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्॥१३॥**

सब-कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाले श्रीकृष्ण ने विदुरजी से पाण्डवों की सारी चेष्टाएँ विस्तारपूर्वक कह सुनाईं।

**अथोपगम्य विदुरमपराह्णे जनार्दनः।**
**पितृष्वसारं गोविन्दः सोऽभ्यगच्छदरिन्दमः॥१४॥**

जनमेजय! शत्रुदमन श्रीकृष्ण विदुरजी से मिलने के पश्चात् तीसरे प्रहर में अपनी बुआ कुन्तीदेवी के पास गये।

**सा दृष्ट्वा कृष्णमायान्तं प्रसन्नादित्यवर्चसम्।**
**कण्ठे गृहीत्वा प्राक्रोशत् स्मरन्ती तनयान् पृथा॥१५॥**

निर्मल सूर्य के समान तेजस्वी श्रीकृष्ण को आते देख कुन्तीदेवी उनके गले लग गईं तथा अपने पुत्रों को स्मरण कर वे फूट-फूटकर रोने लगीं।

कुन्त्युवाच

**न मां माधव वैधव्यं नार्थनाशो न वैरता।**
**तथा दहति शोकाय यथा पुत्रैर्विनाभवः॥१६॥**

**कुन्ती ने कहा**—माधव! वैधव्य, धन का नाश और कुटुम्बीजनों के साथ बढ़ा हुआ वैरभाव—इन सबसे मुझे उतना शोक नहीं होता, जितना कि पुत्रों का विछोह मुझे शोकदग्ध कर रहा है।

**न दुःखं राज्यहरणं न च द्यूते पराजयः।**
**प्रव्राजनं तु पुत्राणां न मे तद् दुःखकारणम्॥१७॥**
**यत् तु सा बृहती श्यामा एकवस्त्रा सभां गता।**
**अशृणोत् परुषा वाचः किं नु दुःखतरं ततः॥१८॥**

राज्य का छिन जाना, जुए में हार जाना तथा मेरे पुत्रों को वन में भेज देना—इन सबसे मुझे दुःख नहीं हुआ, परन्तु मेरी श्रेष्ठ सुन्दरी वधू को एक वस्त्र धारण किये जो सभा में जाना पड़ा तथा दुष्टों के कठोर वचन सुनने पड़े, इससे बढ़कर महान् दुःख की बात और क्या हो सकती है!

वासुदेव उवाच

**का तु सीमन्तिनी त्वादृक् लोकेष्वस्ति पितृष्वसः।**
**शूरस्य राज्ञो दुहिता आजमीढकुलं गता॥१९॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—बूआ! संसार में तुम-जैसी सौभाग्यशालिनी नारी दूसरी कौन है? तुम राजा शूरसेन की पुत्री हो तथा महाराज अजमीढ के कुल में ब्याहकर आई हो।

**वीरसूर्वीरपत्नी त्वं सर्वैः समुदिता गुणैः।**
**सुखदुःखे महाप्राज्ञे त्वादृशी सोढुमर्हति॥२०॥**

तुम वीर पत्नी, वीर जननी तथा समस्त गुणों से सुभूषित हो। महाप्राज्ञे! तुम्हारी-जैसी विवेकशील स्त्री को सुख और दुःख चुपचाप सहने चाहिएँ।

**निद्रातन्द्रे क्रोधहर्षौ क्षुत्पिपासे हिमातपौ।**
**एतानि पार्था निर्जित्य नित्य वीरसुखे रताः॥२१॥**

तुम्हारे सभी पुत्र निद्रा-तन्द्रा=आलस्य, क्रोध-हर्ष, भूख-प्यास, सरदी-गरमी—इन सबको जीतकर सदा वीरोचित सुख का उपभोग कर रहे हैं।

**त्वामभिवादयन्ति ते पाण्डवाः सह कृष्णया।**
**आत्मानं च कुशलिनं निवेद्याहुरनामयम्॥२२॥**

बूआ! द्रौपदीसहित पाँचों पाण्डवों ने आपको प्रणाम कहलाया है तथा अपने को सकुशल बताकर अपनी स्वस्थता की भी सूचना दी है।

**अरोगान् सर्वसिद्धार्थान् क्षिप्रं द्रक्ष्यसि पाण्डवान्।**
**ईश्वरान् सर्वलोकस्य हतामित्राञ्छ्रिया वृतान्॥२३॥**

तुम शीघ्र ही देखोगी कि पाण्डव नीरोग अवस्था में तुम्हारे सामने उपस्थित हैं, उनके सभी मनोरथ सिद्ध हो गये हैं और वे अपने शत्रुओं को मौत के घाट उतारकर साम्राज्य-लक्ष्मी से युक्त हो भू-मण्डल के शासक-पद पर प्रतिष्ठित हैं।

कुन्त्युवाच

**यद् यत् तेषां महाबाहो पथ्यं स्यान्मधुसूदन।**
**यथा यथा त्वं मन्येथाः कुर्याः कृष्ण तथा तथा॥२४॥**

**कुन्ती बोली**—महाबाहु मधुसूदन कृष्ण! जो पाण्डवों के लिए हितकर हो तथा जैसे-जैसे कार्य करना तुम्हें उचित ज़ान पड़े, वैसे-वैसे करो।

इति महाभारते उद्योगपर्वणि द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

# त्रयोविंशोऽध्यायः

**श्रीकृष्ण का दुर्योधन के निमन्त्रण को अस्वीकार करके विदुरजी के गृह पर भोजन करना, विदुरजी का कौरवसभा में जाने का अनौचित्य और कृष्ण द्वारा औचित्य प्रतिपादन करना**

वैशम्पायन उवाच

**पृथामामन्त्र्य गोविन्दः कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।**
**दुर्योधनगृहं शौरिरभ्यगच्छदरिन्दमः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! शत्रुओं का दमन करनेवाले शूरनन्दन श्रीकृष्ण कुन्ती की परिक्रमा करके तथा उनकी आज्ञा लेकर दुर्योधन के घर गये ।

**समेत्य धार्तराष्ट्रेण सहामात्येन केशवः ।**
**राजभिस्तत्र वार्ष्णेयः समागच्छद् यथावयः ॥२॥**

मन्त्रियोंसहित दुर्योधन से मिलकर वृष्णिकुल-तिलक केशव अवस्था के अनुसार वहाँ सभी राजाओं से यथायोग्य मिले ।

**तत्र जाम्बूनदमयं पर्यङ्कं सुपरिष्कृतम् ।**
**विविधास्तरणास्तीर्णमभ्युपाविशदच्युतः ॥३॥**

उस राजभवन में सुन्दर रत्नों से विभूषित एक सुवर्णमय पर्यङ्क रखा हुआ था, जिसपर अनेक प्रकार के बिछौने बिछे हुए थे । श्रीकृष्ण उसी पर बैठे ।

**ततो दुर्योधनो राजा वार्ष्णेयं जयतां वरम् ।**
**न्यमन्त्रयद् भोजनेन नाभ्यनन्दच्च केशवः ॥४॥**

तत्पश्चात् राजा दुर्योधन ने विजयी वीरों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण को भोजन के लिए निमन्त्रित किया परन्तु श्रीकृष्ण ने वह निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया ।

दुर्योधन उवाच

**कस्मादन्नानि पानानि वासांसि शयनानि च ।**
**त्वदर्थमुपनीतानि नाग्रहीस्त्वं जनार्दन ॥५॥**

**दुर्योधन बोला**—जनार्दन ! आपके लिए अन्न, जल, वस्त्र तथा शैया आदि जो वस्तुएँ प्रस्तुत की गई हैं, आपने उन्हें ग्रहण क्यों नहीं किया ?

कृष्ण उवाच

**कृतार्था भुञ्जते दूताः पूजां गृह्णन्ति चैव हि ।**
**कृतार्थं मां सहामात्यं समर्चिष्यसि भारत ॥६॥**

**कृष्णजी ने कहा**—हे भारत ! दूत अपना प्रयोजन सिद्ध होने पर ही भोजन और सम्मान स्वीकार करते हैं । तुम भी मेरा उद्देश्य सिद्ध हो जाने पर ही मेरा और मेरे मन्त्रियों का सत्कार करना ।

दुर्योधन उवाच

**न युक्तं भवतास्मासु प्रतिपत्तुमसाम्प्रतम् ।**
**यतामहे पूजयितुं दाशार्ह न च शक्नुमः ॥७॥**

**दुर्योधन बोला**—हे दशार्हनन्दन ! आपको हम लोगों के साथ ऐसा अनुचित बर्ताव नहीं करना चाहिए । हम लोग तो आपके सम्मान का प्रयत्न करते हैं, परन्तु इसमें हमें सफलता नहीं मिल रही है ।

**न च तत्कारणं विद्मो यस्मिन्नो मधुसूदन ।**
**पूजां कृतां प्रीयमाणैर्नामंस्थाः पुरुषोत्तम ॥८॥**

मधुदैत्य के नाशक पुरुषोत्तम ! हमें ऐसा कोई कारण नहीं जान पड़ता, जिससे आप हमारी प्रेम-पूर्वक समर्पित पूजा ग्रहण न कर सकें ?

**वैरं नो नास्ति भवता गोविन्द न च विग्रहः ।**
**स भवान् प्रसमीक्ष्यैतन्नेदृशं वक्तुमर्हति ॥९॥**

गोविन्द ! आपके साथ हम लोगों का न तो कोई वैर है और न झगड़ा ही है । इन सब बातों का विचार करके आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए ।

कृष्ण उवाच

**नाहं कामान्न संरम्भान्न द्वेषान्नार्थकारणात् ।**
**न हेतुवादाल्लोभाद् वा धर्मं जह्यां कथञ्चन ॥१०॥**

**श्रीकृष्ण ने कहा**—हे राजन् ! मैं काम से, क्रोध से, द्वेष से, स्वार्थवश, बहानेबाजी अथवा लोभ से—इन किन्हीं भी प्रकारों से धर्म का त्याग नहीं कर सकता ।

**सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः ।**
**न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम् ॥११॥**

किसी के घर का अन्न या तो प्रेम के कारण खाया जाता है अथवा आपत्ति में पड़ने पर । राजन् !

प्रेम तो तुममें है नहीं और किसी आपत्ति में हम नहीं पड़े हैं।[1]

**अकस्माद् द्वेष्टि वै राजन् जन्मप्रभृति पाण्डवान्।**
**प्रियानुवर्तिनो भ्रातृन् सर्वैः समुदितान् गुणैः ॥१२॥**

राजन्! पाण्डव तुम्हारे भाई ही हैं। वे अपने प्रेमियों का साथ देनेवाले तथा समस्त सद्गुणों से विभूषित हैं, फिर भी तुम जन्म से ही उनके साथ अकारण ही द्वेष रखते हो।

**अकस्माच्चैव पार्थानां द्वेषणं नोपपद्यते।**
**पाण्डवा हि स्थिता धर्मे कस्तान् किं वक्तुमर्हति ॥१३॥**

अकारण ही कुन्तीपुत्रों के साथ द्वेष रखना तुम्हारे लिए सर्वथा अनुचित है। पाण्डव सदा अपने धर्म में स्थित रहते हैं, अतः उनके विरुद्ध कौन क्या कह सकता है?

**यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु।**
**ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥१४॥**

जो पाण्डवों से द्वेष करता है, वह मुझसे भी द्वेष करता है; जो उनके अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है। तुम मुझे धर्मात्मा पाण्डवों के साथ एकरूप हुआ ही समझो।

**द्विषदन्नं न भोक्तव्यं द्विषन्तं नैव भोजयेत्।□**
**पाण्डवान् द्विषसे राजन् मम प्राणा हि पाण्डवाः ॥१५॥**

जो द्वेष रखता है उसका अन्न नहीं खाना चाहिए और द्वेष रखनेवाले को खिलाना भी नहीं चाहिए। राजन्! तुम पाण्डवों से द्वेष रखते हो और पाण्डव मेरे प्राण हैं।

**सर्वमेतन्न भोक्तव्यमन्नं दुष्टाभिसंहितम्।**
**क्षत्तुरेकस्य भोक्तव्यमिति मे धीयते मतिः ॥१६॥**

तुम्हारा यह सारा अन्न दुर्भावना से दूषित है, अतः मेरे खाने के योग्य नहीं है। मेरे लिए तो यहाँ केवल विदुर का ही अन्न खाने योग्य है, यह मेरी दृढ़ धारणा है।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्त्वा महाबाहुर्दुर्योधनममर्षणम्।**
**निर्याय च ययौ वेश्म विदुरस्य महात्मनः ॥१७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—अमर्षशील [क्रोधी] दुर्योधन से ऐसा कहकर महाबाहु श्रीकृष्ण उसके भवन से निकलकर [ठहरने के लिए] महात्मा विदुर के भवन में चले गये।

**ततः क्षत्तान्नपानानि शुचीनि गुणवन्ति च।**
**उपाहरदनेकानि केशवाय महात्मने ॥१८॥**

वहाँ पधारने पर विदुरजी ने अनेक प्रकार के पवित्र तथा गुणकारक अन्न-पान महात्मा केशव को अर्पित किये।

**तं भुक्तवन्तमाश्वस्तं निशायां विदुरोऽब्रवीत्।**
**नेदं सम्यग् व्यवसितं केशवागमनं तव ॥१९॥**

रात्रि में जब श्रीकृष्ण भोजन करके विश्राम कर रहे थे तब विदुरजी ने उनसे कहा—"केशव! आपने जो यहाँ आने का विचार किया, मेरे सम्मति में यह ठीक नहीं हुआ।

**अर्थधर्मातिगो मन्दः संरम्भी च जनार्दन।**
**मानघ्नो मानकामश्च वृद्धानां शासनातिगः ॥२०॥**

"जनार्दन! मन्दमति दुर्योधन धर्म और अर्थ दोनों का उल्लंघन कर चुका है। वह क्रोधी, दूसरों के सम्मान को नष्ट करनेवाला तथा स्वयं सम्मान चाहनेवाला है। उसने वृद्ध गुरुजनों का आदेश भी ठुकरा दिया है।

**एकः कर्णः पराञ्जेतुं समर्थ इति निश्चितम्।**
**धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेः स शमं नोपयास्यति ॥२१॥**

"दुर्बुद्धि दुर्योधन को इस बात का दृढ़ विश्वास है कि अकेला कर्ण ही शत्रुओं को जीतने में समर्थ है, अतः वह सन्धि कदापि नहीं करेगा।

**यत्र सूक्तं दुरुक्तं च समं स्यान्मधुसूदन।**
**न तत्र प्रलपेत् प्राज्ञो बधिरेष्विव गायनः ॥२२॥**

"मधुसूदन! जहाँ अच्छी और बुरी बातों का

---

१. श्रीकृष्ण का यह उत्तर वेद की मर्यादा के अनुकूल है। वेद में कहा है—

न द्विषन्नश्नीयान्न द्विषतोन्नमश्नीयात्।
—अथर्व० ६।१।२४

मनुष्य को चाहिए कि वह अन्न की निन्दा करते हुए भोजन न करे और द्वेष रखनेवाले दाता का अन्न भी न खाए।

एक-सा ही परिणाम हो वहाँ बुद्धिमान् को कुछ न कहना चाहिए, क्योंकि वहाँ कुछ कहना बहरों के आगे गाने के समान व्यर्थ ही है।

**सोऽयं बलस्थो मूढश्च न करिष्यति ते वचः ।**
**तस्मिन्निरर्थकं वाक्यमुक्तं सम्पत्स्यते तव ॥२३॥**

"मूढ़ दुर्योधन सेना एकत्र करके अपने को शक्तिशाली समझता है। वह आपकी बात नहीं मानेगा। उसके प्रति कहा हुआ आपका प्रत्येक वाक्य निरर्थक होगा।

**तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां पापचेतसाम् ।**
**तव मध्यावतरणं मम कृष्ण न रोचते ॥२४॥**
**दुर्बुद्धीनामशिष्टानां बहूनां दुष्टचेतसाम् ।**
**प्रतीपं वचनं मध्ये तव कृष्ण न रोचते ॥२५॥**

"श्रीकृष्ण ! वे सभी पापपूर्ण विचार लेकर बैठे हुए हैं, अतः आपका उनके मध्य में जाना मुझे अच्छा प्रतीत नहीं होता। वे सब-के-सब दुर्बुद्धि, अशिष्ट और दुष्टचित्त हैं। उनकी संख्या भी अधिक है। श्रीकृष्ण ! आप उनके बीच में जाकर कोई प्रतिकूल बात कहें यह मुझे उचित नहीं जान पड़ता।

**अनुपासितवृद्धत्वाच्छ्रियो दर्पाच्च मोहितः ।**
**वयोदर्पादमर्षाच्च न ते श्रेयो ग्रहीष्यति ॥२६॥**

"दुर्योधन ने कभी वृद्ध पुरुषों का सेवन नहीं किया है। वह राजलक्ष्मी के मद में चूर है। उसे अपनी युवावस्था पर गर्व है और वह पाण्डवों के प्रति सदा अमर्ष में भरा रहता है, अतः आपकी हितकर बात भी वह नहीं मानेगा।

**सर्वथा त्वं महाबाहो देवैरपि दुरुत्सहः ।**
**प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जानामि तव शत्रुहन् ॥२७॥**
**या मे प्रीतिः पाण्डवेषु भूयः सा त्वयि माधव ।**
**प्रेम्णा च बहुमानाच्च सौहृदाच्च ब्रवीम्यहम् ॥२८॥**

"शत्रुहन्ता महाबाहु श्रीकृष्ण ! यद्यपि सम्पूर्ण देवता भी आपके सामने नहीं टिक सकते तथा आपका जो प्रभाव, पुरुषार्थ और बुद्धिबल है, उसे भी मैं जानता हूँ, तथापि माधव ! पाण्डवों पर मेरा जो प्रेम है, वही और उससे भी बढ़कर आपके प्रति है। अतः प्रेम, अत्यधिक आदर और सौहार्द से प्रेरित होकर ही मैं यह बात कह रहा हूँ।"

कृष्ण उवाच

**सत्यं प्राप्तं च युक्तं वाप्येवमेव यथाऽऽत्थ माम् ।**
**शृणुष्वागमने हेतुं विदुरावहितो भव ॥२९॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—विदुरजी ! आपने मुझसे जो कुछ कहा है, वही सत्य, समयानुकूल और युक्तिसंगत है, फिर भी मेरे यहाँ आने का जो कारण है, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनिए।

**दौरात्म्यं धार्तराष्ट्रस्य क्षत्रियाणां च वैरताम् ।**
**सर्वमेतदहं जानन् क्षत्तः प्राप्तोऽद्य कौरवान् ॥३०॥**

विदुरजी ! मैं धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन की दुष्टता तथा क्षत्रिय योद्धाओं का वैरभाव—इन सब बातों को जानकर ही आज कौरवों के पास आया हूँ।

**पर्यस्तां पृथिवीं सर्वां साश्वां सरथकुञ्जराम् ।**
**यो मोचयेन्मृत्युपाशात् प्राप्नुयाद् धर्ममुत्तमम् ॥३१॥**

आज अश्व, रथ और हाथियोंसहित यह सम्पूर्ण पृथिवी विनष्ट होना चाहती है। जो इसे मृत्युपाश से छुड़ाने का प्रयत्न करेगा, उसे ही उत्तम धर्म प्राप्त होगा।

**धर्मकार्यं यतञ्छक्त्या नो चेत् प्राप्नोति मानवः । □**
**प्राप्तो भवति तत् पुण्यमत्र मे नास्ति संशयः ॥३२॥**

मनुष्य अपनी सारी शक्ति लगाकर किसी धर्मकार्य को करने का प्रयत्न करते हुए भी यदि उसमें सफलता प्राप्त न कर सके, तो भी उसे उसका पुण्य तो अवश्य ही प्राप्त होता है, इस विषय में मुझे किञ्चित् भी सन्देह नहीं है।

**मनसा चिन्तयन्पापं कर्मणा नातिरोचयन् । □**
**न प्राप्नोति फलं तस्येत्येवं धर्मविदो विदुः ॥३३॥**

इसी प्रकार यदि मनुष्य मन से पाप का चिन्तन करते हुए भी उसमें रुचि न होने के कारण उसे क्रिया द्वारा सम्पादित न करे, तो उसे उस पाप का फल नहीं मिलता ऐसा धर्मज्ञ पुरुष जानते हैं।

**सोऽहं यतिष्ये प्रशमं क्षत्तः कर्तुममायया ।**
**कुरूणां सृञ्जयानां च संग्रामे विनशिष्यताम् ॥३४॥**

अतः विदुरजी ! मैं युद्ध में मर-मिटने को उद्यत हुए कौरवों तथा सृञ्जयों में सन्धि कराने का निश्छल भाव से प्रयत्न करूँगा।

**हिते प्रयतमानं मां शङ्केद् दुर्योधनो यदि ।**
**हृदयस्य च मे प्रीतिरानृण्यं च भविष्यति ॥३५॥**

हितसाधन के लिए प्रयत्न करने पर भी यदि दुर्योधन मुझपर शंका करेगा, तो भी मेरे मन को तो प्रसन्नता ही होगी तथा मैं अपने कर्तव्य के भार से उऋण हो जाऊँगा ।

**ज्ञातीनां हि मिथो भेदे यन्मित्रं नाभिपद्यते ।□**
**सर्वयत्नेन माध्यस्थ्यं न तन्मित्रं विदुर्बुधाः ॥३६॥**

भाई-बन्धुओं में परस्पर फूट पड़ने का अवसर उपस्थित होने पर जो मित्र पूर्ण प्रयत्न करके उनमें मेल कराने के लिए मध्यस्थता नहीं करता, विद्वान् लोग उसे मित्र नहीं मानते ।

**न मां ब्रूयुरधर्मिष्ठा मूढा ह्यसुहृदस्तथा ।**
**शक्तो नावारयत् कृष्णः संरब्धान् कुरुपाण्डवान् ॥३७॥**

संसार के पापी, मूढ़ और शत्रुभाव रखनेवाले लोग मेरे विषय में यह न कहें कि कृष्ण ने समर्थ होते हुए भी क्रोध से भरे हुए कौरव-पाण्डवों को युद्ध से नहीं रोका [इसलिए भी मैं सन्धि कराने का प्रयत्न करूँगा] ।

**मम धर्मार्थयुक्तं हि श्रुत्वा वाक्यमनामयम् ।**
**न चेदादास्यते बालो दिष्टस्य वशमेष्यति ॥३८॥**

यदि मूर्ख दुर्योधन मेरे कष्टनिवारक और धर्म तथा अर्थ के अनुकूल वचनों को सुनकर भी उन्हें ग्रहण नहीं करेगा तो उसे दुर्भाग्य के अधीन होना पड़ेगा ।

वैशम्पायन उवाच

**इत्येवमुक्त्वा वचनं वृष्णीनामृषभस्तदा ।**
**शयने सुखसंस्पर्शे शिश्ये यदुसुखावहः ॥३९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! यदुकुलनन्दन वृष्णिवंशभूषण श्रीकृष्ण विदुरजी से उपर्युक्त बात कहकर स्पर्शमात्र से सुख देनेवाली शय्या पर सो गये ।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥**

# चतुर्विंशोऽध्यायः

## श्रीकृष्ण का कौरवसभा में गमन तथा सभा में उनका प्रभावशाली भाषण

वैशम्पायन उवाच

**तत उत्थाय दाशार्ह ऋषभः सर्वसात्वताम् ।**
**सर्वमावश्यकं चक्रे प्रातः कार्यं जनार्दनः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—रात्रि में सुखपूर्वक सोकर यदुवंश-शिरोमणि दशार्हनन्दन श्रीकृष्ण ने शय्या से उठकर प्रातःकाल का समस्त आवश्यक कर्म क्रमशः सम्पन्न किया ।

**कृतोदकानुजप्यः स हुताग्निः समलंकृतः ।**
**ततश्चादित्यमुद्यन्तमुपातिष्ठत माधवः ॥२॥**

स्नान, सन्ध्या तथा जप करने के पश्चात् अग्निहोत्र करके श्रीकृष्ण ने समलंकृत होकर उदयकाल में सूर्य का उपस्थान किया ।

**ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।**
**हयोत्तमयुजा शीघ्रमुपातिष्ठत दारुकः ॥३॥**

तब छोटे-छोटे घुंघुरुओं से विभूषित तथा उत्तम घोड़ों से जुते हुए चमकीले विशाल रथ के साथ दारुक शीघ्र ही श्रीकृष्ण की सेवा में उपस्थित हुआ ।

**तमुपस्थितमाज्ञाय रथं दिव्यं महामनाः ।**
**आतिष्ठत रथं शौरिः सर्वयादवनन्दनः ॥४॥**

उस दिव्य-रथ को उपस्थित जान समस्त यादवों को आनन्द प्रदान करनेवाले महामना शूरनन्दन श्रीकृष्ण उस रथ पर आरूढ़ हुए ।

**अन्वारुरोह दाशार्हं विदुरः सर्वधर्मवित् ।**
**सर्वप्राणभृतां श्रेष्ठं सर्वबुद्धिमतां वरम् ॥५॥**

समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण बुद्धिमानों में उत्तम दशार्हनन्दन श्रीकृष्ण के पश्चात् समस्त धर्मों के ज्ञाता विदुरजी भी उसी रथ पर जा बैठे ।

**सात्यकिः कृतवर्मा च वृष्णीनां चापरे रथाः ।**
**पृष्ठतोऽनुययुः कृष्णं गजैरश्वैः रथैरपि ॥६॥**

सात्यकि, कृतवर्मा तथा वृष्णिवंश के दूसरे रथी भी हाथी, घोड़ों तथा रथों पर बैठकर श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे गये ।

**आसाद्य तु सभाद्वारमृषभः सर्वसात्वताम् ।**
**अवतीर्य रथाच्छौरिः प्रविवेश सभां ततः ॥७॥**

सभा के द्वार पर पहुँचकर सर्वयादव-शिरोमणि श्रीकृष्ण ने रथ से उतरकर कौरवसभा में प्रवेश किया।

**पाणौ गृहीत्वा विदुरं सात्यकिं च महायशाः।**
**ज्योतींष्यादित्यवद्राजन्कुरून्प्राच्छादयञ्छ्रिया ॥८॥**

राजन्! जैसे सूर्य अपनी प्रभा से आकाश के तारों को तिरोहित कर देता है, उसी प्रकार महायशस्वी श्रीकृष्ण भी अपनी दिव्य कान्ति से कौरवों को आच्छादित करते हुए विदुर और सात्यकि का हाथ पकड़े हुए सभाभवन में आये।

**धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य भीष्मद्रोणादयस्ततः।**
**आसनेभ्योऽचलन् सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम् ॥९॥**

उस समय भीष्म और द्रोण आदि सबलोग श्रीकृष्ण का सम्मान करने के लिए राजा धृतराष्ट्र को आगे करके अपने-अपने आसनों से उठकर आगे बढ़े।

**आसनं सर्वतोभद्रं जाम्बूनदपरिष्कृतम्।**
**कृष्णार्थे कल्पितं तत्र धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥१०॥**

राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा से वहाँ श्रीकृष्ण के लिए सुवर्ण-मण्डित सर्वतोभद्र नामक सिंहासन रखा गया था।

**तत्र केशवमानर्चुः सम्यगभ्यागतं सभाम्।**
**राजानः पार्थिवाः सर्वे कुरवश्च जनार्दनम् ॥११॥**

उस सभा में विधिवत् पधारे हुए जनार्दन श्रीकृष्ण का भूमण्डल के राजाओं और सभी कौरवों ने आदर-सत्कार किया।

**चिरस्य दृष्ट्वा दाशार्हं राजानः सर्व एव ते।**
**अमृतस्येव नातृप्यन् प्रेक्षमाणा जनार्दनम् ॥१२॥**

सब भूपाल दीर्घकाल के पश्चात् दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्ण को देखकर उन्हीं की ओर टकटकी लगाये रहे। जैसे अमृतपान से तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार उनके दर्शनों से उन्हें तृप्ति नहीं हो रही थी।

**तेष्वासीनेषु सर्वेषु तूष्णीम्भूतेषु राजसु।**
**वाक्यमभ्याददे कृष्णः सुदंष्ट्रो दुन्दुभिस्वनः ॥१३॥**

जब सभा में सब राजा मौन होकर बैठ गये तब सुन्दर दन्तावलि से सुशोभित तथा दुन्दुभि के समान गम्भीर स्वरवाले श्रीकृष्ण ने बोलना आरम्भ किया।

कृष्ण उवाच

**कुरूणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत।**
**अप्रणाशेन वीराणामेतद् याचितुमागतः ॥१४॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—भरतनन्दन! 'क्षत्रिय वीरों का संहार हुए बिना ही कौरव और पाण्डवों में शान्ति स्थापित हो जाए'—मैं आपसे यह प्रार्थना करने के लिए यहाँ आया हूँ।

**राजन् नान्यत् प्रवक्तव्यं तव नैःश्रेयसं वचः।**
**विदितं ह्येव ते सर्वं वेदितव्यमरिन्दम ॥१५॥**

शत्रुदमन नरेश! मुझे इसके अतिरिक्त और कोई कल्याणकारक बात आपसे नहीं कहनी है, क्योंकि जानने योग्य जितनी बातें हैं, वे सब आपको विदित ही हैं।

**इदं ह्यद्य कुलं श्रेष्ठं सर्वराजसु पार्थिव।**
**श्रुतवृत्तोपसम्पन्नं सर्वैः समुदितं गुणैः ॥१६॥**

भूपाल! इस समय समस्त राजाओं में यह कुरुवंश ही सर्वश्रेष्ठ है। इसमें शास्त्र एवं सदाचार का पूर्णरूप से पालन किया जाता है। यह कौरवकुल सम्पूर्ण सद्गुणों से सम्पन्न है।

**कृपानुकम्पा कारुण्यमानृशंस्यं च भारत।**
**तथार्जवं क्षमा सत्यं कुरुष्वेतद् विशिष्यते ॥१७॥**

हे भारत! कुरुवंशियों में कृपा, अनुकम्पा, करुणा, अनृशंसता [मृदुता], सरलता, क्षमा, और सत्य—ये सद्गुण अन्य राजवंशों की अपेक्षा अधिक पाये जाते हैं।

**तस्मिन्नेवंविधे राजन् कुले महति तिष्ठति।**
**त्वन्निमित्तं विशेषेण नेह युक्तमसाम्प्रतम् ॥१८॥**

राजन्! ऐसे उत्तम गुण-सम्पन्न तथा अत्यन्त प्रतिष्ठित कुल के होते हुए भी यदि इसमें आपके कारण कोई अनुचित कार्य हो, तो यह अनुचित है।

**ते पुत्रास्तव कौरव्य दुर्योधनपुरोगमाः।**
**धर्मार्थौ पृष्ठतः कृत्वा प्रचरन्ति नृशंसवत् ॥१९॥**

नरेश! दुर्योधन आदि आपके पुत्र धर्म और अर्थ का परित्याग करके क्रूर मनुष्यों के समान आचरण कर रहे हैं।

**अशिष्टा गतमर्यादा लोभेन हृतचेतसः।**
**स्वेषु बन्धुषु मुख्येषु तद् वेत्थ पुरुषर्षभ ॥२०॥**

पुरुष-शिरोमणे ! ये अपने ही श्रेष्ठ बन्धुओं के साथ अशिष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं। लोभ ने इनके हृदयों को ऐसा वशीभूत कर लिया है कि इन्होंने धर्म की सब मर्यादाएँ तोड़ दी हैं। इस बात को आप भली-भाँति जानते हैं।

**सेयमापन्महाघोरा कुरुष्वेव समुत्थिता।**
**उपेक्ष्यमाणा कौरव्य पृथिवीं घातयिष्यति ॥२१॥**

कुरुश्रेष्ठ ! इस समय यह भयंकर आपत्ति [विपत्ति] कौरवों में ही प्रकट हुई है। यदि इसकी उपेक्षा की गई तो यह सारे भूमण्डल को नष्ट कर डालेगी।

**शक्या चेयं शमयितुं त्वं चेदिच्छसि भारत।**
**न दुष्करो ह्यत्र शमो मतो मे भरतर्षभ ॥२२॥**

हे भारत ! यदि आप चाहें तो यह भीषण संकट अब भी टाला जा सकता है। भरतश्रेष्ठ ! इन दोनों पक्षों में शान्ति स्थापित होना मैं कठिन कार्य नहीं मानता हूँ।

**त्वय्याधीनः शमो राजन् मयि चैव विशाम्पते।**
**पुत्रान् स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्यहं परान् ॥२३॥**

प्रजेश ! इस समय इन दोनों पक्षों में सन्धि कराना आपके और मेरे अधीन है। आप अपने पुत्रों को मर्यादा में रखिए और मैं पाण्डवों को नियन्त्रण में रखूंगा।

**संयुगे वै महाराज दृश्यते सुमहान् क्षयः।**
**क्षये चोभयतो राजन् धर्मं कमनुपश्यसि ॥२४॥**

महाराज ! युद्ध छिड़ जाने पर तो महाविनाश ही दिखाई देता है। राजन् ! दोनों पक्षों का विनाश कराने में आप कौन-सा धर्म देखते हैं ?

**समवेताः पृथिव्यां हि राजानो राजसत्तम।**
**अमर्षवशमापन्ना नाशयेयुरिमाः प्रजाः ॥२५॥**

नृपश्रेष्ठ ! भूमण्डल के समस्त राजा यहाँ एकत्र हो अमर्ष में भरकर इन प्रजाओं का नाश कर डालेंगे।

**शुक्ला वदान्या ह्रीमन्त आर्याः पुण्याभिजातयः।**
**अन्योन्यसचिवा राजन् पाहि तान्महतो भयात् ॥२६॥**

राजन् ! ये सभी नरेश शुद्ध, उदार, लज्जाशील, श्रेष्ठ, पवित्र कुलों में उत्पन्न तथा एक-दूसरे के सहायक हैं। आप इन सबकी महान् भय से रक्षा कीजिए।

**शिवेनेमे महीपालाः समागम्य परस्परम्।**
**सह भुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथागृहम् ॥२७॥**

आप ऐसा प्रयत्न कीजिए, जिससे ये सभी भूपाल परस्पर मिलकर तथा एक-साथ खा-पीकर सकुशल अपने-अपने घरों को लौट जाएँ।

**हार्दं यत्पाण्डवेष्वासीत् प्राप्तेऽस्मिन्नायुषः क्षये।**
**तदेव ते भवत्वद्य संधत्स्व भरतर्षभ ॥२८॥**

भरतश्रेष्ठ ! अब आपकी आयु भी क्षीण हो चली है। इस वृद्धावस्था में आपका पाण्डवों पर वैसा ही स्नेह बना रहे, जैसा पहले था, अतः सन्धि कर लीजिए।

**बाला विहीनाः पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिताः।**
**तान् पालय यथान्यायं पुत्रांश्च भरतर्षभ ॥२९॥**

भरतकुलभूषण ! पाण्डव बाल्यावस्था में ही पिता से विहीन हो गये थे। उस समय आपने ही उनका लालन-पालन किया, अतः अब भी आप ही उनका और अपने पुत्रों का न्यायपूर्वक पालन कीजिए।

**आहुस्त्वां पाण्डवा राजन्नभिवाद्य प्रसाद्य च।**
**भवतः शासनाद् दुःखमनुभूतं सहानुगैः ॥३०॥**

राजन् ! पाण्डवों ने आपको प्रणाम करके प्रसन्न करते हुए यह सन्देश कहलाया है—"तात ! आपकी आज्ञा से अनुचरोंसहित हमने भीषण कष्ट सहन किया है।

**द्वादशेमानि वर्षाणि वने निर्व्युषितानि नः।**
**त्रयोदशं तथाज्ञातैः सजने परिवत्सरम् ॥३१॥**

"बारह वर्षों तक हमने निर्जन वन में निवास किया है और तेरहवाँ वर्ष जन-समुदाय से भरे हुए नगर में अज्ञात रहकर व्यतीत किया है।

**स्थाता नः समये तस्मिन् पितेति कृतनिश्चयाः।**
**नाहास्म समयं तात तच्च नो ब्राह्मणा विदुः ॥३२॥**

"तात ! आप हमारे पितृ-समान हैं, अतः हमारे विषय में की हुई अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहेंगे [वन-वास से लौटने पर हमारा राज्य लौटा देंगे] ऐसा निश्चय करके ही हमने वनवास और अज्ञातवास की

शर्त को कभी नहीं तोड़ा, यह बात हमारे साथ रहनेवाले ब्राह्मण जानते हैं।

**तस्मिन् नः समये तिष्ठ स्थितानां भरतर्षभ।**
**नित्यं संक्लेशिता राजन् स्वराज्यांशं लभेमहि ॥३३॥**

"भरतश्रेष्ठ! हम उस प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे हैं, आप भी हमारे साथ की हुई अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहें। राजन्! हमने सदा क्लेश उठाया है। अब हमें हमारा राज्यभाग प्राप्त हो जाना चाहिए।"

**आहुश्चेमां परिषदं पुत्रास्ते भरतर्षभ।**
**धर्मज्ञेषु सभासत्सु नेह युक्तमसाम्प्रतम् ॥३४॥**

भरतकुलतिलक! आपके पुत्र पाण्डवों ने इस सभा के लिए यह सन्देश दिया है—"आप समस्त सभासद्गण धर्म के ज्ञाता हैं। आपके रहते हुए यहाँ कोई अयोग्य कार्य हो, यह उचित नहीं है।

**यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च। □**
**हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥३५॥**

"जहाँ सभासदों के देखते-देखते अधर्म के द्वारा धर्म का और असत्य द्वारा सत्य का हनन होता है, वहाँ वे सभासद् नष्ट हुए माने जाते हैं।

**विद्धो धर्मो ह्यधर्मेण सभां यत्र प्रपद्यते। □**
**न चास्य शल्यं कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥३६॥**

"जिस सभा में अधर्म से विद्ध [बिंधा] हुआ धर्म प्रवेश करता है और सभासद्गण उस अधर्मरूपी काँटे को काटकर निकाल नहीं देते तो उस काँटे से सभासद् ही विद्ध होते हैं [सभासदों को ही अधर्म से लिप्त होना पड़ता है]।"

**ये धर्ममनुपश्यन्तस्तूष्णीं ध्यायन्त आसते।**
**ते सत्यमाहुर्धर्म्यं च न्याय्यं च भरतर्षभ ॥३७॥**

भरतश्रेष्ठ! जो पाण्डव सदा धर्म की ओर ही दृष्टि रखते हैं तथा उसी का विचार करके चुपचाप बैठे हैं, उनका आपसे राज्य लौटाने का अनुरोध सत्य, धर्मसम्मत और न्यायसंगत है।

**पित्र्यं तेभ्यः प्रदायांशं पाण्डवेभ्यो यथोचितम्।**
**ततः सपुत्रः सिद्धार्थो भुङ्क्ष्व भोगान् परन्तप ॥३८॥**

परंतप! पाण्डवों को उनका यथोचित पैतृक राज्यभाग देकर आप भी अपने पुत्रों के साथ सफलमनोरथ हो, मनोवाञ्छित भोग भोगिए।

**अहं तु तव तेषां च श्रेय इच्छामि भारत।**
**धर्मादर्थात्सुखाच्चैव मा राजन् नीनशः प्रजाः ॥३९॥**
**अनर्थमर्थं मन्वानोऽप्यर्थं चानर्थमात्मनः।**
**लोभेऽतिप्रसृतान् पुत्रान् निगृह्णीष्व विशाम्पते ॥४०॥**

हे भारत! मैं तो आप और पाण्डव—दोनों का कल्याण चाहता हूँ। राजन्! आप समस्त प्रजा को धर्म, अर्थ और सुख से वञ्चित मत कीजिए। इस समय आप अनर्थ को ही अर्थ तथा अर्थ को ही अपने लिए अनर्थ मान रहे हैं। भूपाल! आपके पुत्र लोभ में अत्यन्त आसक्त हो गये हैं, उन्हें वश में कीजिए।

**स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिन्दमाः।**
**यत् ते पथ्यतमं राजँस्तस्मिंस्तिष्ठ परन्तप ॥४१॥**

राजन्! शत्रुओं का दमन करनेवाले कुन्तीपुत्र आपकी सेवा के लिए भी प्रस्तुत [तैयार] हैं तथा युद्ध के लिए भी सन्नद्ध हैं। परन्तप! इनमें से जो आपके लिए हितकर जान पड़े, उसी मार्ग का अवलम्बन लीजिए।

वैशम्पायन उवाच

**ततोऽभ्यावृत्य वार्ष्णेयो दुर्योधनममर्षणम्।**
**अब्रवीन्मधुरां वाचं सर्वधर्मार्थतत्त्ववित् ॥४२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—धृतराष्ट्र और सभासदों से इतना कहकर सम्पूर्ण धर्म और अर्थ के तत्त्व को जाननेवाले वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण अमर्षशील दुर्योधन की ओर घूमकर मधुरवाणी में उससे बोले—

कृष्ण उवाच

**दुर्योधन निबोधेदं मद्वाक्यं कुरुसत्तम।**
**शर्मार्थं ते विशेषेण सानुबन्धस्य भारत ॥४३॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन! तुम मेरी यह बात सुनो। हे भारत! मैं विशेषतः सगे-सम्बन्धियों सहित तुम्हारे कल्याण के लिए तुम्हें कुछ परामर्श दे रहा हूँ।

**महाप्राज्ञकुले जातः साध्वेतत् कर्तुमर्हसि।**
**श्रुतवृत्तोपसम्पन्नः सर्वैः समुदितो गुणैः ॥४४॥**

तुम महाबुद्धिमान् पुरुषों के कुल में उत्पन्न हुए हो। तुम स्वयं भी शास्त्रज्ञान और सुचरित्र से सम्पन्न हो। तुममें सभी उत्तम गुण विद्यमान हैं, अतः तुम्हें मेरा सत्परामर्श मानना चाहिए।

**प्राज्ञैः शूरैर्महोत्साहैरात्मवद्भिर्बहुश्रुतैः ।**
**संधत्स्व पुरुषव्याघ्र पाण्डवैर्भरतर्षभ ॥४५॥**

भरतकुलभूषण पुरुषसिंह ! तुम ज्ञानी, परम-उत्साही, शूरवीर, मनस्वी तथा अनेक शास्त्रों के ज्ञाता पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो ।

**रोचते ते पितुस्तात पाण्डवैः सह समागमः ।**
**सामात्यस्य कुरुश्रेष्ठ तत् तुभ्यं तात रोचताम् ॥४६॥**

तात ! मन्त्रियोंसहित तुम्हारे पिता को पाण्डवों के साथ सन्धि कर लेना ही अच्छा जान पड़ता है । कुरुश्रेष्ठ ! यही तुम्हें भी पसन्द आना चाहिए ।

**जन्मप्रभृति कौन्तेया नित्यं विनिकृतास्त्वया ।**
**न च ते जातु कुप्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥४७॥**

तुमने जन्म से ही कुन्ती के पुत्रों के साथ सदा शठतापूर्ण व्यवहार किया है परन्तु वे कभी कुपित नहीं हुए, क्योंकि पाण्डव धर्मात्मा हैं ।

**आत्मानं तक्षति ह्येष वनं परशुना यथा ।**
**यः सम्यग्वर्तमानेषु मिथ्या राजन् प्रवर्तते ॥४८॥**

राजन् ! जो सद्व्यवहार करनेवाले सत्पुरुषों के साथ दुर्व्यवहार करता है, वह कुल्हाड़ी से जंगल की भाँति उस दुर्व्यवहार से अपने-आपको ही काटता है ।

**दुःशासने दुर्विषहे कर्णे वा चापि सौबले ।**
**एतेष्वैश्वर्यमाधाय भूतिमिच्छसि भारत ॥४९॥**

हे भारत ! तुम दुःशासन, दुर्विषह, कर्ण और शकुनि—इन सबपर अपने ऐश्वर्य का भार रखकर उन्नति की इच्छा रखते हो ?

**न चैते तव पर्याप्ता ज्ञाने धर्मार्थयोस्तथा ।**
**विक्रमे चाप्यपर्याप्ताः पाण्डवान् प्रति भारत ॥५०॥**

भरतनन्दन ! ये तुम्हें ज्ञान, धर्म तथा अर्थ की प्राप्ति कराने में समर्थ नहीं हैं और पाण्डवों के साथ पराक्रम प्रकट करने में भी सर्वथा असमर्थ हैं ।

**न हीमे सर्वराजानः पर्याप्ताः सहितास्त्वया ।**
**क्रुद्धस्य भीमसेनस्य प्रेक्षितुं मुखमाहवे ॥५१॥**

तुम्हारे सहित ये समस्त भूपाल भी युद्ध में क्रुद्ध हुए भीमसेन के मुख की ओर आँख उठाकर देख सकने में भी असमर्थ हैं ।

**अयं भीष्मस्तथा द्रोणः कर्णश्चायं तथा कृपः ।**
**अशक्ताः सर्व एवैते प्रतियोद्धुं धनञ्जयम् ॥५२॥**

यह भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा कृपाचार्य—ये सब मिलकर भी अर्जुन का सामना करने में असमर्थ हैं ।

**अजेयो ह्यर्जुनः संख्ये सर्वैरपि सुरासुरैः ।**
**मानुषैरपि गन्धर्वैर्मा युद्धे चेत आधिथाः ॥५३॥**

सम्पूर्ण देवता और असुर भी युद्ध में अर्जुन को जीत नहीं सकते । वे समस्त मनुष्यों और गन्धर्वों द्वारा भी अजेय हैं, अतः तुम युद्ध का विचार त्याग दो ।

**पश्य पुत्रांस्तथा भ्रातॄञ्ज्ञातीन् सम्बन्धिनस्तथा ।**
**त्वत् कृते न विनश्येयुरिमे भरतसत्तमाः ॥५४**

दुर्योधन ! अपने इन पुत्रों, भाइयों, कुटुम्बी-जनों तथा सगे-सम्बन्धियों की ओर तो देखो । ये श्रेष्ठ भरतवंशी तुम्हारे कारण नष्ट न हो जाएँ ।

**अस्तु शेषं कौरवाणां मा पराभूदिदं कुलम् ।**
**कुलघ्न इति नोच्येथा नष्टकीर्तिर्नराधिप ॥५५॥**

राजन् ! कौरवकुल बचा रहे, इस कुल का पराभव न हो और तुम भी अपनी कीर्ति को नष्ट करके कुलघाती न कहलाओ ।

**त्वामेव स्थापयिष्यन्ति यौवराज्ये महारथाः ।**
**महाराज्येऽपि पितरं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥५६॥**

महारथी पाण्डव तुम्हें ही युवराज के पद पर अभिषित करेंगे और तुम्हारे पिता राजा धृतराष्ट्र को महाराज के पद पर बनाये रखेंगे ।

**मा तात श्रियमायान्तीमवमंस्थाः समुद्यताम् ।**
**अर्धं प्रदाय पार्थेभ्यो महतीं श्रियमाप्नुहि ॥५७॥**

तात ! अपने घर में आने के लिए उद्यत राज्य-लक्ष्मी का तिरस्कार मत करो । कुन्ती के पुत्रों को आधी राज्यलक्ष्मी [आधा राज] देकर स्वयं विशाल सम्पत्ति का उपभोग करो ।

**पाण्डवैः संशमं कृत्वा कृत्वा च सुहृदां वचः ।**
**सम्प्रीयमाणो मित्रैश्च चिरं भद्राण्यवाप्स्यसि ॥५८॥**

पाण्डवों के साथ सन्धि करके तथा अपने हितैषी सुहृदों की बात मानकर मित्रों के साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए तुम चिरकाल तक कल्याण के भागी बने रहोगे ।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥**

# पञ्चविंशोऽध्यायः

**भीष्म, द्रोण और विदुर का दुर्योधन को समझाना, दुर्योधन का पाण्डवों को राज्य न देने का निश्चय, श्रीकृष्ण का दुर्योधन को फटकारना, दुर्योधन का उन्हें कैद करने की सम्मति देना**

वैशम्पायन उवाच

**ततः शान्तनवो भीष्मो दुर्योधनममर्षणम् ।**
**केशवस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच भरतर्षभ ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—भरतश्रेष्ठ जनमेजय ! श्रीकृष्ण का पूर्वोक्त वचन सुनकर शान्तनुनन्दन भीष्म ने ईर्ष्या और क्रोध में भरे रहनेवाले दुर्योधन से इस प्रकार कहा—

**कृष्णेन वाक्यमुक्तोऽसि सुहृदां शममिच्छता ।**
**अन्वपद्यस्व तत् तात मा मन्युवशमन्वगाः ॥२॥**

"तात ! श्रीकृष्ण ने सुहृदों में परस्पर शान्ति बनाये रखने की इच्छा से जो बात कही है, उसे स्वीकार करो। क्रोध के वशीभूत मत होओ।

**अकृत्वा वचनं तात केशवस्य महात्मनः ।**
**न सुखं जातु न श्रेयः न कल्याणमवाप्स्यसि ॥३॥**

"तात ! महान्-आत्मा केशव की बात न मानने से तुम कभी सुख, सौभाग्य और कल्याण नहीं पा सकोगे।

**मा कुलघ्नः कुपुरुषो दुर्मतिः कापथं गमः ।**
**मातरं पितरं चैव मा मज्जीः शोकसागरे ॥४॥**

"कुलघाती, तथा कुपुरुष न बनो। कुबुद्धि से कलंकित होकर कुमार्ग पर मत चलो और अपने माता-पिता को शोकसागर में न डुबाओ।"

**अथ द्रोणोऽब्रवीत् तत्र दुर्योधनमिदं वचः ।**
**अनुतिष्ठ महाप्राज्ञ कृष्णभीष्मौ यदूचतुः ॥५॥**

भीष्म का कथन समाप्त होने पर द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा—"महामते ! श्रीकृष्ण और भीष्म ने जो कुछ कहा है, उसका पालन करो।

**एतच्चैव मतं सत्यं सुहृदोः कृष्णभीष्मयोः ।**
**यदि नादास्यसे तात पश्चात् तप्स्यसि भारत ॥६॥**

"तात ! भारत ! तुम्हारा वास्तविक हित चाहनेवाले श्रीकृष्ण और भीष्म का मत ही यथार्थ है। यदि तुम इसे ग्रहण नहीं करोगे तो पीछे पछताओगे।"

विदुर उवाच

**दुर्योधन न शोचामि त्वामहं भरतर्षभ ।**
**इमौ तु वृद्धौ शोचामि गान्धारीं पितरं च ते ॥७॥**

**विदुर बोले**—भरतभूषण दुर्योधन ! मैं तुम्हारे लिए शोक नहीं करता। मुझे तो तुम्हारे इन वृद्ध माता-पिता गान्धारी और धृतराष्ट्र के लिए भारी शोक हो रहा है।

**यावनाथौ चरिष्येते त्वया नाथेन दुर्हृदा ।**
**हतमित्रौ हतामात्यौ लूनपक्षाविवाण्डजौ ॥८॥**

क्योंकि ये दोनों तुम-जैसे सहायक के कारण मित्रों तथा मन्त्रियों के मारे जाने पर पंख कटे हुए पक्षियों की भाँति अनाथ=असहाय होकर विचरेंगे।

धृतराष्ट्र उवाच

**दुर्योधन निबोधेदं शौरिणोक्तं महात्मना ।**
**आदत्स्व शिवमत्यन्तं योगक्षेमवदव्ययम् ॥९॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—दुर्योधन ! मेरी बात पर ध्यान दो। महात्मा श्रीकृष्ण ने जो बात कही है वह अति कल्याणकारक, योगक्षेम की प्राप्ति करानेवाली और चिरकाल तक स्थिर रहनेवाली है—तुम इसे स्वीकार करो।

**वासुदेवेन तीर्थेन गच्छ तात युधिष्ठिरम् ।**
**चर स्वस्त्ययनं कृत्स्नं मा त्वं दुर्योधनातिगाः ॥१०॥**

तात ! तुम श्रीकृष्ण को मध्यस्थ बनाकर युधिष्ठिर के पास जाओ और पूर्णरूप से अपना मङ्गल सम्पादन करो। दुर्योधन ! तुम मेरी इस आज्ञा का उल्लंघन मत करो।

**शमं चेद् याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम् ।**
**त्वदर्थमभिजल्पन्तं न तवास्त्यपराभवः ॥११॥**

यदि तुम शान्ति की प्रार्थना करनेवाले श्रीकृष्ण का, जो तुम्हारे हित की बात बता रहे हैं, तिरस्कार करोगे—उनकी आज्ञा नहीं मानोगे तो तुम्हारा पराभव हुए बिना नहीं रह सकता।

वैशम्पायन उवाच

**श्रुत्वा दुर्योधनो वाक्यमप्रियं कुरुसंसदि ।**
**प्रत्युवाच महाबाहुं वासुदेवं यशस्विनम् ।।१२।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! कौरव-सभा में यह अप्रिय वचन सुनकर दुर्योधन ने यशस्वी महाबाहु वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण को यह उत्तर दिया—

दुर्योधन उवाच

**प्रसमीक्ष्य भवानेतद् वक्तुमर्हति केशव ।**
**मामेव हि विशेषेण विभाष्य परिगर्हसे ।।१३।।**

**दुर्योधन बोला**—केशव ! आपको सोच-विचारकर ऐसी बातें कहनी चाहिएँ । आप तो विशेष रूप से मुझे ही दोषी ठहराकर मेरी निन्दा कर रहे हैं ।

**भवान् क्षत्ता च राजा वाप्याचार्यो वा पितामहः ।**
**मामेव परिगर्हन्ते नान्यं कञ्चन पार्थिवम् ।।१४।।**

मैं देखता हूँ कि आप, विदुरजी, आचार्य द्रोण अथवा भीष्म पितामह—सभी लोग मुझपर ही दोषारोपण करते हैं, अन्य किसी राजा पर नहीं ।

**न चाहं लक्षये कञ्चिद् व्यभिचारमिहात्मनः ।**
**अथ सर्वे भवन्तो मां विद्विषन्ति सराजकाः ।।१५।।**

मुझे अपना कोई दोष दिखाई नहीं देता, परन्तु राजा धृतराष्ट्रसहित आप सब लोग अकारण ही मुझसे द्वेष करने लगे हैं ।

**न चाहं कञ्चिदत्यर्थमपराधमरिन्दम ।**
**विचिन्तयन् प्रपश्यामि सुसूक्ष्ममपि केशव ।।१६।।**

शत्रुदमन केशव ! मैं अत्यन्त सोच-विचारकर दृष्टि डालता हूँ, तो भी मुझे अपना कोई सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अपराध भी दिखाई नहीं देता ।

**प्रियाभ्युपगते द्यूते पाण्डवा मधुसूदन ।**
**जिताः शकुनिना राज्यं तत्र किं मम दुष्कृतम् ।।१७।।**

मधुसूदन ! पाण्डवों को जुए का खेल अति प्रिय था, इसीलिए वे उसमें प्रवृत्त हुए । फिर यदि मामा शकुनि ने उनका राज्य जीत लिया तो इसमें मेरा क्या अपराध हो गया ?

**किमस्माभिः कृतं तेषां कस्मिन् वा पुनरागसि ।**
**धार्तराष्ट्रान् जिघांसन्ति पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ।।१८।।**

हमने पाण्डवों का क्या बिगाड़ा है ? वे हमारे किस अपराध पर सृञ्जयों के साथ मिलकर हम धृतराष्ट्रपुत्रों का वध करना चाहते हैं ?

**न चापि वयमुग्रेण कर्मणा वचनेन वा ।**
**वित्रस्ताः प्रणमामहे भयादपि शतक्रतुम् ।।१९।।**

हम लोग किसी भयंकर कर्म अथवा भयानक वचन से भयभीत हो क्षत्रिय-धर्म से च्युत होकर साक्षात् इन्द्र के सम्मुख [सामने] भी नतमस्तक नहीं हो सकते ।

**न च तं कृष्ण पश्यामि क्षत्रधर्ममनुष्ठितम् ।**
**उत्सहेत युधा जेतुं यो नः शत्रुनिबर्हण ।।२०।।**

शत्रुनाशक कृष्ण ! मैं क्षत्रिय-धर्म का अनुष्ठान करनेवाले किसी भी ऐसे वीर को नहीं देखता, जो युद्ध में हम सब लोगों को जीतने का साहस कर सके ।

**न हि भीष्मकृपद्रोणाः सकर्णा मधुसूदन ।**
**देवैरपि युधा जेतुं शक्याः किमुत पाण्डवैः ।।२१।।**

मधुसूदन ! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और कर्ण को तो देवता भी युद्ध में नहीं जीत सकते, फिर पाण्डवों की तो बात ही क्या है ?

**मुख्यश्चैवैष नो धर्मः क्षत्रियाणां जनार्दन ।**
**यच्छयीमहि संग्रामे शरतल्पगता वयम् ।।२२।।**

जनार्दन ! हम क्षत्रियों का यही मुख्य=प्रधान धर्म है कि संग्राम में हमें बाण-शय्या पर सोने का अवसर प्राप्त हो ।

**कश्च जातु कुले जातः क्षत्रधर्मेण वर्तयन् ।**
**भयाद् वृत्तिं समीक्ष्यैवं प्रणमेदिह कर्हिचित् ।।२३।।**

उत्तम कुल में उत्पन्न होकर क्षत्रिय-धर्म के अनुसार जीवन-निर्वाह करनेवाला कौन ऐसा महापुरुष होगा, जो क्षत्रियोचित वृत्ति पर दृष्टि रखते हुए भयभीत होकर शत्रु के सामने मस्तक झुकाएगा ?

**उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम् ।**
**अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कर्हिचित् ।।२४।।**

वीर पुरुष को चाहिए कि वह सदा उद्योग ही करे, किसी के समक्ष झुके नहीं, क्योंकि उद्योग करना ही पुरुष का पौरुष है । वीर पुरुष असमय में नष्ट भले ही हो जाए परन्तु शत्रु के सामने मस्तक न झुकाए ।

**राज्यांशश्चाभ्यनुज्ञातो यो मे पित्रा पुराभवत् ।**
**न स लभ्यः पुनर्जातु मयि जीवति केशव ॥२५॥**

केशव ! मेरे पिताजी ने पूर्वकाल में जो राज्य-भाग मेरे अधीन कर दिया है, उसे कोई भी मेरे जीते-जी फिर कदापि नहीं पा सकता ।

**यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव ।**
**तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति ॥२६॥**

केशव ! पाण्डवों को भूमि का उतना अंश भी नहीं दिया जा सकता, जितना कि एक बारीक सूई की नोक से बिंध सकता है । [आधे राज्य या पाँच ग्रामों की तो बात ही क्या है ?]

वैशम्पायन उवाच

**ततो निशम्य दाशार्हः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।**
**दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि ॥२७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—दुर्योधन की बातें सुनकर श्रीकृष्ण के नेत्र क्रोध से लाल हो गये । फिर कुछ विचारकर उन्होंने कौरवसभा में दुर्योधन से इस प्रकार कहा—

कृष्ण उवाच

**लप्स्यसे वीरशयनं काममेतदवाप्स्यसि ।**
**स्थिरो भव सहामात्यो विमर्दो भविता महान् ॥२८॥**

**श्रीकृष्ण ने कहा**—दुर्योधन ! तुझे रणभूमि में वीरशय्या प्राप्त होगी । तेरी यह इच्छा पूर्ण होगी । तू मन्त्रियोंसहित धैर्य धारण कर । शीघ्र ही महान् नरसंहार होनेवाला है ।

**यच्चैवं मन्यसे मूढ न मे कश्चिद् व्यतिक्रमः ।**
**पाण्डवेष्विति तत् सर्वं निबोधत नराधिपाः ॥२९॥**

मूढ ! तू जो यह मानता है कि मैंने पाण्डवों के प्रति कोई अपराध नहीं किया है, तो इस सम्बन्ध में मैं सब बातें बताता हूँ । भूपालो ! आप लोग भी ध्यान देकर सुनें ।

**श्रिया संतप्यमानेन पाण्डवानां महात्मनाम् ।**
**त्वया दुर्मन्त्रितं द्यूतं सौबलेन च भारत ॥३०॥**

हे भारत ! महात्मा पाण्डवों की बढ़ती हुई समृद्धि से सन्तप्त होकर तूने ही शकुनि के साथ यह कुमन्त्रणा की थी कि पाण्डवों के साथ जुआ खेला जाए ।

**कश्चान्यो भ्रातृभार्यां वै विप्रकर्तुं तथार्हति ।**
**आनीय च सभां व्यक्तं यथोक्ता द्रौपदी त्वया ॥३१॥**

तेरे सिवा कौन ऐसा नीच होगा जो अपने बड़े भाई की पत्नी को सभा में लाकर उसके साथ वैसा अभद्र व्यवहार करेगा जैसा कि तूने द्रौपदी के प्रति स्पष्टरूप से न कहने योग्य बातें कहकर किया था ?

**सह मात्रा प्रदग्धुं तान् बालकान् वारणावते ।**
**आस्थितः परमं यत्नं न समृद्धं च तत् तव ॥३२॥**

तूने वारणावत नगर में बाल्यावस्था में पाण्डवों को उनकी मातासहित जला डालने का भारी प्रयत्न किया था, परन्तु तेरा वह उद्देश्य सफल न हो सका ।

**विषेण सर्पबन्धैश्च यतिताः पाण्डवास्त्वया ।**
**सर्वोपायैर्विनाशाय न समृद्धं च तत् तव ॥३३॥**

तूने [भीम को] विष देकर, सर्प से कटाकर तथा बँधे हुए हाथ-पैरोंसहित जल में डुबाकर पाण्डवों को नष्ट करने का प्रयत्न किया था परन्तु तेरा वह प्रयास भी सफल न हो सका ।

**एवंबुद्धिः पाण्डवेषु मिथ्यावृत्तिः सदा भवान् ।**
**कथं ते नापराधोऽस्ति पाण्डवेषु महात्मसु ॥३४॥**

ऐसे ही विचार रखकर तू पाण्डवों के प्रति सदा कपटपूर्ण बर्ताव करता आया है, फिर कैसे मान लिया जाए कि महात्मा पाण्डवों के प्रति तूने कोई अपराध नहीं किया ?

**यच्चैभ्यो याचमानेभ्यः पित्र्यमंशं न दित्ससि ।**
**तच्च पाप प्रदातासि भ्रष्टैश्वर्यो निपातितः ॥३५॥**

पापी ! तू याचना करने पर भी पाण्डवों को जो पैतृक राज्य-भाग नहीं देना चाहता, वही तुझे उस समय देना पड़ेगा, जब युद्धभूमि में धराशायी होकर तू ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाएगा ।

**मातापितृभ्यां भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च ।**
**शाम्येति मुहुरुक्तोऽसि न च शाम्यसि पार्थिव ॥३६॥**

माता-पिता, भीष्म, द्रोण और विदुर सबने तुझे बार-बार कहा है कि तू सन्धि कर ले—शान्त हो, परन्तु भूपाल ! तू शान्त होने का नाम ही नहीं लेता ।

**शमे हि सुमहाँल्लाभस्तव पार्थस्य चोभयोः ।**
**न च रोचयसे राजन् किमन्यद् बुद्धिलाघवात् ।।३७।।**

राजन् ! शान्ति स्थापित होने पर तेरा और युधिष्ठिर—दोनों का ही महान् लाभ है, परन्तु तुझे यह प्रस्ताव अच्छा नहीं लगता। इसे बुद्धि की मन्दता के सिवा और क्या कहा जा सकता है ?

वैशम्पायन उवाच

**एवं ब्रुवति दाशार्हे दुर्योधनममर्षणम् ।**
**दुःशासन इदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि ।।३८।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जिस समय श्रीकृष्ण ये बातें कह रहे थे, उसी समय दुःशासन ने बीच में ही अमर्षशील दुर्योधन से कौरवसभा में यह कहा—

दुःशासन उवाच

**न चेत् संधास्यसे राजन् स्वेन कामेन पाण्डवैः ।**
**बद्ध्वा हि त्वां प्रदास्यन्ति कुन्तीपुत्राय कौरवाः ।।३९।।**

**दुःशासन ने कहा**—राजन् ! यदि आप स्वेच्छा से पाण्डवों के साथ सन्धि नहीं करेंगे तो प्रतीत होता है, कौरव लोग आपको बाँधकर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के हाथ में सौंप देंगे ।

**वैकर्तनं च मां त्वां च त्रीनेतान् मनुजर्षभ ।**
**पाण्डवेभ्यःप्रदास्यन्ति भीष्मो द्रोणः पिता च ते ।।४०।।**

नरश्रेष्ठ पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण और पिताजी—ये कर्ण को, आपको और मुझे—हम तीनों को ही पाण्डवों के अधिकार में दे देंगे ।

वैशम्पायन उवाच

**भ्रातुरेतद् वचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ।**
**क्रुद्धः प्रातिष्ठतोत्थाय महानाग इव श्वसन् ।।४१।।**
**विदुरं धृतराष्ट्रं च भीष्मं द्रोणं जनार्दनम् ।**
**सर्वानेताननादृत्य मानी मान्यावमानिता ।।४२।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—भाई की यह बात सुनकर अभिमानी तथा माननीय पुरुषों का अपमान करनेवाला धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अत्यन्त क्रुद्ध हो फुंकार मारते हुए महासर्प की भाँति लम्बी साँसें खींचता हुआ विदुर, धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण और श्रीकृष्ण—इन सबका अनादर करके वहाँ से उठकर चला गया।

**प्रस्थितं तमभिप्रेक्ष्य भ्रातरो मनुजर्षभम् ।**
**अनुजग्मुः सहामात्या राजानश्चापि सर्वशः ।।४३।।**

नरश्रेष्ठ दुर्योधन को वहाँ से जाते देख उसके सभी भाई, मन्त्री तथा सहयोगी नरेश भी सब-के-सब उठकर उसके साथ चल दिये ।

**सभायामुत्थितं क्रुद्धं प्रस्थितं भ्रातृभिः सह ।**
**दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ।।४४।।**

इस क्रोध में भरे हुए दुर्योधन को भाइयोंसहित सभा से उठकर जाते देख शान्तनुनन्दन भीष्म ने कहा—

**कालपक्वमिदं मन्ये सर्वं क्षत्रं जनार्दन ।**
**सर्वे ह्यनुसृता मोहात् पार्थिवाः सह मन्त्रिभिः ।।४५।।**

"जनार्दन ! मैं समझता हूँ कि ये सभी क्षत्रिय काल से पके हुए फल की भाँति मृत्यु के मुख में जानेवाले हैं, इसीलिए ये सब-के-सब मोहवश अपने मन्त्रियों के साथ दुर्योधन का अनुसरण कर रहे हैं ।"

**भीष्मस्याथ वचः श्रुत्वा दाशार्हः पुष्करेक्षणः ।**
**भीष्मद्रोणमुखान् सर्वानभ्यभाषत वीर्यवान् ।।४६।।**

भीष्मजी का यह कथन सुनकर महापराक्रमी दशार्हकुलनन्दन कमलनेत्र श्रीकृष्ण ने भीष्म और द्रोण आदि सब लोगों से इस प्रकार कहा—

श्रीकृष्ण उवाच

**दुर्योधनं तथा कर्णं शकुनिं चापि सौबलम् ।**
**बद्ध्वा दुःशासनं चापि पाण्डवेभ्यः प्रयच्छथ ।।४७।।**

**श्रीकृष्ण बोले**—भरतवंशियो ! आप लोग दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि और दुःशासन को बन्दी बनाकर पाण्डवों को सौंप दो।

**राजन् दुर्योधनं बद्ध्वा ततः संशाम्य पाण्डवैः ।**
**त्वत्कृते न विनश्येयुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ।।४८।।**

महाराज धृतराष्ट्र ! आप दुर्योधन को बन्दी बनाकर पाण्डवों से सन्धि कर लें। क्षत्रियशिरोमणे ! ऐसा न हो कि आपके कारण समस्त क्षत्रियों का विनाश हो जाए ।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।**

# षड्विंशोऽध्यायः

## धृतराष्ट्र का गान्धारी को बुलाना तथा उसका दुर्योधन को समझाना

वैशम्पायन उवाच

**कृष्णस्य तु वचः श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।**
**विदुरं सर्वधर्मज्ञं त्वरमाणोऽभ्यभाषत ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! श्रीकृष्ण का कथन सुनकर राजा धृतराष्ट्र ने सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता विदुर से शीघ्रतापूर्वक कहा—

**गच्छ तात महाप्राज्ञां गान्धारीं दीर्घदर्शिनीम् ।**
**आनयेह तया सार्धमनुनेष्यामि दुर्मतिम् ॥२॥**

"तात ! जाओ, परम विदुषी तथा दूरदर्शिनी गान्धारी देवी को यहाँ बुला लाओ । मैं उसी के साथ इस दुर्बुद्धि को समझा-बुझाकर सुमार्ग पर लाने की चेष्टा करूँगा ।

**यदि सापि दुरात्मानं शमयेद् दुष्टचेतसम् ।**
**अपि कृष्णस्य सुहृदस्तिष्ठेम वचने वयम् ॥३॥**

"यदि वह भी उस दुष्टचित्त दुरात्मा को शान्त कर सके तो हम लोग अपने सुहृद् श्रीकृष्ण की आज्ञापालन कर सकते हैं ।"

**राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा विदुरो दीर्घदर्शिनीम् ।**
**आनयामास गान्धारीं धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥४॥**

महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा सुनकर विदुर उनके आदेश से दूरदर्शिनी गान्धारीदेवी को वहाँ बुला लाये । [उनके आ जाने पर]

धृतराष्ट्र उवाच

**एष गान्धारि पुत्रस्ते दुरात्मा शासनातिगः ।**
**ऐश्वर्यलोभादैश्वर्यं जीवितं च प्रहास्यति ॥५॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—हे गान्धारि ! तुम्हारा यह दुरात्मा पुत्र गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है । यह ऐश्वर्य के लोभ में पड़कर राज्य और प्राण दोनों से हाथ धो बैठेगा ।

**अशिष्टवदमर्यादः पापैः सह दुरात्मवान् ।**
**सभाया निर्गतो मूढो व्यतिक्रम्य सुहृद्वचः ॥६॥**

मर्यादा का उल्लंघन करनेवाला यह मूढ़ दुरात्मा अशिष्ट पुरुषों की भाँति हितैषी सुहृदों की आज्ञा को ठुकराकर अपने पापी साथियों के साथ सभा से बाहर चला गया है ।

वैशम्पायन उवाच

**सा भर्तृवचनं श्रुत्वा राजपुत्री यशस्विनी ।**
**अन्विच्छन्ती महच्छ्रेयो गान्धारी वाक्यमब्रवीत् ॥७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! पति का यह वचन सुनकर यशस्विनी राजपुत्री गान्धारी महान् कल्याण का अनुसन्धान करती हुई इस प्रकार बोली ।

गान्धार्युवाच

**आनायय सुतं क्षिप्रं राज्यकामुकमातुरम् ।**
**त्वं ह्येवात्र भृशं गर्ह्यो धृतराष्ट्र सुतप्रियः ॥८॥**

**गान्धारी ने कहा**—महाराज ! राज्य की कामना से आतुर हुए अपने पुत्र को शीघ्र बुलवाइए । आपको अपना पुत्र बहुत प्रिय है, अतः वर्तमान परिस्थिति के लिए आप ही अत्यन्त निन्दनीय हैं ।

**स एष काममन्युभ्यां प्रलब्धो लोभमास्थितः ।**
**अशक्योऽद्य त्वया राजन् विनिवर्तयितुं बलात् ॥९॥**

राजन् ! इस दुर्योधन को काम और क्रोध ने अपने वश में कर लिया है । यह लोभ में फँस गया है, अतः अब आपका इसे बलपूर्वक पीछे लौटाना असम्भव है ।

वैशम्पायन उवाच

**शासनाद् धृतराष्ट्रस्य दुर्योधनममर्षणम् ।**
**मातुश्च वचनात् क्षत्ता सभां प्रावेशयत् पुनः ॥१०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! पिता धृतराष्ट्र के आदेश और माता गान्धारी की आज्ञा से विदुर अमर्षशील दुर्योधन को जैसे-तैसे पुनः सभा में ले आये ।

**तं प्रविष्टमभिप्रेक्ष्य पुत्रमुत्पथमास्थितम् ।**
**विगर्हमाणा गान्धारी शमार्थं वाक्यमब्रवीत् ॥११॥**

अपने कुमार्गगामी पुत्र को पुनः सभा में प्रविष्ट हुआ देख गान्धारी उसकी निन्दा करती हुई शान्ति-स्थापन के लिए इस प्रकार बोली—

गान्धार्युवाच

**दुर्योधन यदाह त्वां पिता भरतसत्तम ।**
**भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता सुहृदां कुरु तद् वचः ॥१२॥**

**गान्धारी बोली**—भरतश्रेष्ठ दुर्योधन ! तुम्हारे

पिता, पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य तथा विदुर तुमसे जो कुछ कहते हैं, अपने इन सुहृदों की वह बात मान लो ।

**भीष्मस्य तु पितुश्चैव मम चापचितिः कृता ।**
**भवेद् द्रोणमुखानां च सुहृदां शाम्यता त्वया ॥१३॥**

यदि तुम शान्त हो जाओगे तो तुम्हारे द्वारा भीष्मजी की, पिताजी की, मेरी तथा द्रोणाचार्य आदि अन्य हितैषी सुहृदों की भी पूजा सम्पन्न हो जाएगी [प्रतिष्ठा रह जाएगी] ।

**न हि राज्यं महाप्राज्ञ स्वेन कामेन शक्यते ।**
**अवाप्तुं रक्षितुं वापि भोक्तुं भरतसत्तम ॥१४॥**

भरतश्रेष्ठ ! कोई भी अपनी इच्छा मात्र से राज्य की प्राप्ति, रक्षा अथवा उसका उपभोग नहीं कर सकता ।

**न ह्यवश्येन्द्रियो राज्यमश्नीयाद् दीर्घमन्तरम् ।□**
**विजितात्मा तु मेधावी स राज्यमभिपालयेत् ॥१५॥**

जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं किया है, वह चिरकाल तक राज्य का उपभोग नहीं कर सकता । जिसने अपने मन को जीत लिया है, वह मेधावी पुरुष ही राज्य की रक्षा कर सकता है ।

**कामक्रोधौ हि पुरुषमर्थेभ्यो व्यपकर्षतः ।□**
**तौ तु शत्रू विनिर्जित्य राजा विजयते महीम् ॥१६॥**

काम और क्रोध मनुष्य को धन से दूर खींचकर ले जाते हैं । उन दोनों शत्रुओं को जीत लेने पर ही राजा इस पृथिवी पर विजय पाता है ।

**कामं क्रोधं च लोभं च दम्भं दर्पं च भूमिपः ।□**
**सम्यग्विजेतुं यो वेद स महीमभिजायते ॥१७॥**

जो राजा काम, क्रोध, लोभ, दम्भ और दर्प को अच्छी प्रकार जीतने की कला जानता है, वही इस पृथिवी का शासन कर सकता है ।

**यथा भीष्मः शान्तनवो द्रोणश्चापि महारथः ।**
**आहतुस्तात तत् सत्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥१८॥**

तात ! शान्तनुनन्दन भीष्म तथा महारथी द्रोणाचार्य जैसा कह रहे हैं, वह सर्वथा सत्य है । वस्तुतः श्रीकृष्ण और अर्जुन अजेय हैं ।

**प्रपद्यस्व महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।**
**प्रसन्नो हि सुखाय स्यादुभयोरेव केशवः ॥१९॥**

तुम अनायास ही महिमाभरे [सुखद] कर्म करनेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण की शरण लो, क्योंकि श्रीकृष्ण प्रसन्न होने पर दोनों ही पक्षों को सुखी बना सकते हैं ।

**सुहृदामर्थकामानां यो न तिष्ठति शासने ।□**
**प्राज्ञानां कृतविद्यानां स नरः शत्रुनन्दनः ॥२०॥**

जो मनुष्य अपना भला चाहनेवाले ज्ञानी एवं विद्वान् सुहृदों के शासन में नहीं रहता—उनके उपदेश के अनुसार नहीं चलता वह शत्रुओं का आनन्द बढ़ानेवाला होता है ।

**न युद्धे तात कल्याणं न धर्मार्थौ कुतः सुखम् ।**
**न चापि विजयो नित्यं मा युद्धे चेत आधिथाः ॥२१॥**

तात ! युद्ध करने में कल्याण नहीं है । उससे धर्म और अर्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती, फिर सुख तो मिल ही कैसे सकता है ? युद्ध में सदा विजय ही हो यह भी निश्चित नहीं है, अतः युद्ध में मन मत लगाओ ।

**प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिन्दम ।**
**यदीच्छसि सहामात्यो भोक्तुमर्धं प्रदीयताम् ॥२२॥**

शत्रुओं का दमन करनेवाले पुत्र ! यदि तुम अपने मन्त्रियोंसहित राज्य-सुख भोगना चाहते हो तो पाण्डवों को उनका यथोचित भाग—आधा राज्य प्रदान कर दो ।

**अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम् ।**
**सुहृदां वचने तिष्ठन् यशः प्राप्स्यसि भारत ॥२३॥**

हे भारत ! भूमण्डल का आधा राज्य मन्त्रियों सहित तुम्हारे जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त है । सुहृदों की आज्ञा के अनुसार चलकर तुम सुयश प्राप्त करोगे ।

**अलमङ्ग निकारोऽयं त्रयोदश समाः कृतः ।**
**शमयैनं महाप्राज्ञ कामक्रोधसमेधितम् ॥२४॥**

वत्स ! पाण्डवों को जो तेरह वर्ष के लिए निर्वासित कर दिया गया था, यह भी उनका महान् अपकार हुआ है । महामते ! तुम्हारे काम और क्रोध से इस अपकार की और भी वृद्धि हुई है । अब तुम सन्धि के द्वारा इसे शान्त कर दो ।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥**

# सप्तविंशोऽध्यायः

## दुर्योधन के षड्यन्त्र का भण्डाफोड़, श्रीकृष्ण की सिंहगर्जना और कौरवसभा से प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

**तत्तु वाक्यमनादृत्य सोऽर्थवन्मातृभाषितम् ।**
**पुनः प्रतस्थे संरम्भात् सकाशमकृतात्मनाम् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! माता के कहे हुए उस नीतियुक्त वचन का अनादर करके दुर्योधन पुनः क्रोधपूर्वक वहाँ से उठकर उन्हीं अजितात्मा मन्त्रियों के पास चला गया ।

**ततः सभाया निर्गम्य मन्त्रयामास कौरवः ।**
**सौबलेन मताक्षेण राज्ञा शकुनिना सह ॥२॥**

फिर सभा से बाहर निकलकर दुर्योधन ने जुए के विशेषज्ञ सुबलपुत्र राजा शकुनि के साथ गुप्तरूप से मन्त्रणा की ।

**दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च ।**
**दुःशासनचतुर्थानामिदमासीद् विचेष्टितम् ॥३॥**

उस समय दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि और दुःशासन—इन चारों ने यह निश्चय किया—

**पुरायमस्मान् गृह्णाति क्षिप्रकारी जनार्दनः ।**
**वयमेव हृषीकेशं निगृह्णीम बलादिव ॥४॥**

शीघ्रकारी श्रीकृष्ण हमें बन्दी बनाएँ उससे पूर्व हम लोग ही बलपूर्वक हृषीकेश को बन्दी बना लें ।

**श्रुत्वा गृहीतं वार्ष्णेयं पाण्डवा हतचेतसः ।**
**निरुत्साहा भविष्यन्ति भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ॥५॥**

श्रीकृष्ण को बन्दी हुआ सुनकर पाण्डव दाँत तोड़े हुए सर्पों के समान निराश और हतोत्साह हो जाएँगे ।

**तेषां पापमभिप्रायं पापानां दुष्टचेतसाम् ।**
**इङ्गितज्ञः कविः क्षिप्रमन्वबुद्ध्यत सात्यकिः ॥६॥**

विद्वान् सात्यकि संकेतों से दूसरों के मन की बात समझ लेनेवाले थे । वे उन दुष्टचित्त पापियों के उस पापपूर्ण अभिप्राय को शीघ्र ही ताड़ गये ।

**तदर्थमभिनिष्क्रम्य हार्दिक्येन सहास्थितः ।**
**अब्रवीत् कृतवर्माणं क्षिप्रं योजय वाहिनीम् ॥७॥**
**व्यूढानीकः सभाद्वारमुपतिष्ठस्व दंशितः ।**
**यावदाख्याम्यहं चैतत् कृष्णायाक्लिष्टकारिणे ॥८॥**

फिर उसके प्रतिकार के लिए वे सभा से बाहर निकलकर कृतवर्मा से मिले तथा इस प्रकार बोले—"तुम शीघ्र ही अपनी सेना को तैयार कर लो और स्वयं भी कवच धारण करके व्यूहाकार खड़ी हुई सेना के साथ सभाभवन के द्वार पर खड़े रहो । तबतक मैं अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्ण को कौरवों के इस षड्यन्त्र की सूचना दिये देता हूँ ।"

**स प्रविश्य सभां वीरः सिंहो गिरिगुहामिव ।**
**आचष्ट तमभिप्रायं केशवाय महात्मने ।**
**धृतराष्ट्रं ततश्चैव विदुरं चान्वभाषत ॥९॥**

ऐसा कहकर वीर सात्यकि ने सभा में प्रवेश किया, मानो सिंह पर्वत की गुहा में प्रवेश कर रहा हो । वहाँ जाकर उन्होंने महात्मा केशव को कौरवों का अभिप्राय बताया । फिर धृतराष्ट्र और विदुर को भी इसकी सूचना दी ।

सात्यकिरुवाच

**धर्मादर्थाच्च कामाच्च कर्म साधुविगर्हितम् ।**
**मन्दाः कर्तुमिहेच्छन्ति न चावाप्यं कथञ्चन ॥१०॥**

**सात्यकि ने कहा**—सभासदो ! कुछ मूर्ख कौरव एक ऐसा नीच कर्म करना चाहते हैं जो धर्म, अर्थ और काम सभी दृष्टियों से साधु-पुरुषों द्वारा निन्दित है, यद्यपि इस कार्य में उन्हें सफलता किसी प्रकार भी नहीं मिल सकती ।

**इमं हि पुण्डरीकाक्षं जिघृक्षन्त्यल्पचेतसः ।**
**पटेनाग्निं प्रज्वलितं यथा बाला यथा जडाः ॥११॥**

जैसे बालक और जड़ बुद्धिवाले लोग प्रज्वलित अग्नि को कपड़े में बाँधना चाहें, उसी प्रकार ये मन्द-बुद्धि कौरव कमलनेत्र श्रीकृष्ण को यहाँ बन्दी बनाना चाहते हैं ।

कृष्ण उवाच

**राजन्नेते यदि क्रुद्धा मां निगृह्णीयुरोजसा ।**
**एते वा मामहं वैनाननुजानीहि पार्थिव ॥१२॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—राजन् ! ये दुष्ट कौरव यदि क्रुद्ध होकर मुझे बलपूर्वक पकड़ सकते हों तो आप इन्हें आज्ञा दे दीजिए । फिर देखिए, ये मुझे पकड़ते

हैं अथवा मैं इन्हें बन्दी बनाता हूँ।

**एतान् हि सर्वान् संरब्धान् नियन्तुमहमुत्सहे ।**
**न त्वहं निन्दितं कर्म कुर्यां पापं कथञ्चन ॥१३॥**

यद्यपि क्रोध में भरे हुए इन समस्त कौरवों को मैं बन्दी बना लेने की शक्ति रखता हूँ, तथापि मैं किसी प्रकार भी कोई निन्दित कर्म अथवा पाप नहीं कर सकूँगा।

**एष दुर्योधनो राजन् यथेच्छति तथास्तु तत् ।**
**अहं तु सर्वांस्तनयाननुजानामि ते नृप ॥१४॥**

नरेश्वर ! यह दुर्योधन जैसा चाहता है, वैसा ही हो। मैं आपके सभी पुत्रों को इसके लिए आज्ञा देता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**एतत् श्रुत्वा तु विदुरं धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ।**
**क्षिप्रमानय तं पापं राज्यलुब्धं सुयोधनम् ॥१५॥**
**सहमित्रं सहामात्यं ससोदर्यं सहानुगम् ।**
**शक्नुयां यदि पन्थानमवतारयितुं पुनः ॥१६॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—यह सुनकर धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा—"तुम उस पापात्मा राज्यलोभी दुर्योधन को उसके मित्रों, मन्त्रियों, भाइयों तथा अनुगामियोंसहित शीघ्र मेरे पास बुला लाओ। यदि मैं पुनः प्रयत्न कर उसे सन्मार्ग पर ला सकूँ तो अच्छा होगा।"

**ततो दुर्योधनं क्षत्ता पुनः प्रावेशयत् सभाम् ।**
**अकामं भ्रातृभिः सार्धं राजभिः परिवारितम् ॥१७॥**

तब विदुरजी राजाओं से घिरे हुए दुर्योधन को उसकी इच्छा न होते हुए भी भाइयोंसहित पुनः सभा में ले आये।

**अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ।**
**कर्णदुःशासनाभ्यां च राजभिश्चापि संवृतम् ॥१८॥**

उस समय कर्ण, दुःशासन, तथा अन्य राजाओं से घिरे हुए दुर्योधन से राजा धृतराष्ट्र ने कहा।

धृतराष्ट्र उवाच

**त्वमिमं पुण्डरीकाक्षमप्रधृष्यं दुरासदम् ।**
**पापैः सहायैः संहत्य निग्रहीतुं किलेच्छसि ॥१९॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—सुनता हूँ, तू अपने पापी सहायकों से मिलकर इन दुर्धर्ष तथा दुर्जय वीर, कमलनेत्र श्रीकृष्ण को बन्दी बनाना चाहता है।

**यो न शक्यो बलात् कर्तुं देवैरपि सवासवैः ।**
**तं त्वं प्रार्थयसे मन्द बालश्चन्द्रमसं यथा ॥२०॥**

अरे मूढ़ ! इन्द्रसहित सारे देवता भी जिन्हें बलपूर्वक अपने वश में नहीं कर सकते, तू उन्हीं को बन्दी बनाना चाहता है। तेरी यह चेष्टा वैसी ही है, जैसे कोई बालक चन्द्रमा को पकड़ना चाहे।

**दुर्ग्रहः पाणिना वायुर्दुःस्पर्शः पाणिना शशी ।**
**दुर्धरा पृथिवी मूर्ध्ना दुर्ग्राह्यः केशवो बलात् ॥२१॥**

जैसे वायु को हाथ से पकड़ना दुष्कर है, चन्द्रमा को हाथ से स्पर्श करना कठिन है तथा भूमि को मस्तक पर धारण करना असम्भव है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण को बलपूर्वक पकड़ना असम्भव है।

विदुर उवाच

**प्रधर्षयन् महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।**
**पतङ्गोऽग्निमिवासाद्य सामात्यो न भविष्यसि ॥२२॥**

**विदुरजी ने कहा**—अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण का तिरस्कार करने पर तुम अपने मन्त्रियोंसहित उसी प्रकार नष्ट हो जाओगे, जैसे पतंगा अग्नि में पड़कर भस्म हो जाता है।

वैशम्पायन उवाच

**विदुरेणैवमुक्तस्तु केशवः शत्रुपूगहा ।**
**दुर्योधनं धार्तराष्ट्रमभ्यभाषत वीर्यवान् ॥२३॥**
**एकोऽहमिति यन्मोहान्मन्यसे मां सुयोधन ।**
**परिभूय सुदुर्बुद्धे ग्रहीतुं मां चिकीर्षसि ॥२४॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! विदुरजी के ऐसा कहने पर शत्रुसमूह का संहार करनेवाले महाबली श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन से कहा—"दुर्बुद्धि दुर्योधन ! तू मोहवश जो मुझे अकेला मान रहा है और इसीलिए मेरा तिरस्कार करके मुझे पकड़ना चाहता है, यह तेरा अज्ञान है।

**एवमुक्त्वा जहासोच्चैः केशवः परवीरहा ।**
**ततः सात्यकिमादाय पाणौ हार्दिक्यमेव च ।**
**निश्चक्राम त्वनादृत्य सर्वं तद् राजमण्डलम् ॥२५॥**

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण ने उच्च स्वर से अट्टहास किया। फिर वे सात्यकि और कृतवर्मा का हाथ पकड़े हुए उस समस्त नरेशमण्डल का तिरस्कार कर सभा-

भवन से बाहर निकल आये ।

**ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।**
**कुरूणां पश्यतां द्रष्टुं स्वसारं स पितुर्ययौ ।।२६।।**

बाहर निकलकर किंकिणीविभूषित विशाल एवं उज्ज्वल रथ पर आरूढ़ हो श्रीकृष्ण कौरवों के देखते-देखते अपनी बुआ कुन्ती से मिलने के लिए गये ।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि सप्तविंशोऽध्यायः ।।२७।।**

# अष्टाविंशोऽध्यायः

## विदुला का उपाख्यान सुनाते हुए कुन्ती का पाण्डवों को सन्देश देना

वैशम्पायन उवाच

**प्रविश्याथ गृहं तस्याश्चरणावभिवाद्य च ।**
**आचख्यौ तत् समासेन यद् वृत्तं कुरुसंसदि ।।१।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! कुन्ती के भवन [कक्ष] में जा, उनके चरणों में प्रणाम करके श्रीकृष्ण ने कौरवसभा में जो कुछ हुआ था, वह सब समाचार उन्हें संक्षेप से कह सुनाया ।

वासुदेव उवाच

**उक्तं बहुविधं वाक्यं न चासौ तद् गृहीतवान् ।**
**कालपक्वमिदं सर्वं सुयोधनवशानुगम् ।।२।।**

**श्रीकृष्ण बोले**—बुआजी ! मैंने अनेक प्रकार के वचनों से दुर्योधन को समझाया परन्तु उसने मेरी बात नहीं मानी । प्रतीत होता है, दुर्योधन के वश में होकर उसी के पीछे चलनेवाला यह सारा क्षत्रिय-समुदाय काल से परिपक्व हो गया है, [अतः शीघ्र नष्ट होनेवाला है] ।

**आपृच्छे भवतीं शीघ्रं प्रयास्ये पाण्डवान् प्रति ।**
**किं वाच्याः पाण्डुपुत्रास्ते भवत्या वचनान्मया ।।३।।**

अब मैं आपसे आज्ञा चाहता हूँ । मैं यहाँ से शीघ्र ही पाण्डवों के पास जाऊँगा । मुझे पाण्डवों से आपका क्या सन्देश कहना है, वह बताओ ।

कुन्त्युवाच

**ब्रूयाः केशव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।**
**भूयाँस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः ।।४।।**

**कुन्ती बोली**—केशव ! तुम धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर के पास जाकर इस प्रकार कहना—पुत्र ! तुम्हारे प्रजा-पालनरूप धर्म की महती हानि हो रही है । तुम उस धर्म-पालन के अवसर को व्यर्थ न गँवाओ ।

**पित्र्यमंशं महाबाहो निमग्नं पुनरुद्धर ।**
**साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनाथ नयेन वा ।।५।।**

महाबाहो ! तुम्हारा पैतृक राज्य-भाग शत्रुओं के हाथ में पड़कर लुप्त हो गया है । तुम साम, दान, भेद अथवा दण्डनीति से पुनः उसका उद्धार करो ।

**इतो दुःखतरं किं नु यदहं हीनबान्धवा ।**
**परपिण्डमुदीक्षे वै त्वां सूत्वामित्रनन्दन ।।६।।**

शत्रुओं का आनन्द बढ़ानेवाले पाण्डव ! इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या हो सकती है कि मैं तुम्हें जन्म देकर भी बन्धु-बान्धवों से हीन नारी के समान जीविका के लिए दूसरों के दिये हुए पिण्ड (अन्न, रोटी) की आशा लगाये ऊपर देखती रहती हूँ !

**युद्धस्व राजधर्मेण मा निमज्जीः पितामहान् ।**
**मा गमः क्षीणपुण्यस्त्वं सानुजः पापिकां गतिम् ।।७।।**

अतः तुम राजधर्म के अनुसार युद्ध करो । कायर बनकर अपने बाप-दादाओं के नाम को बट्टा मत लगाओ तथा भाइयोंसहित पुण्य से वञ्चित होकर पापमयी गति को प्राप्त मत होओ ।

**अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।**
**विदुलायाश्च संवादं पुत्रस्य च परन्तप ।।८।।**

शत्रुसंतापक श्रीकृष्ण ! इस प्रसङ्ग में विद्वान् लोग विदुला और उसके पुत्र संजय के संवादरूप इस पुरातन इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं ।

**विदुला नाम राजन्या जगर्हे पुत्रमौरसम् ।**
**निर्जितं सिन्धुराजेन शयानं दीनचेतसम् ।।९।।**

विदुला नामक एक प्रसिद्ध क्षत्राणी थी । एक समय उसका पुत्र संजय सिन्धुराज से पराजित हो

अत्यन्त दीनभाव से घर आकर सो रहा था। राजरानी विदुला ने अपने उस औरसपुत्र को इस दशा में देखकर उसकी बड़ी निन्दा की।

विदुलोवाच

**अनन्दनमधर्मज्ञं द्विषतां हर्षवर्धनम्।**
**न मया त्वं न पित्रा च जातः क्वाभ्यागतो ह्यसि ॥१०॥**

**विदुला बोली**—अरे! तू मेरे गर्भ से उत्पन्न होकर भी मुझे दुःख देनेवाला, धर्म को न जाननेवाला और शत्रुओं का आनन्द बढ़ानेवाला है, अतः मैं समझती हूँ कि तू मेरी कोख से पैदा ही नहीं हुआ। तेरे पिता ने भी तुझे उत्पन्न नहीं किया, फिर तुझ जैसा कायर कहाँ से आ गया?

**निर्मन्युश्चाप्यसंख्येयः पुरुषः क्लीबसाधनः।**
**यावज्जीवं निराशोऽसि कल्याणाय धुरं वह ॥११॥**

तू सर्वथा क्रोधशून्य है, क्षत्रियों में गणना के अयोग्य है। तू नाममात्र का पुरुष है, तेरे मन आदि सभी साधन नपुंसकों के समान हैं। क्या तू जीवन-भर के लिए निराश हो गया? अरे! उठ, और अपने कल्याण के लिए युद्ध का भार वहन कर।

**माऽऽत्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन बीभरः।**
**मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंहर ॥१२॥**

अपने-आपको दीन-हीन मत समझ। इस आत्मा का थोड़े धन से भरण-पोषण मत कर। अपने मन को शिवसंकल्पों से सम्पन्न करके निडर हो जा, भय को सर्वथा त्याग दे।

**उत्तिष्ठ कापुरुष त्वं मा शेष्वैवं पराजितः।**
**अमित्रान् नन्दयन् सर्वान् निर्माणो बन्धुशोकदः ॥१३॥**

अरे कायर! उठ, खड़ा हो, इस प्रकार पराजित होकर घर में शयन न कर [उद्योगशून्य मत बन]। ऐसा करके तो तू सब शत्रुओं को आनन्द दे रहा है और मान-प्रतिष्ठा से वञ्चित होकर बन्धु-बान्धवों को शोक में डाल रहा है।

**सुपूरा वै कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जलिः।**
**सुसन्तोषः कापुरुषः स्वल्पकेनैव तुष्यति ॥१४॥**

जैसे छोटी नदी थोड़े-से जल से भर जाती है, चूहे की अञ्जलि थोड़े-से अन्न से भर जाती है, वैसे ही कायर को सन्तुष्ट करना सुगम है, वह थोड़े-से ही सन्तुष्ट हो जाता है।

**अप्यहेरारुजन् दंष्ट्रामाश्वेव निधनं व्रज।**
**अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रमेः ॥१५॥**

तू शत्रुरूपी सर्प के दाँत तोड़ता हुआ तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जा। प्राण जाने का सन्देह हो तो भी शत्रु के साथ युद्ध में पराक्रम ही प्रकट कर।

**मास्तं गमस्त्वं कृपणो विश्रूयस्व स्वकर्मणा।**
**मा मध्ये मा जघन्ये त्वं माधो भूस्तिष्ठ गर्जितः ॥१६॥**

तू दीन होकर अस्त मत हो। तू अपने शौर्यपूर्ण कर्म से प्रसिद्धि प्राप्त कर। तू मध्यम, अधम अथवा निकृष्ट-भाव का आश्रय न ले अपितु सिंहनाद करके युद्ध-भूमि में डट जा।

**अलातं तिन्दुकस्येव मुहूर्तमपि विज्वल।□**
**मा तुषाग्निरिवानर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः॥**
**मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम् ॥१७॥**

तू तिन्दुक [फूस] की जलती हुई अग्नि के समान दो घड़ी के लिए ही प्रज्वलित हो, उस [थोड़ी देर के लिए ही सही, शत्रु के सामने महान् पराक्रम प्रकट कर] परन्तु जीने की इच्छा से भूसी की ज्वालारहित आग के समान केवल धूआँ न छोड़ [मन्द पराक्रम से काम न ले]। दो घड़ी भी प्रज्वलित रहना अच्छा, परन्तु धूआँ छोड़ते हुए दीर्घकाल तक सुलगना अच्छा नहीं।

**उद्भावयस्व वीर्यं वा तां वा गच्छ ध्रुवां गतिम्।**
**धर्मं पुत्राग्रतः कृत्वा किं निमित्तं हि जीवसि ॥१८॥**

पुत्र! धर्म को आगे रखकर या तो पराक्रम प्रकट कर अथवा मृत्यु को प्राप्त हो जा अन्यथा किसलिए जी रहा है?

**इष्टापूर्तं हि ते क्लीब कीर्तिश्च सकला हता।**
**विच्छिन्नं भोगमूलं ते किंनिमित्तं हि जीवसि ॥१९॥**

कायर! तेरे इष्ट और आपूर्ति-कर्म नष्ट हो गये, सारी कीर्ति धूल में मिल गई तथा सुख-भोग का मूलसाधन राज्य भी छिन गया, फिर तू किस-लिए जी रहा है?

**शत्रुर्निमज्जता ग्राह्यो जङ्घायां प्रपतिष्यता।**
**विपरिच्छिन्नमूलोऽपि न विषीदेत् कथञ्चन ॥२०॥**

मनुष्य डूबते हुए अथवा ऊपर से नीचे गिरते

समय भी शत्रु की टाँग अवश्य पकड़े। ऐसा करते समय अपना मूलोच्छेद हो जाए तो भी किसी प्रकार का विषाद न करे।

**कुरु सत्त्वं च मानं च विद्धि पौरुषमात्मनः।**
**उद्भावय कुलं मग्नं त्वत्कृते स्वममेव हि ॥२१॥**

पुत्र ! तू धैर्य और स्वाभिमान का अवलम्बन कर। अपने पुरुषार्थ को जान और तेरे कारण डूबे हुए इस वंश का तू स्वयं ही उद्धार कर।

**यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महदद्भुतम्।**
**राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान् ॥२२॥**

जिसके महान् और अद्भुत पुरुषार्थ तथा चरित्र की सब लोग चर्चा नहीं करते, वह मनुष्य अपने द्वारा जनसंख्या की वृद्धिमात्र करनेवाला है। मेरी दृष्टि में न तो वह स्त्री है और न पुरुष ही है।

**दाने तपसि सत्ये च यस्य नोच्चरितं यशः।**
**विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः ॥२३॥**

दान, तपस्या, सत्यभाषण, विद्या तथा धनोपार्जन में जिसके सुयश का सर्वत्र बखान नहीं होता, वह मनुष्य अपनी माता का पुत्र नहीं, मल-मूत्र मात्र है।

**श्रुतेन तपसा वापि श्रिया वा विक्रमेण वा।**
**जानन् योऽभिभवत्यन्यान् कर्मणा हि स वै पुमान् ॥२४॥**

जो शास्त्रज्ञान, तपस्या, धन-सम्पत्ति अथवा पराक्रम के द्वारा दूसरे लोगों को पराजित कर देता है, वह उसी श्रेष्ठ कर्म के द्वारा पुरुष कहलाता है।

**निरमर्षं निरुत्साहं निर्वीर्यमरिनन्दनम्।□**
**मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत् पुत्रमीदृशम् ॥२५॥**

संसार की कोई भी नारी ऐसे पुत्र को जन्म न दे जो अमर्षशून्य, उत्साहहीन, बल और पराक्रम से रहित तथा शत्रुओं का आनन्द बढ़ानेवाला हो।

**मा धूमाय ज्वलात्यन्तमाक्रम्य जहि शात्रवान्।**
**ज्वलमूर्धन्यमित्राणां मुहूर्तमपि वा क्षणम् ॥२६॥**

अरे ! धूएँ की भाँति मत उठ। जोर से प्रज्वलित हो जा और वेगपूर्वक आक्रमण करके शत्रु-सैनिकों का संहार कर डाल। तू एक मुहूर्त या एक क्षण के लिए ही सही, वैरियों के मस्तक पर जलती हुई आग बनकर छा जा।

**एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी।**
**क्षमावान् निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान् ॥२७॥**

वही पुरुष [क्षत्रिय] है जिसके हृदय में अमर्ष [क्रोध] है तथा जो शत्रुओं के प्रति क्षमाभाव धारण नहीं करता, इतने ही गुणों के कारण वह पुरुष कहाता है। जो क्षमाशील और अमर्षशून्य है, वह क्षत्रिय न तो स्त्री है और न पुरुष ही कहलाने योग्य है।

**सन्तोषो वै श्रियं हन्ति तथानुक्रोश एव च।**
**अनुत्थानभये चोभे निरीहो नाश्नुते महत् ॥२८॥**

सन्तोष, दया, उद्योगशून्यता और भय—ये सम्पत्ति का नाश करनेवाले हैं। निश्चेष्ट मनुष्य कभी कोई महत्त्वपूर्ण पद नहीं पा सकता।

**एभ्यो निकृतिपापेभ्यः प्रमुञ्चात्मानमात्मना।**
**आयसं हृदयं कृत्वा मृगयस्व पुनः स्वकम् ॥२९॥**

पराजय के कारण लोक में जो तेरी निन्दा और तिरस्कार हो रहा है, इन सब दोषों से तू स्वयं ही अपने-आपको मुक्त कर तथा अपने हृदय को लोहे के समान दृढ़ बनाकर पुनः अपने योग्य पद (राज्य-वैभव) का अनुसन्धान कर।

**परं विषहते यस्मात् तस्मात् पुरुष उच्यते।**
**तमाहुर्व्यर्थनामानं स्त्रीवद् य इह जीवति ॥३०॥**

जो पर अर्थात् शत्रु का सामना करके उसके दाँत खट्टे कर देता है, वही उस पुरुषार्थ के कारण पुरुष कहलाता है। जो इस जगत् में स्त्री की भाँति भीरुतापूर्ण जीवन बिताता है, उसका 'पुरुष' नाम व्यर्थ कहा गया है।

**यस्य शूरस्य विक्रान्तैरेधन्ते बान्धवाः सुखम्।**
**त्रिदशा इव शक्रस्य साधु तस्येह जीवितम् ॥३१॥**

जैसे इन्द्र के पराक्रम से सभी देवता सुखी रहते हैं, वैसे ही जिस शूरवीर के बल और पुरुषार्थ से उसके भाई-बन्धु सुखपूर्वक उन्नति करते हैं, इस संसार में उसी का जीवन श्रेष्ठ है।

**स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः।**
**स लोके लभते कीर्तिं परत्र च शुभां गतिम् ॥३२॥**

जो मनुष्य अपने बाहुबल का आश्रय लेकर उत्कृष्ट जीवन व्यतीत करता है, वह इस लोक में यश और परलोक में शुभ गति पाता है।

**यो हि तेजो यथाशक्ति न दर्शयति विक्रमात् ।**
**क्षत्रियो जीविताकांक्षी स्तेन इत्येव तं विदुः ॥३३॥**

जो क्षत्रिय अपने जीवन के लोभ से यथाशक्ति पराक्रम प्रकट करके अपने तेज का परिचय नहीं देता, उसे सब लोग चोर मानते हैं ।

**संजयो नामतश्च त्वं न च पश्यामि तत् त्वयि ।**
**अन्वर्थनामा भव मे पुत्र मा व्यर्थनामकः ॥३४॥**

तेरा नाम तो संजय है, परन्तु मैं तुझमें इस नाम के अनुसार गुण नहीं देख रही हूँ । वत्स ! तू युद्ध में विजय प्राप्त करके अपना नाम सार्थक कर, व्यर्थ संजय नाम धारण मत कर ।

**एकशत्रुवधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम् ।**
**इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत ॥३५॥**

एक शत्रु का वध करने से ही शूरवीर पुरुष सारे भू-मण्डल में विख्यात हो जाता है । देवराज इन्द्र केवल वृत्रासुर का वध करके ही महेन्द्र नाम से प्रसिद्ध हो गये ।

**नाम विश्राव्य वै संख्ये शत्रूनाहूय दंशितान् ।**
**सेनाग्रं चापि विद्राव्य हत्वा वा पुरुषं वरम् ॥३६॥**
**यदैव लभते वीरः सुयुद्धेन महद् यशः ।**
**तदैव प्रव्यथन्तेऽस्य शत्रवो विनमन्ति च ॥३७॥**

वीर पुरुष युद्ध में अपना नाम सुनाकर, कवचधारी शत्रुओं को ललकारकर, सेना के अग्रभाग को खदेड़कर अथवा शत्रुपक्ष के किसी श्रेष्ठ [मुख्य] पुरुष का वध करके जब भीषण युद्ध के द्वारा महान् यश प्राप्त कर लेता है, तभी उसके शत्रु व्यथित होते तथा उसके सामने मस्तक झुकाते हैं ।

**जहि शत्रून् रणे राजन् स्वधर्ममनुपालय ।**
**युद्धमेकायनं मत्वा पतोल्मुक इवारिषु ॥३८॥**

राजन् ! तू युद्ध में शत्रुओं को मार और अपने धर्म का पालन कर। युद्ध को ही [राज्यप्राप्ति का] एकमात्र मार्ग मानकर तू जलते हुए काठ की भाँति शत्रुओं पर टूट पड़ ।

**यत् त्वादृशो विकुर्वीत यशस्वी लोकविश्रुतः ।**
**अधुर्यवच्च बोढव्ये मन्ये मरणमेव तत् ॥३९॥**

यदि तेरे जैसा यशस्वी और लोक-विख्यात पुरुष पराक्रम के अवसर पर डर जाए, भार ढोने के समय बिना नथे बैल के समान बैठा रहे या भाग जाए, तो मैं इसे तेरा मरण ही समझती हूँ ।

**यदि त्वामनुपश्यामि परस्य प्रियवादिनम् ।**
**पृष्ठतोऽनुव्रजन्तं वा का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥४०॥**

यदि मैं यह देखूँ कि तू शत्रु से मीठी-मीठी बातें करता तथा उसके पीछे-पीछे चलता है, तो मेरे हृदय को क्या शान्ति मिलेगी ?

**नास्मिन् जातु कुले जातो गच्छेद् योऽन्यस्य पृष्ठतः ।**
**न त्वं परस्यानुचरस्तात जीवितुमर्हसि ॥४१॥**

इस कुल में कभी कोई ऐसा पुरुष नहीं हुआ जो दूसरे के पीछे-पीछे चलता हो । तात ! तू दूसरे का सेवक बनकर जीवित रहने के योग्य नहीं है ।

**यो वै कश्चिदिहाजातः क्षत्रियः क्षत्रकर्मवित् ।**
**भयाद् वृत्तिसमीक्षो वा न नमेदिह कस्यचित् ॥४२॥**

इस जगत् में जो कोई भी क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है तथा क्षत्रियधर्म को जाननेवाला है, वह भय से अथवा आजीविका की ओर दृष्टि रखकर भी किसी के सामने नतमस्तक नहीं हो सकता ।

**उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम् ।**
**अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कस्यचित् ॥४३॥**

सदा उद्यम करे, किसी के समक्ष मस्तक न झुकाए । उद्यम ही पुरुषार्थ है । असमय में नष्ट भले ही हो जाए परन्तु किसी के आगे नतमस्तक न हो ।

**मत्त इव हि मातंगः परीयात् सुमहामनाः ।**
**ब्राह्मणेभ्यः नमेन्नित्यं धर्मायैव च संजय ॥४४॥**

संजय ! महामनस्वी क्षत्रिय मदमत्त हाथी के समान सर्वत्र निर्भय होकर विचरे और सदा ब्राह्मणों और धर्म को ही नमस्कार करे ।

पुत्र उवाच

**ते हि कृष्णायसस्येव संहत्य हृदयं कृतम् ।**
**ईदृशं वचनं ब्रूयाद् भवती पुत्रमेकजम् ॥४५॥**

**पुत्र बोला**—माँ ! ऐसा प्रतीत होता है कि तेरा हृदय काले लोहे के पिण्ड को ठोक-पीटकर बनाया गया है । तू मेरी माँ होकर मुझ-जैसे एकमात्र पुत्र से ऐसी निष्ठुर बात कहे, आश्चर्य है !

**अहो क्षत्रसमाचारो यत्र मामितरं यथा ।**
**नियोजयसि युद्धाय परमातेव मां तथा ॥४६॥**

अहो ! क्षत्रियों का आचार-व्यवहार कैसा आश्चर्यजनक है, जिसमें स्थित होकर तू मुझे इस प्रकार युद्ध में लगा रही है, मानो मैं दूसरे का पुत्र होऊँ तथा तू दूसरे की माँ हो।

मातोवाच

**तं त्वामयशसा स्पृष्टं न ब्रूयां यदि संजय।**
**खरीवात्सल्यमाहुस्तन्निःसामर्थ्यमहेतुकम् ॥४७॥**

**माता बोली**—सञ्जय ! जिस समय तुझ-जैसे वीर का अपयश सर्वत्र फैल रहा है, ऐसे अवसर पर भी यदि मैं तुझे कुछ न कहूँ तो मेरा वह वात्सल्य गधी के स्नेह के समान शक्तिहीन और निरर्थक होगा।

**युद्धाय क्षत्रियः सृष्टः सञ्जयेह जयाय च।**
**सद्भिर्विगर्हितं मार्गं त्यज मूर्ख-निषेवितम् ॥४८॥**

सञ्जय ! इस लोक में युद्ध एवं विजय के लिए ही विधाता ने क्षत्रिय की सृष्टि की है, अतः वत्स ! तू श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा निन्दित और मूर्खों द्वारा सेवित मार्ग को त्याग दे [खड़ा हो जा और युद्ध कर]।

**न शक्रभवने पुण्ये दिवि तद् विद्यते सुखम्।**
**यदमित्रान् वशे कृत्वा क्षत्रियः सुखमश्नुते ॥४९॥**

पुत्र ! जो सुख क्षत्रिय वीर को शत्रुओं को वश में करके प्राप्त होता है, वह सुख पुण्यमय इन्द्र के भवन में और स्वर्गलोक में कहीं भी नहीं मिल सकता।

पुत्र उवाच

**अकोशस्यासहायस्य कुतः सिद्धिर्जयो मम।**
**ईदृशं भवती कंचिदुपायमनुपश्यति ॥५०॥**

**पुत्र बोला**—माँ ! मेरे पास न तो कोश=खजाना है और न सहायता करनेवाले सैनिक ही हैं, फिर मुझे विजयरूप अभीष्ट की सिद्धि कैसे प्राप्त होगी ? क्या तू कोई ऐसा उपाय देख रही है, जिससे मुझे विजय प्राप्त हो सके ?

मातोवाच

**पुत्र नात्मावमन्तव्यः पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।**
**अभूत्वा हि भवन्त्यर्था भूत्वा नश्यन्ति चापरे ॥५१॥**

**माता बोली**—पुत्र ! पहले की सम्पत्ति नष्ट हो गई है—यह सोचकर तुम्हें अपना तिरस्कार नहीं करना चाहिए, क्योंकि धन-सम्पत्ति नष्ट होकर पुनः प्राप्त हो जाती हैं तथा प्राप्त भी फिर नष्ट हो जाती हैं।

**उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।**
**भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ॥५२॥**

सफलता होगी ही, मन में ऐसा दृढ़ विश्वास करके तथा निरन्तर विषादरहित होकर तुझे उठना, सजग होना और ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले कार्यों में लग जाना चाहिए।

पुत्र उवाच

**उदके भूरियं धार्या मर्तव्यं प्रवणे मया।**
**उद्यच्छाम्येष शत्रूणां नियमाय जयाय च ॥५३॥**

**पुत्र बोला**—माँ ! अब मैं या तो शत्रुरूपी जल में डूबे अपने राज्य का उद्धार करूँगा अथवा युद्ध में शत्रुओं का सामना करते हुए अपने प्राण विसर्जन कर दूँगा। यह देखो, अब मैं शत्रुओं का दमन और विजय-प्राप्ति के लिए बन्धु-बान्धवों के साथ उद्योग कर रहा हूँ।

कुन्त्युवाच

**सदश्व इव स क्षिप्तः प्रणुन्नो वाक्यसायकैः।**
**तच्चकार तथा सर्वं यथावदनुशासनम् ॥५४॥**

**कुन्ती कहती है**—श्रीकृष्ण ! माता के वाग्बाणों से विद्ध और तिरस्कृत होकर चाबुक की मार खाये हुए अच्छे घोड़े की भाँति सञ्जय ने माता के उस समस्त उपदेश का यथावत् पालन किया।

**जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।**
**महीं विजयते क्षिप्रं श्रुत्वा शत्रूंश्च मर्दति ॥५५॥**

यह जय नामक इतिहास है। विजय के इच्छुक पुरुष को इसका श्रवण करना चाहिए। इसे सुनकर युद्ध में जानेवाला राजा शीघ्र ही पृथिवी पर विजय पाता है और शत्रुओं को रौंद डालता है।

**एतद् धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः।**
**यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ॥५६॥**

तुम अर्जुन से तथा युद्ध के लिए सदा उद्यत रहनेवाले भीम से जाकर कहना—"क्षत्राणी जिसके लिए पुत्र को जन्म देती है, उसका यह उपयुक्त अवसर आ गया है।"

**माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतावुभौ ।**
**विक्रमेणार्जितान् भोगान् वृणीतं जीवितादपि ॥५७॥**

पुरुषोत्तम ! तत्पश्चात् क्षत्रिय धर्म में तत्पर रहनेवाले दोनों माद्रीपुत्रों से भी मेरा यह सन्देश कहना—"वीरो ! तुम प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने पराक्रम से प्राप्त हुए भोगों का ही उपभोग करो।"

**पाण्डवान् कुशलं पृच्छेः मां च कुशलिनीं वद ।**
**अरिष्टं गच्छ पन्थानं पुत्रान् मे प्रतिपालय ॥५८॥**

कृष्ण ! तुम मेरी ओर से पाण्डवों से कुशल-क्षेम पूछना, फिर मेरी भी कुशलता बताना। जाओ तुम्हारा मार्ग मङ्गलमल हो। तुम सदा मेरे पुत्रों की रक्षा करो।

वैशम्पायन उवाच

**अभिवाद्याथ तां कृष्णः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।**
**निश्चक्राम महाबाहुः सिंहखेलगतिस्ततः ॥५९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तत्पश्चात् महाबाहु श्रीकृष्ण ने कुन्ती देवी को प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की, फिर सिंह के समान मस्तानी चाल से वहाँ से निकले।

**आरोप्याथ रथे कर्णं प्रायात् सात्यकिना सह ।**
**मन्त्रयामास च तदा कर्णेन सुचिरं सह ॥६०॥**

बाहर निकलकर उन्होंने कर्ण को अपने रथ पर बैठाकर सात्यकि के साथ वहाँ से प्रस्थान किया। [नगर से बाहर निकलकर] उन्होंने बहुत देर तक कर्ण के साथ मन्त्रणा की।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥**

# एकोनत्रिंशोऽध्यायः

## श्रीकृष्ण का कर्ण को पाण्डवपक्ष में आने के लिए समझाना, कर्ण का दुर्योधन के पक्ष में ही रहने का दृढ़ निश्चय

वासुदेव उवाच

**उपासितास्ते राधेया ब्राह्मणा वेदपारगाः ।**
**तत्त्वार्थं परिपृष्टाश्च नियतेनानसूयया ॥१॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—राधानन्दन ! तुमने वेद के पारंगत ब्राह्मणों की उपासना की है। तत्त्वज्ञान के लिए संयम-नियम से रहकर दोष-दृष्टि का परित्याग करके उन ब्राह्मणों से अपनी शंकाएँ पूछी हैं।

**त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान् सनातनान् ।**
**त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः ॥२॥**

कर्ण ! सनातन वैदिक सिद्धान्त क्या है, इसे तुम अच्छी प्रकार जानते हो। धर्मशास्त्र के सूक्ष्म रहस्यों के भी तुम परिनिष्ठित विद्वान् हो।

**कानीनश्च सहोढश्च कन्यायां यश्च जायते ।**
**वोढारं पितरं तस्य प्राहुः शास्त्रविदो जनाः ॥३॥**

कर्ण ! कन्या के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसके दो भेद बताये जाते हैं—कानीन और सहोढ। वैसे पुत्र की माता का जिसके साथ विवाह होता है, शास्त्रज्ञों ने उसी को उसका पिता बताया है।

**सोऽसि कर्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽसि धर्मतः ।**
**निग्रहाद् धर्मशास्त्राणामेहि राजा भविष्यसि ॥४॥**

कर्ण ! तुम्हारा जन्म भी इसी प्रकार हुआ है[1] [तुम कुन्ती के ही कन्यावस्था में उत्पन्न हुए पुत्र हो] अतः तुम भी धर्मानुसार पाण्डु के ही पुत्र हो। इसलिए आओ, धर्मशास्त्रों के निश्चयानुसार तुम्हीं राजा होओगे।

**पितृपक्षे च ते पार्था मातृपक्षे च वृष्णयः ।**
**द्वौ पक्षावभिजानीहि त्वमेतौ पुरुषर्षभ ॥५॥**

पिता के पक्ष में कुन्ती के सभी पुत्र तुम्हारे सहायक हैं और मातृपक्ष में समस्त वृष्णिवंशी तुम्हारे साथ हैं। पुरुषश्रेष्ठ ! तुम अपने इन दोनों पक्षों को जान लो।

---

१. यह सारा प्रकरण यह बता रहा है कि कर्ण को कुन्ती अपना पुत्र बताने और बनाने का प्रयत्न कर रही है। श्रीकृष्ण ने जब देखा कि दोनों पक्षों में सन्धि सम्भव नहीं है तब उन्होंने कर्ण को फोड़ने का प्रयत्न किया। यह श्रीकृष्ण की बहुत बड़ी राजनीतिक चाल थी, परन्तु श्रीकृष्ण इसमें सफल नहीं हुए। हाँ, लोक में यह प्रवाद अवश्य फैल गया है कि कर्ण कुन्ती का कानीन पुत्र है।

**मया सार्धमितो यातमद्य त्वां तात पाण्डवाः ।**
**अभिजानन्तु कौन्तेयं पूर्वजातं युधिष्ठिरात् ॥६॥**

तात ! मेरे साथ यहाँ से चलने पर आज पाण्डवों को तुम्हारे विषय में यह पता लग जाए कि तुम कुन्ती के ही पुत्र हो तथा तुम्हारा जन्म युधिष्ठिर से भी पहले हुआ है ।

**पादौ तव ग्रहीष्यन्ति भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ।**
**द्रौपदेयास्तथा पञ्च सौभद्रश्चापराजितः ॥७॥**

पाँचों भाई पाण्डव, द्रौपदी के पाँचों पुत्र तथा किसी से भी पराजित न होनेवाला सुभद्राकुमार वीर अभिमन्यु—ये सभी तुम्हारे चरणों का स्पर्श करेंगे ।

**अहं च त्वाभिषेक्ष्यामि राजानं पृथिवीपतिम् ।**
**युवराजोऽस्तु ते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥८॥**

मैं तुम्हें पृथिवीपालक सम्राट् के पद पर अभिषित करूँगा । धर्मपुत्र कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर तुम्हारे युवराज होंगे ।

**स त्वं परिवृतः पार्थैर्नक्षत्रैरिव चद्रमाः ।**
**प्रशाधि राज्यं कौन्तेय कुन्तीं च प्रतिनन्दय ॥९॥**

कुन्तीकुमार ! नक्षत्रों से घिरे हुए चन्द्रमा की भाँति तुम अपने अन्य भाइयों से घिरे रहकर राज्य का पालन और कुन्ती को आनन्दित करो ।

**मित्राणि ते प्रहृष्यन्तु व्यथन्तु रिपवस्तथा ।**
**सौभ्रात्रं चैव तेऽद्यास्तु भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ॥१०॥**

तुम्हारे मित्र प्रसन्न हों और शत्रुओं के मन में व्यथा हो । कर्ण ! आज से अपने भाई पाण्डवों के साथ तुम्हारा एक श्रेष्ठ बन्धु की भाँति स्नेहपूर्ण व्यवहार हो ।

कर्ण उवाच

**असंशयं सौहृदान्मे प्रणयाच्चात्थ केशव ।**
**सख्येन चैव वार्ष्णेय श्रेयस्कामात्तथैव च ॥११॥**

**कर्ण ने कहा**—केशव ! आपने सौहार्द, प्रेम, मैत्री तथा मेरे हित की इच्छा से जो कुछ कहा है, वह निःसन्देह ठीक है ।

**सर्वं चैवाभिजानामि पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः ।**
**कुन्त्या त्वहमपाकीर्णो यथा न कुशलं तथा ॥१२॥**

कृष्ण ! मैं धर्मतः पाण्डु का ही पुत्र हूँ, इस बात को मैं अच्छी प्रकार जानता और समझता हूँ, परन्तु कुन्तीदेवी ने मुझे इस प्रकार त्याग दिया, जिससे मैं कुशल नहीं रह सकता था ।

**सूतो हि मामधिरथो दृष्ट्वैवाभ्यानयद् गृहान् ।**
**राधायै चैव मां प्रादात् सौहार्दान्मधुसूदन ॥१३॥**

मधुसूदन ! उसके पश्चात् अधिरथ नामक सूत मुझे जल में बहते देख, उसमें से निकाल अपने घर ले आये और अति स्नेह से मुझे अपनी पत्नी राधा की गोद में दे दिया ।

**सा मे मूत्रं पुरीषं च प्रतिजग्राह माधव ।**
**तस्याः पिण्डव्यपनयं कुर्यादस्मद्विधः कथम् ॥१४॥**

माधव ! उस अवस्था में उसी ने मेरा मल-मूत्र उठाना स्वीकार किया, अतः मेरे जैसा [धर्मज्ञ पुरुष] राधा के मुख का ग्रास [पुत्र-सुख] कैसे छीन सकता है ?

**तथा मामभिजानाति सूतश्चाधिरथः सुतम् ।**
**पितरं चाभिजानामि तमहं सौहृदात् सदा ॥१५॥**

अधिरथ सूत भी मुझे अपना पुत्र ही समझते हैं तथा मैं भी सौहार्दवश उन्हें सदा से अपना पिता ही मानता आया हूँ ।

**न पृथिव्या सकलया सुवर्णस्य च राशिभिः ।**
**हर्षाद् भयाद् वा गोविन्द मिथ्या कर्तुं तदुत्सहे ॥१६॥**

गोविन्द ! अब मैं सम्पूर्ण पृथिवी का राज्य पाकर, सुवर्ण की राशियाँ लेकर अथवा हर्ष या भय के कारण भी वे सब सम्बन्ध मिथ्या करना नहीं चाहता ।

**धृतराष्ट्रकुले कृष्ण दुर्योधनसमाश्रयात् ।**
**मया त्रयोदश समा भुक्तं राज्यमकण्टकम् ॥१७॥**

श्रीकृष्ण ! मैंने दुर्योधन का सहारा पाकर धृतराष्ट्र के कुल में रहते हुए तेरह वर्षों तक अकण्टक राज्य का उपभोग किया है ।

**मां च कृष्ण समासाद्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः ।**
**दुर्योधनेन वार्ष्णेय विग्रहश्चापि पाण्डवैः ॥१८॥**

वृष्णिनन्दन कृष्ण ! दुर्योधन ने मेरे ही भरोसे हथियार उठाने तथा पाण्डवों के साथ विग्रह=युद्ध करने का निश्चय किया है ।

**द्वैरथे मां रणे तस्मात् प्रत्युद्यातारमच्युत ।**
**वृतवान् परमं कृष्ण प्रतीपं सव्यसाचिनः ॥१९॥**

हे अच्युत ! द्वैरथ युद्ध में सव्यसाची अर्जुन के विरुद्ध लोहा लेने तथा उनका सामना करने के लिए दुर्योधन ने मेरा वरण कर लिया है।

**वधाद् बन्धाद्भयाद्वापि लोभाद्वापि जनार्दन।**
**अनृतं नोत्सहे कर्तुं धार्तराष्ट्रस्य धीमतः ॥२०॥**

जनार्दन ! इस समय मैं वध, बन्धन, भय अथवा लोभ—किसी भी प्रकार से बुद्धिमान् धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन के साथ मिथ्या व्यवहार नहीं करना चाहता।

**यदि ह्यद्य न गच्छेयं द्वैरथं सव्यसाचिना।**
**अकीर्तिः स्याद् हृषीकेश मम पार्थस्य चोभयोः ॥२१॥**

हृषीकेश ! अब यदि मैं अर्जुन के साथ द्वैरथ युद्ध न करूँ तो यह मेरे और अर्जुन—दोनों के लिए अपयश की बात होगी।

**असंशयं हितार्थाय ब्रूयास्त्वं मधुसूदन।**
**सर्वं च पाण्डवाः कुर्युस्त्वद्वशित्वान्न संशयः ॥२२॥**

मधुसूदन ! इसमें सन्देह नहीं कि आप मेरे हित के लिए ही ये सब बातें कह रहे हैं। पाण्डव आपके अधीन हैं, अतः आप उनसे जो भी कहेंगे, वह सब वे अवश्य ही कर सकते हैं।

**मन्त्रस्य नियमं कुर्यास्त्वमत्र मधुसूदन।**
**एतदत्र हितं मन्ये सर्वं यादवनन्दन ॥२३॥**

परन्तु मधुसूदन ! मेरे और आपके बीच में जो यह गुप्त मन्त्रणा हुई है, इसे आप यहीं तक सीमित रखें। यादवनन्दन ! ऐसा करने में ही मैं यहाँ सब प्रकार से हित समझता हूँ।

**यदि जानाति मां राजा धर्मात्मा संयतेन्द्रियः।**
**कुन्त्याः प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति ॥२४॥**

जितेन्द्रिय धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर यदि यह जान लेंगे कि मैं [कर्ण] कुन्ती का प्रथम पुत्र हूँ, तब वे राज्य ग्रहण नहीं करेंगे।

**प्राप्य चापि महद् राज्यं तदहं मधुसूदन।**
**स्फीतं दुर्योधनायैव सम्प्रदद्यामरिन्दम ॥२५॥**

शत्रुदमन मधुसूदन ! उस अवस्था में मैं उस समृद्धिशाली विशाल राज्य को पाकर भी दुर्योधन को ही सौंप दूँगा।

**स एव राजा धर्मात्मा शाश्वतोऽस्तु युधिष्ठिरः।**
**नेता यस्य हृषीकेशो योद्धा यस्य धनञ्जयः ॥२६॥**

मेरी भी यही कामना है कि जिनके नेता हृषीकेश तथा योद्धा अर्जुन हैं, वे धर्मात्मा युधिष्ठिर ही सर्वदा राजा बने रहें।

**धार्तराष्ट्रस्य वार्ष्णेय शस्त्रयज्ञो भविष्यति।**
**अस्य यज्ञस्य वेत्ता त्वं भविष्यसि जनार्दन ॥२७॥**

जनार्दन ! वृष्णिनन्दन ! अब दुर्योधन के यहाँ एक शस्त्रयज्ञ होगा, जिसके साक्षी आप होंगे।

**यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च जनार्दन।**
**तावत् कीर्तिभवः शब्दः शाश्वतोऽयं भविष्यति ॥२८॥**

हे जनार्दन ! जबतक ये पर्वत और सरिताएँ रहेंगी, तबतक इस युद्ध की कीर्ति-कथा भी अक्षय बनी रहेगी।

**ब्राह्मणाः कथयिष्यन्ति महाभारतमाहवम्।**
**समागमेषु वार्ष्णेय क्षत्रियाणां यशोधनम् ॥२९॥**

वार्ष्णेय ! ब्राह्मण लोग क्षत्रियों के समाज में इस महाभारत युद्ध का, जिसमें राजाओं के यशरूपी धन का संग्रह होनेवाला है, वर्णन करेंगे।

कृष्ण उवाच

**अपि त्वां न लभेत् कर्ण राज्यलम्भोपपादनम्।**
**मया दत्तां हि पृथिवीं न प्रशासितुमिच्छसि ॥३०॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—कर्ण ! मैं जो राज्य की प्राप्ति का उपाय बता रहा हूँ, प्रतीत होता है वह तुम्हें ग्राह्य नहीं है। तुम मेरे द्वारा प्रदत्त पृथिवी का शासन नहीं करना चाहते।

**ब्रूयाः कर्ण इतो गत्वा द्रोणं शान्तनवं कृपम्।**
**सौम्योऽयं वर्तते मासः सुप्रापयवसेन्धनः ॥३१॥**

अच्छा कर्ण ! तुम यहाँ से जाकर आचार्य द्रोण, शान्तनुनन्दन भीष्म तथा कृपाचार्य से कहना कि यह सौम्य [मार्गशीर्ष] मास चल रहा है। इसमें पशुओं के लिए घास तथा जलाने के लिए लकड़ी आदि वस्तुएँ सुगमता से मिल सकती हैं।

**सर्वौषधिवनस्फीतः फलवानल्पमाक्षिकः।**
**निष्पङ्को रसवत्तोयो नात्युष्णशिशिरः सुखः ॥३२॥**

सब प्रकार की ओषधियों तथा फल-फूलों से वन की समृद्धि बढ़ी हुई है, धान के खेतों में खूब फल लगे हुए हैं, मक्खियाँ बहुत कम हो गई हैं। धरती पर कीचड़ का नाम भी नहीं है। जल स्वच्छ एवं सुस्वादु

प्रतीत होता है। इस सुखद मास में न बहुत गरमी ही है और न अत्यधिक सरदी ही।

**सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति।**
**संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम् ॥३३॥**

आज से सातवें दिन के पश्चात् अमावास्या होगी। उसके देवता इन्द्र कहे गये हैं। उसी में युद्ध आरम्भ किया जाए।

कर्ण उवाच

**असंशयमिदं कृष्ण महद् युद्धमुपस्थितम्।**
**पाण्डवानां कुरूणां च घोरं रुधिरकर्दमम् ॥३४॥**

**कर्ण ने कहा**—श्रीकृष्ण! इसमें सन्देह नहीं कि कौरवों और पाण्डवों का यह अति भयंकर युद्ध उपस्थित हुआ है, जो रक्त की कीच मचा देनेवाला है।

**राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः।**
**रणे शस्त्राग्निना दग्धाः प्राप्स्यन्ति यमसादनम् ॥३५॥**

जो दुर्योधन के वश में रहनेवाले राजा और राजकुमार हैं, वे सब रणभूमि में अस्त्र-शस्त्रों की अग्नि से दग्ध होकर निश्चय ही यमलोक में जा पहुँचेंगे।

**स्वप्ना हि बहवो घोरा दृश्यन्ते मधुसूदन।**
**निमित्तानि च घोराणि तथोत्पाताः सुदारुणाः ॥३६॥**

मधुसूदन! मुझे बहुत-से भयंकर स्वप्न दिखाई देते हैं। भयंकर अपशकुन और अति दारुण उत्पात भी दृष्टिगोचर होते हैं।

**पराजयं धार्तराष्ट्रे विजयं च युधिष्ठिरे।**
**शंसन्त इव वार्ष्णेय विविधा रोमहर्षणाः ॥३७॥**

वृष्णिनन्दन! वे रोंगटे खड़े कर देनेवाले विविध उत्पात दुर्योधन की पराजय और युधिष्ठिर की विजय की घोषणा-सी करते हुए प्रतीत होते हैं।

**यूयं सर्वे वधिष्यध्वं तत्र मे नास्ति संशयः।**
**पार्थिवान् समरे कृष्ण दुर्योधनपुरोगमान् ॥३८॥**

अतः श्रीकृष्ण! आप सब लोग इस युद्ध में दुर्योधन आदि समस्त राजाओं का वध कर डालेंगे, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है।

**अहं चान्ये च राजानो यच्च तत् क्षत्रमण्डलम्।**
**गाण्डीवाग्निं प्रवेक्ष्याम इति मे नास्ति संशयः ॥३९॥**

मैं, अन्यान्य नरेश और क्षत्रिय-समाज सब-के-सब गाण्डीव की अग्नि में प्रवेश कर जाएँगे, इसमें रत्ती-भर भी सन्देह नहीं है।

**अपि त्वां कृष्ण पश्याम जीवन्तोऽस्मान्महारणात्।**
**समुत्तीर्णा महाबाहो वीरक्षत्रविनाशनात् ॥४०॥**

महाबाहु श्रीकृष्ण! वीर क्षत्रियों का विनाश करनेवाले इस महायुद्ध से पार होकर यदि हम जीवित बच गये तो पुनः आपका दर्शन करेंगे।

वैशम्पायन उवाच

**इत्युक्त्वा माधवं कर्णः परिष्वज्य च पीडितम्।**
**विसर्जितः केशवेन रथोपस्थादवातरत् ॥४१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—ऐसा कहकर कर्ण श्रीकृष्ण का प्रगाढ़ आलिंगन करके उनसे विदा लेकर रथ के पिछले भाग से उतर गया।

**ततः शीघ्रतरं प्रायात् केशवः सहसात्यकिः।**
**पुनरुच्चारयन् वाणीं याहि याहीति सारथिम् ॥४२॥**

तत्पश्चात् सात्यकिसहित श्रीकृष्ण सारथि से बारम्बार 'चलो, चलो'—ऐसा कहते हुए अत्यन्त तीव्रगति से उपप्लव्य नगर की ओर चल दिये।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥**

# त्रिंशोऽध्यायः

**कुन्ती का कर्ण के पास जाना और उसे अपना पुत्र बताकर पाण्डवपक्ष में मिलने का अनुरोध करना, कर्ण का कुन्ती को उत्तर तथा अर्जुन को छोड़कर शेष चारों भाइयों को न मारने की प्रतिज्ञा**

वैशम्पायन उवाच

**असिद्धानुनये कृष्णे कुरुभ्यः पाण्डवान् गते।**
**अभिगम्य पृथां क्षत्ता शनैः शोचन्निवाब्रवीत् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! जब श्रीकृष्ण का अनुनय असफल हो गया और वे कौरवों के यहाँ से पाण्डवों के पास चले गये, तब विदुर कुन्ती के पास जा शोकमग्न-से हो धीरे-धीरे इस प्रकार बोले—

**जानासि मे जीवपुत्रि भावं नित्यमविग्रहे ।**
**क्रोशतो न च गृह्णीते वचनं मे सुयोधनः ॥२॥**

"दीर्घजीवी पुत्रों को जन्म देनेवाली देवि ! तुम तो जानती ही हो कि मेरी इच्छा सदा ही यह रही है कि कौरव-पाण्डवों में युद्ध न हो। इसके लिए मैं पुकार-पुकारकर कहता रह गया, परन्तु दुर्योधन मेरी बात सुनता ही नहीं है।

**राजा तु धृतराष्ट्रोऽयं वयोवृद्धो न शाम्यति ।**
**मत्तः पुत्रमदेनैव विधर्मे पथि वर्तते ॥३॥**

"ये राजा धृतराष्ट्र बूढ़े हो जाने पर भी शान्त नहीं हो रहे हैं। ये पुत्रों के मद से उन्मत्त हो अधर्म के मार्ग पर ही चल रहे हैं।

**जयद्रथस्य कर्णस्य तथा दुःशासनस्य च ।**
**सौबलस्य च दुर्बुद्धया मिथोभेदः प्रपत्स्यते ॥४॥**

"जयद्रथ, कर्ण, दुःशासन तथा शकुनि की खोटी बुद्धि से कौरव-पाण्डवों में परस्पर फूट होकर ही रहेगी।"

**कुन्ती श्रुत्वा तु तद्वाक्यमर्थकामेन भाषितम् ।**
**सा निःश्वसन्ती दुःखार्ता मनसा विममर्श ह ॥५॥**

उभयपक्ष के हित की इच्छा से कही विदुरजी की उस बात को सुनकर कुन्ती दुःख से आतुर हो उठी और दीर्घ निःश्वास लेती हुई मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगी।

**धिगस्त्वर्थं यत्कृतेऽयं महान् ज्ञातिवधः कृतः ।**
**वर्त्स्यते सुहृदां चैव युद्धेऽस्मिन् वै पराभवः ॥६॥**

'अहो ! इस धन को धिक्कार है, जिसके लिए बन्धु-बान्धवों का यह भयंकर संहार किया जानेवाला है। इस युद्ध में अपने सगे-सम्बन्धियों का पराभव भी होगा ही।

**पितामहः शान्तनव आचार्यश्च युधां पतिः ।**
**कर्णश्च धार्तराष्ट्रार्थं वर्धयन्ति भयं मम ॥७॥**

'शान्तनुनन्दन भीष्म पितामह, योद्धाओं में श्रेष्ठ आचार्य द्रोण और कर्ण—ये सभी दुर्योधन के लिए ही रणभूमि में उतरेंगे, अतः ये मेरे भय की वृद्धि कर रहे हैं।

**नाचार्यः कामवान् शिष्यैर्द्रोणो युद्धयेत जातुचित् ।**
**पाण्डवेषु कथं हार्दं कुर्यान्न च पितामहः ॥८॥**

'आचार्य द्रोण तो सदा हमारे हित की इच्छा रखनेवाले हैं, वे अपने शिष्यों के साथ कभी युद्ध नहीं कर सकते। इसी प्रकार भीष्म पितामह भी पाण्डवों के प्रति हार्दिक स्नेह कैसे नहीं रखेंगे ?

**अयं त्वेको वृथादृष्टिर्धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।**
**मोहानुवर्ती सततं पापो द्वेष्टि च पाण्डवान् ॥९॥**

'परन्तु यह एकमात्र मिथ्यादर्शी कर्ण मोहवश सदा दुर्बुद्धि दुर्योधन का ही अनुसरण करनेवाला है, अतः यह पापात्मा पाण्डवों से सदा द्वेष ही रखता है।

**आशंसे त्वद्य कर्णस्य मनोऽहं पाण्डवान् प्रति ।**
**प्रसादयितुमासाद्य दर्शयन्ति यथातथम् ॥१०॥**

'अच्छा, आज मैं कर्ण के मन को पाण्डवों के प्रति प्रसन्न करने के लिए उसके पास जाऊँगी तथा यथार्थ सम्बन्ध का परिचय देती हुई उससे बातचीत करूँगी।'

**इति कुन्ती विनिश्चित्य ययौ भागीरथीं प्रति ।**
**आत्मजस्य पृथाश्रौषीद् वेदाध्ययननिःस्वनम् ॥११॥**

ऐसा निर्णय करके कुन्ती भागीरथी गंगा के तट पर गई। वहाँ उसने अपने पुत्र कर्ण के मुख से वेद-पाठ की गम्भीर ध्वनि सुनी।

**प्राङ्मुखस्योर्ध्वबाहोः सा पर्यतिष्ठत पृष्ठतः ।**
**जप्यावसानं कार्यार्थं प्रतीक्षन्ती तपस्विनी ॥१२॥**

वह अपनी दोनों बाहें ऊपर उठाकर पूर्वाभिमुख हो जप कर रहा था। तपस्विनी कुन्ती उसकी जप-समाप्ति की प्रतीक्षा करती हुई कार्यवश उसके पीछे की ओर खड़ी रही।

**आ पृष्ठतापाज्जप्त्वा स परिवृत्य यतव्रतः ।**
**दृष्ट्वा कुन्तीमुपातिष्ठदभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥१३॥**

जबतक सूर्य पीठ की ओर ताप न देने लगे [पूर्व से पश्चिम की ओर नहीं चले गये] तबतक जप करके, नियमपूर्वक व्रत का पालन करनेवाला कर्ण जब पीछे की ओर घूमा, तब कुन्ती को अपने सामने देखकर, उसने हाथ जोकर प्रणाम किया और उनके पास खड़ा हो गया।

**यथान्यायं महातेजा मानी धर्मभृतां वरः ।**
**उत्स्मयन् प्रणतः प्राह कुन्तीं वैकर्तनो वृषः ॥१४॥**

धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, अभिमानी तथा महातेजस्वी

सूर्यपुत्र कर्ण, जिसका दूसरा नाम वृष भी था, कुन्ती को यथोचित रीति से प्रणाम करके मुस्कराता हुआ बोला—

कर्ण उवाच

**राधेयोऽहमाधिरथिः कर्णस्त्वामभिवादये।**
**किमर्थं भवती प्राप्ता ब्रूहि किं करवाणि ते ॥१५॥**

**कर्ण बोला**—देवि ! मैं राधा तथा अधिरथ का पुत्र कर्ण हूँ और आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ। आप यहाँ किसलिए आई हैं ? बताइए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

कुन्त्युवाच

**कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथः पिता।**
**नासि सूतकुले जातः कर्ण तद् विद्धि मे वचः ॥१६॥**

**कुन्ती ने कहा**—कर्ण ! तुम राधा के नहीं कुन्ती के पुत्र हो। तुम्हारे पिता अधिरथ नहीं हैं तथा तुम सूतकुल में उत्पन्न नहीं हुए हो। तुम मेरी इस बात को सत्य मानो।

**कानीनस्त्वं मया जातः पूर्वजः कुक्षिणा धृतः।**
**कुन्तिराजस्य भवने पार्थस्त्वमसि पुत्रक ॥१७॥**

तुम कन्यावस्था में मेरे गर्भ से उत्पन्न हुए प्रथम पुत्र हो। महाराज कुन्तीभोज के घर में रहते समय मैंने तुम्हें गर्भ में धारण किया था, अतः वत्स ! तुम पार्थ हो।

**स त्वं भ्रातॄनसम्बुद्धय मोहाद् यदुपसेवसे।**
**धार्तराष्ट्रान् न तद्युक्तं त्वयि पुत्र विशेषतः ॥१८॥**

पुत्र ! तुम जो अपने भाइयों से अपरिचित रहकर मोह के कारण धृतराष्ट्र के पुत्रों की सेवा कर रहे हो, वह तुम्हारे लिए कदापि योग्य नहीं है।

**एतद् धर्मफलं पुत्र नराणां धर्मनिश्चये।**
**यत तुष्यन्त्यस्य पितरो माता चाप्येकदर्शिनी ॥१९॥**

पुत्र ! धर्मशास्त्र में मनुष्यों के लिए धर्म का यही श्रेष्ठफल बताया गया है कि उनके पिता आदि गुरुजन तथा एकमात्र पुत्र पर ही दृष्टि रखनेवाली माता उनसे सन्तुष्ट रहे।

**अर्जुनेनार्जितां पूर्वं हृतां लोभादसाधुभिः।**
**आच्छिद्य धार्तराष्ट्रेभ्यो भुंक्ष्व यौधिष्ठिरीं श्रियम् ।२०**

अर्जुन ने पूर्वकाल में जिसका उपार्जन किया था तथा दुष्टों ने लोभवश जिसका अपहरण कर लिया है, युधिष्ठिर की उस राजलक्ष्मी को तुम धृतराष्ट्रपुत्रों से छीनकर भाइयोंसहित उसका उपभोग करो।

**अद्य पश्यन्तु कुरवः कर्णार्जुनसमागमम्।**
**सौभ्रात्रेण समालक्ष्य संनमन्तामसाधवः ॥२१॥**

सहोदर बन्धुजनोचित स्नेह के साथ आज लोग कर्ण और अर्जुन का परस्पर मिलन देखें तथा इसे देखकर दुष्ट लोग नतमस्तक हों।

**कर्णार्जुनौ च भवेतां यथा रामजनार्दनौ।**
**असाध्यं किं नु लोके स्याद् युवयोः संहितात्मनोः ॥२२**

कर्ण तथा अर्जुन दोनों मिलकर वैसे ही शक्तिशाली हैं जैसे बलराम और कृष्ण। तुम दोनों के हृदय से संगठित हो जाने पर इस संसार में तुम्हारे लिए कौनसा कार्य असाध्य रहेगा !

**कर्ण शोभिष्यसे नूनं पञ्चभिर्भ्रातृभिर्वृतः।**
**देवैः परिवृतो ब्रह्मा वेद्यामिव महाध्वरे ॥२३॥**

कर्ण ! जैसे महान् यज्ञ की वेदी पर देवगणों=विद्वानों से घिरे हुए ब्रह्मा सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार अपने पाँचों भाइयों से घिरे हुए तुम भी सुशोभित होओगे।

**उपपन्नो गुणैः सर्वैर्ज्येष्ठः श्रेष्ठेषु बन्धुषु।**
**सूतपुत्रेति मा शब्दः पार्थस्त्वमसि वीर्यवान् ॥२४॥**

अपने उत्तम स्वभाववाले भाइयों में तुम सर्वगुण सम्पन्न, ज्येष्ठ भ्राता और परम पराक्रमी कुन्तीपुत्र कर्ण हो। तुम्हारे लिए 'सूतपुत्र' शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

कर्ण उवाच

**न चैतच्छ्रद्दधे वाक्यं क्षत्रिये भाषितं त्वया।**
**धर्मद्वारं ममैतत् स्यान्नियोगकरणं तव ॥२५॥**

**कर्ण बोला**—राजपुत्रि ! तुमने जो कुछ कहा है, उसपर मुझे विश्वास नहीं होता। तुम्हारी इस आज्ञा का पालन करना मेरे लिए धर्म का द्वार है, इसपर भी मुझे विश्वास नहीं है।

**अकरोन्मयि यत् पापं भवती सुमहात्ययम्।**
**अपाकीर्णोऽस्मि यन्मातस्तद्यशः कीर्तिनाशनम् ॥२६॥**

तुमने मेरे प्रति जो अत्याचार किया है, वह महान् कष्टदायक है। माता ! तुमने जो मुझे पानी

में प्रवाहित कर दिया, वह मेरे लिए यश और कीर्ति का नाशक बन गया।

**न वै मम हितं पूर्वं मातृवच्चेष्टितं त्वया।**
**सा मां सम्बोधयस्यद्य केवलात्महितैषिणी ॥२७॥**

पूर्वकाल में तुमने माता के समान मेरे हित की चेष्टा कभी नहीं की और आज केवल अपने हित की कामना रखकर मुझे मेरे कर्तव्य का उपदेश करने चली हो।

**कृष्णेन सहितात् को वै न व्यथेत धनञ्जयात्।**
**कोऽद्य भीतं न मां विद्यात् पार्थानां समितं गतम् ॥२८॥**

श्रीकृष्ण जिनके सहायक हैं, ऐसे अर्जुन से आज कौन वीर भय मानकर पीड़ित नहीं होता? यदि इस समय मैं पाण्डवों की सभा में मिल जाऊँ तो मुझे कौन भयभीत नहीं समझेगा?

**अभ्राता विदितः पूर्वं युद्धकाले प्रकाशितः।**
**पाण्डवान् यदि गच्छामि किं मां क्षत्रं वदिष्यति ॥२९**

आज से पहले कोई नहीं जानता था कि मैं पाण्डवों का भाई हूँ। युद्ध के समय मेरा यह सम्बन्ध प्रकट हुआ है। यदि इस समय मैं पाण्डवों के साथ मिल जाऊँ तो क्षत्रिय-समाज मुझे क्या कहेगा?

**सर्वकामैः संविभक्तः पूजितश्च यथासुखम्।**
**अहं वै धार्तराष्ट्राणां कुर्यां तदफलं कथम् ॥३०॥**

धृतराष्ट्र के पुत्रों ने मुझे सब प्रकार की मनोवाञ्छित वस्तुएँ प्रदान की हैं तथा मुझे सुखपूर्वक रखते हुए सदा मेरा सम्मान किया है। उनके उस उपकार को मैं निष्फल कैसे कर सकता हूँ?

**मया प्लवेन संग्रामं तितीर्षन्ति दुरत्ययम्।**
**अपारे पारकामा ये त्यजेयं तानहं कथम् ॥३१॥**

जो मुझे ही नौका बनाकर उसके सहारे दुर्लङ्घ्य युद्धरूपी समुद्र को पार करना चाहते हैं तथा मेरे ही भरोसे महान् संकट से पार होने की इच्छा रखते हैं, उन्हें मैं मझधार में कैसे छोड़ दूँ?

**धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामर्थे योत्स्यामि ते सुतैः।**
**बलं च शक्तिमास्थाय न वै त्वय्यनृतं वदे ॥३२॥**

मैं तुमसे असत्य नहीं कहता। धृतराष्ट्र के पुत्रों के लिए मैं अपनी शक्ति और बल के अनुसार तुम्हारे पुत्रों के साथ युद्ध अवश्य करूँगा।

**न च तेऽयं समारम्भो मयि मोघो भविष्यति।**
**बध्यान् विषह्यान् संग्रामे न हनिष्यामि ते सुतान् ॥३३**
**युधिष्ठिरं च भीमं च यमौ चैवार्जुनादृते।**
**अर्जुनेन समं युद्धमपि यौधिष्ठिरे बले ॥३४॥**

परन्तु मेरे पास आने का तुमने जो कष्ट उठाया है, वह भी व्यर्थ नहीं जाएगा। युद्ध में अर्जुन के अतिरिक्त तुम्हारे चार पुत्रों युधिष्ठिर, भीम, नकुल तथा सहदेव को अपने वश में तथा वध के योग्य अवस्था में पाकर भी मैं नहीं मारूँगा। युधिष्ठिर की सेना में अर्जुन के साथ ही मेरा युद्ध होगा।

**अर्जुनं हि निहत्याजौ सम्प्राप्तं स्यात् फलं मया।**
**यशसा चापि युज्येयं निहतः सव्यसाचिना ॥३५॥**

अर्जुन को युद्ध में मार देने पर मुझे संग्राम का फल प्राप्त हो जाएगा अथवा मैं स्वयं ही सव्यसाची अर्जुन के द्वारा मारा जाकर यश का भागी बनूँगा।

**न ते जातु नशिष्यन्ति पुत्राः पञ्च यशस्विनि।**
**निरर्जुनाः सकर्णा वा सार्जुना वा हते मयि ॥३६॥**

यशस्विनि! प्रत्येक अवस्था में तुम्हारे पाँच पुत्र अवश्य ही शेष रहेंगे। यदि अर्जुन मारे गये तो कर्ण-सहित और यदि मैं मारा गया तो अर्जुनसहित तुम्हारे पाँच पुत्र रहेंगे।

वैशम्पायन उवाच

**इति कर्णवचः श्रुत्वा कुन्ती दुःखात् प्रवेपती।**
**उवाच पुत्रमाश्लिष्य कर्णं धैर्यादकम्पितम् ॥३७॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—कर्ण की यह बात सुन कर कुन्ती धैर्य से विचलित न होनेवाले अपने पुत्र कर्ण को हृदय से लगाकर दुःख से काँपती हुई बोली—

**एवं वै भाव्यमेतेन क्षयं यास्यन्ति कौरवाः।**
**यथा त्वं भाषसे कर्ण दैवं तु बलवत्तरम् ॥३८॥**

"कर्ण! दैव बड़ा बलवान् है। तुम जैसा कहते हो, वैसा ही हो। इस युद्ध के द्वारा कौरवों का संहार होगा।

**त्वया चतुर्णां भ्रातॄणामभयं शत्रुकर्शन।**
**दत्तं तत् प्रतिजानीहि संगरप्रतिमोचनम् ॥३९॥**

"शत्रुसूदन! तुमने अपने चार भाइयों को अभय-दान दिया है। युद्ध में उन्हें छोड़ देने की प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना।

**अनामयं स्वस्ति चेति पृथाथो कर्णमब्रवीत् ।**
**तां कर्णोऽथ तथेत्युक्त्वा ततस्तौ जग्मतुः पृथक् ॥४०॥**

'तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो'—जब कुन्ती ने कर्ण से ऐसा कहा, तब कर्ण ने भी 'तथास्तु' कहकर उसकी बात मान ली । फिर वे दोनों पृथक्-पृथक् अपने-अपने स्थानों को चले गये ।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥**

# एकत्रिंशोऽध्यायः

## पाण्डव-पक्ष के सेनापति का चुनाव और पाण्डव-सेना का कुरुक्षेत्र में जमाव

वैशम्पायन उवाच

**आगम्य हस्तिनापुरादुपप्लव्यमरिन्दमः ।**
**पाण्डवानां यथावृत्तं केशवः सर्वमुक्तवान् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! शत्रुओं का दमन करनेवाले श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर से उपप्लव्य में आकर पाण्डवों को वहाँ का सारा वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह सुनाया ।

वासुदेव उवाच

**मया नागपुरं गत्वा सभायां धृतराष्ट्रजः ।**
**तथ्यं पथ्यं हितं चोक्तो न च गृह्णाति दुर्मतिः ॥२॥**

**श्रीकृष्ण ने कहा**—राजन् ! मैंने हस्तिनापुर जाकर कौरवसभा में धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन से यथार्थ, लाभदायक और हित की बात कही थी, परन्तु वह दुर्बुद्धि उसे स्वीकार नहीं करता था ।

**साम्यमादौ प्रयुक्तं मे राजन् सौभ्रात्रमिच्छता ।**
**अभेदायास्य वंशस्य प्रजानां च विवृद्धये ॥३॥**

राजन् ! मैंने सब भाइयों में श्रेष्ठ बन्धुजनोचित प्रेम बने रहने की इच्छा से पहले सामनीति का प्रयोग किया था, जिससे इस वंश में फूट न हो तथा प्रजाजनों की निरन्तर उन्नति होती रहे ।

**पुनर्भेदश्च मे युक्तो यदा साम न गृह्यते ।**
**कर्मानुकीर्तनं चैव देवमानुषसंहितम् ॥४॥**

जब उन्होंने सामनीति को ग्रहण नहीं किया, तब मैंने भेदनीति [फूट डालने] का आश्रय लिया । मैंने पाण्डवों के देव-मनुष्योचित कार्यों का वर्णन किया ।

**पुनः सामाभिसंयुक्तं सम्प्रदानमथाब्रुवम् ।**
**अभेदात् कुरुवंशस्य कार्ययोगात् तथैव च ॥५॥**

उनमें भेद उत्पन्न करने के पश्चात् फिर साम-सहित दान की बात उठाई जिससे कुरुवंश की एकता बनी रहे तथा अभीष्ट कार्य की सिद्धि हो जाए ।

**सर्वं भवतु ते राज्यं पञ्च ग्रामान् विसर्जय ।**
**अवश्यं भरणीया हि पितुस्ते राजसत्तम ॥६॥**

मैंने कहा—"नृपश्रेष्ठ ! सारा राज्य तुम्हारे पास ही रहे । तुम पाण्डवों को पाँच गाँव ही दे दो, क्योंकि तुम्हारे पिता के लिए पाण्डवों का भरण-पोषण करना भी परमावश्यक है ।"

**एवमुक्तोऽपि दुष्टात्मा नैव भागं व्यमुञ्चत ।**
**दण्डं चतुर्थं पश्यामि तेषु पापेषु नान्यथा ॥७॥**

मेरे ऐसा कहने पर भी उस दुष्टात्मा ने राज्य का कोई भाग तुम्हें देना स्वीकार नहीं किया । अब तो मैं उन पापियों पर चौथे उपाय दण्ड के प्रयोग को ही आवश्यक समझता हूँ, अन्यथा उन्हें मार्ग पर लाना असम्भव है ।

**न ते राज्यं प्रयच्छन्ति विना युद्धेन पाण्डव ।**
**विनाशहेतवः सर्वे प्रत्युपस्थितमृत्यवः ॥८॥**

पाण्डुनन्दन ! वे कौरव बिना युद्ध किये तुम्हें राज्य नहीं देंगे । उन सबके विनाश का कारण जुट गया है तथा उनका मृत्युकाल भी आ पहुँचा है ।

वैशम्पायन उवाच

**जनार्दनवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।**
**भ्रातॄनुवाच धर्मात्मा समक्षं केशवस्य ह ॥९॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! श्रीकृष्ण की बात सुनकर धर्म में ही मन लगाये रखनेवाले धर्मराज युधिष्ठिर ने केशव के सामने ही अपने भाइयों से कहा—

युधिष्ठिर उवाच

**श्रुतं भवद्भिर्यद् वृत्तं सभायां कुरुसंसदि ।**
**केशवस्यापि यद् वाक्यं तत् सर्वमवधारितम् ।।१०।।**

**युधिष्ठिर ने कहा**—कौरव-सभा में जो कुछ हुआ है, वह सब वृत्तान्त तुम लोगों ने सुन लिया । फिर श्रीकृष्ण ने भी जो बात कही है, उसे भी अच्छी प्रकार समझ लिया होगा ।

**तस्मात् सेनाविभागं मे कुरुध्वं नरसत्तमाः ।**
**अक्षौहिण्यश्च सप्तैताः समेता विजयाय वै ।।११।।**

अतः नरश्रेष्ठ वीरो ! अब तुम लोग मेरी सेना का विभाग करो । ये सात अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हो गई हैं, जो निश्चय ही हमारी विजय करानेवाली होंगी ।

**तासां ये पतयः सप्त विख्यातास्तान् निबोधत ।**
**द्रुपदश्च विराटश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।।१२।।**
**सात्यकिश्चेकितानश्च भीमसेनश्च वीर्यवान् ।**
**एते सेनाप्रणेतारो वीराः सर्वे तनुत्यजः ।।१३।।**

इन सात अक्षौहिणियों के जो सात विख्यात सेनापति हैं, उनके नामों को सुनो, वे हैं—द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, चेकितान और पराक्रमी भीमसेन । ये सभी वीर हमारे लिए अपने शरीर का भी बलिदान करने के लिए समुद्यत हैं, अतः ये ही पाण्डव-सेना के संचालक होने के योग्य हैं ।

**सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ।**
**ह्रीमन्तो नीतिमन्तश्च सर्वे युद्धविशारदाः ।**
**इष्वस्त्रकुशलाः सर्वे तथा सर्वास्त्रयोधिनः ।।१४।।**

ये सब-के-सब वेदवेत्ता, शूरवीर, उत्तम व्रत का पालन करनेवाले, मर्यादाशील, नीतिज्ञ तथा युद्ध-कुशल हैं । ये सब धनुर्वेद में निपुणता प्राप्त तथा सब प्रकार के अस्त्रों द्वारा युद्ध करने में समर्थ हैं ।

**सप्तानामपि यो नेता सेनानां प्रविभागवित् ।**
**यः सहेत रणे भीष्मं शरार्चिः पावकोपमम् ।।१५।।**
**तं तावत् सहदेवात्र प्रब्रूहि कुरुनन्दन ।**
**स्वमतं पुरुषव्याघ्र को नः सेनापतिः क्षमः ।।१६।।**

अब यह विचार करना चाहिए कि इन सातों का भी नेता कौन हो ? नेता ऐसा होना चाहिए, जो सभी सेना-विभागों को भली-भाँति जानता हो और युद्ध में बाणरूपी ज्वालाओं से प्रदीप्त अग्नि के समान तेजस्वी भीष्म का आक्रमण सह सकता हो । पुरुषसिंह कुरुनन्दन सहदेव ! पहले तुम अपना विचार प्रकट करो । हमारा प्रधान सेनापति होने योग्य कौन है ?

सहदेव उवाच

**मत्स्यो विराटो बलवान् कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।**
**प्रसहिष्यति संग्रामे भीष्मं तांश्च महारथान् ।।१७।।**

**सहदेव बोले**—बलवान्, अस्त्रविद्या में निपुण और युद्ध में उन्मत्त होकर लड़नेवाले मत्स्यनरेश विराट युद्धभूमि में भीष्म तथा अन्य महारथियों का सामना अच्छी प्रकार कर सकेंगे ।

नकुल उवाच

**श्वसुरो द्रुपदोऽस्माकं सेनाग्रं स प्रकर्षति ।**
**स द्रोणभीष्मावायान्तौ सहेदिति मतिर्मम ।।१८।।**

**नकुल ने कहा**—मेरे विचार से हमारे श्वशुर द्रुपद हमारी सेना के प्रमुख भाग का सञ्चालन करें । वे ही युद्ध के लिए सम्मुख आये हुए द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह का सामना कर सकते हैं ।

अर्जुन उवाच

**पुरुषं तं न पश्यामि यः सहेत महाव्रतम् ।**
**धृष्टद्युम्नादृते राजन्निति मे धीयते मतिः ।।१९।।**

**अर्जुन बोले**—राजन् ! मैं धृष्टद्युम्न के सिवा ऐसे किसी पुरुष को नहीं देखता, जो महान् व्रतधारी भीष्म का वेग सह सके । मेरा तो यही निश्चित मत है ।

**क्षिप्रहस्तश्चित्रयोधी मतः सेनापतिर्मम ।**
**अभेद्यकवचः श्रीमान् मातङ्ग इव यूथपः ।।२०।।**

जो शीघ्रतापूर्वक हस्तसंचालन करनेवाला, विचित्र रीति से युद्ध करने में कुशल, अभेद्य कवच से सम्पन्न और यूथपति गजराज की भाँति सुशोभित होनेवाला है, मेरी सम्मति में वह श्रीमान् धृष्टद्युम्न ही सेनापति होने के योग्य है ।

युधिष्ठिर उवाच

**यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु सेनापतिर्मम ।**
**कृतास्त्रोऽप्यकृतास्त्रो वा वृद्धो वा यदि वा युवा ।।२१।।**

**युधिष्ठिर बोले**—दशार्हकुल-तिलक श्रीकृष्ण जिसका नाम बताएँ, वही हमारी सेना का प्रधान

सेनापति हो, फिर वह अस्त्रविद्या में कुशल हो या अकुशल, वृद्ध हो अथवा युवा। [जैसा भी हो, हमें इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।]

कृष्ण उवाच

**सारवद् बलमस्माकं दुष्प्रधर्षं दुरासदम्।**
**धार्तराष्ट्रबलं संख्ये हनिष्यति न संशयः।**
**धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सेनापतिमरिन्दम ॥२२॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—हमारी सेना अति बलशाली, दुर्धर्ष और दुर्गम है। वह युद्ध में धृतराष्ट्र के पुत्रों की सेना का संहार कर डालेगी, इसमें संशय नहीं है। शत्रुदमन! मैं धृष्टद्युम्न को ही प्रधान सेनापति होने योग्य मानता हूँ।

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्ते तु कृष्णेन सम्प्रहृष्यन्नरोत्तमाः।**
**हृष्टानां सम्प्रयातानां नादः समभवन्महान् ॥२३॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन्! श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर वे नरश्रेष्ठ पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। उधर हर्ष और उत्साह में भरकर यात्रा करनेवाले सैनिकों का महान् हर्षनाद चहुँ ओर गूँज उठा।

**प्रहृष्टा दंशिता योधाः परानीकविदारणाः।**
**तेषां मध्ये ययौ राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥२४॥**

हर्ष में भरे हुए और कवच आदि से सुसज्जित वे सैनिक शत्रु-सेना को कुचल डालने का उत्साह रखते थे। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर समस्त सैनिकों के बीच में होकर चल रहे थे।

**शकटापणवेशाश्च यानयुग्यं च सर्वशः।**
**कोशं यन्त्रायुधं चैव ये च वैद्याश्चिकित्सकाः ॥२५॥**

सामान ढोनेवाली गाड़ियाँ, बाजार, डेरे-तम्बू, रथ आदि सवारी, खजाना, यन्त्र-चालित अस्त्र तथा चिकित्सा-कुशल वैद्य भी उनके साथ-साथ चले।

**फल्गु यच्च बलं किंचिद् यच्चापि कृशदुर्बलम्।**
**तत् संगृह्य ययौ राजा ये चापि परिचारकाः ॥२६॥**

राजा युधिष्ठिर ने जो सेना सारहीन, कृशकाय अथवा दुर्बल थी, उस सबको एवं अन्य परिचारकों को उपप्लव्य में एकत्र करके वहाँ से प्रस्थान किया।

**कृत्वा मूलप्रतीकारं गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः।**
**स्कन्धावारेण महता प्रययुः पाण्डुनन्दनाः ॥२७॥**

पाण्डव लोग दुर्ग की रक्षा के लिए आवश्यक स्थावर [परकोटे और खाई आदि] तथा जङ्गम [पहरेदार सैनिकों की नियुक्ति आदि] उपायों द्वारा स्त्रियों और धन आदि की सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध करके बहुत-से खेमे और तम्बू आदि साथ लेकर प्रस्थित हुए।

**आसाद्य तु कुरुक्षेत्रं व्यूढानीकाः प्रहारिणः।**
**पाण्डवाः समदृश्यन्त नर्दन्तो वृषभा इव ॥२८॥**

कुरुक्षेत्र में पहुँचकर, सेना की व्यूह-रचना करके प्रहार करने के लिए उद्यत हुए पाण्डव-सैनिक साँडों के समान गर्जना करते हुए दिखाई देने लगे।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥**

## द्वात्रिंशोऽध्यायः

### दुर्योधन की रणयात्रा के लिए तैयारी, सेनाओं का विभाजन, भीष्मजी का प्रधान सेनापति के पद पर अभिषेक और कुरुक्षेत्र में पहुँचकर शिविर-निर्माण

वैशम्पायन उवाच

**प्रतिप्रयाते तु दाशार्हे राजा दुर्योधनस्तदा।**
**कर्णं दुःशासनं चैव शकुनिं चाब्रवीदिदम् ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! दशार्हनन्दन श्रीकृष्ण के चले जाने पर राजा दुर्योधन ने कर्ण, दुःशासन और शकुनि से इस प्रकार कहा—

दुर्योधन उवाच

**अकृतेनैव कार्येण गतः पार्थानधोक्षजः।**
**स एनान्मन्युनाऽऽविष्टो ध्रुवं धक्ष्यत्यसंशयम् ॥२॥**

**दुर्योधन बोला**—श्रीकृष्ण यहाँ से सफल-मनोरथ होकर नहीं गये हैं, अतः वे क्रोध में भरकर पाण्डवों को निश्चय ही युद्ध के लिए उत्तेजित करेंगे, इसमें

तनिक भी सन्देह नहीं है।

**भविता विग्रहः सोऽयं तुमुलो लोमहर्षणः।**
**तस्मात् सांग्रामिकं सर्वं कारयध्वमतन्द्रिताः ॥३॥**

हम लोगों का पाण्डवों के साथ होनेवाला यह युद्ध अति भयंकर एवं रोमाञ्चकारी होगा। इसलिए आप सब आलस्य छोड़कर युद्ध की सारी तैयारी करो।

**शिविराणि कुरुक्षेत्रे क्रियन्तां वसुधाधिपाः।**
**प्रयाणं घुष्यतामद्य श्वोभूत इति मा चिरम् ॥४॥**

भूपालो! आप कुरुक्षेत्र में शिविर तैयार कराएँ तथा आज ही यह घोषणा कर दी जाए कि कल प्रातः ही युद्ध के लिए प्रस्थान करना है, इसमें विलम्ब नहीं होना चाहिए।

वैशम्पायन उवाच

**व्युष्टायां वै रजन्यां हि राजा दुर्योधनस्ततः।**
**व्यभजत् तान्यनीकानि दश चैकं च भारत ॥५॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! रात्रि व्यतीत होकर जब प्रभात हुआ तब राजा दुर्योधन ने अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं का विभाग किया।

**नरहस्तिरथाश्वानां सारं मध्यं च फल्गु च।**
**सर्वेष्वेतेष्वनीकेषु संदिदेश नराधिपः ॥६॥**

राजा दुर्योधन ने पैदल, हाथी, रथ और घुड़सवार—इन सभी सेनाओं में से उत्तम, मध्यम और निकृष्ट श्रेणियों को पृथक्-पृथक् करके उन्हें यथास्थान नियुक्त कर दिया।

**चतुर्युजो रथाः सर्वे सर्वे चोत्तमवाजिनः।**
**सप्रासऋष्टिकाः सर्वे सर्वे शतशरासनाः ॥७॥**

सभी रथों में चार-चार घोड़े जुते हुए थे, जो सब उत्तम नस्ल के थे तथा सभी रथों में प्रास, ऋष्टि और बहुत-से धनुष रखे गये थे। [शत=बहुनाम]

**धुर्ययोर्हययोरेकस्तथान्यौ पार्ष्णिसारथी।**
**तौ चापि रथिनां श्रेष्ठौ रथी च हयवित् तथा ॥८॥**

प्रत्येक रथ के दो-दो घोड़ों पर एक-एक रक्षक नियुक्त था। एक-एक रथ के लिए दो चक्ररक्षक नियुक्त किये गये थे। वे दोनों ही रथियों में श्रेष्ठ थे और रथी भी अश्व-संचालन की कला में कुशल था।

**यथा रथास्तथा नागा बद्धकक्षाः स्वलंकृताः।**
**बभूवुः सप्तपुरुषा रत्नवन्त इवाद्रयः ॥९॥**

जैसे रथ सजाये गये थे, वैसे ही हाथियों को भी स्वर्णमालाओं से समलंकृत किया गया था। उन सबको रस्सों से कसा गया था। उनपर सात-सात पुरुष बैठे हुए हुए थे जिनसे वे हाथी रत्नयुक्त पर्वतों के समान जान पड़ते थे।

**द्वावङ्कुशधरौ तत्र द्वावुत्तमधनुर्धरौ।**
**द्वौ वरासिधरौ राजन्नेकः शक्तिपिनाकधृक् ॥१०॥**

राजन्! उनमें से दो पुरुष अंकुश लेकर महावत का काम करते थे, दो उत्तम धनुर्धर योद्धा थे, दो पुरुष श्रेष्ठ तलवारें लिए रहते थे और एक व्यक्ति शक्ति तथा त्रिशूल धारण करता था।

**आयुक्तकवचैर्युक्तैः सपताकैः स्वलंकृतैः।**
**सादिभिश्चोपपन्नास्तु तथा चायुतशो हयाः ॥११॥**

इसी प्रकार कवचधारी, युद्ध के लिए उद्यत, आभूषणों से मण्डित तथा पताकाधारी सवारों से युक्त लाखों घोड़े उस सेना में विद्यमान थे।

**नानारूपविकाराश्च नानाकवचशस्त्रिणः।**
**पदातिनो नरास्तत्र बभूवुर्हेममालिनः ॥१२॥**

उस सेना में जो पैदल मनुष्य थे, वे भी स्वर्ण-मालाओं से विभूषित थे। उनके रूप, रंग, कवच और अस्त्रशस्त्र नाना प्रकार के दिखाई देते थे।

**तत्र दुर्योधनो राजा शूरान् बुद्धिमतो नरान्।**
**प्रसमीक्ष्य महाबाहुश्चक्रे सेनापतींस्तदा ॥१३॥**

उस समय वहाँ महाबाहु राजा दुर्योधन ने अच्छी प्रकार सोच-विचारकर बुद्धिमान् एवं शूरवीर पुरुषों को सेनापति-पद पर नियुक्त किया।

**पृथगक्षौहिणीनां च प्रणेतॄन् नरसत्तमान्।**
**विधिवत् पूर्वमानीय पार्थिवानभ्यषेचयत् ॥१४॥**
**कृपं द्रोणं च शल्यं च सैन्धवं च जयद्रथम्।**
**सुदक्षिणं च काम्बोजं कृतवर्माणमेव च ॥१५॥**
**द्रोणपुत्रं च कर्णं च भूरिश्रवसमेव च।**
**शकुनिं सौबलं चैव बाह्लीकं च महाबलम् ॥१६॥**

कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, मद्रराज शल्य, सिन्धुराज जयद्रथ, कम्बोजराज सुदक्षिण, कृतवर्मा, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, सुबलपुत्र शकुनि तथा

महाबली बाह्लीक—इन श्रेष्ठ पुरुषों और राजाओं को अपने सामने बुलाकर इन सबको पृथक्-पृथक् एक-एक अक्षौहिणी सेना का नायक नियुक्त करके विधिपूर्वक उन सबका अभिषेक किया।

**ततः शान्तनवं भीष्मं प्राञ्जलिर्धृतराष्ट्रजः।**
**सह सर्वैर्महीपालैरिदं वचनमब्रवीत् ॥१७॥**

तत्पश्चात् धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन समस्त राजाओं के साथ शान्तनुनन्दन भीष्मजी के पास जाकर हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला—

दुर्योधन उवाच

**ऋते सेनाप्रणेतारं पृतना सुमहत्यपि।**
**दीर्यते युद्धमासाद्य पिपीलिकपुटं यथा ॥१८॥**

**दुर्योधन बोला**—पितामह ! कितनी ही विशाल सेना क्यों न हो, किसी योग्य सेनापति के बिना युद्ध में जाकर चींटियों की पंक्ति के समान छिन्न-भिन्न हो जाती है।

**न हि जातु द्वयोर्बुद्धिः समा भवति कर्हिचित्।**
**शौर्यं च बलनेतृणां स्पर्धते च परस्परम् ॥१९॥**

दो पुरुषों की बुद्धि कभी समान नहीं होती। यदि दोनों ओर योग्य सेनापति हों तो उनका शौर्य एक-दूसरे की स्पर्धा=होड़ में बढ़ता है।

**ये नये कुशलं शूरं हितेप्सितमकल्मषम्।**
**सेनापतिं प्रकुर्वन्ति ते जयन्ति रणे रिपून् ॥२०॥**

जो लोग किसी नीतिनिपुण, शूरवीर, हितैषी और निष्पाप [पापरहित] व्यक्ति को सेनापति बना लेते हैं, वे संग्राम में शत्रुओं पर अवश्य विजय पाते हैं।

**भवानुशनसा तुल्यो हितैषी च सदा मम।**
**असंहार्यः स्थितो धर्मे स नः सेनापतिर्भव ॥२१॥**

आप सदा मेरा हित चाहनेवाले और नीति में शुक्राचार्य के समान हैं। आपको आपकी इच्छा के बिना कोई मार नहीं सकता। आप सदा धर्म में ही तत्पर रहते हैं, अतः आप मेरे प्रधान सेनापति का पद ग्रहण करें।

**प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः।**
**वयं त्वामनुयास्यामः सौरभेया इवर्षभम् ॥२२॥**

जैसे कार्तिकेय देवताओं के आगे-आगे चलते थे, वैसे ही आप हमारे अगुआ हों। जैसे बछड़े साँड के पीछे चलते हैं, उसी प्रकार हम आपके पीछे चलेंगे।

भीष्म उवाच

**एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत।**
**यथैव हि भवन्तो मे तथैव मम पाण्डवाः ॥२३॥**

**भीष्मजी ने कहा**—हे भारत ! तुम जैसा कहते हो वह ठीक है, परन्तु मेरे लिए जैसे तुम हो, वैसे ही पाण्डव भी हैं।

**अपि चैव मया श्रेयो वाच्यं तेषां नराधिप।**
**संयोद्धव्यं तवार्थाय यथा मे समयः कृतः ॥२४॥**

नरेश्वर ! मैं पाण्डवों को उनके पूछने पर अवश्य ही उनके हित की बात बताऊँगा तथा तुम्हारे लिए युद्ध करूँगा—ऐसी ही मैंने प्रतिज्ञा की है।

**न त्वेवोत्सादनीया मे पाण्डोः पुत्रा जनाधिप।**
**तस्माद् योधान् हनिष्यामि प्रयोगेणायुतं सदा ॥२५॥**
**एवमेषां करिष्यामि निधनं कुरुनन्दन।**
**न चेत् ते मां हनिष्यन्ति पूर्वमेव समागमे ॥२६॥**

जनेश्वर ! मैं पाण्डु के पुत्रों की हत्या किसी भी प्रकार नहीं करूँगा। कुरुनन्दन ! यदि पाण्डव इस युद्ध में मुझे पहले ही नहीं मार डालेंगे तो मैं अपने अस्त्रों के प्रयोग द्वारा प्रतिदिन उनके पक्ष के दस सहस्र योद्धाओं का वध करता रहूँगा। मैं इस प्रकार इनकी सेना का संहार करूँगा।

**सेनापतिस्त्वहं राजन् समयेनापरेण ते।**
**भविष्यामि यथाकामं तन्मे श्रोतुमिहार्हसि ॥२७॥**

राजन् ! मैं अपनी इच्छा के अनुसार एक शर्त पर तुम्हारा सेनापति बनूँगा। उसके बदले दूसरी शर्त नहीं मानूँगा। उस शर्त को तुम मुझसे सुन लो।

**कर्णो वा युध्यतां पूर्वमहं वा पृथिवीपते।**
**स्पर्धते हि सदात्यर्थं सूतपुत्रो मया रणे ॥२८॥**

राजन् ! या तो पहले कर्ण ही युद्ध कर ले अथवा मैं ही युद्ध करूँ, क्योंकि यह सूतपुत्र युद्ध में मुझसे अत्यन्त स्पर्धा रखता है।

कर्ण उवाच

**नाहं जीवति गाङ्गेये राजन् योत्स्ये कथञ्चन।**
**हते भीष्मे तु योत्स्यामि सह गाण्डीवधन्विना ॥२९॥**

**कर्ण ने कहा**—राजन् ! मैं गङ्गानन्दन भीष्म के

जीते-जी किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा। इनके मर जाने पर ही मैं गाण्डीवधारी अर्जुन के साथ युद्ध करूँगा।

वैशम्पायन उवाच

**ततः सेनापतिं चक्रे विधिवद् भूरिदक्षिणम्।**
**धृतराष्ट्रात्मजो भीष्मं सोऽभिषिक्तो व्यरोचत ॥३०॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—हे जनमेजय! तत्पश्चात् धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन ने यज्ञों में प्रचुर दक्षिणा देनेवाले [उदार] भीष्मजी का प्रधान सेनापति के पद पर विधिपूर्वक अभिषेक कर दिया।

**ततो भेरीश्च शंखांश्च शतशोऽथ सहस्रशः।**
**वादयामासुरव्यग्रा वादका राजशासनात् ॥३१॥**

तत्पश्चात् राजा दुर्योधन का आदेश पाकर बाजा बजानेवालों ने निर्भय होकर सैकड़ों और सहस्रों भेरियों और शंखों को बजाया।

**ततो भीष्मं पुरस्कृत्य भ्रातृभिः सहितस्तदा।**
**स्कन्धावारेण महता कुरुक्षेत्रं जगाम सः ॥३२॥**

तदनन्तर भीष्म पितामह को सेनापति बनाकर और उन्हें आगे रखकर दुर्योधन भाइयों के साथ हस्तिनापुर से बाहर निकला और विशाल तम्बू-शामियानों के साथ कुरुक्षेत्र को गया।

**परिक्रम्य कुरुक्षेत्रं कर्णेन सह कौरवः।**
**शिविरं मापयामास समे देशे जनाधिप ॥३३॥**

जनमेजय! कर्ण के साथ कुरुक्षेत्र में जाकर दुर्योधन ने एक समतल प्रदेश में शिविर के लिए भूमि का माप करवाया।

**मधुरानूषरे देशे प्रभूतयवसेन्धने।**
**यथैव हास्तिनपुरं तद्वच्छिबिरमाबभौ ॥३४॥**

उपजाऊ एवं मनोहर प्रदेश में जहाँ घास और ईंधन प्रभूत मात्रा में उपलब्ध था, दुर्योधन की सेना का शिविर हस्तिनापुर की भाँति सुशोभित होने लगा।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥**

# त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

**बलरामजी का पाण्डवों के शिविर में पदार्पण और उनसे विदा लेकर तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान, रुक्मी का सहायता देने के लिए आना परन्तु दोनों पक्षों द्वारा कोरा उत्तर पाकर लौट जाना**

वैशम्पायन उवाच

**तद् दृष्ट्वोपस्थितं युद्धं समासन्नं महात्ययम्।**
**प्राविशद् भवनं राजन् पाण्डवानां हलायुधः ॥१॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! उस महान् संहारकारी युद्ध को अत्यन्त सन्निकट और प्रायः उपस्थित हुआ देखकर हलधारी [हलास्त्रधारी] बलरामजी ने पाण्डवों के शिविर में प्रवेश किया।

**तं दृष्ट्वा धर्मराजश्च केशवश्च महाद्युतिः।**
**उदतिष्ठत् ततः पार्थो भीमकर्मा वृकोदरः।**
**गाण्डीवधन्वा ये चान्ये राजानस्तत्र केचन ॥२॥**

उन्हें देखते ही धर्मराज युधिष्ठिर, महातेजस्वी श्रीकृष्ण, भयंकर कर्म करनेवाले बलशाली भीमसेन, गाण्डीवधारी अर्जुन तथा अन्य जो भी नरेश वहाँ विद्यमान थे, वे सब-के-सब उठकर खड़े हो गये।

**पूजयां चक्रिरे ते वै समायान्तं हलायुधम्।**
**ततस्तं पाण्डवो राजा करे पस्पर्श पाणिना ॥३॥**

हलायुध बलरामजी को आया देख सभी ने उनका आदर-सत्कार किया। तत्पश्चात् पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिर ने उनका हस्तालिंगन किया।

**ततस्तेषूपविष्टेषु पार्थिवेषु समन्ततः।**
**वासुदेवमभिप्रेक्ष्य रौहिणेयोऽभ्यभाषत ॥४॥**

तदनन्तर उन सब राजाओं के चारों ओर बैठ जाने पर रोहिणीनन्दन बलराम ने श्रीकृष्ण की ओर देखते हुए कहा—

**भवितायं महारौद्रो दारुणः पुरुषक्षयः।**
**दिष्टमेतद् ध्रुवं मन्ये न शक्यमतिवर्तितुम् ॥५॥**

"जान पड़ता है यह महाभयंकर तथा दारुण नर-संहार होगा ही। प्रारब्ध के इस विधान को मैं अटल मानता हूँ। अब इसे टाला नहीं जा सकता।

**ध्रुवो जयः पाण्डवानामिति मे निश्चिता मतिः ।**
**तथा ह्यभिनिवेशोऽयं वासुदेवस्य भारत ॥६॥**

"मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस युद्ध में पाण्डवों की अवश्य विजय होगी । हे भारत ! श्रीकृष्ण का भी ऐसा ही दृढ़ संकल्प है ।

**उभौ शिष्यौ हि मे वीरौ गदायुद्धविशारदौ ।**
**तुल्यस्नेहोऽस्म्यतो भीमे तथा दुर्योधने नृपे ॥७॥**

"गदायुद्ध में कुशल भीमसेन और राजा दुर्योधन दोनों ही वीर मेरे शिष्य हैं, अतः मैं इन दोनों पर एक-समान स्नेह रखता हूँ ।

**तस्माद् यास्यामि तीर्थानि सरस्वत्या निषेवितुम् ।**
**न हि शक्ष्यामि कौरव्यान् नश्यमानानुपेक्षितुम् ॥८॥**

"अतः मैं सरस्वती नदी के तटवर्ती तीर्थों का सेवन करने के लिए जाऊँगा, क्योंकि मैं नष्ट होते हुए कुरुवंशियों को उस दशा में देखकर उनकी उपेक्षा नहीं कर सकूँगा ।"

**एवमुक्त्वा महाबाहुरनुज्ञातश्च पाण्डवैः ।**
**तीर्थयात्रां ययौ रामो निवर्त्य मधुसूदनम् ॥९॥**

ऐसा कहकर महाबाहु बलराम पाण्डवों से विदा ले और मधुसूदन श्रीकृष्ण को सन्तुष्ट करके तीर्थ-यात्रा के लिए चले गये ।

**एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मकस्य महात्मनः ।**
**दाक्षिणात्यपतेः पुत्रो दिक्षु रुक्मीति विश्रुतः ॥१०॥**

जनमेजय ! इसी समय दाक्षिणात्य देश के अधिपति महामना भीष्मक का पुत्र जो सम्पूर्ण दिशाओं में रुक्मी के नाम से विख्यात था, पाण्डवों के पास आया ।

**नामृष्यत पुरो योऽसौ स्वबाहुबलगर्वितः ।**
**रुक्मिण्या हरणं वीरो वासुदेवेन धीमता ॥११॥**

यह वही वीर रुक्मी था, जो अपने बाहुबल के घमण्ड में आकर पहले परम बुद्धिमान् श्रीकृष्ण द्वारा किये गये रुक्मिणी के अपहरण को सहन नहीं कर सका था ।

**स भोजराजः सैन्येन महता परिवारितः ।**
**अक्षौहिण्या महावीर्यः पाण्डवान् क्षिप्रमागमत् ॥१२॥**

महापराक्रमी भोजराज रुक्मी एक अक्षौहिणी विशाल सेना से घिरा हुआ शीघ्रतापूर्वक पाण्डवों के पास आया ।

**उवाच मध्ये वीराणां कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ।**
**सहायोऽस्मि स्थितो युद्धे यदि भीतोऽसि पाण्डव ॥१३॥**

उसने वीरों के मध्य में कुन्तीपुत्र अर्जुन से कहा, "पाण्डुनन्दन ! यदि तुम डरे हुए हो तो मैं युद्ध में तुम्हारी सहायता के लिए आ पहुँचा हूँ ।"

**न हि मे विक्रमे तुल्यः पुमानस्तीह कश्चन ।**
**करिष्यामि रणे साह्यमसह्यं तव शत्रुभिः ॥१४॥**

इस संसार में मेरे समान दूसरा पराक्रमी पुरुष नहीं है । मैं इस महायुद्ध में तुम्हारी वह सहायता करूँगा, जो तुम्हारे शत्रुओं के लिए असह्य हो उठेगी ।

**हनिष्यामि रणे भागं यन्मे दास्यसि पाण्डव ।**
**अपि द्रोणकृपौ वीरौ भीष्मकर्णावथो पुनः ॥१५॥**
**अथवा सर्व एवैते तिष्ठन्तु वसुधाधिपाः ।**
**निहत्य समरे शत्रूंस्तव दास्यामि मेदिनीम् ॥१६॥**

पाण्डुकुमार ! तुम शत्रुओं का जो भी भाग मुझे सौंप दोगे, मैं रणक्षेत्र में उसका संहार कर डालूँगा । मेरे हिस्से में द्रोणाचार्य, कृपाचार्य तथा वीरवर भीष्म एवं कर्ण ही क्यों न हों, मैं किसी को जीवित नहीं छोड़ूँगा । अथवा यहाँ पधारे हुए सब नरेश चुपचाप बैठे रहें । मैं अकेला ही रणभूमि में तुम्हारे सारे शत्रुओं का वध करके तुम्हें पृथिवी का राज्य अर्पित कर दूँगा ।

**इत्युक्तो धर्मराजस्य केशवस्य च संनिधौ ।**
**उवाच धीमान् कौन्तेयः प्रहस्य सख्यपूर्वकम् ॥१७॥**

धर्मराज युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण के सान्निध्य में रुक्मी के ऐसा कहने पर परम बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र अर्जुन ने मित्रभाव से हँसकर कहा—

**कौरवाणां कुले जातः पाण्डोः पुत्रो विशेषतः ।**
**द्रोणं व्यपदिशञ्छिष्यो वासुदेवसहायवान् ।**
**भीतोऽस्मीति कथं ब्रूयां दधानो गाण्डिवं धनुः ॥१८॥**

"वीर ! मैं कौरवों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, विशेषतः महाराज पाण्डु का पुत्र हूँ । आचार्य द्रोण को अपना गुरु मानता हूँ तथा स्वयं उनका शिष्य कहलाता हूँ । इसके सिवा कृष्णजी मेरे सहायक हैं और मैं अपने हाथ में गाण्डीव धनुष धारण करता

हूँ। ऐसी स्थिति में मैं अपने-आपको डरा हुआ कैसे कह सकता हूँ?

**युध्यमानस्य मे वीर गन्धर्वैः सुमहाबलैः।**
**सहायो घोषयात्रायां कस्तदाऽऽसीत् सखा मम ॥१९॥**

"वीरवर! कौरवों की घोषयात्रा के समय जब मैंने महाबली गन्धर्वों के साथ लोहा लिया था, उस समय कौन-सा मित्र मेरी सहायता के लिए आया था?

**तथा प्रतिभये तस्मिन् देवदानवसंकुले।**
**खाण्डवे युध्यमानस्य कः सहायस्तदाभवत् ॥२०॥**

"खाण्डव वन में देवताओं और दानवों से परिपूर्ण भयंकर युद्ध में जब मैं अपने प्रतिपक्षियों के साथ युद्ध कर रहा था, उस समय मेरा कौन सहायक था?

**तथा विराटनगरे कुरुभिः सह संगरे।**
**युध्यतो बहुभिस्तत्र कः सहायोऽभवन्मम ॥२१॥**

"इसी प्रकार विराटनगर में जब कौरवों के साथ होनेवाले संग्राम में मैं अकेला ही बहुत-से वीरों के साथ युद्ध कर रहा था, उस समय मेरा सहायक कौन था?

**कथमस्मद्विधो ब्रूयाद् भीतोऽस्मीति यशोहरम्।**
**वचनं नरशार्दूल वज्रायुधमपि स्वयम् ॥२२॥**

"नरश्रेष्ठ! मुझ-जैसा पुरुष साक्षात् वज्रधारी इन्द्र के सामने भी—"मैं डरा हुआ हूँ" ऐसा सुयश का नाश करनेवाला वचन कैसे कह सकता है?

**नास्मि भीतो महाबाहो सहायार्थश्च नास्ति मे।**
**यथाकामं यथायोगं गच्छ वान्यत्र तिष्ठ वा ॥२३॥**

"महाबाहो! मैं डरा हुआ नहीं हूँ तथा मुझे सहायता की भी आवश्यकता नहीं है। आप अपनी इच्छानुसार जैसा उचित समझें अन्यत्र चले जाइए अथवा यहीं ठहरिए।"

**विनिवर्त्य ततो रुक्मी सेनां सागरसंनिभाम्।**
**दुर्योधनमुपागच्छत् तथैव भरतर्षभ ॥२४॥**

भरतश्रेष्ठ! अर्जुन का यह वचन सुनकर रुक्मी अपनी समुद्र के समान विशाल सेना को लौटाकर उसी प्रकार दुर्योधन के पास गया।

**तथैव चाभिगम्यैनमुवाच वसुधाधिपः।**
**प्रत्याख्यातश्च तेनापि स तदा शूरमानिना ॥२५॥**

राजा रुक्मी ने दुर्योधन से मिलकर उससे भी वैसी ही बातें कहीं। तब अपने को शूर माननेवाले दुर्योधन ने भी उसकी सहायता लेने से इन्कार कर दिया।

**द्वावेव तु महाराज तस्माद् युद्धादपेयतुः।**
**रौहिणेयश्च वार्ष्णेयो रुक्मी च वसुधाधिप ॥२६॥**

महाराज जनमेजय! उस युद्ध से दो ही वीर अलग रहे थे—एक तो वृष्णिवंशी रोहिणीनन्दन बलराम तथा दूसरा राजा रुक्मी।

**तीर्थयात्रां गते रामे भीष्मकस्य सुते तथा।**
**उपाविशन् पाण्डुपुत्रा मन्त्राय पुनरेव च ॥२७॥**

बलरामजी के तीर्थयात्रा पर तथा भीष्मकपुत्र रुक्मी के अपने नगर को लौट जाने पर पाण्डवों ने पुनः गुप्त मन्त्रणा के लिए बैठक की।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥**

## चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

**दुर्योधन का उलूक को दूत बनाकर पाण्डवों के पास भेजना, उलूक का पाण्डवों के पास जाकर भरी सभा में दुर्योधन का सन्देश सुनाना, पाण्डवपक्ष की ओर से दुर्योधन के सन्देश का उत्तर**

जनमेजय उवाच

**तथा व्यूढेष्वनीकेषु कुरुक्षेत्रे द्विजर्षभ।**
**किमकुर्वंश्च कुरवः कालेनाभिप्रचोदिताः ॥१॥**

**जनमेजय ने पूछा**—द्विजश्रेष्ठ! जब इस प्रकार कुरुक्षेत्र में सेनाएँ मोर्चा बाँधकर खड़ी हो गईं, तब कालप्रेरित कौरवों ने क्या किया

वैशम्पायन उवाच

**तथा व्यूढेष्वनीकेषु यत्तेषु भरतर्षभ।**
**धृतराष्ट्रो महाराज संजयं वाक्यमब्रवीत् ॥२॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**— भरतकुल-तिलक, महाराज! जब वे सभी सेनाएँ कुरुक्षेत्र में व्यूहरचना-पूर्वक डट गईं, तब धृतराष्ट्र ने संजय से कहा—

**एहि संजय सर्वं मे आचक्ष्वानवशेषतः ।**
**सेनानिवेशे यद् वृत्तं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥३॥**

संजय ! यहाँ आओ तथा कौरवों और पाण्डवों की सेना के पड़ाव पड़ जाने पर वहाँ जो कुछ हुआ, वह सब मुझे पूर्णरूप से बताओ ।

संजय उवाच

**हिरण्वत्यां निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।**
**न्यविशन्त महाराज कौरवेया यथाविधि ॥४॥**

**संजय कहते हैं**—महाराज ! महात्मा पाण्डवों ने जब हिरण्वती नदी के तट पर अपना पड़ाव डाल दिया, तब कौरवों ने भी विधिपूर्वक दूसरे स्थान पर अपनी छावनी डाल दी ।

**तत्र दुर्योधनो राजा निवेश्य बलमोजसा ।**
**सम्भाषित्वा च कर्णेन भ्रात्रा दुःशासनेन च ॥५॥**
**सौबलेन च राजेन्द्र मन्त्रयित्वा नरर्षभ ।**
**आहूयोपह्वरे राजन्नुलूकमिदमब्रवीत् ॥६॥**

राजेन्द्र ! भरतनन्दन ! नरश्रेष्ठ ! राजा दुर्योधन ने अपनी शक्तिशाली सेना को वहाँ ठहराकर कर्ण, भाई दुःशासन तथा सुबलपुत्र शकुनि से सम्भाषण एवं परामर्श करके उलूक को एकान्त में बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

**उलूक गच्छ कैतव्य पाण्डवान् सहसोमकान् ।**
**गत्वा मम वचो ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः ॥७॥**

द्यूतकुशल शकुनिपुत्र उलूक ! तुम सोमकों तथा पाण्डवों के पास जाओ तथा वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण के समक्ष उनसे मेरा यह संदेश कहो—

**यदेतत् कत्थनावाक्यं संजयो महदब्रवीत् ।**
**वासुदेवसहायस्य गर्जतः सानुजस्य ते ॥८॥**
**मध्ये कुरूणां कौन्तेय तस्य कालोऽयमागतः ।**
**यथा वः सम्प्रतिज्ञातं तत् सर्वं क्रियतामिति ॥९॥**

"कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ! श्रीकृष्ण की सहायता पाकर भाइयोंसहित गर्जना करते हुए तुमने संजय से जो आत्मश्लाघापूर्ण बातें कहीं थीं और जिन्हें संजय ने कौरवसभा में बहुत बढ़ा-चढ़ाकर सुनाया था, उन सबको सत्य करके दिखाने का अवसर आ गया है । तुम लोगों ने जो-जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, अब उन्हें पूरा करो ।"

**भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सोमकैश्च सकेकयैः ।**
**कथं वा धार्मिको भूत्वा त्वमधर्मे मनः कृथाः ॥१०॥**

[युधिष्ठिर से कहना—] "राजन् ! तुम तो अपने सभी भाइयों, सोमकों और केकयोंसहित बड़े धर्मात्मा बनते हो । धर्मात्मा होकर तुम अधर्म में मन कैसे लगा रहे हो ?

**अन्यथा किल ते वाक्यमन्यथा कर्म दृश्यते ।**
**दम्भनार्थाय लोकस्य वेदाश्चोपशमश्च ते ॥११॥**

"तुम्हारी बातें तो कुछ और हैं, परन्तु कर्म कुछ और ही ढंग के दिखाई देते हैं । तुम्हारा वेदाध्ययन और शान्तस्वभाव लोगों को दिखाने के लिए पाखण्डमात्र है ।

**यच्च कृष्णमवोचस्त्वमायान्तं कुरुसंसदि ।**
**अयमस्मि स्थितो राजन् शमाय समराय च ॥१२॥**
**तस्यायमागतः कालः समरस्य नराधिप ।**
**किं नु युद्धात् परं लाभं क्षत्रियो बहु मन्यते ॥१३॥**

"तुमने कौरवसभा में आते हुए श्रीकृष्ण से जो यह संदेश दिलाया था कि—'राजन् ! मैं शान्ति और युद्ध दोनों के लिए तैयार हूँ ।' नरेश्वर ! उस संग्राम का यह उपयुक्त अवसर आ गया है । भला, क्षत्रिय युद्ध से बढ़कर दूसरे किस लाभ को महत्त्व देता है ?"

**ब्रूयास्त्वं वासुदेवं च पाण्डवानां समीपतः ।**
**आत्मार्थं पाण्डवार्थं च यत्ता मां प्रति योधय ॥१४॥**

उलूक ! तुम पाण्डवों के समीप वासुदेव श्रीकृष्ण से भी कहना—"जनार्दन ! अब तुम पूरी तैयारी और तत्परता के साथ अपनी और पाण्डवों की भलाई के लिए मेरे साथ युद्ध करो ।"

**तं च तूबरकं बालं बह्वाशिनमविद्यकम् ।**
**उलूक मद्वचो ब्रूहि ह्यसकृद्भीमसेनकम् ॥१५॥**

उलूक ! उस बिना मूँछों के मर्द [अथवा भार-वाहक बैल], अधिक खानेवाले, अज्ञानी और मूर्ख भीमसेन से भी बार-बार मेरा यह सन्देश कहना—

**प्रतिज्ञातं सभामध्ये न तन्मिथ्या त्वया पुरा ।**
**दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते ॥१६॥**

"पहले कौरवसभा में तूने जो प्रतिज्ञा की थी,

वह मिथ्या नहीं होनी चाहिए। यदि तुममें शक्ति हो तो आकर दुःशासन का रक्तपान करना।

**त्वं हि भोज्ये पुरस्कार्यो भक्ष्ये पेये च भारत।**
**क्व युद्धं क्व च भोक्तव्यं युध्यस्व पुरुषो भव ॥१७॥**

"हे भारत! तुम तो निरे भोजनभट्ट हो, अतः अधिक खाने-पीने में पुरस्कार पाने योग्य हो। कहाँ युद्ध और कहाँ भोजन? शक्ति हो तो युद्ध करो और मर्द बनो।"

**उलूक नकुलं ब्रूहि वचनान्मम भारत।**
**युध्यस्वाद्य स्थिरो भूत्वा पश्यामस्तव पौरुषम् ॥१८॥**

उलूक! नकुल से भी कहना—"भारत! तुम मेरे कहने से अब स्थिरतापूर्वक युद्ध करो। हम तुम्हारा पौरुष देखेंगे।"

**ब्रूयास्त्वं सहदेवं च राजमध्ये वचो मम।**
**युद्धेचेदानीं रणे यत्तः क्लेशान् स्मर च पाण्डव ॥१९॥**

उलूक! तुम राजाओं के मध्य में सहदेव से भी मेरा यह सन्देश कहना—"पाण्डुनन्दन! पहले दिये हुए क्लेशों को स्मरण कर लो और अब तत्पर होकर रणक्षेत्र में युद्ध करो।"

**धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यं ब्रूयास्त्वं वचनान्मम।**
**एष ते समयः प्राप्तो लब्धव्यश्च त्वयापि सः ॥२०॥**

फिर पाञ्चालकुमार धृष्टद्युम्न को भी मेरा यह सन्देश सुना देना—"राजकुमार! यह तुम्हारे योग्य समय प्राप्त हुआ है। तुम्हें आचार्य द्रोण अपने सामने ही मिल जाएँगे।"

**एवमुक्त्वा ततो राजा प्रहस्योलूकमब्रवीत्।**
**धनञ्जयं पुनर्ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः ॥२१॥**

ऐसा कहकर राजा दुर्योधन खिलखिलाकर हँस पड़ा। तदनन्तर उलूक से पुनः यह कहा—"उलूक! तुम वसुदेवनन्दन कृष्ण के सामने ही अर्जुन से इस प्रकार कहना—

**अस्मान् वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम्।**
**अथवा निर्जितोऽस्माभी रणे वीर शयिष्यसे ॥२२॥**

"वीर धनंजय! या तो तुम हम लोगों को परास्त करके इस पृथिवी पर शासन करो अथवा हमारे द्वारा मारे जाकर सदा के लिए युद्धभूमि में सो जाओ।

**राष्ट्रान्निर्वासितक्लेशं वनवासं च पाण्डव।**
**कृष्णायाश्च परिक्लेशं संस्मरन् पुरुषो भव ॥२३॥**

"पाण्डुनन्दन! राज्य से निर्वासित होने, वन में निवास करने तथा द्रौपदी के अपमानित होने के क्लेशों को स्मरण करके अब तो मर्द बनो।

**बलं वीर्यं च शौर्यं च परं चाप्यस्त्रलाघवम्।**
**पौरुषं दर्शयन्युद्धे कोपस्य कुरु निष्कृतिम् ॥२४॥**

"तुम संग्राम में बल, पराक्रम, उत्तम शौर्य, अस्त्र-संचालन की फुर्ती और पुरुषार्थ दिखाते हुए अपने बढ़े हुए क्रोध को [हमारे ऊपर छोड़कर] शान्त कर लो।"

**सेनानिवेशं सम्प्राप्तः कैतव्यः पाण्डवस्य ह।**
**समागतः पृथापुत्रैर्युधिष्ठिरमभाषत ॥२५॥**

महाराज धृतराष्ट्र! दुर्योधन का वह सन्देश लेकर जुआरी शकुनि का पुत्र उलूक पाण्डवों की छावनी में जाकर उनसे मिला और युधिष्ठिर से इस प्रकार बोला—

**अभिज्ञो दूतवाक्यानां यथोक्तं ब्रुवतो मम।**
**दुर्योधनसमादेशं श्रुत्वा न क्रोद्धुमर्हसि ॥२६॥**

राजन्! आप दूत के वचनों का मर्म जाननेवाले हैं। दुर्योधन ने आपके लिए जो सन्देश दिया है, उसे मैं ज्यों-का-त्यों दोहरा दूंगा। उसे सुनकर आपको मुझपर कुपित नहीं होना चाहिए।

युधिष्ठिर उवाच

**उलूक न भयं तेऽस्ति ब्रूहि त्वं विगतज्वरः।**
**यन्मतं धार्तराष्ट्रस्य लुब्धस्यादीर्घदर्शिनः ॥२७॥**

**युधिष्ठिर बोले**—उलूक! तुम तनिक भी भय मत करो। तुम निश्चिन्त होकर लोभी और अदूरदर्शी दुर्योधन का अभिप्राय सुनाओ।

सञ्जय उवाच

**ततो द्युतिमतां मध्ये पाण्डवानां महात्मनाम्।**
**सृञ्जयानां च मत्स्यानां कृष्णस्य च यशस्विनः ॥२८**
**द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च सन्निधौ।**
**भूमिपानां च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद् सः ॥२९॥**

**सञ्जय कहते हैं**—तब वहाँ बैठे हुए तेजस्वी महात्मा पाण्डवों, सृञ्जयों, मत्स्यों, यशस्वी श्रीकृष्ण तथा पुत्रोंसहित द्रुपद और विराट के समीप समस्त

राजाओं के मध्य में उलूक ने दुर्योधन का सन्देश ज्यों-का-त्यों कह सुनाया।

**तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रुषिताः पाण्डवा भृशम्।**
**उत्स्मयन्निव दाशार्हः कैतव्यं प्रत्यभाषत ॥३०॥**

उसकी बात सुनकर पाण्डव बहुत क्रुद्ध हुए, तब दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्ण ने उलूक से मुस्कराते हुए-से कहा—

**प्रयाहि शीघ्रं कैतव्य ब्रूयाश्चैव सुयोधनम्।**
**श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत् ते तथास्तु तत् ॥३१॥**

"द्यूतकुशल शकुनिपुत्र उलूक! तू शीघ्र लौट जा और दुर्योधन से कह दे—'पाण्डवों ने तुम्हारे सन्देश को सुनकर तथा उसके अर्थ को समझकर स्वीकार कर लिया है। युद्ध के विषय में जैसा तुम्हारा मत है, वैसा ही हो।"

भीम उवाच

**श्रुतं ते वचनं मूर्ख यत् त्वां दुर्योधनोऽब्रवीत्।**
**तन्मे कथयतो मन्द शृणु वाक्यं दुरासदम् ॥३२॥**
**सर्वक्षत्रस्य मध्ये तं यद् वक्ष्यसि सुयोधनम्।**
**शृण्वतः सूतपुत्रस्य पितुश्च ते दुरात्मनः ॥३३॥**

**भीमसेन बोले**—अरे मूर्ख! दुर्योधन ने तुझसे जो कुछ कहा है, वह तेरा वचन हमने सुन लिया। मन्दबुद्धि! अब तू मेरी कही हुई दुःसह बातें सुन तथा समस्त राजाओं की मण्डली में सूतपुत्र कर्ण और अपने दुरात्मा पिता शकुनि के सामने दुर्योधन को सुना देना।

**मयापि च प्रतिज्ञातो वधः सभ्रातृकस्य ते।**
**स तथा भविता पाप नात्र कार्या विचारणा ॥३४॥**

पापी! मैंने जो तेरे और तेरे भाइयों के वध की प्रतिज्ञा की है, वह उसी रूप में पूर्ण होगी। इस विषय में तुझे कोई दूसरा विचार नहीं करना चाहिए।

**वेलामतिक्रमेत् सद्यः सागरो वरुणालयः।**
**पर्वताश्च विशीर्येयुर्मयोक्तं न मृषा भवेत् ॥३५॥**

वरुणालय समुद्र चाहे शीघ्र ही अपनी सीमा का उल्लङ्घन कर जाए और पर्वत जीर्ण-शीर्ण होकर बिखर जाएँ, परन्तु मेरी की हुई प्रतिज्ञा मिथ्या नहीं हो सकती।

युधिष्ठिर उवाच

**उलूक गच्छ कैतव्य ब्रूहि तात सुयोधनम्।**
**कृतघ्नं वैरपुरुषं दुर्मतिं कुलपांसनम् ॥३६॥**

**युधिष्ठिर ने कहा**—जुआरी शकुनि के पुत्र, तात उलूक! तुम जाओ और वैर के मूर्तिमान स्वरूप उस कृतघ्न, दुर्बुद्धि और कुलकलङ्क दुर्योधन से यह कह देना—

**स्ववीर्याद् यः पराक्रम्य पाप आह्वयते परान्।**
**अभीतः पूरयन् वाक्यमेष वै क्षत्रियः पुमान् ॥३७॥**

पापात्मन्! जो किसी से भयभीत न होकर अपने वचनों का पालन करता है तथा अपने ही बाहु-बल से पराक्रम प्रकट करके शत्रुओं को युद्ध के लिए ललकारता है, वही पुरुष क्षत्रिय है।

**त्वं पापः क्षत्रियो भूत्वा अस्मानाहूय संयुगे।**
**मान्यामान्यान् पुरस्कृत्य युद्धं मा गाः कुलाधम ॥३८॥**

कुलाधम! तू पापी है। देख, क्षत्रिय होकर और हम लोगों का युद्ध के लिए आह्वान करके ऐसे लोगों को आगे करके युद्धभूमि में मत आना, जो हमारे माननीय वृद्ध गुरुजन और स्नेहास्पद बालक हों।

**आत्मवीर्यं समाश्रित्य भृत्यवीर्यं च कौरव।**
**आह्वयस्व रणे पार्थान् सर्वथा क्षत्रियो भव ॥३९॥**

कुरुनन्दन! तू अपने तथा भरणीय सेवकवर्ग के बल और पराक्रम का आश्रय लेकर ही कुन्तीपुत्रों का युद्ध के लिए आह्वान कर। सब प्रकार से क्षत्रियत्व का परिचय दे।

**परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान्।**
**अशक्तः स्वयमादातुमेतदेव नपुंसकम् ॥४०॥**

जो स्वयं सामना करने में असमर्थ होने के कारण दूसरों के पराक्रम का भरोसा करके शत्रुओं को युद्ध के लिए ललकारता है, उसका यह कार्य उसकी नपुंसकता का ही सूचक है।

**स त्वं परेषां वीर्येण आत्मानं बहु मन्यसे।**
**कथमेवमशक्तस्त्वमस्मान् समभिगर्जसि ॥४१॥**

तू तो दूसरों के ही बल पर अपने-आपको बहुत बलशाली समझता है परन्तु ऐसा असमर्थ होकर तू हमारे सामने गर्जना क्यों कर रहा है?

श्रीकृष्ण उवाच

**मद्वचश्चापि भूयस्ते वक्तव्यः स सुयोधनः ।**
**श्व इदानीं प्रपद्येथाः पुरुषो भव दुर्मते ॥४२॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—उलूक ! युधिष्ठिर के सन्देश के पश्चात् तू दुर्योधन से मेरी बात भी कह देना—"दुर्मते ! अब कल ही तू युद्धक्षेत्र में आ जा तथा अपने पुरुषत्व का परिचय दे ।

**मन्यसे यच्च मूढ त्वं न योत्स्यति जनार्दनः ।**
**सारथ्येन वतः पार्थैरिति त्वं न बिभेषि च ॥४३॥**

"मूढ़ ! तू जो यह समझता है कि कुन्ती के पुत्रों ने श्रीकृष्ण से सारथि बनने का अनुरोध किया है, अतः वे युद्ध नहीं करेंगे, कदाचित् इसीलिए तू मुझसे नहीं डर रहा है ।

**जघन्यकालमप्येतन्न भवेत् सर्वपार्थिवान् ।**
**निर्दहेयमहं क्रोधात् तृणानीव हुताशनः ॥४४॥**

"परन्तु स्मरण रख, यदि मैं चाहूँ तो इन सम्पूर्ण नरेशों को अपनी क्रोधाग्नि से वैसे ही भस्म कर सकता हूँ, जैसे अग्नि घास-फूस को जला डालती है। किन्तु मेरी इच्छा है कि युद्ध के अन्त तक मुझे ऐसा अवसर न मिले ।

**यद्युत्पतसि लोकाँस्त्रीन् यद्याविशसि भूतलम् ।**
**तत्र तत्रार्जुनरथं प्रभाते द्रक्ष्यसि पुनः ॥४५॥**

"अब तू यदि तीनों लोकों से ऊपर उड़ जाए अथवा पृथिवी में समा जाए तो भी [तू जहाँ-जहाँ जाएगा] वहाँ-वहाँ प्रातःकाल अर्जुन का रथ पहुँचा हुआ देखेगा ।

**यच्चापि भीमसेनस्य मन्यसे मोघभाषितम् ।**
**दुःशासनस्य रुधिरं पीतमद्यावधारय ॥४६॥**

"और जो तू भीमसेन की कही हुई बातों को व्यर्थ समझने लगा है, वह भी ठीक नहीं है । तू आज ही निश्चित रूप से समझ ले कि भीमसेन ने दुःशासन का रक्तपान कर लिया ।"

अर्जुन उवाच

**स्ववीर्यं यः समाश्रित्य समाह्वयति वै परान् ।**
**अभीतो युध्यते शत्रून् स वै पुरुष उच्यते ॥४७॥**

**अर्जुन ने कहा**—जो अपने ही बल-पराक्रम का भरोसा करके शत्रुओं को ललकारता है तथा उनके साथ निर्भय होकर युद्ध करता है, वही पुरुष कहलाता है ।

**परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान् ।**
**क्षत्रबन्धुरशक्तत्वाल्लोके स पुरुषाधमः ॥४८॥**

जो दूसरे के बल-पराक्रम का आश्रय लेकर शत्रुओं को युद्ध के लिए आहूत करता है [बुलाता है] वह क्षत्रबन्धु असमर्थ होने के कारण लोक में पुरुषाधम कहा गया है ।

**स त्वं परेषां वीर्येण मन्यसे वीर्यमात्मनः ।**
**स्वयं कापुरुषो मूढ पराँश्च क्षेप्तुमिच्छसि ॥४९॥**

मूढ़ ! तू दूसरों के पराक्रम से ही अपने को शक्तिशाली मानता है और स्वयं कायर होकर दूसरों पर आक्षेप करना चाहता है ।

**यस्त्वं वृद्धं सर्वराज्ञां हितबुद्धिं जितेन्द्रियम् ।**
**मरणाय महाप्रज्ञं दीक्षयित्वा विकत्थसे ॥५०॥**

जो सब राजाओं में वृद्ध, सबके हितैषी, जितेंद्रिय और महाज्ञानी हैं, उन्हीं पितामह को तू मरण के लिए रण की दीक्षा दिलाकर अपनी वीरता की डींग हाँकता है ।

**भावस्ते विदितोऽस्माभिर्दुर्बुद्धे कुलपांसन ।**
**न हनिष्यन्ति गाङ्गेयं पाण्डवा घृणयेति हि ॥५१॥**

खोटी बुद्धिवाले कुलकलङ्क ! तेरा मनोभाव हमने समझ लिया है । तू समझता है कि पाण्डव-लोग दया के कारण गङ्गानन्दन भीष्म का वध नहीं करेंगे ।

**यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्तराष्ट्र विकत्थसे ।**
**हन्तास्मि प्रथमं भीष्मं मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥५२॥**

धृतराष्ट्रपुत्र ! तू जिनके पराक्रम का आश्रय लेकर बड़ी-बड़ी बातें बनाता है, उन पितामह भीष्म को ही मैं सबसे पहले तेरे समस्त धनुर्धरों के देखते-देखते मार डालूँगा ।

**शान्ते भीष्मे तथा द्रोणे सूतपुत्रे च पातिते ।**
**निराशो जीविते राज्ये पुत्रेषु च भविष्यसि ॥५३॥**

भीष्म, द्रोणाचार्य और सूतपुत्र कर्ण के मारे जाने पर तू अपने जीवन, राज्य तथा पुत्रों की रक्षा की ओर से निराश हो जाएगा ।

**भ्रातॄणां निधनं श्रुत्वा पुत्राणां च सुयोधन ।**
**भीमसेनेन निहतो दुष्कृतानि स्मरिष्यसि ।।५४।।**

सुयोधन ! तू अपने भाइयों और पुत्रों का मरण सुनकर तथा भीमसेन के हाथ से स्वयं भी मारा जाकर अपने पापों को याद करेगा ।

**न द्वितीयां प्रतिज्ञां हि प्रतिजानामि कैतव ।**
**सत्यं ब्रवीम्यहं ह्येतत् सर्वं सत्यं भविष्यति ।।५५।।**

शकुनिपुत्र ! मैं दूसरी बार प्रतिज्ञा करना नहीं जानता । मैं तुझसे सच्ची बात कहता हूँ, यह सब-कुछ होकर रहेगा ।

युधिष्ठिर उवाच

**स्वेन वृत्तेन मे वृत्तं नाधिगन्तुं त्वमर्हसि ।**
**उभयोरन्तरं वेद सूनृतानृतयोरपि ।।५६।।**

**युधिष्ठिर ने कहा**—"सुयोधन ! तुझे अपने आचरण के अनुसार ही मेरे आचरण को नहीं समझना चाहिए । मैं दोनों के व्यवहार का तथा सत्य और झूठ का भी अन्तर समझता हूँ ।

**न चाहं कामये पापमपि कीटपिपीलयोः ।**
**किं पुनर्ज्ञातिषु वधं कामयेयं कथञ्चन ।।५७।।**

"मैं तो कीड़ों और चींटियों को भी कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता, फिर अपने भाई-बन्धुओं अथवा कुटुम्बीजनों के वध की कामना कैसे कर सकता हूँ ?

**एतदर्थं मया तात पञ्च ग्रामा वृताः पुरा ।**
**कथं तव सुदुर्बुद्धे न प्रेक्षे व्यसनं महत् ।।५८।।**

"तात ! इसीलिए पहले मैंने केवल पाँच ही ग्राम माँगे थे । दुर्बुद्धे ! मेरा ऐसा करने का यही उद्देश्य था कि किसी प्रकार तेरे ऊपर महान् संकट आया हुआ न देखूँ ।

**स त्वं कामपरीतात्मा मूढभावाच्च कत्थसे ।**
**तथैव वासुदेवस्य न गृह्णासि हितं वचः ।।५९।।**

"परन्तु तेरा मन लोभ और तृष्णा में डूबा हुआ है । तू मूर्खता के कारण अपनी झूठी प्रशंसा करता है तथा श्रीकृष्ण के हितकारक वचन को भी नहीं मान रहा है ।

**किं चेदानीं बहूक्तेन युध्यस्व सह बान्धवैः ।**
**श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत्ते तथास्तु तत् ।।६०।।**

"अब इस समय अधिक कहने से क्या लाभ ! तू अपने भाई-बन्धुओं के साथ आकर युद्ध कर । तेरा सन्देश सुन लिया तथा उसका अभिप्राय जान लिया । तेरी जैसी इच्छा है, वैसा ही हो ।"

धृष्टद्युम्न उवाच

**सुयोधनो मम वचो वक्तव्यो नृपतेः सुतः ।**
**अहं द्रोणं हनिष्यामि सगणं सहबान्धवम् ।।६१।।**

**धृष्टद्युम्न बोला**—उलूक ! तू राजपुत्र दुर्योधन से मेरी भी यह बात कह देना—"मैं द्रोणाचार्य को उनके गणों और बन्धु-बान्धवोंसहित मार डालूँगा ।"

संजय उवाच

**उलूकस्तु ततो राजन् धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।**
**आमन्त्र्य प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः ।।६२।।**

**संजय कहते हैं**—राजन् ! तत्पश्चात् उलूक धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर से विदा ले, जहाँ राजा दुर्योधन था, वहीं चला गया ।

**उलूकस्तत आगम्य दुर्योधनममर्षणम् ।**
**अर्जुनस्य समादेशं यथोक्तं सर्वमब्रवीत् ।**
**वासुदेवस्य भीमस्य धर्मराजस्य पौरुषम् ।।६३।।**

वहाँ आकर उलूक ने अमर्षशील दुर्योधन को अर्जुन का सारा सन्देश ज्यों-का-त्यों सुना दिया । इसी प्रकार उसने श्रीकृष्ण, भीमसेन और धर्मराज युधिष्ठिर की पुरुषार्थभरी बातों का भी वर्णन किया ।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३४।।**

# पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

## कौरवपक्ष के रथी, महारथी और अतिरथियों का वर्णन, कर्ण और भीष्म का रोषपूर्ण संवाद, दुर्योधन द्वारा उसका निवारण

धृतराष्ट्र उवाच

**फाल्गुनेन प्रतिज्ञाते वधे भीष्मस्य संयुगे।**
**किमकुर्वत मे मन्दाः पुत्रा दुर्योधनादयः ॥१॥**

**धृतराष्ट्र ने पूछा**—संजय! जब अर्जुन ने युद्ध-भूमि में भीष्म का वध करने की प्रतिज्ञा कर ली, तब दुर्योधन आदि मेरे मूर्ख पुत्रों ने क्या किया?

**सेनापत्यं च सम्प्राप्य कौरवाणां धुरन्धरः।**
**किमचेष्टत गाङ्गेयो महाबुद्धिपराक्रमः ॥२॥**

कौरवकुल का भारवाहन करनेवाले परम बुद्धिमान् और पराक्रमी गङ्गापुत्र भीष्म ने सेनापति का पद प्राप्त करके युद्ध के लिए कौन-सी चेष्टा की।

संजय उवाच

**सेनापत्यमनुप्राप्य भीष्मः शान्तनवो नृप।**
**दुर्योधनमुवाचेदं वचनं हर्षयन्निव ॥३॥**

**संजय ने कहा**—नरेश्वर! सेनापति का पद प्राप्त करके शान्तनुनन्दन भीष्म ने दुर्योधन का हर्ष बढ़ाते हुए-से उनसे यह बात कही—

**अहं योत्स्यामि तत्त्वेन पालयँस्तव वाहिनीम्।**
**यथावच्छास्त्रतो राजन् व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥४॥**

"राजन्! मैं तुम्हारी सेना की रक्षा करता हुआ शास्त्रीय विधान के अनुसार यथार्थ रूप से पाण्डवों के साथ युद्ध करूंगा, अतः तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिए।"

दुर्योधन उवाच

**विद्यते मे न गाङ्गेय भयं देवासुरेष्वपि।**
**समस्तेषु महाबाहो सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥५॥**

**दुर्योधन बोला**—महाबाहु गङ्गानन्दन! मैं आपसे सत्य कहता हूँ, मुझे सम्पूर्ण देवताओं और असुरों से भी कभी भय नहीं होता है।

**किं पुनस्त्वयि दुर्धर्षे सेनापत्ये व्यवस्थिते।**
**द्रोणे च पुरुषव्याघ्रे स्थिते युद्धाभिनन्दिनि ॥६॥**

फिर जब आप-जैसे दुर्धर्ष वीर हमारे सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित हैं और युद्ध का अभिनन्दन करनेवाले पुरुषसिंह द्रोणाचार्य जैसे योद्धा मेरे लिए युद्धभूमि में उपस्थित हैं, तब तो मुझे भय हो ही कैसे सकता है?

**भवद्भ्यां पुरुषाग्र्याभ्यां स्थिताभ्यां विजये मम।**
**न दुर्लभं कुरुश्रेष्ठ देवराज्यमपि ध्रुवम् ॥७॥**

कुरुश्रेष्ठ! जब आप दोनों पुरुष प्रवर वीर मेरी विजय के लिए यहाँ खड़े हैं तब तो निश्चय ही मेरे लिए देवताओं का राज्य भी दुर्लभ नहीं है।

**रथसंख्यां तु कार्त्स्न्येन परेषामात्मनस्तथा।**
**तथैवातिरथानां च वेत्तुमिच्छामि कौरव ॥८॥**

कुरुनन्दन! आप शत्रुओं तथा अपने पक्ष के रथियों और अतिरथियों की संख्या को पूर्णरूप से जानते हैं, मैं भी आपसे इस विषय की जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ।

भीष्म उवाच

**गान्धारे शृणु राजेन्द्र रथसंख्यां स्वके बले।**
**ये रथाः पृथिवीपाल तथैवातिरथाश्च ये ॥९॥**

**भीष्मजी बोले**—राजेन्द्र! गान्धारीनन्दन! तुम अपनी सेना के रथियों की संख्या श्रवण करो। भूपाल! तुम्हारी सेना में जो रथी तथा अतिरथी हैं, मैं उन सबका वर्णन करता हूँ।

**भवानग्रे रथोदारः सह सर्वैः सहोदरैः।**
**दुःशासनप्रभृतिभिर्भ्रातृभिः शतसम्मितैः ॥१०॥**

सबसे प्रथम अपने दुःशासन आदि सौ सहोदर भाइयों के साथ तुम्हीं बहुत बड़े उदार रथी हो।

**तथाहं भरतश्रेष्ठ सर्वसेनापतिस्तव।**
**शत्रून् विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान् ॥११॥**

भरतश्रेष्ठ! मैं तो तुम्हारी सम्पूर्ण सेना का प्रधान सेनापति ही हूँ। मैं पाण्डवों को पीड़ित करके शत्रुसेना के सैनिकों का संहार करूँगा।

**न त्वात्मनो गुणान् वक्तुमर्हामि विदितोऽस्मि ते।**
**कृतवर्मा त्वतिरथो भोजः शस्त्रभृतां वरः ॥१२॥**

मैं अपने मुख से अपने गुणों का वर्णन करना

उचित नहीं समझता। तुम तो मुझे जानते ही हो। शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भोजवंशी कृतवर्मा तुम्हारे पक्ष के अतिरथी वीर हैं।

**मद्रराजो महेष्वासः शल्यो मेऽतिरथो मतः।**
**स्पर्धते वासुदेवेन नित्यं यो वै रणे रणे ॥१३॥**

महाधनुर्धर मद्रराज शल्य को भी मैं अतिरथी मानता हूँ जो प्रत्येक युद्ध में सदा श्रीकृष्ण के साथ स्पर्धा रखते हैं।

**सोमदत्तिर्महेष्वासो रथयूथपयूथपः।**
**बलक्षयममित्राणां सुमहान्तं करिष्यति ॥१४॥**

सोमदत्त के पुत्र महाधनुर्धर भूरिश्रवा रथियों के यूथपतियों के भी यूथपति हैं, अतः वे तुम्हारे शत्रुओं की सेना का महान् संहार करेंगे।

**सिन्धुराजो महाराज मतो मे द्विगुणो रथः।**
**योत्स्यते समरे राजन् विक्रान्तो रथसत्तमः ॥१५॥**

महाराज ! सिन्धुराज जयद्रथ को मैं दो रथियों के बराबर समझता हूँ। ये अत्यन्त पराक्रमी और रथी योद्धाओं में श्रेष्ठ हैं। राजन् ! ये भी रणभूमि में पाण्डवों के साथ युद्ध करेंगे।

**कृपः शारद्वतो राजन् रथयूथपयूथपः।**
**प्रियान् प्राणान् परित्यज्य प्रधक्ष्यति रिपूँस्तव ॥१६॥**

राजन् ! शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य तो रथयूथपतियों के भी यूथपति हैं। ये अपने प्यारे प्राणों की चिन्ता न करके तुम्हारे शत्रुओं को जला डालेंगे।

**शकुनिर्मातुलस्तेऽसौ रथ एको नराधिप।**
**प्रयुज्य पाण्डवैर्वैरं योत्स्यते नात्र संशयः ॥१७॥**

नरेश्वर ! तुम्हारे मामा शकुनि भी रथी हैं। ये पाण्डवों से वैर बाँधकर युद्ध करेंगे, इसमें संशय नहीं है।

**द्रोणपुत्रो महेष्वासः सर्वानेवाति धन्विनः।**
**समरे चित्रयोधी च दृढास्त्रश्च महारथः ॥१८॥**

महाधनुर्धर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तो सभी धनुर्धरों से बढ़कर है। वह युद्ध में विचित्र रीति से शत्रुओं का सामना करनेवाला, सुदृढ़ अस्त्रों से युक्त और महारथी है।

**नैष शक्यो मया वीरः संख्यातुं रथसत्तमः।**
**निर्दहेदपि लोकांस्त्रीनिच्छन्नेष महारथः ॥१९॥**

रथियों में श्रेष्ठ इस वीर पुरुष के महत्त्व की गणना नहीं की जा सकती। यह महारथी चाहे तो तीनों लोकों को भस्म कर सकता है।

**क्रोधस्तेजश्च तपसा सम्भृतोऽऽश्रमवासिनाम्।**
**द्रोणेनानुगृहीतश्च दिव्यैरस्त्रैरुदारधीः ॥२०॥**

इसमें क्रोध है, तेज है और आश्रमवासी महर्षियों के योग्य तप भी संचित है। इसकी बुद्धि उदार है। द्रोणाचार्य ने सम्पूर्ण दिव्यास्त्रों का ज्ञान देकर इसपर महान् अनुग्रह किया है।

**दोषस्त्वस्य महानेको येनैव भरतर्षभ।**
**न मे रथो नातिरथो मतः पार्थिवसत्तम ॥२१॥**

परन्तु भरतश्रेष्ठ ! नरेश्वर ! इसमें एक बहुत बड़ा दोष है जिसके कारण मैं इसे न तो अतिरथी मानता हूँ और न रथी ही।

**जीवितं प्रियमत्यर्थमायुष्कामः सदा द्विजः।**
**न ह्यस्य सदृशः कश्चिदुभयोः सेनयोरपि ॥२२॥**

इस ब्राह्मण को अपना जीवन बहुत प्रिय है, यह सदा दीर्घायु बना रहना चाहता है [यही इसका दुर्गुण है] अन्यथा दोनों सेनाओं में इसकी समानता करनेवाला कोई नहीं है।

**पिता त्वस्य महातेजा वृद्धोऽपि युवभिर्वरः।**
**रणे कर्म महत् कर्ता अत्र मे नास्ति संशयः ॥२३॥**

अश्वत्थामा के पिता द्रोणाचार्य महातेजस्वी हैं। ये वृद्ध होने पर भी युवकों से अच्छे हैं। इस युद्ध में ये अपना महान् पराक्रम प्रकट करेंगे, इसमें मुझे सन्देह नहीं है।

**रथयूथपयूथानां यूथपोऽयं नरर्षभः।**
**भारद्वाजात्मजः कर्ता कर्म तीव्रं हिताय वः ॥२४॥**

ये नरश्रेष्ठ भरद्वाजनन्दन रथयूथपतियों के समुदाय के भी यूथपति हैं। ये तुम्हारे कल्याण के लिए तीव्र पराक्रम प्रकट करेंगे।

**सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यः स्थविरो गुरुः।**
**गच्छेदन्तं सृञ्जयानां प्रियस्त्वस्य धनञ्जयः ॥२५॥**

सम्पूर्ण मूर्धाभिषिक्त भूपालों के ये आचार्य तथा वृद्ध गुरु हैं। ये सृंजयवंशी क्षत्रियों का संहार कर डालेंगे, परन्तु अर्जुन इन्हें बहुत प्रिय है।

**सखा ते दयितो नित्यं य एष रणकर्कशः ।**
**उत्साहयति राजँस्त्वां विग्रहे पाण्डवैः सह ॥२६॥**
**परुषः कत्थनो नीचः कर्णो वैकर्तनस्तव ।**
**मन्त्री नेता च बन्धुश्च मानी चात्यन्तमुच्छ्रितः ॥२७॥**

राजन् ! यह जो तुम्हारा प्रिय मित्र कर्ण है, जो तुम्हें पाण्डवों के साथ युद्ध के लिए सदा उत्साहित करता रहता है तथा रणभूमि में सदा अपनी क्रूरता का परिचय देता है, बड़ा ही कटुभाषी, आत्मप्रशंसी तथा नीच है। यह कर्ण तुम्हारा मन्त्री, नेता और बन्धु बना हुआ है। यह अभिमानी तो है ही तुम्हारा आश्रय पाकर बहुत ऊँचा चढ़ गया है।

**एष नैव रथः कर्णो न चाप्यतिरथो रणे ।**
**वियुक्तः कवचेनैष तेन मेऽर्धरथो मतः ॥२८॥**

यह कर्ण युद्धभूमि में न तो अतिरथी है और न रथी ही कहलाने योग्य है। यह अपने दिव्य कवच से भी हीन हो चुका है, अतः मेरी दृष्टि में यह कर्ण अर्धरथी है।

संजय उवाच

**ततोऽब्रवीत् पुनर्द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।**
**एवमेतद् यथाऽऽत्थ त्वं न मिथ्यास्ति कदाचन ॥२९॥**

**संजय कहते हैं**—यह सुनकर समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी बोल उठे—"आप जैसा कहते हैं, वह सर्वथा सत्य है। आपका यह मत कदापि मिथ्या नहीं है।

**रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चापि दृश्यते ।**
**घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः ॥३०॥**

"यह प्रत्येक संग्राम में घमण्ड तो बहुत दिखाता है परन्तु वहाँ से भागता ही देखा जाता है। कर्ण दयालु और प्रमादी है, अतः मेरी सम्मति में भी वह अर्धरथी है।"

**एतत् श्रुत्वा तु राधेयः क्रोधादुत्फाल्य लोचने ।**
**उवाच भीष्मं राधेयस्तुदन् वाग्भिः प्रतोदवत् ॥३१॥**

यह सुनकर राधानन्दन कर्ण क्रोध से आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा तथा अपने वचनरूपी चाबुक से पीड़ा देता हुआ भीष्मजी से कहने लगा—

**पितामह यथेष्टं मां वाक्शरैरुपकृन्तसि ।**
**अनागसं सदा द्वेषादेवमेव पदे पदे ॥३२॥**

"पितामह ! मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया है, फिर भी मेरे प्रति द्वेष रखने के कारण आप पग-पग पर मुझे अपने वाग्बाणों द्वारा इच्छानुसार चोट पहुँचाते रहते हो।

**मर्षयामि च तत्सर्वं दुर्योधनकृतेन वै ।**
**त्वं तु मां मन्यसे मन्दं यथा कापुरुषं तथा ॥३३॥**

"मैं दुर्योधन के कारण यह सब-कुछ चुपचाप सह लेता हूँ परन्तु तुम मुझे मूर्ख और कायर के समान समझते हो।

**भवानर्धरथो मह्यं मतो वै नात्र संशयः ।**
**कुरूणामहितो नित्यं गाङ्गेयो न मृषा वदे ॥३४॥**

हे गङ्गापुत्र भीष्म ! मेरी दृष्टि में तुम भी अर्धरथी हो, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मैं झूठ नहीं बोलता, तुम सभी कुरुओं का सदा अहित करते हो।

**को हि नाम समानेषु राजसूदारकर्मसु ।**
**तेजोवधमिमं कुर्याद् विभेदयिषुराहवे ॥३५॥**

"युद्ध के अवसर पर तथा समान श्रेणी के उदार-चरित राजाओं के एकत्र होने पर आपस में फूट उत्पन्न करने की इच्छा रखकर कौन पुरुष अपने ही पक्ष के योद्धा का इस प्रकार तेज और उत्साह नष्ट करेगा ?

**न हायनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः ।**
**महारथत्वं संख्यातुं शक्यं क्षत्रस्य कौरव ॥३६॥**

"हे कौरव ! केवल बड़ी अवस्था हो जाने, बाल पक जाने, अधिक धन प्राप्त कर लेने तथा बहुत-से भाई-बन्धुओं के होने से ही किसी क्षत्रिय को महारथी नहीं गिना जा सकता।

**बलज्येष्ठं स्मृतं क्षत्रं मन्त्रज्येष्ठा द्विजातयः ।□**
**धनज्येष्ठाः स्मृता वैश्याः शूद्रास्तु वयसाधिकाः ॥३७॥**

"क्षत्रिय बल में श्रेष्ठ होने से, ब्राह्मण वेदमन्त्रों के ज्ञान से, वैश्य अधिक धन से तथा शूद्र अधिक अवस्था होने से श्रेष्ठ माने जाते हैं।

**यथेच्छकं स्वयं ब्रूया रथानतिरथांस्तथा ।**
**कामद्वेषसमायुक्तो मोहात् प्रकुरुते भवान् ॥३८॥**

"आप राग-द्वेष से भरे हुए हो, अतः मोहवश

मनमाने ढंग से रथी और अतिरथियों की गणना कर रहे हो।

**श्रोतव्यं खलु वृद्धानामिति शास्त्रनिदर्शनम्।**
**न त्वेव ह्यतिवृद्धानां पुनर्बाला हि ते मताः ।।३९।।**

"वृद्धों की बातें सुननी चाहिएँ, यह शास्त्र का आदेश है, परन्तु जो बहुत वृद्ध हो गये हैं, उनकी बातें श्रवण करने योग्य नहीं हैं, क्योंकि वे तो फिर बालकों के समान ही माने गये हैं।

**अहमेको हनिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम्।**
**सुयुद्धे राजशार्दूल यशो भीष्मं गमिष्यति ।।४०।।**

[भीष्म से इतना कहकर वह दुर्योधन से बोला--] "नृपश्रेष्ठ ! मैं इस युद्ध में अकेला ही पाण्डवों की सेना का संहार करूँगा, परन्तु सारा यश भीष्मजी को मिलेगा।

**कृतः सेनापतिस्त्वेष त्वया भीष्मो नराधिप।**
**सेनापतौ यशो गन्ता न तु योधान् कथञ्चन ।।४१।।**

"नरेश्वर ! तुमने इन भीष्म को ही सेनापति बनाया है। विजय का यश सेनापति को ही प्राप्त होता है, योद्धाओं को कभी नहीं।

**नाहं जीवति गाङ्गेये योत्स्ये राजन् कथञ्चन।**
**हते भीष्मे तु योद्धास्मि सर्वैरेव महारथैः ।।४२।।**

"अतः राजन् ! मैं भीष्म के जीते-जी किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा। हाँ, भीष्म के मारे जाने पर मैं समस्त महारथियों के साथ टक्कर लूँगा।"

भीष्म उवाच

**समुद्यतोऽयं भारो मे सुमहान् सागरोपमः।**
**मिथोभेदो न मे कार्यस्तेन जीवसि सूतज ।।४३।।**

**भीष्मजी ने कहा**—सूतपुत्र ! इस युद्ध में मैंने समुद्र के समान गुरुतर भार अपने कन्धों पर उठाया है। ऐसे अवसर पर मुझे पारस्परिक भेद नहीं उत्पन्न करना चाहिए, इसलिए तू अभी तक जी रहा है।

**अन्यथा त्वद्य विक्रम्य स्थविरोऽपि शिशोस्तव।**
**युद्धश्रद्धामहं छिन्द्यां जीवितस्य च सूतज ।।४४।।**

सूतनन्दन ! यदि ऐसी बात न होती तो मैं वृद्ध होने पर भी पराक्रम करके तुझ बालक की युद्ध-विषयक श्रद्धा तथा जीवन की आशा का एक-साथ ही उच्छेद कर डालता।

**युद्ध्यस्व समरे पार्थं येन विस्पर्धसे सह।**
**द्रक्ष्यामि त्वां विनिर्मुक्तमस्माद् युद्धात् सुदुर्मते ।।४५।।**

दुर्मते ! तू जिसके साथ सदा स्पर्धा रखता है, उस अर्जुन के साथ रणक्षेत्र में युद्ध कर। मैं देखूँगा कि तू इस संग्राम में किस प्रकार बच पाता है ?

संजय उवाच

**तमुवाच ततो राजा धार्तराष्ट्रः प्रतापवान्।**
**मां समीक्षस्व गाङ्गेय कार्यं हि महदुद्यतम् ।।४६।।**

**संजय कहते हैं**—भीष्म के ऐसा कहने पर प्रतापी राजा दुर्योधन ने भीष्मजी से कहा—"गङ्गानन्दन ! आप मेरी ओर देखिए, क्योंकि इस समय महान् कार्य उपस्थित है।

**चिन्त्यतामिदमेकाग्रं मम निःश्रेयसं परम्।**
**उभावपि भवन्तौ मे महत् कर्म करिष्यतः ।।४७।।**

"आप एकाग्रचित्त होकर मेरे परम कल्याण की बात सोचिए। आप और कर्ण दोनों ही मेरा महान् कार्य सिद्ध करेंगे।

**भूयश्च श्रोतुमिच्छामि परेषां रथसत्तमान्।**
**ये चैवातिरथास्तत्र ये चैव रथयूथपाः ।।४८।।**

"अब मैं पुनः शत्रुपक्ष के श्रेष्ठ रथियों, अतिरथियों तथा रथयूथपतियों का परिचय सुनना चाहता हूँ।

**बलाबलममित्राणां श्रोतुमिच्छामि कौरव।**
**प्रभातायां रजन्यां वै इदं युद्धं भविष्यति ।।४९।।**

"कुरुनन्दन ! शत्रुपक्ष के बलाबल को सुनने की मेरी प्रबल इच्छा है, क्योंकि आज की रात व्यतीत होते ही कल प्रातःकाल यह युद्ध प्रारम्भ हो जाएगा।"

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।।३५।।**

# षट्त्रिंशोऽध्यायः

## पाण्डवपक्ष के रथी, अतिरथी आदि का भीष्म द्वारा वर्णन

भीष्म उवाच

**एते रथास्तवाख्यातास्तथैवातिरथा नृप ।**
**ये चाप्यर्धरथा राजन् पाण्डवानामतः शृणु ॥१॥**

भीष्मजी कहते हैं—नरेश्वर ! ये तुम्हारे पक्ष के रथी, अतिरथी और अर्धरथी गिनाये गये हैं। राजन् ! अब तुम पाण्डवपक्ष के रथी आदि का वर्णन सुनो।

**स्वयं राजा रथोदारः पाण्डवः कुन्तीनन्दनः ।**
**अग्निवत् समरे तात चरिष्यति न संशयः ॥२॥**

तात ! कुन्ती का आनन्द बढ़ानेवाले स्वयं पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर एक श्रेष्ठ रथी=महारथी हैं। वे समरभूमि में अग्नि के समान सर्वत्र विचरेंगे, इसमें संशय नहीं है।

**भीमसेनस्तु राजेन्द्र रथोऽष्टगुणसम्मितः ।**
**न तस्यास्ति समो युद्धे गदया सायकैरपि ॥३॥**

राजेन्द्र ! भीमसेन तो अकेले ही आठ रथियों के बराबर हैं। गदा और बाणों द्वारा किये जानेवाले युद्ध में उनके समान दूसरा कोई योद्धा नहीं है।

**माद्रीपुत्रौ च रथिनौ द्वावेव पुरुषर्षभौ ।**
**अश्विनाविव रूपेण तेजसा च समन्वितौ ॥४॥**

माद्री के दोनों पुत्र नकुल और सहदेव अश्विनीकुमारों के समान रूपवान् और तेजस्वी हैं। ये दोनों ही पुरुषरत्न रथी हैं।

**लोहिताक्षो गुडाकेशो वासुदेवसहायवान् ।**
**उभयोः सेनयोर्वीरो रथो नास्तीति तादृशः ॥५॥**

लाल नेत्रोंवाले, निद्राविजयी और श्रीकृष्ण जिसके सहायक हैं, कौरव-पाण्डव दोनों सेनाओं में, उस अर्जुन के समान वीर रथी दूसरा कोई नहीं है।

**न हि देवेषु यक्षेषु नरेषु कुत एव तु ।**
**भूतोऽथवा भविष्यो वा रथः कश्चिन्मया श्रुतः ॥६॥**

समस्त देवताओं तथा यक्षों में अर्जुन के समान कोई नहीं है, फिर मनुष्यों में तो हो ही कैसे सकता है ? भूत या भविष्य में भी कोई ऐसा रथी मेरे सुनने में नहीं आया।

**अहं चैनं प्रत्युदियामाचार्यो वा धनञ्जयम् ।**
**न तृतीयोऽस्ति राजेन्द्र सेनयोरुभयोरपि ।**
**य एनं शरवर्षाणि वर्षन्तमुदियाद् रथी ॥७॥**

मैं अथवा द्रोणाचार्य ही अर्जुन का सामना कर सकते हैं। राजेन्द्र ! दोनों सेनाओं में तीसरा कोई ऐसा रथी नहीं है जो बाणों की वर्षा करते हुए अर्जुन के समक्ष ठहर सके।

**द्रौपदेया महाराज सर्वे पञ्चमहारथाः ।**
**वैराटिरुत्तरश्चैव रथोदारो मतो मम ॥८॥**

महाराज ! द्रौपदी के जो पाँच पुत्र हैं, वे सब-के-सब महारथी हैं। विराटपुत्र उत्तर को मैं उदार रथी मानता हूँ।

**अभिमन्युर्महाबाहू रथयूथपयूथपः ।**
**समः पार्थेन समरे वासुदेवेन चारिहा ॥९॥**
**लब्धास्त्रश्चित्रयोधी च मनस्वी च दृढव्रतः ।**
**संस्मरन् वै परिक्लेशं स्वपितुर्विक्रमिष्यति ॥१०॥**

महाबाहु अभिमन्यु रथ-यूथपतियों का भी यूथपति है। वह शत्रुसंहारक वीर युद्धभूमि में अर्जुन और श्रीकृष्ण के समान पराक्रमी है। उसने अस्त्रविद्या की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की है। वह युद्ध की विचित्र कलाएँ जानता है तथा दृढ़तापूर्वक व्रत का पालन करनेवाला एवं मनस्वी है। वह अपने पिता के क्लेश का स्मरण कर अवश्य पराक्रम प्रकट करेगा।

**सात्यकिर्माधवः शूरो रथयूथपयूथपः ।**
**एष वृष्णिप्रवीराणाममर्षी जितसाध्वसः ॥११॥**

मधुवंशी शूरवीर सात्यकि भी रथ-यूथपतियों का भी यूथपति है। वृष्णिवंश के प्रमुख वीरों में ये सात्यकि अत्यन्त अमर्षशील हैं। इन्होंने भय को जीत लिया है।

**उत्तमौजास्तथा राजन् रथोदारो मतो मम ।**
**युधामन्युश्च विक्रान्तो रथोदारो मतो मम ॥१२॥**

राजन् ! उत्तमौजा को भी मैं उदार रथी मानता हूँ। पराक्रमी युधामन्यु भी मेरे मत में एक श्रेष्ठ रथी है।

**अजेयौ समरे वृद्धौ विराटद्रुपदौ तथा।**
**महारथौ महावीर्यौ मतौ मे पुरुषर्षभौ ॥१३॥**

वृद्ध राजा विराट और द्रुपद भी युद्ध में अजेय हैं। इन दोनों महापराक्रमी नरश्रेष्ठ वीरों को मैं महारथी मानता हूँ।

**सुतः पाञ्चालराजस्य राजन् परपुरञ्जयः।**
**शिखण्डी रथमुख्यो मे मतः पार्थस्य भारत ॥१४॥**

राजन्! भरतनन्दन! पाञ्चालराज द्रुपद का पुत्र शिखण्डी शत्रुओं की नगरी पर विजय पानेवाला है, मैं उसे युधिष्ठिर की सेना का एक प्रमुख रथी मानता हूँ।

**एष योत्स्यति संग्रामे नाशयन् पूर्वसंस्थितम्।**
**परं यशो विप्रथयंस्तव सेनासु भारत ॥१५॥**

हे भारत! वह तुम्हारी सेना में प्रवेश करके अपने पूर्व अपयश का नाश तथा उत्तम सुयश का विस्तार करता हुआ अत्यन्त उत्साह से युद्ध करेगा।

**धृष्टद्युम्नश्च सेनानीः सर्वसेनासु भारत।**
**मतो मेऽतिरथो राजन् द्रोणशिष्यो महारथः ॥१६॥**

भारत! जो पाण्डवों की सम्पूर्ण सेना का सेनापति है, वह द्रोणाचार्य का महारथी शिष्य धृष्टद्युम्न मेरे विचार से अतिरथी है।

**शिशुपालसुतो वीरश्चेदिराजो महारथः।**
**धृष्टकेतुर्महेष्वासः सम्बन्धी पाण्डवस्य वै ॥१७॥**

शिशुपाल का वीरपुत्र महाधनुर्धर चेदिराज धृष्टकेतु पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर का सम्बन्धी तथा महारथी है।

**चेकितानः सत्यधृतिः पाण्डवानां महारथौ।**
**द्वाविमौ पुरुषव्याघ्रौ रथौदारौ मतौ मम ॥१८॥**

चेकितान और सत्यधृति—ये दो पुरुषसिंह पाण्डव-सेना के महारथी हैं। मैं इन्हें रथियों में श्रेष्ठ मानता हूँ।

**पुरुजित् कुन्तिभोजश्च महेष्वासो महाबलः।**
**मातुलो भीमसेनस्य स च मेऽतिरथो मतः ॥१९॥**

कुन्तिभोजकुमार राजा पुरुजित् जो भीमसेन के के मामा हैं, वे भी महाधनुर्धर तथा अति बलवान् हैं। मैं इन्हें भी अतिरथी मानता हूँ।

**भैमसेनिर्महाराज हैडिम्बो राक्षसेश्वरः।**
**मतो मे बहुमायावी रथयूथपयूथपः ॥२०॥**

महाराज! भीमसेन और हिडिम्बा का पुत्र राक्षसराज घटोत्कच अति मायावी है। वह मेरे मत में रथयूथपतियों का भी यूथपति है।

**एते चान्ये च बहवो नाना जनपदेश्वराः।**
**समेताः पाण्डवस्यार्थे वासुदेवपुरोगमाः ॥२१॥**

ये तथा और बहुत-से वीर क्षत्रिय जो विभिन्न जनपदों के स्वामी हैं, जिनमें श्रीकृष्ण का स्थान सबसे प्रमुख है, पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर के लिए यहाँ एकत्र हुए हैं।

**एते प्राधान्यतो राजन् पाण्डवस्य महात्मनः।**
**रथाश्चातिरथाश्चैव ये चान्येऽर्धरथा नृप ॥२२॥**

हे राजन्! ये महात्मा पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर के मुख्य-मुख्य रथी, अतिरथी और अन्य अर्धरथी हैं।

**तैरहं समरे वीर मायाविद्भिर्जयैषिभिः।**
**योत्स्यामि जयमाकाङ्क्षन्नथवा निधनं रणे ॥२३॥**

वीर! मैं तुम्हारी ओर से रणभूमि में उन मायावेत्ता तथा विजयाभिलाषी पाण्डव वीरों के साथ अपनी विजय अथवा मृत्यु की आकांक्षा लेकर युद्ध करूँगा।

**अर्जुनं वासुदेवं च ये चान्ये तत्र पार्थिवाः।**
**सर्वांस्तान् वारयिष्यामि यावद् द्रक्ष्यामि भारत ॥२४॥**

हे भारत! अर्जुन, श्रीकृष्ण तथा अन्य जो-जो भूपाल हैं, मैं उनमें से जिन-जिनको देखूँगा, उन सबको आगे बढ़ने से रोक दूँगा।

**पाञ्चाल्यं तु महाबाहो नाहं हन्यां शिखण्डिनम्।**
**उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा प्रतियुध्यन्तमाहवे ॥२५॥**

परन्तु महाबाहो! पाञ्चालराजकुमार शिखण्डी को धनुष पर बाण चढ़ाये युद्ध में अपना सामना करते देखकर भी मैं नहीं मारूँगा।

**देवव्रतत्वं विज्ञाप्य पृथिव्यां सर्वराजसु।**
**नैव हन्यां स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कदाचन ॥२६॥**

सारे संसार में समस्त राजाओं में अपने देवव्रत-स्वरूप की ख्याति कराकर मैं कभी भी किसी स्त्री को अथवा जो पहले स्त्री रहा हो, उस पुरुष को भी नहीं मार सकता।

**स हि स्त्रीपूर्वको राजन् शिखण्डी यदि ते श्रुतः ।**
**कन्या भूत्वा पुमान् जातो न योत्स्ये तेन भारत ।।२७**

राजन्! कदाचित् तुम्हारे सुनने में आया होगा, शिखण्डी पहले 'स्त्री रूप' में ही उत्पन्न हुआ था। भारत! पहले कन्या होकर वह फिर पुरुष हो गया था, अतः मैं उससे युद्ध नहीं करूँगा।

**सर्वांस्त्वन्यान् हनिष्यामि पार्थिवान् भरतर्षभ ।**
**समरे यान् समेष्यामि न तु कुन्तीसुतान् नृप ।।२८।।**

भरतश्रेष्ठ! मैं अन्य सब राजाओं को जिन्हें युद्ध में पाऊँगा, मार गिराऊँगा, परन्तु कुन्ती के पुत्रों का वध कदापि नहीं करूँगा।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ।।३६।।**

# सप्तत्रिंशोऽध्यायः

## कौरव तथा पाण्डव-पक्षों की शक्ति का वर्णन तथा दोनों सेनाओं का युद्ध के लिए प्रस्थान

सञ्जय उवाच

**प्रभातायां तु शर्वर्यां पुनरेव सुतस्तव ।**
**मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पितामहमपृच्छत ।।१।।**

**सञ्जय कहते हैं**—राजन्! जब रात्रि व्यतीत हुई और प्रभात हुआ, उस समय आपके पुत्र दुर्योधन ने सारी सेना के मध्य में पुनः पितामह भीष्म से पूछा—

**पाण्डवानाञ्च गाङ्गेय यदेतत् सैन्यमुद्यतम् ।**
**सेनासागरमक्षोभ्यमपि देवैर्महाहवे ।।२।।**
**केन कालेन गाङ्गेय क्षपयेथा महाद्युते ।**
**आचार्यो वा महेष्वासः कृपो वा सुमहाबलः ।।३।।**
**कर्णो वा समरश्लाघी द्रौणिर्वा द्विजसत्तमः ।**
**दिव्यास्त्रविदुषः सर्वे भवन्तो हि बले मम ।।४।।**

गङ्गानन्दन! यह जो पाण्डवों की विशाल सेना युद्ध के लिए उद्यत है, बड़े-बड़े देवता भी इस महान् युद्ध में इस सैन्य समुद्र को क्षुब्ध नहीं कर सकते। महातेजस्वी गङ्गानन्दन! आप इस सारी सेना का संहार कितने समय में कर सकते हैं; महाधनुर्धर द्रोणाचार्य, अत्यन्त बलशाली कृपाचार्य, युद्ध की स्पृहा रखनेवाले कर्ण अथवा द्विजश्रेष्ठ अश्वत्थामा कितने समय में शत्रुसेना को समाप्त कर सकते हैं, क्योंकि मेरी सेना में आप सब लोग दिव्यास्त्रों के ज्ञाता हैं।

**एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं परं कौतूहलं हि मे ।**
**हृदि नित्यं महाबाहो वक्तुमर्हसि तन्मम ।।५।।**

"महाबाहो! मैं यह सब-कुछ जानना चाहता हूँ, इसके लिए मेरे हृदय में सदा कौतूहल बना रहता है। आप मुझे यह सब बताने की कृपा करें।"

भीष्म उवाच

**अनुरूपं कुरुश्रेष्ठ त्वय्येतत् पृथिवीपते ।**
**बलाबलममित्राणां तेषां यदिह पृच्छसि ।।६।।**

**भीष्मजी बोले**—कुरुश्रेष्ठ! प्रजेश्वर! तुमने शत्रुओं के बलाबल के सम्बन्ध में जो प्रश्न पूछा है, वह तुम्हारे योग्य ही है।

**शृणु मम रणे राजन् या शक्तिः परमा भवेत् ।**
**शस्त्रवीर्यं रणे यच्च भुजयोश्च महाभुज ।।७।।**

राजन्! महाबाहो! युद्ध में मेरी जो सबसे अधिक शक्ति है, मेरे अस्त्र-शस्त्रों का तथा दोनों भुजाओं का जितना बल है, वह सब बताता हूँ, सुनो।

**आर्जवेनैव युद्धेन योद्धव्य इतरो जनः ।**
**मायायुद्धेन मायावी इत्येतद् धर्मनिश्चयः ।।८।।**

साधारण लोगों के साथ सरल भाव से ही युद्ध करना चाहिए तथा जो लोग मायावी हैं, उनका सामना मायायुद्ध से ही करना चाहिए, यही धर्मशास्त्र का निश्चय है।

**मुञ्चेयं यदि वास्त्राणि महान्ति समरे स्थितः ।**
**शतसाहस्रघातीनि हन्यां मासेन भारत ।।९।।**

हे भारत! यदि मैं युद्ध में खड़ा होकर लाखों वीरों का संहार करनेवाले अपने भयंकर अस्त्रों का प्रयोग करूँ तो एक मास में पाण्डवों की सारी सेना को नष्ट कर सकता हूँ।

संजय उवाच

**श्रुत्वा भीष्मस्य तद् वाक्यं राजा दुर्योधनस्ततः ।**
**पर्यपृच्छत राजेन्द्र द्रोणमङ्गिरसां वरम् ॥१०॥**
**आचार्य केन कालेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ।**
**निहन्या इति तं द्रोणः प्रत्युवाच हसन्निव ॥११॥**

**सञ्जय कहते हैं**—हे राजेन्द्र ! भीष्म का यह वचन सुनकर राजा दुर्योधन ने अङ्गिरस ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ द्रोणाचार्य से पूछा—"आचार्य ! आप कितने समय में पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के सैनिकों का संहार कर सकते हैं ?" यह प्रश्न सुनकर द्रोणाचार्य हँसते हुए-से बोले—

**स्थविरोऽस्मि महाबाहो मन्दप्राणविचेष्टितः ।**
**शस्त्राग्निना निर्दहेयं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥१२॥**

"महाबाहो ! अब तो मैं वृद्ध हो गया हूँ, मेरी प्राणशक्ति और चेष्टा भी कम हो गई है, तो भी मैं अपने अस्त्र-शस्त्रों की अग्नि से पाण्डवों की विशाल सेना को भस्म कर दूंगा ।

**यथा भीष्मः शान्तनवो मासेनेति मतिर्मम ।**
**एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम् ॥१३॥**

"शान्तनुनन्दन भीष्म की भाँति मैं भी एक मास में पाण्डव-सेना का संहार कर सकता हूँ, ऐसा मेरा विश्वास है। यही मेरी सबसे बड़ी शक्ति है तथा यही मेरा अधिक-से-अधिक बल है।"

**द्वाभ्यामेव तु मासाभ्यां कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।**
**द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे बलक्षयम् ॥१४॥**

कृपाचार्य ने दो मास में पाण्डव-सेना के संहार की बात कही, परन्तु अश्वत्थामा ने दस ही दिनों में शत्रुसेना के विध्वंस की प्रतिज्ञा कर ली ।

**कर्णस्तु पञ्चरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् ।**
**तत् श्रुत्वा सूतपुत्रस्य वाक्यं सागरगासुतः ॥१५॥**
**जहास सस्वनं हासं वाक्यं चेदमुवाच ह ।**
**न हि यावद् रणे पार्थं बाणशंखधनुर्धरम् ॥१६॥**
**वासुदेवसमायुक्तं रथेनायान्तमाहवे ।**
**समागच्छसि राधेय तेनैवमभिमन्यसे ।**
**शक्यमेवं च भूयश्च त्वया वक्तुं यथेष्टतः ॥१७॥**

भयंकर अस्त्रों के ज्ञाता कर्ण ने पाँच ही दिन में पाण्डव-सेना को नष्ट करने की प्रतिज्ञा की । सूतपुत्र का यह कथन सुनकर गङ्गानन्दन भीष्मजी ठहाका मारकर हँस पड़े और यह वचन बोले—"राधापुत्र ! जबतक तुम युद्धभूमि में शंख, बाण और धनुष धारण करनेवाले श्रीकृष्णसहित अर्जुन को एक ही रथ पर आते हुए नहीं देखते और जबतक उनके साथ तुम्हारी मुठभेड़ नहीं होती, तभी तक ऐसा अभिमान प्रकट करते हो । तुम इच्छानुसार और भी ऐसी बहुत-सी बहकी-बहकी बातें कह सकते हो ।"

वैशम्पायन उवाच

**एतत् श्रुत्वा तु कौन्तेयः सर्वान् भ्रातॄनुपह्वरे ।**
**आहूय भरतश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ॥१८॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—भरतश्रेष्ठ जनमेजय ! कौरव-सेना में हुई बातचीत का समाचार पाकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने भी अपने सब भाइयों को एकान्त में बुलाकर इस प्रकार कहा—

युधिष्ठिर उवाच

**धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु ये चारपुरुषा मम ।**
**ते प्रवृत्तिं प्रयच्छन्ति ममेमां व्युषितां निशाम् ॥१९॥**
**दुर्योधनः किलापृच्छदापगेयं महाव्रतम् ॥**
**केन कालेन पाण्डूनां हन्याः सैन्यमिति प्रभो ॥२०॥**

**युधिष्ठिर ने कहा**—धृतराष्ट्र की सेना में जो मेरे गुप्तचर नियुक्त हैं, उन्होंने मुझे यह समाचार दिया है कि इसी विगत रात्रि में दुर्योधन ने व्रतधारी गङ्गानन्दन भीष्मजी से यह पूछा था कि प्रभो ! आप पाण्डवों की सेना का संहार कितने समय में कर सकते हैं ?

**मासेनेति च तेनोक्तो धार्तराष्ट्रः सुदुर्मतिः ।**
**तावता चापि कालेन द्रोणोऽपि प्रतिजज्ञिवान् ॥२१॥**
**गौतमो द्विगुणं कालमुक्तवानिति नः श्रुतम् ।**
**द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् ॥२२॥**

भीष्मजी ने धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्बुद्धि दुर्योधन को यह उत्तर दिया कि मैं एक मास में पाण्डव-सेना का संहार कर सकता हूँ । द्रोणाचार्य ने भी उतने ही समय में वैसा करने की प्रतिज्ञा की । कृपाचार्य ने दो मास का समय बताया यह बात हमारे सुनने में आई है तथा महान् अस्त्रवेत्ता अश्वत्थामा ने दस ही दिन में पाण्डव-सेना के विध्वंस की प्रतिज्ञा की है ।

**तथा दिव्यास्त्रवित् कर्णः सम्पृष्टः कुरुसंसदि ।**
**पञ्चभिर्दिवसैर्हन्तुं ससैन्यं प्रतिजज्ञिवान् ।।२३।।**

जब कौरवसभा में यही प्रश्न दिव्यास्त्र-वेत्ता कर्ण से पूछा गया, तब उसने पाँच ही दिन में हमारी सारी सेना को नष्ट करने की प्रतिज्ञा कर ली ।

**तस्मादहमपीच्छामि श्रोतुमर्जुन ते वचः ।**
**कालेन कियता शत्रून् क्षपयेरिति फाल्गुन ।।२४।।**

अतः अर्जुन ! मैं भी तुम्हारी बात सुनना चाहता हूँ । फाल्गुन ! तुम कितने समय में शत्रुसेना का संहार कर सकते हो ?

संजय उवाच

**एवमुक्तो गुडाकेशः पार्थिवेन धनञ्जयः ।**
**वासुदेवं समीक्ष्येदं वचनं प्रत्यभाषत ।।२५।।**

**संजय कहते हैं**—राजा युधिष्ठिर के इस प्रकार पूछने पर निद्राविजयी अर्जुन ने श्रीकृष्ण की ओर देखकर यह बात कही ।

अर्जुन उवाच

**सर्व एते महात्मानः कृतास्त्राश्चित्रयोधिनः ।**
**असंशयं महाराज हन्युरेव न संशयः ।।२६।।**

**अर्जुन बोला**—महाराज ! निःसन्देह ये सभी महामना योद्धा अस्त्रविद्या के विद्वान् और विचित्र प्रकार से युद्ध करनेवाले हैं, अतः उतने दिनों में शत्रु-सेना का संहार कर सकते हैं, इसमें संशय नहीं है ।

**अपैतु ते मनस्तापो यथा सत्यं ब्रवीम्यहम् ।**
**हन्यामेकरथेनैव वासुदेवसहायवान् ।।२७।।**
**सामरानपि लोकाँस्त्रीन् सर्वान् स्थावरजङ्गमान् ।**
**भूतं भव्यं भविष्यं च निमेषादिति मे मतिः ।।२८।।**

परन्तु आपका मनस्ताप दूर हो जाना चाहिए । मैं जो सत्य बात कहने जा रहा हूँ, उसपर ध्यान दीजिए । मैं श्रीकृष्ण की सहायता से युक्त हुआ एक-मात्र रथ को लेकर ही देवताओंसहित तीनों लोकों, सम्पूर्ण चराचर प्राणियों तथा भूत, वर्तमान और भविष्य को भी पलक मारते-मारते नष्ट कर सकता हूँ, ऐसा मेरा विश्वास है ।

**यत्तद् घोरं पशुपतिः प्रादादस्त्रं महन्मम ।**
**कैराते द्वन्द्वयुद्धे तु तदिदं मयि वर्तते ।।२९।।**

महाराज शिव ने किरातवेष में द्वन्द्वयुद्ध करते समय मुझे जो अपना भयंकर महास्त्र प्रदान किया था, वह मेरे पास विद्यमान है ।

**तन्न जानाति गाङ्गेयो न द्रोणो न च गौतमः ।**
**न च द्रोणसुतो राजन् कुत एव तु सूतजः ।।३०।।**

राजन् ! इस अस्त्र को न तो गङ्गानन्दन भीष्मजी जानते हैं, न द्रोणाचार्य जानते हैं, न कृपाचार्य जानते हैं और न द्रोणपुत्र अश्वत्थामा को ही इसका ज्ञान है, फिर सूतपुत्र कर्ण तो इसे जान ही कैसे सकता है ?

**न तु युक्तं रणे हन्तुं दिव्यैरस्त्रैः पृथग्जनम् ।**
**आर्जवेनैव युद्धेन विजेष्यामो वयं परान् ।।३१।।**

परन्तु युद्ध में साधारणजनों को दिव्यास्त्रों द्वारा मारना कदापि उचित नहीं है, अतः हम लोग सरलतापूर्वक युद्ध के द्वारा ही शत्रुओं को जीतेंगे ।

**शिखण्डी युयुधानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।**
**भीमसेनो यमौ चोभौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।।३२।।**
**विराटद्रुपदौ चोभौ भीष्मद्रोणसमौ युधि ।**
**स्वयं चापि समर्थोऽसि त्रैलोक्योत्सादनेऽपि च ।।३३।।**

शिखण्डी, सात्यकि, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, भीमसेन, दोनों भाई नकुल-सहदेव, युधामन्यु, उत्तमौजा और महाराज विराट तथा द्रुपद—ये सभी युद्ध में भीष्म और द्रोणाचार्य की समानता करनेवाले हैं । आप स्वयं भी तीनों लोकों का संहार करने में समर्थ हैं ।

वैशम्पायन उवाच

**ततः प्रभाते विमले धार्तराष्ट्रेण प्रेरिताः ।**
**दुर्योधनेन राजानः प्रययुः पाण्डवान् प्रति ।।३४।।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तत्पश्चात् निर्मल प्रभात में धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन द्वारा प्रेरित हो सभी भूपाल पाण्डवों से युद्ध करने के लिए चले ।

**आप्लाव्य शुचयः सर्वे स्रग्विणः शुक्लवाससः ।**
**गृहीतशस्त्रा ध्वजिनः स्वस्ति वाच्या हुताग्नयः ।।३५।।**

चलने से पूर्व उन सबने स्नान करके शुद्ध हो श्वेतवस्त्र धारण किये, पुष्पों की मालाएँ धारण कीं, ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराया, अग्नि में आहुतियाँ दीं, फिर ध्वजा फहराते हुए हाथों में अस्त्र-शस्त्र लेकर रणभूमि की ओर प्रस्थित हुए ।

**ते समेत्य यथान्यायं धार्तराष्ट्रा महाबलाः ।**
**कुरुक्षेत्रस्य पश्चार्धे व्यवातिष्ठन्त दंशिताः ॥३६॥**

धृतराष्ट्र के वे बलशाली पुत्र रणक्षेत्र में जाकर कवच आदि से सुसज्जित हो कुरुक्षेत्र के पश्चिम भाग में यथोचितरूप से खड़े हुए।

**पञ्चयोजनमुत्सृज्य मण्डलं तद्रणाजिरम् ।**
**सेनानिवेशास्ते राजन्नाविशञ्छतसंघशः ॥३७॥**

समराङ्गण के लिए पाँच योजन का घेरा छोड़कर सैनिकों के लिए सौ-सौ की संख्या में कितनी ही श्रेणीबद्ध छावनियाँ डाली गई थीं।

**तत्र ते पृथिवीपाला यथोत्साहं यथाबलम् ।**
**विविशुः शिविराण्यत्र द्रव्यवन्ति सहस्रशः ॥३८॥**

उन्हीं बहुमूल्य आवश्यक सामग्रियों से भरपूर सहस्रों छावनियों में वे नरेश अपने बल और उत्साह के अनुरूप युद्ध के लिए उद्यत होकर रहते थे।

**तेषां दुर्योधनो राजा ससैन्यानां महात्मनाम् ।**
**व्यादिदेश सवाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ॥३९॥**
**सनागाश्वमनुष्याणां ये च शिल्पोपजीविनः ।**
**ये चान्येऽनुगतास्तत्र सूतमागधबन्दिनः ॥४०॥**

राजा दुर्योधन सवारियों और सैनिकोंसहित उन महामना नरेशों को परम उत्तम भक्ष्य-भोज्य पदार्थ देना था। हाथियों, घोड़ों, पैदल सैनिकों, शिल्पजीवियों, अन्य अनुगामियों तथा सूत, मागध और बन्दीजनों को भी राजा की ओर से भोजन प्राप्त होता था।

**तथैव राजा कौन्तेयो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।**
**धृष्टद्युम्नमुखान् वीरान् प्रेरयामास भारत ॥४१॥**

जनमेजय ! इसी प्रकार कुन्तीनन्दन धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने भी धृष्टद्युम्न आदि वीरों को युद्ध के लिए प्रस्थान करने की प्रेरणा की।

**तेषां युधिष्ठिरो राजा ससैन्यानां महात्मनाम् ।**
**व्यादिदेश सवाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ॥४२॥**

महाराज युधिष्ठिर ने सेना और सवारियोंसहित उन महामना नरेशों को उत्तमोत्तम खाने-पीने की वस्तुएँ देने की आज्ञा दी।

**इति महाभारते उद्योगपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥**

**॥ इति उद्योगपर्व सम्पूर्णम् ॥**



